

				एळ					एळ
सध	"	आ	से	५८	कर्द	भ्या	प	से	६२
सध	"	आ	से	२०६	कर्ब	"	प	से	२०३
सध	"	आ	से	२०६	कर्ब	"	प	से	१५६
ओख	"	प	से	१०३	कल	"	आ	से	१८२
ओख	भ्या	प	से	१६८	कल	तु	उ	से	३३९
(टु) ओखी	"	प	से	३६९	कल	तु	उ	से	३५०
कक	"	आ	से	६६	कल्ल	भ्या	आ	से	१८२
ककि	"	आ	से	१००	कव	"	आ	से	१५१
कख	"	प	से	१०३	कष	"	प	से	२८२
कखे	"	प	से	२४६	कस	"	प	से	२८२
कगे	"	प	से	२५०	कसि	अ	आ	से	३६
कच	"	आ	से	१०८	काचि	भ्या	प	से	२२०
कवि	"	आ	से	१०६	काचि	"	प	से	१०६
कटी	"	प	से	१४९	काहु	"	प	से	१४८
कटे	"	प	से	१३६	कालआने म तु	उ	से	३५१	
कठ	"	प	से	१४५	काश	भ्या	आ	से	२१४
कठि	"	आ	से	१३२	काश	दि	आ	से	१५५
कठि	तु	उ	से	३४७	कास	भ्या	आ	से	२०६
कड	भ्या	प	से	१४८	कि	तु	प	अ	१२८
कड	तु	प	से	२३३	किट	भ्या	प	से	१३६
कडु	भ्या	प	से	१४७	किट	"	प	से	१४१
कडि वी म	"	प	से	१४८	कित	"	प	से	३६६
कडि	तु	प	से	३९८	किल	तु	प	से	२२६
कण	भ्या	प	से	१६६	कीट	तु	उ	से	३४६
कण	भ्या	प	से	२५०	कील	भ्या	प	से	१८६
कण	तु	उ	से	३३५	कु	अ	प	अ	५६
कणड	भ्या	आ	से	१३५	कुक	भ्या	आ	से	६६
कण्य	"	आ	से	८९	कुड	"	आ	अ	३४०
कत्र	तु	उ	से	३५३	कुड	तु	आ	अ	२३६
कष	तु	उ	से	३४८	कुच	भ्या	प	से	२८९
कदि	भ्या	प	से	६६	कुच	"	प	से	११३
कदि	"	आ	से	२४७	कुच	तु	प	से	२३२
कनी	"	प	से	१६६	कुजु	भ्या	प	से	११८
कपि	"	आ	से	१५०	कुट	तु	प	से	२३९
कमु	"	आ	से	१६५	कुट स्वा म तु	आ	से	३३९	
कर्ज	"	प	से	१२५	कुट	तु	उ	से	३१६
कर्ण मै म तु	उ	से	३५५	कुट	तु	आ	से	३३२	
कर्त तु म तु	उ	से	३५३	कुठि	भ्या	प	से	१४६	

				एष्ट					एष्ट
खेल	भ्वा.	प.	से.	१६१	गुङ्	भ्वा.	आ.	अ.	३३८
खेवु सै म "	आ		से.	१८३	गुज	तु.	प.	से.	२३२
खै	"	प.	अ	३१०	गुजि	भ्वा.	प.	से.	११६
खोट स. म. तु	उ.		से.	३५०	गुड	तु.	प.	से.	२८३
खोक्त	भ्वा	पू.	से.	१६३	गुडि	तु.	उ.	से.	३१६
खोल	"	प.	से.	१६३	गुण	तु.	उ	से.	३५१
ख्या	अ.	प	अ	८३	गुद	भ्वा.	आ.	से.	७७
गज	भ्वा	प.	से.	१३०	गुध	दि.	प	से.	१३७
गज	तु.	उ	से.	३२६	गुध	क्र्या.	प.	से.	३०३
गजि	भ्वा	प	से.	१३०	गुम्फ	तु.	प.	से.	२८३
गड	"	प.	से.	२४८	गुप	दि.	प.	से.	१८७
गडि	"	प.	से.	६४	गुप	तु.	उ	से.	३४०
गडि	"	प.	से.	१४८	गुप	भ्वा.	आ.	से.	३४५
गण	तु.	उ.	से.	३४८	गुपू	"	प.	से.	१५५
गद	भ्वा.	प.	से.	६०	गुफ	तु.	प.	से.	२२३
गदी	तु.	उ.	से.	३४६	गुरी	तु.	आ.	से.	२३५
गन्ध	तु.	आ.	से.	३३०	गुर्द	भ्वा.	आ.	से.	७७
गम्लू	भ्वा	प.	अ.	३५२	गुर्द	तु.	प.	से.	३२६
गर्ज	"	प.	से.	१२५	गुर्ी	भ्वा.	प.	से.	२००
गर्ज क्रा. पा. तु.	उ.		से.	३२८	गुहू	"	उ.	से.	२६३
गर्द	भ्वा.	प.	से.	६२	गूर	तु.	आ.	से.	३३१
गर्द क्रा पा तु.	उ.		से.	३२८	गुरी	दि.	आ.	से.	१५४
गर्ध क्रा पा. तु.	उ.		से.	३२८	ग	भ्वा.	प.	अ.	३३१
गर्ब	भ्वा.	प.	से.	१५६	ग	तु	आ.	से.	३३३
गर्ब	"	प.	से.	२०३	गज	भ्वा.	प.	से.	१३
गर्व	तु.	आ.	से.	३५२	गजि	"	प.	से.	१३०
गर्ह	भ्वा.	आ.	से.	२१३	गधु	दि.	प.	से.	१८६
गर्ह	तु.	उ.	से.	३४७	गह	तु	आ.	से.	३५२
गल	भ्वा.	प.	से.	१६३	गहू	भ्वा.	आ.	से.	२१६
गल	तु.	आ.	से.	३३१	ग	तु.	प.	से.	२४३
गल्भ	भ्वा.	आ.	से.	१५४	ग	क्र्या.	प.	से.	२६६
गल्ह	"	आ.	से.	२१३	गेपू	भ्वा.	आ	से.	१४६
गवेष	तु.	उ.	से.	३५१	गेवृ	"	आ.	से.	१८३
गा	तु.	प.	अ.	१२८	गेवृ	"	आ.	से.	२०६
गाड	भ्वा.	आ.	अ.	३३६	गै	"	प.	अ.	३१०
गम्भ	"	आ.	से.	६३	गोम	तु.	उ.	से.	३५०
गाहू	"	आ.	से.	२१५	गोष्ट	भ्वा.	आ.	से.	१३१
गु.	तु.	प.	अ.	२३६	गथि	"	आ.	से.	८०

सूचीपत्रम् ।

७

पृष्ठ	पृष्ठ
ग्रन्थ क्रमा. प. से. ३०२	+ बुधिर बु उ से. ३३६
ग्रन्थ बु. उ. से. ३४४	बुधो भवा आ से. १६०
ग्रन्थ बु. उ. से. ३४५	बुधो तु प. से. २२६
ग्रन्थ भवा आ. से. ३१२	बुधो दि आ से. १५४
ग्रन्थ बु. उ. से. ३४०	बु भवा प अ ३३१
ग्राम बु. उ. से. ३५१	बु उ से. ३३७
ग्रह क्रमा. उ. से. ३०८	बु उ से. १३६
गुचु भवा. प. से. ११८	बुणि भवा. आ से. १६०
ग्लमू " आ. से. २१२	बुणु त. उ से. २७५
ग्लह स्वा म " आ. से. २१६	बुषु भवा. प से. २२७
ग्लुचु " प. से. ११८	घा. " प से. ३१६
ग्लुचु " प. से. ११८	हुहु " आ अ ३४०
ग्लुचु " आ. से. १४६	चक " आ. से. १००
ग्लेचु " आ. से. १८३	चक " प से. २४६
ग्लेचु " आ. से. १४६	चकास अ उ. से. १०१
ग्लेचु मे म. " आ. से. २०६	चकक बु उ से. ३२०
ग्लै " प. अ. ३०७	चलिङ् अ आ से. २३
घघ " प. से. १०७	+ चट बु उ से. ३३६
घट " आ. से. २४३	चटे का म. भवा प से. १३६
घट बु. उ. से. ३४०	चडि " आ से. १३४
* घट बु. उ. से. ३३६	चण " प. से. २५०
घटि बु. उ. से. ३४०	चते " उ से. २८४
घटु भवा. आ. से. १३१	चदि " प से. ६५
घटु बु. उ. से. ३२५	चदे " उ से. २८४
घस स्वा. म. भवा. आ. से. २१६	चन " प से. २५१
घस्लु भवा. प. अ. २२६	चञ्चु " प से. ११७
घिणि " आ. से. १६०	चप " उ से. १५७
घुङ् " आ. से. ३४०	चप मे म बु उ से. ३२४
घुट " आ. से. २३८	चपि बु प. से. ३२२
घुट त. प से. २३४	चसु भवा प से. १७२
घुण भवा. आ. से. १६०	चसु स्वा प से. २०६
घुण तु प से. २२६	चय भवा आ से. १७६
घुणि भवा आ. से. १६०	चर " प से. १६४
घुर तु प से. २२७	चर बु उ से. ३३८
घुषि भवा आ. से. २१६	चर्करीत अ प से. १०६
घुषि " प से. २१७	चर्च भवा प से. २२६

* अर्थ ३३६ पत्रस्यटिप्पण्या द्रष्टव्यः । † अयमपि तत्रैव । ‡ अयमपि तत्रैव ।

चर्व	लु	उ.	से.	३३५	चुप	भ्या.	प	से.	१५८
चर्व	लु.	प.	से.	२१६	चुवि	"	प	से.	१५९
चर्व	भ्या.	प.	से.	१५१	चुवि	लु	उ.	से.	३२५
चर्व	"	प.	से.	२०२	चुर	लु	उ.	से.	३११
चल	"	प.	से.	२६४	चुरी	दि.	आ.	से.	१५४
चल	लु.	प.	से.	२२६	चुल	लु	उ	से.	३२०
चल	लु.	उ.	से.	३२१	चुल्ल	भ्या	प	से.	१६१
चलि	भ्या.	प.	से.	२५४	चूर्ण	लु	उ	से.	३१५
चष	"	उ.	से.	२६२	चूर्ण	लु	उ	से.	३२६
चह	"	प.	से.	२३२	चुष	भ्या.	प.	से.	२२१
चह	लु.	उ.	से.	३२४	चुति	लु	प	से.	२२४
चह	लु.	उ.	से.	३५०	चुप वी म. लु	उ	से.	३४४	
चाप	भ्या.	उ.	से.	२६०	चेल.	भ्या.	प	से.	१६१
चिञ्	लु.	उ.	से.	३२५	चेप	"	आ	से.	१३१
चिञ्	लु.	उ.	से.	३२५	चु	लु	उ	से.	३३८
चिञ्	स्वा	उ.	अ.	१६३	चुह	भ्या	आ.	से.	३४०
चिट	भ्या.	प	से.	१४१	चुतिर्	"	प	से.	८३
चित	लु	आ.	से.	३२६	कट	लु.	उ	से.	३४५
चिति	लु.	उ.	से.	३१३	कट	लु.	उ	से.	३५६
चिती	भ्या	प	से.	८३	कदि	लु	उ.	से.	३१८
चित्र	लु	उ.	से.	३५४	कदिर्	भ्या	प	से.	२५४
चिरि	स्वा	प	से.	२०६	कसु	"	प	से.	१७२
चिल	लु.	प	से.	२२६	कर्द	लु	उ	से.	३१६
चित्त	भ्या.	प	से.	१६१	कष	भ्या.	प.	से.	२६२
चीक	लु.	उ	से	३४४	किदिर्	न	उ	अ	२५८
चीभ	भ्या.	आ	से.	१५२	किद्र	लु.	उ.	से.	३५५
चीत्र	लु	उ.	से.	३४०	कुट	लु	प	से.	२३३
चीव	भ्या	प.	से.	२८६	कुड स. म. लु.	प	से	२३४	
लुक्क	लु	उ.	से	३२०	कुप	न.	प.	अ	२४८
लुक्क मैत्रे.	म. भ्या	प	से.	१८७	कुर	लु	प	से	२३३
लुट	लु	उ.	से.	३२१	कूप वी. म. लु	उ	से	३४४	
लुट	लु.	प	से	२३३	(उ) कृदिर् न	उ	से.	२६१	
लुट	लु.	उ	से.	३१६	कृदो	लु.	उ.	से	३४३
लुदि	लु	उ.	से	३२८	क्रेद्र	लु.	उ	से.	३५६
लुड	लु	प.	से	२३५	क्री	दि	प	अ	१४६
लुदि	भ्या.	प.	से.	१४४	जल	अ.	प.	से.	६७
लुहु	"	प	से	१४७	जज	भ्या	प	से.	१२६
लुद	लु.	उ	से	३१६					

सूचीपत्रम् ।

९

				पृष्ठ					पृष्ठ
जजि	"	प.	से.	१२६	जु	उ.	से	३४३	
जट	"	प	से	१३६	जुष	दि	प.	से	१४०
जन	जु.	आ	से	१२८	जेह	भ्या.	आ	से	२१४
जनी	दि.	आ.	से	१५०	जेह	"	आ	से	२०६
जप	भ्या	प	से	१५०	जे	"	प.	अ.	३१०
जभि	जु	उ	से.	३३५	जप्	जु	उ.	से	३२२
जभी	भ्या	आ	से	१५३	जा	भ्या.	प.	अ.	२५३
जमु	"	प	से	१७२	जा	क्र्या.	प.	अ.	२६६
जर्ज	प	प	से	२२६	जा	जु	उ	अ	३३७
जर्ज	तु	प,	से	२१६	ज्या	क्र्या	प	अ	२६६
जल	भ्या	प	से	२६४	ज्युड	भ्या	आ	अ	३४०
जल	जु.	उ	से	३१४	जि	"	प.	अ	३३७
जल्प	भ्या.	प	से	१५०	जि नं. म	जु	उ	से	३४३
जष	"	प	से	२२२	जवर	भ्या	प	से	२४८
जसि	जु.	उ	से	३२६	ज्वल	"	प	से	२५२
जसु	जु	उ	से.	३२६	ज्वल	"	प	से	२६३
जसु	जु.	उ	से	३३५	भट	"	प.	से	१३६
जसु	दि.	प	से	१८१	भमु	"	प	से	१७२
जाग	अ.	प.	से	६८	भर्भ	तु	प	से	२१६
जि	भ्या.	प	अ.	१६७	भर्भ	भ्या	प.	से	२२६
जि	"	प	अ	३३७	भष	"	उ.	से	२२२
जिवि	"	प	से	२०३	भष	"	उ	से.	२६२
जिरि	भ्या.	प	से	२०६	भुष	दि.	प	से.	१४०
जिषु	भ्या	प	से	२२५	टकि	जु	उ	से	३२६
जीव	"	प	से	१६८	टल	भ्या.	प	से	२६४
जु सौ.	"	प.	अ	३३७	टिऊ	"	आ.	से	१००
जुगि	"	प.	से.	१०७	टीऊ	"	आ.	से.	१००
जुड	जु.	प.	से	२३३	खल	"	प	से	२६४
जुड	जु.	प.	से	२२५	डप	जु	आ	से	३३०
जुड म.	जु	प.	से	३२६	डिप	जु	आ.	से	३३०
जुल	भ्या.	आ	से.	७६	डिप	जु	उ	से.	३२६
जुन स. म.	जु	प.	से	२२५	डिप	जु	प	से	२३३
जुष	जु.	उ	से.	३४५	डिप	दि	प	से	१८६
जुषी	जु	आ	से	२१५	डोड	भ्या	आ	से	३४३
जुरी	दि.	आ.	से	१५४	डोड	दि	आ	से.	१४४
जुष	भ्या	प	से	२२२	डौऊ	भ्या	आ	से	१००
जुभि	"	आ.	से	१५३	गल	"	प.	से	२२०
जु	क्र्या.	प	से	२६५	गख	"	प	से	१०३

				पृष्ठ					पृष्ठ
खखि	"	प	से	१०३	तड	खु	उ	से	३१८
खट	"	प.	से	१४०	तडि	भ्वा	आ	से	१३४
खद	"	प	से	६९	तनि	खु	आ.	से	३३०
खद	खु	उ	से	३४०	तनु	खु	उ	से	२७०
खभ	क्र्या	फ.	से	३०४	तनु	खु.	उ.	से	३४६
खभ	भ्वा	आ	से	२३६	तन्नु	भ्वा.	प	से	११७
खभ	दि	प	से	१८७	तन्नु	न	प	से	२६८
खम	भ्वा	प	अ	३५९	तप	दि.	आ	अ	१५४
खय	"	आ.	से	१७६	तप	भ्वा	प	अ	३६९
खल	"	प	से.	२६५	तप	खु	उ.	से	३४३
खश	दि	प	अ	१७२	तमु	दि	प	से	१७७
खस	भ्वा.	आ	से	२९९	तय	भ्वा	आ	से	१७६
खह	दि	उ	अ	१५७	तर्क	खु	उ	से	३४०
खाम	भ्वा	आ	से	२९०	तर्ज	भ्वा	प	से	१२५
खिज	"	प.	से	२९६	तर्ज	खु	आ	से	३३०
खिजि	अ	आ	से	३८	तर्द	भ्वा	प	से	६२
खिजिर्	खु	उ	अ	१२४	तल	खु	उ.	से	३२०
खिदि	भ्वा	प	से	६५	तसि	खु	उ	से	३३६
खिद्र	"	उ	से	२८६	तमु	दि	प	से	१८९
खिवि	"	प.	से	२०३	तायू	भ्वा	आ	से	१७६
खिल	खु	प.	से	२३०	तिक	स्वा.	प	से	२०६
खिष	भ्वा.	प	से.	२३०	तिक	भ्वा	आ.	से	१०९
खिशि	अ	आ	से	३८	तिग	स्वा	प.	से.	२०६
खिज्	भ्वा	उ	अ.	३००	तिज	भ्वा	आ	से	३४५
खील	"	प	से	१८६	तिज	खु	प.	से	३२७
खीव	"	प	से	१६८	तिष्ट	भ्वा	आ	अ	१४८
खू	अ	प	से	५९	तिम	दि	प.	से	१३८
खुद	खु	प	अ	२५०	तिल	खु मै म भ्वा	प.	से.	१६९
खुद	खु.	उ	अ	२९०	तिल	खु	प	से	२२६
खू	खु	प	से	२३५	तिल	खु	उ	से.	३२९
खेदू	भ्वा.	उ.	से	२८६	तिल्ल	अ म भ्वा	प	से	१६९
खेष्ट	"	आ	से	२०६	तीक	"	आ	से	१०९
तक	"	प.	से	१०२	तीर	खु	उ.	से	३५३
तकि	"	प	से	१०२	तीव	भ्वा.	प	से	१६८
तक	"	प.	से	२२०	तुज	"	प	से.	१२६
तक	"	प	से.	२९६	तुज शाक	म खु,	उ	से	३९७
तमि	"	प	से	१०३	तुजि	भ्वा	प	से	१२६
तट	"	प	से	१४०	तुजि	खु	उ	से	३९७

				पृष्ठ					पृष्ठ
तुजि	तु	उ.	से	३४०	तुप	तु	उ	से	३४३
तुट	तु	प	से	३३३	तुप	तु	प	से	३३२
तुड	तु	प.	से	३३४	तुफ ने मै म तु	प	से	से	३३२
तुड अ म	तु	प	से	३४१	(जि) तुष दि	प	से	से	१८५
तुडि	भ्या	आ	से	१३३	तुह	रु	प	से	३६५
तुडू	"	प	से	१४७	तुहू	तु	प	से	३३७
तुण	तु.	प	से	३२५	तुहू	तु	प	से	३३७
तुण्य	तु	उ	से	३५७	तु	भ्या	प	से	३४३
तुद	तु	उ	अ	३१०	तेज	"	प	से	१२७
तुम्प	भ्या	प	से	१५८	तेपु	"	आ	से	१४८
तुम्प	तु	प	से	३२३	तेपु	"	आ	से	१४८
तुम्फ	भ्या	प	से	१५८	तेवु	"	आ	से	१८३
तुम्फ	तु	प	से	३३३	त्यज	"	प	अ	३६२
तुप	भ्या	प	से	१५८	त्रकि	"	आ	से	१००
तुप	तु	प	से	३३३	त्रख सम्म म "	प	से	से	१०५
तुफ	भ्या	प	से	१५८	त्रदि	"	प	से	८५
तुफ	तु.	प	से	१२३	त्रपि भो म "	प	से	से	३५६
तुबि	तु	प	से	३२८	त्रपूष	"	आ	से	१४८
तुबि	भ्या.	प	से	१५८	त्रस	तु	उ	से	३३८
तुभ	"	आ	से	३३८	त्रसि	तु	उ.	से	३४०
तुभ	क्र्या.	प	से	३०४	त्रसि	दि	प	से	१३६
तुभ	दि.	प	से	१८७	तुट	तु	प	से	३३३
तुवर	तु	प	से	१२८	तुट	तु	आ	से	३३१
तुवी	भ्या.	प	से	१८८	तुम्प	भ्या	प	से	१५८
तुल	तु	प	से	३२०	तुम्फ	"	प	से	१५८
तुव	दि	प.	से	१६८	तुप	"	प	से	१५८
तुस	भ्या.	प	से	३२८	तुफ	"	प	से	१५८
तुहिर	"	प	से	३३५	त्रैड	"	आ	अ	३४२
तुण	तु	आ	से	३३१	त्रैऊ	"	आ	से	१००
तुरी	दि	आ	से	१५४	त्वतु	"	प	से	३१८
तुल	भ्या	प.	से	१८०	त्वगि	"	प	से	१०३
तुष	"	प	से	३२१	त्वगि	"	प	से	१०६
तुल	"	प	से	३२०	त्वच	तु	प	से	३१८
तुणु	त	उ	से	३७४	त्वचु	भ्या	प	से	११७
(उ) तुदिर	रु	उ	से	३६१	(जि) त्वरा	"	आ	से	३४७
तुम्फ	तु	प	से	३२२	त्विप	"	उ.	से	३७६
तुप	दि	प	से	१७३	त्सर	भ्या	प	से	१८३
तुप आने म भ्या	प	प	से	३०८	तुड	तु	प	से	३३४

माधवीयधातुवृत्तेः ।

पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ	पृ
-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	-------	----

११ कर्तुः स्वातन्त्र्योपपादनम् ।	भू	तु	आ	से	३४६
१२ कर्तुर्भेदनिरूपणम् ।	भूष	भ्वा	प	से	२२२
१२ कर्मभेदनिरूपणम् ।	भूष	तु	उ	से	३३६
१६ लिट्	भजि	भ्वा	आ	से	१११
१८ लुट्	भज	"	उ	अ	२६५
१८ लट्	(हु) भज्	लु	उ	अ	११३
१८ लोट्	भशि	लु	उ	से	३४१
२१ लङ्	भृशु	दि	प	से	१८४
२१ लिङ्	भृ	क्र्या	प	से	२६५
२३ लुङ्	भेषु	भ्वा	उ	से	२६१
२४ लृङ्	भास	"	आ	से	२१०
२४ अथात्मनेपदम् ।	भल	"	उ	से	२६२
२७ अथ भावकर्मणोर्लकारः ।	भया	"	प	से	१६६
३८ अथ कर्मकर्ता ।	भन्शु मै म	"	आ	से	२३६
३० अथ पुरुषास्त्रिशेषे विशेषविचारः ।	भन्शु	दि	प	से	१८४
३१ तिङन्ताप्रत्ययाः ।	भन्सु	भ्वा	आ	से	२३६
३२ तिङोन्त्ये लादेशाः ।	भमु	"	प.	से	२७२
३३ करणत्वनिरुक्तिः ।	भमु	दि.	प	से	१७८
३४ संप्रदानत्वनिरुक्तिः ।	भरज	तु	उ.	अ	२१२
३४ अपादानत्वनिरुक्तिः ।	भाज्	भ्वा	आ *	से	१११
३५ अधिकरणस्वरूप तत्त्वभेदाश्च ।	(हु) भाज्	"	आ	से.	२६१
३६ संबोधनपदार्थनिर्वचनम् ।	(हु) भाश्	"	आ.	से	२६१
३७ शत्रन्तात्स्त्रीप्रत्ययाः ।	भी	क्र्या	प	अ.	२६८
३८ नपुंसकप्रक्रिया ।	भूया	लु	आ	से	३३१
३८ अथ शानच् ।	भेषु	भ्वा	आ.	से	१११
४० अथ स्त्रियाम् ।	भेषु	"	उ	से	२६१
४० नपुंसकम् ।	(हु) भ्लाश्	"	आ	से	२६१
४१ अथ सनादयः ।	भ्लेषु	"	उ.	से	२६१
४२ सनन्तादात्मनेपदम् ।	मकि	"	आ	से.	६६
४३ भावकर्मणोः ।	मच मै म	"	प	से	२२०
४३ यङ् ।	मख	"	प	से	१०३
४४ यङ्लुक् ।	मखि	"	प.	से	१०३
४५ यङ्लुगन्तादात्मनेपदम् ।	मगि	"	प	से	१०३
४६ अथ सत् ।	मचि	"	आ	से	१०१
४६ णिच् ।	मचि	"	उ	से	१०७
४८ ययन्तात्कर्मणि ।	मच	"	आ	से	१०६
४८ अथ कृतः ।	मचि	"	आ	से	१०६
५७ अथोणादयः ।					

					पृष्ठ
११ कर्तुः स्वातन्त्र्योपपादनम् ।	भू	तु	आ	से	३४६
१२ कर्तुर्भेदनिरूपणम् ।	भूष	भ्वा	प	से	३२२
१३ कर्मभेदनिरूपणम् ।	भूष	तु	उ	से	३३६
१६ लिङ्	भजि	भ्वा	आ	से	१११
१८ लुङ्	भज्	"	उ	अ	२६५
१९ लृङ्	(हु) भज्	तु	उ	अ	११३
१९ लोट्	भशि	तु	उ	से	३४१
२१ लङ्	भृशु	दि	प	से	१८४
२१ लिङ्	भृ	क्र्या	प	से	२६५
२३ लृङ्	भेषु	भ्वा	उ	से	२६१
२४ लङ्	भास	"	आ	से	२१०
२४ अथात्मनेपदम् ।	भत्त	"	उ.	से	२६२
२७ अथ भावकर्मणोर्लकारः ।	भण	"	प	से	१६६
३८ अथ कर्मकर्ता ।	भन्शु मै म	"	आ	से	२३६
३० अथ पुरुषविशेषे विशेषविचारः ।	भन्शु	दि	प	से	१८४
३१ तिङन्तात्प्रत्ययाः ।	भन्तु	भ्वा	आ	से	२३६
३२ तिङोन्त्ये लादेशाः ।	भमु	"	प.	से	२७२
३३ करणात्वनिरुक्तिः ।	भमु	दि.	प	से	१७८
३४ संप्रदानात्वनिरुक्तिः ।	भस्ज	तु	उ	अ.	२१२
३४ अपादानात्वनिरुक्तिः ।	भाज्	भ्वा	आ	से	१११
३५ अधिकरणस्वरूपं तदभेदाच्च ।	(हु) भाज्	"	आ.	से.	२६१
३६ संबोधनप्रदार्थनिर्ध्वनम् ।	(हु) भाश	"	आ.	से	२६१
३७ शत्रन्तात्स्त्रीप्रत्ययाः ।	भी	क्र्या	प	अ.	२६८
३८ नपुंसकप्रक्रिया ।	भूण	तु	आ	से.	३३१
३९ अथ शानच् ।	भेज्	भ्वा	आ.	से	१११
४० अथ स्त्रियाम् ।	भेषु	"	उ	से	२६१
४० नपुंसकम् ।	(हु) भ्लाश	"	आ	से	२६१
४१ अथ सनादयः ।	भ्नेषु	"	उ.	से	२६१
४२ सनन्तादात्मनेपदम् ।	मकि	"	आ	से	६६
४३ भावकर्मणोः ।	मत्त मै म	"	प	से	२२०
४३ यङ् ।	मख	"	प	से	१०३
४४ यङ्लुक् ।	मखि	"	प.	से	१०३
४५ यङ्लुगन्तादात्मनेपदम् ।	मगि	"	प	से	१०३
४६ अथ सत् ।	मचि	"	आ	से	१०१
४६ णिच् ।	मचि	"	उ	से	१०७
४८ ययन्तात्कर्मणि ।	मच	"	आ	से	१०६
४८ अथ क्तः ।	मचि	"	आ	से	१०६
५७ अथोणादयः ।					

वेत्त	भ्या	प.	से	१६१	शप	दि.	उ	से	१५७
वेतीङ्	अ	आ	से	१०४	शब्द	सु	उ	से	३३५
वेष्ट	भ्या	आ	से	११	शमे	भ्या	प	से	२५७
वेष्ट	"	आ	से	२१४	शम	सु	आ	से	३३१
(भ्री) वै	"	प	अ.	३१२	शसु	दि	प	से	१७६
व्यच	तु	प	से	२१८	शम्ब मै म सु	प	प	अ	३१६
व्यथ	भ्या	आ	से	२४४	शर्क	भ्या	प	से	१५६
व्यध	दि	प.	से	१६७	शर्क	"	प	से	२०३
व्यय	भ्या	उ	से	२६०	शल	"	आ.	से	१८०
व्यय	सु	उ	से	३५६	शल	"	प	से	२६७
व्युप	दि	प	से	१३५	शलभ	"	आ	से	१५४
व्युष	दि	प	से	१८२	शव	"	प	से	२३०
व्युष	दि	उ	से	१८२	शश	"	प.	से	२३०
व्युस	दि	उ	से	१८२	शष	"	प	से	२२२
व्यज	भ्या	प	से	३८६	(आङः) शसि	"	आ.	से	२११
व्रज	सु	प	से	३२१	शसु	"	प	से	२३१
व्रज	भ्या.	प	से	१३०	शंसु	"	प.	से	२३१
व्रण	सु	उ	से	३५६	शाख	"	प	से	१०३
(भ्री) व्रश्च तु	"	प.	से	२१७	शाङ्	"	प	से	१३५
वी	क्या.	प.	से	२६८	शान	"	आ.	से	३७०
वीड	दि	प.	से	१३८	(आङः) शासु अ	उ.	से	३३	३३
वीङ्	दि	आ	अ	१४६	शासु	अ	आ.	से	१०३
वुड	तु	प	से	२३५	शिल	भ्या	अ	से	२०६
व्नी	क्या	प.	अ.	२६८	शिलि सं म	"	प	से	१०५
शक	दि	प	से	१६६	शिलि	"	प	से	१०७
शकि	भ्या	आ.	से	६८	शिलि	अ	उ	से	३८
शक्	स्वा	प.	अ	२०३	शिज्	स्वा	उ	अ	१६२
श्च	भ्या	आ.	से	१०८	शिट	भ्या	प	से	१३६
शट	"	प	से	१३६	शिल	तु	प	से	२३०
शठ	"	प	से	१४६	शिष्	भ्या	प.	अ	२२३
शठ	सु	उ	से	३१७	शिष	सु	उ	से	३४३
शठ	सु	आ	से	३३१	शिषल	क	प	से	२६३
शठ	सु	उ.	से	३४८	शीक	सु	उ	से	३४४
शठि	भ्या.	आ	से	१३४	शीक	सु	उ	से	३४१
शथ	"	प.	से	२५०	शीक	भ्या.	आ	से	६७
शक्त्	"	प	से	२७६	शीङ्	अ	आ.	से	४४
शक्त्	तु	प.	अ	२५१	शीभ	भ्या	आ	से	१५२
अप	भ्या.	उ.	अ	३७५	शील	"	प	से	१८६

सूचीपत्रम् ।

२५

				पृष्ठ					पृष्ठ
शील	वु	उ	से	३५०	श्रीकृ	"	आ	अ	३४९
शुच	भ्या	प	से	११२	श्रकि	भ्या	आ	से	६८
शुचिर्	दि	उ	से	१५६	श्रगि	"	प	से	१०३
शुच्य	भ्या	प	से	१८३	श्रण	"	प	से	२५०
शुठ	भ्या	प	से	१४६	श्रणु	वु	प	से	३१८
शुठ	वु	प	से	३८६	श्रथ	भ्या	प	से	२५९
शुठि	भ्या	प	से	१४७	श्रथ	वु	प	से	३५५
शुठिस्वा म	"	प	से	१४६	श्रथ	वु	उ	से	३५०
शुठि	वु	प	से	३८६	श्रथ	वु	प	से	३४४
शुध	दि	प	अ	१७१	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुन	तु	प	से	२८६	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुन्य	भ्या	प	से	६६	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुन्य	वु	उ	से	३४५	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	भ्या	प	से	१६०	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	तु	प.	से	२२४	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	भ्या	आ	से	२३८	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	"	प	से	१६०	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	तु	प	से	२२४	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	वु	प	से	३२२	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	वु	प	से	३२१	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	वि	प	से	१६८	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	वि	आ	से	३५२	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	वि	आ	से	१५४	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	वु.	प	से	३८१	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	भ्या	प.	से	१८६	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	"	प	से	२२१	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	"	आ.	से	२४१	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	"	उ	से	२८७	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	वु	उ	से	३३७	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	क्रया	प	से	२६३	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	भ्या	प	से	१६२	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	"	आ	से	१८३	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	"	प	अ	३११	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	दि.	प	अ	१४८	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	भ्या	प	से	१६८	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	"	प	से	१२६	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	"	प.	से	८४	श्रथि	भ्या	आ	से	८०
शुम्भ	"	प.	से	१८८	श्रथि	भ्या	आ	से	८०

अश्रम	कु	प	से	३२२	विध	भ्या	प	से	८६
अश्रत	कु	प	से	३२२	विधु	दि	प	से	१०१
अश्रल	भ्या	प	से	१६३	विधु	भ्या.	प	अ	८७
अश्रल्ल	कु	प	से	३१७	विष्मु	भ्या	प	से	१५६
अश्रल्ल	भ्या	प	से	१६३	विभु	भ्या	प	से	१५६
अश्रस	अ	प	से	१६६	विल	तु	प	से	२३०
(दुश्रा) अश्री भ्या	प	से	से	३६९	विषु	दि	प	से	१३२
अश्रिता	"	आ	से	२३७	वु	भ्या	प	अ	३३३
अश्रिदि	"	आ	से	७२	वु	अ	प	अ	५६
अशे	"	प	से	२५०	वुट्ट	कु	प	से	३१६
अशे	स्वा	प	से	२०६	वर	तु	प	से	२२६
अशे	भ्या	आ.	से	१०८	वुत्त	दि	प	से	१३६
अशे	"	उ	से	३७२	वु	तु.	प	से	२३६
अशे	"	प	से	१४९	वुङ्	अ	आ	से	४०
अशे	"	प	से	१७०	वुङ्	दि	आ	से	१४२
अशे	कु.	प	से	३२५	वुङ्	स्वा	उ	अ	१६०
अशे	त	उ	से	२७९	वुद	भ्या	आ	से	७७
(आशे) अशे कु	उ	से	से	३४५	वुद	कु	उ	से	३३५
अशे	भ्या	प	अ	२७७	वुम्मु	भ्या	प	से	१५६
अशे	तु.	प.	अ	२५०	वुम्मु	"	प	से	१५६
अशे	भ्या	प	अ	३६३	वेल क म	"	प	से	१६२
अशे	"	प	से	१५७	वेषु	"	आ	से	१८३
अशे	"	प	से	२६३	वै	"	प	अ	३१०
अशे	कु	प	से	३१६	वो	दि	प	अ	१४६
अशे	भ्या.	प	से	१३५	वक	भ्या	प	से	२४६
अशे	"	प	से	१५६	वगे	"	प	से	२५०
अशे	"	प.	से	२०३	वन	"	प.	से	१६६
अशे	"	प.	से	१६३	वभि	"	आ	से	१५२
अशे	"	प	से	११८	वम	"	प	से	२६३
अशे	अ	प	से	१०४	विव	स्वा	आ	से	२०६
अशे	भ्या	आ	से	२७४	विप	भ्या	आ.	से	१४८
अशे आशेयादिम दि प	से	से	से	१३६	विम	दि	प	से	१३८
अशे	कु	उ	से	३४६	वुत्त	भ्या	आ	से	११०
अशे	कु	प	से	३१७	वुत्त	अ	उ	अ	५६
अशे	तु	उ.	अ.	२५४	वुत्त	कु	प	से	३२६
अशे	स्वा.	उ	अ.	१६९	वुत्त	भ्या	आ.	से	१५५
अशे	आ	उ	अ	२८६	वुत्त	"	आ.	अ.	१४८
अशे	भ्या	प	से	१३६	वुत्त	भ्या	प	अ	३१२

सूचीपत्रम् ।

५७

प्ल	"	प	अ	३०८	सूक्ष्म	भ्वा	प	से	३२०
प्ल	"	प	अ	३१७	सूक्ष्म	"	प	से	३२५
प्लि	भ्वा	प	से	१६६	स	भ्वा	प	अ	३२६
प्लि	दि	प	से	१३४	स	तु	प	अ	१२६
प्लि	दि	प	से	१३४	सज	दि	आ	अ	१६६
प्लि	अ	प	अ	७७	सज	तु	प	अ	२४६
प्लि	दि	प	से	१५५	ससु	भ्वा	प	अ	३५२
प्लि	तु	प	से	३१७	सेक	"	आ	से	६८
प्लि	अ	प	अ	५२	स्कन्दि	"	प	अ	३५७
प्लि	दि	प	से	१३४	स्कभि	"	आ	से	१५२
प्लि	दि	प	से	१७५	स्कज	क्र्या	उ	अ	२८६
प्लि	स्वा म भ्वा	प	अ	३१२	स्कदि	भ्वा	आ	से	७९
प्लि	"	आ	से	३३८	सखद	"	आ	से	२४३
प्लि	मै म तु	प	से	३१८	सखदि	"	प	से	२५८
प्लि	भ्वा	आ	अ	३४८	सखल	"	प	से	१६२
प्लि	"	आ	से	७५	सखलि भो म	"	प	से	२५६
प्लि	तु	उ	से	३४२	सुज	"	प.	से	२३०
(जि) प्लि	अ	प	अ	६४	सुज	स्वा	उ	अ	१६५
प्लि	भ्वा	आ	से	१००	सुह	तु	प	से	२२७
(जि) प्लि	"	आ	से	२३७	सुज	क्र्या	उ	अ	१६५
(जि) प्लि	"	प	से	३४६	सन	तु	उ	से	३४६
प्लि	दि	प	अ	१७०	सन	तु	उ	से	३५२
सङ्केत	तु	उ	से	३५१	स्यै	भ्वा	प	अ	३०८
सङ्केत	तु	उ	से	३५५	स्योम	तु	उ	से	३५५
सज	तु	आ	से	३५२	स्यल	भ्वा	प	से	२६४
सभाज	तु	उ	से	३५०	स्युड*	तु	प.	से	२३४
समी कृ पा दि	प	प	से	१८३	स्युल	तु	आ.	से	३५२
सस्ति	अ	प	से	१०४	स्यध	भ्वा	आ	से	६०
साध	स्वा	प.	अ	२०३	स्यदि	"	आ	से	७३
साम	तु	उ	से	३५०	स्यश	"	उ	से	२६९
साम्बके म तु.	प	प	से	३५६	स्यश	तु	आ	से	३३०
सार	तु	उ	से	३५०	स्य	स्वा	प	अ	२०९
स्तिम	दि	प	से	१३८	स्यश	तु	प.	से	२४६
सुख	तु	उ	से	३५६	स्यह	तु	उ	से	३५०
सूच	तु	उ	से	३५०	स्फर एके म तु	तु	प	से	२३४
सूत्र	तु	उ	से	३५३	स्फायी	भ्वा	आ.	से	१७६

* अय टिपण्या दृष्टव्यः ।

				पृष्ठ					पृष्ठ
स्फिट पा	लु	प	से	३१६	हन	अ	प	अ	४
स्फिट	लु	प	से	३३५	हम्	भ्वा	प	से	१०१
स्फुट	भ्वा	आ	से	१३१	हय	"	प	से	१८६
स्फुट	लु	प	से	३३३	हर्ष	"	प	से	१८७
स्फुट	लु	उ	से		हल	"	प	से	२६४
स्फुटि स्वा का म भ्वा	प	से		१४५	हसे	"	प	से	२२६
स्फुटिर्	भ्वा	प	से	१४५	(ओ) हाक् लु	प	अ		११५
स्फुड	लु	प	से	३३५	(ओ) हाड लु	आ	अ		११५
स्फुडि	लु	प	से	३१३	हि	स्वा	प	अ	२००
स्फुर	लु	प	से	३३४	हिक	भ्वा	उ	से	२८३
स्फुर्छा	भ्वा	प	से	१३२	हिठ एके म	"	प	से	१४१
स्फुल	लु	प	से	३३४	हिडि	"	आ	से	१३२
(दुओ) स्फुर्जा भ्वा	प	से		१२८	हिल	लु	प	से	२१०
स्मिट	लु	प	से	३१८	हिवि	भ्वा	प	से	२०३
*स्मील	भ्वा	प	से	१८८	हिष्क क	लु	आ	से	३३०
सं	"	प	अ	३५२	हिसि	क	प	से	२६८
सं	"	प	अ	३२५	हिसि	लु	उ	से	३४५
सं एके म स्वा.	प	अ		२०१	हु	लु	प	अ	१०७
स्यन्तु	भ्वा	आ	से	३४१	हुडि	भ्वा	आ	से	१३४
स्यम	लु	आ.	से	३३१	हुडि	"	आ	से	१३२
स्यमु	भ्वा	प	से	२६१	हुडु	"	प	से	१४७
स्रक्	"	आ	से	६८	हुर्का	"	प	से	१२१
स्रम्	"	आ	से	३३६	हुल	"	प	से	२६७
स्रन्तु	"	आ	से	३३६	हुल्ल	"	प	से	१४७
सिबु	दि.	प	से	१३३	हु	लु	प	अ	१२६
सु	भ्वा.	प	अ	३३२	हुज्	भ्वा	उ	अ	२६६
स्रक्	"	आ.	से	६८	हुष	दि	प	से	१८६
स्वन	"	प	से	२६१	हुपु	भ्वा	प	से	२२७
स्वर	लु	उ	से	३४६	हेट क	अवा.	प	से	३०८
स्वर्त	भ्वा	आ	से	७५	हेठ	भ्वा	आ	से	१३२
स्वाद	"	आ.	से	७८	हेड	"	प	से	३४८
स्वाद एके म लु	उ	से		३४२	हेदु	"	आ	से	१३५
स्यु	भ्वा	प.	से	३२४	हेपु केचिन्म	"	आ	से	२०६
हट	"	प	से	१४१	हेदु	"	आ	से	१३५
हठ	"	प	से	१४६	हेदु	"	आ	से	१३५
हद	"	आ	अ	३४६	हेक	अ	आ	अ.	१०६

सूचीपत्रम् ।

२६

				पृष्ठ					पृष्ठ
कानन	भ्या	प	सं	२५२	कृगे	"	प.	सं.	२५०
कृगे	"	प	सं	२५०	कृप	सु	प	सं	३२८
कृस	"	प	सं.	३२८	कृस	भ्या.	प	सं	३२८
कृद	"	आ	सं	७८	कृदी	"	आ	सं	७८
कृी	सु	प.	अ.	११०	कृल	"	प	सं	३५३
कृीच्छ	भ्या	प	सं	१२१	कृ	"	प	अ	३२४
कृेव	"	आ	सं	३०८	कृञ्	"	उ	अ	३८७
कृगे	"	प	सं	३५१					

THE UNIVERSITY LL
RECEIVED ON
ABAD.



॥ श्रीकाशीविश्वेश्वरो जयति ॥
॥ श्री ६ मङ्गलशास्त्रिभ्यो गुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

माधवीयधातुवृत्तौ ।

भ्वादिः ।

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्त नमामि गजाननम् ॥ १ ॥
जीयाद्वृत्तिमुखो यस्य लीलयोर्ध्वाण्डखण्डने ।
कन्दाङ्गुरवदाभाति दन्ताय तद्वहिर्गतम् ॥ २ ॥
चिदानन्दकलां वाणीं वन्दे चन्द्रकलाधराम् ।
नैर्मल्यतारतम्येन बिम्बितां चित्रभित्तिम् ॥ ३ ॥
अस्ति श्रीसङ्गमत्स्यप. पृथ्वीतलपुरन्दरः ।
यत्कीर्तिमौक्तिकादर्शं त्रिलोक्या प्रतिबिम्ब्यते ॥ ४ ॥
यशः क्षीराहुतीकृत्य यत्प्रतापहुताशने* ।
परे यान्ति पदं दिव्य राजानो रणदीक्षिताः ॥ ५ ॥
तूर्णं कर्णान्तिकं प्राप्ते यत्प्रतापधनञ्जये ।
पुरो निधाय गाङ्गेयं स्वात्मा सरत्यते परैः ॥ ६ ॥
कुर्वन् शत्रुयशांसि धूमपटलो कूलङ्कषाज्यास्पदः
काष्ठासङ्गविर्वर्द्धितः प्रकटयन् भूति नवा भूयसीम् ।
आतन्वन्नितरप्रतापदहनं स्फूर्जत्स्फुलिङ्गाकृतिं
प्रायो यच्छति यत्प्रतापदहनः कस्मै न विस्मरताम् ॥ ७ ॥
तस्य मन्त्रिशिखारत्नमस्ति मायणसायणः ।
यः ख्यातिं रत्नगर्भेति यथार्थयति पार्थिवीम् ॥ ८ ॥

* धनञ्जये इति पाठान्तरम् ।

नित्योन्मीलितदानवारिरधिकं निर्धूतपङ्कजादयो
 दूरापास्तहरीशलङ्घनविधिर्भङ्गप्रसङ्गेऽङ्कितः ।
 त्साभृत्तोभङ्गतिक्षमः क्षणिकयन् दोषाकरात्पोषणा-
 मानन्दाय चकास्ति यस्त्रिजगतामाश्चर्यरत्नाकरः ॥ ९ ॥
 यत्कीर्तौ जाह्नवीस्फूर्तौ कीर्त्या विद्विषतामपि ।
 कलिन्दनन्दिनीकान्तिः स्पर्धुंयेव प्रपद्यते ॥ १० ॥
 येन निर्मायते नित्यं धनैरायो * धनैरपि ।
 श्रेयसे यशसे दानं त्रिदुषा विद्विषामपि ॥ ११ ॥
 न ध्यानं न व्रतं नार्चा न समाधिर्न वा जपः ।
 मन्त्रसिद्धा बलं यस्य मतिरेव महीयसी ॥ १२ ॥
 तेन मायणपुच्छेण सायणेन मनीषिणा ।
 आख्यया माधवीयेय धातुवृत्तिर्विरच्यते ॥ १३ ॥
 अस्याः पूर्वनिबन्धेभ्यो गुणवत्ता न कथ्यते ।
 सर्व एव स्ववाक्येषु यदाहुर्गुणगौरवम् ॥ १४ ॥
 सा च सत्यक्तमात्सर्यैर्गुणदृष्टैर्मनीषिभिः ।
 सूत्रवार्त्तिकभाष्याणामीदृशतां पारदृश्वभिः ॥ १५ ॥
 बल्ययन्तु खला दोषं किं तैर्यदयमुद्यमः ।
 मुनित्रयगिरामर्थमतत्त्वविदुषः प्रति ॥ १६ ॥
 भू सत्तायाम् ॥ वर्त्ततइति शेषः । सत्तेहात्मभरणम्† ।
 यदाह हरिः ।

आत्मानमात्मना बिभ्रदस्तीति व्यपदिश्यते ।

इति । हेलाराजश्च । अस्ति आत्मान बिभर्त्ति सत्तां भावयतीति
 यावदिति । कैयटकारोपि । आत्मभरणवचनो भवतिरिति । नैरुक्ताश्च ।
 अस्तीत्युत्पत्त्यात्मधारणमाचष्टइति ॥ उदात्तः ॥ नानुदात्त इत्यर्थः ।
 तेनै काच उपदेशे अनुदात्तादि'तीतिनषेधो न भवति । एवमुत्तरत्रापि ॥

* आत्मावधारणमिति एस्तकान्तरे ।

† धारणमिति षाठान्तरम् ।

परस्मैभाषा ॥ परस्मैपदोत्यर्थः । उपलक्षणमर्थनिर्देशः । हिमवतो गङ्गा प्रभवति, मल्लो मल्लाय प्रभवति, ग्रामस्य प्रभवति, परान् पराभवति, इदमेव सभवति, स्थाली तण्डुलान् संभवति, शमनुभवती, त्यादौ प्रकाशनाङ्गुलिः सरणपथ्याप्यैश्वर्याभिभवोत्प्रेजान्तर्भावनसवेदनादीनामवगमात् । न च मन्तव्यं प्रभूप्रभृतयस्समुदाया एवैतेष्वर्थेषु वर्तन्त इति । एव हीह भुवः क्रियावाचित्वाभावात्समुदायस्य च भूवादावपाठाच्च धातुत्वमिति तन्निबन्धनप्रत्ययाभावात् प्रभवतीत्यादि रूपं न स्यात् । किं चोपसर्गसबन्धमन्तरेण भूतिकामः पुत्रो भवति बहुर्व भवतो भ्रातृव्य इत्यादावैश्वर्यात्पत्तिलिप्सादयोऽवगम्यन्ते । न चोत्पत्तिः सत्ता, उत्पन्नस्यात्मधारणलक्षणमित्युक्तत्वात् । तथा च नैहकाः । जायते ऽस्ति विपरिणमते वर्तते ऽपकीयते विनश्यतीति क्रमेण षड् भावविकारानाहुः† । लोकेपि सत्ताजन्मनोर्भिन्नत्वादेव घटः किमुत्पद्यत इति पृष्ठो न कश्चिदप्यस्तीति प्रतिवक्ति । तथाचार्येणापि 'तत्र जात' स्तत्र भव' इति भेदेन‡ निर्दिश्यते, तस्माद्वातुरेवानेकार्थाभिधायी, प्रादयस्तु प्रकरणादिवद्विशेषस्मृतिहेतवो द्योतकाः । द्योतकापेक्षा च शब्दशक्तिस्वाभाव्यात् क्व चिदेव, यथा हरिशब्दो भेकादावेव । एवमुत्तरत्राय्यर्थनिर्देशोऽतन्त्रम् । यथा बीजसंताने व पेः पठितः केशान्वपतीत्यादौ ह्रस्वेनेपि वर्तते, तथा कटोर्भिन्नप्रादुर्भावे पठितो ऽस्मानभितः कुरु, पादौ कुरु, यः प्रथमः शकलः परापतेत्स स्वरुः कार्यः, चोरंकारमाक्रोशतीत्यादौ स्थापननिर्मलीकरणोपादानोच्चारणादौ वर्तते, चोरकारमित्यत्र चोरशब्दमुच्चार्येति§ ह्यर्थः न त्ववोरस्चोरः क्रियते । अर्थनिर्देशस्यापलक्षणत्व एव कुर्दं खुर्दं गुर्दं गुदं क्रीडायामेवेत्येवकारोपपत्तिः॥ । गाधु प्रतिष्ठालिप्सयोरित्यादौ त्वनेकार्थाभिधानं प्रपञ्चार्थम् । तदेव सत्स्वपि

* सामर्थ्येति पाठान्तरम् ।

† क्रमेणेत्यधिक्रमेकस्तिन्युस्तके ।

‡ निर्देशः कृत इति पुस्तकान्तरे ।

§ समुच्चार्येति पुस्तकान्तरे ।

॥ अत्राधारणोपपत्तिरिति पाठान्तरम् ।

बहुष्वर्थेषु माङ्गलिकत्वात् सप्रसिद्धत्वात्सर्वपदार्थव्यापित्वाच्च सत्तानि-
र्देशः कृतः । उक्तं च भाष्ये* 'न सत्तां पदार्थां व्यभिचरतीति । हरि-
णाप्युक्तम्

संबन्धिभेदात्सत्तैव भिद्यमाना गवादिषु ।

जातिरित्युच्यते तस्या सर्वं शब्दा व्यवस्थिताः ॥

ता प्रातिपदिकार्थे च धात्वर्थे च प्रचक्षते ।

इति । माङ्गलिकत्वमपि प्रसङ्गात् सत्ताव्यस्य परब्रह्मणः स्मरणेन ।
आदौ भुवो निर्देशो भूशब्दस्य महाव्याहृतिस्मरणेन माङ्गलिकत्वात् सर्वधा-
त्वर्थव्याप्यर्थाभिधायित्वात् 'भूवादयो धातव' इति प्रसङ्गात् भूवादिशब्दस्य
साधुत्वलाभहेतुत्वाच्च । कृभ्यस्तयो हि क्रियासामान्यवचनाः । सामान्य
च विशेषेषु प्रत्येकं परिसमाप्यते । आत्मभरणं च पाकादिष्वप्यस्तीति
भ्यस्तयोः क्रियासामान्यवाचित्वम् । उक्तं च कैयटे । तद्व्यात्मभरणं विरु-
द्धार्यसमवायैः पाकादिभिरविरुद्ध्यकार्यसमवायमिति । तेन यथा ब्राह्मणो
गार्ग्य इत्यत्र ब्राह्मण्य सामान्य गार्ग्यत्व विशेषस्तद्विहायात्मभरणं
सामान्य पाकादिकं तु विशेषः । करोतेरपि क्रियामामान्यमर्थः, ब्राह्मणो
गार्ग्य इतिवत् किं करोति पचतीति क्रियासामानाधिकरण्यदर्शनात्,
इत्थं च करोत्यर्थः प्रश्नः पचत्यादिभिर्व्याकृतो भवति । अत्यन्तभेदे तु
करोत्यर्थो न व्याकृतो भवेत्, यथा किं करोति देवदत्तो घट इति । कथं
तर्हि करोत्यर्थविशेषत्वे सर्वधात्वर्थानामासनमपि करणमिति किं करो-
तीति प्रश्ने न करोत्यास्तइति करोत्यर्थनिषेधेनोत्तर संगच्छते । उच्यते ।
नात्र क्रियासामान्यं पृच्छ्यते किं तु लोकप्रसिद्धो गमनागमनादिर्विशेषस्त-
त्रैव लौकिकानां क्रियात्वाभिमानात्, तेन तन्निषेधपूर्वकमास्त†इत्यत्र
युज्यते । यद्वा क्रियासामान्यस्यावश्य भावात् विशेषविषय एव प्रश्न इति
तद्विराकरणेन प्रतिवचनं बोद्धव्यम् । क्रिया च यद्वस्तु सिद्धमसिद्धं वा शब्देन
साध्यत्वेनाभिधीयमानमाश्रितक्रमं तदिति वैयाकरणानां मतम् । तदुक्तम् ।

* भाष्यकृतेति पुस्तकान्तरे ।

† इत्युत्तरं युज्यते इति पुस्तकान्तरे ।

यावत्सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाभिधीयते ।

आश्रितक्रमरूपत्वात्क्रियेति व्यपदिश्यते ॥

इति । नन्वेवं सति वितता बहवः क्षणा धातुवाच्या इत्युक्तं भवति, यथा पचतीत्यत्राधिश्रयणोदकासेचनतण्डुलावपनैधोपकर्षणादिः, ततश्चैषां बहुत्वेनैकत्वाभावात् कथमेकक्रियात्वेनैकधातुवाच्यत्व, न चास्ति समुदायभावः क्षणानां क्षणिकत्वेन युगपदसंनिधानात् । नैष दोषः । क्रमवता-
मेषां क्षणानामेकफलोद्देशेन प्रवृत्तानां सकलानां बुद्ध्या समापादितैक्यानां क्रियात्वव्यवहारात् । न च यदनन्तरं फलं निष्पद्यते तस्यैव फलसाधन-
त्वम्, एवं ह्यधिश्रयणादिवैयर्थ्यं स्यादिति तैरपि समीहितफलानुगुणैर्य-
थास्त्वं विशेष आधीयतएवेत्यवश्यं फलसाधनत्वमङ्गीकर्तव्यम्, एवं च
काल्पनिकः समुदायो धातुवाच्य इत्युक्तं भवति । तत्रावयवक्षणाः समुदाये
गुणभावमापन्ना इति न ते शब्दभेदं प्रयुज्जते । तदुक्तम् ।

गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम् ।

बुद्ध्या प्रकल्पिताभेदः क्रियेति व्यपदिश्यते ॥

इति । क्रमजन्मनामेषां क्षणानामभेद एकत्वे बुद्ध्या संकलनात्मिकया
प्रकल्पितः, स च समूहः स्वभावतो गुणभूतैरवयवैर्युक्त इत्यर्थः । गुणभू-
तैरवयवैरिति वचनमवयवानां शब्दभेद प्रति प्रयोजकत्व नेति प्रतिपा-
दनार्थम् । एवं समूहरूपायाः क्रियाया एकत्वादपूर्वापरीभावादक्रमत्वे
ऽप्यवयवक्रमाश्रयेण क्रमिकत्वव्यवहारः । उक्तं च ।

स चापूर्वापरीभूत एकत्वाद्यक्रमात्मकैः ।

पूर्वापराणां धर्मेण तदर्थनानुगम्यते ॥

इति । कथं तर्ह्येकैस्मिन् क्षणे धातोः प्रयोगः, पचतीत्यधिश्रयितर्यपि
वक्तारो भवन्ति । उच्यते । अधिश्रयणारम्भेव फलाभिसन्धेस्तत्रैव समुदा-
यस्यारोपात् । अयं च समाश्रितपूर्वापरीभाव एवारोप्यतइत्येकोऽपि
क्षणः क्रमिको भवति । अत एव क्षणान्तरे ऽनुष्ठायमाने ऽनुष्ठायमाने
चाध्यारोपितविहूपस्य क्षणस्यारोपादतीतत्वादपाक्षीदिति भूतकालता,
तथा तस्य, क्षणस्य भावित्वादितरेष्वभाविष्वपि पद्यतीति भविष्यत्का-

इति । अत्रापि मते व्यक्तिदर्शनवत्तादर्थ्यादन्यत्र पञ्चादिप्रयोगः ।
अथ बाधिश्रयणादिव्यापारविशिष्टेषु कारकेष्वधिश्रयणादिव्यापारेष्वन्यएव
व्यापारे समवेतोपहितभेदा सत्ता क्रिया । तदुक्तम् ।

स्वव्यापारविशिष्टानां सत्ता वा कर्तृकर्मणाम् ।

क्रिया व्यापारभेदेषु सत्ता वा समवायिनी ॥

अन्ते वात्मनि या सत्ता सा क्रिया कैश्चिदिष्यते ।

भाव एव हि धात्वर्थ इत्यवच्छिन्न आगमः ॥

इति । भाव एव हीत्यादिना षट् भावविकारा इति ह स्माह भगवान्
वार्थ्यायणिरिति भाष्यकारानुमतं निरुक्तकारवाक्यमस्य सवादकत्वेन दर्श-
यति । जातिसमुद्देशेष्युक्तम् ।

प्राक्क्रमविशेषा तु क्रिया सैवाभिधीयते ।

क्रमरूपस्य सहारे तत्सत्त्वमिति कथ्यते ॥

व्यापारविशेषाणां साध्यत्वात्क्रमिकत्वाच्च तदुपहितायाश्च ते भ-
वतः । अथ वा शब्दोच्चारणसमनन्तरं योर्थः प्रतिभासते बुद्ध्याकारत्वेन
स शब्दार्थः । तदुक्तं, बुद्धिप्रतिभासः शब्दार्थ इति । यदि हि बहिःसत्ता-
समाविष्टार्थार्थः स्यात् तदा पटोस्ति नास्तीत्यादौ पौनरुक्त्यविरोधो
स्यात्, तथा ऽसतो जन्मायोगाद् पटो जायतइत्यादिप्रयोगेनोपपन्नः स्या-
त् । किं च बहिरत्यन्तासत्सु शशविषाणादिषु तत्तच्छब्दप्रयोगो न स्यात्,
बुद्ध्युपाख्ये तु शब्दार्थत्वे दोषानावतरन्ति । बुद्धिसत्तासमाविष्टस्य बहिस्स-
त्ताऽसत्ताजननप्रतिपादनायास्ति नास्ति जायतइति प्रयोगस्योपपन्नत्वात् ।
अर्थक्रियाकारित्वं तु दृश्यविकल्पयोरभेदाध्यवसायादुपपद्यते शशविषा-
णादिष्वप्यस्तिप्रयोगो नास्तिप्रयोगश्च बुद्धिसत्तयैवास्ति न तु बाह्यसत्त-
येत्येवं प्रतिपादनाय, तस्माद्वातून ऽपि बुद्धिसिद्धाः क्षणास्तद्गता जातिः
सत्ता वार्थः सैव क्रिया । साध्यतादिकं वा भेदेनाध्यवसितं दृश्यक्षणद्व-
येण । उक्तं हि ।

बुद्धिं तज्जातिमन्ये तु बुद्धिसत्तामथापरे ।

प्रत्यस्तरूपां भावेषु क्रियेति प्रतिजानते ॥

इति । बुद्धिशब्देन बुद्धिप्रतिभास्याकारो ऽत्र विवक्षितः । तदेव भुवः क्रियावाचित्वात्पाठाच्च 'भूवादयो धातवः' इति धातुत्वे वर्त्तमाने लङिति वर्त्तमानत्वापाधिकार्योद्घातोर्लट् 'प्रत्ययः', 'परश्चे'तिप्रत्ययसंज्ञकः परस्तात् । ननु बहवः क्षणा धातुवाच्यास्तत्र के चन भूता भविष्यन्त इति तेषाम-विद्यमानत्वात् कथं वर्त्तमानत्व धात्वर्थविशेषणम्, उच्यते । नेह विद्यमान-त्व वर्त्तमानत्व किं तर्हिप्रारब्धापरिसमाप्तत्वं, तच्च यावतः क्षणसमूहस्य फलावधिप्रवृत्तिः तावतः प्राक् फलजननादभेदेनाध्यवसितस्यास्त्येव । एव च काल्पनिकसमूहाकारेण विद्यमानत्व वर्त्तमानत्वमित्युक्तं भवति ।

कार्योत्पत्तौ समर्थं वा स्वेन धर्मेण तत्तथा ।

आत्मतत्त्वेन गृह्येत सा चास्मिन्वर्त्तमानता ॥

इति । अस्यार्थः, वाशब्दे वक्ष्यमाणपक्षापेक्षः, एकैकक्षणानन्तरं फलनि-ष्पत्तेरदर्शनादितरक्षणवैयर्थ्यप्रसङ्गात्सर्वक्षणानन्तरदर्शनाच्चैकफलसाधन-त्वेन क्षणानां कल्पितमेकं समुदायरूपं कार्योत्पत्तौ समर्थमित्युच्यते, तत्त्वेन धर्मेण क्रमवत्त्वेन तथा युक्तमात्मतत्त्वेनात्मीयेन विद्यमानत्वेन गृह्यते सेयम-स्मिन्समुदाये वर्त्तमानतेति । वाशब्दसूचितः पक्ष उच्यते, विप्रसृतावयव-क्रियाकलापः प्रयोक्तुः संकलनाबुद्ध्यापाठः प्रतिपत्तुबुद्धौ संक्रान्तस्तस्या एक-त्वाद्वर्त्तमानत्वाच्च तदभेदेनैको वर्त्तमानश्च व्यपदिश्यतइति । उक्तं च

क्रियाप्रबन्धरूपं यत् बुद्ध्यात्मा विनिगृह्यते ।

सक्रान्तबिम्बमेकत्र तामाहुर्वर्त्तमानताम् ॥

इति । अयमर्थः । प्रयोक्तुः संकलनाबुद्धेरात्मा क्रियाप्रबन्धरूपं वस्तु एकत्र प्रतिपत्तुज्ञाने संक्रान्तबिम्ब सक्रान्तस्वरूपं यद्विनिगृह्यते ऽवधार्यते तस्मा-त्तस्य ज्ञानस्य वर्त्तमानतामेव तदभेदात् क्रियाया वर्त्तमानतामाहुरिति । ननु यथोपलब्धिः स्मरणमुपलब्धिश्च क्रमेणेति प्रयोक्तुः कथं संकलनात्मि-कैका बुद्धिर्यदुपारोहेणासौ प्रतिपत्तुः क्रियाकलापं शब्देन युगपदवगमयेत्, ततश्चैकबुद्ध्यापारोहाभावात्कथमेकत्ववर्त्तमानत्वे स्याताम्, नैष दोषः । अनु-भववासनायाः प्रत्यासन्नत्वात्क्रमेणानुभवतामपि संकलनायोगात् । अनुभ-वपूर्वत्वं हि स्मरणस्य नियतं न तु क्रमिकत्वमपि, अन्यथा समुच्चयशता-

द्विप्रत्ययाभावप्रसङ्गात् । नन्वेवमस्त्वस्येव बौद्धस्य * वर्तमानत्व कथं बाह्य-
स्येति चेन्न । दृश्यविकल्पयेः रयेदाध्यवसायात् । अन्ये तु काल एव क्रियाया
उत्पन्नध्वस्तत्वेन साधनसपत्त्या सभाव्यमानोदयत्वेन प्रारब्धापरिसमाप्त
त्वेन चोपहितः सन् क्रमेण भूतादिभेद प्रतिपद्यते, तत्कालयोगात्क्रियाया
अपि तत्तद्व्यपदेश इति । उक्तं च

क्रियोपाधिश्च सन् भूतभविष्यद्वर्तमानता ।

एकादशभिराकारैर्विभक्ता प्रतिपद्यते ॥

इति । काल इति शेषः । एकादशत्वमप्युक्तम् ।

भूतः पञ्चविधस्तत्र भविष्यच्च चतुर्विधः ।

वर्तमानो द्विधा ख्यात इत्येकादशकल्पना ॥

इति । तत्र तावदद्यतनानद्यतनव्यामिश्रसामान्यरूपाश्चत्वारो
मुख्यभूतभेदाः । सामान्यमपि विशेषेभ्यो व्यावृत्तेर्भेदः । उक्तं च । 'अनेकम-
न्यपदार्थे' इत्यत्र सामान्यमपि यथा विशेषस्तद्वदिति । परोक्षस्त्वनद्यतनभू-
तभेदो न तु भूतभेद इति न पृथगण्यते । 'आशंसाया भूतवच्च' इत्यतिदि-
ष्टभूतकार्यो भविष्यत्तथैको गौणो भूत इति भूतः पञ्चविधः । भविष्यत्तु
गौणभवाद्भूतनादिभेदेन चतुर्विधः । 'वर्तमानसामोय' इत्यतिदिष्टवर्त-
मानकार्यो भूतभविष्यन्तौ गौणौ, तत्रैवमेकादशभेदाः कालस्य, यद्यप्यन्ये
ऽप्यौपाधिकाभेदाः सन्ति तथापि शास्त्रप्रक्रियायामियन्त एवोपयुज्यन्त इ-
त्येवमुक्तं गतमदः । लटोकारटकारयोर्'रूपदेशे' जनुनासिक इत् 'हलन्त्यमि' ती-
त्सज्ञा । उपदेशो धातुसूत्रप्रातिपदिकप्रत्ययागमादेशलक्षणः । प्रतिज्ञानु-
नासिक्याः पाणिनीयाः । 'तस्य लोप' इति लोपः ॥ 'अदर्शनं लोपः' ॥
अदर्शनं चेह प्रसक्तस्य शब्दस्य लोपः, प्रयोजन लङित्यनुवादष्टिद्व्यपदेशश्चै-
षामन्येषामप्यनुबन्धानाम् । ननु 'शषसर्' 'हल्' इत्यत्र लकारस्येत्वे तेनादि-
रन्त्येन सहेतेति प्रत्याहारः, सति च तस्मिन् 'लणि' त्यत्र लकारस्य हलत्वा-
त्तस्यैव शषसर् 'हल्' इत्यत्रान्ते निर्देशादित्सज्ञा, तदाश्रयश्च हलिति प्रत्या-
हारः, इतीतरेतराश्रयत्वादयमेव तावत् प्रत्याहारो ऽनुपपन्नस्ततः सर्वपा-

* अस्त्येवं बौद्धस्येति पा० ।

मेव णकारादीनामित्त्व न स्यादिति सर्वप्रत्याहारव्यवहारो ऽनुपपन्न इति कथमत्राचत्वेन हलत्वेन चाकारटकारयोरित्त्वे, एव चादिरन्त्येनेति याहकसूत्रमपि व्यर्थं स्यादिति चेत् । नैष दोषः । हलितिसूत्रे* हकारा-
त्पर लकारः, लपरत्वं तु तस्यैकादेशलक्षणव्रतम् । तेन तस्याऽऽचत्वादित्वं भविष्यति, स एव च 'हलन्त्य'मित्यत्राप्येकादेशेन लपरेण निर्दिष्ट इति ।
एवमपीतरेतराश्रयमेव लकारस्य सत्यामित्सञ्ज्ञायां हलितिप्रत्याहारः, सत्य-
स्मिन्नैत्रौजिति चकारस्येत्त्व, तस्मिंश्च सत्यजितिप्रत्याहारः, अस्मिंश्च प्र-
त्याहारं सति लकारस्येत्सञ्ज्ञया भाव्यमिति । एवं तर्हि हल् च ल चेति
समाहारद्वन्द्वेन द्वितीयस्यापि लकारस्य निर्देशात् प्रत्याहारमन्तरेण तस्ये-
त्सञ्ज्ञासिद्धिः, अश्रयणन्तु मयोगान्तलोपेन । अथ वा श्वेतो धावतीत्या-
दाविव द्वितीयमप्यत्र हल्यहण तन्त्रेणोपादीयते, तत्रैकेन हस्य लिति
हकारसमीपस्य लकारस्य विनैव प्रत्याहारादित्सञ्ज्ञा भविष्यति । यद्वा
हस्य ल् हलिति तत्पुरुषस्य प्रत्याहारस्य च हल्शब्दस्यैकशेषे ऽर्थद्वय
लप्यत इति न संकटं किं चित् । तत्पुरुषः पुल्लिङ्गः प्रत्याहारस्तूभयलि-
ङ्गोप्यन्तमित्यनेन साहचर्यादिह नपुंसकलिङ्ग इति नपुंसकमनपुंसकेनेति
तस्यैकशेष एकत्व च ॥ 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' ॥ उत्सृष्टानु-
बन्धश्चायं लकारः, लकाराः सकर्मकेभ्यो धातुभ्यः कर्मणि कर्त्तरि च भवन्ति,
अकर्मकेभ्यस्तु भावे कर्त्तरि चेति यथायोग कर्त्तादौ भवन्ति ॥ 'स्वतन्त्रः
कर्त्ता' ॥ क्रियाप्रसिद्धौ यत्कारकं प्रधानभूतं विवक्षितं तत् कर्तृसञ्ज्ञं भवति ।
ननु च सामग्रीसाध्यायां क्रियाया स्वस्वव्यापारे सर्वेषां स्वातन्त्र्यात् कथ-
मेकस्य तत् । उच्यते । करणादिप्रवृत्तेः प्रागेव परत्मादर्धितं देरेव निमि-
त्तात्कर्तुः प्रवृत्तिः, करणादि तु तदधीनप्रवृत्तिनिवृत्तिः । तथाहि । अर्थो
हि कर्त्ता तत्पयुङ्क्ते न तदेनम् । किं च तस्य प्रतिनिधिर्दृश्यते, ग्रीह्यप-
चारे नीवारैरिज्यते, कर्तुं स नास्ति तद्वेदे क्रियान्तरमेवेति प्रसिद्धिः । किं
च कारकान्तरानुपादानेप्यसौ दृश्यते भवत्यादिषु, तस्माद्युक्तं स्वात-
न्त्र्यम् । तथा चोक्तम् ।

* हलिति सूत्रं लृकारान्तम् । इति पाठान्तरम् ।

प्रागन्यतः शक्तिलाभाद्यभावापादनादपि ।
 तदधीनप्रवृत्तित्वात् प्रवृत्तानां निवर्त्तनात् ॥
 अदृष्टत्वात्प्रतिनिधेः प्रविवेके च दर्शनात् ।
 आरादप्युपकारित्वात्स्वातन्त्र्य कर्तुरुच्यते ॥

इति । प्रागन्यतः शक्तिलाभादीनां शब्देन प्रतीतिमात्रस्य विवक्ष-
 णादचेतनेष्वपि तदनपायात् कर्तृतोपपत्तिः । उक्तं च ।

सर्वैरभ्युदितैः शब्दैर्नियमो न तु वस्तुनि ।
 कर्तृधर्मविवक्षायां शब्दात् कर्त्ता प्रतीयते ॥

इति । वृत्तौ तु स्वातन्त्र्येणागुणभावो विवक्ष्यतइति तस्य च सार्व-
 त्रिकत्वात्सर्वत्र कर्तृतोपपत्तिः ।

कर्त्ता च त्रिविधो ज्ञेयः कारकाणां प्रवर्त्तकः ।
 केवलो, हेतुकर्त्ता च कर्मकर्त्ता तथापरः ॥

इति । 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' ॥ कर्त्ता क्रियया यदाप्तुमिष्टतमं
 तत्कर्म ॥ 'तथा युक्तं चानीप्सितम्' ॥ येनैव प्रकारेणेप्सिततमं क्रियया युज्यते
 तेनैव प्रकारेण तथा युज्यमानमनीप्सितमपि कर्म ॥ 'अकथितं च' ॥ अपादा-
 नादिविशेषकयारहितं दुह्यादिकारकं गवादि च कर्म ॥ 'दिवः कर्म च' ॥
 दिवः साधकतमं करणं तत्कर्मत्यादि चतुर्विधं कर्मेप्सिततमानीप्सितत-
 माकथितसञ्ज्ञान्तरपूर्वभेदेन । तत्राद्यं त्रिधा, निर्वर्त्यं विकार्यं प्राप्यमिति ।
 द्वितीयमपि द्वेधा द्वेष्यमितरदिति । तदुक्तम् ।

निर्वर्त्यं च विकार्यं च प्राप्य चेति त्रिधा मतम् ।

तत्रेप्सिततमं कर्म चतुर्धान्युत् कल्पितम् ॥

औदासीन्येन यत्प्राप्यं यच्च कर्तुरनीप्सितम् ।

सञ्ज्ञान्तरैरनाख्यातं यच्च्चाप्यन्यपूर्वकम् ॥

इति । तत्र निर्वर्त्यं यस्योपादानकारणं नास्ति सदपि वा तत्परि-
 णामित्वेन नाश्रीयते, यथा सयोगं करोति, पटं करोति, मृदा घटं करोतीति ।
 विकार्यमपि द्वेधा । प्रकृत्युच्छेदसभूतमेकं, प्रकृत्यनुवृत्तौ गुणान्तरोत्पत्त्याप-
 लक्षितमपरम्, यथा काष्ठानि भस्म करोति, हिरण्यं कुण्डलं करोतीति ।

व्रीहीन्प्राक्ततीत्यादौ प्राक्तणादिजन्यादृष्टरूपेण विक्रियमाणा व्रीह्याद-
योपि विकार्यं कर्म । प्राप्य पुनरेकमेव, यत्र क्रियाकृतो विशेषो न गम्यते
यथा वेदमधीतइत्यादौ वेदादि । तथाचोक्तम् ।

सती या ऽविद्यमाना वा प्रकृतिः परिणामिनी ।

यस्य नाश्रीयते तस्य निर्वर्त्यत्व प्रचलते ॥

तन्निर्वर्त्यं विकार्यं तु द्विधा कर्म व्यवस्थितम् ।

प्रकृत्युच्छेदसंभूतं किं चित् काष्ठादिभस्मवत् ॥

किं चित् गुणान्तरोत्पत्त्या सुवर्णादिविकारवत् ।

क्रियाकृतविशेषाणां सिद्धिर्यत्र न गम्यते ॥

दर्शनादनुमानाद्वा तत्प्राप्यमिति कथ्यते ॥

इति । भावस्तु केवलो धात्वर्थः ॥ 'लस्य' ॥ 'तिप्तस्' भि सिप् यस्य मिब्वस्म-
स्ताताभ्यासाया ध्वमिद्वहिमहिङ्' ॥ 'तिबादयोऽष्टादश' 'षष्ठीस्थानयोगे' ति
लस्य स्थानेस्युः । स्थान प्रसङ्गो, योग, संबन्धः । इह शास्त्रे नियतसंबन्धविशेषा
षष्ठी स्थानयोगेत्यर्थः । तत्र तिबादिष्वविशेषेण प्राक्तेषु 'शेषात्कर्त्तरि परस्मै-
पद' मिति आत्मनेपदविषयान्यत्येन शेषादन्यस्मात्परस्मैपदमेव तच्च कर्त्त-
व्येव । आत्मनेपदविषयश्च स येषां 'मनुदात्तङित' इत्यादिनात्मनेपदं विहि-
तम् ॥ 'लः परस्मैपदम्' ॥ 'तडानावात्मनेपदम्' ॥ नङिति तिबादिसूत्रेणोपा-
त्तास्तादयो नव प्रत्याहारेणोच्यन्ते । आनइति शानच्कानचौ, अत्र यद्वापि
लः परस्मैपदमिति लादेशानां सामान्येन परस्मैपदसंज्ञोच्यते तथाप्याकडारा-
देका संज्ञेत्यतः परेषां 'कडाराः कर्मधारयद' त्यतः प्राचामेकस्यैकैव संज्ञेति नि-
यमात् तडानयोरः आत्मनेपदसंज्ञया ऽनवकाशया बाधिता सा तद्वृत्तिरिक्तविष-
या ऽवतिष्ठते ॥ 'युष्मद्व्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ॥ युष्मदि
समानाधिकरणे व्यवहिते वाक्यवहिते वा प्रयुज्यमाने स्थानिन्यप्रयुज्यमाने
वा लान्तार्थस्य युष्मदर्थविशेष्यत्वे एव मध्यमः ॥ 'अस्मद्व्युत्तमः' ॥ पूर्ववद्वा-
ख्या ॥ 'शेषे प्रथमः' ॥ यत्र युष्मदस्मदी समानाधिकरणेन सशेषस्तत्रैव प्रथमः ॥
'तिङ्स्त्रीणित्रीणि प्रथममध्यमोनमाः' ॥ तिङः परस्मैपदान्यात्मनेपदानि च
प्रत्येकं त्रीणित्रीणि पदानि भूत्वा यथासंख्यं प्रथमादिसंज्ञानि ॥ 'यथासंख्य-

मनुदेशः समानाम् ॥ स व्या क्रमः, अनुदेश पश्चादुच्चार्यमाणो विधीयमानः
 अनुदेशशब्दस्य संबन्धि शब्दत्वः दातिप्रा उद्वेशिनः, तेषामनुदेशिनां च सव्या-
 तः पाठतश्च समानाना यो यः क्रमस्तेन तेन क्रमेण सबन्ध इत्यर्थः । तत्राप्येवं
 व्यवस्था ॥ 'बहुषु बहुवचनम्' ॥ 'द्वेकयोर्द्विवचनैकवचने' ॥ बहुत्वादिषु
 यथासंख्य बहुवचनादीनि ॥ 'तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः' ।
 तानि लब्धप्रथमादिव्यपदेशानि त्रीणि त्रीणि प्रत्येकं यथासंख्यमेकवचनादि-
 सञ्ज्ञानि । एव तिब्रादियु ॥ 'कर्तरि शप्' ॥ कर्तृवाचिनि सार्वधातुके धातोः शप्
 स्यात् ॥ 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' ॥ प्रत्यय इति शेषः । शकारस्य ॥ 'लशक्त-
 द्विते' ॥ लशक्तर्गास्तद्वितर्जप्रत्ययाद्या इत इतीत्वा ज्ञेयः ॥ 'सार्वधातुका-
 र्द्वधातुकयोः' ॥ अनयोरिगन्ताङ्गस्याने गुणः ॥ 'आर्द्वधातुक शेषः' ॥ तिङ्-
 शिद्गोन्यो धातुसशब्देन विहितः प्रत्यय आर्द्वधातुकम् ॥ 'अदेङ्
 गुणः' ॥ अदेङौ मात्रिर्काद्विमात्रिकौ तद्वाचिनावतद्वाचिनौ च तौ च गुणौ ॥
 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' ॥ अण् चेदित्त्वं गृह्यमाणः सवर्णग्राहको
 भवति विधीयमानमण वर्जयित्वा, उदिच्छब्देन क्वादयः पञ्चाच्यन्ते ॥
 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' ॥ आस्य तात्त्वादि, तत्स्थः प्रयत्नो यस्य वर्णस्य
 येन तुल्यः स तं प्रति सवर्णः । अकुहविसर्जनीयाना कण्ठः । स्पृष्ट*
 करणं स्पर्शानामिति स्थानप्रयत्नसाम्यम् । क्वादयो मावसानाः स्पर्शाः ॥
 'तपरस्तत्कालस्य' ॥ तः परो यस्मात्स च तात्परश्च तपरः, स उदात्ता-
 दिभिश्च सवर्णमात्मना तुल्यकाल स्व च ग्राहयतीति भिन्नकालाग्रहः ।
 गुणविधौ चे को गुणवृद्धौ' इत्यनेन गुणवृद्धौ, स्वसञ्ज्ञया विधाने इक इत्यु-
 पस्थाप्यते । 'अङ्गस्ये'ति चाधिकृतम् ॥ 'यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्यये-
 ङ्गम्' ॥ यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि तच्च तस्मिन्नेव प्रत्ययेङ्गं, तत्रानयोः
 सामानाधिकरण्येनान्वयस्य न्याय्यत्वादिकोङ्गस्य विशेषणता । 'येन
 विधिस्तदन्तस्य' ॥ यद्विशेषणमुदादाय किं चिद्विधीयते तदात्मान्तस्य
 स्वस्य च ग्राहकमिति तदन्तत्वलाभः ॥ 'अलोन्त्यस्य' ॥ आदेशः षष्ठी-
 निर्दिष्टस्यान्त्यस्य भवति । अन्त्यस्यैवेति स्थानषष्ठी स्थ नित्व प्रतिपा-

* प्रयत्नमिति पाठान्तरम् ।

दयतीत्यन्त्यस्य स्यान्नित्वादिगन्ताङ्गान्त्यस्येत्युक्तार्थलाभः । स चेह गुणः
 'स्यानेऽन्तरतमः' ॥ अनेकादेशप्रसङ्गे सदृशतमः स्यात् स सदृशः गुणा-
 दिसदृशात् स्यानसदृश इति नियमादुकारस्योपपध्मानीयानामोष्ठाइ-
 त्योष्ठास्योद्गोतोः कण्ठाष्ठमिति ओष्ठ्य ओक्कारः । तस्यैचो ऽयवायाव'
 इति यथासख्येनावदेशे सिद्धं भवतीति । अस्य च 'सुप्तिङन्त पद'मिति
 पदत्वे 'युष्मदस्मदोः पठौवतुर्योः द्वितीयास्ययोर्दो वावा विति पदात्परयोर-
 पादादौ वर्त्तमानयोः समानवाक्यस्थयोः श्रूयमाणपट्यादिद्विवचनान्तयोरन-
 योर्यथासख्य वाक्वादेशौ भवतः । 'बहुवचनस्य वक्षसौ' ॥ 'तेमयावेकवच-
 नस्य' ॥ इमावादेशौ न द्वितीयैकवचनान्तयोः, 'त्वामौ द्वितीयाया' इति
 त्वामौर्विधानात् । एषामपि पूर्व्ववद्व्याख्या, भवति वाम्, भवति नौ, भवति वः,
 भवति नः, भवति ते, भवति मे, भवति त्वा, भवति मा, यथायोगं स्वं, देयं,
 प्राप्तमिति शेषः । एते चा नेकाल्त्वादनेकाल्शित्सर्वस्येति सर्वादेशाः । एषां
 च स्यानिवदादेशानत्विधाविति स्यान्त्यलाश्रयकार्यं वर्जयित्वा स्यानिकार्य-
 विधानात् पदत्वे तन्निबन्धनानि रुत्वादीनि यथायोगं ज्ञेयानि । भवतः । अत्र
 तसः सकारस्य प्रयोजनाभावादिस्वाभावः । न च लोप एव प्रयोजनम्, एव हि
 नेपदिश्येत, 'सिति चे'ति पदत्व यकाराजादयसर्वनामस्यानविषयमिति न
 प्रयोजनम् । यद्वा 'विभक्तिश्चे'ति सुपः तिङश्चैव वचनादिसंज्ञाः सन्तो विभ-
 क्तय इति 'न विभक्तौ तुस्मा' इतीत्वाभावेन ॥ 'ससजुषो रुः' ॥ सान्तस्य
 पदस्य सजुषश्च रुरिति रुत्वे 'खरप्रसानयोर्विसर्जनीय' इति विसर्जनीयः ॥
 'विरामो ऽवसानम्' ॥ विरतिर्विरामः, वर्णस्याभावो ऽनुच्चारणं, तत्र वर्ण-
 ष्वप्युच्चरितप्रध्वंसिषु बुद्धिभूत पौर्वापर्यमित्यभावरूपेवसानेपि तत्सभवात्
 परसप्तमीत्वापपत्तिर्भवति । भवन्ति ॥ 'भोक्तः' ॥ प्रत्ययादेरिति शेषः, अन्त्यो-
 कार उच्चारणार्थः, न तु तकारस्यानन्त्यत्वेनेत्वनिवृत्तये । तस्य प्रयोजना-
 भावादेव सिद्धेः । न च 'तित्स्वरित'मिति स्वरितत्व प्रयोजनं, तितः प्रत्यय-
 स्येति तत्र स्थितेः । न च स्यानिवत्त्वात्प्रत्ययः । तदेकदेशत्वादस्य । अत्र
 शब्दन्त्यकारयो रतो गुण इत्यपदान्ताकाराद्गुणे परे तयोः पूर्वपरयोः पररूप-
 मेकादेश इत्येकादेशं वर्णमात्राश्रयत्वेनान्तरङ्गं प्रकृतिप्रत्ययापेक्षत्वाद्बृहिर-

ङ्गोपि गुणो 'वर्णादाङ्गु बलीय' इति बाधते, अस्ति च समानाश्रयत्वम-
नयोरुभयोर्विकरणापेक्षत्वात् पूर्वं त्वेकादेशे 'ऽन्तादिवच्चे'त्येकादेश आश्री-
यमाणं पूर्वं प्रत्यन्तवत्परं प्रत्यादिवदिति 'सार्वधातुक्रमपिदि'त्यत्राश्रीयमा-
णस्य पितो ऽस्य सार्वधातुकस्यैकादेशस्यादिवद्वावाक्कपोपित्सार्वधातुक-
ग्रहणात् ङित्त्वात् कृति चेति किञ्चिन्मिन्नयोः रिभलक्षणयोर्गुणवृद्ध्यार्निषेधात्
गुणो न स्यात् । भवतु वा पूर्वमेकादेशस्तदाप्यदोषः । 'अचः परस्मिन्
पूर्वविधा' विति परनिमित्तोजादेशोऽचः पूर्वसबन्धिनि कार्यमात्रे कर्तव्ये
स्यानिना तुल्यः स्यादिति स्यानिबुद्ध्या व्यवधानेन निषेधप्राप्तत्वात् ।
किं च तत्रापिदित्यस्य प्रसज्यप्रतिषेधत्वेन सिद्धान्तितत्वात् पित्सार्वधा-
तुकं ङित्त्वेन्याश्रीयमाणं पित् प्रत्येकादेशम्यान्नवत्त्वात् ङित्त्वस्याप्रसङ्गात्,
अस्तु गुणैकादेशयोः प्रवृत्तौ कामचारः । भवसि । भवथः । भवथ ।
भवामि । भवावः । भवामः । 'अतो दीर्घो यजी'ति यजादौ सार्व-
धातुके ऽकारान्ताङ्गान्यस्य दीर्घः, स च स्यानितुल्य इति तादृश आकारः ।
'यस्मिन्विधिस्तदादावल्यग्रहण' इति यजादीति लाभः । 'ऊकालोऽङ्ग-
स्वदीर्घप्लुत' इत्येवो मात्रिऋद्धिमात्रिक्रिमात्राः क्रमेण ह्रस्वादिसञ्ज्ञाः ॥
'परोक्षे लिट्' भूतानद्यतनपरोक्षतोपाधिकार्यवृत्तेर्धातोर्लिट् ।
धातुवाच्याया. क्रियाया इन्द्रियेणासन्निकर्षान्परोक्षत्वे सिद्धे परोक्षग्रहणं सा-
धनपरोक्षतार्थम् । पूर्ववृत्तिबाधयः । ते च 'लिट् चे'ति लिङादेशत्वादावृद्धा-
तुकाः । अत्र च 'लङः शाकटायनस्यै'वेत्यत एवकारानुवृत्त्या न सार्वधातुका
इति विकरणाभावः । एषां च लिङादेशानां नवानां तिबादीना 'परस्मै-
पदानां णलतुसुस्यल्युसणत्वमा' इति यथासख्य णलादयः स्युः । ते च
स्यानिवत्त्वेनार्द्धधातुकाः प्रत्ययाश्च । णलो णकारस्य प्रत्ययादित्वाच्च
इत्संज्ञायां लोपः, प्रयोजनं वृद्ध्यादि, नन्वत्र णकारो लुप्यतइत्यने-
काल्त्वाभावाद'नेकाल्शित्सर्वस्ये'ति सर्वादेशत्वं न स्यात् । नैतत् ।
आदेशोत्तरकालं प्रत्ययत्वतदादित्वेन णकारस्येत्वे लोप इत्यादेशदशा-
यामनेकाल्त्वात्, एवं भू अ इति स्थिते 'अचो जिणती'ति जित्णित्-
प्रत्ययपरस्याजन्तस्याङ्गस्य वृद्धिः प्राप्नोति । वृद्धिरित्यादैवां तद्भावितानाम् ।

तद्भाविताना 'वृद्धिरादैजि'तिसंज्ञा, तपरकरणादैचौ द्विमात्रिकौ गृह्येते । तादपि परस्तपर इति । 'भुवो वुलुङ्लिटो रित्यजादौ लुङि लिटि च विधीयमानो वुक् कृताकृतपसङ्गित्वेन नित्यो वृद्धि बाधते । अत्र वृद्धौ कृतायामौकारान्तस्य प्राप्नोत्यन्यत्र तूकारान्तस्येति शब्दान्तरप्राप्त्या वुग-नित्य इति चेत्, न । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वान्न शब्दान्तरप्राप्तिरिति ॥ 'आद्यन्तौ टकितौ' ॥ यथासख्य षष्ठीनिर्दिष्टस्येति वुगय भुवोन्त्यः ॥ 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' ॥ धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्विर्वचनमजादेस्तु द्वितीयस्येति भुव आदिर्द्विरुच्यते ॥ 'पूर्वाभ्यासः' ॥ अत्र प्रकरणे, द्विरुक्तस्येति शेषः ॥ 'हलादि शेषः' ॥ अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अनादिस्तु निवर्त्ततदित्यर्थः ॥ 'ह्रस्व' इति अभ्यासस्याचो ह्रस्वः । 'भवतेर' इति लिटि परेऽभ्यासान्तस्याकारान्तादेशः । 'अभ्यासे चर्चेति अभ्यासफलं चरो जशश्च । तत्र वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शपसा विसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीया अघोषा विवृतकण्ठाः श्वासानुप्रदानाः । तृतीयचतुर्थपञ्चमहकारा घोषवन्तः संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना इत्योष्ठस्य घोषवतः संवृतकण्ठस्य नादानुप्रदानस्य भकारस्य तादृशो बकारः । बभूव । नन्व'चि' शुधातुभुवां य्वोरियडुवडा'वित्यजादौ प्रत्यये शुभुवोरन्त्यस्य धात्वन्तयोरिवर्णोवर्णयोरियडुवडाविविधानात् । अत्रोवङि कर्त्तव्ये 'ऽसिद्ववदत्राभात्' समानाश्रयमाभीयशास्त्रमाभीयेसिद्वमिति वुकोसिद्वत्वादुवङ् स्यात् । अस्तु पुनर्वुग् भविष्यति । ततश्च 'उपधायां च' । धातेरुपधाभूतौ हल्परौ यौ रेफवकारौ ताभ्यां पूर्वस्यैको दीर्घः स्यादिति दीर्घत्व 'लोपोव्योर्वली' ति पूर्वयकारवक्रायोर्वलि परे लोप इति पूर्वस्य वकारस्य लोपे सेत्स्यति, बभूवेति न सिद्ध्यति ॥ 'पूर्वात्रासिद्वम्' ॥ अस्माद्योगात् परे पूर्वात्रासिद्वः परे च मिथः पूर्वत्र पूर्वत्रासिद्व इत्युपधायां चेत्यस्य वलि लोपं प्रत्यसिद्वत्वात्पूर्वलोपे हल्पर उपधावकारो नेति दीर्घाप्रसङ्गात् । अथ वा दीर्घवलोपयोरन्तरङ्गयोः कर्त्तव्ययोरसिद्व बहिरङ्गमन्तरङ्गइति बहिरङ्गस्य वुकोसिद्वत्वाच्चैव दीर्घत्व स्यात् नापि वलोपः, एव तर्हि वुगुटावुवड्यणोः सिद्धौ वक्तव्याविति वुक्; सिद्वत्वादुवङ् न भविष्यति । 'शनसोरल्लोप' इति तपरकरणाल्लिङ्गादाभीयस्या-

सिद्धत्वस्यानित्यत्वाद्वात्र वृक्ः सिद्धत्व भवति । बभूवतुः । बभूवुः ।
 बभूविथ । 'आर्द्धधातुकस्येद्धलादे'रितिट्, टित्त्वात्तदादिः । बभूविषेत्यत्र
 वृद्धिवद्गुणो वृक् बाध्यते । बभूवथुः । स्थानिवत्त्वेन विभक्तित्वाच्च सका-
 रस्यत्वम् । यूय बभूव । नन्वत्राकारो 'ऽलान्त्यस्ये'ति यणञाकारस्यादेशः
 प्राप्नोति फलं च यथासख्य स्यात् । मैवम् । अत्र धातोरित्यनुवर्तते । तस्मा
 त्परस्य विधीयमानोऽकार 'आदेः परस्ये'ति यकारस्य । ततो द्वयोरकारयोः
 पररूपम् । अहं बभूव । बभूविव । बभूविम । उत्तमविषये चित्तव्याप्तेपात्
 परोक्षतासम्भवः । अत्रा'सयोगाल्लिट् कित्' ॥ असयोगान्ताद्वातोः परो
 ऽपिल्लिट् किदिति वमयोः कित्त्वे 'श्युकः किती'ति श्रित्र उगन्ताच्च धातोः
 परस्य कितो नेदिति प्राप्तस्य निषेधस्य 'ऋभृश्चस्तुदुसुशुबो'लिति' ॥ क्रादय
 एव लिट्यनिटः ततोऽन्ये लिटि सेट इति नियमात्सेटत्वम् । अत्र के चिदेवमा-
 नु । भुविधावोरित्यनुवृत्तेर्द्विगुणयोः कृतयोस्त्वर्णान्तत्वाभावात्तल्लक्षणस्य
 वृक्प्राप्तेस्तस्याप्यनित्यत्वात्परत्वात्प्राप्तयोर्गुणवृद्धौ'रितिभवतिभ्या च'
 आभ्यां परो लिट् किदिति कित्त्वेन बाधस्ततो वृक् । अत्र डिद्वयहणानु
 वृत्तेर्द्वित्वमप्यतिदिश्यते इत्युभयातिदेशमामर्श्यादनिगलत्तणाय अपि वृद्धे
 निषेधः । तेन यङ्लुकि भवतीति निर्देशात्कित्त्वाभावात् वृद्धिगुणयोः
 कृतयोरनुवर्णान्तत्वादुगभावाद्गोभाव, बोभविथ, बोभवेति सिद्धमिति ।
 सर्वमेतद्वार्तिकविस्तृतं, यदाह 'इन्धेश्छन्दोविषयत्वात् भुवो वृक्को नित्य-
 स्वात्ताभ्यां लिटः किट्चनानर्थक्य'मिति ॥

'अनद्यतने लुट्' ॥ अहर्भयतोर्द्वारात्रमद्यतनः कालः, अविद्य-
 मानाद्यतनभविष्यत्युपाधिकार्याद्वातोर्लुट् स्यात्, लस्य तिवादिषु 'स्य-
 तासी ल्लुटोः' ॥ ल इति लङ्लुटोरुत्सृष्टानुबन्धयोः सामान्येन ग्रह-
 णम्, ल्लुटोरादेशेषु परेषु धातोर्यथासख्य स्यतासी स्याताम् । अत्र के
 चित्तासेरिक्कारमुच्चारणार्थमाहुः । परमते त्वनुनासिकं सलोपप्रतिषेधा-
 र्थम् । इह तु प्रयोजनाभावाच्च प्रपञ्च्यते । 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' ॥ लुडा-
 देशस्यात्मनेपदप्रथमस्य परमस्मैपदप्रथमस्य च यथासख्य डारौरसः स्युः,
 'टे'रिति भस्याङ्गस्य टेर्द्विंति विधीयमानो लोपोत्राभत्वेपि द्वित्वसामर्श्या-

द्ववति । 'अवोन्त्यादि टि' ॥ एकत्र सचिविष्टानामचामन्त्याजादिष्टिः ।
 इङ्गुणावादेशः । भविता । अत्रेष्टः 'पुगन्तलघूपधस्य च' ॥ पुगन्त-
 स्याङ्गस्य लघूपधस्य चको गुण इति प्राप्तो गुणो 'दीधीवेवीटा'मिति
 निषिध्यते ॥ 'ह्रस्वं लघु' ॥ 'अलोन्त्यात्पूर्वं उपधा' ॥ धात्वादौ
 वर्णसमुदायेऽन्त्यादलः पूर्व उपधा । भवितारौ । भवितारः । 'रि चे'ति
 रेफादौ प्रत्यये तासस्त्योः सकारस्य लोपः । भवितासि । 'तासस्त्यो-
 लोपः' ॥ सकारस्य सकारादौ प्रत्ययइति शेषः । अत्र 'नाज्भला'वि-
 त्यञ्जलोर्मियः सावर्ण्यनिषेधे ऽपवादे प्रवृत्ते पञ्चात्तद्विषयपरिहारेण
 सवर्णसंज्ञाप्रवृत्तौ तदुपजीव्यप्रवर्त्तमानस्य ग्रहणकशास्त्रस्य 'नाज्भला'-
 वित्यत्रानिष्पन्नत्वाद्ग्रहणेन पठितानामेवात्र ग्रहणादन्येषां हल्भिः
 सवर्णसंज्ञाया अनिषेधादाकारस्य सवर्णेन हकारेण ग्रहणादिण्त्वा'दा-
 देशप्रत्यययो'रितीण्कोश्च परस्यादेशरूपस्य प्रत्ययावयवस्य च सका-
 रस्य विधीयमानं षत्व कस्मान्नेति चेत्, न, हकारो विवृतः, आकारो विवृ-
 ततरः, एवं हि पठन्ति । ए औ विवृततरौ ताभ्यामप्याकार इति । 'वयस्या-
 सु मूर्ध्नि' इत्यादिनिर्देशात् । यद्वा विवृतमूष्मणा स्वराणां चेत्यत्र इषत्सृष्ट-
 मन्तस्थानामित्यत ईषदित्यनुवर्त्तने, तच्च पृथग्विभक्तिनिर्दिष्टैः प्राथमिकै-
 रूष्मभिरेव सबध्यते न स्वरैरिति नैव सावर्ण्यप्रसङ्गः । अत एव भाष्यवार्त्ति-
 कयोः सूत्र प्रत्याख्यातम् । भवितास्यः । भवितास्य । भवितास्मि । भ-
 वितास्वः । भवितास्मः ॥

'लोट शेषे च' ॥ क्रियार्थक्रियोपपदादन्यो भविष्यत्कालः शेष-
 स्तत्र शेषे चात्क्रियार्थक्रियोपपदे भविष्यति च धातोर्लोट् स्यात् । चतु-
 विधो भविष्यदित्युक्त तत्रानद्यतने लुङ्निधानादन्यत्रायं विधिः । अनद्य-
 तनइति बहुव्रीहिनिर्देशाद्व्यामिश्रेण्यमेव । लस्य तिबादिषु 'स्यतासी'
 इति स्यः । इडागमः । भविष्यति । भविष्यसि । भविष्यामि । क्रियायां
 क्रियार्थायामुपपदे । धनी भविष्यामीति राजानं सेवते । 'आदेशप्रत्य-
 ययो'रिति सर्वत्र यः ॥

'लोट् च' ॥ विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लोट् स्यात् । ते च वक्ष्यन्ते ।

* तथा 'इतश्चे'ति दिल्लीदेशपरस्मैपदेकारस्य विधीयमानो लोपो लङ्बद्ध-
वाच भवति । मेने इत्यवचनादित्याधिकं २ पुस्तके ।

यद्वा लोट इत्युपमेये षष्ठीदर्शनादुपमानं षष्ठ्यन्तं विज्ञायते, लङ् इव कार्यं तल्लोटो भविष्यतीति न तु लङि यत्कार्यं तल्लोटीति अडाडौ न भवतः । यदायं लोडा'शिषि लिङ्लोटा'वित्याशिषि विधीयते, आशीरिष्टस्य प्राप्तस्तदा 'तुह्योन्ता'नडा'शिष्यन्यनरस्या मिति तुह्योर्जा तातडादेशः । भवतात्सः । भवतात्त्व, ननु तातडय'मनेकाल्शित्सर्वस्येत्यस्यापवादेन 'डिच्चे'त्यनेनान्यस्य कस्मान्न भवति । उच्यते । किमिदं डित्त्व ब्रूता-
दित्यादौ गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थमुतान्यादेशार्थमिति सदिग्धप्रयोजनम्, न चान्यादेशार्थत्वे गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थत्वसम्भयोऽप्रत्ययत्वात्, अनेकाल्त्वं तु निश्चितं, 'डिच्चे'त्येतच्चानडादिष्वनन्यप्रयोजनेषु डित्त्वेण सावकाशमिती-
हासदिग्धपर 'मनेकाल्शित्सर्वस्येत्येतत्प्रवर्त्तते । भवतात्त्वमित्यत्र तातडा-
परेण पूर्वं बाधितस्य हेर्लुङ्कः स्यानिवद्भावेन पुनः प्रवृत्तिः सङ्गद्वतपरिभाषया
न भवति । यद्वा 'हुक्लभ्यो हेर्द्वि'रित्यतो हेरित्यनुवर्त्त्या'तो हे'रित्यञ्च
हियहणमन्तरेण लुकि विधातव्ये पुनर्हियहणस्य हेरिति विशेषणेन मुख्य-
हियपरिग्रहार्थत्वात्, इदमपि तातडः सर्वादेशत्वे प्रमाणम् ॥

‘अनद्यतने लङ्’ ॥ अविद्यमानाद्यतनभूतोपोध्यर्थाद्वातोर्लङ्
स्यात् । लस्य तिबादिषु ‘इतश्चे’तीकारलोपः । ‘लुङ्लङ्लङ्लङ्लुदात्त’
इत्यङ्गस्याङ्विधिः टित्त्वादादिः, उदात्तश्च । अभवत् । अभवद् । ‘भलां
जशान्ते’ ॥ पदान्ते भलां जश इत्यत्रान्तरतम्यात्तकारस्य दकारे ऽव-
साने भला वा चरित्यान्तरतम्यात्तकारः । अभवताम् । ‘तस्यस्यमिपां
तान्तन्ताम’इति तसस्ताम् । अभवन् । अन्तादेशे इकारलोपे ‘संयो-
गान्तस्य लोपः’ । संयोगान्तस्य पदान्तस्य लोप इति तलोपः । ‘हलान-
न्तराः संयोगः’ ॥ अजव्यवहित एव श्लिष्टोच्चारितहल्समुदायः संयोगः ।
अभवः । इकारलोपे हत्वविसर्जनीयौ । अभवतम् । अभवत् । अभ-
वम् । अभवाव । अभवाम । ‘तस्यस्यमिपा तान्तन्तामः’ ‘नित्यं डित’-
इति तामादयः सलोपश्च ॥

‘विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्’ ॥ विधिः
प्रेरण भृत्यादेः कस्यां चित् क्रियाया नियोजनम् । निमन्त्रणं नित्यनै

निर्देशादेकेन सिचो विशेषणाच्छ्रूयमाणात्सिचः परस्येडुविधिरितीह न भवतीति । इदमविचारितरमणीयम् । अस्तीति पदान्तर्भूतस्यास्य सकारस्य पदान्तरेणान्वयायोगात् पृथक्पदत्वे तु न तस्य धातुत्व नापि तत्सहितस्य समुदायस्येति धातुविषयशित्त्वं निर्देश एव नोपपद्यते । अन्ये वर्णयन्ति आहिभुवोरीट्प्रतिषेध इत्यत्र न केवलमस्त्यादेशस्य भुवः स्थानिवत्त्वेन प्राप्त ईष् निषिध्यते किं त्वनादेशस्यापीति, स्थानिवत्त्वदूषणपरे च तत्र वार्तिके कथमनादेशो भूयैह्यतइति तएव प्रष्टव्याः । न चानादेशस्याग्रहणे निषेधस्य वैयर्थ्यं प्रमाणम् । अर्थभेदेन रूपद्वयार्थत्वात्तस्य । वयं तु परिहरामः । सिचोल्पावकत्वाद् बहुविषयत्वेनाभ्यर्हितत्वाच्च पूर्वनिपाते कर्तव्ये अस्तिसिच इति वचनात्तन्नादिना विद्यमानसिच इत्यस्याप्यर्थस्य लाभादिति । किं च अर्थद्वयपरिग्रहे शितवप्युपपद्यते ऽन्यथा सिजस्भ्यामित्येव ब्रूयात्, न चास्तीत्यस्यतिनिवृत्त्यर्थः, विकरणेन व्यवधानात् ताभ्या परस्य सार्वधातुकापृक्तस्यासम्भवात् । अभूताम् । अभूवन् । अजादौ 'भुवो वुगि'ति वुक् । अत्र भेः प्रत्ययलक्षणेन सिच परत्वेपि सिजभ्यस्तविदिभ्यः परस्य हिल्लादेशस्य केर्विधीयमानो जुस्भावो न भवति । 'आत' इति नियमात्, सिजनुगन्ताद्वादि भवत्यात एवेति, अभ्यस्त'मुभे अभ्यस्त'जित्वाद्यः षडि'ति वक्ष्यते । अभूः । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम् ॥

'लिङ्गिमित्ते लङ् क्रियातिपत्तौ' ॥ लिङो निमित्त हेतुहेतुमद्भावादि, कुतश्चिद्वैगुण्यात्क्रियाया अनभिनिवृत्तिः क्रियातिपत्तिः, अत्र धातोर्लङ् स्यात्, लस्य तिबादिषु स्यतासी इति स्यः । इडागमः, 'इतश्चे'त्यादि । यदि सेवापरोऽभविष्यत् आद्योऽभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम । क्रियातिपत्तिर्न सेवापरो नाप्याद्य इति ॥

अथात्मनेपदं प्रदर्श्यते ॥ 'कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे' ॥ कर्म क्रिया । अन्यस्यात्येन कारण परस्परकरणं च कर्मव्यतिहारः । अस्मिन् गम्यमाने आत्मनेपदं स्यात् इति लस्य तिबादिषु विकरणादिसाधारण पूर्ववदेव, 'टित आत्मनेपदानां टेरे' इति टिल्लादेशानामात्मनेपदानां टेरेत्व स्यात् ।

इदं चैत्वमाद्यन्तप्रयुक्तकार्यातिदेशात्केवलस्याप्यक्षिप्तसंज्ञाविधानाद्भवति ।
 व्यतिभवते । व्यतिभवेति । अत्रा'तो डित' इत्यदन्तादङ्गात्परस्य डित्त्ववयव-
 स्याकारस्येयादेश इति 'सार्वधातुकमपि'दिति डित्त्वम् । आताम आकार-
 स्येयादेशे वलि लोपः । नानर्थके ऽलेान्यविधिरिति टेरेत्वमत्रान्यस्य न भव-
 ति, ईदूदेट्टिवचन प्रगृह्य'मिति ईदाद्यन्तस्य ट्टिवचनस्य प्रगृह्यत्वात् 'पुनःप्रगृ-
 ह्या अची'ति प्रकृतिभावाद् व्यतिभवेति एतावित्यादावयादि न भवति ।
 इह प्रकृतिभावः परभूतनिमित्तविकाराभावस्तेन स्वरो भवत्येव । व्यतिभवन्ते,
 अत्र त्रीणि कार्याणि प्राप्नुवन्त्यन्तादेगेद्भावः शब्दिति । अत्र विशेषविहित-
 त्वेनान्तादेशापवादादद्वावाचित्यत्वाच्छेष, तत्र कृतेङ्गस्यादन्तत्वादद्वावस्य
 न प्राप्तिरिति सामान्यविहित एवान्तादेशः प्रवर्तते । व्यतिभवसे । 'थासः से'
 इति टिल्लादेशस्य थासः सेभावः । व्यतिभवेथे । भवेते इतिवत् । व्यति-
 भवध्वे । व्यतिभवे । व्यतिभववावहे । व्यतिभवामहे । एत्वात्परत्वा'दा-
 द्गुणः' । कृते वा तस्मि'न्नतो गुण'इति पररूपम् । व्यतिशब्दः कर्मव्यतिहार-
 द्यातनार्थः । तस्य 'ते प्राग्धातोः' ॥ ते गत्युपसर्गसंज्ञा धातोः प्राक् प्रयोक्तव्या
 इति नियमात् पूर्वप्रयोगः । 'उपसर्गाः क्रियायोगे' । 'गतिश्चे'ति प्रादयो यत्-
 क्रियायुक्तास्त प्रत्युपसर्गसंज्ञाः सन्तो गतयः । इतरेतरस्य व्यतिभवन्ति, अन्यो-
 न्यस्य व्यतिभवन्तीत्यत्रे'तरेतरान्योन्योपपदाच्चे'ति कर्मव्यतिहारलक्षणमा-
 त्मनेपदं निषिध्यते । 'अन्योन्योपपदाच्चे'ति चकारेण परस्परोपपदादपि
 न भवति । परस्परं व्यतिभवन्ति । व्यतिबभूवे । व्यतिबभूवाते ।
 व्यतिबभूविरे । व्यतिबभूविषे । व्यतिबभूवाथे । व्यतिबभूविद्वे ।
 व्यतिबभूविध्वे । व्यतिबभूवे । व्यतिबभूविवहे । व्यतिबभूविमहे ॥ 'लिट-
 स्तभ्योरेशिरेच्' ॥ लिटस्तभ्योरेशिरेचावादेशौ स्तः । एशः शकारो 'ऽनेका-
 ल्शि'दिति सर्वोदेशार्थः, 'विभाषेष्ट'इति इणः परो य इट् ततः परेषा षीध्य-
 लुङ्लिटा धकारस्य वा मूर्द्धन्य इति तद्विकल्पः । टेरेत्वमत्रादौ वुक् ।
 वलादौ क्तादिनियमादिट् । 'भवतेर'इत्यभ्यासव्यात्वम् । व्यतिभविता ।
 व्यतिभवितासे । 'थासः स'इति सेभावे 'तासस्त्या'रिति सलोपः । व्यतिभवि-
 ताध्वे । अत्र सकारस्य धकारादिप्रत्ययपरत्वा'ट्टि चे'ति लोपे धकारस्या'नचि

चे'ति अत्र उत्तरस्य यरो द्वित्वमचि नेति द्वित्वे 'भला जश् भशी'ति धका
 रस्यान्तरनम्याङ्कारः । येषा 'धि चे'ति सिचो लोप इति पतस्तेषामप्यत्र
 मकारस्यान्तरनम्याज्जशि दकारे चात्र रूपभेदः । व्यतिभविताहे । इट
 एत्वे 'ह एती'ति सकारस्य हकार, व्यतिभवितास्वहे । व्यतिभविष्यते ।
 इत्यादिपूर्ववत् । व्यतिभवताम् । व्यतिभवेताम् । व्यतिभवन्ताम् ।
 व्यतिभवस्व । व्यतिभवेयाम् । व्यतिभवध्वम् । व्यतिभवै । व्यतिभववावहै ।
 व्यतिभवामहै ॥ टेरत्व'मातो ङित' इत्यादि पूर्ववत् । 'आमेत'इति
 नोडादेशानामेकारस्यामादेशः । सध्वेशब्दयोस्तु 'सवाभ्या वामा'विति
 यथासत्य वामादेशावपवादौ । उत्तमेकारस्यैत्वे 'एत ऐ' इत्येकारः । अय-
 मयामादेशापवादः । अत्राडागमे हुने तस्य तत्परस्य चैकारस्य ॥ 'आटश्च' ॥
 आटोचि परे पूर्वपरयोरेका वृद्धिरैकारः । तस्य शबकारस्य च 'वृद्धिरैचि' ॥
 अत्रणादेचि परे पूर्वपरयोरेका वृद्धिरित्येकारः । व्यत्यभवत । व्यत्यभवेताम् ।
 व्यत्यभवन्त । व्यत्यभवथाः । व्यत्यभवेयाम् । व्यत्यभवध्वम् । व्यत्यभवे ।
 व्यत्यभववावहि । व्यत्यभवामहि । व्यतिभवेत । व्यतिभवेयाताम् ।
 व्यतिभवेरन् । व्यतिभवेयाः । व्यतिभवेयायाम् । व्यतिभवेध्वम् । व्यति-
 भवेय । व्यतिभवेवहि । व्यतिभवेमहि । 'लिङः सीयुङि'ति लिङादेशस्य
 सीयुङित्वादादि । 'मुट् तिथोः' । लिङः सलोपः । 'आद्रुणः' । वलि लोपः ।
 भस्य रञि ति लिङो भस्य रञित्यादेशः, 'न विभक्तावि'ति नेचकारः ।
 'इटो'द'ति लिङादेशस्येटोदादेश । तकार उच्चारणार्थो नादेशावयवः ।
 यद्वादेशावयवत्वेपी'दमस्यमु'रिनि यमुप्रत्ययस्य 'प्रातिदेशो विभक्ति'रित्यतः
 परे दिक्शब्देभ्य इत्यतः पूर्व प्रत्यया विभक्तय इति विभक्तित्वे तत्स्थत्वेन
 मकारस्येत्सञ्ज्ञानिपेधे मिद्वे तत्परिचाराणां योकारासञ्ज्ञनेन 'न विभक्ता'वित्य-
 स्यान्नित्यत्वज्ञापनादित्य लभ्यते । आशिषि । व्यतिभविषीष्ट । व्यतिभ-
 विषीयास्ताम् । व्यतिभविषीरन् । व्यतिभविषीष्ठाः । व्यतिभविषीयास्याम्
 व्यतिभविषीक्षुम् । व्यतिभविषीध्वम् । व्यतिभविषीय । व्यतिभविषीवहि ।
 व्यतिभविषीमहि । आर्द्धधातुकत्वाद्देषु लिङः सलोपाभावः । अत्र सीयुट्
 यदागमास्तद्गुह्येन गृह्यन्ते इति प्रत्ययशब्देन गृह्यन्ते, तथा तदवयवभक्त

सुडपि तत्समुदायभक्तइति द्वयोरपि सकारयोः प्रत्ययावप्रवत्वा 'दादेशप्रत्य-
ययो'रिति पत्वम् । यथा हि 'शीडो रुडि'ति प्रत्ययावयवभकारादेशस्या-
तोपि रुट् समुदायभक्तत्वेन सार्वधातुकग्रहणेन गृह्यतइति शेरतइत्यत्र 'शीडः
सार्वधातुक'इति गुणः प्रवर्तते । 'ष्टुना ष्टु' ॥ षकारटवर्गाभ्या युक्तयोः सकार-
तवर्गयोर्ग्रथासख्यं ष्टुरिति तकारथकारयोः षकारठकारौ । निमित्तिनिमित्त-
योर्ग्रथासख्यतोः षी'ति षकारे परे तवर्गस्य ष्टुत्वनिषेधाच्च भवति । 'विभा-
षेट'इति मूर्द्धन्यविकल्पः । व्यत्यभविष्ट । व्यत्यभविषाताम् । व्यत्यभविषत ।
व्यत्यभविष्टाः । व्यत्यभविषाशाम् । व्यत्यभविष्वम् । व्यत्यभविषि । व्यत्यभ-
विष्वहि । व्यत्यभविष्वहि । सिचीङ्गुणावादेशप्रवत्त्वानि यथायोगे ष्टुत्वं च ।
'आत्मनेपदेष्वनत'इति भक्त्याद्भावः । तकारस्य प्रयोजनाभावाच्चेत्वम्, ध्वमि-
षत्वस्य पूर्वत्रासिद्धत्वात् 'धि चे'ति सलोपे गुणः । इट्, इणः परत्वा 'द्वि-
भाषेट' इति मूर्द्धन्यविकल्प उदाहार्यः । व्यत्यभविष्यत । इत्यादि लङ्बत् ॥

अथ भावकर्मणोर्लकाराः प्रदर्श्यन्ते ॥ तत्र भावकर्मणोरित्यनयो-
लस्यात्मनेपदमेव । 'सार्वधातुके यगि'ति भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके
लटि लोटि लङि विध्यादिलङि च यक् । अन्यत्र सार्वधातुके स्यादिभि-
रस्य बाधः, लिङाशीर्लिङोस्त्वाद्विधातुकत्वाच्च प्रसङ्गः । यक्ः कित्वाच्च
गुणः । भूयते । भूयताम् । अभूयत । भूयेत भवता । अत्र प्रत्ययेन कर्तुरनभि-
धानात्तृतीया । 'कर्तृकरणयोस्तृतीये नि तिङ्कृतद्वितीयमासौ नभिहितयोर-
नयोस्तृतीयोच्यते । तत्र भावस्य युष्मदस्मदयोर्विशेष्यत्वात्प्रथमपुरुष एवात्र
व्याख्यायते, स्वतः क्रियाया निवृत्तभेदाया अभिधानादेकवचनमेव भवति,
भवद्भ्या, भवद्भिः, त्वया युवाभ्या युष्माभिः, मया आवाभ्यामस्माभिर्भूयत-
इति । भवन्तीत्यादौ तु प्रत्ययेन कर्तुरभिधानात् तत्कृत बहुत्वम् । भूयते
मासः । 'कालभावाध्यगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणा देशश्चाकर्मणा'मिति
मासादयो ऽकर्मकाणां कर्माणि । तत्र कर्मणोऽभिधानात् कर्मणि द्वितीया न
भवति, सा च तिङादिभिरनभिहिते विधीयते । भूयते भवता मासमित्यत्र
भावे लविधानात् कर्मणो ऽनभिधानाद् द्वितीया । ननु सकर्मकत्वात्कथं भावे
लकारः । उच्यते । कालादिभिर्न कश्चिदप्यकर्मक इति तद्व्यतिरिक्तेन कर्मणा

ऽकर्मकाणां भावे लविज्ञानात्, कथं तर्हि मासे लो, ऽकर्मकाणां भावकर्त्राल-
 क्षिप्तेः । उच्यते, एवंविधाना भावकर्मकर्तृषु लविज्ञानात् । तथोक्तं काला-
 ध्वनोरित्यत्र मासादौ कर्मणि भावे च लकारं प्रस्तुत्य प्राकृतमेवैतत्कर्म यथा
 कटं करोतीति, पुनश्च तत्र यदि प्राकृतमेवैतत्कर्म अकर्मकाणां भावे लो भव-
 तीति भावे लो न प्राप्नोतीति चोदयित्वा ऽकर्मकाणामित्युच्यते, न च के
 चित्कालभावादिभिरकर्मकास्तत एव विज्ञास्यामः क्व चिद्रेऽकर्मका इति ।
 अथ वा येन कर्मणा सकर्मकाश्चाकर्मकाश्च भवन्ति तेनाकर्मकाणां न
 ज्ञेनेन कर्मणा कश्चिदप्यकर्मकः । अथ वा यत्कर्म भवति न च भवति
 तेनाकर्मकाणां न चैतत्कर्म क्व चिदपि न भवतीति । अनुभूयते सुख-
 मित्यादौ सवेदनादर्थत्वाद् भुवः संवेद्यादिभिरपि सकर्मकत्वात्कर्मण्येव
 लः । भूयेते भूयन्ते इत्याद्युदाहार्यम् । तथा, भूयताम् । अभूयत । भूयेत ।
 मास इत्यादि च । लिटि न विशेषः । अत्र के चिदाहुः । 'भव-
 तेर' इत्यत्वं श्रितपा निर्देशात् भावकर्मणोर्नेति । अयमस्यार्थस्य कथं
 प्रतिपादक इति स एव प्रष्टव्यः । तस्य तु प्रयोजनं यङ्लुकि
 मन्त्रविषये आमभावे लिट्परत्वे सत्यत्वनिवृत्तिः । भविता । भाविता ।
 'स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेज्जनयहृदृशा वा चिण्वदिट्
 चेत्यजन्तानां हनादीनां च धातूनामार्द्धधातुकेषु भावकर्मविषयेषु
 स्यादिषु वा चिणीव कार्यमिट् चेत्याभधानात् चिण्वत्पक्षे वृद्धिः ॥
 इहेद्विधानमनिङर्थं एयन्तार्थं च । स्यसिजादीनामार्द्धधातुक्त्वस्याप्यभिचा-
 रीति तेन विशेषणं सीयुडर्थम् । तेन सार्वधातुके विध्यादिलिटि सीयुटि
 चिण्वत्त्वस्याभावः । एवं स्यसिच्सीयुड्विषये द्वैरूप्यमुदाहार्यम् । भवि-
 ष्यते । भाविष्यते । अभविष्यत । अभविष्यत । अभवि । अभविषा-
 ताम् । भविषीष्टु । भविषीष्टेत्यादि । लुङ्लिटोर्ध्वमि चिण्वत्पक्षे 'विभा-
 षेड' इति मूर्धन्यविकल्पनाच्छातूरूप्यं नेयम् । लुङि तशब्दे 'चिण् भावकर्म-
 णो' रिति चिण्विधानात् त्वेश्विण् । ततः 'चिणो लुगि' ति तशब्दस्य लुक्
 अथ कर्मकर्त्ताच्यते ॥ 'कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः' ॥ 'कर्त्तरि शवि' त्यतः
 कर्तृग्रहणमनुवृत्तं प्रथमान्तमिह विपरिणम्यते । इह कर्म न पारिभाषिकं

तेनात्यन्तविलक्षणेन क्रियायाः सादृश्यायोगात् । नापि क्रियामात्रं यथा कथं चन क्रियया क्रियायाः सादृश्याव्यभिचारात् । अतः कर्मह तत्स्या क्रिया, अनया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मणा तुल्यस्तत्कार्याणि लभतइत्यर्थः । तानि च यगात्मनेपदचिण्चिण् द्वावाः । एकस्मिश्च प्रयोगे कर्मणा तुल्य- क्रियस्य कर्तुरसम्भवात् कर्मत्वकर्तृत्वे प्रयोगभेदेन ज्ञेये । यद्येवं षट् भायतीवत्यत्र कर्मस्या क्रियोत्पत्तिरस्ति तथा तुल्यक्रियत्व षटो भवतीत्यत्र कर्तुरिति यगादि कस्माच्च भवति । अर्थस्वभावादेवास्य योगस्य धातुवि- षयत्वे सिद्धे धातोरित्यनुवृत्तिसामर्थ्याद्विभक्तिविपरिणामेन सप्तम्यन्त विवक्षितैकत्वं विज्ञायतइत्येकस्मिन् धातौ कर्मणा तुल्यक्रियस्य कर्तुः कर्मव- द्वावाद्, इह तु धातुर्भेदयते । एव च कर्मव्यापारोपसर्जनेकर्तृव्यापारार्थो धातु- र्यत्र सौकर्यातिशयप्रतिपादनाय कर्मव्यापारमात्रे वर्तते सोऽस्य विषयः संपन्नः । ततश्च शत्रुमभिभवतीत्यत्र न्यग्भवनोपसर्जने न्यग्भावेन वृत्तो भवतिर्यदा न्यग्भवनमात्रे वर्तते तदाभिभूयते शत्रुः स्वयमेवेति यगात्मनेपदे भवतः । नन्वत्र कर्मस्या क्रिया न्यग्भवन सैव कर्तृस्थापीति क्रियाभेदाभावात् कथ- भेदनिबन्धन सादृश्यमिति चेन्न । कर्मकर्तृवस्याभेदेन भिन्नकारकत्वेन भेदो- पपत्तेः । नन्वत्रातिदेशेन यगादिवद् द्वितीया कस्माच्च भवति । न चा 'न- भिहित' इति निषेधोऽस्य कार्यातिदेशत्वाद् अत्र च तदधिकाराभावात् । उच्यते । 'व्यत्ययो बहुलं' 'लिङ्याशिष्य' इति सहितया सूत्रपाठाद् द्विल- कारको निर्देशः, तत्रैकं लयहणमनुवर्तते तच्चेह षष्ठ्यन्त सत् तदन्तत्वं प्रयो- जयति, कार्यप्रतीतिश्चाध्याहृतइति लान्तकार्यविषयत्वादतिदेशस्य द्वि- तीयायास्तथाभावादप्रसङ्गः । एवं च कर्माश्रयाः कृत्यादयोऽपि न भवन्ति । नन्वभिभूयमानो देवदत्तो यज्ञदत्तमभिभवतीत्यत्रापि कर्मवद्वावः प्रा- प्नाति, अत्र हि यज्ञदत्ते कर्मणि दृष्टो न्यग्भाव इतरस्मिन् देव- दत्ते च कर्तरि दृश्यते यदसौ न्यग् भवन् न्यग् भाषयति, नैष दोषः । इह कर्मणा तुल्यक्रिय इति कर्मस्यया क्रियया तुल्यायाः प्रसङ्गात्कर्तृश्च क्रिया- पेक्षत्वात् प्रत्यासत्त्या तदपेक्षयैव कर्तुः कर्मवद्भावविज्ञानात् । इह च न्यग्भवनं न कर्तृत्वउपयुज्यते किं तु न्यग्भावनमेव, अन्यभवनतौपि

न्यभावेन कर्तृत्वमभवात् । वत्करणात्स्वाश्रयाकर्मकत्वनिवन्धनो भावे
लकारेऽपि भवति । अभिभूयते शत्रुणा स्वेनैवेति, तेन शत्रोस्तृतीया
भवति । सर्वत्र कर्मवदुदाहरणानि । लुङि तशब्दे तु 'अवः कर्मकर्तरी'ति
चिणादेशविकल्पनात् पक्षे मित्र, तस्य पूर्ववच्चिण्वदिट् तत्पक्षे वृद्धौ
अभ्यभावि । अभ्यभाविष्ट । अभ्यभविष्टेति चैरूप्यम् । स्वाश्रयभावे
लकारे 'चिण् भावकर्मणो'रिति चिण्वेव । अभ्यभावि शत्रुणा स्वेनैवेति ।

अथ पुरुषविषये किं चिद् विचार्यते ॥ युष्मदस्मदन्येषु सहविवक्षि-
तेषु 'न्यदादीनि सर्वनिर्णयम्' । अन्यैस्सहवचने त्यदादीनि शिष्यन्ते मिथस्तु
पराणीति शिष्यमाणाभ्यां युष्मदस्मद्भ्यामशिष्यमाणार्थाभिधानेऽपि स्वा-
र्थापेक्षौ मध्यमोत्तमावेव भवतः । न तु शिष्यमाणाशिष्यमाणरूपस्यार्थस्य
युष्मदस्मदर्थान्यत्वेन शेषत्वप्रथमः, यत्र युष्मदस्मदी समानाधिकरणे
न स्तः स शेष इत्युक्तत्वात् । तेन देवदत्तश्च त्व च युवां भवथः, देवदत्तश्च
स च त्व च यूय भवथः, देवदत्तश्चाह च आवा भवावः । देवदत्तश्च स
चाह च त्रय भवाम इति । युष्मदस्मदोः सहविवक्षायां मत्सदा शिष्यमा-
खेन युष्मदस्मदर्थोभिधानेऽपि परत्वादस्मदर्थोपेत उक्तमो भवति । त्वं चाहं
च आवा भवाव इति । भवतापि युष्मदस्मदोः सहवचने तस्य पूर्वपाठा-
श्रयेण तयोरेव शेषे भवांश्च त्व च युवा भवथः । भवाश्चाहं चावा भवाव
इति । सहविवक्षा चानेकस्यार्थस्यैकगुणक्रियाभिनिवेशार्थं बुद्ध्या निरूप्यमा-
ख्यस्य क्रियागुणद्वारेणान्यान्यापेक्षया समुदायभावमापन्नस्य सहभावेन वक्तु-
मिच्छा, उद्गूतावयवभेदत्वाच्च द्विवचनबहुवचने । असहविवक्षायां
द्वैतम् । एक एव लकारो ऽनेककारकार्थाभिधायी प्रतिशारकमावर्तते वेति ।
तत्राद्ये पक्षे युष्मदस्मदन्यानामशेषत्वाद्यथायोग मध्यमोत्तमौ भवतः । स
च त्व च भवथः, तथा मध्यमोत्तमयोर्युगपत्प्रसङ्गे परत्वादुत्तमः, त्वं चाहं च
भवाम इति । पक्षान्तरे तु अभिधेयतत्तत्कारकापेक्षया प्रथमादयो यथायोगं
भवन्तीति न विवादः । भवान् भवति, त्व भवसि, अह भवामीति । अलि-
ङ्गमबोधनैकविषयश्च युष्मदर्थो भवदर्थस्तत्वन्य इति तद्योगे प्रथमोक्तिः ।
यदा त्वस्मात्संबोधनविभक्तिः तदा युष्मदर्थयोगात् मध्यमो भवति हे भवन्

भवसीति । अतित्वं भवति अत्यहं भवतीत्यादौ त्वामतिक्रान्तौ मामतिक्रान्त इत्य'त्यादयःक्रान्ताद्यर्थे'द्वितीयये तितत्पुरुषे त्वमतिक्रान्तो येनाह-
मतिक्रान्तो येनेति 'अनेकमन्यपदार्थ इत्यनेक सुबन्तमन्यस्य पदस्यार्थं वर्त्त-
मान समर्थं समस्यतइति बहुव्रीहौ वा ऽतिक्रमितुः प्राधान्यात्तस्यैव
लान्तार्थविशेषणत्वाच्च मध्यमोत्तमौ । यदा त्वतिशब्दः पूजितवचनः तदा
'स्वती पूजाया'मिति तत्पुरुषे युष्मदस्मदोरर्थस्य प्रधान्यात्तेन विशेष्यत्वाद-
तित्वं भवसि अत्यहं भवामीति भवत । च्चद्ववति मद्भवतीत्यत्र च्यन्त-
योरितयोश्चमिनामिद्वेतिस्वार्यारोपेण वर्त्तमानत्वादमुख्यार्थत्वा'द्वौणमु-
ख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्यय' इति न्यायेन मध्यमोत्तमौ न स्तः । तथाहि । 'अभू-
ततद्भावे कृत्वस्तिर्योगे सपद्यकर्त्तरि च्चि'रिति कार्यात्मना ऽभूतस्य कार-
णस्य कार्यात्मना भावे विवर्त्तते सपद्यमाने कार्यात्मना भवतिकर्त्तरि
वृत्तात्प्रातिपदिकात्कृत्वस्तिर्योगे च्चिर्विधीयते । एतदुक्तं भवति । अभेद-
विवक्षया कारणवृत्तेः कार्यशब्दात् प्रत्यय इति । त्वत्कल्पो भवति मत्कल्पो
भवतीत्यादावपि गौणार्थत्वाच्च न मध्यमोत्तमौ । तत्र 'ईषदसमाप्तौ कल्प-
व्देश्यदेशीयर' सपूर्णता यदार्थानां समाप्तिः, किं चिन्नूनतेषदसमाप्तिः,
एतद्विशिष्टे वर्त्तमानात्प्रातिपदिका'त्तिङश्चे'ति तिङन्ताच्च स्वार्थं कल्प-
बादय इति प्रकृत्यर्थसदृशार्थान्तरवृत्तिभ्यां विधानात् । यदा तु कालान्त-
रदृष्टगुणेषदसमाप्तिविशिष्टस्वार्थवृत्तेः प्रत्ययाः तदा न गौणार्थत्वमिति
त्वत्कल्पो भवसि मत्कल्पो भवामीति भवतः । त्वमेवेदानीं किं चि-
न्नूनगुणो भवसीत्यर्थः । पूर्वत्र तु त्वत्सदृशोन्यो भवतीत्यर्थः ॥

अथ तिङन्तात्मन्ययाः प्रदर्श्यन्ते ॥ अतिशयने तमबिष्टनौ' ॥ अ-
तिशयनं प्रकर्षाभिभवः । गतदुपाधिकार्यं तद्व्याप्रातिपदिकादेतौ स्या-
ताम् । तथा 'तिङश्चे'ति तिङन्ताच्च । बहूनामेकस्य निर्धारणे वृत्तौ 'द्विवच-
नविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' । द्वयोरर्थयोर्वचने विभज्ये विभक्त्ये चोपपदे
तरबीयसुनोर्विधानात् । ता'वजादौ गुणवचनादेवे'तीष्ठनीयसुने'गुणवचना-
देव नियमात्तिङन्तात्तरप्तमपावेव, एतदन्ता'त्किमेतिङअयघादाभ्यद्रव्य-
प्रकर्ष' । किमादिभ्यां यो घस्तदन्तादद्रव्यप्रकर्षं गम्यमाने आमुर्गित्यामुः ।

उकारो मकारस्यानन्त्यन्वेनेत्वनिवृत्तयङ्लुप्यते तत्र स्वरादिनिपातमव्ययम्^{*} तथा 'तद्वितश्चासर्वविभक्ति रित्यसर्वविभक्तियुक्तं तद्वितान्त, तथा 'कृन्मेजन्त' इति मेजन्त, तथा 'क्कातोमुन्कसुन' इति तदन्त, 'मव्ययीभावश्चे'त्यव्ययीभावश्च, 'तरप्तमपौ घः' । तत्राणि परे । 'यचि भम्' । यकारादावजादौ च स्वादावसर्वनामस्थाने परतः पूर्वं भमिति घान्तस्य भसंज्ञा । इह स्वादयः स्वौजसमौडित्यारभ्य कप्पर्यन्ताः । घान्तस्य 'यस्येति च' । इवर्णावर्णयोरीति भसंज्ञानिमित्ते तद्विते च परे लोप इति लोपः, भवतितरा भवतितमां, तद्विताश्च 'तद्विता' इत आरभ्य आपञ्चमाध्यायसमाप्तेर्वैत्यमाणाः प्रत्ययाः, आमन्तं 'कृन्तद्वितसमामागच' कृदन्तं तद्वितान्त समासश्च प्रातिपदिकमिति प्रातिपदिकं, कृतः समासाश्च वक्ष्यन्ते । प्रातिपदिकाच्च 'इयप्रातिपदिकान् स्वीजमनौटद्विष्टाभ्यांभिस्डिभ्याभ्यस्डिसिभ्याभ्यस्डसोसाम्झोम्सुवि'ति विधीयमानेषु स्वादिषु एकत्वार्थमेकवचन सुः । तस्य वा 'अयादाप्सुप' । अज्याद्विहितस्याप सुपश्च लुगिति लुक् । स्वरादिष्वामितिपाठादव्ययत्वम्, आबिति टाप्ड, एवापः । 'प्रशसाया रूपप्' । प्रशसा स्तुतिः । अनदुप्राधिकार्यान् इयप्रातिपदिकान् तिङन्ताच्च रूपप् स्यात् । स्वभावादेनदन्तात्रपुंसकप्रथमैरुवचनमेव । तस्य 'स्वमोर्नपुमकादि'ति नपुसकलिङ्गात्परन्वेन लुकि प्राप्ते 'अतोमि'त्यम्भावे 'अमि पूर्वः' । अकोमि परे पूर्वपरयोः पूर्वरूपमेकादेश इति पूर्वरूपत्वम् । तेन भवतिरूपमित्यादि भवति । एवं कल्पवाद्यन्तादपि स्वभावान्नपुसकात्स्वादिकार्यम् । 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टे'रित्यकच् । तत्र 'तिङश्चे'त्यनुवृत्तेरस्यापि टेः प्रागज्ञातादिषु प्रागिवीयेष्वर्थेषु भवति । अकार उच्चारणार्थः । चकार 'श्चित' इति स्वरार्थः । तत्र हि चितः सप्रकृतेरित्युच्यते । भवतकि ॥

अथ तिङो ऽन्ये लादेशा उच्यन्ते ॥ 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' ॥ लटः शतृशानचावादेशौ स्यातामप्रथमान्तेन चेत्सामा-

* प्रथमेति बहुषु पुस्तकेषु नास्ति ।

† चित्वाच्चित इत्युच्यतइति पा० बहुषु पुस्तकेषु ।

नाधिकरण्य भवति । तत्र शेषत्वादस्य लटः शता, तस्य शित्वात्सा-
र्वधातुकत्वे पूर्ववच्छब्दादयः । शत्रन्तस्य 'कृदतिङि'ति तृतीयधात्वधि-
कारविहितस्य प्रत्ययस्य कृत्स्नविधानात् कृदन्तत्वेन प्रातिपदिक-
त्वादविशेषेण स्वादिप्रसङ्गे कर्मत्वस्य विवक्षितत्वात् 'कर्मणि द्वितीये'ति
द्वितीया । द्वितीयादिशब्दैः सुपा त्रिकाः पूर्वार्थप्रसिद्धोच्यन्ते । तत्रापि
सुपस्त्रीणित्रीणि पदानि भूत्वैकशो दयासंव्यनेकप्रचनदिसंज्ञानीति
तिङ्प्रवदेकत्वादौ क्रमेणैकवचनानि भवति । तत्रामौटोः ॥ 'सुडनपुंसक-
स्य' ॥ सुडिति प्रत्याहारेणादितः पञ्च वचनानि गृह्यन्ते । तान्यनपुंसकस्य
संबन्धीनि सर्वनामस्यानानीति सर्वनामस्यानत्वे 'उगिदच्' सर्वनामस्याने
धातो रिति नुम् । उगितामङ्गानां लुप्तनकारस्याञ्चतेः पूर्वप्रधातोर्गितः
पश्चाद्भातोस्तस्मिन्नुम् । अञ्चतिग्रहणादुगितो धातोर्यदि भवति अञ्च-
तेरेवेति नियमार्थकाद् अधातुग्रहणप्रधातुर्भूतपूर्वार्थे, नुम् भित्त्वा 'न्मि-
दचोन्त्यात्पर' इत्येकत्र सनिविष्टानामचामन्त्यादयः परः ॥ 'नश्चापदा-
न्तस्य भलि' ॥ अपदान्तयोर्नकारमकारयोर्भक्त्यनुस्वार इति नस्यानुस्वारः ॥
'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' ॥ स च 'स्यानेन्तरतम' इति नासिक्यानु-
स्वारस्य तादृशो नकारः । भवत्त पश्य भवतस्तानित्यत्र 'स्वादिष्वसर्व-
नामस्यान' इति पूर्वस्य प्राप्तायाः षडसंज्ञायाः 'यचि भ' मिति भसंज्ञया
परया ऽनवकाशया बाधात् 'भलां जशान्त' इति जश्त्वं न भवति ।
कर्तृकरणविवक्षायां, 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' ॥ उक्तः कर्त्ता ॥ 'साधकतमं
करणम्' ॥ क्रियाप्रसिद्धौ यत्कारक कारकान्तरापेक्षया प्रकृष्टं विवक्षते
यद्व्यापारानन्तरं क्रियानिष्पत्तिर्विवक्ष्यते तत्करणम् । तदुक्तम् ।

क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम् ।

विवक्ष्यते यदा तत्र करणत्वं तदा स्मृतम् ॥

वस्तुतस्तदनिर्देश्य नहि वस्तु व्यवस्थितम् ।

स्थाल्या पच्यत इत्येषा विवक्षा दृश्यते यतः ॥

क्रियते येन येनैव तत्तत्करणमिष्यते ।

तेनाश्वेन रथेनेति सिद्धं दीपिकयेति च ॥

इति । टाटकारष्ठाङसीति विशेषणार्थः । अन्यथा 'सुपां सुलु-
गि'ति विहितस्यापि ग्रहणमापद्येत । भवता तेन । भवद्भां ताभ्यां, भव-
द्विस्तेः । हालादौ पदत्वाज्जश्त्वम् । संप्रदानविवक्षायां 'चतुर्थी संप्रदाने' ॥
कदाचनभिहितइति शेषः ॥ 'कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम्' ॥ ददाति-
कर्मणा करणभूतेन कर्ता यमर्थमभिप्रैति तदनिराकर्तृत्वे प्रेरयित्रनुमन्तृ
कारकं सम्प्रदानम् । उक्तञ्च ।

अनिराकरणात्कर्तृस्त्यागाङ् कर्मणेप्सितम् ।

प्रेरणानुमतिभ्या च लभते संप्रदानता ॥

इति । दानं च पुनरग्रहणाय किं चिदुद्दिश्य स्वीयत्यागः । भवते
तस्मै ददाति । भवद्भ्या ताभ्यां ददाति । भवद्भ्यस्तेभ्यो ददाति ।
अपादानविवक्षायां 'अपादाने पञ्चमी' ॥ 'ध्रुवमपाये ऽपादानम्' ॥ साव-
धिकं गमनमपायः । तदुक्तम्

सयोगभेदाद् भिन्नात्मा गतिरेव भ्रमिर्यथा ।

ध्रुवावधिरपायोपि समवेतस्तथा ध्रुवः ॥

इति । अस्मिन् साध्ये यद् ध्रुवमेतदनाविष्टं तत्कारकमपादा-
नम् । तथाहि ।

अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वा ऽचलम् ।

ध्रुवमेवातदावेशात्तदपादानमुच्यते ॥

इति । त्रिविधं चैतत् । यथाह ।

निर्दिष्टविषयं किं चिदुपात्तविषयं तथा ।

अपेक्षितक्रियं चेति त्रिधा ऽपादानमुच्यते ॥

इति । तत्र प्रथमं धातुना ऽभिहितापायविषयं, द्वितीयं धात्व-
न्तरार्थत्वेनाभिहितापायविषयम् । तृतीयं तु सामर्थ्यादिना प्रतीयमाना-
पायविषयम् । भवतस्तस्मादागच्छति । भवतो मेधाद्विद्योतते विद्युत् ।
अत्र निःसरणाङ्गे विद्योतने विद्युनिर्वर्तते । भवतस्तस्मादाद्यतरः । अत्र
प्रकर्षप्रत्ययसामर्थ्याद्विभागकारणतया प्रकर्षलक्षणा क्रिया प्रतीयते, अत्रा-
वधिविभक्त्योरेकीकारो विभागस्तद्वेतुरपकर्षणं च वैदृढम् । तथा चाह ।

बुद्ध्या समीहितैकत्वान् पञ्चालान् कुरुभिर्यदा ।

पुनर्विभजते वक्ता तदापायः प्रतीयते ॥

इति । तत्रतत्र ङसीत्यनुवादायां ङकारेकारौ । विभागोपायः, अस्मिन् साध्ये यद् ध्रुवमेतद्वेतुभूतक्रियानाविष्ट तदपादानमिति सूत्रार्थः । शेषविवक्षायाम् ॥ 'षष्ठी शेषे' ॥ अनभिहितइति शेषः । कर्मादिभ्यो ऽन्यः प्रातिपदिकार्थव्यतिरेकहेतुः स्वस्वामिसंबन्धादिः शेषः, द्विष्टोप्यसौ सबन्धो गुणभूतेन शब्देन प्रतिपाद्यतइति तस्मादेव षष्ठी न तु प्रधानात् ।

द्विष्टोप्यसौ परार्थत्वाद् गुणेषु व्यतिरिच्यते ।

इति । तथा वार्तिकमपि 'उक्त पूर्वणे'ति । अस्यार्थः । प्रातिपदिकार्थसूत्रे यदसामानाधिकरण्ये उपसख्यानमधिकत्वादिति चेदस्य न वाक्यार्थत्वादिति सामानाधिकरण्यप्रतीतिर्वाक्यार्थत्वेन पदसंस्कारवेलायामभावात् प्रातिपदिकार्थनिबन्धना प्रथमा यथा भवत्येवमत्रापि प्रधानगतसबन्धप्रतीतिर्वाक्यार्थत्वेन पदसंस्कारवेलायामभावाच्च प्रसङ्गः षष्ठ्या इति, परिहारभाष्यं चार्थरूपमेवैतदेवंजातीयकमिति, भवतो ऽस्य स्व, भवतोरनयोः, भवतामेषाम् । अधिकरणविवक्षायाम् ॥ 'सप्तम्यधिकरणे च' ॥ चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यश्च ॥ 'आधारोधिकरणम्' ॥ कर्तृकर्मणोः क्रियाश्रयभूतयोर्धारणक्रिया प्रति य आधारस्तत्कारकमधिकरणम् । त्रिविधं चैतत् । यदाह,

कर्तृकर्मव्यवहितामसाक्षाद् धारयत् क्रियाम् ।

उपकुर्वन् क्रियासिद्धौ शास्त्रेधिकरणं स्मृतम् ॥

औपश्लेषिकमेकं स्यात्तथा वैषयिक परम् ।

अभिव्यापकमित्येतन्निधाधिकरणं मतम् ॥

आस्ते कटे शकुन्तः खे तिले तैलं व्यवस्थितम् ।

क्रमेणाधारभेदानामुदाहरणदर्शनम् ॥

इति । भवति कटे शेते । मेघच्छ्वे भवति खे बलाकाः, भवति तिले तैलं, भवतोरनयोः, भवत्स्वेषु । प्रथमासामानाधिकरण्ये प्रथमासामानाधिकरण्याभावे च 'नन्वोर्विभाषे'त्यतो विभाषानुवृत्तेर्विकल्पेन

भवतः ॥ 'प्रानिजदिकार्ये' लिङ्गपरिणामप्रवचनमात्रे प्रथमा ॥ भवत्वयम् ।
 'हल्ङ्गाव्य' इति सुलोपः । तकारस्य सयोगान्तलोपः । तस्यासिद्धत्वाच्च
 लोपः प्रातिपदिकान्तस्येति विधीयमानो नलोपो न भवति । भवन्तौ ।
 भवन्तः । जसो जकारो ऽसन्देहेन विभक्तिस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थः । भवत्तरः ।
 भवत्तमः । भवद्रूपः । भवत्कल्प इत्यादौ तरबादि पूर्ववत् । भवत्कः ।
 'प्रागिवात्कः' । 'इवे प्रतिकृता' वित्यतः प्रागितः परेष्वज्ञातादिष्वर्थेषु द्वौ-
 त्येषु कः प्रातिपदिकादिति कः । तद्वित्त्वान्न ककारस्येत्वम् । शत्रभावे
 भवतीत्यादि पूर्वमुक्तमेव । अत्र तिङस्थानिवत्त्वेन लत्वाच्छत्रादेशो न
 भवति, वायहण्यस्य व्यवस्थितविभाषाविज्ञानात् । यदि हि स्यात्स्यानिव-
 द्भावेन तिङन्तादस्माच्च तर्प् 'किमेत्तिङ्यये'त्याभ्यात् । ततश्च भवत्त-
 रामिति वृतीय रूप स्यात् । असामानाधिकरण्ये खल्वपि भवत इदं
 भावतम् ॥ 'तस्येदम्' ॥ षष्ठीसामर्थ्याद् व्याप्प्रातिपदिकात्सन्नान्विन्यर्थे
 ऽणिति अण् । 'तद्वितेष्वचामादे'रिति वृद्धिः । जिति णिति तद्विते परेऽ-
 ङ्गस्याचामादेरचो वृद्धिरिति । इयं चा'त उपधाया' इति जिति णिति
 प्रत्ययमात्रे परे ऽङ्गस्योपधाया अतो विधीयमाना वृद्धिमपवादत्वाद्वाधते ।
 न च भवत इत्यस्य देवदत्तादिविशेषापेक्षत्वादस्तीहापि सामानाधिक-
 रण्यमिति वाच्यम् । तर्हि सापेक्षत्वादस्मात्प्रत्यय एव न स्यात् । 'समर्थः
 पदविधि'रितिह शास्त्रे पदविधिः समर्थपदाश्रय इत्युक्तत्वात् । इदमप्यु-
 दाहरणं, भवतो भक्तिर्भवद्भक्तिरिति ॥ 'षष्ठी' ॥ षष्ठ्यन्त समर्थेन सुबन्तेन
 वा समस्यतइति समासः । 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो'रिति तद्वितान्तस-
 मासप्रातिपदिकयोरन्तर्भूतस्य सुपो लुक् । अत्र के चिल्लडिति वर्त्तमाने
 'लटः शतृशानचा'विति पुनर्लङ्ग्रहणाद् 'नन्वाविभाषे'ति भूते विहित-
 स्यापि लटोऽप्येतावादेशौ भवत इति । एतद्वाव्यार्त्तिकयोर्नाक् वृत्तिका-
 रस्य च नेष्टम् । यदाह लङितिवर्त्तमाने पुनर्लङ्ग्रहणात् क्व चित् प्रथमा-
 सामानाधिकरण्येपि भवतीति ॥ 'संबोधने च' ॥ शतृशानचाविति शेषः ।
 आभिमुख्यकरणं संबोधनम्, तच्च स्वभावात्क्व चित् कार्ये विनियोगा-
 र्थम् । यदाह ।

सिद्धस्याभिमुखीभावमात्र संबोधन विदुः ।

प्राप्ताभिमुख्यो ह्यर्थाऽऽत्मा क्रियायां विनियुज्यते ॥

इति । हे सुखमनुभववर्षस्य ॥ 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' ॥ लक्षणं विन्द, हेतुः कारण, क्रियाया लक्षणहेत्वोर्वर्तमानाद्वातोर्लटः शतृशानचौ स्याताम्, शयनमनुभवन् यवनो भुङ्क्ते । अत्र शयनानुभवनं यवनभोजनस्योपलक्षणं, शुश्रूषर्भवन्विद्यामधिगच्छति, अत्रापि शुश्रूषाभवन विद्यामधिगमस्य हेतुः । योगद्वयमिदं प्रथमासमानाधिकरणे नित्यार्थम् । प्रथमा च 'संबोधने चे'ति संबोधनाधिकप्रातिपदिकार्थे विहिता ॥ 'माड्या-क्लाशे' ॥ आक्लाशः शयनम् । अस्मिन् गम्यमाने माड्युपपदे शतृशानचौ भवतः । मा भवन् । 'माडि लुडि' प्राप्ते ऽस्मादेवादेशवचनाल्लङनुमीयते । सुखमनुभववित्यादौ 'कर्तृकर्मणोः कृती'त्यनयोः कृत्योगे विधीयमाना षष्ठी न भवति, 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृना'मिति लादियोगे प्रतिषेधात् । ल इति शतृशानचौ कानच् कृपुक्किनौ चोच्यन्ते । उ इत्युवर्णान्ताः, उः, इच्छुः, उकः प्रत्यय एव । अव्यय इति 'कृन्मेजन्तः' । 'त्वातोऽमुन्क्रमुन्' इति उक्ता अव्ययकृतः ॥ 'क्तवतू निष्ठा' ॥ खलर्थः खल् युच् तृचि'ति 'पूड्यजोः शान'चित्ति शानच्चादयस्त्वृचि'ति तृन्पर्यन्ताः प्रत्याहारेणोक्ताः । प्रत्याहारश्च 'लटः शत्रि'ति तृशब्दस्य तृनो नकारेण । सुखस्यानुभववित्ति प्रयोगः शेषलक्षणषष्ठा, अत्र षष्ठीसमासः 'पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेनेति' पूरणादिभिः षष्ठीसमासो न भवति, तत्र पूरणा इति पूरणप्रत्ययान्ताः । गुण इति गुणद्वारेण गुणिनि वर्तितुं शक्ता गुणगुणिनिष्ठा-शुक्लादयः, ये तु गुण स्वनिष्ठतयैवाभिदधति ते रसादयस्तत्स्यैश्च गुणैः षष्ठी समस्यतइति तैः समास उक्तः । सुहितार्थास्तृप्थार्थाः । सदि'ति 'तौ सदि'ति सत्सजौ शतृशानचौ । अव्यया उक्ताः । तव्यो न सानुबन्धकः । निरनुबन्धक्यहणे न सानुबन्धकस्येति । समानाधिकरणमेकविभक्त्यन्तं विशेषण विशेष्य च ॥

अथ शत्रन्तात्स्त्रीप्रत्यया इह प्रदर्श्यन्ते ॥ 'उगितश्च' ॥ यत्प्रातिपदिकमवयवद्वारेण साक्षाद्वागित् 'येन विधिस्तदन्तस्ये'ति तदन्तात्, व्यपदे-

भवतः ॥ 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' ॥ भवन्नयम् ।
 'हल्ङ्वाब्ध्य' इति सुलोपः । तकारस्य सयोगान्तलोपः । तस्यासिद्धत्वाच्च
 लोपः प्रातिपदिकान्तस्येति विधीयमानो नलोपो न भवति । भवन्तौ ।
 भवन्तः । जसो जकारो ऽसन्देहेन विभक्तिस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थः । भवन्तरः ।
 भवत्तमः । भवद्रपः । भवत्कल्प इत्यादौ तरादि पूर्ववत् । भवत्कः ।
 'प्रागिवात्कः' । 'इवे प्रतिष्ठता' वित्यतः प्रागितः परेष्वज्ञातादिष्वर्थेषु द्व्यो-
 त्येषु कः प्रातिपदिकादिति कः । तद्धितत्वाच्च ककारस्येत्वम् । शत्रभावे
 भवतीत्यादि पूर्वमुक्तमेव । अत्र तिङस्थानिवत्त्वेन लत्वाच्छत्रादेशो न
 भवति, वायहणस्य व्यवस्थितविभाषाविज्ञानात् । यदि हि स्यात्स्थानिव-
 द्भावेन तिङन्तादस्माच्च तरप् 'किमेत्तिङ्ग्यये'त्याम्भ्यात् । ततश्च भवत्त-
 रामिति तृतीय रूप स्यात् । असामानाधिकरण्ये खल्वपि भवत इदं
 भावतम् ॥ 'तस्येदम्' ॥ षष्ठीसामर्थ्याद् इयप्प्रातिपदिकात्पञ्चान्यन्त्यर्थे
 ऽणिति अण् । 'तद्धितेष्वचामादे'रिति वृद्धिः जिति णिति तद्धिते परेऽ-
 ङ्गस्याचामादेरचो वृद्धिरिति । इयं चा'त उपधाया' इति जिति णिति
 प्रत्ययमात्रे परे ऽङ्गस्यापधाया अतो विधीयमाना वृद्धिमपवादत्वाद्वाधने ।
 न च भवत इत्यस्य देवदत्तादिविशेषापेक्षत्वादस्तीहापि सामानाधिक-
 रण्यमिति वाच्यम् । तर्हि सापेक्षत्वादस्मात्प्रत्यय एव न स्यात् । 'समर्थः
 पदविधि'रितिह शास्त्रे पदविधिः समर्थपदाश्रय इत्युक्तत्वात् । इदमप्यु-
 दाहरणं, भवतो भक्तिर्भवद्भक्तिरिति ॥ 'षष्ठी' ॥ षष्ठ्यन्त समर्थेन सुबन्तेन
 वा समस्यतइति समासः । 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो'रिति तद्धितान्तस-
 मासप्रातिपदिकयोरन्तर्भूतस्य सुपो लुक् । अत्र के चिल्लडिति वर्त्तमाने
 'लटः शतृशानचा'विति पुनर्लङ्ग्रहणाद् 'नन्वाविभाषे'ति भूते विहित-
 स्यापि लटोप्येतावादेशौ भवत इति । एतद्वाच्यवार्त्तिकयोर्नौक्तं वृत्तिका-
 रस्य च नेष्टम् । यदाह लङिति वर्त्तमाने पुनर्लङ्ग्रहणात् क्व चित् प्रथमा-
 सामानाधिकरण्येपि भवतीति ॥ 'संबोधने च' ॥ शतृशानचाविति शेषः ।
 आभिमुख्यकरणं संबोधनम्, तच्च स्वभावात्क्व चित् कार्ये विनियोगा-
 र्थम् । यदाह ।

सितृस्याभिमुखीभावमात्र संबोधनं विदुः ।

प्राप्ताभिमुख्यो ह्यर्थाऽस्मा क्रियाया विनियुज्यते ॥

इति । हे मुत्रमनुभवन्नर्थः ॥ 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' ॥ लक्षणं चिन्ह, हेतुः कारण, क्रियाया लक्षणहेत्वोर्वर्तमानाद्वातोर्लटः शतृशानचौ स्याताम्, शयनमनुभवन् यवनो भुङ्क्ते । अत्र शयनानुभवनं यवनभोजनस्योपलक्षणं, शुश्रूषुर्भयन्विद्याप्रधिगच्छति, अत्रापि शुश्रूषाभवनं विद्याधिगमस्य हेतुः । योगद्वयमिदं प्रयत्नामपः ॥ भिन्नाणि नित्यार्थम् । प्रथमा च 'संबोधने चेति संबोधनाधिकप्रातिपदिकार्थं विहिता ॥ 'माङ्ग्या-क्राशे' ॥ आक्राशः शपनम् । अस्मिन् गम्यमाने माङ्ग्यपपदे शतृशानचौ भवतः । मा भवन् । 'माङ्गि लुङि' प्राप्ते ऽस्मादेवादेशववनाल्लडनुमीयते । मुत्रमनुभवन्नित्यादौ 'कर्तृकर्मणोः कृती'त्यनयोः कृद्योगे विधीयमाना षष्ठी न भवति, 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थवृत्ता'मिति लादियोगे प्रतिषेधात् । ल इति शतृशानचौ कानच् कृषुक्किन्नौ चोच्यन्ते । उ इत्यवर्णान्ताः, उः, इच्छुः, उक्कः प्रत्यय एव । अव्यय इति 'कृन्मेजन्तः' । 'त्वातोसुन्कसुन' इति उक्ता अव्ययकृतः ॥ 'क्तवतू निष्ठा' ॥ खलर्थः खल् युच् वृत्तिरिति 'पूङ्यजोः शान'चित्ति शानच्चादयस्त्वृत्तिरिति तृन्पर्यन्ताः प्रत्याहारेणोक्ताः । प्रत्याहारश्च 'लटः शत्रि'ति तृशब्दस्य तृनो नकारेण । सुखस्यानुभवचित्ति प्रयोगः शेषलक्षणषष्ठ्या, अत्र षष्ठीसमासः 'पूरणगुणमुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेनेति' पूरणादिभिः षष्ठीसमासे न भवति, तत्र पूरणा इति पूरणप्रत्ययान्ताः । गुण इति गुणद्वारेण गुणिनि वर्तितुं शक्ता गुणगुणिनिष्ठाशुक्लादयः, ये तु गुण स्वनिष्ठतयैवाभिदधति ते रसादयस्तत्स्यैश्च गुणैः षष्ठी समस्यतइति तैः समास उक्तः । मुहितार्थास्तृप्थ्याः । सदिदिति 'तौ सदि'ति सत्सञ्ज्ञौ शतृशानचौ । अव्यया उक्ताः । तव्यो न सानुबन्धकः । निरनुबन्धक्यहणे न सानुबन्धकस्येति । समानाधिकरणमेकविभक्त्यन्तं विशेषण विशेष्य च ॥

अथ शत्रन्तात्स्त्रीप्रत्यया इह प्रदर्श्यन्ते ॥ 'उगितश्च' ॥ यत्प्रातिपदिकमवयवद्वारेण साक्षाद्वागित् 'येन विधिस्तदन्तस्येति तदन्तात्, व्यपदे-

शिवद्वावेन केवलाच्च प्रातिपदिकात् स्त्रिया ङीप्स्यात् । ङकारः सामान्यग्रहणार्थः, पकारस्तद्विधातार्थः । 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्न', 'अपदेशिवद्वावो ऽप्रातिपदिकेने'ति परिभाषे प्रातिपदिकस्य स्वरूपग्रहणेन प्रत्ययविधिविषये इति नेह स्तः । ङीबन्तस्य 'यू स्त्र्याख्यौ नदी' ॥ अन्यानपेक्षया स्त्रियां वृत्तमीदृदन्तं नदी, नदीत्वे ॥ 'शप्श्यनेर्नित्यम्' ॥ शप्श्यनेर्नित्यत्वेन संबन्धिनः शतुर्नित्यं नुम् शीनद्योः परयोः, नुम् मित्त्वादन्यादचः परः । इह नदीशब्दे नद्यावयवे वर्त्ततइति शतुर्नदीपरत्वम् । भवन्ती । अतिभवन्ती । द्यन्तत्वात्स्वादिषु सोर्हल्-ङ्यादि लोपः । भवन्त्यौ । भवन्त्यः । अजादा'विको यणची'ति संहितायां यण् भवति । 'प्रथमयोः पूर्वसवर्ण'इत्येकः प्रथमाद्वितीययोरजादौ विभक्तौ परतः पूर्वपरयोः पूर्वसवर्णदीर्घ एक इत्येतदत्र न भवति, 'दीर्घाज्जसि चे'ति निषेधाच् चकारादिज् गृह्यते । हे भवन्ति । 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्व' इति ह्रस्वः । अम्बार्था मात्रर्थाः । 'एङ्ङ्रस्वात्सबुद्धेरिति' सबुद्धेर्हलो लोपः ॥ 'एकवचनं संबुद्धिः' ॥ संबोधने प्रथमाया इति शेषः । भवन्तीम् । अत्रा'मि पूर्वः' पूर्वसवर्णदीर्घश्च यण् बाधते । डिदृचनेष्वा'ण् नद्या' इति टित्त्वादा-दावाडागमे 'आटश्चे'ति यथायोगमैकार औकारश्च वृद्धिः । भवन्त्यौ, भवन्त्यः । आमि 'ह्रस्वनद्यापो नुडि'ति नुट् टित्त्वादादौ, भवन्तीनाम् । सप्तम्येकवचनस्य 'ङिरान्नद्यान्वीभ्य'इत्यामादेशे । भवन्त्याम् । नीशब्देन तदन्तो यामण्यादिरुच्यते । भवन्तितरा । भवन्तीतरा । पूर्ववत्तरप् । अत्र 'घरूपकल्पचेलङ्ब्रुवगोत्रमतहतपु डोनेकाचो ह्रस्व' इति घादिषु परेषु द्यन्तस्यानेकाचो विधीयमानो नित्यो ह्रस्व 'उगितश्चे'त्युगितः परस्या नद्या उच्यमानेन ह्रस्वविकल्पेन बाध्यते, अत्र घादयः प्रत्ययाश्चेलडादीनि प्रातिपदिकानि । अत्र हरदत्तः । चेलडादीनां वृत्तिविषये कुत्सनवचन-त्वात् तैः 'कुत्सितानि कुत्सनै रिति समास इति । न्यासकारस्तु चेलङ्ब्रु-वगोत्राणामेवं समासमुक्त्वा मतहताभ्यां तु 'विशेषणं विशेष्येण'त्याह । एवं तत्रबादिष्वण्युदाहार्यम् ॥

अथ नपुंसकप्रक्रिया ॥ भवत् ब्राह्मणकुलं तिष्ठति पश्येति वा ।

‘स्वमोर्नपुंसका’दिति लुक् । भवन्ती कुले । ‘नपुंसकाच्चे’त्यौङः शीभावः । औङिति प्रथमाद्वितीययोर्द्विवचनस्य पूर्वाचार्यसंज्ञा । शकारः ‘शीनद्यो’-रिति निर्देशार्थः । ‘शप्श्यनो’रिति नित्यं नुमागमः । भवन्ति कुलानि । ‘जश्शसोः शि’रिति नपुंसकाङ्गात्परत्वे जश्शसोः शिरादेशः । शकारः शीति तत्रानुवादाद्यर्थः । ‘शि सर्वनामस्थान’मिति शेः सर्वनामस्थानत्वे । ‘नपुंस-कस्य भलच्च’इति भलन्तस्यानन्तस्य नपुंसकाङ्गस्य सर्वनामस्थाने नुमिति नुम् । भवतेत्यादि पुल्लिङ्गवत् ।

अथ शानच् ॥ व्यतिभवमानाः । ‘आने मुनि’त्यदन्तस्याङ्गस्यानप-रत्वेन मुक्लिच्चादन्यः । व्यतिभवमानौ । ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घस्य’नादि-ची’ति निषेधे ‘वृद्धिरेची’ति वृद्धिः, व्यतिभवमानान् । ‘तस्माच्छसो नः पुंसी’ति तस्मात्प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घात् परस्य शसः सकारस्य न इति नकारादेशः, व्यतिभवमानेन ॥ ‘टाङमिडसामिनात्स्याः’ ॥ अदन्तादङ्गात्प-रेषां टादीनां यथासंख्यमिनादय इति इनादेशे गुणः । व्यतिभवमानाभ्याम् । ‘सुपि चे’त्यदन्ताङ्गस्य दीर्घ इति सुप्परत्वादीर्घः । व्यतिभवमानैः । ‘अतो भिस ऐसि’त्यदन्ताङ्गात्परत्वेन भिस ऐसादेशः । व्यतिभवमानाय । ‘डिर्ये’ इत्यदन्तादङ्गात्परत्वेन यादेशः । ‘कष्टाये’ति निर्देशात्सन्निपातपरिभाषाया अनित्यत्वात्सुपि चे’ति दीर्घः । व्यतिभवमानेभ्यः । अत्र भलादिबहुवच-नसुप्परादन्ताङ्गत्वेन ‘बहुवचने भल्ये’दित्येव सुपि चे’ति दीर्घश्च प्राप्नोति, तत्र ‘विप्रतिषेधे परं कार्यं’ द्रुपोस्तुल्यबलविरोधे परस्य प्राप्यमाणत्वा-त्परमेत्व प्रवर्तते । व्यतिभवमानात् । व्यतिभवमानस्य । ‘टाङसी’त्यादिना ङसिङसोरात्स्यौ । व्यतिभवमानयोः । ‘आसि चे’त्यदन्तस्याङ्गस्यौपरत्वे-नैकारे ऽयादेशः । व्यतिभवमानानाम् । ‘ह्रस्वनद्यापो नुडि’ति नुट् । ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य नाम्परत्वेन ‘नामी’ति दीर्घः । ‘सुपि चे’त्येव वा, व्यतिभ-वमाने । ‘आद्गुणः’ । व्यतिभवमानेषु । एत्वे षत्व, व्यतिभवमानस्येदं व्यातिभवमानम् । अत्रासामानाधिकरण्ये शानच् । ‘तस्येद’मित्यण्या-दिवृद्धिः । ‘न व्याभ्या पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैजि’ति पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्या परस्याचामादेरचो वृद्धिर्न भवति किं तु ताभ्यां

शिवद्वावेन केवलाच्च प्रातिपदिकात् स्त्रिया ङीप्स्यात् । डङ्कारः सामान्यग्रहणार्थः, प्रकारस्तदविधातार्थः । 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्न', 'अपदेशिवद्वावो ऽप्रातिपदिकेने'ति परिभाषे प्रातिपदिकस्य स्वरूपग्रहणेन प्रत्ययविधिविषये इति नेह स्तः । ङीबन्तस्य 'यू स्त्याख्यौ नदी' ॥ अन्यानपेक्षया स्त्रियां वृत्तमीदृदन्तं नदी, नदीत्वे ॥ 'शप्श्यनोर्नित्यम्' ॥ शप्श्यनोर्नित्यत्वेन सबन्धिनः शतुर्नित्यं नुम् शीनद्वयोः परयोः, नुम् मित्त्वादन्त्यादचः परः । इह नदीशब्दो नद्यवयवे वर्तत इति शतुर्नदीपरत्वम् । भवन्ती । अतिभवन्ती । इयन्तत्वात्स्वादिषु सोर्हल्-ङ्यादि लोपः । भवन्त्यौ । भवन्त्यः । अजादा 'विको यणची'ति संहितायां यण् भवति । 'प्रथमयोः पूर्वसवर्ण' इत्यकः प्रथमाद्विनीययोरजादौ विभक्तौ परतः पूर्वपरयोः पूर्वसवर्णेदीर्घे एक इत्येतदत्र न भवति, 'दीर्घाज्जसि चे'ति निषेधाच्चकारादिज् गृह्यते । हे भवन्ति । 'अम्बार्थनद्वोर्ह्रस्व' इति ह्रस्वः । अम्बार्थो मात्रार्थः । 'एङ् ह्रस्वात्सबुट्टेरिति' सबुट्टेर्हलो लोपः ॥ 'एकवचनं सबुट्टिः' ॥ संबोधने प्रथमाया इति शेषः । भवन्तीम् । अत्रा 'मि पूर्वः' पूर्वसवर्णेदीर्घश्च यणं बाधेति । डिट्टचनेष्वा 'ण् नद्या' इति टित्त्वादा-दावाडागमे 'आटश्चे'ति यथायोगमैकार औकारश्च वृद्धिः । भवन्त्यौ, भवन्त्यः । अमि 'ह्रस्वनद्यापो नुडि'ति नुट् टित्त्वादादौ, भवन्तीनाम् । सप्तम्येकवचनस्य 'ङिराम्बद्वामीभ्य' इत्यामादेशे । भवन्त्याम् । नोशब्देन तदन्तो ग्रामण्यादिरुच्यते । भवन्तितरा । भवन्तीतरा । पूर्ववत्तरप् । अत्र 'घरूपकल्पचेलङ्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ड्यानेकाचो ह्रस्व' इति घादिषु परेषु इयन्तस्यानेकाचो विधीयमानो नित्यो ह्रस्व 'उगितश्चे'त्युगितः परस्या नद्या उच्यमानेन ह्रस्वविकल्पेन बाध्यते, अत्र घादयः प्रत्ययाश्चेलडादीनि प्रातिपदिकानि । अत्र हरदत्तः । चेलडादीनां वृत्तिविषये कुत्सनवचन-त्वात् तैः 'कुत्सितानि कुत्सनै'रिति समास इति । न्यासकारस्तु चेलङ्ब्रु-वगोत्राणामेवं समासमुक्त्वा मतहताभ्यां तु 'विशेषणं विशेष्ये'त्याह । एवं तमत्रादिष्वप्युदाहार्यम् ॥

अथ नपुंसकप्रक्रिया ॥ भवत् ब्राह्मणकुलं तिष्ठति पश्येति वा ।

‘स्वमोर्नपुंसका’दिति लुक् । भवन्ती कुले । ‘नपुंसकाच्चे’त्पौडः शीभावः । औडिति प्रयनाद्वितीययोर्द्विवचनस्य पूर्वाचार्यसंज्ञा । शकारः ‘शीनद्वौ’-रिति निर्देशार्थः । ‘शप्श्यनो’रिति नित्यं नुमागमः । भवन्ति कुलानि । ‘जश्शसोः शि’रिति नपुंसकाङ्गात्परत्वे जश्शसोः शिरादेशः । शकारः शीति तत्रानुवादार्थः । ‘शि सर्वनामस्थान’मिति शेः सर्वनामस्थानत्वे । ‘नपुंस-कस्य भलच’इति भलन्तस्याजन्तस्य नपुंसकाङ्गस्य सर्वनामस्थाने नुमिति नुम् । भवतेत्यादि पुल्लिङ्गवत् ।

अथ शानच् ॥ व्यतिभवमानाः । ‘आने मुगि’त्यदन्तस्याङ्गस्थानप-रत्वेन मुक्लिच्चादन्त्यः । व्यतिभवमानौ । ‘प्रथमयोः पूर्वसवर्णेदीर्घस्य’नादि-ची’ति निषेधे ‘वृद्धिरेची’ति वृद्धिः, व्यतिभवमानान् । ‘तस्माच्छसो नः पुंसी’ति तस्मात्प्रथमयोः पूर्वसवर्णेदीर्घात् परस्य शसः सकारस्य न इति नकारादेशः, व्यतिभवमानेन ॥ ‘टाडसिङ्सामिनात्स्याः’ ॥ अदन्तादङ्गात्प-रेषां टादीनां यथासंख्यमिनादय इति इनादेशे गुणः । व्यतिभवमानाभ्याम् । ‘सुपि चे’त्यदन्ताङ्गस्य दीर्घ इति सुप्परत्वादीर्घः । व्यतिभवमानैः । ‘अतो भिस ऐसि’त्यदन्ताङ्गात्परत्वेन भिस ऐसादेशः । व्यतिभवमानाय । ‘ङेर्य’ इत्यदन्तादङ्गात्परत्वेन यादेशः । ‘कष्टाये’ति निर्देशात्सनिपातपरिभाषाया अनित्यत्वात्सुपि चे’ति दीर्घः । व्यतिभवमानेभ्यः । अत्र भलादिवहुवच-नसुप्परादन्ताङ्गत्वेन ‘बहुवचने भल्ये’दित्येत्त्वं सुपि चे’ति दीर्घश्च प्राप्नोति, तत्र ‘विप्रतिषेधे परं कार्यं’ द्वयोस्तुल्यबलविरोधे परस्य प्राप्यमाणत्वा-त्परमेत्व प्रवर्तते । व्यतिभवमानात् । व्यतिभवमानस्य । ‘टाडसी’त्यादिना ङसिङ्सोरात्स्यौ । व्यतिभवमानयोः । ‘आसि चे’त्यदन्तस्याङ्गस्योत्परत्वे-नैकारे ऽयादेशः । व्यतिभवमानानाम् । ‘ह्रस्वनद्वापो नुडि’ति नुट् । ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य नाम्परत्वेन ‘नामी’ति दीर्घः । ‘सुपि चे’त्येव वा, व्यतिभ-वमाने । ‘आद्रुणः’ । व्यतिभवमानेषु । एत्वे षत्व, व्यतिभवमानस्येदं व्यातिभवमानम् । अत्रासामानाधिकरण्ये शानच् । ‘तस्येद’मित्यण्या-दिवृद्धिः । ‘न ख्याभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैजि’ति पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्याचामादेरचो वृद्धिर्न भवति किं तु ताभ्यां

पूर्वमैञ् भवति तद्धिते ङिति किति वा परइत्येतस्य 'न कर्मव्यतिहार'. इति निषेधः ।

अथ स्त्रियाम् ॥ व्यतिभवमाना ॥ 'अजाद्यतष्टाप्' ॥ अजादिगण-
पठितादकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां टाबिति टाप् । प्रकारः
सामान्यग्रहणार्थः, टकारस्तद्विधातार्थः । अत्र शानचः स्थानिवत्त्वेन
टित्वाट्टिट्वाणञ्द्रुयसञ्जदघञ्मात्रचतयपठञ्ठञ्जञ्कारप्*स्थुना'मिति य-
था कथं चित् टितः प्रातिपदिकाद्वाद्यन्ताच्चानुपसर्जनात् स्त्रिया विधी-
यमानो ङीप्, ट एव इह यस्य स टिदित्यवधारणस्याश्रयणाल्लटश्च द्युनु-
बन्धकत्वाच्च भवति, सामगीत्यादौ टको ऽनेकानुबन्धकत्वेऽपि टित्वसा-
मर्थ्यात् ङीप्, लटस्तु टित्वमेत्वादर्थतया सावकाशम् । 'हल्ङ्या'दिना
सुलोपः । व्यतिभवमाने । 'औङ आप' इत्यापः परत्वेनौङः शीभावे गुणः ।
ईकारप्रत्ययपरत्वेन 'यस्ये'ति लोपो न भवति । 'औङः श्यां परे प्रतिषेध'
इति निषेधात् । व्यतिभवमानाः । सवर्णदीर्घः । हे व्यतिभवमाने ।
'संबुद्धौ चे'त्याप एत्वम् । एङः परत्वात्सोर्लोपः । व्यतिभवमानया ।
'आङि चाप' इत्येत्वे ऽयादेशः । आङिति तृतीयैकवचनस्य पूर्वाचार्य-
सज्ञा । चकारादोसि च, व्यतिभवमानायै । 'याडाप' इति आपः परस्य
ङिटुवनस्य याडागमष्टित्वादादिः । 'वृद्धिरेची'ति वृद्धिः । व्यतिभवमा-
नायाः । व्यतिभवमानयोः । 'आङि चाप' इत्येत्वेऽयादेशः । व्यतिभवमा-
नानाम् । 'ह्रस्वनद्यापो नुडि'ति नुट् । व्यतिभवमानायाम् । डेरामादेशः,
व्यतिभवमानासु ।

अथ नपुंसकम् ॥ व्यतिभवमानम् । 'अतोमि'त्यम्भावः । व्यतिभव-
माने । 'नपुंसकाच्चे'ति शीभावे पूर्ववदौङः श्यामिति यस्येतिलोपनिषेधः ।
व्यतिभवमानानि । 'जश्शसोः शिः' ॥ 'नपुंसकस्य भ्रलव' इति नुम् । सर्व-
नामस्थाने चासंबुद्धा'विति नान्तस्याङ्गस्यापधाया दीर्घः । हे व्यतिभवमा-
नेत्यत्रा'तोमि'त्यम्भावेऽपि पूर्वत्वे 'एङ्ह्रस्वा'दिति संबुद्धेर्हलो मकारस्य

* स्थुनामिति २ पु. नास्ति ।

लोपः । तृतीयादि पुल्लिङ्गवत् । 'लटः सट्टे'ति लट इव लटोपि शतृशान-
चोर्विधानाद् भविष्यन्नित्यादि लङ्गवत् सर्वमुदाहार्यम् । तत्र स्त्रियां नपुं-
सके द्विवचने चा'च्छीनद्योर्नुमि'ति नुम्विकल्पो विशेषः । अत्रानुवृत्त
शतृग्रहणं स्वावयवे वर्तते । तेनावर्णान्तादङ्गात् परो यः शत्रवयवस्तद-
न्तस्याङ्गस्य शीनद्योः परयोर्वा नुमिति सूत्रार्थः, अथ प्राःवर्गान्तादङ्गात्
शीनद्योः परयोः शत्रन्तस्य वा नुमिति । तत्र येन नाव्यवधानमिति
तकारेण व्यवधानमाश्रयिष्यते, अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शता तदन्तस्या-
ङ्गस्येति सूत्रार्थो नेक्तः । अङ्गान्तस्य शत्रवयवस्य चान्तरङ्गत्वाच्चुमः पूर्व-
मेकादेशे व्यपवर्गभावाद्वर्गान्ताङ्गात्परस्य शतुरसम्भवात् । न चान्ता-
दिवद्भावः, 'उभयत आश्रये नान्तादिवदि'ति निषेधात्, भूतपूर्वगत्याश्र-
यणे तु लुग्विकरणादावदती घृतीत्यादावपि स्यात् । व्यतिभविष्यमाण
इत्यादा'वटकुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपी'ति णत्वम् । अडादिभिर्व्यवायेपि रषाभ्यां
परस्य समानपदस्यस्य नो ण इति सूत्रार्थः । भविष्यन्नित्यत्र तु 'पदा-
न्तस्येति निषेधाच्च भवति ॥

अथ सनादयः प्रदर्शयन्ते ॥ 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छाया
वा' ॥ यो धातुरपि कर्म समानकर्तृकश्चार्थद्वारेण तस्मादिच्छाया वा सन्
स्यात्, नकारो निर्देशादर्थः ॥ 'सनि यद्गुहोश्च' ॥ ग्रहिगुहिभ्यामुगन्ता-
देकाचश्च परस्य सनो नेडितीङ्निषेधः । 'इको भलि'ति इगन्ताद्वातोः
परस्य भलादेः सनः किं वाच गुणः ॥ 'सन्त्यडोः' ॥ एतदन्तस्य प्रथमैकाचो
द्वे भवतो ऽजादेस्तु द्वितीयस्येति द्वित्वेऽभ्यासकार्यम् । 'सनाद्यन्ता धातव'
इति सनादिणिङ्पर्यन्तानां प्रत्ययान्तानां धातुत्वात्पूर्ववत्लडादिषु तिबा-
दयः । बुभूषतीत्यादि । लिटि तु ॥ क'सप्रत्ययाद्गमन्त्रे निटि ॥ कास-
प्रत्ययान्ताच्च धातोर्लिटि पर आम्प्रत्यय इत्याम् । अकारो मकारपरिचा-
णाय । सूत्रे त्वत् एव निर्देशात्पररूपम् । अमश्चाटुर्धातुकत्वादतो लोप
आटुर्धातुकइति सनोऽकारस्य लोपः । 'आम' इत्यामः परस्य लेलुक् ।
प्रत्ययलक्षणत्वेन कृदन्तत्वादुत्पन्नस्य सुपः स्वरादिष्वामिति पाठादव्यय-
त्वाङ्गुक् । तत्र यद्यमा साहचर्यादामपि तद्वित्त एवेत्युच्यते तर्ह्य'म' इत्येव

लुभविष्यति । लिङ्यहणं तु तत्र निर्वर्तिष्यते । अत्राभन्तस्याव्यक्तपदार्थकत्वात्पदत्वाय प्रथमातिक्रमे कारणाभावात्पुनरेवास्यद्वये । तस्य हल्-इयादिलोपः सिद्ध इति किं लुको विधानेनेति । यदा तु प्रयोगवशाद् द्वित्वाद्यभिव्यक्तौ द्विवचनाद्युत्पद्यते तदर्थं लुगेषितव्यः ॥ 'कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि' ॥ आभन्तस्य पश्चादेवाव्यवहिता एव कृभ्यस्तय एव लिटपराः प्रयोक्तव्याः । अत्रा'भूततद्भावे कृभ्यस्ती'ति कृशब्दस्य कृञो द्वितीयेति अकारेण प्रत्याहारनिर्देशात् कृजिति कृभ्यस्तय उच्यन्ते । बुभूषा चकार । बुभूषां बभूव । अत्र 'मोनुस्वारः' ॥ पदान्तस्य मोनुस्वारो हलीत्यनुस्वारे तस्य 'वा पदान्तस्ये'ति यजि परे विधीयमानः परसवर्णविकल्पो भवति । अनुस्वारः पञ्चउदाहार्यः । 'आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्ये'त्यत्र पूर्ववदित्यनुवृत्त्या पूर्ववत् कृञोऽनुप्रयोगस्येति द्वितीयोऽपि योगः सपद्यते । तत्राद्य आम्प्रत्ययप्रकृतेरिवाकर्त्रभिप्रायेष्यनुप्रयुज्यमानस्य कृञ आत्मनेपदं प्राकरणिकं विधत्ते । द्वितीये त्वर्थात् पूर्वस्यैव कर्त्रभिप्राये परस्मैपदमित्यत्र आम्प्रकृतेः शेषत्वेन नित्यपरस्मैपदित्वात् कृञोऽपि परस्मैपदमेव । इदमेव कृञ्यहणमनुप्रयोगे कृजिति प्रत्याहारग्रहणमिति ज्ञापयति । अन्यथाऽनुप्रयोगस्येत्येव ब्रूयात् । बुभूषामास । अत्रा'स्तेर्भू'रित्यार्द्धधातुके विषये विधीयमानो भूभावाऽनुप्रयोगे प्रत्याहारग्रहणसामर्थ्यान्न भवति । अन्यथा प्रतिपत्तिलाघवाय कृभ्येत्येव ब्रूयात् । बुभूषिता । इद्व्यतो लोपो गुणं परत्वाद् वाणोदाङ्गमिति वा बाधते । बुभूषिष्यति । बुभूषतु । अबुभूषत् । बुभूषेत् । आशिषि । बुभूष्यात् । 'अतो येयो' न भवति । आर्द्धधातुकत्वात् । अत्रा'कृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घ' इति अकृद्यकारेऽसार्वधातुके च परेऽजन्तस्याङ्गस्य विधीयमानो दीर्घो 'ण्यल्लोपाविद्यङ्गुणवृद्धिर्दीर्घभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेने'त्यल्लोपेन बलीयस्त्वेन बाध्यते । अबुभूषीत् । 'अस्तिसिचोऽपृक्त'इति इडागमे 'इट ईटी'ति सिचो लोपः । 'सिजलोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्य' इति सिजलोपस्य पूर्वत्रासिद्धत्वाभावात्सवर्णदीर्घः । अबुभूषिषुः । 'सिजभ्यस्तेति' लुप् । अबुभूषिष्यत्

अथात्मनेपदम् ॥ व्यतिबुभूषते । व्यतिबुभूषां चक्रे । 'आम्-

प्रत्ययवदि'ति नित्यस्तङ् कृजः । व्यतिबुभूषां बभूव । आसेति वा । व्यतिबुभूषितासे । व्यतिबुभूषिष्यते । व्यतिबुभूषताम् । व्यत्यबुभूषत । व्यतिबुभूषेत । आशिषि व्यतिबुभूषिषीष्ट । व्यत्यबुभूषिष्यत । सर्वत्र 'पूर्ववत्सन' इति तङ् । सनः पूर्वा धातुर्येन निमित्तेनात्मनेपदी सनन्तमपि तेनैव तथेत्यर्थः ॥

अथ भावकर्मणोः ॥ बुभूष्यते त्वया । अनुबुभूष्यते सुखम् । यक्य-
'कृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घ' इति दीर्घं बाधित्वा'ति लोपः' पूर्वविप्रतिषेधेन भवति । बुभूषां चक्रे भवता । अनुबुभूषां चक्रे सुखम् । बुभूषामासइति वा । इहानुप्रयुज्यमानस्यामन्तार्थाभिव्यक्तिमात्रकरत्वात् करोतेर्भावे, इतराभ्यामकर्मकत्वाद् भावउपपद्यते । प्रयुज्यते चैव'रोमन्यमन्यरचलदुरुसासु-
मासां चक्रे निमीलदलसेक्षणमौलकेण' । 'प्रकाशेनाकाशे दिनकरकरान्वि-
क्षिपट्टिस्मिताक्षैर्नरेन्द्रैरपेन्द्रं वपुरथ विशद्वाम वीक्षां बभूव' इति । 'ह एति'
इत्यस्तेर्हत्व तासिसाहचर्यात्सार्वधातुकोत्तमैकवचने एवेतीह 'लिटस्तभ-
यो'रिति तशब्दस्यैशीटश्चैत्वे न भवतीति । के चित्तु तासेः क्तमैकवचन-
मेकारः संभवतीत्येतावन्मात्रसाहचर्याश्रयेण लिङुत्तमैकवचनेपि हत्वमि-
च्छन्ति । तत्र साहचर्यसंकोचे कारणं न विदुः । लङ्लटोराशीर्लिङि लुङि
च कर्तृवदेव रूपम् । न च चिण्वदिटि वृद्धौ चा'ति युक् चिण्कृतो'रित्या-
कारान्तस्य चिणि ङिति कृति च परे युको विधानाद्रूपभेदप्रसङ्गः, एयल्लो-
पावित्यादिना वृद्धेरतो लोपेन बाधस्योक्तत्वात् । लुङेकवचने तु चिणो
विधानात् तत्राबुभूषीति विशेषः । तथा लोटि लङि विध्यादिलिङि
कर्तृवत् प्रक्रिया । यक् तु विशेषः । कर्मकर्तरि 'भूषाकर्मकिरादिसनां चो-
पसंख्यानमन्यत्रात्मनेपदा'दिति यक्चिणोर्निषेधात्सर्वत्र कर्तृवद्रूपम् । वत्क-
रणात्स्वाश्रये भावे लकारे यक्चिणोर्विषये कर्मवद्रूपम् । कर्तरि तृतीया
विशेषः । अभिबुभूष्यते शत्रुणा स्वयमेवेत्यादि । इच्छायाः कर्तृस्यत्वेन
कर्मस्यत्वाभावेऽपीष्यमाणस्य प्राधान्यात्तस्य च कर्मस्यत्वादस्ति कर्मव-
द्भावः । अत एव 'भूषाकर्मति' यक्चिणो निषिध्यते ॥

अथ यङ् ॥ 'धातोरैकाचे हलादेः क्रियासमभिवहारे यङ्' ॥ पौनः-

लुभविष्यति । लिङ्यहणं तु तत्र निवर्तिष्यते । अत्राप्रन्तस्यात्र्यक्तपदा-
र्थकत्वात्पदत्वाय प्रथमातिक्रमे कारणाभावात्सुरेवोत्पद्यते । तस्य हल्-
इयादिलोपः सिद्ध इति किं लुको विधानेनेति । यदा तु प्रयोगवशाद्
द्वित्वाद्यभिव्यक्तौ द्विवचनाद्युत्पद्यते तदर्थं लुगेषितव्यः ॥ 'कृञ् चानुप्रयुज्यते
लिटि' ॥ आप्रन्तस्य पश्चादेवाव्यवहिता एव कृभ्यस्तय एव लिट्पराः प्रयो-
क्तव्याः । अत्रा'भूततद्भावे कृभ्यस्ती'ति कृशब्दस्य कृजो द्वितीयेति अकारेण
प्रत्याहारनिर्देशात् कृजिति कृभ्यस्तय उच्यन्ते । बुभूषां चकार । बुभूषां बभू-
व । अत्र 'मोनुस्वारः' ॥ पदान्तस्य मोनुस्वारो हलीत्यनुस्वारे तस्य 'वा पदान्त-
स्ये'ति यजि परे विधीयमानः परसवर्णविकल्पो भवति । अनुस्वारः पञ्चउदा-
हार्यः । 'आम्प्रत्ययवत् कृजोऽनुप्रयोगस्ये'त्यत्र पूर्ववदित्यनुवृत्त्या पूर्ववत् कृजो
ऽनुप्रयोगस्येति द्वितीयोऽपि योगः सपद्यते । तत्राद्य आम्प्रत्ययप्रकृतेरिवा-
कर्त्रभिप्रायेऽनुप्रयुज्यमानस्य कृज आत्मनेपद प्राकरणिकं विधत्ते । द्वितीये
त्वर्थात् पूर्वस्येव कर्त्रभिप्राये परस्मैपदमित्यत्र आम्प्रकृतेः शेषत्वेन नित्य-
परस्मैपदित्वात् कृजोऽपि परस्मैपदमेव । इदमेव कृज्यहणमनुप्रयोगे
कृजिति प्रत्याहारग्रहणमिति ज्ञापयति । अन्यथाऽनुप्रयोगस्येत्थेव ब्रूयात् ।
बुभूषामास । अत्रा'स्तेभू'रित्यार्द्धधातुके विषये विधीयमानो भूभावोऽनुप्र-
योगे प्रत्याहारग्रहणसामर्थ्याच्च भवति । अन्यथा प्रनिर्णयनाय ऋभ्य-
त्येव ब्रूयात् । बुभूषिता । इत्यतो लोपो गुणं परत्वाद् वार्णोदाङ्गमिति वा
बाध्यते । बुभूषिष्यति । बुभूषतु । अबुभूषत् । बुभूषेत् । आशिषि । बुभू-
ष्यात् । 'अतो येयो' न भवति । आर्द्धधातुकत्वात् । अत्रा'कृत्सार्वधातुक-
योर्दीर्घ' इति अकृद्यकारेऽसार्वधातुके च परेऽजन्तस्याङ्गस्य विधीयमानो
दीर्घो 'एयल्लोपात्रियङ्यण्गुणवृद्धिर्दीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेने'त्यल्लोपेन
बलीयस्त्वेन बाध्यते । अबुभूषीत् । 'अस्तिसिचोऽपृक्त' इति इडागमे 'इट्
ईटी'ति सिचो लोपः । 'सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्य' इति सिज्-
लोपस्य पूर्वत्रासिद्धत्वाभावात्सवर्णदीर्घः । अबुभूषिषुः । 'सिजभ्यस्तेति'
जुस् । अबुभूषिष्यत्

अथात्मनेपदम् ॥ व्यतिबुभूषते । व्यतिबुभूषां चक्रे । 'आम्-

प्रत्ययवदि'ति नित्यस्तङ् कृजः । व्यतिबुभूषां बभूव । आसेति वा । व्यतिबुभूषितासे । व्यतिबुभूषिष्यते । अनिबुभूषताम् । व्यत्यबुभूषत । व्यतिबुभूषेत । आशिषि व्यतिबुभूषिषीष्ट । व्यत्यबुभूषिष्यत । सर्वत्र 'पूर्ववत्सन' इति तङ् । सनः पूर्वा धातुर्येन निमित्तेनात्मनेपदी सनन्त-मपि तेनैव तथेत्यर्थः ॥

अथ भावकर्मणोः ॥ बुभूष्यते त्वया । अनुबुभूष्यते सुखम् । यक्य-
'कृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घ' इति दीर्घं बाधित्वा'तो लोपः' पूर्वविप्रतिषेधेन
भवति । बुभूषां चक्रे भवता । अनुबुभूषां चक्रे सुखम् । बुभूषामासइति वा ।
इहानुप्रयुज्यमानस्यामन्तार्याभिव्यक्तिमात्रकरत्वात् करोतेर्भावे, इतराभ्या-
मकर्मकत्वाद् भावउपपद्यते । प्रयुज्यते चैव'रामन्यमन्यरचलद्रुहसास्त्र-
मासां चक्रे निमीलदलसेतणमौत्तकेण' । 'प्रकाशेनाकाशे दिनकरकरान्वि-
क्षिपद्विस्मिताक्षैर्नेन्दैरौपेन्द्रं वपुरथ विशद्वाम वीक्षां बभूव' इति । 'ह एति'
इत्यस्तेर्हत्व तासिसाहचर्यात्सार्वधातुकोत्तमैकवचने एवेतीह 'लिटस्तभ-
यो'रिति तशब्दस्यैशीटश्चैत्वे न भवतीति । के चित्तु तासेस्तमैकवचन-
मेकारः सभवतीत्येतावन्मात्रसाहचर्याश्रयेण लिङुत्तमैकवचनेपि हत्वमि-
च्छन्ति । तत्र साहचर्यसंकोचे कारणं न विद्वः । लङ्लटोराशीर्लिङि लुङि
च कर्तृवदेव रूपम् । न च चिण्वदिटि वृद्धौ चा'तो युक् चिण्कृतो'रित्या-
कारान्तस्य चिणि ङिणति कृति च परेयुको विधानाद्रूपभेदप्रसङ्गः, एयल्लो-
पावित्यादिना वृद्धेरतो लोपेन बाधस्योक्तत्वात् । लुङेकवचने तु चिणो
विधानात् तत्राबुभूषीति विशेषः । तथा लोटि लङि विध्यादिलिङि
कर्तृवत् प्रक्रिया । यक् तु विशेषः । कर्मकर्त्तरि 'भूषाकर्मकिरादिसना चो-
पसंख्यानमन्यत्रात्मनेपदा'दिति यक्चिणोर्निषेधात्सर्वत्र कर्तृवद्रूपम् । वत्क-
रणात्स्वाश्रये भावे लकारे यक्चिणोर्विषये कर्मवद्रूपम् । कर्त्तरि तृतीया
विशेषः । अभिबुभूष्यते शत्रुणा स्वयमेवेत्यादि । इच्छायाः कर्तृस्यत्वेन
कर्मस्यत्वाभावेऽपीयमाणस्य प्राधान्यात्तस्य च कर्मस्यत्वादस्ति कर्मव-
द्भावः । अत एव 'भूषाकर्मति' यक्चिणौ निषिध्यते ॥

अथ यङ् ॥ 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' ॥ पौनः-

पुन्य भृशार्थो वा क्रियायां समभिहारस्तत्र द्योत्ये एव विधाट्वातोयङ् स्यात् ।
 द्विर्वचनादि पूर्ववत् । 'गुणो यङ्लुको.' ॥ यङि यङ्लुकि चाभ्यासस्येको
 गुण इति गुणः । बोभूयते । 'अनुदात्तङित' इत्यादिना ऽऽत्मनेपदम् ।
 यङो ङकारस्य गुणप्रतिषेधार्थत्वेनावयवे चरितार्थत्वाच्च समुदायार्थत्व-
 मिति यङन्तस्य धातोर्ङिभ्यान्कयमात्मनेपदमिति नाशङ्कम्, तत्र
 धातुग्रहणाभावात् ङिन्मात्रात्परस्य तस्य तद्विधेः । अनुदात्तेतो ये
 धातवो ङितश्चेति प्रायिकाभिप्राय वृत्तिकारवचनम् । अथ वा 'ङितश्चे'-
 त्यत्र शब्दादित्यध्याहार्यम् । अत एवानुदात्तेतो ङितश्च ये धातव इति
 नोक्तम् । ङडादिष्विति प्रसङ्गपरिहारस्तत्र तत्र वक्ष्यते । बोभूयते त्वया ।
 अनुबोभूयते सुखमित्यादि सनन्तवत्प्रक्रिया । कर्मवत्कर्मकर्ता । लुङि
 तशब्दे 'अचःकर्मकर्तरी'ति चिणो विकल्पनात्पक्षे सिजपि भवति । तेना-
 भ्यबोभूयि शत्रुः स्वयमेव, अभ्यबोभूष्ट इति च । वत्करणाद्भावे लकारे
 नित्यं चिणैव । अभ्यबोभूयि शत्रुणा स्वयमेवेति ॥

अथ यङ्लुक् ॥ 'यङोऽचि' च ॥ यङोऽचि प्रत्यये नित्यं लुक् ।
 चकारेण बहुलग्रहणानुकर्यणादय विकल्पेनानैमित्तिकोऽपि । प्रत्ययलक्ष-
 णेन यङन्तत्वाद्वातुत्वे लडादि । द्विर्वचनम् । आत्मनेपद तु ङिन्मात्रात्तद्विधेः
 प्रत्ययलक्षणत्वाभावाच्च भवति । 'चर्करीत परस्मैपदि अदादिबच्चे'ति
 वचनाद् 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' । इत्यदादिभ्य उत्तरस्य शपो विधीयमानो
 लुग्यङ्लुगन्तेऽपि भवति । चर्करीतमिति यङ्लुगन्तस्य पूर्वोच्चार्यव्यपदे-
 शः । अत्र परस्मैपदीत्यनुवादो न विधिरित्याहुः ॥ 'यङो वे'ति यङ्लुग-
 न्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य वा ईडागमः । बोभवीति । बोभो-
 ति । 'भूसुवोस्तिङी'ति गुणनिषेधोत्र न भवति 'दाधर्त्ति'सूत्रे बोभूत्विति
 गुणाभावार्थान्निपातनाञ् ज्ञापकात् । इदमेव प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापि
 ग्रहणमित्यत्र ज्ञापकम् । बोभूतः । बोभुवति ॥ 'अदभ्यस्तात्' ॥ अभ्यस्ताद-
 ङ्गात्परस्य प्रत्ययादेर्ङकारस्यादित्यदादेशे उवडादेशः ॥ 'उभे अभ्यस्तम्' ॥
 अस्मिन्प्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे अपि समुदिते अभ्यस्तम् । तथा
 'जितित्यादयः षङि'ति । जत्त एतदादयो जाय दरिद्रा शास् दीधीङ् वेवीङ्

चक्रास्, बोभवां चकार । पूर्ववत् कृजोनुप्रयोगस्येति कृजो नित्य परस्मैपदम् । बोभविता । बोभविष्यति । बोभवीतु । बोभोतु । बोभूतादित्यत्र तातडो ङित्वाच्च गुणः । 'सार्वधातुकमपिदि'त्यस्य प्रसज्यप्रतिषेधत्वात्तत्र च ङिदित्यनुवृत्तेस्तस्य च श्रूयमाणस्य पितश्चोद्वेश्योपादेयत्वव्यत्ययेन पित्व ङित् ङिच्च पिदित्यर्थेद्वयस्य भाष्ये समाश्रयणात्तातडः स्यानिवत्त्वप्राप्त पित्व ङित्वेनानवकाशेन निवार्यतइति ईडभावः । बोभूहि । 'सिह्यपि-
च्चे'ति पित्वनिषेधादीङ्गुणौ न भवतः । बोभूवानि । बोभवाव । आहुत्तमस्य पित्वात् उवङ् बाधित्वा परत्वाद्गुणो भवति । अहलादित्वादीडभावः । अबोभवीत् । अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभवुः । 'सिजभ्यस्ते'ति जुसि 'जुसि चे'तीगन्तस्याङ्गस्य गुणः । बोभूयात् । यासुटो ङित्वेन पित्वस्य निवर्त्तनादीटोभावः । आशिषि त्वनार्धधातुस्त्वेन लिङः सलोपाभावो विशेषः । बोभूरित्यत्र जुसभावे 'उस्यपदान्तादि'ति पररूपत्वम् । यासुटो जुसभक्तत्वेन 'जुसी'ति गुणोत्र न भवति, येन नाप्राप्तित्यायेन 'सार्वधातुकमपिदि'-
तित्यदिष्टङित्वाश्रयस्य निषेधस्यैव तेन बाधात्, तत्र 'क्सस्याची'त्यतोची-
त्यधिकारादजादौ जुसि तद्विधानाद्वा । अबोभोत् । अबोभूवीत् । अबो-
भूताम् । अबोभवन् । 'गातिस्ये'ति सिचो लुक् । 'यडो वे'तीटो विकल्पः । सिचः प्रत्ययलक्षणेना'स्तिसिव' इति नित्यस्तु न भवति, श्रूयमाणे सिची-
त्युक्तत्वात् । ईटपक्षे 'भुवो वुगि'त्यजादिलक्षणे वुङ्गित्यत्वाद्गुणं बाधते ।
अबोभूवन्नित्यत्र सिचः प्रत्ययलक्षणेन 'सिजभ्यस्ते'ति जुसभाव 'आत'
इति नियमाच्च भवति । अभ्यस्ताश्रयस्तु विदिसाहचर्याल्लङ्विषय इति
नेह प्रसज्यते । विदेह्यव्यवहितो भिल्लङ्येव संभवति । न च सिचा साह-
चर्याल्लङ्विषयोपि स्यादिति वाच्यम् । 'विप्रतिषेधे परमि'ति परसाहचर्यस्य
बलीयस्त्वात् । अबोभविष्यदित्यादि ॥

अथात्मनेपदम् ॥ व्यतिबोभूते । व्यतिबोभुवाते । अजादावुवङ् ।
व्यतिबोभवां चक्रे । व्यतिबोभवा बभूव । 'आम्प्रत्ययवदि'ति कृजो नित्यं
तङ् । व्यतिबोभवितासे । व्यतिबोभविष्यते । व्यतिबोभूताम् । व्यतिबो-
भुवाताम् । अजादावुवङ् । उत्तमे पित्वाद् गुणः । व्यतिबोभवै । व्यत्य-

बोभूत । व्यत्यबोभुवाताम् । व्यत्यबोभुवि । पूर्ववदुवडजादौ । व्यति-
बोभुवीत । व्यतिबोभुवीयाताम् । व्यतिबोभुवीय । पूर्ववदजादावुवड् ।
आशिषि व्यतिबोभविपीठ । आर्द्धधातुक्रत्वादिङ्गुणौ । ध्वमि 'विभाषेठ'
इति मूर्द्धन्यविकल्पो द्रष्टव्यः । व्यत्यबोभविष्यत् । ध्वमि पूर्ववन्मूर्द्धन्यवि-
कल्पः । व्यत्यबोभविष्यत् । भावकर्मणोः कर्मकर्तरि च बोभूयते त्वये-
त्यादि सर्वं प्रकृतिवक्ष्यमभ्यास एको विशेषः ॥

अथ सत् ॥ बोभुवद् ब्राह्मणः । उगिल्लक्षणे नुम् 'नाभ्यस्तादि'ति
निषेधते । बोभुवती स्त्री । बोभुवती कुले । स्त्रियां नपुंसकद्विवचन-
योश्च नित्यत्वादन्तरङ्गत्वाच्च नुमः पूर्वं शपो लुप्तङ्गस्य नपुंसानुनन्वा-
'दाच्छीनद्यो'रिति विकल्पितो नुम् न भवति । नापि 'शप्श्यनोरि'ति नित्य-
स्तस्यावर्णोत्परशतृविषयत्वात् । न च प्रत्ययलक्षणेनात्परत्व, तस्याप्रत्यय-
लक्षणत्वात् । बोभुवति कुलानि । बोभुवन्ति कुलानीत्यत्र तु शौ 'नाभ्य-
स्ता'दिति निषेधस्य 'वा नपुंसकस्ये'ति विकल्पनात् पक्षे नुम् भवति ।
व्यतिबोभुवानः । लडादेशस्य तु स्येन व्यवधानादभ्यस्तात्परत्वाभावा'वा-
भ्यस्ता'दिति निषेधो न भवति । नापि 'वा नपुंसकस्ये'ति विकल्प इति
सर्वं प्रकृतिवत् ॥

अथ णिच् ॥ हेतुमति च ॥ स्वतन्त्रस्य कर्तुः प्रयोजको हेतुः
तद्व्यापारः प्रेषणादिहेतुमान् स च कर्ता मा विरंसीदिति तत्र धातोरिण्च्
स्यात् । णकारो वृद्धर्थः । चकारो णिच्णिङोः सामान्यग्रहणाविघातार्थः ।
सनाद्यन्तत्वाद्वातुत्वे लडादयः । तेषां 'णिवश्चे'ति क्रियाफलस्य कर्तृगा-
मित्वे तड् । अन्यथा तु परस्मैपदम् । भावयते सस्यम् । भावयति सस्यम् ।
यदा तु फलस्य कर्तृगामित्वमुपपदेन प्रतीयते तदा 'विभाषोपपदेन प्रती-
यमान'इति परस्मैपदमपि भवति, स्वस्य सस्य भावयतीति । यदा चित्त-
वत्कर्तृकादकर्मकादस्माणिण्च् तदा क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वे'प्यणावकर्म-
काच्चित्तवत्कर्तृकादि'ति परस्मैपदम् । पुत्रं भावयतीति ॥ 'विभाषोपपदाद-
प्ययमेवविप्रतिषेधेन' ॥ स्वं पुत्रं भावयतीति । 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्द-
कर्मोक्तकर्मकाणामणि कर्ता स णा'वित्यणौ कर्ता णौ कर्म । भावयां चक्रे,

चकार, बभूव, आस । 'अयामन्तात्वायेत्विष्णुष्वि'ति आमादिषु विधीय-
मानो खेरयादेशो 'खेरनिटी'त्यनिडादावार्द्धधातुके विधीयमान णिलोप-
मपवादत्वाद्वाधते । यदायं एयन्तः चित्तवत्कर्तृकत्वेन नित्य परस्मैपदी
तदा तु प्रयुक्तः करोतिरपि पूर्ववत् कृजानुप्रयोगस्येति भिन्नेन कल्पितेन
योगेन परस्मैपदमेव । भावयिता इत्यादि प्रकृतिवत् । आशीर्लिङि 'खेर-
निटी'ति णिलोपः, स चा'कृत्सर्वधातुकयो'रिति दीर्घं एयल्लोपावित्या-
दिना बाधतइति भाव्यादित्यादि भवति । आत्मनेपदे त्विडादित्वा-
णिलोपो नेति गुणयादेशयोर्भावयिषीष्टेत्यादि । ध्वमि 'विभाषेट' इति
मूर्धन्यविकल्पः । लुङि 'णिश्रिद्रुसुभ्यः कर्तरि चङि'ति सिजपवादश्चङ् ।
चकारङ्कारौ विशेषणार्थौ, णिलोपः । 'लौ चङुपधाया ह्रस्व' इति
चङ् परे णावङ्गस्योपधाया ह्रस्वः । 'चङी'त्यनभ्यासस्य चङ्परस्य धातोः
प्रथमस्यैकाचो ऽजादेस्तु द्वितीयस्येति द्विवचने कर्तव्ये लौ कृत स्यानि-
वदितिरूपस्यानिवत्त्वे भूशब्दो भौशब्दो वा द्विरुच्यते । तत्र भौश-
ब्दस्य द्विवचनपक्षेऽपि 'ह्रस्व' इति भौशब्दस्य ह्रस्वो भवत्येव । 'एच
इग्रस्वादेश'इति नियमादिगभवन्नान्तरतम्यादुकारः । तस्य च 'ओः
पुयण्ज्यपर'इतीकारः । उवर्णान्तस्याभ्यासस्यावर्णपरे पवर्गे यणि
जकारे च परत इकार इति सूत्रार्थः । तस्य 'दीर्घा लघो'रिति दीर्घः ।
चङ्परे लौ यदङ्गं तदभ्यासस्य लघोर्लघुनि धात्वन्तरे परे दीर्घा भवति
अनग्लोपइति सूत्रार्थः । इदमेवेत्ववचनं ज्ञापकं लौ कृतस्य स्यानिवत्त्वे ।
अन्ययोवर्णान्ताभ्यासो न कश्चिदपि स्यात् । नन्वत्र 'सन्वल्लघुनि
चङ्परे ऽनग्लोप'इति चङ्परे लौ यदङ्गं तदभ्यासस्य लघुनि परेऽन-
ग्लोपे सन्वत्कार्यातिदेशादित्वं सिद्धं, सन्वत्कार्यं चेत्यमेव । 'सन्वत्त'
इति सनि परेऽभ्यासाकारस्येत्वविधानात्किं लौ कृतस्य स्यानिवत्त्वेन
येनोःपुयण्जीति वक्तव्यं स्यात्सत्य, मत्र सन्वद्भावेनापि सिद्ध्यति, जुहाव-
यिषतीत्यादावप्येवं स्यात् । अवीभवत् । नन्वत्र यङ् इव चङो ङित्वेन
तङ् स्यादिति चेत्, न । विकरणात्पूर्वं नियमाप्रवृत्तेः । अत्र च ज्ञापकं
'वृद्धाः स्यसुनो'रिति स्यसुनोस्तङो विकल्पनम् । पूर्वं तु विकरणे तेन

व्यवधानान्नानुदात्तेनानन्तरस्तडस्ति नापि शेषादित्यात्मनेपदपरस्मैपद-
नियमयोरत्राप्रसङ्गादेवात्मनेपदपरस्मैपदयोर्लस्य तिबादय इति सामा-
न्येन लसिद्धेः किमनेन विकल्पवचनेन ॥

अथ कर्मणि ॥ एतन्तस्य सकर्मकत्वाद्वावासंभवः । तत्र लटलो-
टलङ्विध्यादिलिङ्त्तु यकि विकरणे णिलोपे भाव्यते । भाव्यताम् ।
अभाव्यत । भाव्यतेत्यादि । अतो ऽन्येषु लुङ्व्यतिरिक्तेषु कर्तृवद्रूपम् ।
लुङि तु कर्तरि चङो विधानात्सिजेव । तशब्दे तु चिणि अभावि ।
अभावयिषाताम्रित्यादि । तत्र चिणि णिलोपः । अन्यत्र गुणायदेशे,
ध्वमि 'विभाषेट' इति मूर्धन्यविकल्पः । स्याद्विषु चिण्वदिट्पक्षे 'असि-
द्ववदत्राभादि'ति चिण्वदिटो ऽसिद्वत्त्वाणिलोपे भाविष्यते । अभावि-
ष्यत । अभावयिषाताम् । भाविषीष्ट । भावितेत्याद्यपि द्रष्टव्यम् ।
अत्रापि षीध्वलुङोर्धकारस्य पूर्ववद्वा मूर्धन्यः । कर्मकर्तरि तु 'यक्चिणोः'
प्रतिषेधे णिअन्यिर्नन्यिद्भुज्त्वेनेपदाकर्मकाराणामुपसंख्यानमिति यक्चि-
णोर्निषेधादयथायोगं सर्वत्र कर्तृवद्रूपं स्याद्विषु तु कर्मवत् । वत्करणा-
द्भावे तु कर्मधदुदाहार्यं, कर्तरि तृतीया विशेषः । णिअन्यीति यक्चि-
णोर्निषेधः कर्मकर्तरीति लस्त* एव ॥

अथः कृतः प्रदर्शयन्ते ॥ भव्य भवता । अनुभव्यो घटः । 'अचो-
यदि'ति यत् । अयं 'कर्तरि कृदि'ति कर्तरि प्राप्तोऽपि 'कृत्याः प्राङ्
खुलः' ॥ इति तव्यादीनां खुलः प्राचा कृत्यसञ्ज्ञाविधानात् 'तयोरैव कृत्य-
क्तखलरथा' इति भावकर्मणोर्नियम्यते । 'भय्यगेयप्रववनीयोपस्थानीयज-
न्याप्लाव्यापात्या वा' इतिनिपातनात् कर्तरि अपि भवति । अत्र वाय-
हणा'तयोरैवे'ति सामान्यस्य बाधां विज्ञापयति । उदाहरणेषु गुणे
'वान्तो यि प्रत्यये' इत्यवादेशः । अत्र वान्त इति पूर्वसूत्रनिर्दिष्टाव-
वावाबुध्यते, तौ च तत्र यथासख्यादौदौतोतितीहापि तथैव । अनेन
विशेषविहितेन यता सामान्यविहितानां तव्यतव्यानीयरां न बाधः ।

* इह ल एवेति २ पु. पा. ।

‘वाऽसरूपो ऽस्त्रिया’मित्यस्यधिकारविहितस्यासरूपप्रत्ययस्य पक्षे बाध-
 कत्ववचनात् । तस्यतव्यतोः स्वरे षष्ठीसमामनिषेधे च विशेषः । भवि-
 तव्य, भवनीयम् । अनीयरो रेफ ‘उपोत्तमं रिती’त्युपोत्तमस्योदात्तार्थः ।
 अवश्यभाव्यम् । ‘आरावश्यक’इत्यवश्यभावे द्योत्युवर्णान्तलक्षणो
 ण्यत् । वृद्धौ ‘वान्त’ इत्यावादेशः । पूर्ववदनेनापि तव्यादीनां न बाधः ।
 यत्तु सरूपत्वाद्वाध्यते ‘नानुबन्धकृतमसारूप्यमि’त्युक्तम् । अवश्यमो
 मकारस्य ‘लुप्तेदवश्यमः कृत्ये तु काममनसारपी’ति समासे लोपः । समा-
 सस्तु ‘मयूरव्यसकादपश्चे’ति तत्पुरुषः । मयूरव्यसकादिराकृतिगणः ।
 देवभूयं गतः । देवत्व गत इत्यर्थः । ‘भुवो भाव’इत्यनुपसर्गे सुबन्तउ-
 पपदे भुवः क्यप् । कित्वाच्च गुणः । अनुपपदादुपसृष्टाच्चाचो यदेव ।
 ‘उपपदमतिङि’ति तत्पुरुषो नित्य समासः । उपपदं सुबन्त समर्थेन
 नित्यं समस्यते समासोतिङन्तश्चेति सूत्रार्थः । इदमेवातिङ्यहणमत्र
 सुपेत्यस्यासबन्धे ज्ञापकम्, तथा योगविभागेन ‘कुगतिप्रादय’ इत्यत्रापि
 सबध्यतइति तत्रापि सुपेत्यस्यासंबन्धं ज्ञापयति । तेन ‘गतिकारको-
 पपदानां कृद्धिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेरिति’पूर्वाचार्यपरि-
 भाषार्थः सगृहीतो भवति । अस्य प्रयोजनमुत्तरत्र दर्शयिष्यते ।
 ‘तत्रोपपदं सप्तमीस्यमि’ति तृतीये धात्वधिकारे सप्तम्या निर्दिष्टस्यो-
 पपदसज्ञा । धात्वधिकारादेव तृतीये धात्वधिकारइति सिद्धे तत्रग्रहणं
 योगविभागेनाधिकृतेन प्रत्ययपदेन सबध्यते । तेनायमर्थस्तत्रोपपदे सत्येव
 प्रत्यय इति । अभिभावी । अभिभूयान्तिचर्यः । अभिभावीभूत इति,
 यद्वा दौ णिन्यन्तो निपातितः । परिभवी । परिभावी । अत्रैव निपातना-
 णिनौ पक्षे वृद्धाभावः । अभावी । अचामचित्तकर्तृकाणामिति यद्वादि-
 पाठाणिनिः । अत्र प्रतिपिठानामित्यनुवृत्तेरयं प्रत्ययो नञ्पूर्वादेव ॥
 ‘नञ्’ ॥ नञ् समर्थेन सुबन्तेन समस्यतइति तत्पुरुषसमासः । ‘न
 लोपो नञ्’ इति उत्तरपदे नलोपः । ‘सर्वनामस्याने चासंबुद्धावि’ति
 नान्ताङ्गत्वादुपधादीर्घः सर्वत्र ‘इन्हन्पूर्वार्थम्या शौ’ । ‘सौ चे’ति उपधा-
 लक्षणदीर्घमत्रस्य शौ सावेवेति निगमादभिभाविनायिन्यादौ न भवति ।

पदान्ते 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'ति नलोपः । संबुद्धौ तु 'न हिंस-
 बुद्धोरिति'ति निषेधाच्च भवति । परिपूर्वत्व 'प्रातिपदिकान्तनुस्विभक्तिषु
 चे'ति समासप्रातिपदिकान्तस्य नकारस्य नुस्विभक्तिस्यस्य पूर्वपदस्याचि-
 मिनादुत्तरस्य वा णत्वविधानात् पक्षे परिभाविणाविति णकार उदा-
 हार्यः । संबुद्धौ तु 'पदान्तस्ये'ति निषेधः । ननु च विकल्पमपवादत्वा-
 द्वाधित्वा 'कृत्यच' इति उपसर्गस्याचिमित्तात्परस्य कृत्यस्याचः परस्य
 नकारस्य नित्यविधीयमान णत्वं स्यात् तच्च मन्मानाऽनीयानीन्निष्ठादेशा
 इति प्रतिपद परिगण्यते । न चापवादेषु पूर्वत्रासिद्धत्वप्रसङ्गः । नैष
 दोषः । 'कृत्यच' इत्यस्य 'न भाभूपक्रमिगमिष्यायीवेपामि'ति निषेधात् ।
 स्त्रिषामृन्नेभ्यो ङीपि अभिभाविनीत्यादि । नपुसके स्वमोर्लुकि नलोपः ।
 संबुद्धौ तु 'वा नपुमक्रानामि'ति नलोपः । अभिभावित्रित्यादि । शौ
 तु 'इन्हनपूषार्यम्णा शावि'ति दीर्घं ऽभिभावीनीति । वा सरूपविधिना
 सर्वत्रात्र गुणुच्चापि भवतः । अभिभावकः । अभिभवितेत्यादि ।
 तत्र 'युवोरनाकावि'त्यन्तादेशः । यु वु इत्युत्सृष्टानुबन्धयोः प्रतिज्ञातानु-
 नासिकयणोः प्रत्यययोर्यहणम् । तृचि तु 'ऋदुशनस्पुरुदसोनेहसां चे'ति
 असंबुद्धौ सावृकारान्तानामुशन्मादीनां चाङ्गानां विधीयमानो ऽनङ्ङित्वा-
 दन्त्यादेशः, 'अपृनृत्स्वस्तनपृनेष्ट्वष्टत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणामि'त्य-
 वादीनामङ्गानामुपधायाः संबुद्धिर्वाजते सर्वनामस्थाने दीर्घविधानादीर्घं
 नलोपः । अत्र चासंबुद्धौ 'नोपधाया' इति नान्तलक्षणो वा दीर्घः । द्वि-
 वचनादौ सर्वनामस्थाने संबुद्धेरुवचने च 'ऋतो हि सर्वनामस्थानयोरिति'
 गुणः । स च 'उरण् रपरः' ॥ ऋवणस्य स्थाने ऽण् प्रसज्यमान एव रपर इति
 रपरः । तत्र संबुद्धौ 'रात्सस्ये'ति हल्ङादिना वा सुलोपे हे अभिभविन् ।
 अन्यत्र सर्वनामस्थानेऽप्य'पृत्ति'ति दीर्घं आभिभवितारावित्यादि । अभि-
 भवितृनित्यत्र पूर्वसवर्णदीर्घं 'तस्माच्छस' इति नत्वे 'पदान्तस्ये'ति णत्व-
 निषेधः । अभिभवित्रा । अभिभवितृभ्यामित्यादि । अजादौ यण् ।
 ङसिद्धसोस्तु तयोरकारस्य ऋकारस्य च 'ऋत उदि'ति उकार उभयोः
 स्थाने भवन्नप्यसावृकारस्यानिकोऽपीति पूर्ववद्रपरत्वे सलोपः । अभिभ-

वितृणामिति 'क्षभादिषु चेति एतन्निषेधे नुनमनतृप्तातिग्रहणाद् चव-
 र्णगतोऽपि रेफो एतन्निमित्तमिति 'रथाभ्यामिति एतन्वे 'नामी'ति दीर्घः ।
 अभिभवितरि । 'चतो ङी'ति गुण । स्त्रिया 'वृत्रेभ्यो ङीबि'ति ङीप् । अ-
 भिभवित्रीत्यादि । नपुंसके पूर्ववत्स्वमोर्लुक् । अभिभवितृ । औङ् । शीभावे
 'इकोचि विभक्ता'विति नुम् । अभिभवितृणी । शौ 'नपुंसकस्य कलच'
 इति नुमि 'सर्वनामस्याने चासबुद्धावि'ति दीर्घे अभिभवितृणि । अयं
 नुम् 'दृष्ट्वात्वगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेने'ति 'चतो ङी'ति गुणं बाधते ।
 तृतीयाजादौ 'तृतीयादिषु भाषितपुस्क पुंश्चालस्य'ति समानायामा-
 छतौ भाषितपुंस्कस्येगन्तस्य नपुंसकस्य पुश्चालविधानात् पुंमीव पक्षे नुम-
 भावादभिभवित्रा । अभिभवितृणा, इत्याद्युभयमपि । आमि 'नुमचिरतृ-
 ज्वद्वावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेने'ति नुटि नामी'ति दीर्घः । भवतीति भावः ।
 भवतिश्चेति वक्तव्यात्पक्षे णः । तस्याभावेऽज्विधिः सर्वधातुभ्य इत्यपि ।
 भवः । आशितो भवत्यनेनेत्याशितभव औदनः । आशितस्य भवन-
 माशितंभवः । 'आशिते भुवः करणभावयोरिति खच्, उपपदचमत्सः । 'अ-
 र्हाद्विषदजन्तस्य मुम्' इति खिदन्त उत्तरपदे ऽजन्तस्य पूर्व्यान्त्यादवः परो
 मुमागमः । आद्यभविष्णुः । आद्यभावुकः । अनाद्य आद्यो भवतीत्यर्थे
 आद्यः । गम्यूनगरितनगान्ध्रियेषु चार्थेष्वच्यन्तेषूपपदेषु 'कर्तरि भुवः
 खिण्णुक्षुक्रज'विति कर्तरि कारके खिण्णुक्षुक्रजौ । उभयत्र खित्वात्
 पूर्ववद् मुम् । खुक्रजो जित्वाट्टुट्टिः । सुभगादिष्वयेवमुदाहार्यम् । भवि-
 ण्णुः । 'भुवश्चे'ति तच्छीनवट्टुर्नस्मादुक्तारिजिष्णुत् । अस्य भाषावि-
 षयत्वं चान्द्रा इच्छति । भाष्यादौ कान्दनत्वमेव स्पष्टम् । तच्छी-
 लादौ तच्छब्देन धात्वर्थ उच्यते । तत्र फलनिर्पेक्षप्रवृत्तिः तच्छीलः ।
 धात्वर्थः कुलक्रमगतो धर्मो यस्य स तद्वर्मा । धात्वर्थे सदादपि य-
 साधु करोति स तत्साधुकारी । भूष्णुः । 'ग्लान्जिष्यश्च ग्लु'रित्यत्र
 चकारादस्यादपि ग्लुः । गित्वात्र गुणः । अत एव 'श्रुक' क्तितीतीटो
 निषेधः, भावुकः । 'लपतपदन्याभूट्ट'हनक्रमगमशृभ्य उक्तजि'ति तच्छी-
 लादभावुकः । जित्वाट्टुट्टुः । परिभवी । 'जिद्वृत्तिविश्रीखमाव्यच'भ्य

मरभिरमृभ्यश्चेति तच्छीलादाविनिः । इकारो नकारपरिचाराय ।
 वा मरूपविधिना परिपूर्वादप्युक्तं भवति । परिभावुक इति । विभूर्नाम
 कश्चित् । प्रतिभूर्धनिकाधमर्णयोर्मध्यस्यः । 'भुवः सत्तान्तरयो' रित्यनयो-
 र्गम्यमानयो क्तिप् । अन्तरशब्देन धनिकाधमर्णयोर्मध्यस्य उच्यते । सत्ता-
 न्तरे स्वभावादुपमर्गनियमः, क्तिच्चात्र गुणः । इकारो 'वेरि'ति सामान्य-
 ग्रहणार्थः । एकारस्तद्विधातार्थः । वकारस्य 'वेरपृक्तस्ये'ति लोपः ।
 त्रिभुवाविन्यद्वाचो. सुपीति धानोरवयवः सयोगो यस्मादुवर्णान्पूर्वः
 नास्ति तदन्त्यनिकाचोऽङ्गन्याजादौ सुपि यणिति प्राप्तस्य यणो 'न
 भूमधियो गिति निषेधादुवर्णः । वर्षासु भवतीति वर्षाभूः । वर्षाभ्यो ।
 वर्षाभ्यः । पूर्ववन् क्तिप् । 'सत्तायाम्' ॥ अस्या सप्तम्यन्त समस्यतइति
 तत्पुरुषः । 'क्तिप् चे'ति मोपपदनिष्पन्नद गधारणे सर्वधातुविषये क्तिप्यु-
 पपदममामो वा । 'वर्षाभ्यश्चे'त्यजादौ यण् । चशब्दो दृक्कारपुनःपूर्वस्य च
 भुवो यणार्थः । दृत्भूगञ्जो दृत्भू इति निपातितः । अत्र तु भूशब्दस्या-
 नर्थकत्वाच्च भूमधियोरित्यत्र ग्रहणाभावः सिद्ध इति कैपटे । तेनैः
 सुपीन्यस्यासृजना विक्रो यणञी त्येव यण् सिद्ध इत्यर्थः । दृम्भू इति
 मान्तमेके पठन्ति । अनुस्मृतौ कारशब्दस्य स्थाने करशब्दः पठ्यते ।
 दृत्पुनःकरवर्षामु भुव इति । कारशब्दस्यैकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् सिद्ध-
 मिति तद्विवृतौ । अत्र तीरम्यामिभूनिचन्द्रप्रभृतयो भेके वर्षाभूशब्द
 ह्रस्वान्तं प्रतिपद्यन्ते । अन एव स्त्रियां शिली गण्डूपदी भेकी वर्षाभ्यो
 कमटी हुनीति भुवश्चेति उकारान्तनक्षत्रं डीप पठन्ति । 'वर्षाभ्यश्चे'ति
 अत्र वर्षासु भवतीति वर्षा वा भवते प्राप्नोतीति वर्षाभूरोषधिविशेष
 इत्यर्थविशेषमभिधानस्य कैपटस्याप्यपमेवाशयो लक्ष्यते । तथा भागुरि-
 रपि ह्रस्वान्तं मन्यते । यथाह च ।

भार्या भेकस्य वर्षाभ्यो शृङ्गी स्यान्मदुरस्य तु ।

शिली गण्डूपदस्यापि कच्छपस्य डुलिः स्मृता ॥

इति । यादवप्रकाशस्तु भेके ऽप्युकारान्तमाह । भेक्यां पुनर्नवायां
 स्त्री वर्षाभूददुरे षणीति । तथा सुबोधनीकारोपि । भुवश्चेत्युदन्तान्

ङीष्विधानात् वर्षाभूति पाठो न युक्तः । युक्तस्तु पाठो वर्षाभू-
 कमठी डुलिरिति । एवमेवोक्त प्रक्रियारत्नेषु । वर्षासु प्रावृषि भवतीति
 वर्षाभूर्मेण्डूकः पुंस्त्वो, तेनाख्यत्वत्वाच्च ह्रस्वादय इति नदीसंज्ञा-
 यामाख्याग्रहणं नियतस्त्रीलिङ्गपरिग्रहार्थमिति तन्मतम् । कैयटेऽप्येवमु-
 क्तम् । आख्याग्रहणसामर्थ्यान्नियम आश्रीयते स्त्रियमेव यावाचक्षते न तु
 लिङ्गान्तरयुक्तमपीत्यर्थ इति । उक्तं च तत्र इष्यशनिप्रभृतीनामुभयलिङ्गानां
 पट्वादीनां च गुणवचनान्तरान्तरलिङ्गानां स्त्रीविषयत्वाभावात् स्त्रियां वृत्तौ
 नदीसंज्ञा न प्राप्नोति, एवं तर्हि 'डिति ह्रस्वश्चे'त्यत्रैवंविधो नियमो
 नाश्रीयते केवलस्य स्त्रीशब्दस्यानुवर्तनादित्यदोष इति । हरदत्तस्तु पदा-
 न्तरमनपेक्ष्य स्त्रीवचनानां ग्रहणार्थमाख्याग्रहणं न तु नियतस्त्रीवचनाना-
 मित्याह । यद्वा पदान्तरमनपेक्ष्य स्वयमेव यौ व्यौ स्त्रियमाचक्षते इत्या-
 श्रीयते । इष्यशनिप्रभृतीनामुभयलिङ्गानां शब्दार्थ एव स्त्रीत्वमिति संज्ञा
 भवति । एवं पटुशब्दप्रभृतीनां गुणवचनानामपि शब्दार्थ एव स्त्रीत्वम् ।
 तथा च पटुरानीयतामित्युक्ते स्त्रियमानीय कृती भवतीति । पुनश्चैव-
 माह नियतस्त्रीवचनानां ग्रहणार्थमाख्याग्रहणमिति वदतो मते आङ्पूर्वा-
 द्वायतेः क्विपि सप्रसारणे आद्यै ब्राह्मण्यै अत्रापि भाष्यकारोदाहृते न
 स्यात् तस्मात्पूर्वं एव प्रकार आश्रयणीयः, कथं तर्हि प्रत्युदाहरणं ग्रामण्ये
 स्त्रियै खलप्वे स्त्रियै इति, उच्यते । क्रियाशब्दत्वेऽप्यनयोः पुंसि मुख्या वृत्तिः,
 पुंसामेव खल्विदमुचितं यत् ग्रामनयनं नाम । एवं खलपवनमपि । आ-
 ध्यानं तु स्त्रीपुंससाधारणमिति विशेष इति । न्यासे उद्योतादावप्येवमु-
 क्तम् । वृत्तिकारस्याप्ययमेव पक्षोभिमतः । यदाह । आख्याग्रहणं शब्दार्थे
 स्त्रीत्वे यथा स्यात्पदान्तरद्योत्ये मा भूदिति । प्रक्रियारत्ने त्वाधीशब्दो
 नित्यस्त्रीवचन इति नदीसंज्ञासिद्धिरुक्ता । एवं च हरदत्तादिमते वर्षाभूश-
 ब्दस्य भेकभ्रिधानेऽपि नदीसंज्ञया भाष्यमिति तन्निबन्धनानि ह्रस्वादीनि
 भवन्ति । कैयटसुभूतिचन्द्रादीनां मते नदीसंज्ञायां न विवादः, ऊकारान्त-
 स्योपाधिविशेषवाचित्वेन नियतस्त्रीविषयत्वात् । एवं च प्रक्रियारत्नेना-
 क्तो नदीसंज्ञाभावः 'स्यजेदेकं कुलस्यार्थ' इति न्यायेन त्याज्यः । पष्ठीबहुवचने

नु परन्वात्रित्वाच्च नुटि कृते तस्य विभक्तित्वादेकाजुत्तरपदे श' इति
 शत्वम् । एकाजु उत्तरपदं यस्य तस्य प्रातिपदिकान्तनुविभक्तित्वाच्च
 पूर्वपदस्याविभक्तादुत्तरस्य शत्वमिति सूत्रार्थः । विभुः । प्रभुः । संभुः ।
 'विप्रमभ्यो द्वमज्ञायामि'ति व्यादिभ्यः परस्मादुबो डुप्रत्ययः, डित्वाट्टि-
 लोपः । शभुः । 'मितद्वादिभ्य उपसङ्ख्यानमि ति डुः । सुखरूपो भवती-
 त्यर्थः । यदुन्नर्मात्रिनण्यया भवतिः । तेन सर्वेषां सुखं भावयतीत्यर्थः ।
 यद्वा शमेण्यन्तादन्येभ्योऽपि दृश्यत'इति विचि शशमयिता रोगाणां भ-
 वतीति शभुः । श्रूयते च भिषक्तं त्वा भिषजां शृणोमि त्वादत्तेमी
 रुद्र शनमेभिः । शतं हि मा ज्यशीय भेषजेभिः । अश्वोवदधि वक्ता
 प्रथमो दैव्यो भिषगिति । शभवत्यस्मादिति व्युत्पत्तिरपादाने डुप्रत्यया-
 भावाच्चिन्त्या । विभ्वी, प्रभ्वी, सभ्वी । 'भुवश्चे'ति भवतेरुदन्तस्यानुपसर्ज-
 नस्य स्त्रिया डीप् । उपसर्जनत्वे त्वतिविभुर्वाह्मणीति डीप् न भवति ।
 भविष्यतीति भावी । भुवश्चेत्यौणादिक इति निर्णयद्वया । तेन वृद्धिः ।
 अयं च 'भविष्यति गम्यादय' इति गम्यादिषु पाठाद् भविष्यत्कालवि-
 षयः । भाव, 'श्रीणीभुवनुपमग'इति अकर्तरि च कारके भावे घञ् ।
 उपमृष्टानु 'खटोर'ब'न्यप् । प्रभव इति । ऋदिति दकारो मुखसुबार्थं
 इत्यारित्युकार ऊकारमपि गृह्णाति । प्रभाव इत्यत्र तु प्रकृष्टो भावः प्रभाव
 इति प्रत्ययार्थ एव प्रशब्देन विशेष्यते न प्रकृत्यर्थे इति क्रियायोगाभा-
 व'दनुपमगत्वद् घञ्सिद्धिः । विभावानुभावशब्दौ विभावयतीति
 श्यन्तादत्र व्युत्पादो । परिभवः, परिभावः । परीभावः । 'परौ भुवोव-
 ज्ञान'इति पञ्च घञपैः । 'उपनर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलमि'ति घञन्तउत्तरपदे
 पूर्वापमगस्य वा दीर्घोऽमनुष्ये विषये । भूति । 'स्त्रियां क्तिवि'त्यकर्तरि
 च कारके भावे च सर्वेधानुभ्यः क्तिन् । 'मन्त्रे वृषे'त्यादिना भुवः क्तिन्,
 उदात्तवचनमस्य नित्वात् 'ज्नित्यादिर्निच्यमि'त्याद्युदात्तत्वव्युदासार्थम्,
 न तु भाषायां प्रयोगनिवृत्त्यर्थम् । प्रयुज्यते च भाष्ये सर्वेदमे स्वभूत्यर्थं प्रवर्त-
 न्तइति । भूः । 'मंपदादिभ्यः क्त्वित्त्व'इति क्तिप् । क्तिपः सर्वस्य लोपः ।
 भवत्यस्मिन्ननेनेति वा भवः । 'पुंसि सज्ञायां घः प्रायेणे'ति पुल्लिङ्गयोः

करणाधिकरणयोर्धः । प्रायग्रहणं क्व चिदसंज्ञायामपि यथा स्यादिति ।
 अनाद्येनानायासेनाद्येन भूयते ईषदाद्यभव भवता, स्वाद्यभव भवता ।
 अनाद्येनायासेनाद्येन भूयते दुराद्यभव भवता । 'कर्तृकर्मणोश्च भूकृजोः' ।
 च्यर्थेविपयकर्तृकर्मणोरीपदादिषु चोपपदेषु भूकृजोः खलिति खल् । तत्र
 भूवोर्कर्मकन्वात्कर्त्तरि उपपदे भावे प्रत्ययः, 'करोतिश्च कर्मणि । स्वभावात्
 कृच्छ्रग्रहणं दुरो विशेषणम् । अकृच्छ्रग्रहणं त्वितरयोः । खित्वान्मुम् ।
 नन्वत्र धात्वर्थमात्रं विशिषित ईपतो, गत्योरपि सुदुरोश्च कथं व्यवहित-
 प्रयोगः । न च मुमर्थान् खित्करणादिति वाच्यम् । 'खित्यनव्ययस्येत्यत्र
 कृद्ग्रहणपरिभाषया उपस्थानात्सर्गातिके खिदन्तउत्तरपदे मुमर्थत्वस्य सभ-
 वात् । न चैव वाच्यं 'हृदयस्य हृल्लेदे त्यत्राग्यग्रहणादेवाणन्तस्य ग्रहणे
 सिद्धे पुनर्लेखग्रहादुत्तरपदाधिकारेपीह प्रत्ययगणपरिभाषया अप्रवृत्ते-
 र्ज्ञापनात्तदभावात्तद्विषया कृद्ग्रहणपरिभाषा कथं वर्ततेति । यतो मुम्य-
 व्ययात्परस्य खितोऽसंभवात्तदन्तस्य च सभवादनव्ययस्येति निषेधनामर्थ्या-
 दुत्तरपदाधिकारेपीह प्रत्ययग्रहणपरिभाषया अवश्यमुपस्थातव्यं ततश्च
 तद्विषया कृद्ग्रहणपरिभाषाऽप्युपस्थास्यते । एवं तर्हि भाष्ये ईषदाद्य-
 भवमित्यादेरुदाहृतत्वात् प्रयोगनियमः । अवत्सीयादौ प्रधानभूतच्छ-
 प्रत्ययार्थेनान्वीयमानस्य नञ्शब्दान्तेन समासवत् खिदन्तार्थेनान्वीयमा-
 नस्यापीषदादेः खिदन्तान्तेनापि सः । कैयटे तु खित्करणादेव कर्तृकर्मणोः
 पूर्वप्रयोग उक्तः । तस्यायं भावः । अनव्ययस्यति निषेधनामर्थ्यादेव तद-
 न्तत्वलाभः । नन्वस्मादेव प्रतिषेधादिहोत्तरपदाधिकारेपि ज्ञापितया
 प्रत्ययग्रहणपरिभाषया यतस्तद्विषया कृद्ग्रहणपरिभाषा प्रवर्ततेति । मुख-
 तोभूत्वा, मुखतोभूय, मुखतोभावं । 'स्वाङ्गे तम्प्रत्यये कृध्वोरिति तस्-
 प्रत्ययान्ते स्वाङ्गउपपदे त्वाणमुलौ, तत्र 'तृतीयाप्रभृतीन्त्यन्तरस्यामिति
 'उपदंशस्तृतीयायामित्येतद्वारभ्यापदानाममैव तेन चान्येन च तुल्य-
 विधानानाममन्तेन समासविकल्पनान्मुदतोभावमित्येकं पद द्वे वा पदे ।
 त्वान्तेनापि तृतीयाप्रभृतीनामुपपदानां 'त्वा चे'ति समासविकल्पनात्त-
 त्पक्षे 'समासेऽनञ्पूर्वं त्वो ल्यबि'ति ल्यबादेशः । अत्रानञिति नञ्-

मदृगमव्यय परिपश्यति । 'कृन्मेजन्तः' त्वातोसुक्कसुन' इति णमुलत्वा-
 ल्योरव्ययत्वात्सुपो लुक् । स्यानिवत्त्वेन ल्यवन्तमव्ययम् । विनाभूय,
 विनाभूत्वा, विनाभावं, नानाभूय, नानाभूत्वा, नानाभावम् । एकधाभूय
 एकधाभूत्वा एकधाभावम् । 'नाधार्यप्रत्यये च्यर्थ' इति नाधार्यप्रत्ययान्ते
 न्यर्थविषये उपपदे कृभुवोः त्वाणमुलाविति तौ । नाशब्देन 'विनञ्भ्यां
 नानाज्ञा नमहे'ति विहितौ नानाज्ञावुच्येते । धाशब्देन 'सख्याया विधार्ये
 धा' 'अधिकरणविचाले चे'ति विहितो धाप्रत्यय उच्यते । तत्र विधा
 नाम प्रकारः, सामान्यस्य भेदको विशेषः । अधिकरणविचालोप्यधिकरणं
 द्रव्य तस्य विचाल, एकस्यानेककरणमनेकस्यैकीकरण वा । तदेकधाभूये-
 त्यादावयमर्थः । अनेकं द्रव्यमेक भूत्वेति एकस्यानेकीकरणे द्विधाभूये-
 त्यादौ द्रष्टव्यम् । ये तु धाप्रत्ययस्यादेशा 'एकाद्वे धमुजन्ततरस्या'
 'द्विञ्चोश्च धमुञ्' एधाच्चेति विहिता धमुजादयस्तेषामपि स्यानिवत्त्वेन
 धाग्रहणेन ग्रहणानदन्ते उपपदे भुवः त्वाणमुलौ भवत इत्येकधाभूये-
 त्याद्विधाद्वयम् । 'नाधार्ये'त्यत्रार्थग्रहणं तु धमुजन्तात्स्वार्थं इदं दर्शनमिति
 यदा इप्रत्ययः स्यात् तदर्थं, स हि स्वार्थिकत्वात् धार्थः तथा नाजर्थमपि ।
 अन्यथा सानुबन्धकत्वादपि नानाशब्दो न गृह्येत । तूष्णींभूय, तूष्णींभूत्वा
 तूष्णींभावम् । 'तूष्णीमि भुव' इति त्वाणमुलौ । अन्वभूय, अन्वभूत्वा,
 अन्वभावम् । 'अन्वचानुलोम्य' इति त्वाणमुलौ । आनुलोम्यमनुकूलता ।
 नाध्रेयादियोगत्रयविषयेऽपि 'वृत्तीयाप्रभृतीनीति समासविकल्पो द्रष्टव्यः ।
 भूतो घटः । भूत घटेन । अत्र 'निष्ठे'ति भूते विहितस्य क्तस्य गत्यर्थो-
 दिपरत्वे गत्यर्थोऽकर्मकशिल्पशीडस्यामवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्चे'ति कर्तरि
 वकाराद्वाचकर्मणोश्च विधानाद् भुवश्चाकर्मकत्वात्कर्तृभावावर्थौ, अथ च
 'नपुंसके भावे क्तः' ल्युट् चे'ति क्तल्युटौ न बाधते, यतस्तयोर्धात्वर्थस्य
 सिद्धता विषयः । अस्य तु धात्वर्थमात्रम् इति विषयभेदस्तेन घटस्य भूतं
 भवनमिति भवनः । क्तयोगे कर्तरि पश्या 'न लोकाव्यये'ति निषेधो न
 भवति 'नपुंसके भावे क्त उपसंख्यानमिति तद्विधानात् शेषविज्ञानाद्वा
 नत्सिद्धिः । इदमेवं भूत क्तवत् निष्ठा' 'निष्ठे'ति धौव्यादिभ्यो विहि-

तस्य क्तस्य 'क्तोधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः' इत्यत्राधिकरणमर्थः । चकारो यथाप्राप्तस्यानुज्ञानार्थः । तेन ध्रौव्यार्थेभ्यः कर्तृभावाधिकरणेषु गत्यर्थेभ्यः कर्मकर्त्तृधिकरणेषु कर्मविवक्षायां भावे च । प्रत्यवसानार्थेभ्यः कर्माधिकरणयोः पूर्ववदत्रापि भवति । ध्रौव्यार्था अकर्मकाः । प्रत्यवसानार्था अभ्यवहारार्थाः । अधिकरणवृत्तिनश्चेत्यधिकरणे कर्त्तृभावे पठ्यते । 'अधिकरणवाचिना चे'त्यस्याः समासनिषेधः । भवत्यनेनात्रेति वा भवनम् । 'करणाधिकरणयोश्चे'ति सामान्यविहितो ल्युट् । अस्य कालसामान्यविषयत्वाद् भूतविषयेणाधिकरणत्वेन न बाधः । परिभवनमित्यत्र 'कृत्यच' इति उपसर्गस्यात्रिमित्तादुत्तरस्य कृत्यस्याच उत्तरस्य नस्य विधीयमान एतत्त्वं 'न भाभूपूर्वकमिगमिष्यायीवेषामि'ति निषिध्यते । अत्र एवन्तानां च भादीनामुपसख्यानमिति वचनात्परिभावनमित्यत्रापि एतत्त्वं न भवति ।

अथोणादयः ॥ दृन्भूः । तरुः, सर्पजातिभेद इति पुरुषकारे । 'अन्ध्रु दृन्भूजम्बूकनूकनूद्विधिरिति दृढशब्दउपपदे कूप्रत्ययान्तो निपाति तः । उपपदस्य च दृभावेऽस्मादेव निपातनात् । के चिदुपपदं नान्त पठन्ति । अजादावस्य यणिति वर्षाभूप्रस्तावेऽवोचाम । क्व चिदुणादिवृत्तौ दृभी यस्य इत्यस्मात्कूप्रत्यये निपातनमित्युक्तम् । तत्राप्ययमूकारो न धातोरित्युवङोऽप्रसङ्गादप्येति न रूपभेदः । भवनं गृहम् । 'बहुलमन्यत्रापि'ति युच् । भुवनम् । 'भूमूभूप्रज्जिभ्यश्चन्द्रमी'ति क्युन्, भाषायां बहुलवचनात्साधुरिति वा भुवनमित्यत्र हरदत्तः । भूमिः । 'भुवः क्रिदि'ति मिन्प्रत्ययः । कृष्णभूमः । उदभूमः । पाण्डुभूमः 'अच् प्रत्यन्वषपूर्वात्सामलोच' इत्यत्राजिति योगविभागादत्र समासान्तः । तथा च श्लोकवार्तिके । 'कृष्णादकृपाण्डुपूर्वाया भूमेरच्प्रत्ययः स्मृत' इति । भूरिः । 'अदिशदिभूशुमिभ्यः क्रिन्'ति क्रिन् । भूवः । अन्तरिक्षलोको महाव्याहृतिश्च । 'भूरज्जिभ्या क्रिदि'त्यसुन्, कित्वाच गुणः । अद्भुतः । 'अदि भुवो दुतजि'ति दुतच् । ये प्रसिद्धयोगा उणादिप्रत्ययान्ताः प्रदर्शिताः, अतः परमप्येव वक्ष्यन्ते ।

एथ रुद्रौ ॥ काव्यन्ता उदात्ता अनुदात्ततः । एधते । एधसे । एधे ।

अधमानः । अधा वक्रे । अधा बभूव । अधामस । ‘इजादेश्व गुरुमतोऽ-
नृच्छ इत्याम् प्रत्ययः । ‘दीर्घं चे’ति दीर्घं गुरूस्त्वम् । करोते रामप्रत्यय-
वदिति नित्य लङ् । एधिना । एधितासे । एधिताहे । एधिष्यते । एधिष्यसे ।
एधिये । एधियमाणाः । ‘लट मद्रु’ । एधनाम् । एधस्व । ऐधै । ‘सवाध्यां
शर्मै’ । ‘एत ऐ’ । ऐधत् । ऐधया । ऐध्रे । आडजादीनामिति अजादेर-
ङ्गस्य तुङ्लङ् ङ्ह्रु आडागत इत्याह । टित्वादादावा ट चे’ति वृद्धिः ।
ऐयेन । आशिपि एधिरोष्ट । एधिपीष्ठाः । एधिपीथ । ऐधिष्ठ । एधि-
ष्ठाः । ऐधिध्यम् । ऐधिषि । ‘धि चे’ति सनोपः । दणन्तमङ्गमिति ‘दणः
धीञ्चनुलिटा धीङ्गादिनि धकारस्य मूर्धन्य । अत्र हरदत्त एव मूर्ध्न्य-
मुक्तेराधान्तमाह । अन्ये त्विटो विभ.पाया वक्ष्यमाणत्वाद् गोब्रलीवर्द-
न्यायेन तद्धानिरक्तमिणन्तमिमह रह्यतइति ऐधिध्यमित्यादौ ठत्व नेच्छन्ति ।
ऐधिष्यते । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्ये । भवे लटलोठलङ्विधादिलिङ् यगु-
टादायोः । एध्यते भवतेत्यादि । लुङि ‘चिणो लुग्’ति तश्चस्य लुकि ऐधि
भवतेति । शेषे तु कर्तृवद्रूपम् । सत्यज्ञादित्वाद् द्वितीयस्यैकाच्चा द्विवचने

ऽभ्यासकार्यम् । 'पूर्ववत्सन' इति तङ् । एदिधिषतइत्यादि सर्वत्र प्रकृति-
वत् । एदिधिषतइत्यादि कर्तृवत् । न च स्यादिष चिखदिटपक्षे वृद्धौ
पुकि रूपान्तरमपि स्यादित्याशङ्क्यम् । एयल्लोपेत्यादिना ऽतो लोपेन वृद्धे-
र्बाधस्योक्तत्वात् । एधयते सस्यम् । 'णिचश्चे'ति कर्त्रभिप्राये तङ् । अस्मिन्नु-
पपदेन प्रतीयमाने 'विभाषोपपदेन प्रतीयमान' इति परस्मैपदमपि भवति ।
स्वं सस्यमेधयतीति । द्विनपृक्कर्तृकस्य गात्रकर्मकाच्चिपृक्कर्तृभादिति
परस्मैपदमेव पुत्रमेधयतीति । विभाषोपपदादपि परत्वादितदमेव भवति, तेन
स्वपुत्रमेधयतीत्येव । 'गतिबुद्धी'ति सर्वत्र प्रयोज्यकर्मत्वम् । एधया चक्रे ।
चकार । बभूव । आस । 'अयामन्ते'ति शेरयादेशः । अत्र यदा प्रकृतेः
चित्तवत्कर्तृकत्वेन नित्य परस्मैपद तदा कृजोऽनुप्रयोगस्येति कल्पितेन
योगेन तथैव । एधयितासि । एधयितासे । एधयिष्यति । एधयिष्यते ।
एधयतु । एधयताम् । एधयत् । एधयत । एधयेत् । एधयेत । आशिषि
एध्यात् । एधयिषीष्ट । एधयिषीष्ट । एधयिषीष्ट । एधयिषीष्ट । एधयिषीष्ट ।
तुकयो'रिति दीर्घस्य पूर्वविव्रतिषेधेन बाधकः । ध्वमीटि गुणायादेशयोरिणः
परइटि 'विभाषे' इति मूर्द्धन्यविकल्पः । ऐदिधत् । ऐदिधत । 'णिशी'ति चङि
णिलोपस्य 'द्विर्वचने ऽची'ति द्विर्वचननिमित्ते ऽचि योजादेशः स द्विर्वचने
कर्तृव्ये स्थानित्वं प्रतिपद्यतइति 'चङी'ति द्विर्वचने स्थानित्वत्वा'दजादेर्द्वि-
तीयस्ये'ति धिशब्दे द्विरु अते । इदं च 'णौ चङी'त्युपधाह्रस्वाद्बृहिरङ्गादप्यु-
त्तरकालं द्रष्टव्यम् । तत्र च लिङ्गमोर्चेदित्करण, तद्वि मा भवानोणिषदि-
त्यत्र 'नालोपी'ति चङि ह्रस्वस्य निषेधार्थं, पूर्वतु द्विर्वचने ह्रस्वभाज्युपधानेति
कि निषेधेन । तेन मा भवानिदिधिदिति भवति, 'न माङ्गो' इत्याटो निषेधः ।
कर्मणि लुङ्येकवचने चिण् । अन्यत्र सिचीटगुणायादेशाः । ऐधि । ऐधयि-
षातामित्यादि । ध्वमि 'धि चे'ति सलोपे गुणायादेशयोरिणः परत्वादितो
'विभाषे' इति वा मूर्द्धन्यः । अन्येषु लेषु कर्तृवद्रूपम् । लिङ्यनुप्रयोगे नित्यं
तङ् उदाहार्यः । स्यादिषु पक्षे चिखदिटि तस्यामिङ्गुत्तरे-धमिगुणायादेशा
लोपे एधिष्यतइत्यादि प्रकृतिवत् रूपाण्यपि पक्षे द्रष्टव्यानि । न च
ध्वमि शेरिणः पर इडिति तल्लोपात्पूर्व 'विभाषे' इति रूपभेदस्य

प्रमदः । नित्यत्वादन्तरङ्गत्वान्यवर्त्रामिटृत्वाच्च पूर्वमेव शेलोपात् कर्मक-
 नैरे यक्चिणोर्विषये तयो र्णिश्चन्यीति निषेधाच्छप्सिचोः कर्तृवदूपम् ।
 स्याद्विषु र्मवत् । वत्करणात्स्वाश्रये भावे लकारे सर्वत्र कर्मवत् । कर्त्तरि
 तृतीया विशेषः । एधयते स्वेनैवेत्यादि । प्रैधते । 'एत्येधत्यूठस्वि'ति वृद्धिः ।
 एजादाविणि धातावेधतौ ऊठि चावर्णात् पूर्वपरयोरेकादेशो वृद्धिरिति
 सूत्रार्थः । इय च वृद्धिरेत्येधत्योरेडि पररूपस्यापवाद इत्यवर्णान्तोपसर्ग-
 नाभः । ऊठि त्वाद्गुणस्य । अत्र वृत्तौ एज्यहणमेतेरेव विशेषणं नैधतेर-
 व्यभिचारादिति । अत्र प्रदीपकृत् प्रेदिधदित्यत्र व्यभिचारसंभवाच्चैनन्सा-
 रमित्याह । इदमेव त्वसारं, एयन्तस्य शब्दान्तरत्वादेधतिग्रहणेनाग्रहणात् ।
 अत एव हि 'न भाभूपूकमी'त्यत्र एयन्तानां च भादीनामुपसंख्यानमित्यु-
 क्तम् । वक्ष्यन्ति च तत्र न्यासकारादयः शब्दान्तरत्वात् एयन्तानां न
 प्राप्नोति नस्मादुपसंख्यानमिति । स्वयं च तत्रैव वक्ष्यतीति पूर्वापरविरोधं
 स एव प्रष्टव्यः । किं च एयधिरस्यापि ग्रहणे 'उपसर्गात्सुनो'तीत्यत्राभि-
 मुपावायिपतीत्यत्र एयन्तेनाभेयेतात्सुनोति प्रत्यनुपसर्गत्वात् षत्वं न
 स्यादिति चोदयित्वा प्रेषणादिरिहाभिपवे इति सुनोति प्रति उपसर्ग-
 त्वात् षत्वं मिटृमिति भाष्यकारादीनां समाधानमनुपपन्नं स्यात् । अत
 एव हि वृद्धिर्विधौ हरदत्तः । एज्यहणमेतेरेव विशेषणं न पुनरेधतेरिति
 वृत्तिमुपादाय ब्राह्मण्याभिप्रायेणैतदुक्तं मा प्रेदिधदित्यत्र व्यभिचारसंभवा-
 दित्याहुरिति मनान्तरेलाह । एधितः । एधितमनेन । इदमेषामेधितम् ।
 'क्लोधिकरणे चेति क्तः । एधः । 'असुवि'त्यन् ॥ २ ॥

स्पृष्टं सङ्घर्षं ॥ सङ्घर्षः पराभिभवेच्छा । पराभिभवस्य धात्वर्थेनो-
 पसंयहात् अकर्मत्वम् । उक्तं च ।

धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंयहात् ।

प्रमिट्टेरविज्ञातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ॥

इति । स्पृष्टंते । स्पृष्टसे । स्पृष्टमानः । पस्पृष्टे । पस्पृष्टिषे । पस्पृष्टे ॥

'शर्पूर्वाः खयः' ॥ अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते अन्ये हलो निवर्तन्ते इति
 प्रकारशेषः । स्पृष्टिता । स्पृष्टितासे । स्पृष्टिताहे । स्पृष्टिष्यते । स्पृष्टि-

ष्यसे । स्पर्द्धिष्ये । स्पर्द्धताम् । स्पर्द्धस्व । स्पर्द्धे । अस्पर्द्धत । अस्प-
 र्द्धथाः । अस्पर्द्धे । स्पर्द्धेत । स्पर्द्धथाः । स्पर्द्धेय । आशिषि स्पर्द्धीषीष्ट ।
 स्पर्द्धिषीष्टाः । स्पर्द्धिषीय । अस्पर्द्धिष्ट । अस्पर्द्धिष्टाः । अस्पर्द्धिषि । अस्प-
 र्द्धिष्यत । अस्पर्द्धिष्यथाः । अस्पर्द्धिष्ये । भावे लट्लोटलङ्विध्यादिलिङ्गु
 यकि स्पर्द्धते । स्पर्द्धताम् । अस्पर्द्धत । स्पर्द्धतेत्यादि । लुङि तशब्दे चिण्य-
 स्पर्द्धीति, आशीरादिषु कर्तृवत् । पिस्पर्द्धिषेत । पिस्पर्द्धिषां चक्रे ।
 पिस्पर्द्धिषितेत्यादि । 'सन्त्यत' इतीन्धमभ्यासस्य पूर्ववत् 'पूर्ववत्सन'
 इति तङ् । आर्धधातुकेऽतो लोपः । विध्यादिलिङ्यतो लोपाभावाल्लिङः
 सलोपे गुणबलिलोपयोः । पिस्पर्द्धिषेत । भावे यङ्विणोर्दिष्टेः । पिस्प-
 र्द्धिष्यतइत्यादि । पास्पर्द्धते । 'दीर्घाकृत' इत्यभ्यासस्याकारस्य दीर्घं यङि
 तल्लुकि च । पास्पर्द्धा चक्रे, पास्पर्द्धितेत्यादि । तच्चाट्धातुके 'यस्य हल'
 इति हल उत्तरस्य यस्य लोपः । स चादेः परस्येति यकारस्य । अकारस्य
 अतो लोपः । भावे तादिषु यक्यप्यतो लोपयलोपयोः कर्तृवत्सर्वत्र
 रूपम् । पास्पर्द्धतइत्यादि । लुङि तु चिण्यपास्पर्द्धीति भवति । सन्त्य-
 ङोस्तास्यादिषु चिण्वदिष्टि न विशेषः, अतो लोपेन वृद्धेर्वाधादित्युक्तम् ।
 यङो लुक्पदादिवज्जेति शपो लुकि 'भ्रषस्तथोर्धाधः' । भ्रष उत्तरयोस्त-
 कारयकारयोर्धाति वर्जयित्वा धकार इति धत्वे 'भ्रलां जश् भ्रशी'ति
 जश्त्वम् । आन्तरताप्याङ्कारः । पास्पर्द्धि, एवं वचनान्तरेषु । पास्पर्द्धः ।
 पास्पर्द्धति । 'अदभ्यस्तादि'त्यङ्गावः । पास्पर्त्सि । 'खरि च' । खरि परे
 भ्रलां चर इति चत्वे । पास्पर्द्धः । सर्वत्र हलादेः पितः सार्वधातुकस्य
 'यङो वे'ति ईडुदाहार्यः । पास्पर्द्धीतीत्यादि । पास्पर्द्धां चकार । पूर्ववत्
 कृजोनुप्रयोगस्येति नित्यं परस्मैपदम् । पास्पर्द्धिता । पास्पर्द्धिष्यति । पास्प-
 र्द्धु । पास्पर्द्धात् । तातङि ङिञ्च पित्वेति स्थानिवत्त्वप्राप्तस्य पित्वस्य
 निषेधादीडभावः । पास्पर्द्धाम् । पास्पर्द्धतु । पास्पर्द्धि । सेह्यादेशे 'हुभ्र
 लभ्यो हेर्द्धि'रिति धिभावः । हेरपित्ववचनादिङभावः । अपास्पर्त् ।
 इतश्च लोपे हल्ङ्यादिलोपे च 'भ्रलां जशान्त'इति जश्त्वे 'वावसान इति
 चत्वे तकारः । तदभावे अपास्पर्द् । 'रात्सस्ये'ति नियमान्न सयोगान्त-

लोपः । अपास्पृष्टां । अपास्पृष्टः । 'सिञ्जभ्यस्ते'ति जुस् । अपास्पृत् । अपा-
 स्पृष्ट् । अपास्याः । निषि हल्ङादिलोपे पूर्ववज्ज्जत्वे चत्वे वा च तदभावे
 'दश्चे'ति निषि परे वा हः । 'रो री'ति पूर्वस्य रेफस्य लोपः । 'द्रलोपे
 पूर्वस्य दीर्घाण' इति पूर्वस्याणो दीर्घः । द्रलोपइति ठकाररेफयो-
 लोपनिमित्ता ठकाररेफाबुच्चेने । अपास्पृष्ट् । अपास्पृत् । पास्प-
 र्ष्टां । पास्पृष्ट्नाम् । पास्पृष्टुः । यासुटो डिच्चेनापित्वादीडभावः ।
 आशिषि पास्पृष्टां । पास्पृष्टास्ताम् । असार्जधातुक्त्वादीडभावः ।
 अपास्पृष्टीन् । अपास्पृष्ट्नाम् । अपास्पृष्टिपुः । अपास्पृष्टीः । अपास्प-
 र्ष्टिष्म् । 'अस्तिनिच' इति पितो नित्यमीट् । 'इट ईटी'ति सिचो लोपे
 सिञ्जलोप एकादेशे सिट् इति सवर्णदीर्घ । 'वदव्रजहलन्तस्याच' इति
 परस्मैपदपरे सिचि विहिता वृद्धिर्नैटीति निषिध्यते । अपास्पृष्ट्यद्
 इत्यादि । भावे सर्वत्र यङन्तवद्रूपम् । पास्पृष्ट्यङ् इत्यादि, लौ स्पर्थयती-
 त्यादि एधन्तिवदुदाहार्यम् । लुङ्प्रनजादित्वात्प्रथमस्यैकाचो द्विवच-
 नम् । 'मयोने गुर्वि'ति सजोगपरस्य ह्रस्वस्य गुरुसज्ञाविधानात्सन्वल्लघु-
 नीति इत्वम्, 'दीर्घा लघोरि'ति दीर्घश्च न भवति गुरुसज्ञया आक-
 ङारीयतयानवकाशया लघुनज्ञा बाध्यते, कर्मणि यक्चिणोर्विशये णिलोपे
 स्पृष्टतइत्यादि, प्रकृतौ भाववद्रूपाणि उदाहार्याणि । अन्यत्र स्पर्थया चक्रे
 इत्यादि कर्तृवत् । लुङि चिण् । द्विवचनादौ सिच् । अस्पृष्टि । अस्प-
 र्ष्टिषिपातामन्याद्युदाहार्यम् । ध्वमि 'विभाषेट' इति मूर्धन्यविकल्पः ।
 स्यादिषु चिण्वदिटि तस्यामिद्ववद्वेत्यसिदत्वाणिलोपे स्पृष्टिष्यत-
 इत्यादि प्रकृतवद्रूपम् । कर्मकर्तरि यक्चिणोर्निर्गन्धात् शपि स्पर्थयतइ-
 त्यादि कर्तृवत्रेयम् । अत्रापि स्यादिषु चिण्वत्यन्ते कर्मवत् । वत्करणात्
 स्वाश्रये भावे लकारे सर्वे कर्मवत् । कर्तरि तृतीया विशेषः । स्पर्थनः ।
 'अनुदात्तेश्च हलादेरि'ति तच्चीलादौ युच् । स्पृष्ट् । 'गुरोश्च हल' इति
 गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियमकारप्रत्ययः । वा सङ्ख्येण क्तिचस्त्रिभामिति
 निषेधाच्च भवति । इदमेयां स्पृष्टिष्म् । स्पृष्टितमनेन । स्पृष्टितः । 'क्ता-
 धिकरणे चे'ति कर्तृभावाधिकरणेषु क्तः । स्पृष्टालुप्रयोगश्चिन्त्यः ॥ ३ ॥

गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्यन्ये च ॥ स्थापना तत्स्थापनं वा प्रतिष्ठा । ल-
 धुमिच्छा लिप्सा । एकत्र स्थापनं संदर्भो वा ग्रन्थः । तत्राद्ये ऽकर्मकः, इत-
 रयोः सकर्मकः, गाधते । गाधसे । गाधे । गाधनानः । जगाधे । गाधिता ।
 गाधितासे । गाधिताहे । गाधिष्यते । गाधिष्यमाणः । गाधताम् । गाध-
 स्व । गाधै । अगाधत । अगाधयाः । अगाधे । गाधेत । गाधेयाः । गाधेय ।
 आशिषि गाधिषीष्ट । अगाधिष्ट । अगाधिष्ठाः । अगाधिषि । अगाधिष्य-
 तेत्यादि । भावकर्मकर्तृषु लटलोऽलङ्विध्यादिलिङ्क्षु यङ् । गाध्यते । गा-
 ध्यसे । गाध्यताम् । अगाध्यत । गाध्येतेत्यादि । अन्येषु लेषु कर्तृवत्,
 लुङ्येकवचने तु चिण्यगाधीति । लिप्सायामप्यर्थेन न्यायेनेष्टमाणप्रधा-
 नत्वात्तस्य च कर्मस्यत्वात्सन्तवत् कर्मकर्तृत्वोपपत्तिः । जिगाधिपते ।
 जिगाधिषां चक्रे । जिगाधिषिता । जिगाधिषिष्यते । जिगाधिषताम् ।
 अजिगाधिपत । जिगाधिषेत । आशिषि जिगाधिषीष्ट । अजिगाधि-
 षिष्ट । अजिगाधिषिष्यतेत्यादि । सर्वत्राभ्यासकार्यम् । आर्धधातुके ऽतो
 लोपः, भावकर्मणोर्यक्चिण्विषये जिगाधिष्यते । अजिगाधिषीत्यादि ।
 कर्मकर्तारि यक्चिणोर्निषेधात् कर्तृवदेव । जागाध्यते । जागाधां चक्रे ।
 जागाधिता । जागाधिष्यते । जागाध्यताम् । अजागाध्यत । जागा-
 ध्येत । आशिषि जागाधिषीष्ट । अजागाधिष्ट । अजागाधिष्यत । सर्व-
 त्राभ्यासस्य 'दीर्घाऽकृतः' । आर्धधातुके ऽतो लोपो 'यस्य हल' इति यलो-
 पाल्लोपौ । भावादिषु यक्यप्यल्लोपयलोपयोः सर्वत्र कर्तृवद्रूपम् ।
 लुङ्येकवचने त्वजागाधीति चिण्विशेषः । सन्यङोश्चिण्वदित्यतो
 लोपेन वृद्धिबाधाद् न विशेष इत्युक्तम् । यङ्लुकि 'भ्रजस्तथोर्धा ऽधः' ।
 'भ्रतां जश् भ्रशि' जागाद्धीत्यादि । सिपि 'एकाचो बशो भष् भ्रणन्तस्य
 सध्वोरिति धातोः रवयवस्य भ्रणन्तस्यैकाचो बशः स्थाने भषादेशः सका-
 रादौ प्रत्यये ध्वे च परे पदान्ते च विषयइत्यान्तरतम्यात् गकारस्य घकारे
 'खरि चे'ति धकारस्य तकारे जाघात्सीति । जागाधा चकार । पूर्ववत्कञ्ज
 इति परस्मैपदम् । जागाधिता । जागाधिष्यति । जागाधु । जागाद्धात् ।
 जागाधानि । अजाघात् । अजाघाद् । हल्ङ्यादिलोपे पदान्ते चेति

अशो भणदेशे जश्त्वे च चत्वंम् । सिपि तु 'दश्चे'ति वा रुत्वे अजाघा
इत्यपि । जागाध्यात् । जागाध्याताम् । आशिषि जागाध्यात् । जागाध्या-
स्ताम् । अजागाधीन् । अजागाधिष्ठात् । अजागाधिष्यदित्यादि । सर्वत्र
यद्गुगन्नाम्परस्य हलादेः पितः सार्वधानुकस्य पत्ते ईडुदाहार्यः । लुङि
'त्वास्तसिच' इति निन्यः । भावादौ यङन्तवत् । गाधयति । गाधयां चकार ।
गाधयिता । गाधयिष्यति । गाधयतु । अगाधयत् । गाधयेत् । आशिष्य-
निडाद्यर्धधातुस्त्वानिलोपे । गाध्यात् । अजगाधत् । अजास्य चदि-
त्वा चानोपिशाभ्वृदितामि'ति लौ चङि ह्रस्वे निषिट्वेऽभ्यासस्यालघुपर-
त्वात्मन्वदित्वलघुदीर्घत्वे न भवतः । गाधयतइत्याद्युदाहार्यम्, प्रति-
ष्ठाया मणावकर्मका'दिति चित्तवत्कर्तृकत्वे परस्मैपदमेव । भावकर्मणोर्य-
क्त्रिणोर्ध्वपे णिलोपे गाधतिवद्रूपम् । स्यादिषु तु ण्यन्ते कर्तृवत् ।
चिण्वदिटि तु णिलोपे गाधितेत्यादि प्रकृतिवदेव । कर्मकर्तरि यक्चि-
णोर्निर्गधावन्मु लकारेण कर्तृवत् । गाधनः । 'अनुदात्तेत' इति युच् ।
गाधा । 'गुरोश्च हल' इत्यकारः, प्रतिष्ठाया स्पृष्टृवत्, भावकर्त्तृधिक-
रणेषु क उदाहार्यः, इतरयोस्तु 'तयोरेवे'ति नियमात्कर्मणि ॥ ४ ॥

बाधु लोडने ॥ लोडनं प्रतिघातः । गाधिवत् । बाहुः । अर्जिदृ-
शिकम्पमिषमिवाधाभृजिपशिनुग्धुग्दीर्घहकाराश्चे'ति कुप्रत्यये धातोर्ह-
कारः । भद्रबाहुः । चतुष्पाद्विशेषः । 'बाहुन्तात्सजायामि'ति स्त्रियामूङ्
प्रत्ययः । मुबाहुनाम कश्चित्, तस्यापत्य सौबाहविः । 'बाद्रादिभ्याच्चे'ति
षष्ठ्यन्तादपत्यङ् । 'ओर्गुणः' । उवर्णान्तभस्याङ्गस्य तद्विते गुण इति गुणे
ऽवादेशः, यद्यपि बाह्वादिषु केवलो बाहुशब्दः पठ्यते, 'समासप्रत्ययविधौ
नदन्तविधेः प्रतिषेध' इति तदन्तविधिश्च प्रतिषिध्यते, तथापि केवला
स्यापत्येनायोगात्तदन्तत्वलाभः । सजात्वेन विनियुक्ताद् बाहोस्तु प्रत्ययो
नेष्यते । यदाह ॥

अभिव्यक्तपदार्था ये स्वतन्त्रा लोकविश्रुताः ।

शास्त्रार्थस्तेषु कर्तव्यः शब्देषु न तदुक्तिषु ॥

इति । 'राजश्वशुराद्यद्' इत्यत्र भाष्यादौ चोक्तं संज्ञायां श्वशु-
राद्यच्चेति । उभाबाहु, उभयाबाहु प्रहरति । 'द्विदण्ड्यादिभ्यश्चे'तीच्
समासान्त । तस्य च द्विदण्ड्यादिष्विव पाठाल्लोपः, प्रत्ययलक्षणतदन्त-
त्वात् तिष्ठद्गुप्रभृतिष्विवः पाठात्तदन्तस्याव्ययीभावत्वविधानाद्'दव्ययीभा-
वश्चे'त्यव्ययत्वे सुपो लुक् । उभयबाहुत्व्यत्रो'भादुदात्तो नित्य'मित्यत्रा-
स्वरितत्वादेव बाह्वहणाननुवृत्तेर्नित्यमयच्च सिद्धे नित्यग्रहणं योगभेदेन
वृत्तौ नित्यमयजन्तस्य प्रयोगार्थमित्युभशब्दस्योभयादेशः । अयमर्थः सर्वा-
दिसूत्रे कैयटादौ स्फोरितः । तथा च तत्र वार्तिकमपि उभस्य सर्वनाम-
स्वेऽकजर्थः पाठः । अन्याभावो द्विवचनटाबुविषयत्वाद् उभयोत्यच्चेति ।
उभाबाहुत्व्यत्र तु द्विदण्ड्यादिपाठाद् उभयाभावः ॥ ५ ॥

नाधु नाधु याज्जोपतापैश्वर्याणीःषु ॥ उपतापो रोग इति वृत्तौ ।
उपघात इति तरङ्गिण्याम् । आद्यो धान्तः, अपरस्यान्तः । अस्य यान्तस्य
धान्तकाण्ड पाठोऽर्थसाम्यात् । उभावापि दन्त्यादौ । सर्वं गाधतिवत् ।
द्वितीयस्य तु विशेषः । 'आशिषि नाथ' इत्याशिष्येवात्मनेपदं, कर्मणि
शेषत्वेन विवर्तिते षष्ठी च । सर्पिषो नाथतइत्यादि । 'षष्ठी शेष'इत्ये-
वात्र षष्ठीसिद्धौ वचनमिदं सर्पिषो नाथनमित्यादौ समासनिवृत्त्यर्थं
षष्ठी श्रूयतएव न लुप्यतइति, स* लोपश्च समासे । उक्तं च ।

साधनैर्व्यपदिष्टे च श्रूयमाणक्रिये पुनः ।

प्रोक्ता प्रतिपद षष्ठी समासस्य निवृत्तये ॥

इति । न तर्हीदानीमिदं सभवति सर्पिर्नाथनमिति । भवति यदा
कृद्व्योगलक्षणा षष्ठी । तथा च वार्तिकं, 'प्रतिपदविधानां च षष्ठी न
समस्यते' 'कृद्व्योगा च षष्ठी समस्यते' इति । न चैवं सति समासनिषेधस्य
वैयर्थ्यमिति वाच्यम् । यतः शेषषष्ठाः समासे 'समासस्ये'त्यन्तोदात्तत्वेन
भाव्यम्, अन्यस्यास्तु 'गतिक्करोपपदात् कृत्' । गत्यादिभ्य परं कृदन्तमु-
त्तरपदं प्रकृतिस्वरमित्युत्तरपदप्रकृतिस्वरेण भाव्यं, स च लिति प्रत्यये पूर्व-
मुदात्तमित्याद्युदात्तत्वम् । अनाशिषि परस्मैपदं द्रष्टव्यम् । नाथति । ननाथ ।

* षष्ठीलोपश्च समासे इति २ पु. पा. ।

नाथिना । नाथिष्यति । नाथतु । अनाथत् । नाथेत् । नाथ्यात् । अनाथी-
त् । अनाथिष्यन् । निनाथिपतीत्यादि, यङ्लुक्प्रत्ययान्तत्वात् 'भूपस्तथोर्धा-
ध' इति धन्व भवे 'वर्चि च' इति चत्वं नानाति । नानात् । नानात्य इत्यादि
विशेषः । अत्र मैत्रेयाभरणकारावाद्य गोपदेश पठन्तौ 'गो न' इति धात्वा-
दित्वागणकारस्य नकार विधायोपसर्गादसमासेपि गोपदेशस्येति उपस-
र्गव्यादिमिमान्तरस्य गोपदेशनकारस्य समासासमासयोगेत्वविधानात्
प्रणाधनइत्यादौ एत्वप्रयोजनम'हत्तु । सर्व नादयो गोपदेशा इत्यस्य
पर्युदासे नृनिनन्दिनर्दिनक्लिनटिनाधुनाथवर्जमित्यत्र च न पठतुः । अत्र का-
श्यपः । नाधनेर्गोपदेशत्वमयुक्त, गणकारवृत्तिकारादीनामनिष्टत्वादिति ।
नृनिनन्दीन्यादिवाक्ये नाधुनवर्ज नृत्यादीन् पठित्वेतात्सप्य वर्जयित्वेति
वदन् श्रीकरोयचैवानुक्तः । तथा पर्युदासवाक्ये नर्देतिवर्जसर्वानेतान् पठतः
याकटायनस्य सप्ततोऽयमेव पत्तोभिमतः । उभयोस्यान्तपाठस्तु धान्तप्र-
करणविरोधान्नाशङ्क्य । इमौ याज्ञायासकथितेक्षिततमाभ्या द्विकर्मकौ ।

दुहिवाचिहृदिप्रतिभित्तिचिजामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ ।

ब्रुविशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्तितमाचरित कविना ॥

इत्यत्र भिन्नरथं परत्वात् । उक्त च कैपटे । दुह्यादीना चार्थोपलक्ष-
णायेपादानात् पर्याययोगेपि कर्मसज्ञा भवतीति । अथाश्रया चैय सज्ञा
न दुह्यादिवत्स्वरूपाश्रयेति भित्ति प्रस्तुत्य वदतो हरदत्तस्यापि मते ऽत्र न
विवादः । श्लोकार्थस्तु उपयुज्यतइत्युपयोगः पयःप्रभृति प्रधानं कर्म,
तस्य निमित्त गवादि तच्च यच्च ब्रुविशास्योर्गुणेन प्रधानकर्मणा धर्मा-
दिना क्रियां प्रति साधनत्वेन गुणत्वात् लब्धगुणव्यपदेशेन सचते संबन्ध-
मुपैति माणवकादि, तदुभय कारक पूर्वविधौ विशेषेणाविवक्षितत्वादपा-
दानादिसज्ञाभावे कविना क्रान्तदर्शना सूत्रकारेणाकथित कर्मोक्तमिति ।
याचिहृद्वानुनयार्थः । याचनार्थस्य तु भित्तिरैव सिद्धम् । अथान्येपि
द्विकर्मकाः प्रसङ्गात् प्रदर्श्यन्ते । यदाह

नीवह्योर्हरतेश्चापि गत्यर्थानां तथैव च ।

द्विकर्मकेषु ग्रहणं कर्तव्यमिति निश्चयः ॥

गत्यर्थग्रहणं गत्यादिसूत्रोपात्तानामुपलक्षणम्,

जयतिः कर्षतेर्मन्येर्मुपेर्देण्डयतेः पचेः ।

तारैर्वाहेस्तथा मोचेस्त्याजेर्दीपेच्च संग्रहः ॥

कारिकायां चशब्देन सुधाकरमुखैः कृतः ।

ग्राहेरिह ग्रहो नैव हरदत्तस्य समतः ॥

यदसौ 'गतिबुद्धी'त्यत्राथ कथमयाचितार नहि देवदेवमद्रिः सुतां
ग्राहयितुं शशाक्रेति, स्वतन्त्राः कवयः । यद्वा सुता प्रति न किञ्चिदु-
द्वाहविषय ग्राहयितुं बोधयितुं शशाक्रेत्येव व्याख्येयम् । अत्र बुद्ध्यर्थत्वात्
द्विकर्मकत्वं सिद्धमिति समर्थयते इतीयं च निर्व्याहणादिकम् । प्रतिय-
हणस्य ममेदमिति बुद्धिविशेषनिहण्यन्वान् सुता ग्राहयितुं ममेयमिति
बोधयितुं न शशाक इत्येव व्याख्यातुमुचितत्वात् । इदानीं न किञ्चिदु-
द्वाहविषयमित्याद्यध्याहर्त्तव्यं भवति । तथा श्रीकराचार्यस्याप्यनभिमत-
मुपादानार्थस्य द्विकर्मकत्वम् ।

अजियहत् जनको धनुस्तद्वेनादिदद्वैत्यपुरः पिनाकी ।

जिज्ञासमानो बलमस्य बाह्वैर्हसन्नताक्षीद्रघुनन्दनस्तत् ॥

इति भट्टिश्लोकं विदुष्वन्यदाह तद्वनुस्त राम जनकोऽजियहत्
बोधितवान् अनेन धनुषा त्रिपुर दग्धमिति, ग्रहेश्च बुद्ध्यर्थत्वात् 'गति-
बुद्धी'त्यादिना रामस्य कर्मसज्ञा, धनुषस्तु 'कर्तुरीप्सिततम'मिति ग्रहि-
द्विकर्मकः । उपादानार्थत्वे तु ग्रहिर्गत्यादिष्वेकोऽपि न भवतीति कथं
तमितीति । अत एव

तमादौ कुलविद्यानामर्थमर्थविदां वरः ।

पश्चात्पार्थिवकन्यादा पाणिमग्राहयत् पिता ॥

इत्यर्थमबोधयदित्यर्थः । बुद्ध्यर्थत्वाद् द्विकर्मकत्वमुक्त्वा पाणि-
मग्राहयदित्यत्र तेनेत्यध्याहारेण व्याख्यानात् प्रकृत्युत्प्लेपेण बुद्धुपा-
दानयोर्ग्रहणं, किं चास्य द्विकर्मकत्वे अथ प्रजानामधिपः प्रभाते
जायाप्रतियाहितगन्धमाल्यामित्यत्र गन्धं कर्तुश्च कर्मण इति प्रयोज्याया
धेनोरभिधानेन भाव्य, ततश्च जायया गन्धमाल्ये या धेनुः प्रतियाहितेति

नायिना । नायिष्यति । नायतु । अनायत् । नायेत् । नाय्यात् । अनायी-
त् । अनायिष्यन् । निनायिषतीत्यादि, यङ्लुक्प्रभृत्तत्वात् 'भ्रष्टस्तथोर्धा-
ध' इति धन्वभावे 'वरि' चेति चत्वं नानास्ति । नानात्तः । नानात्य इत्यादि
विशेषः । अत्र मैत्रेयाभरणकारावाद्य गोपदेशे पठन्तौ 'गो न' इति धात्वा-
दित्वाणकारस्य नकारविधायोपपत्तादसमासेपि गोपदेशस्येति उपस-
गम्यान्निमित्तान्तरस्य गोपदेशनकारस्य समासासमासयोर्णत्वविधानात्
प्रणाधनइत्यदौ णत्वप्रयोजनमाहृतुः । सर्वं नादयो गोपदेशा इत्यस्य
पर्युदासे नृतिनन्दिनर्दनक्लिनर्तनाधुनाथवर्जमित्यत्र च न पठतुः । अत्र का-
श्यपः । नाधनेर्णोपदेशत्वमुक्तं, गणकारवृत्तिकारादीनामनिष्टत्वादिति ।
नृतिनन्दीत्यादिवाक्ये नाधुनवर्जं नृत्यादीन् पठित्वेतात्सप्य वर्जयित्वेति
षडन् श्रीकरोत्यत्रैवानुक्तं । तथा पर्युदासवाक्ये नर्दतिवर्जसर्वानेतान् पठतः
शाकटायनस्यासङ्गोऽयमेव पक्षाभिमतः । उभयोस्यान्तपाठस्तु धान्तप्र-
करणविरोधानाशङ्कः । इमौ याजुष्यामकथितेप्सिततमाभ्या द्विकर्मकौ ।

दुहित्याचिरध्वनिर्भित्तिर्वज्रामुपयेगनिमित्तमपूर्वविधौ ।

ब्रुविशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्तितमाचरित कविना ॥

इत्यत्र भित्तिरर्थपात्वात् । उक्तं च कैयटे । दुह्यादीना चार्थोपलक्ष-
णायेपादानात् पर्याययोगेपि कर्मसज्ञा भवतीति । अर्थाश्रया चेय सज्ञा
न दुह्यादिवत्स्वरूपाश्रयेति भित्ति प्रस्तुत्य वदतो हरदत्तस्यापि मते ऽत्र न
विवादः । श्लोकार्थस्तु उपयुज्यतइत्युपयोगः पर्यःप्रभृति प्रधान कर्म,
तस्य निमित्त गवादि तच्च यच्च ब्रुविशास्योर्गुणेन प्रधानकर्मणा धर्मा-
दिना क्रिया प्रणि साधनत्वेन गुणत्वात् लब्धगुणव्यपदेशेन सचते संबन्ध-
मुपैति माणवकादि, तदुभय कारक पूर्वविधौ विशेषेणाविवक्षितत्वादपा-
दानादिसज्ञाभावे कविना क्रान्तदर्शिना सूत्रकारेणाकथित कर्मोक्तमिति ।
याचिरिहानुनयार्थः । यावनार्थस्य तु भित्तिर्णैव सिद्धम् । अथान्येपि
द्विकर्मकाः प्रसङ्गात् प्रदर्श्यन्ते । यदाह

नीवह्योर्हरतेश्चापि गत्यर्थानां तथैव च ।

द्विकर्मकेषु ग्रहणं कर्तव्यमिति निश्चयः ॥

गत्यर्थग्रहणं गत्यादिमृतेष्वनानामुज्ज्वलनम्

क्षयतेः कर्षणेनैवैर्नृपेर्दण्डयनेः पचेः ।

तारस्याहेस्तथा मोचेस्त्याजेर्दीपेश्च सग्रहः ॥

कारिकायां च शब्देन सुधाकरमुखैः कृतः ।

ग्राहेरिह ग्रहो नैव हरदत्तस्य समतः ॥

यदसौ 'गतिबुद्धी'त्यत्राय कथमयाचितार नहि देवदेवमद्रिः सुतां
ग्राहयितुं शशाक्रेति, स्वतन्त्राः कवयः । यद्वा सुता प्रति न किंचिदु-
द्वाहविषयं ग्राहयितुं बोधयितुं शशाक्रेत्येव व्याख्येयम् । अत्र बुद्ध्यर्थत्वात्
द्विकर्मकत्वं सिद्धमिति समर्थयते इतीयं च निर्व्वाहणादिकम् । प्रतिय-
हणस्य ममेदमिति बुद्धिविशेषनिरूप्यत्वात् सुता ग्राहयितुं ममेयमिति
बोधयितुं न शशाक इत्येव व्याख्यातुमुचितत्वात् । इदानीं न किंचिदु-
द्वाहविषयमित्याद्यध्याहर्तव्यं भवति । तथा श्रीकराचार्यस्याप्यनभिमत-
मुपादानार्थस्य द्विकर्मकत्वम् ।

अजियहत जनको धनुस्तद्येनादिद्वैत्यपुरः पिनाकी ।

जिज्ञासमानो बलमस्य बाह्वाहंसन्नताक्षीद्रघुनन्दनस्तत् ॥

इति भट्टिश्लोक विद्वत्खन्यदाह तदनुस्त राम जनकोऽजियहत
बोधितवान् अनेन धनुषा त्रिपुर दग्धमिति, ग्रहेश्च बुद्ध्यर्थत्वात् 'गति-
बुद्धी'त्यादिना रामस्य कर्मसज्ञा, धनुषस्तु 'कर्तुरीप्सिततम'मिति ग्रहि-
द्विकर्मकः । उपादानार्थत्वे तु ग्रहिर्गत्यादिष्वेकोऽपि न भवतीति कथं
तमितीति । अत एव

तमादौ कुलविद्वानामर्थमर्थविदां वरः ।

पश्चात्पार्थिवकन्यानां पाणिमयाहयत् पिता ॥

इत्यर्थमबोधयदित्यर्थः । बुद्ध्यर्थत्वाद् द्विकर्मकत्वमुक्त्वा पाणि-
मयाहयदित्यत्र तेनेत्यध्याहारेण व्याख्यानात् प्रकृत्युदश्लेषेण बुद्धुपा-
दानयोर्ग्रहणं, किं चास्य द्विकर्मकत्वे अथ प्रजानामधिपः प्रभाते
जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यामित्यत्र एयन्ते कर्तुंश्च कर्मण इति प्रयोज्याया
धेनोरभिधानेन भाव्य, ततश्च जायया गन्धमाल्ये या धेनुः प्रतिग्राहितेति

विग्रहीतव्यम्, अत्र च प्रथमार्थं वर्जयित्वा सर्वविभक्त्यर्थेषु बहुव्रीहिरित्युक्त-
त्वात्समासो न स्यात्, सत्यपि समासे समानाधिकरणोत्तरपदाभावात्
'स्त्रिया पुत्रदि'ति पुत्रद्वयो न स्यात् । पदान्तरे तु गन्धमात्ययोरेव कर्म-
त्वात्तयोरेव क्ते तेनाभिधानात् ज्ञायया प्रतिप्राहिते गन्धमात्ये यया धेन्वे-
न्युट्परादिबन् नृनीयार्थेन समामः सिध्यतीति गतमदः । इषिशकी च
द्विकर्मकौ भाष्यउक्तौ । एव चायाचितार नहि देवदेवमित्यत्रापि देवः
शक्यपेतया कर्म सुता प्रतियहापेतयेति न सकटं किं चित् ॥

अथ द्विकर्मकसाधारणमिदं विचार्यते ॥ किमेते लादयः प्रधाने
कर्मणि भवन्ति अयाप्रधाने । न चानयोर्युगपदभिधानसम्भवा भिन्नकस्त-
त्वात् । अत्राह ।

प्रधानकर्मण्याख्ये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम् ।

अप्रधाने दुहादीना एयन्ते कर्तुश्च कर्मणः ॥

इति । अभिधानइति शेषः । अत्र द्विकर्मणामित्यनेन नीवह्योर्हर-
तिश्चेति चशब्दसमुच्चिन कृपिः नयत्यादयश्च त्रय उच्यन्ते । अन्येषां विशे-
षस्य वक्ष्यमाणत्वात् । तथा दुह्यादीनामित्यनेन कारिकोपात्ताश्चशब्द-
समुच्चिनेष्वहेतुमण्यन्ता जिदृह्यादयश्चाच्यन्ते, एयन्तइत्यनेन तु गत्या-
दिमूत्रोपात्ताश्चशब्दसमुच्चितान्तार्यादयश्च । अत्र बुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्द-
कर्मकेषु प्राकृते वा कर्मणि प्रयोज्ये वा लादयः । यदाह ।

कयितेभिहिते त्वविधिस्त्वप्रतिगुणकर्मणि लादिविधिः सपरे ।

ध्रुववेष्टितयुक्तिषु चाप्यगुणे तदनल्पमतेर्वचनं स्मरति ॥

अस्यार्थः । तत्र प्रथमः पादः प्रधानकर्मणि लादिभिरभिहिते
गुणकर्मणि पठ्यतीत्येकीयमतदूषणपर इति इहानुपयोगात् न व्याख्यायते ।
सपरे गत्यादिसूत्रोपात्तमहिते दुह्यादौ गुणकर्मणि लादयः । गुण-
कर्मणि पुरुषप्रवृत्तेः पयःप्रभृत्यर्थत्वात् दुह्यादावप्रधानं गवाद्युच्यते ।
एयन्त तु शब्दतः प्रयोजकव्यापारस्य प्राधान्यं प्रयोज्यव्यापारस्य त्वप्राधा-
न्यमिति तदाप्य धर्माद्युच्यते । ध्रुवयुक्तयोऽकर्मकाः, वेष्टितयुक्तयो गत्य-

र्थाः, एष्वगुणे प्रयेज्ये, तदेतदनल्पमतेर्मधाविन आचार्यस्य वचनमिति ।
 अत्र स्मरतीत्यनेनागमस्याविच्छेद दर्शयति । एव चात्रापि याचनस्य
 धनाद्वर्थत्वात्तस्यैव प्राधान्यादन्यद्राजादि कर्माप्रधानमिति तत्रैव लादयो
 भवन्तीति नाय्यते राजा धन नाय्यः नायितः सुनाथ इत्यादि भवति ।
 नायिता धनस्य राज्ञ इत्यत्र च कर्मणि षष्ठ्यभ्यन्त भवति । गुणकर्म-
 ण्यभ्ययथा गोणिकापुत्र इति भाष्ये उक्तत्वात् द्वितीयापि द्रष्टव्या ।
 नायिता धनस्य राजानमिति, भाष्ये नयतेरुदाहरणं प्रदर्शनमात्रं,
 स्पष्ट चैतत् पदमञ्जयादिषु । नायितव्यो राजा धन देवदत्तेनेत्यत्र कर्तृ-
 कर्मणोः प्राप्ता कृत्योगलक्षणा षष्ठी 'कृत्याना कर्त्तरि वे'त्यत्र कृत्या-
 नामिति योगं विभज्य प्राप्तौ नेति चानुवर्त्य उभयप्राप्तौ कृत्ये षष्ठ्यभावस्य
 भाष्ये प्रतिपादितत्वात् भवति । स्पष्ट चैतत्कष्टादौ । यत्तु 'कृत्याना'मि-
 त्यत्रोभयप्राप्तौ कृत्ये षष्ठ्याः प्रतिषेध इति वृत्तिमुपादाय प्रतिषेधो ऽयं
 कर्त्तरि षष्ठ्याः कर्मणि षष्ठ्यास्तु प्रधानस्य कर्मणः कृत्येनाभिधानादन्यस्याप्रा-
 धान्यादप्रसङ्ग इति न्यासे ऽयंसत्वमुक्तं तद्वितीयावदप्रधाने षष्ठ्यनिवार्येति
 यत्किञ्चित् । कर्त्तरि चेति विधीयमानषष्ठीविकल्प उभयप्राप्तिव्यतिरि-
 क्तकृत्यविषयः । नायितव्यं सर्पिर्देवदत्तेन देवदत्तस्येति वा ६-७ ॥

दध धारणे ॥ दानइति के चित् पठन्ति, दद दानइत्यत्र धारण-
 इति । तदयुक्तम् ।

तद्वेपोसदृशोन्वाभिस्त्रीभिर्मधुनाभृतः ।

दधते सुलभा शोभा तदीया विभ्रमा इव ॥

पिबति च पाति च यासकौ रहस्त्वाम्

म्रज विटपममु ददस्व तस्ये ।

दाददो दुदुदुदादो दादादो दूददीददोः ।

दुदुदं दददे दुद्वे ददाददददो ऽददः ॥

इत्यादौ दधे धारणार्थत्वस्यान्यस्य दानार्थत्वस्य च व्यवस्थित-
 त्वात् । दधते । दधेते । दधन्ते । दधसे । दधावहे । दधामहे ।
 देधे । देधाते । देधिरे । देधिषे । देधे । देधिञहे । 'अत एकह-

रेत्यादि । लङ् तिप्सिपोहंलङ्यादिसयोगान्तलोपयोरचोऽस्कुन् । भावादौ
यङन्तवदित्युक्तम् । स्कुन्दयति । स्कुन्दयतइत्यादि । स्कुन्दनः । युच्
स्कुन्दा । उपदेशावस्य'यां नुमो विधानाद् धातोर्गुणमत्वाद् 'गुरोश्च
हल' इति स्त्रियामकारो लघूपधगुणाभावश्च ॥ ९ ॥

श्विदि श्वेत्ये ॥ अकर्मकः । श्वेतस्य गुणस्यापि धातुना साध्य-
तया कर्मिकतया वाभिधानात् द्वियात्वम् । यदाह ।

श्वेततेः श्वेत इत्येतत् श्वे-त्वेन प्रकाश्यते ।

आश्रितक्रमरूपत्वादभिधानं प्रवर्तते ॥

इति । पूर्ववच्चागमः । श्विन्दते इत्यादि स्कुन्दिवत् ॥ १० ॥

वदि अभिवादनस्तुत्याः ॥ प्रणतिपूर्वमाशिषो वाचनमभिवादनं,
तथा च प्रयोगः । अभिवदति नाभिवादयतेत्याचार्यं स्वशुर राजानमिति ।
वन्दते । वन्दे । वन्दितेत्यादि । पूर्ववच्चागमः । ऽकारस्यासहायहलमध्यग-
तत्वाभावाच्चैत्याभ्यासलोपौ । 'न शसददवादिगुणाना'मितिनिषेधाद्वा ।
गुण इति तद्विवक्तिः उच्यते । वन्दारः । 'शृवन्दोरारुरि'ति तच्छीलादि-
कृष्णारुप्रत्ययः । वन्दना । 'घट्टिवन्दिविदिभ्यश्चे'ति स्त्रिया युच् । वन्दा
वृत्तरुहा । बाहुलकात् स्त्रिया सजायामकारः । वन्दा वृत्तादनी वृत्तरुहा
जीवन्तिकेत्यपीत्यमरः । वन्दीति । स्तोतयावश्यकण्यन्तः । हठ-
हृतमहिलायां त्विविति सर्वधातुविषयेवन्तात्सर्वतोऽक्तिवर्थादित्येकइति
हीषि । अयं वशादिरपभ्रशः । यदाह राजानकः सदिग्धस्यादाहरणे ।

आलिङ्गितस्तत्रभवान्सपराये जयश्रिया ।

आशी परपरां वन्द्या कर्णे कृत्वा कृपा करु ॥

अत्र वन्द्यामिति किं हठहृतमहिलायामुत नमस्यामिति सन्देह
रति । वन्द् पूजकः । 'स्फायितञ्चर्वाञ्चशक्तिपितृदिसृपितृपिदृपि-
वन्दुन्दिश्वितिश्रुत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिच्छिदिभिदिमन्दिचन्दिदहि-
दसिदम्भिदसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्या रगि'ति रक् प्रत्ययः ॥ ११ ॥

भदि कल्याणे सुखे च ॥ कल्याणं मङ्गलं सुखमात्मगुणः । भन्दते ।
बभन्दे । भन्दितेत्यादि स्कुन्दिवत् । देवदत्ताय भद्रं भूयाद्वेदतस्येति वा ॥

‘अजेन्द्र यजजविप्रकुप्रचुरतुरगुभट्टे’ यमभेरभेलशुक्रुक्कवन्नैर’ माला’ इति
रक्यनुनासिकलोपे भट्टशब्दे निपातितः । तद्युक्ता चतुर्थी चागिष्यायुष्यम-
द्रभट्टकुशलसुखार्थहितैरित्याशिपि गम्यमानाया चतुर्थीषष्ठौ । अत्रायुष्या
दयोऽर्थपराः । भट्टाकरोति मुण्डयतीत्यर्थः । ‘भट्टाञ्चेति वक्तव्य’ मति परि-
वापणे मुण्डने कृजो योगे डाच् प्रत्ययः । अस्य चो र्यादिन्विड’चस्वे’ति
गतिस्वात्पूर्वं प्रयोगः । अत एव निपातत्वेनाव्ययत्वात्सेलुं ॥ १२ ॥

मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नगतिषु ॥ कान्तिगतिष्वित्येके । मोदो हर्षः ।
मदो गर्वः । स्वप्न आलस्यम् । चन्द्रस्तु मदि जयइत्यपि पपाठ । स्तुतिगति-
भ्यामन्यत्राकर्मकः । मन्दते । मनन्द । मन्दितेत्यादि पूर्ववत् । मन्दुरा ।
‘मन्दिवाशिमणितिवङ्कपङ्क्तिभ्य उरजि’त्युच् । मन्दिरम् । ‘इपिमदिमुदि-
खिदिच्छिदिभिदिमन्दिचन्दि’तिमिमुहिमिहिमुचिरुचिरुधिशुषिबन्धिभ्यः
किरजि’ति किरच् । मन्द्रम् । ‘स्फायितञ्चीत्या’दिना रक् । मन्दारः ।
‘अगिमदिमन्दिभ्य आरवि’त्यारन् । मन्दरः । बाहुलकादरः । मद्रा मन्द
रातीति मन्दरः । अथ मदी हर्षे दिवादौ । मद हर्षलेपनयेघटादौ ।
मद वृत्तियोगइति चुरादौ ॥ १३ ॥

स्पदि किचिञ्चलने ॥ चलन कम्पनम् । अकर्मकः । स्पन्दते ।
पस्पन्दे । स्पन्दितेत्यादि पूर्ववत् । स्पन्दयति । ‘निगरणचलनार्थेभ्यश्चे’ति
ण्यन्तात्परस्मैपदमेव । निगरणमभ्यवहारः ॥ १४ ॥

क्लिदि परिदेवने ॥ परिदेवन शोचनम् । सकर्मकः । क्लिन्दते देवद-
त्तम् । चिक्लिन्दे । क्लिन्दितेत्यादि पूर्ववत् । क्लेदा । क्लेदोपधिशशाङ्कयोरिति
यादवप्रकाशः । ‘श्चुत्तन्पूषन्’ हिनक्लेदन्लेन्मूर्तन्मज्जन्’र्यमन्वि ख-
प्सन्परिजम्मातरिश्चन्मघवन्’ति कनिनि गुणनुमभावयोर्निपातितः ।
‘सर्वनामस्थाने चासंबुद्धा’विति नान्तत्वादुपधाया दीर्घः । संबुद्धौ हलङ्या-
दिलोपे प्रत्ययलक्षणेन सुबन्तत्वात्पदत्वा चलोपः प्रातिपदिके’ति प्राप्तो
नलोपो ‘न डिस्बुद्धो’रिति निषिध्यते, भसंज्ञायामलोपे क्लेद इत्यादि, सप्त
म्येकवचने ‘विभाषा डिश्योरि’त्यल्लोपस्य विकल्पनात् क्लेदि क्लेदनीत्यपि
भवति । हलादौ पदत्वाचलोपे क्लेदभ्यामित्यादि । नलोपस्य पूर्वत्रासिद्धत्वा-

'त्सु'पि च 'अतो भिस ऐम्' 'बहुवचने भल्ले'दित्येते विधयो न भवन्ति ।
भ्रुव्यादय एतदन्ताः सप्त इदितः । अयं परस्मैपदादिष्वपि पठिष्यते ।
उदिदादीभावे दिवादी ॥ ५५ ॥

मुद ऋदं ॥ मोदते । मोदने । मोदसे । मोदे । लघूपधत्वाद्गुणः ।
मुमुद्रे । मुमुदाने । मुमुदिषे । मुमुदिवहे । 'असयोगाल्लिट्किट्'ति क्रि-
त्वाच्च गुणः । मोदिता । मोदिष्यते । मोदताम् । अमोदत । मोदेत ।
आशिषि । मोदिपीठ । अमोदिष्ट । अमोदिष्यत इत्यादि । भावे
मुद्यने । अमुद्यन । मुद्येत । अमोदि । शेषं कर्तृवत् । मुमुदिषते,
मुमुदिषते । 'रलो व्युपधादुलादेः सश्व' । रनन्तादृलादेरकारेकारो-
पधान परौ सेंटैः त्कामनौ वा कितौ भवत इति क्तिवपत्ते न गुणः ।
मुमुदपा चक्रे । मुमुदिषा चक्रे इत्युदाहार्यम् । मोमुद्यते । मोमुदा
चक्रे । मोमुदिषेत्यादि । अत्रार्धधातुके यलोपाल्लोपयोर्लघूपधगुणो न
भवति । 'न धातुलोप आर्धधातुक'इति धात्वैकदेशेनोन्निमित्तार्धधातु-
कनिमित्तयोगुणवृद्धोर्निषेधाद् 'अचः परस्मिन् पूर्वविधा'वित्यल्लोपस्य
स्यानिवत्त्वाद्वा । मोमोति । मोमुदीति । मोमुत्तः । मोमुदति । मोमोत्सि ।
मोमुदीषि । मोमोद्वि । मोमुदीमि । मोमुदुः । यङ्लुको ऽनैमित्तिकत्वाच्च
धातुलोप' इति निषेधो न भवति । ईटि तु 'नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्व-
धातुक'इति निषेधः । मोमोदा चकार । मोमोदिता । मोमोदिष्यति ।
मोमोत्तु । मोमुत्तात् । मोमुदीतु । मोमुद्वि । हेरपित्वाच्च गुणः । मोमु-
दानि । मोमुदाव । आट्यजादिपित्सार्धधातुकत्वाच्चाभ्यस्ते'ति गुणनिषेधः ।
लङाङभावपत्ते तिस्रिषोर्हल्ङ्यादिलोपे 'वावसान'इति पत्ते चत्वंम् ।
मिपि तु 'दश्चे'ति वा सत्वमपि । अमोमोत् । अमोमोद् । आमोमुत्ताम् ।
अमोमोत् । अमोमोद् । अमोमोः । अमोमुदम् । ईट्यमोमुदीत् । अमो-
मुदीः । मोमुद्यात् । आशिषि । मोमुद्यास्ताम् । यासुटो ङित्वक्त्वा-
भ्याच्च गुणः । अमोमोदीत् । सिञ्जलोपस्यामिट्त्वाद्वा प्रत्ययलक्षणो न वा
गुणः । अमोमोदिष्टाम् । हलन्तलक्षणा वृद्धिर्नैटी'ति निषिध्यते । अमो-
मोदिष्यदित्यादि । मोदयति । मोदयां चकारेत्यादि पूर्ववत् । लङ्यमू-

मुदत् । 'दीर्घा लघोरिति दीर्घः । मुदित्वा । मोदित्वा । उक्तः कित्त्व-
 विकल्पः । मुदितमनेन । मोदितमनेन । 'निष्ठे'ति भूते यः क्तः स 'तयो-
 रेव कृत्ये लुपति' इत्यादिना दन्तर्ज्वाद्भावाद्भावे, प्रमुदितमनेन । प्रमोदितम-
 नेन । प्रमुदितः । प्रमोदितः । अत्रादिक्रियात्तणस्य भूतत्वाश्रये 'निष्ठे'ति
 क्तः । स चा'दिकर्मणि क्तः कर्त्तरि चे'ति भावकत्रोट्टयोरपि भवति । प्रमु-
 दितवान् । प्रमोदितवान् । 'उदुपधाद्वावादिकर्मणोरन्यतरस्या'मिति सेटो
 निष्ठायाः पक्षे कित्त्वनिषेधाद् गुणः । भावादिकर्मभ्यामन्यत्र मुदिते
 देवदत्तः मुदितवानित्येव । 'प्रोच्चार्यन्वाङ्कर्त्तरि क्तः । मुदितवानित्यत्रा-
 'त्वसन्तस्य चाधातो'रित्यात्व तस्याधातोरसन्तस्य चापधायाः सवुद्धि-
 र्जिते सौ विहिताद्वीर्घादनन्तर क्तवतोर्दित्वेन नुमि हल्ङ्यादिसंयोगा-
 न्तलोपो । पूर्व नुमि न दीर्घस्य प्रसङ्गः उपधाभावात् । न च संयोगा-
 न्तलोपादनन्तरमुपधात्वे भूतपूर्वगत्याऽत्वन्ताश्रयस्य दीर्घस्य प्रसङ्गः ।
 नापि नान्तत्वेन 'सर्वनामस्थान'इति दीर्घस्य । यतस्तयोः संयोगान्तलोपो
 ऽसिद्धः । मोदन । युच् । मुत् । 'स्यदादिभ्यः क्त्वि'ति स्त्रियां क्त्वि ।
 मुदिरः । 'इषिमदी'त्यादिना किरच् । मुद्गः । 'मुदियोगंगा'विति गक् ।
 कित्त्वाच्च गुणः । मुद्गेन ससृष्ट मौद्गम् । 'मुद्गादणि'ति तृतीयान्तादस्मा-
 त्संसृष्टेऽण् प्रत्ययः । मुद्गा । 'स्फायितञ्जी'त्यादिना रक् । ससर्गाद्योयं
 चुरादौ ॥ १६ ॥

दद दाने ॥ किं चिदुद्दिश्यपुनर्यहणाय स्वीयत्यागो दानम् ।
 ददते । ददसे । ददे । दददे । दददाते । दददिषे । दददे । 'न शसद-
 दे'त्येत्वाभ्यासलोपनिषेधः । ददिता । ददिष्यते । ददताम् । अददत ।
 ददेत । आशिषि । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत । कर्मदौ ।
 दद्यते । दद्यताम् । अदद्यत । दद्येत । अदादि, शेषं कर्तृवत् । दिद-
 दिषते । दादद्यते । दाददीति । दादत्ति । दादयते । शेषं मुदिश्चेदम् ॥ १७ ॥

खद खर्द आस्वादने ॥ सवर्णइति क्षीरस्वामी । आस्वादन-
 मनुभवः । अत्रायं सकर्मकः खदन्ति देवा उपा निहव्येति दर्श-
 नात् । छान्दस परस्मैपदम् । तथा स्वादनइति ण्यन्तेनार्थनिर्देशाच्च

मकर्मदेश्यम् । यद्वत्यति चुरादावास्वादने सकर्मक इति । अस्यार्थे
 मन्त्र प्रपञ्चयिष्यते । यदायमनेकार्थो धातव इति रुचौ वर्त्तते
 तदाऽऽर्मक । आद्यः षोपदेशः । तदुक्तं भाष्ये । अज्दन्त्यपराः
 सादयः षोपदेशाः स्मिङ्स्विदिस्वदिस्वजिस्वपयश्चेति । प्रायेणाय
 माङ्पूर्वः । आस्यदते णम् । सस्वदितेत्यादि ददिवत् । रुच्यर्थत्वे
 खल्वपि । दधि स्यदने देवदत्ताय । 'रुच्यर्थानां प्रीयमाण' इति तर्प्यमाण-
 स्यैषा प्रयोगे सप्रदानत्वाद्देवदत्ताच्चतुर्थी । अन्यकर्तृकोऽभिलाषो रुचि-
 रिति वृत्तिः । अत्र हरदत्तः । योऽभिलाषस्याश्रयः प्रीयमाणः ततोऽन्यक-
 र्तृक इत्यर्थः । कथं पुनरन्याश्रयस्याभिलाषस्यान्यः कर्ता भवति, यावता
 यदाश्रयव्यापारं धातुः प्राधान्येन चष्टे स कर्ता । नेद कर्तृलक्षणं किं तर्हि
 स्वातन्त्र्यमेव, तच्च क्व चिदुक्तवत् क्व चिद्वैवक्तिकम् । तत्र माधुर्यातिशयेन
 ह्यविषयं देवदत्ताश्रयमभिलाषं जनयद् दधि तत्र कर्त्तैति गीयतइति ।
 अत्र 'मान्यद्वाद्यो रिति मातिप्रत्ययपदाद्योः सकारस्य षत्वनिषेधादिणः
 परत्वेषि न षत्वम् । कर्मादौ स्वद्यतइत्यादि, सिस्वदिषते । 'स्तौतिण्यो-
 रेव षण्यभ्यासादिति नियमाच्च षत्वम् । अभ्यासस्यान्विमितादुत्तरस्या-
 'देशप्रत्यययो'रिति षत्व, कृतषत्वे सति यदि भवति स्तौतिण्यन्तानामे-
 वेति सूत्रार्थः । सास्वद्यते । सास्वदीति । सास्वत्ति । स्वादयति ।
 स्वादयते । अमिष्वदत् । शेष पूर्ववत् । ण्यन्तात्सनि 'स्तौतिण्योरेव' इति
 नियमान् षत्वे प्राप्ते तदपवादः 'सः स्विदिस्वदिसहीनां चे'ति सकारो
 विधीयतइति सिस्वादयिषतीति भवति । ये त्वमु दन्त्यादिं पठन्ति,
 तेषामिदं सत्ववचनं कथमर्थवदिति तेष्व प्रष्टव्याः । स्वर्दते । सस्वर्दं
 इत्यादि स्वदिवत् । अज्दन्त्येति षोपदेशलक्षणं केवलदन्त्यविषयमिति
 दन्त्योष्मपरोय न षोपदेशः । अत एव दन्त्योष्मपराः ष्विद्यादयः स्वदी-
 न्यादिना पुनः पठन्ते । स्वादुः । 'कुवापाजिस्वदिसाध्यशूभ्य उखि'त्यु-
 णप्रत्ययः । स्वाद आस्वादनइत्यत्रेवाये ॥ १९ ॥

उर्दे माने क्रीडायां च ॥ क्रीडायामकर्मकः । चकारादास्वादने ।
 इङ् मानं मुबमिति समतायाम् । ऊर्दते । ऊर्दो चक्रे । ऊर्दिता । ऊर्दि-

प्यते । ऊर्दताम् और्दत । ऊर्दत । आशिपि । ऊर्दिषीष्ट । और्दिष्ट ।
 और्दिष्यत । 'उपधाया चे'ति धातोरुपधाभूतरफात् पूर्वत्वादिको दीर्घः
 सर्वत्र । यथायोग भावकर्मकर्मकर्तृपूर्वतइत्यादि । ऊर्दिदिपते । 'न न्द्राः
 सयोगादय' इति द्वितीयस्यैकादो नदराणा सयोगादीना द्विर्वचननिषे-
 धाद्वकारादिर्द्विरुच्यते । ऊर्दयति । और्दिदत् ॥ २० ॥

कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेव ॥ अत्र कैयटपुरुषकारमैत्रेयादिषु
 तृतीयो न पठ्यते । समतामोधाविस्तारचान्द्रेषु तु त्रयोपि पठ्यन्ते । गुद-
 क्रीडा गुदविहार इति चरके । मैत्रेयकाश्यपौ गुद इत्यपि पृथक् धातु-
 रिति । अत्रैवकारो धातूनामनेकार्थत्वे ज्ञापक इत्युक्तम् । स्फूर्जर्दीर्घापदे-
 शादुपधाया चे'ति दीर्घ एषा न इति चन्द्रः । मैत्रेयसमतामोधाविस्ता-
 रकारादयस्तु दीर्घत्वमिच्छन्ति । कूर्दते । चुकूर्द । कूर्दिता । कूर्दिष्यते ।
 कूर्दताम् । अकूर्दत । कूर्दत । आशिपि । कूर्दिषीष्ट । अकूर्दिष्ट । भावे ।
 कूर्द्यतइत्यादि । चुकूर्दिषते । चोक्कूर्द्यते । चोक्कूर्ति । चोक्कूर्ति । चोक्कूर्तः ।
 चोक्कूर्दो चकार । चोक्कूर्दितेत्यादि । लङि तिप्सिपोहृदयादिलोपे 'वा-
 ऽवसान'इति चत्वर्यविकल्पः । अचोक्कूर्दोत् । अचोक्कूर्त् । अचोक्कूर्द् । सिपि
 तु 'दश्चे'ति वा इत्वमपि । अचोक्कू । चान्द्रेपि मते 'रो रि' लोपे 'कृलो-
 प'इति दीर्घस्य विद्यमानत्वादत्र न विशेषः । कूर्दयति । अचुकूर्दत् ।
 एवमितरयोरप्युदाहार्यम् । गुदेः । गोदते । जुगुदे । गोदितेत्यादि । जुगु-
 दिपते । जुगोदिपते । गुदित्वा, गोदित्वेत्यादि मुदिवच्चेयम् । गुदम् ।
 इगुपधलक्षणः कः । गोद इति पचाद्व्यजिति मैत्रेयः ॥ २४ ॥

षूद क्षरणे ॥ क्षरण निःसारणम् । अत्रायमकर्मकः, हिंसायामपि वर्तते,
 मधुसूदन इति । अत्राय सकर्मकः । एयन्तोयं सस्कारेपि वर्तते । अग्निर्हव्य
 शमिता सूदयतीति । हव्यं हवनाहं पशोर्हृदयादि शमिता शमित्राग्निः
 सूदयति सस्करोतीति । क्षरणस्वादुकरणनाशनार्थत्वमहेरात्राणि मरुतो
 विलिष्ट सूदन्त्वित्यत्राह भट्टभास्करः । तथा हि अहोरात्राणि मरुतश्च
 तद्विलिष्टं विनाशितं विष्टपं वा सूदयन्तु क्षारयन्तु यद्विलिष्टं स्वादु कुर्वन्तु
 वा । यद्वा यद्विलिष्टं यागायोग्यं यद्विरूपं विशसितं तद्विनाशयन्त्विति । क्षरे

तु तत्र त्रिलिङ् न्यून पूरयन्त्विति पूरणार्थत्वं दृश्यते । सूदते । सुपूदे । सूदि-
तेत्यादि । भावाद्गो मूदयन् इत्यादि । सुमूदिपते । स्तौ नित्यं 'रवे'ति निय-
मात् पन्थम् । सोमूदयते । सोमूदति । सूदयति । सूदयते । असूषुदत् ।
'हो घडी'ति ह्रस्वत्वम् । सूदिता । 'मूददीपदीक्षणे'त्यनुदात्ते लक्षणस्य
युच्चा निषेधात् 'त्वि'ति सामान्यस्ताच्छीलिकस्तृन् । मधुसूदनः । 'नन्दि-
गृहिपचादिभ्यो ल्युण्णित्यच' इति ल्युः । क्षरति क्षारयति रसानिति च,
सूदः पङ्कः पाचकश्च । इगुपधञाप्रोक्तिर. क' इति इगुपधत्वात् कर्त्तरि
कः । अयं चुरादावपि ॥ २५ ॥

ह्राद अव्यक्ते शब्दे ॥ अव्यक्तशब्दो वाद्यादिघोषः । ह्रादते ।
जह्रादे । 'कुहोश्च'रित्यभ्यासहकारस्यान्तरतम्यात् ककारश्चुत्व, तस्या-
'भ्यासे चर्च'ति जश्च जकार. । ह्रादितेत्यादि । भावे ह्रादयत इत्यादि ।
अह्रादि । जिह्रादिपते । जाह्रायते । जाह्रादीति । जाह्रातीत्यादि, ह्राद-
यति । ह्रादयते । अजिह्रदत् । 'अत्स्मृदृत्वरप्रथमदस्त्वशा'मिति स्मर-
त्यादीनां चङ् परे हो लघुनि धात्वक्षरे परदत्त्वापवादात्त्वविधानाज् ज्ञाप-
कादिन्वविधौ येन नाव्यवधानेन तेन व्यवहितेपि भवेतीति नियमानाश्र-
यणादभ्यासस्येत्वम् । दीर्घस्तु न भवति सयोगपरत्वेनालघुत्वात् । ह्रदः ।
पचाद्यचि पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः । महिकिह्रदो नाम वाहीकशामवि-
शेषः । तत्र भवादिर्महिकिह्रदीयः, 'कन्यापलदनगरयामह्रदोत्तरपदादि'ति
शेषेण ह्रो 'वाहिकशामेभ्यश्चे'ति प्राप्तयोः ठञ्जिठयोरपवादः, 'आयनेयी-
नीपियः ऋग्वच्छ्या प्रत्ययादीनामि'ति प्रत्ययादीनां फादीनां यथासख्य-
मायचादिविधानात् कस्येयादेशः । कृविधौ निपातनाद्वा ह्रस्वः ॥ २६ ॥

ह्रादी सुखे च ॥ चकारादव्यक्तशब्दे च । ह्रादत इत्यादि ह्रादि-
वत् । विशेषस्त्वादित्वात् श्वीदितो निष्ठायां तीडभावो ह्रादो निष्ठा-
यामि'त्युपधाह्रस्वश्च । तथा 'रदाभ्या निष्ठातो नः पूर्वस्य च द' इति
निष्ठातकारस्य पूर्वदकारस्य च नकारः, आहूचः । आहूचवान् ॥ २७ ॥

स्वाद आस्वदने ॥ स्वादत इत्यादि स्वदिवत् । अषोपदेशत्वाद्-
सिस्वदद् इत्यादौ न षत्वम् । स्वदिना समानार्थोप्ययमाकारोपधसाम्या-

दिह पठितः । अज्दन्त्येति षोडशक्षणे दन्त्यग्रहणेन केवलो दन्त्यो
गृह्यते न तु दन्त्योष्मोपीत्ययमप्यपदेशः स्वर्दिवत् ॥ २८ ॥

पर्दे कुत्सिते शब्दे ॥ रेफवृद्धान्तः । सयोगान्ते रूढादिष्वयं न
पठितः । शब्दविशेषार्थेन द्राघादिनापि साम्यात् । स्वादिस्त्वाकारवत्स-
योगादित्वेन द्वाद्यनुरोधेन मध्ये पठितः । ३६ कुत्सितः शब्दो गुदरव ।
तदाह केशवस्वामी कौत्से कर्दति पर्दते गुदरवइति । पर्दने । पपर्दे ।
पर्दिता । पर्दिष्यते । पर्देताम् । अपर्देत । पर्देत । पर्दिषीष्ट । अपर्दिष्ट ।
भावे पद्व्यतइत्यादि । पिपर्दिषते । पापद्व्यते । पापद्व्यते । पापदीति ।
पापतीत्यादि । लङि तिप्सिपोर्हल्ङादित्वे पे वा चत्त्वम् । सिप्ति तु
पक्षे 'दश्चे'ति इत्त्व चोदाहार्यम् । पृदाकु । 'पर्देर्नित् सप्रसारणमल्लो-
पश्चे'ति काकुप्रत्ययो लोपः प्रसारण च ॥ २९ ॥

यती प्रयत्ने ॥ यतते । येते । येतिषे । एत्वाभ्यासलोपौ ।
यतिता । यतिष्यते । यतताम् । अयतत । यतेत । आशिपि यतिषीष्ट ।
अयतिष्ट । अयतिष्यत । भावे । यत्यतइत्यादि । यियतिषते । याय-
त्यते । यायतीति । यायतीत्यादि । लङि तिप्सिपोर्हल्ङादिलोपे जश्त्वे
वा चत्त्वम् । सिप्ति तु 'दश्चे'ति वा इत्त्वमपि । यातयति । अयीयतत् ।
यत्यम् । 'तकिशसियतिजनीनामुपसख्यानमि'ति भावे यत् ।
आयत्तः । आयत्तवान्, ईदित्वात् 'श्वीदितो निष्ठायामि'तीडभावः ।
यत्नः । 'यजयाचयतविच्छ्रप्रच्छरतो नडि'ति भावादौ नड् । यतिः । 'इत्
सर्वधातुभ्य' इतील् । यत निष्कारोपस्कारयोरिति चुरादौ ॥ ३० ॥

युतृ जुतृ भासने ॥ योतते । युयुते । योनिनेत्यादि । भावे
युत्यतइत्यादि । युयुतिषते । युयोतिषते । 'रलो व्युपधादि'ति वा
कित्त्वम् । योयुत्यते । योयुतीति । योयोतीत्यादि । ईट्पक्षे 'नाभ्यस्त-
स्ये'ति गुणनिषेधः । योतयति । अयुयोतत् । ऋदित्वाच्चा 'लोपी'त्युप-
धाद्व्यतिषेधः । युतित्वा । योतित्वा । सन्वत्कित्त्वविकल्पः । 'उदुप-
धाद्वावादिकर्मणोरन्यतरस्या'मिति निष्ठायां मुदिवत् कित्त्वविकल्प उदा-
हार्यः । युतितमनेन योतितमनेनेत्यादि । जोततइत्यादि । युतिवत् ॥ ३२ ॥

तु तत्र विनिष्ट न्यून पूरण्यन्विति पूरणार्थत्वं दृश्यते । सूदते । सूषदे । सूदि-
नत्यादि भावादौ सूदतइत्यादि । सूसूदिपते । 'स्तौति'ण्यारेवेति'निय-
माच्च यत्वम् । सोमूदते । सोसूति । सूदयति । सूदयते । असूषुदत् ।
'गौ घडी'ति ह्रस्वत्वम् । सूदिता । 'सूददीपदीप्तश्चे'त्यनुदातेल्लक्ष ण्य
युचो निषेधा'त्तृवि'ति सामान्यस्ताच्छीलिकस्तृन् । मधुसूदनः । 'नन्दि-
य'क्षिपचादिभ्यो ल्युङि'त्यच' इति ल्युः । क्षरति क्षारयति रसानिति च,
सूदः पङ्क्तः पाचकश्च । 'द्वगुपधजाप्रोक्तिरः क' इति द्वगुपधत्वात् कर्त्तरि
कः । अथ चुरादावपि ॥ २५ ॥

ह्राद अव्यक्ते शब्दे ॥ अव्यक्तशब्दो वाङ्मादिघोषः । ह्रादते ।
जह्रादे । 'कुहोश्च'रित्यभ्यासहकारस्यान्तरतम्यात् ककारश्चुत्व, तस्या-
'भ्यामे चर्चे'ति जश्च जकारः । ह्रादितेत्यादि । भावे ह्रादतइत्यादि ।
अह्रादि । जिह्रादिपते । जाह्रादते । जाह्रादीति । जाह्रातीत्यादि, ह्राद-
यति । ह्रादयते । अजिह्रदत् । 'अस्मदृत्वरप्रथमदस्त्वशा'मिति स्मर-
त्यादीनां चङ्परं गौ लघुनि धात्वन्तरे परदत्वापवादात्त्वविधानाज् ज्ञाप-
कादिन्वविधौ येन नाव्यवधानेन तेन व्यवहितेपि भवतीति नियमानाश्र-
यणादभ्यासस्येत्वम् । दीर्घस्तु न भवति सयोगपरत्वेनालघुत्वात् । ह्रदः ।
पवाद्यचि एषोदरादित्वात् ह्रस्वः । महिकिह्रदो नाम बाहीकशामवि-
शेषः, तत्र भवाद्विर्महिकिह्रदीयः, 'कन्यापलदनगरशामह्रदोत्तरपदादि'ति
शेषेण ह्रो बाहिकशामेभ्यश्चेति प्राप्तयोः ठञ्जिठयोरपवादः, 'आयनेयी-
नीयियः फठखच्छ्या प्रत्ययादीनामि'ति प्रत्ययादीनां फादीनां यथासख्य-
मायत्वादिविधानात् कस्येयादेशः । क्विधौ निपातनाद्वा ह्रस्वः ॥ २६ ॥

ह्रादी सुखे च ॥ चकारादव्यक्तशब्दे च । ह्रादतइत्यादि ह्रादि-
वत् । विशेषस्त्वीदित्वात् 'श्वीदितो निष्ठायां'तीडभावो 'ह्रादो निष्ठा-
यामि'त्युपधाह्रस्वश्च । तथा 'रदाभ्या निष्ठातो नः पूर्वस्य च द' इति
निष्ठातकारस्य पूर्वदकारस्य च नकारः, आहूचः । आहूचवान् ॥ २७ ॥

स्वाद आस्वदने ॥ स्वादतइत्यादि स्वादिवत् । अषोपदेशत्वाद-
मिस्वदत् इत्यादौ न यत्वम् । स्वादिना समानार्थोप्ययमाकारोपधमाभ्या-

दिह पठितः । अज्दन्त्येति षोपदेशलक्षणो दन्त्यग्रहणेन केवलो दन्त्यो
गृह्यते न तु दन्त्योऽग्रोपीत्ययमषोपदेशः स्वर्दिवत् ॥ २८ ॥

पर्दे कुत्सिते शब्दे ॥ रेफवृद्धान्तः । सयोगान्तेपूर्वादिष्वय न
पठितः । शब्दविशेषार्थेन द्राघादिनापि साम्यात् । स्वादिस्त्वाकारवत्स-
योगादित्वेन ह्राद्यनुरोधेन मध्ये पठितः । =ह कुत्सितः शब्दो गुदरवः ।
तदाह केशवस्वामी कौत्से कर्दति पर्दते गुदरवइति । पर्दते । पपर्दे ।
पर्दिता । पर्दिष्यते । पर्दताम् । अपर्दत । पर्दत । पर्दिषीष्ट । अपर्दिष्ट ।
भावे पर्वतइत्यादि । पिपर्दिषते । पापर्वते । पापर्वते । पापर्दीति ।
पापर्त्तीत्यादि । लङि तिप्सिपोर्हल्ङ्रादिजोषे वा चत्वंम् । सिपि तु
पक्षे 'दश्चे'ति हत्व चोदाहार्यम् । पृदाकु । 'पर्देर्नित् सप्रसारणमल्लो-
पश्चे'ति काकुप्रत्ययो लोपः प्रसारण च ॥ २९ ॥

यती प्रयत्ने ॥ यतते । येते । येतिषे । एत्वाभ्यासलोपौ ।
यतिता । यतिष्यते । यतताम् । अयतत । यतेत । आशिपि यतिषीष्ट ।
अयतिष्ट । अयतिष्यत । भावे । यत्यतइत्यादि । यियतिषते । याय-
त्यते । यायतीति । यायतीत्यादि । लङि निष्किपोर्हल्ङ्रादिजोषे जश्त्वे
वा चत्वंम् । सिपि तु 'दश्चे'ति वा हत्वमपि । यातयति । अयीयतत् ।
यत्यम् । 'तकिशनिपतिजनीनामुपसख्यानमि'ति भावे यत् ।
आयत्तः । आयत्तवान्, ईदित्वात् 'श्वीदितो निष्ठायामि'तीडभावः ।
यत्नः । 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरतो नडि'ति भावादौ नड् । यतिः । 'इन्
सर्वधातुभ्य' इतीन् । यत निष्कारोपस्कारयोरिति चुरादौ ॥ ३० ॥

युव जुव भासने ॥ योतते । युयुते । योतितेत्यादि । भावे
युत्यतइत्यादि । युयुतिषते । युयोतिषते । 'रलो व्युपधादि'ति वा
कित्त्वम् । योयुच्यते । योयुतीति । योयोत्तीत्यादि । ईट्पक्षे 'नाभ्यस्त-
स्ये'ति गुणनिषेधः । योतयति । अयुयोतत् । अदित्वाच्चा'ग्लोपी'त्युप-
धाह्रस्विनिषेधः । युतित्वा । योतित्वा । सन्त्वत्कित्त्वविकल्पः । 'उदुप-
धाद्वावादिकर्मणोरन्यतरस्या'मिति निष्ठायां मुदिवत् कित्त्वविकल्प उदा-
हार्यः । युतितमनेन योतितमनेनेत्यादि । जोततइत्यादि । युतिवत् ॥ ३२ ॥

विश्वं वेष्टु याचने ॥ द्वितीयान्तौ । आद्यो धान्त इति कौशिकः ।
 तीरस्वामि- त्वयं पत्तो दूषितः । वेद्यते । विविधे । 'असयोगान्तिट्
 क्रिदि'ति कित्वात्र गुणः । वेद्यता । वेद्यिष्यते । वेद्यताम् । अवे-
 द्यत । वेद्येन । आशिषि । वेद्यिषीष्ट । अवेद्यिष्ट । अवेद्यिष्यत । विविद्यिषते ।
 विवेद्यिषने । वेद्यिष्यते । वेद्यिषीति । 'ना-यस्तस्ये'ति गुणनिषेधः । वेवेत्ति ।
 वेद्ययति । अविवेद्यत् । अदित्त्वा'दाग्लोपी'त्युपधाह्रस्वनिषेधः । द्वितीयस्य
 विशेषो विवेद्ये, वेद्यने । विवेद्यिषते । वेवेद्यते । वेवेद्यीति । वेवेत्त इत्या-
 दावगुणविषयकारश्चयम् । अस्य अदित्त्वरणुपधाह्रस्वनिवृत्त्यर्थम् ।
 इमौ द्विकर्मकौ । दुह्यादित्वात्प्रधाने कर्मणि लादयः । षष्ठी तु द्विती-
 यावदुभयत्र । गुणकर्मणि तु विकल्पेन, अप्रधाने कृत्येनाभिहिते कर्तृकर्म-
 णानैव षष्ठी । सर्वमेतच्चायत्नावुपपादित तत एवावगन्तव्यम् ॥ ३४ ॥

अथ शैथिल्ये ॥ शैथिल्यं विश्लिष्टता गाधता च । इदित्त्वं नुम-
 र्थम् । अत एव किति नलोपाभावः । अन्यते । शश्रन्ये । अश्रन्यिष्यते ।
 अश्रन्यता । अश्रन्यत । अन्यते । आशिषि । अश्रन्यिषीष्ट । अश्रन्यिष्ट ।
 अश्रन्यिष्यत । भावे । अश्रन्यतइत्यादि । शिश्रन्यिषते । शाश्रन्यते ।
 माश्रन्यीति । शाश्रन्यि । 'खरि चे'ति चत्वं लङि तिप्सिपोर्हल्ङ्वादिलोपे
 मयोगान्तलोपे चाशान् । अश्रन्यति । अश्रन्यते । अशश्रन्यत् । श्रन्या ।
 'गुरोश्च हल' इत्यकारः, 'एयासश्रन्यो युजि न्यत्र लाश्रणिक्त्वाच्चास्य ग्रहः ।
 प्रश्रयः । हिमश्रयः । 'अवोदैधोऽनुप्रश्रयहिमश्रया'इति अजि नलोपवृद्ध-
 भावयोर्नशाननम् । गणान्तरपठितस्य वा निपातनम् । अन्य विमोचन-
 प्रतिहर्षयोरिति क्र्यादिः । अन्य गन्य सन्दर्भेति च, इमावाधृषीयावपि,
 अथ प्रयवदति चुरादिः । दौर्बल्ये कथादिराधृषीयो मोक्षणे ॥ ३५ ॥

अथ कौटिल्ये ॥ कौटिल्यं शाठ्यं वक्रता वा । श्रन्यतइत्यादि
 अश्रन्यत् । अभ्यासकार्यविशेषः । के विदिमावनिदितौ सानुषङ्गौ पठन्तः,
 किति नलोपमिच्छन्ति । अत्र तरङ्गिणी इदित्त्वादनानाधिकलोपाभावात्
 श्रेष्ठे षष्ठे इत्युदाहरणं वृत्तिकारो धान्त इति, अत्र वृत्तिकार इति धातु-
 वृत्तिरुच्यते । तथा सानुषङ्गपाठः काशिकावृत्तिकारस्याऽप्यनभिमतः ।

यतः । 'अन्यग्रन्थिदम्भिस्वज्जी'नामिति लिटः कित्त्वविधौ अथतुर्थेयतु-
रिति परस्मैपदिनावेवादाजहार । ग्रन्थ सदर्थे इति क्र्यादौ युजादौ च ।
ग्रन्थ बन्धनइति च युजादौ ॥ ३६ ॥

कत्य श्लाघायाम् ॥ कत्यते । चकत्ये । कत्यनेत्यादि । कर्मणि
कत्यतइत्यादि, चिकत्यपते । चाकत्यते । चाकत्यीतीत्यादि पूर्ववत् ।
विकत्यी । 'वौ कपलसकत्यस्रम्भ' इति बाबुपपदे तच्छीलादिषु धिनुण् ।
वासरूपेण युच्, विकत्यनः ॥ ३७ ॥ एधादय उदात्ता अनुदात्ततः ॥

अथ तवर्गीयान्ताः परस्मैपदिनः ॥

अत सातत्यगमने ॥ सातत्यगमनं सन्ततगमनम् । याममतति ।
यामादायाति । अतसि । अतामि । अतन्ती । 'गत्यर्थकर्मणि द्वितीया-
चतुर्थ्या चेष्टायामनध्वनी'ति कर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्या । चेष्टायामिति
वचनान्मनसातति याममित्यत्र द्वितीयैव । अध्वन्यर्थग्रहणान्मार्गमतती-
त्यादावपि द्वितीयैव । आत । आततुः । आतिथ । आतिथ । 'अत
आदे'रित्यभ्यासादेर्दीर्घा लिटि । अतिता । अतिष्यति । अततु । आतत् ।
आटि वृद्धिः । अतेत् । आशिषि । अत्यात् । मा भवानतीन् । 'वदत्र-
जहलन्तस्य'ति वृद्धे 'नंटी'ति निषेधः । आतिष्यत् । कर्मणि अत्यते । आते ।
अतिता । अतिष्यते । अत्यताम् । आत्यत । अत्येत । आशिषि । अति-
षीष्ट । आतिष्ट । आतिषाताम् । आतिषत । गत्यर्थानां कर्तृस्यक्रिय-
त्वाच्च कर्मकर्तास्ति । कर्मव्यतिहारे तडस्य नास्ति, 'न गतिद्विसार्थभ्य'
इति निषेधात् । व्यत्यततीत्यादि । अतितिपति । आतयति देवदत्त
यामम् । 'गतिबुद्धी'ति प्रयोज्यस्य कर्मत्वम् । अतिता यामम् । अतिता
यामः । अतितं देवदत्तेन, इदमेवामतितम् । 'गत्यर्थकर्मके'ति 'क्लोधि-
करणे चे'ति योगद्वयेन कर्तृकर्मभावाधिकरणेषु क्तः । अक्त आसन्नः । 'इण्-
भीकापाश्ल्यतिमर्चिभ्यः कचि'ति कन् । आतिः गन्ता पक्षिविशेषश्च ।
'अन्यतिभ्यां चे'तीण्प्रत्ययः । पादाभ्यामततीति पदातिः । 'पादस्य
पदाज्यातिगोपहतेष्वि' त्याज्याद्विषून्पदेषु पदादेशः । शोभनमततीति

स्वातिः नहत्र, स्वाती । 'सर्वतोक्तिवर्थादि'ति वा ङीष् । स्वात्यां जातो
 माणवकः स्वातिः । अत्र 'सधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योणि'ति शेषिकोण् । यदा
 ज्ञानार्थं तदा तस्य 'अविष्टाफलान्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखा-
 षाढाबहुनाल्लुगि'ति लुकि 'लुक्कृतिलुकी'ति स्त्रीप्रत्ययस्य लुक् । स्वातीति
 ङीपन्तस्य ग्रहणादङीपन्तादणो लुक्कास्ति, तेन 'न ख्याभ्या पादान्ताभ्यां
 पूर्वौ तु ताभ्यामैजि'ति यथासख्यादिह वकारात्पूर्वमौकारे वृद्धिनिषेधे च
 सौवात इति भवति । वृद्धिनिषेधस्य प्रयोजनमन्यत्र, अस्तु चेहापि 'टिड्ढा-
 णञि'त्यादिना स्त्रियां ङीपि 'यस्येति चे'त्यकारलोपे सौवाती भार्या यस्येति
 बहुव्रीहौ 'स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रि-
 यादिष्वि'ति प्राप्तस्य पुंवद्भावस्य 'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकार'-
 इति रक्तविकारादतिरिक्तार्थस्य च वृद्धिनिमित्ततद्धितान्तस्य पुंवद्भावो नेति
 विधीयमानो निषेध इहाणो वृद्धिनिमित्तत्वाभावाच्चेति पुंवद्भावो सौवात-
 भार्य्य इति भवति । 'स्त्रियाः पुंवदि'ति सूत्रस्यार्थः । स्वर्थस्य शब्दस्य स्त्रियां
 वर्त्तमाने समानाधिकरणे पूरणीप्रियादिवर्जितउत्तरपदे पुंस इव रूपं भवति
 स चेत् स्त्रीशब्दो भाषितपुंस्कादनूङ् भवतीति । पूरणीति पूरणप्रत्ययान्तः
 स्त्रीतिङ्गपञ्चम्यादिशब्द उच्यते । भाषितः पुमान् यस्मिन्वर्धे प्रवृत्तिनिमित्ते
 स भाषितपुस्कः, इह तु शब्दस्तद्व्योगात्तयोक्तः, ऊङो ऽभावो ऽनूङ्, भा-
 षितपुंस्कात्परोनूङ्, निपातनान्यञ्चम्यलुक् । अतिथिः, 'अतन्यञ्जिवन्यञ्ज-
 पिमञ्चन्यङ्गिकुपुङ्गिशिभ्य कबिच्यनुजलिजिष्ठुजिष्टजिसन्स्यनिथिनृत्यसा-
 मानुक'इत्यन्यादिभ्यो द्वादशभ्यः कव्यादयो द्वादश प्रत्यया यथासख्यमित्य-
 तेरियिन् । अतिथौ साधुतातिथेयः । 'पय्यतिथिवसतिस्वपतेर्दजि'ति सप्त-
 म्यन्तात्साधित्यर्थे ढञ् । ढस्या'यनेयीत्ये'यादेशः । अतिथयइद, मातिथ्यम् ।
 'अतिथेय्य' इति चतुर्थ्यन्तात्तादर्थ्ये ज्यः । अतसः सौमं प्रहरणं च वायुश्च ।
 'अत्यत्रिचमितमिनमिरभिलभिनभितपिपतिपनिपणिमहिभ्याऽसजि'त्यस-
 च् । अतर्सा उमा, 'पिद्मौरादिभ्यश्चे'ति स्त्रिया ङीष् । सातयतीति सातयः ।
 'अनुपपगांल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिवेतिसातिसाहिभ्यश्चे'ति कर्त्तरि
 ञे शपि गुणायौ, सातिः सौत्रो धातुरिति वृत्तौ । बोधिन्यासेपि सातिः सुखे

वर्तते सौत्र इति । जिनेन्द्रहरदत्तौ सातिर्हेतुमण्यन्त इति । इदिद्वन्धनार्थ उत्तरत्र भविष्यति ॥ ३८ ॥

चिती सज्ञाने ॥ सज्ञानं चैतन्यम् । चेतति । चिचेत । चिचित्तुः । चिचेतिथ । चिचित । चिचेत । चिचितिव । चिचितिम । चेतिता । चेति-
ष्यति । चेतत् । अचेतत् । चेतत् । आशिषि चित्यात् । अचेतीत् ।
अचेतिष्यत् । भावे । चित्यतइत्यादि, चिचितिषति । चिचेतिषति । चिति-
त्वा । चेतित्वा । 'रलो व्युपधादि ति कित्विविकल्पः । चेचित्यते । चेचि-
तीति । 'नाभ्यस्तस्ये'ति गुणनिषेधः । चेचेत्ति । चेतयति देवदत्तम् । अची-
चितत् । 'अणावकर्मकादि'ति परस्मैपदमेव । 'गतिबुद्धी'ति प्रयोज्य कर्म ।
चित्तः । चित्तवान् । 'श्वीदित' इत्यनिट्त्व, चितः । इगुपधलक्षणः कः । चेत-
नः । बाहुलकात्कर्त्तरि ल्युः । चित् चैतन्यम् । सपदादित्वाद्भावे क्तिप् । चेतः ।
'अमुच्चि'त्यमुन् । सुचेतीकरोति । 'अरुर्मनश्चक्षुश्चेतारहोराजसां लोपश्चे'ति
कृभ्वस्तिथोगे च्चिः सलोपश्च । 'अस्य च्चावि'तीकारो ऽकारस्य । अत्र मैत्रेयः
'कणः कश्चे'ति चितेः कणग्रन्थे धातिरन्त्यस्य ककारे चिक्कण इति । बहु-
लवचनाद्गुणाभावः प्रत्ययकस्येत्मज्ञाऽभावश्चेति । हरदत्तस्तु चिनोतेः
क्तिप्, चित्, कण्तेरच् कणः, तकारस्य ककारादिक्रमपाठान् । केचित्तु
चिक्कणादिषु तकारमेव पठन्ति । न्यासकारो ऽप्येवं निरुद्धाह । स्मरणार्थं
ऽप्ययम् । चेतन्ती सुमतीनामिति दर्शनात् । 'अधीगर्धदयेशा कर्मेणी'ति
कर्मणः शेषत्वे षष्ठी । अधीगर्थाः स्मरणार्थाः । तथा संधानार्था ऽपि । यदाह
श्रीरामस्वामी । प्रायो विनाशः चित्तसन्धानं विनष्टस्य संधानं प्रायश्चित्त-
मिति । 'प्रायस्य चित्तचित्तयो'रिति पारस्करादिपाठात् सुट् । चिति स्पृ-
त्यामिति चुरादौ । चित सचेतनइति तत्रैवात्मनेपदी ॥ ३९ ॥

च्युतिरासेवने ॥ 'उपदेशेजनुनासिक इत्' 'हलन्त्यमि'तीकाररेफये-
रित्वे । सेवनमाद्रींभावनम् । यदाह हरदत्तः, सिचिः कर्मस्यक्रियः, आद्रीं-
भावनं ह्यत्र प्रधानं तदर्थत्वात्कारक्यापारस्येति । आङीपदर्थं ऽभिधायितौ
वा । च्योतिति । चुच्योत । चुच्योतिथ । चुच्युतिव । च्योतिता । च्योतिष्यति ।
अच्योतत् । च्योतेत् । अशिषि । च्युत्यात् । लुङि 'इरितो वे'ति ज्ञेः परस्मैपदे-

षडादेशविधानान् इत्वाच गुणः । अच्युतत् । अच्युततामित्यादि । अडभा-
 अच्योतीदित्यादि, कर्मदौ च्युत्यतइत्यादि । चुच्युतिपति । चुच्योतिषति
 च्योतित्वा । च्युतित्वा । पूर्ववत् कित्त्विकल्पः । चोच्युत्यते । चोच्यु-
 तीति । चोच्योति । ईटि 'नाभ्यस्तस्ये'ति गुणनिषेधः । च्योतयति ।
 अचुच्युनत् । निष्ठाया 'मुदुपधाद्वावादिकर्मणो'रिति कित्त्विकल्प उदा-
 हार्यः । च्युतितमनेन । च्योतितमनेनेत्यादि । कर्मावित्रत्तायां कर्मकर्त्तरि
 भावसंभवः ॥ ४० ॥

श्चुनिर् चरणे ॥ चरणं सुतिः । श्च्योतति । चुश्च्योतेत्यादि
 च्युतिषत् । अभ्यासे खयः शेषः । सकारादिरयं, निर्देशः श्चुत्वेन ।
 सकारादित्वे प्रयोजन मधु श्च्योततीति मधुश्च्युत् । क्षिप् । अस्मात् 'सत्क-
 रोति तदाचष्ट'इति णिचि णाविष्टवत्यातिर्पादिकस्येनीष्टनीव कार्य-
 विधानाट्टिनेपे मधुश्च्युत्यायतेः क्षिप् । तस्य लोपे प्रत्ययलक्षण्येन 'शेरनि-
 टी'ति शेष लोपे यकारान्ताद् अस्मात् कृदन्तात् प्रातिपदिकात्सौ तस्य
 हल्ङादिलोपे प्रत्ययलक्षण्येन सुबन्तत्वेन पदत्वे 'संयोगान्तस्ये'ति यलोपे
 श्चुत्वस्य पूर्ववासिटृत्वात्सक्रोरिति सलोपे 'चोः कु'रिति चकारस्य
 पदान्तस्य कुत्वे तस्य जश्त्वे मधुगिति रूपसिट्टिरिति वृत्तिन्यासपद-
 मञ्जरीसंमताकारमैत्रेयादिभिर्भक्तम् । यद्येवमटतीत्यट्, अट् श्च्योतती-
 त्यत्रापि श्चुत्वस्यासिटृत्वात्सकारपरत्वाद् 'डुः सि धुडि'ति धुट् प्राप्नोति,
 नैतत् । 'श्चुत्वं धुट्त्वे सिट् वक्तव्य'मित्युक्तत्वात् । अत एव वृत्ति-
 कारादिविरोधान् तालज्योष्मादिवादिनौ स्वामिकाश्यपावुपेक्ष्यौ । यद्यपि
 तयोर्अट् श्च्योतनीत्यत्र धुडभावः सिट्, मधुगित्यत्र 'संयोगान्तस्ये'ति
 यकारवकारयोर्लोपे 'ब्रश्चक्षसृजसृजयजराजभाजच्छशा ष' इति ब्रश्चा-
 दीनां ककारशकारान्तानां च भलि पदान्ते च षत्वविधानाच् शका-
 रस्य चकारे 'भलां जश' इति जश्त्वे मधुडिति स्यात् । अत्र श्चुति-
 रित्ययकारमपि पठन्ति । तथा च मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतं श्च्योतन्ति ते
 इत्यादौ भट्टभास्करः । अत्र मैत्रेयोपि । श्चुतिरित्यप्येके पठन्ति, वृत्ति-
 वामनइति च ॥ ४१ ॥

मन्य विलोडने ॥ विलोडन होभणम् । मन्यति । ममन्य । ममन्यिथ । मन्यिता । मन्यिष्यति । मन्यतु । अमन्यत् । मन्येत् । आशिषि । मय्यात् । यासुट् । कित्वाबलोपः 'अनिदिता हल उपधायाः कृती'ति । अमन्यीत् । अमन्यिष्यत् । कर्मदौ मय्यतइत्यादि । मिमन्यिषति । मामय्यते । मामन्यीति । मामन्ति । लङ्स्तिप्सिपोर्हल्ङ्यादिलोपे सयोगान्तलोपे चामामन् । मन्ययति । अममन्यत् । मयित्वा । मन्यित्वा । नापधात्यरस्य 'नापधात्यफान्ताद्वे'ति यकारफकारान्तात्सेटः त्वः कित्त्वविकल्पनात् पठे नलोपः । मन्यः । 'हलश्च'ति करणे घञ् । मन्यनी । 'करणाधिकरणयोश्चे'ति अधिकरणे ल्युङन्ता'ट्टिङ्गाण-जि'ति ङीप्, मन्यानः । 'सम्यानच् स्तुव' इत्यानङ्बाहुलकादस्मादपि । अत्रायं धातुर्यद्यपि क्षीरस्वाम्यादिभिर्न पठ्यते तथापि मैत्रेयचन्द्रदुर्गैः पठितत्वात् शमीगर्भादपि मन्यति ततो यथा प्राशु मन्यति यदि मय्यमानो न जायेतेत्यादिदर्शनादस्त्येव । अयं द्विकर्मकः । दुहादित्वादप्रधाने कर्मणि लादयः । अमृतमम्बुनिधिर्मय्यतइति । द्वितीयावत् कृद्योगलक्षणा षष्ठ्यभयत्र, कर्मणि गुणे तूभयथा गोणिकापुत्र इति वचनाद् द्वितीयापि । अमृतस्याम्बुनिधेर्मन्यिता । अम्बुनिधिमिति च । अमृत मन्यितव्यो ऽम्बुधिर्देवैरित्यत्र 'कृत्यानामि'ति योगविभागेन कर्तृकर्मणोः षष्ठी निबिध्यते । नायतौ सर्वमेतद् उपपादितम् । अयं त्रयादावपि । इह चाये निरनुषङ्ग एदित् ॥ ४२ ॥

कुथि पुथि लुथि मथि हिंसःसंक्लेशयोः ॥ कुन्यति । चुकुन्येत्यादि मन्यिषत् । विशेषस्त्वदित्वात् कृति नलोपाभावात् । कुन्यतइत्यादि, तथा हिंसार्थत्वाच्च गतिहिंसे'ति कर्मव्यतिहारे हिंसाया तङ्निषेधश्च । एवं पुन्यतिलुन्यतिमन्यतयो ऽपि । मन्यतिस्तु सर्वत्र मन्यतिवत् । अत्र च क्षीरस्वामी मन्यं सानुषङ्गमनिदित पठित्वा मय्यतइति चोदाहृत्य मयीतिदौर्गा मन्यन्तइत्याह । समतायां तु द्वावपि पठ्यते । खड्गोपकुन्यं शत्रुं मारयति । खड्गेनोपकुन्यमिति वा । 'हिंसार्थेनां च समानकर्मकाणां'मिति अनुप्रयोगधातुना समानकर्मकाणां हिंसार्थानां तृतीयान्तउपपदे वा णमुलिति णमुल् । 'तृतीयाप्रभृतीनी'ति समासविकल्पः । सर्वस्मिन्नेवात्र णमुल्प्रकरणे क्रियाभेदे

शिष्टावित्येव चन्द्रः । शास्त्र शास्त्रविषयं शासनम् । माङ्गल्य मङ्गलक्रि-
येति वीरस्वामी । एवं तरङ्गिण्यामपि । सिधतीत्यादि पूर्ववत् । विशेष-
स्मृतिस्वादुलादावार्धधातुके 'स्वरतिसूतिसूयतिभूजदितो वे'ति इटो
विकल्पनात् । सेट्टा । सेत्स्यति असैत्सीद् इति, लुङि 'वदव्रजे'ति वृट् ।
तथा ऽऽर्शानिङ्नुडोरात्मनेपदेषु । 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' । इक्समी-
पादुलः परौ भनादी लिङ्सिचावात्मनेपदेषु क्तिताविति क्त्वाद्गुणः ।
व्यतिषिर्माष्ट । व्यत्यपिद्धम् । व्यत्यपित्सातामित्यादि भवति ।
त्वामनोश्चेडभावे सिट्टा । सिपित्सति । 'हलन्ताच्चे'ति इक्समीपादुलः
परस्य भलादेः सनः क्त्वाच्च गुणः निष्ठाया 'यस्य विभाषेती'तिनषेधा-
त्सिट्टमिति भवति । अत्र मैत्रेयसमताकारौ 'अवभृष्टस्तुद्रुसुश्रुवो लिटि' ।
क्रादय एव लिट्यनिटस्तनान्ये लिटि सेडित्यनेन नियमेन पुरस्तात्प्रतिषे-
धक्राण्डस्यारम्भात् तस्य तदाश्रयस्य नियमस्य च बलीयस्त्वमिति यावा-
न्कश्चिदिडभावः प्रतिषेधनिबन्धनो वा विकल्पनिबन्धनो वा स सर्वा
बाध्यतइत्युदिन्तहणं विकल्प बाधित्वा लिटि क्रादिनियमाच्चित्यमिडिति
सिपेधियेत्याहनुः । तथा 'ऽवस्तास्वदित्य'त्र वृत्तिकारो नित्यग्रहणं किं
विधोता, विधविता, तासौ विभाषितेऽस्यलि नित्यमिडागमो भवतीति ।
अत्र न्यासे स्वरन्यादिसूत्रेण भूज इडिकल्पः, तस्य नित्यग्रहणाद्विभाषि-
तेऽस्यलि नित्यमिडागमो भवतीति । हरदत्तस्तु नित्यमिडागमो भव-
तीति वृत्तिमुपादाय यावान् कश्चिदिडभावः प्रतिषेधनिबन्धनो विकल्प-
निबन्धनो वा स सर्वः क्रादिसूत्रेण नियम्यतइत्यास्मिन्युक्त इति भावः ।
यदा तु प्रतिषेधाधिकारेण क्रादीनामेव लिटीण न भवतीति नियमात्
प्रतिषेध एव सर्वा निवर्त्यते, 'स्वरन्या'दिसूत्रेण विकल्पो भवत्येवेति
पक्षस्तदा विदुधोय, विदुधविद्येयुभय भवतीति । अस्यायमभिप्रायः ।
अत्र वृत्तिव्यतिरिक्तानां क्रादीनामेकाच उपदेशेनुदात्तात् । एकाञ्च यो
धातुर्हपदेशे ऽनुदात्तस्तस्मात्परस्य वलादेरार्धधातुकस्येनेति प्रकृत्याश्रयः
प्रतिषेधः सिट्टः, वृहद्भोजोस्तगन्तत्वात् 'श्युकः क्तिती'ति प्रत्ययाश्रय
इति सिट्टे सत्यारभ्यमाणेनानेन नियमेन तुल्यजातीयानां क्रादिव्यतिरि-

क्तानां येषां प्रकृत्याश्रयः प्रत्ययाश्रयो वा निषेधः प्राप्तस्तेषामेवेष्टं प्राप्यत-
इति पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भस्य प्रयोजनं स्मृत्वा स्मृत इत्यादौ परमपि
स्वरत्यादिविकल्प बाधित्वा 'श्युकः किती'ति निषेधप्रवृत्तिरिति च तेना-
क्तम् । हरदत्तानुवादी रामदेव* मिश्रोपि क्तादिसूत्रे ऽनुदात्तोपदेशानामत्र
प्रकृत्याश्रयः प्रतिषेधः, वृद्धञोस्तु प्रत्ययाश्रयस्तदुभयस्याप्यय नियम
इति वृत्तिग्रन्थोप्यत्रैवानुकूलः । अत्र मते सिपेधिय सिषेद्ध सिपिधिव
सिपिध्वेत्यादि भवति । एतदनन्तरं मृ मरणइत्याभरणे पठ्यते, तद्भाष्य-
विरोधादुपेत्यम् । यद्ययं स्यात्कथं 'व्यत्ययो बहुलमि'त्यत्र स च न मरति,
न म्रियतइति प्राप्तइति ब्रूयात् । अयमनूदित्सराध्यर्थे दिवादौ ॥ ४८ ॥

खादृ भक्षणे ॥ खादति । चखाद । चखादिय । खादिता । खादिष्य-
ति । खादतु । अखादत् । खादेत् । आशिषि खाद्यात् । अखादीत् । कर्मादौ
खाद्यतइत्यादि । चिखादिषति । चाखाद्यते । चाखादीति, । चाखाति ।
खादयति मोदकं देवदत्तेन, 'गतिबुद्धी'त्यादिना प्राप्तं प्रयोज्यस्य कर्मत्व-
'मादिखाद्योः प्रतिषेध' इति निषिध्यते । 'निगणचलने'ति नित्यं परस्मै-
पदम् । खदित्वाच्चखादित्यत्र उपधाह्रस्वो न भवति, खादितो मोदकः,
खादितमनेन, इदमेषां खादितं, 'क्ताधिकरणे चे'त्यादिना कर्मभावाधिक-
रणेषु क्तः । खादकः । 'निन्दहि सक्लिशखादविनाशपरित्तिपपरिरटपरिवा-
दिव्याभाषासूत्रो वुजि'ति ताच्छीलिको वुज् । एतुलैव सिद्धे बुद्धिविधानं ज्ञाप-
कार्यं तच्छीलादिषु वासरूपविधिना तृजादयो न भवन्तीति वृत्तौ ॥ ४९ ॥

खद स्थैर्यं हिंसायां च ॥ चकाराद्भक्षणे च । स्थैर्यं ऽकर्मकः ।
खदति । चखादेत्यादि, खादिवत् । लुङि अखदीत् । अखादीत् । 'अतो
हलादेर्लघो'रिति वृद्धिविकल्पः । खादयति । अचीखदत् । स्थैर्यं कर्म-
बलात् प्रयोज्य कर्म, खदिरः । 'अजिरशिशिरश+खिरशियिलित्यिरस्फिर-
स्यविरखदिरा' इति किरजन्तो निपातितः । यवखदा, यवस्य सारः । स्व-
भावात्स्त्रीविषयोयं, यवखदी । 'ब्रिह्मादिभ्यश्चे'ति मत्वर्थइति ॥ ५० ॥

* वेदेति पाठः कुत्र चित् ।

† बाहुलकाच्छीडः वृग् ह्रस्वत्वं चेति दीक्षिताः ।

वद स्यैर्य ॥ ओष्ठादिः । वदति । ववादेत्यादि । खदिवत् ।
 किति लिटि थलि च सेटि रूपाभेदे आदेशादित्वानाश्रयणादेत्वाभ्यास-
 लोपयोः वेदतु वेदुः वेदिथेत्यादि । वदरं, बाहुलकादरन्प्रत्ययः । वदरी ।
 'षिद्वौरादिभ्यश्चे'ति ङीप् । अत्र पाठादेवारन् प्रत्ययः । अत्र मैत्रेयः
 मानुषङ्गं पठित्वा नलोपे कृते एत्वाभ्यासलोपयोर्वेदतुरित्याह, तदसत् ।
 सयोगान्तत्वेन मन्थ्यादिवल्लिटः कित्वाभावात् । बिदि अवयवे
 इत्यये ॥ ५१ ॥

गद व्यक्तायां वाचि ॥ गदति । जगाद । गदितेत्यादि, खदिवत् ।
 वचन शब्दप्रकाशनफलत्वात्कर्मस्यमिति न्यासपदमञ्जरीकैयटेषु । प्रणि-
 गदति । 'नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपति-
 वरुतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु चे'ति उपसर्गस्यान्निमित्तात्परस्य नेर्गदादिषु
 णत्वमिति णत्वम् । अङ्गव्यावाये ऽपि इदमिष्यतइति प्रण्यगददित्या-
 दावपि भवति । गादयति पुत्र श्लोकं देवदत्तः । 'गतिबुद्धौ'त्यादिना
 प्रयोज्यस्य कर्मत्वम् । अत्र शब्दकर्मति कर्मशब्देन साधनमुच्यते न
 क्रिया । यदि हि स्याद्वतिबुद्धिप्रत्यवसानशब्दार्थकर्मकेति लघ्वसंदिग्धं
 च ब्रूयात् । एव न्यामकैयटपदमञ्जर्यादिष्वपि स्थितमिति न शिष्येण
 धर्मं गादयतीत्यत्र प्रयोज्यस्य कर्मत्वम् । अत्र नित्याकर्मकगत्यर्थाभ्य-
 वहारार्थशब्दकर्मदृशो ऽग्वादिक्रन्दिशब्दायहेज इति शाकटायनसूत्रव्या-
 न्यायाममोघाया नित्याकर्मकेभ्यो गत्यर्थेभ्योभ्यवहारार्थेभ्यः शब्दनक्रियेभ्यः
 शब्दकर्मकेभ्यश्च दृशेश्च यो णिस्तस्य कर्ता कर्म भवति खादादि-
 क्रन्दिशब्दायहेज इत्येतान् वर्जयित्वेत्युक्तम् । तन्मते क्रन्दित्रयव्यतिरि-
 क्तेषु शब्दार्थेषु प्रयोज्यस्य कर्मत्वेन भाव्यम्, सूत्रे शब्दकर्मकेति कर्म-
 बह्यान् क्रन्द्यादिपर्युदासाच्च । तेनार्थद्वयस्य लाभः । गद्यम् । 'गदमद-
 चायमश्चानुपसर्गे'इति कर्मणि यत् । उपसृष्टान्तु ण्यत् । प्रगाद्यमिति ।
 निगदः । 'नौ गदनदपठस्वन' इति पठे ऽप् । अन्यदा घञि निगदः ।
 अनुगदतीत्यानुगादिकः । 'अनुगादिनष्टमि'ति स्वार्थं ठक् । अस्मादेव
 निपातनाणिनिः । न त्वयं केवलं प्रयोगार्हः, ठको नित्यत्वादिति न्यास-

पदमञ्जर्यादिषु । कर्मव्यतिहारे नास्य तडस्ति । प्रतिषेधे हसादीना-
मुपसन्धानमिति निषेधात् । हसादयो हसिप्रकारास्ते च शब्दनक्रियाः ।
स्तनगदी देवशब्दइति चुरादौ ॥ ५२ ॥

रद विलेखने ॥ विलेखनं भेदनम् । रदति । रराद । रेदतुः ।
रदिथेत्यादि, पूर्ववत् । रदनः 'करणाधिकरणयोश्चे'ति ल्युट् ॥ ५३ ॥

णद शब्दे ॥ 'णो नः' । धात्वादेरिति शेषः । प्रणदति । प्रणनाद ।
प्रणेदतुः, प्रणदिथेत्यादि गदिवत् । 'उपसर्गादसमासे ऽपि णोपदेशस्ये'ति
उपसर्गस्यान्विमितात्परत्वेन नकारस्य णत्वम् । प्रणिनदतीत्यादौ 'नेर्ग-
दे'ति णत्वम् । इदमण्डव्यवायेपीति प्रण्यनट् द्विच्य द्वात्रपि भवति ।
धातुनकारस्य निशब्देन व्यवधानादुपसर्गादिति णत्वं न भवति ।
अशब्दकारकत्वे ऽप्य'णावकर्मक' इति प्रयोज्यस्य कर्मत्व घटं नादयतीति ।
नदी । पचादौ नदडिति पाठात् टित्त्वात् डीप् । नद्या भवा नादेयाः ।
'नद्यादिभ्यो ढगि'ति शैषिको ढक्, तस्यैयादेशः । पञ्चानां नदीनां समा-
हारः पञ्चनदम् । 'नदीभिश्चे'ति नदीवचनैः सह सख्याया अव्ययीभावः ।
अभिधानस्वभावादयं समासः समाहारइत्युक्तम् । अजिति योगविभागा-
दच् समासान्तः । उक्तं च ।

ऋणोदक्पाण्डुपूर्वाया भूमेरच् प्रत्ययः स्मृतः ।

गोदावर्थाश्च नद्याश्च सख्याया उत्तरे यदि ॥

इति । निनदः । 'नौ गदनदे'ति पक्षे अण् । तदभावे घञ् । निना-
दः । इदित्समृद्ध्या ऽप्ये, णद भाषार्थश्चुरादौ ॥ ५४ ॥

अर्द गतौ याचने च ॥ याचने द्विकर्मकः । नाथत्यादिवल्लादयो
नेयाः । अर्दति । आनर्द । आनर्दतुः । आनर्दिथ । आनर्दिव । 'अत
आदे'रित्यभ्यासादेर्दीर्घं 'तस्मानुङ् द्विहल' इति दीर्घभूतादभ्यासात्परस्य
नुडागमः । अर्दिता । अर्दिष्यति । अर्दतु । अर्दत् । अर्दत् । आशिषि ।
अर्द्यात् । माभवानर्दात् । 'नेटी'ति सिचि वृद्धेर्निषेधः । कर्मादौ अर्द्यत-
इत्यादि । गत्यर्थत्वे कर्तृस्यक्रियात्वाच्च कर्मकर्तास्ति । 'क्तोधिकरणे
चे'त्यादिना कर्तृकर्मभावाधिरणेषु क्त उदाहार्यः । तथा 'गत्यर्थकर्मणी'ति

तन्मरुपपत्ते विभक्तेस्तु 'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्य' इत्यलुक् । ऐकपञ्चमैक-
स्वयञ्च विशेषः । नेद्विष्टुः । नेदीयात् । 'अन्तिऋबाठयोर्नदसाधा'विति
इष्टत्वायभुनोर्यथानद्वचदमाधावादेशौ । अस्मादेव वचना'दजादी गुण-
वचनादेवेति बाध्यते । अन्दूर्भापायां शृङ्गले च । 'अन्दूदृम्भू' इत्युकार-
प्रत्यये निपातिनः । अन्दुको गजनिगलः । सज्जाया कनि 'केण'
इति ह्रस्वः ॥ ६२ ॥

इदि परमैश्वर्यं ॥ इन्दति । इन्द्राञ्चकार । इन्दितेत्यादि ।
लिटि 'इजादेशचे'त्याम् । इन्द्रः । अज्जेन्द्रेति रनन्तो निपातितः । इन्द्राणी ।
'इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययववनमातुलाचार्याणामानुगि'ति पुं-
योगादाग्यायां ङीपानुक्तौ । पुयोगादाख्या पुंसो योगातच्छब्देन स्त्रियाम-
भिधानम् । इन्द्रमात्मन इच्छति 'सुप आत्मनः क्यजि'ति इषिकर्मणः
मुञ्चन्तादात्मेच्छाया क्यचि अकारस्य 'अस्य च्चौ 'क्यचि चे'तीकारे इन्द्री-
यति । अस्मात्सन्त्यतो लोपे नन्द्रा' इत्यत्राजादेरिति वर्त्तते, स च कर्म-
धारयः पचम्यन्त इत्यादेरचः परेषा नदराणां द्विर्वचननिषेध इति
व्यवहितत्वाद्दकारस्य द्विर्वचने इन्दिद्रीयिषतीति भवति । अनीन्द्रौ देवते
अस्य आग्नेन्द्र इति । 'देवताद्वन्द्वे चे'ति पूर्वपदस्यानङ्, 'सास्य देवता' ।
प्रथमान्ताद्विचतोपाधिकादस्त्यर्थे ऽणित्यणि 'देवताद्वन्द्वे चे'ति प्राप्ताया
उत्तरपदवृद्धे 'नेन्द्रस्य परस्येति निषेध । इन्दिरा । बाहुलकात् किरच् ॥ ६३ ॥

बिदि अवयवे ॥ अवयवइति अवयवक्रियोच्यते । बशादिः ।
बिन्दति । बिबिन्द । बिन्दितेत्यादि । बिन्दुः । बाहुलकादुप्रत्ययः ।
अत्र मैत्रेयः । 'बिन्दुरिच्छु'रिति सूत्र बशादिं पठन् बिन्दुशब्द व्युदपाद-
यत् । वृत्तौ तु वेनेरेव तत्र पाठः । अत्र सम्मताया भिदि अवयवे ।
भिन्दति । यद्यभिधानमस्ति भिन्दुरिति दृश्यतइति ॥ ६४ ॥

गहि वदनैकदेशे ॥ इह वदनैकदेशारम्भलक्षणा क्रिया वद-
नैकदेशशब्देनोच्यते । गण्डति । गण्डः । अच् । अत्यादयः पञ्चैते न
निहविषया इति काश्यपः । सम्मताया विदिभिदी एव प्रकृत्यैवमुक्तम् ।
अविगीतमन्ये सर्वेषा तिहमुदाहरन्ति ॥ ६५ ॥

णिदि कुत्सायाम् । निन्दन्ति । निनिन्द । निनिन्दिथ । निनिन्दिव । निन्दितेत्यादि । कर्मदौ निन्द्यतइत्यादि । प्रणिन्दति । 'उपसर्गादसमासेपी'ति णत्वम् । अत्र मैत्रेयाभरणसम्मताकाराः 'वा निसनित्तिनिन्दा मिति णत्वविग्रन्पमिच्छन्ति, तदयुक्तम् । यतोत्र 'कृत्यच' इत्यतः कृतीति वर्तते, तच्च निन्दादिभिर्विशेष्यमाणमर्थोत्तरसप्तम्यन्तमिति उपसर्गस्यान्निमित्तात्परस्य निसादिनकारस्य कृति परे वा णत्वमिति सूत्रार्थः । तथा च शाकटायनः । निसनित्तिनिन्दः कृति वेति । एव हि प्रकरणमबाधितं भवति णोपदेशश्च सार्थकः । वृत्तौ च प्रणिन्दनम् । प्रनिन्दनमिति कृदन्तमेवोदाहारि । निन्दकः । 'निन्दहिसे'ति वुन् । णिट् कुत्सासन्निकर्षयोरिति दिवादौ ॥ ६६ ॥

टुनदि समृद्धौ । 'आदिर्जिडुडव' इति त्रय एते धात्वादयः समुदाया इतः । प्रयोजनं नन्दयुरित्यत्र 'द्वितो ऽयुजि'ति भावादावयुच् । नन्दति । ननन्द । नन्दितेत्यादि । भावे नन्द्यतइत्यादि । निनन्दिषति । नानन्द्यते । नानन्दीति । नानन्ति । नन्दयति । अननन्दत् । नन्दयतीति नन्दनः । 'नन्दियही'ति ल्युः । अयं तवर्गीयोपदेशः, नृतिनन्दीति णोपदेशलक्षणपर्युदासात् । न नन्दतीति ननान्दा । ननान्दरौ । 'नञि च नन्दे'रिति ऋन्प्रत्ययो वृद्धिश्च, 'न षट्स्वस्त्रादिभ्य' इति 'ऋन्नेभ्य' इति ङीपो निषेधः । 'ष्णान्ता षडि'ति प्रकारनकारान्ता सङ्ख्या षडित्युच्यते, स्वस्त्रादिपाठादेव नञो नलोपाभावः । ननान्दुरपत्य नानान्द्रः । 'अनृष्या-नन्तर्यं विदादिभ्योञि'त्यञ् । अनृषीत्यविभक्तिक भिन्न पद, तेन विदादिभ्यो योत्रापत्येऽञ् अनृषिभ्यस्त्वन्तरापत्ये इति सूत्रार्थः ॥ ६७ ॥

चदि आह्लादने दीप्तौ च ॥ चन्दति । चचन्द । चन्दितेत्यादि । चन्दनः । करणे ल्युट् । चन्द्रः । 'स्फायितञ्ची'त्यादिना रक् । चन्द्रकम् । सञ्जायां कन् । चन्द्रिका । टापि 'प्रत्ययस्यात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुप' इति इत्वमकारस्य, असुप इत्यापो विशेषणम्, स चेदाप् सुपः परो न भवतीति । चन्दिरः । 'इषिमुषी'त्यादिना किरच् ॥ ६८ ॥

. चदि चेष्टायाम् ॥ चन्दति । तचन्द । चन्दितेत्यादि ॥ ६९ ॥

कदि क्रदि क्तिदि आह्वाने रोदने च ॥ आह्वाने सकर्मकः । कन्दति ।
 रुकन्द । कन्दितेत्यादि । चिकन्दिषति । चाकन्द्यते । चाकन्दीति । चाक-
 न्ति । कन्दयति पुत्रन्देवदत्तेन । 'गतिबुद्धौ'त्यत्र शब्दकर्मति साधनकर्मणो
 ग्रहणात् प्रयोज्यस्य न कर्मत्व, शाकटायनमते त्वस्यैव सर्वमेतद्गदतौ
 प्रतिपादितं तत एवावगन्तव्यम् । कन्दतीत्यादि पूर्ववत् । सकन्दयतीति
 सकन्दनः । नन्द्यादित्वाद् ल्युः । आकन्दत्यस्मिन्नित्यान्नन्दो देशः ।
 आकन्द्यनेरलणार्थमाह, आकन्द्यातइत्याकन्दः शरणम् । कर्मण्यधिकरणे वा
 घञ् । आकन्दं धावति आकन्दिकः । 'आकन्दाटुञ्चे'ति ठञ्ठकौ । अनयोः
 स्वरं विशेषः । कन्दरः । बाहुलकादरः । यदु । कन्दं वैक्ल्य राति
 भीरुणामिति कन्दरः । कन्दलः । बाहुलकाद् लप्रत्ययः । यदु पूर्ववद्भातेः
 कः । 'कपिलकादीना सजाकन्दसो'रिति लत्वम् । अथ वा लातेरन्तर्भा-
 वितण्यर्थोक्तः । कन्दली । गौरादित्वाद् डीष् । एते घटादयो ऽपि ।
 आद्यावेत्यपरे ॥ ७२ ॥

क्तिदि परिदेवने ॥ क्तिन्दतीत्यादि । अस्यानुदात्तेत्सु पठितस्येह
 पाठः परस्मैपदार्थः, स्वरितेत्सु पाठः क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वे ऽपि
 परस्मैपदं यथा स्यात् ॥ ७३ ॥

शुन्य शुट्टौ ॥ शुन्यति । शुशुन्य । शुन्यितेत्यादि । आशीर्लङि
 कित्त्वा'दितिद्विता'मिति उपधालोपे शुध्यात् । तथा यक्ष्यङोरपि शुध्यते,
 शोशुध्यतइति । यङ्लुकि लङि तिप्सिपोर्हल्ङ्यादिलोपे सयोगान्तलोपे
 च प्रत्ययलक्षणं लघूपधगुणो न भवति, सयोगान्तलोपस्य पूर्वत्रासिद्ध-
 त्वात् । शुधितः । शुधितवान् । शुधित्वा । 'उदुपधा'दिति निष्ठायाः
 कित्त्वविकल्पो न भवति 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्ये'ति ।
 अत्र कित्त्वमन्निपातनिमित्तमुदुपधत्व यदिदं कित्त्वाश्रये नलोपे भवति ।
 धान्तप्रकरणमपहाय सयोगान्तप्रकरणानुरोधेनायमिह निर्दिष्टः । अयं
 शौचकर्मणि युक्तादौ । शुध शौचइति दिवादौ । अनुषङ्गो नेह ॥ अता-
 दय उदात्ता उदात्तेना गताः ॥ ७४ ॥

प्रथमं माङ्गलिकमेधति पठित्वा मातृकापाठक्रमेण कवर्गीया-
न्तानाह ॥

शीकृ सेचने ॥ तालव्यादिः । दन्त्यादिरिति धनपालकाश्यपौ ।
अत एव षोपदेशलक्षणे सृपिसृजिस्तृप्त्यामीकृसेकृसुवर्जमिति पठतुः ।
पुरुषकारस्तु तत्र मृष्यति यदाह । सीकृ इत्यार्या इति धनपालः । तत्र
चाय पक्षः शीकर इति प्रयोगान्नुगुणः । यो ऽपि षोपदेशलक्षणे सीकृ-
पाठः सो ऽप्येवं प्रत्युक्त इति । शीकृते । शिशिके । शीकृता । शीकृ-
ष्यते । शीकृताम् । अशीकृत । शीकृते । आशिषि । शीकृषीष्ट । अशी-
कृष्ट । अशीकृष्यत । कर्मणि शीकृतइत्यादि । शिशिकृषते । शेशी-
कृत्यते । शेशीकृतीति । शेशीकृति । लुङि अशेशीकृत् । हल्ङादिलोपः ।
अशेशीकृ स्यातेत्यत्र 'स्को'रिति लोपो न भवति । निमित्तनिमित्ति-
नोर्भिन्नपदस्यत्वात् । उक्तं चैव 'परेश्व घाङ्क्योरि'त्यत्र कैयटे । पदस्येत्य-
धिकारात् प्रत्यासत्तिन्यायाश्रयणादेकपदस्ययोर्निमित्तनिमित्तिनोर्ग्रहण-
मिति । शीकृत्यति । अशिशीकृत् । शीका । 'गुरोश्च हल' इत्यकारः ।
शीकायते । तत्करोत्यर्थं ऽटाट्टाशीकाकोटापोटासोटापुष्टाग्रहण कर्तव्य-
मिति व्यङ् । अयमपि पाठस्तालव्यादिन्वे प्रमाणम् । अयं व्यङ् 'तत्करो-
ती'ति णिचोपवाद इत्येके, सोपीष्यतइति न्यासादौ । कान्तत्वादस्मात्
क्लिप् नोदाहर्त्तव्यः, स्थितं चैव 'परेश्व घाङ्क्योरि'त्यत्र भाष्यकैपटयोः, तथा
'स्कोः संयोगाद्वो'रित्यत्र वृत्तितट्टाव्यानेष्वपि । मर्षणार्थाय युजादौ ॥ ७५ ॥

लोक दर्शने ॥ लोकृते । लोकः । भाषार्थाय चुरादौ ॥ ७६ ॥

श्लोक संघाते ॥ श्लोकृते । संघातो ग्रन्थः, स चेह ग्रन्थमान-
व्यापार इति स्वाम्यादयः । काश्यपादयस्तु ग्रन्थितृव्यापार इति ग्रन्थाति-
वत्सकर्मक इति, श्लोकैरुपस्तीति, उरश्लोकयति । 'सत्यापपाशरूप-
वीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचर्मवर्णवूर्णचुरादिभ्यो णिजि'ति णिच् ॥ ७७ ॥

द्रेक ध्रेक शब्देनात्साहयोः ॥ शब्देनात्साहइति के चित् । यदाह
काश्यपः । द्रेकते । शब्देनात्साहं करोतीति । उत्साहो वृद्धिरिति चन्द्रः ।

चौटुन्यमिति स्वामी । द्वेकते । दिद्वेके । द्वेकितेत्यादि । द्वेकणः ।
रथाभ्यामिति षः । एव ध्रुवतइत्यादि ॥ ७९ ॥

रेक शङ्कायाम् ॥ आङ् पूर्वः सशये । आरेकं संशयं प्राहुरिति
वचनात् । रेकतइत्यादि ॥ ८० ॥

सेक सेक सकि शकि शत्यर्थः ॥ अन्त्यौ तालव्यादी,
अन्ये दन्त्यादयः । सेकते । सिसेके । सेकिता सेकते । सिसेके ।
सङ्कते । सङ्कते । सङ्किता । अङ्कते । शङ्कते । अङ्किता । शङ्कते ।
शङ्कते । शङ्किता । इत्यादि । अत्र मैत्रेयः । तृतीयं अङ्क इति ताल-
व्यादिमेकारोपध पठति । अत्र क चित्सीङ्क इति दन्त्यादिरपराधि धातुः
पठति, तदनार्थम् । स्तृमृजिम्पिस्तृस्यासेकसृवर्जमिति षोपदेशपर्युदासे
भाष्यादिव्यपाठान् । अत्र लीरस्वामी । अत्र दन्त्यादेः स्थाने तालव्यादिं
पठित्वा ऽर्यभेदात्पुनः पाठ इत्युक्त्वा षेक इत्यन्ये विकल्पेन षोपदेशं
कार्यार्थं पठुरिति ॥ ८५ ॥

शकि शङ्कायाम् ॥ शङ्कते । शङ्कते । शङ्कितेत्यादि । शिशङ्किपते ।
शाशङ्कते । शाशङ्कीति । शाशङ्कि । लङि ईडभावे । अशाशन् । शङ्कुः ।
'चरुशङ्कुपीयूनीलङ्गुलिगु' इत्युप्रत्ययान्तो निपातितः । शङ्कुला । बाहुलका-
दुलच् । शङ्क शङ्काविति स्वादौ । शक विभाषितो मर्षणइति दिवा-
दौ ॥ ८६ ॥

अकि लक्षणम् ॥ अङ्कते । आनङ्के । अङ्कितेत्यादि । अज्विकिपते ।
अनुस्वारपरमवर्णयोः पूर्वत्रासिद्धत्वात् । 'न न्दा' इति निषेधात् ककारादि-
र्द्विरुच्यते । न च पूर्वत्रामिट्ठीयमृद्विर्वचनइति असिद्धत्वनिषेधः । 'न न्दा'
इत्यप्य निषेधरूपत्वादित्यतस्तौ स्थापितम् । आहुश्चात्र स्वामिक्राश्यापा-
दयोषि, 'न न्दा' इति निषेधात् कादेर्द्विर्वचनम् । प्राङ्मन् । 'छत्यच्' इति
अस्य 'इजादेः सनुम्' । हलन्ताद्वातोः सनुमो यदि भवति तर्हि इजा-
देरेकेति निष्पादभावः । अङ्कुरः । 'मन्दिवाशिमञ्जितचङ्काङ्किभ्य उर-
ङ्कि'त्युक् । अकि कुटिलाया गतावित्यये । अङ्क लक्षणइति चुरादौ ॥ ८७ ॥

वकि कौटिल्ये ॥ वङ्कते । ववङ्के । वङ्कितेत्यादि । प्रवङ्कनम् । पूर्ववदणत्वम् । वङ्किः । 'वङ्क्यादयश्चे'ति क्तिन्तो निपातितः । अयं गत्यर्थः पठिष्यते ॥ ८८ ॥

मकि मण्डने ॥ मङ्कतइत्यादि । प्रमङ्कनम् । अङ्किवदणत्वम् । मङ्कनः । 'क्रुधमण्डार्येभ्यश्चे'ति युच् । कर्मकर्तरि 'भूषाकर्म'ति यक्-चिणोर्निषेधाद् मङ्कते कन्या स्वयमेव, अमङ्किष्ट कन्या स्वयमेवेति शप्-सिचौ भवतः । मङ्किः । इत्तितीन् ॥ ८९ ॥

कक लौल्ये ॥ लौल्य गर्वश्चापल्य च । ककते । चकके । ककि-तेत्यादि । काकः, घञ् । बाहुलकात्कर्तरि, गत्यर्थः पठिष्यते तस्माद्वा-घञ् ॥ ९० ॥

कुक् वृक् आदाने ॥ कोकते । चुकुके । कोकितेत्यादि । चुकु-किषते । चुकोकिषते । कुकित्वा । कोकित्वा । 'रलो व्युपाधादि'ति क्तिव्यविकल्पः । कुकितमनेन, कोकितमनेन । प्रकुकित । प्रकोकितः । प्रकुकितवान् । प्रकोकितवान् । 'उदुपधादि'ति क्तिव्यविकल्पः । प्रकोकनम् । प्रकोकणम् ॥ 'हलश्चेजुपधात्' ॥ हलादेरिजुपधात्परो यः कृत् तत्स्यस्य नकारस्य उपसर्गस्याचिमित्तात्परस्य वा ण इति णत्वविकल्पः । 'कृत्यच' इत्यस्यापवादः । कोकः । देवसेवमेषादयः पचादिषु द्रष्टव्या इत्यादिशब्दस्य प्रकारार्थत्वाद्विगुपधात्क बाधित्वा ऽच् प्रत्ययः । कोकिलः । 'सलिकल्यनिमहिब'िडिभडिभगिदशगिदपि'रित्तुगिदकुकिभृभ्य इलजि'ति इलच् । कोकिला । जातिलक्षणं डीप बाधित्वा ऽजादित्वाट्वाप् । वृक् । वर्कते । ववृक्के । वर्कितेत्यादि । विवर्किषते । वरीवृक्ष्यते । 'रीगदुपधस्य च' ॥ चत्वतोभ्यासस्य रीगिति रीगागमः, वरीवृक्षां चक्रइत्यादावल्लोपस्य स्थानिवत्त्वाच्च धातुलोप' इति वा गुणाभावः । वर्वर्कि । वरिवर्कि । वरीवर्कि । वर्वृकीति । वरिवृकीति । वरीवृकीति । 'हृथिकौ च लुकी'ति चत्वतोभ्यासस्य हृथिकौ चकाराद्रीक् । ईटि 'नाभ्यस्तस्याचि पिती'-त्यगुणत्वम् । एवं वर्वृक्क इत्यादि । वर्वृका चकारेत्यादौ यङ्लुकोऽनैमित्तिकत्वात् 'न धातुलोप' इति गुणनिषेधाभावः । अवर्वृकीत् । अवर्वृक्क

स्यात्तेत्यत्र 'स्को'रिति कतोपो भिन्नपदत्वाच्चेति सीकतावृक्तम् । लुङि सार्वधानुक्राश्रये गुणे 'नाभ्यस्तस्ये'ति निषिद्धेऽपि सिजाश्रयो भवत्येव प्रत्ययलक्षणेन, अवर्चकीन् । अवर्चकीटामित्यादि । हलतलक्षणा वृद्धिर्न-
टी'ति निषिध्यते । वर्कयति । अववर्कन् । अवीवृक्तम् ॥ 'उच्छत्' ॥ चङ्-
परे जावुवध'या चकारम्य वा चकार इत्यृकारः । इरारामपवादः ।
वृक्तः । इगुरधलक्षणः कः । मृगविशेष आयुधजीविसद्यविशेषश्च । तत्र
द्वितीयार्याभिधायिनो 'वृकाट्टेयणि नि स्वार्थे टेय्यणि वार्क्यः ।
'व्यादयस्तद्राजा, ' । पूगाज्योशामणीपूर्वादि'त्यारभ्यापादपरिसमाकृते-
त्यमाणाः प्रत्ययास्तद्राजसजा इति टेय्यस्य तद्राजत्वे 'तद्राजस्य बहुषु
तेनैवास्त्रिया'मिति लुकि बहुषु वृकाः । तेनैवेति वचनाद्वादि बहुत्व
तद्राजजनमेवेत्यवगनेर्वाक्यमतिक्रान्ता अतिवार्क्यया इत्यादावर्थान्तर-
कृते बहुत्वे लुग् न भवति । तथा । अस्त्रियामितिवचनात् स्त्रिया
टित्त्वान् डीपि 'हलस्तद्वृत्तस्य' । हल उत्तरस्य तद्वृत्तयकारस्य लोपो
भवतीति परत इत्यादेः परस्ये'ति यकारलोपे 'यस्येति चे'त्यकारलोपे
वार्क्यी । वार्क्येया । वार्क्य इति भवति । वर्कस्तरुणः पशुः । बाहु-
लकादरच् ॥ ८२ ॥

चक्र वृत्तौ प्रतिघाते चेति धनपालमैत्रेयादयः । चक्र वृत्तावित्येव
सीरम्यामिशकटायनौ । चकते । चके । चकितेत्यादि । चकोरः । 'कटि-
चकिभ्यामोरजि'त्यारच् । अयं घटादावपि ॥ ८३ ॥

कङ्कि षकि श्रकि चकि ठौङ्ग चौङ्ग ष्वष्क वष्क मष्क ठिङ्ग
टीङ्ग रङ्गि लङ्गि मत्पर्याः ॥ कङ्कते । चकङ्के । कङ्कितेत्यादि । वङ्कते ।
वषङ्के । वङ्कितेत्यादि । प्रवङ्कनम् । प्रावङ्कनम् । 'कृत्यच' इति णत्वम्
'इडादेः सनुम्' इति नियमाल भवति । कङ्कतम् । बाहुलकादतच् ।
कङ्कन् एव कङ्कतिष्ठा । सजायां कनि टापि 'प्रत्ययस्यादि'तीत्वम् । श्वङ्कते ।
श्वङ्कते । श्वङ्किता । श्वङ्कते । तचङ्के । चङ्किता ॥ ठौकते । ठुठौके ।
ठौकिता ॥ चौकते । मुचौके । चौकिता । ष्वष्कते । पष्वष्के । ष्वष्कि-
ता । 'मुभ्यानुष्ठिबुष्वष्कतीनां सत्वप्रतिषेधो वक्तव्य' इति सत्वनिषेधः ।

वस्कते । ववस्के । वस्किता । मस्कते । ममस्के । मस्किता । टेकते ।
 टिटिके । टेकिता । 'असंयोगाल्लिट् किदि'ति कित्वाव गुणः । टीकते ।
 टिट्टिके । टीकिता । रङ्कते । रङ्के । रङ्किता । लङ्कते । ललङ्के । लङ्कितेत्या-
 दि । टैकतित्रैकत्योर्यङ्लुकोरभ्यासस्य ह्रस्वे गुणः । न च ह्रस्वस्य 'दीर्घा-
 कित' इत्यनेन बाधः । अभ्यासविकारेष्वपवादा नोत्सर्गान् विधीन्
 बाधन्तइति तत्राकित इत्यनेन ज्ञापितत्वात् । अस्ति च दीर्घस्य दीर्घत्वे
 प्रयोजनं ह्रस्वनिवृत्तिः । कृते तु ह्रस्वे तस्य दीर्घ ऊकारो न भवति,
 'गुणा यङ्लुकोरि'त्यस्य निर्विपर्ययत्वप्रसङ्गात् । टैकतित्रैकतिटैकति-
 टीकतीनामृदित्वाणौ चङुपधाया ह्रस्वाभावः । अङुटैकत् । अतुत्रौ-
 कत् । अटिटैकत् । अटिटौकदित्यादि । लघु । 'लङ्घिबह्वर्णलोपश्चे'त्यु-
 प्रत्ययनलोपौ । लघिमा । 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्व'ति भावकर्मणोरि-
 मनिच् । 'टै'रितीष्टेमेयस्सु लोपः । वायहणादिगन्ताच्च लघुपूर्वा'दिति
 अणि लाघवमिति, लघुपूर्वान्तादिति सूत्रार्थः । रघुः । 'बालमूललघ्वङ्कु-
 लीनां वा लो रत्त्वमापद्यत'इति पक्षे लकारस्य रेफः । श्वङ्कतिः संमताया
 दन्त्यादिः पठ्यते । अत्र दण्डके तिङ्ग तीङ्ग इति क्व चित्पठ्यते, तदपि
 तिकः प्रतीक इति दर्शनाद् याह्यमेव, इगुपधलक्षणकान्ते । तिकस्यापत्यं,
 तैकायनिः । 'तिकादिभ्यः फिजि'ति फिज् । फत्यायरादेशः । तैकायन-
 यश्च कैतवायनयश्च कितकितवाः । 'तिककितवादिभ्यो द्वन्द्व'इति द्वन्द्वे
 बहुषु फिजो लुक् । लघि भोजननिवृत्तौ चेति स्वाम्यादयः । ललि शोष-
 णइत्यथे । भाषार्थाय चुरादौ ॥ १०६ ॥

अघि वघि मघि गत्याक्षेपे ॥ आक्षेपो निन्दा, गतौ गमनारम्भे चेति
 स्वामी । अङ्कते । आनङ्के । अङ्कितेत्यादि । अज्जिघ्रिषते । 'न न्द्रा' इति
 नवर्जं द्विरुच्यते । अभ्यासस्य चुत्वेन झकारे जश्त्वे जकारः । अङ्कयति ।
 आज्जिघत् । वङ्कते । मङ्कते । इत्यादि । प्राङ्कनमित्यादौ 'दजादेः
 सनुम' इति नियमादणत्वम् । मघि कैतवे च ॥ १०७ ॥

राघृ लाघृ सामर्थ्यं ॥ राघते । रराघे । राघितेत्यादि । रिराघिषते ।
 राराघ्यते । राराघीति । राराघि । लङि । आराराक् । राघयति । अरराघत् ।

चद्विच्चादुपधाहस्वनिषेधः । एवमितरयोरपि । उल्लाघः । 'अनुपसर्गात्फु-
ल्लसीञ्जशोल्लाघा' इति के इडभावस्तलोपश्च निपात्यते । उल्लाघेति-
घचनाद् अनुपमृष्टादन्योपमृष्टाच्च लाघितः प्रलाघित इति भवति । द्राघृ
आयामे च । आयामोदैर्घ्यक्रियेति कौशिकः । कदर्थनमिति स्वामी ।
धाघृ इति तवर्गचतुर्थ्यादिमपि के चित्पठन्ति ॥ १११ ॥

श्लाघृ कथ्यने ॥ कथ्यन श्लाघनम् । देवदत्ताय श्लाघते । देवदत्त
स्तुर्वस्ममेव बोधयितुमिच्छतीत्यर्थः । 'श्लाघद्गृहस्थाशपां जीप्यमा-
नः' । श्लाघादीना प्रयोगे जीप्यमानो ज्ञापयितुमिष्यमाणः संप्रदानमिति
देवदत्ताच्चतुर्थ्यां के चिद्राहुः । आत्मानं पर वा स्तुवन् ता स्तुति बोधयि-
तुमिच्छतीत्यर्थ इति । तथा च भट्टिः, 'श्लाघमान' परस्त्रीभ्यस्तत्रागाद्राच्-
सेश्वर इति । देवदत्त श्लाघतइति जीप्यमानत्वाविवक्षायां कर्मत्वम् ॥
शीकादय उदात्ता अनुदात्तेता गताः ॥ ११२ ॥

अथ परस्मैपदिन आह ॥

फक्क नाचैर्गत्तौ ॥ इतः शिष्यन्ता उदात्ता उदात्ततः । नीचैर्गति-
मन्दगमनमसद्व्यवहारो वेति स्वामी । फक्कति । पफक्क । फक्किता ।
फक्किष्यति । फक्कतु । अफक्कत् । फक्केत् । आशिषि फक्क्यात् । अफ-
क्कीत् । अफक्किष्यत् । कर्मादौ फक्क्यतइत्यादि । पिफक्किषति । पाफ-
क्क्यते । पाफक्कीति । पाफक्कि । फक्कयति । अपफक्कत् ॥ ११३ ॥

तक्क हमने ॥ तक्कति । तताक्क । तेक्कतु । तक्किता । अतक्कीत् ।
अताक्कीद् इत्यादि । 'अतो हलादे'रिति वा वृद्धिः । व्यतितकन्ति । प्रति-
बोधे हसादीनामिति तङ्निषेधः । तक्क्यम् । 'तक्किशसी'ति यत् ॥ ११४ ॥

तक्कि कृच्छ्रजीवने ॥ तक्कति । तत्तक्क । तक्कितेत्यादि । यङ्लुकि
लङ्नि ईडभावे अतातन् । अस्यानन्तरं मैत्रेयः शुक गताविति पठित्वा
शोक्कति, शुकः, शुक इत्युदात्तहार, अस्मिन्दि सति शुकवल्कोल्का इति
शुभेः कनि भलोपे शुकशब्दनिपातनमनर्थकं स्यात्, द्रुगुपधलक्षणेन कप्र-
त्ययेनैव सिद्धत्वात्, तथा शुकेरविधानेनापि शुकशब्दे मिद्वे अजेन्द्रादौ
शुबोर्निपातनमनर्थकं स्यादित्यस्य पाठो ऽनार्थद्वय प्रतीयते ॥ ११५ ॥

बुक्क भणणे ॥ भणखमिह श्वरवः । बुक्कति । बुबुक्क । बुक्कि
तेत्यादि । अय चुरादावपि ॥ ११६ ॥

कख हसने ॥ कखति । चकाख । कखितेत्यादि । अकखीत् ।
अकाखीत् । 'अतो हलादे'रिति वा वृद्धिः ॥ ११७ ॥

ओख् राख् लाख् द्राख् ध्राख् शोषखालमर्थयोः ॥ ओखति । ओखां
चकार । ओखितेत्यादि । ओचिखिषति । ओखयति । मा भवानोचिखत् ।
'द्विर्वचनेचो'ति णिलोपस्य स्थानिवत्त्वात् खिशब्दस्य द्वितीयस्यैकाचो
द्विर्वचनमृदित्वाचोपधाह्रस्वः । इदमेव अदित्त्वं ज्ञापकमन्तरङ्गादपि
द्विर्वचनात्पूर्वमुपधाह्रस्वत्व भवतीत्यस्य । अस्य च प्रयोजन मा भवानिदि-
धदिति सिद्धिरित्येधताबुक्तम् । ओखति । 'एङि पररूपम्' । अवर्णान्ता-
दुपसर्गादेङि परे पूर्वपरयोः पररूपमिति पररूपत्वम् । राखति । अरराखत् ।
लाखति । द्राखति । ध्राखतीत्यादि ॥ १२२ ॥

शाख् श्लाख् व्याप्तौ ॥ शाखति । श्लाखतीत्यादि । शाखा ।
'गुरोश्चे'त्यकारः । शाखेव शाख्यम् । 'शाखादिभ्यो य' इति द्वार्ये यः ।
प्रतिशाखं भवं प्रातिशाख्यम् । 'अव्ययीभावाच्चे'ति भवार्थे ण्यः । शाखा
अस्य सन्तीति, शाखी । 'व्रीह्यादिभ्यश्चे'ति इनिः । विशिष्टा शाखा वि-
शाखा । सा प्रयोजन प्रयोजिका यस्य वैशाखो मन्यः । 'विशाखाषाढादशम-
न्यदण्डयो'रिति प्रयोजने णप्रत्ययः । विशाखेति नतत्रं तत्र जातः । 'सन्धि-
वेलाद्भृतुनतत्रेभ्योणि'त्यण् । तस्य 'अविष्टाफलुनी'त्यादिना लुकि 'लुक्
तद्धितलुकी'ति स्त्रीप्रत्ययस्य लुकि विशाखो माखवकः ॥ १२४ ॥

उख उखि वख वखि मख मखि णख णखि रख रखि लख लखि
इख इखि ईख वल्ग रगि लगि अगि वगि मगि तगि त्वगि अगि श्लगि
इगि रिगि लिगि गत्यर्थाः ॥ द्वितीयान्ताः पञ्चदश, तृतीयान्तास्त्रयोदश ॥
ओखति । ओखति । 'एङि पररूपम्' । उवोख । ऊखतुः । उवोखिथ ।
उवोख । गुणविषये 'ऽभ्यासस्यासवर्ण'इति अभ्यासस्येवर्णोवर्णयोरसवर्णे
ऽचि परत इयदुवडावित्युवङ् । लिटि पिटृचनेषु गुणः, गुहमानयं धातु-

रिति तेषां स्यान्निवत्त्वेन लिट्त्वाद् आम् प्राप्तः सन्निपातपरिभाषया निवर्त्तते । आम् गुणनिमित्तप्रत्ययस्य 'आम्' इति लुक् स्यात् । ऊखतु-
रित्यादौ मवर्णदीर्घस्यान्वत्त्वेनाभ्यासत्वाद् ह्रस्वो न भवति, अभ्यास-
मात्राश्रयत्वेनान्तरङ्गेऽस्मिन् पूर्वप्राश्रयस्य बहिरङ्गस्य सवर्णदीर्घस्य 'असिद्धं
बहिरङ्गमन्तरङ्ग' इत्यसिद्धत्वात् । ओमित्येति । लुङ् 'नेटी'ति वृद्धेर्नि-
षेधे लघुपञ्चगुणेन मा भवानोऽखीदिति भवति । ओचिखिपति । लघुपञ्चगुणे
ह्रस्वे द्वितीयस्यैकावो द्विवचनम् । ओखयति । मा भवानुचिखत् । द्विवच-
नात् पूर्वनेवे'पधा'द्वयत्वमिति ज्ञापितम् । ओखित्वा । 'न त्वा सेडिति'
यजित्वाद्गुणः । भावादिकर्मणोर्निष्ठाया 'मुदुपधादि'ति कित्त्वविकल्पना-
दुचितमनेन, ओखितमनेनेत्यादि नेयम् । उखो मुनिः । इगुपञ्चत्वात्कः ।
उखेन प्रोक्त औखीयः श्लोकः । 'तिनिरिवरन्तु'षण्डिकाखाच्छणि'ति
वर्त्तमानान् प्रोक्तार्थे कृणु, णित्वाद्गुणः । यदा तु प्रोक्त कृन्दो ब्राह्मणं
वा नदा कृन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणीति नियमाद् अध्येतृवेदितृ-
प्रत्ययविषयमेव, तेन 'तदर्धाते तद्वदे'ति औखीयशब्दाद् द्वितीयान्ताद्
अध्येतृवेदित्वोरण, तस्य प्रोनाल्लुगि'ति प्रोक्तप्रत्ययाच्छणः परत्वेन लुकि
औखीयो माखवकः । औखीया ब्राह्मणीत्यत्र प्रत्ययलक्षणनाणन्तत्वाद्
'टि'णञ्' इति नदीष् भवति, अत इत्यनुवर्त्याणोऽकारस्य च विशेषण-
विशेष्यत्वाद्यप्याद् वर्णाश्रयत्वाद् 'वर्णाश्रये नास्ति प्रयलक्षण'मिति प्रत्यय-
लक्षणनिषेधान् । उखाया सम्प्रतमुख्यम् । शूलाखाद्यादि'ति सप्तम्य-
न्तात्मस्कनमित्यर्थे यत् । प्रोखणम् । 'कृत्यच' इति णत्वम् । उहुति ।
उह्नां चकार । उहुिता । उञ्चिखिपति । उहुयति । औञ्चिखदित्यादि ।
प्रोहुणम् । 'इजादेः सनुम' इति णत्वम् । वखति । वखात् । वखिते-
त्यादि, वखतुरित्यादौ किति लिटि वकारादिन्यादेन्वाभ्यामलोपौ न ।
लुङ् 'ते' कलादे'रिति वा वृद्धिः । अखीत् । अखाखीदिति । एवं परेषाम-
निदिताम् । वहुयति । प्रवहुनम् । 'इजादे'रिति नियमादणत्वम् । मखति ।
ममाख । मखितेत्यादि । महुति । नखति । नहुति । मूर्धन्यादेरुपदेश
'उपसर्गादि'ति णत्वेन प्रखखतीत्याद्यपि यथा स्यादिति । रखति । रहुति ।

प्ररङ्गणम् । 'रषाभ्यामि'ति णत्वम् । इजादेरिति नियम उपसर्गात्कृत्यच
इति प्राप्तस्यैव । लखति । लङ्गति । एखति । इयेख । एखितेत्यादि ।
आखतिवत् । इङ्गति । इङ्गा चकार । ईखति । ईखां चकार । यद्यपि
मैत्रेयेणादितस्त्रय इदित उखिवखिमखयः । मूर्धन्यादिर्नखिरनिदित्,
इखिश्च न पठते, तथापि इतरानेकव्याख्यातृणा ग्रामाण्यादस्माभिः
पठितः । अत्र चन्द्रो मुखिमपि पपाठ । समताया तु त्रख त्रखि शिखि
इति त्रयः पठन्ते । द्वविडास्तु रिखमपि पठन्ति, खमेकोनविशतिः खान्ताः ।
वल्गति । रङ्गति । रङ्गन्त्यस्मिन् प्रेक्षकाणां मनासीति, रङ्गः । 'हलश्चे'ति
सत्रायामधिकरणे घञ् । रञ्जेर्वा घो द्रष्टव्यः । लङ्गति । विलगितः ।
अनिदितान् नलोपे लङ्गि कर्मयोगेनापशरीरविकारयोगेनामन्यमानमिति
नलोपः । उपतापादन्यत्र लङ्गितः । अङ्गति । अङ्गत्यत्रावयवीत्यङ्गम् ।
रङ्गवद् घञ् । अङ्गत्यत्रेति अङ्गो जनपदः । पूर्ववद् घञ् । अङ्गिरगता
विपरीतलक्षणया प्रवर्तते, दर्श इत्यत्र दृशिवत् । न दृश्यते ऽस्मिन् चन्द्र इति
हि दर्शशब्दो धूर्तस्वामिना व्युत्पादितः । कल्याणान्यङ्गान्यस्या सन्तीति
अङ्गना । 'अङ्गात् कल्याण'इति पाप्मादिपाठान्मन्त्रयोगे नः, विशिष्टं
विहीनं वा ऽङ्गमस्येति व्यङ्ग्यं, तस्यापत्य व्याङ्गि 'रत इज्' स्वागतादिना
चे'ति वृद्धिप्रतिषेधैर्जागमयोगेनैधः । एवं स्वाङ्गिरित्यत्रापि । सर्वाङ्गं
व्याप्नोतीति सर्वाङ्गीणः स्त्रायुः, 'तत्सर्वदेः पयङ्गकर्मपत्रपात्र व्याप्नोती'ति
सर्वदेः पय्याद्यान्ताद् द्वितीयान्ताद्व्याप्नोतीत्यर्थः खः । अग्निः । 'अगोर्नने-
लोपश्चे'ति निप्रत्ययो नलोपश्च । अग्निदेवता अस्य, आग्नेयं हविः ।
सर्वत्राग्निजलिभ्यां ठावक्तव्य'इति ठक् प्रत्ययः । सर्वत्रेति वचनादर्थो-
न्तरेण्यमेव । अग्नीषोमौ । अग्नीवरूणौ । 'ईदग्नेः सोमवरूणयो'रिति
देवताद्वन्द्वलक्षणस्मानडोपवाद् ईकारः । अग्नीवरूणौ देवता अस्याग्नि-
वारूणम् । 'देवताद्वन्द्वे चे'त्युभयपदवृद्धिः । 'इदृद्वा'विति वृद्धिमत्युत्तरपदे
अग्नेरिकार ईत्वापवादः । अग्नायी । 'वृषाकप्यग्निर्जुनितर्जुनिदानामु-
दात्त'इति पुयोगे डीप्पुदात्तऐकारान्तादेशे आयादेशः । अग्नायी देवता
अस्य आग्नेयम् । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया 'सर्वत्राग्निजलिभ्यां ठगि'ति ठकि

‘भस्याडे तद्धित’ इति पुंवद्भावपर्युदासे स्त्रीभ्यो ङको यद्वयमिति कैयटादा-
 वुक्त्वात्पुंवद्भावः । अग्निमित्दृष्ट्यग्निमित्दृष्टः । ‘भ्राष्ट्राग्न्योरित्दृष्टे मुम्ब-
 ऋथ’ इति मुम् । अयम् । ‘रुद्रेन्द्रार्ये’ति निपातनादङ्कि नलोपः । अये भव-
 मक्षिमम् । ‘अयादिपश्चाद्भिमञ्चि ति डिमच्’ । अङ्गारः । ‘अग्निमग्निनिन्दिभ्य
 आर’चिन्यारन् । अङ्कुलिः । ‘हनन्यञ्जी’त्यादिना उलिप्रत्ययः, अङ्कुरिः ।
 ‘बालमूने’त्यादिना पत्ते रः । पञ्चाङ्गुलयः प्रमाणमस्य पञ्चाङ्गुलः । ‘तद्धि-
 तार्थान्तरपदममाहारे च’ तद्धितार्थे विषयभूते उत्तरपदे परतः समाहारे
 चाभिधेये दिक्स्थले समानाधिकरणेन सम समस्येते इति प्रमाणे तद्धितार्थे
 विषयभूते समासः । ‘सङ्ख्यापूर्वा द्विगु’रिति द्विगुत्वे ‘द्विगुश्चे’ति तत्पु-
 ष्षश्चार्थान्तर ‘प्रमाणे द्वयसङ्घट्टमात्रच’ इति प्रमाणोपाधिका-
 दस्मात्प्रमाणिति मात्रच्, तस्य ‘द्विगोलुङ् नित्य’मिति लुकि ‘तत्पुष्प-
 स्याङ्कुनेः सङ्ख्याव्ययादे’रित्यचि ‘यस्येति चे’तीकारलोपः । अत्यङ्गुलम् ।
 ‘अन्यादयः क्रान्तादयर्थे’ इति तपुष्पः, अव्ययादित्वाद्च् । शोभनाङ्कुलिः
 स्वङ्कुलिः । ‘न पूत्रनात्’ । यान् शब्दानुपादाय समासान्तो विधीयते ते
 यदा पूजावचनात्परे भवन्ति तदा समासान्तो नेत्यत्राचोभावः । कुत्सि-
 ताङ्कुलिः किमङ्कुलिः । ‘कि त्वेपे’ । त्वेपे यः किंशब्दः स समानाधिकरणेन
 सुबन्तेन समर्थेन समस्यतइति तत्पुष्पः । ‘किमः त्वेप’ इति त्वेपवचना-
 दस्मात्परस्य समासान्तनिषेधाद् अञ्ज भवति । नाङ्कुलिः, अनङ्कुलिः ।
 तत्र ‘नञस्तत्पुष्पा’दिति समासान्तनिषेधः । नञः परे ये वक्ष्यमाणा
 षष्ठादयस्तदन्तान्त्युपचेति सूत्रार्थः । पञ्चाङ्गुलिसदृशा अवयवा अस्य
 पञ्चाङ्गुल एरण्डः । धान्यादीनां वित्तेपदारु च पञ्चाङ्गुलमाहुः ।
 ‘अङ्कुनेर्दोष्णी’ति बहुव्रीहौ पच् । अङ्कुलीयमेवाङ्कुलीयकम् । सञ्जाया कन् ।
 ‘जिह्वामूलाङ्कुलेश्च’ इति सप्तम्यन्ताद्वार्थः ङः । वङ्गतीति वङ्गाः जनपदः ।
 अङ्गुलदुत्पत्तिः । मङ्गतीति मङ्गलम् । ‘मङ्गेरलजि’त्यलच् । तङ्गति । त्वङ्गति ।
 अङ्गति । श्लङ्गति । इङ्गति । रिङ्गति । लिङ्गति । लिङि चिञ्चिकरणादिति
 सुरादौ च ॥ १५२ ॥

त्वङि कम्पने च ॥ त्वङ्गति ॥ १५३ ॥

युगि जुगि रुगि वर्जने ॥ युङ्गति । जुङ्गतीत्यादि ॥ १५६ ॥

घघ हसने ॥ घघति । जघाघ । घघितैत्यादि ॥ १५७ ॥

मघि मण्डने ॥ मङ्गति । मङ्गते कन्या स्वयमेव । अमङ्गिष्ट
कन्या स्वयमेव, भूषाकर्मत्वाच्च यक्चिणौ । मङ्गनः । 'क्रुधमण्डार्यभ्य-
श्चे'ति युच् ॥ १५८ ॥

शिघि आघ्राणे ॥ शिङ्गति । शिङ्गानको रोगविशेषः । 'लूशिघिधा-
भ्यश्चे'त्यादिनानक् प्रत्ययः ॥ फक्कादय उदात्ता उदात्तेतः ॥ १५९ ॥

अथ क्रमप्राप्ताश्चवर्गान्तानात्मनेपदिन आह ॥

वर्च दीप्तौ ॥ एतदादय ईजन्ता उदात्ता अनुदात्तेतः ॥ वर्चते ।
ववर्च । वर्चिता । वर्चिष्यते । वर्चताम् । अवर्चत । वर्चत । अशिषि
वर्चिषीष्ट । अवर्चिष्ट । अवर्चिष्यत । भावे वर्च्यते इत्यादि । विवर्चि-
षते । वावर्च्यते । वावर्चीति । वावर्चि । अवावर्चीत् । अवावर्क । 'रात्स-
स्यति' नियमाच्च सयोगान्तलोपः । अवावर्क स्यात्तेत्यादौ कुत्वस्यासिद्धत्वा-
'त्स्को'रिति कलोपो न भवति, यद्वा तत्र निमित्तनिमित्तिनोः समानपद-
स्यत्वएव सलोप इतीह नैव प्रसङ्गः । वर्चयति । अवर्चत् । वर्चः दीप्तिः
पुरीष च । 'असुनि'त्यसुन् । वर्चस्कः पुरीषम् । सज्ञायां कन्, 'सोपदादा'-
विति विसर्जनीयस्य सत्व, 'कुप्त्रो'रित्यस्यापवादः । ब्रह्मवर्चसम् । हस्तिव-
र्चसम् । 'ब्रह्महस्तिभ्या वर्चस' इत्यच् समासान्तः । पत्न्यवर्चसम् । राजवर्च-
सम् । 'पत्न्यराजभ्याञ्चे'त्यच् । ब्रह्मवर्चसनिमित्त सयोग उत्पातो वा ब्रह्म-
वर्चस्यम् । 'तस्य निमित्तप्रकरणे ब्रह्मवर्चसादुपसङ्ख्यानमि'ति यत् ।
वर्च्यम् । एयति 'वज्रोः कुघिण्णयतो'रिति कुत्वं न भवति । 'न क्वादे'रि-
त्यत्र क्वाद्वाजिब्रजियाचिरूच्यादीनां न प्रतिषेधो निष्ठायामनिटः कुत्वव-
चनात् । अस्यार्थः । 'वज्रोः कुघिण्णयतोर्निष्ठायामनिट' इति सूत्र कर्त्तव्यं,
तेन 'न क्वादे' 'अजिब्रज्याश्चे'ति योगद्वयं 'यजयाचरुचप्रवचर्वश्चे'त्यत्र
याचिरुच्यृचिग्रहणं न कर्त्तव्यं भवतीति । तेषां सेट्त्वादित्यभिप्रायः ।
अयमत्र विवेकः । ये क्वादयो ऽन्ये वा निष्ठायामनिटस्तेषां कुत्व ये तु
सेट्स्तेषां नेति । एवञ्चात्र मते श्लुचादीनां कवर्गादित्वेपि निष्ठायाम-

निदृत्वात्कुत्वेन भाव्यम् । अत्र हरदत्तः । यथोक्तं मुनीनां प्रामाण्यमिति
वार्तिककारानुसारेण कुत्वस्य भावाभावौ व्यवस्थाप्याविति । कथन्तर्हि
शोकः समद्व इति । यतः शुच्यञ्जी निष्ठायां सेटौ । अत्र भाष्य, शुच्य-
ज्योर्घञि कुत्व वक्तव्यमिति । अत्र हरदत्तः । तच्च यथान्यासेपि वक्तव्य
घञ्येव यथा स्याद् एयति माभूदिति, तदेव वार्तिककारपक्षे विध्यर्थे
भविष्यतीति ॥ १६० ॥

पच सेचने ॥ अयं सेवनार्थोपि, तथा च त्रय एनां महिमानः
सचन्तइत्यत्र सुरभुभस्स्त्रीययोः सचते सेचतइति निरुक्ते च सक्तः सचित
इति, सेव्यमानस्येति । अस्यैतौ वाचकावित्यर्थः । 'प्रनूमहित्व वृषभस्य
वोच य पूरवो वृत्रहण सचन्त'इति । सचते । सेचे । सचिता । सचि-
ष्यते । सचताम् । असवत । सचेत । आशिषि सचिषीष्ट । असचिष्ट ।
मिसचिषते । 'स्तौतिष्ठ्यारेवे'त्यप्रत्वम् । सासच्यते । सासक्ति । साचयति ।
असीषचत् । सक्तुः । मिननिगमिममिमीची'ति तुन् । 'तितुत्रेती'यिनषेधः ।
सक्तुलः । 'सिध्मादिभ्यश्चे'ति मत्वर्थे लः । सचिवः । बाहुलकादुप्रत्ययः ।
यद्वा सचिः सेवा, इन् प्रत्ययः, ता वातीति सचिवः, 'आतोनुपसर्गे कः' ।
यद्वा 'केशाद्वान्यतरस्या'मिति वप्रत्ययः 'अन्येभ्योपि दृश्यत इति मणि-
वराञ्जीवादिबदस्मादपि । अयं समवाये स्वरितेदमे ॥ १६१ ॥

लोच दर्शने ॥ लोचते । लुक्लोचे । लोचितेत्यादि । लुलोचिषते ।
लोलोच्यते । लोलोचीति । लोलोक्ति । लोचयति । अलुलोचत् । छदि-
त्वाण्यौ चङि ह्रस्वाभावः । भाषार्थाय चुरादौ ॥ १६२ ॥

शच व्यक्तायां वाचि ॥ शचते । श्चे । शचितेत्यादि । शची । इन-
न्तात्तु'दिकारादक्तिन्' इति ङीष् ॥ १६३ ॥

श्वच श्वचि गतौ ॥ श्वचते । श्वचते । श्वचिता । श्वञ्चते ।
श्वञ्चते । श्वञ्चितेत्यादि । शच्यादयस्तालव्यादयः ॥ १६४ ॥

कच बन्धने ॥ कचते । कचते । कचितेत्यादि । कचते यूनां मनांसि
बध्नातीति कचः । पचाद्यच् । काचः । 'हलश्चे'ति सञ्ज्ञाया घञ् ॥ १६६ ॥

कचि काचि दीप्तिबन्धनयोः ॥ कञ्चते । चकञ्चे । कञ्चिता ।
काञ्चतइत्यादि । कञ्चुकः । बाहुलकादुकः प्रत्ययः । काञ्चनम् । अनु-
दात्तेत्वाद्युच् । काञ्चनस्य विकारः । काञ्चनम् । 'प्राणिरज्जतादिभ्योजि'ति
रज्जतादित्वादञ् 'नित्य वृद्धशरादिभ्य'इति मयटोपवादः । काञ्चिः ।
काञ्ची । इनन्ता'त्कादिकारादक्लिन्' इति वा डीष् । काञ्चिकम् । संज्ञायां
कल्कने कन् । दीप्तौ चेति वक्तव्ये बन्धनग्रहणं प्रपञ्चार्थम् ॥ १६८ ॥

मच मुचि कल्कने ॥ कल्कन दम्भः शाठ्यं चेति मैत्रेयः । दम्भः
कथ्यन चेति स्वामी । मचते । मेचे । मचिता । मुञ्चते । मुमुञ्चे ।
मुञ्चतेत्यादि । मुचेति चन्द्रः । तन्मते मोचतइति । मुञ्च मोक्षणेइति
तुदादौ । मुच प्रमोचनइति चुरादौ ॥ १७० ॥

मचि धारणोद्धागपञ्जनेषु ॥ मञ्चतइत्यादि । मञ्चः । पचाद्यच् ।
शाकटायनस्तु मुञ्चि हित्वा द्वावेव धातू पपाठ । मचि कल्कने । मञ्चु
धारणोद्धागपूजनेष्विति । तेन चानुदात्तेत्स्याने इद्विक्रियते । तस्य स्थाने
बोदित्, धनपालस्तावत् शाकटायनानुसारी ॥ १७१ ॥

पचि व्यक्तीकरणे ॥ पञ्चते । पङ्कः । 'चजोः रुत्रि ण्यतो'रिति कुत्व-
म् । वार्तिकमते न्यङ्कादिर्द्रष्टव्यः । तेन हि निष्ठायामनिट कुत्वमु-
च्यते । पञ्चन् बाहुलकात्कनिन् बहुवचनान्तः । तत्र 'णान्ता षडिति'
षड्संज्ञाविधानात् 'षड्यो लुगि'ति जस्शसोर्लुक् । पञ्चानामित्यत्र 'षट्-
त्रतुर्भ्यश्चे'त्यामो नुटि 'नोपधायाः' । नान्तस्यापधाया नामि दीर्घ इति
दीर्घ 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'ति नलोपः, स्त्रियामप्रीदमेव रूपम् ।
'न षट्स्वस्मादिभ्य'इति टापो ङीपश्च निषेधात् । अस्ति च टापः प्रसङ्गे
नकारे लुप्ते । पञ्चानामपत्यं, पाञ्चिः । बाह्यादित्वादञ् । 'नस्तद्विते' ।
नान्तस्य भस्य तद्विते टिलोप इति टिलोपः । पङ्क्तिः । 'पङ्क्तिविंशतित्रिं-
शच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशत'मिति 'तदस्य परि-
माणमि'ति विषये तिप्रत्ययो निपात्यते । पञ्च परिमाणमस्य वर्गस्य
पञ्चत् । 'पञ्चद्वशतौ वर्गे वे'तिह त्यन्तो निपातितः । वायहण्या'त्सख्याया
अतिशदन्तायाः कनि'ति कनि पञ्चकः । पचेति दुर्गः । तथा वर्धमा-

नोपि, यदाह । अनिद्विधौ पच्यादिसूत्रे ङुपचण्याके पच व्यक्तीकरण-
इति, समताया तु वर्धमानवदुक्त्वाऽन्यैस्त्वयमिदित् पठ्यतइत्युक्तम् ।
'तिङो गोत्रादीनी'त्यत्र पचतिगोत्रमित्युपादाय पच व्यक्तीकरणइति पठन्
न्यासकारः परस्मैपदिन च मन्यते । ङुपचण्याकइत्यग्रे । पचि विस्तारव-
चनइति चुरादौ ॥ १०२ ॥

ष्टुच प्रसादे ॥ स्तोचते । 'धात्वादेः षः सः' । ष्टुत्वं निमित्ताभा-
वाच्च भवति । सत्वात्पूर्वं तु पूर्वत्रासिद्धत्वेन न भवति । तुष्टुचे । 'शूर्प-
र्वाः खय'इति शेषः । स्तोचितेत्यादि । तुस्तुचिषते । तुस्तोचिषते ।
स्तुचिच्चा । स्तोचिच्चा । 'रलो व्युपधादि'ति कित्त्वविकल्पः । 'स्तौतिण्या-
रे'ति नियमात्सन्त्यष्टत्वम् । तोष्टुच्यते । तोष्टुचीति । तोष्टोक्ति । स्तोच-
यति । अतुष्टुचत् । स्तोक् । घञ् । उद्देशितस्तोक्तम्, अल्पमुदश्विदि-
त्यर्थः । 'पोटायुवतिस्तोक्कतिपयष्टि'थेनुवशावेहदृक्कयणोऽवमृश्रात्रि-
याध्यापकभूतैर्जातिः' । पोटादिभिः समानाधिकरणैः जातिवाचि सुबन्तं
समस्यतइति तत्पुरुषः । अत्रैव निर्देशाद् वार्तिककारमते कुत्वम् । स हि
'चजोः कु घिण्यतोर्निष्ठायामनिट'इति सूत्र न्यास्यत् । स्तोक्रान्मुक्तः ।
स्तोकेन मुक्तः । स्तोक्त्वेन मुक्त इत्यर्थः । 'करणे च स्तोकात्पञ्चकृकति-
पयस्यासत्त्ववचनस्ये'ति तृतीयापञ्चम्यौ । असत्त्ववचनस्येति वचनात्
स्तोकेन विषेण हत इति सत्त्ववचनात्तृतीयैव । स्तोक्रान्मुक्त इत्यत्र 'स्तो-
क्रान्तिके'त्यादिना समासे 'पञ्चम्याः स्तोक्रादिभ्य' इत्यलुग्वचनात्तदेव
रूपम् । सस्तोत्र इति अर्णविकाराभ्युपगमादिति मैत्रेयः १०३ ॥

अज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु ॥ अयं पाठो मैत्रेयस्य । ऊर्जनेष्विति
ह्रीस्वामिधनपालशाकटायनाः । अर्जते । 'उरण् रपर'इति रपरो गुणः ।
आनुजे । अज अजशब्दस्य द्विवचने हलादिशेषे 'उरदि'ति अवर्णान्ताभ्या-
सत्त्वाद् भव'चुरण् रपर' इति रपरः । पुनर्हलादिशेषे 'अत आदे'रिति
दीर्घे 'तस्माच्च द्विहल'इति नुट् । अकारैकदेशस्यापि रेफस्य हलत्वाश्रय-
णाद् द्विहलत्वम् । तत्र हि द्विहल्लग्नहणं यौगप्येदृशस्य हल्लः परियहार्यम् ।
अन्यथा तस्माच्चुडित्येव ब्रूयात् । न चाटतुरित्यादावेकहल्यतिशसङ्गः ।

‘अश्नोते’त्यनेनाद्विहलो यदि भवत्यश्नोतेरेवेति नियमात्, अस्याश्ना-
तिमात्रनिवृत्त्यर्थत्वे नाश्न इत्येव ब्रूयात् । ‘ऐञ्जि’त्यत्र द्विहल्यहणं न
करिष्यत इति भाष्यम् । तत्र कैयटे । अवर्णोपधस्य यदि भवति अश्नोते-
रेवेति नियमाश्रयेण द्विहल्यहणं प्रत्याख्याय नुहुक्तः । अर्जिता । अर्जि-
ष्यते । अर्जताम् । अर्जत । आशिषि । अर्जिषीष्ट । अर्जिष्ट । अर्जि-
ष्यत । अजादित्वादाडागमः । अर्जिजिषते । सनीटि गुणे ‘न न्द्रा’ इति
रेवर्जं द्विरुच्यते । अर्जयति । अर्जिजत् । प्राज्यत इत्यत्र कर्मादौ यकि ।
‘उपसर्गादृति धातौ’ । अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे पूर्वपरयो-
र्वद्विरेकादेश इति आर्वादिः । अर्जित्वा । ‘न त्वा सेडि’त्यकिस्त्वादुष्णः ।
अज्यम् । ‘अदुपधाच्चाकृपिचृतेरिति भावकर्मणोः क्यप् ॥ १७४ ॥

अजि भृजी भर्जने ॥ द्वितीय ईदित् । भर्जनं पाकविशेषः । अज्जते ।
प्राज्जते । ‘उपसर्गादृती’ति वृद्धिः । अज्जा चक्रे । आनृज्ज इति संमतातर-
ङ्गिण्योः । तदसत् । नुन्विधावुपदेशिण्यदृचनात् । अत एव काश्यपमैत्रेया-
दय आममेव सर्व उदाजहुः । अज्जिता । अज्जिष्यते । अज्जताम् ।
आज्जत । अज्जत । अज्जिषीष्ट । आज्जिष्यत । ‘आटश्चे’ति वृद्धिः ।
अज्जिजिषते । ‘न न्द्रा’ इति नवर्जं द्विरुच्यते । अज्जयति । मा भवान्
अज्जिजत् । भज्जते । बभृजे । भर्जितेत्यादि । बिभर्जिषते । बरीभृज्यते ।
‘रीणदुपधस्य चे’ति रीक् । बर्भृजीति । बरिभृजीति । बरीभृजीति ।
बर्भर्क्ति । बरिभर्क्ति । बरीभर्क्ति । ‘रुयिकौ च लुक्’ति रुयिकौ, भर्जयति ।
अबीभृजत् । उच्यते । अन्यदा अबभर्जत् । भृक्तः । भृक्तवान् । ‘श्वीदितो निष्ठा-
यामि’ति अनिट्त्वम् । भर्गः । घञि कृत्वम् । भस्ज पाक इति तुदादौ ॥ १७६ ॥

एज भ्रेजृ भाजृ दीप्तौ । एजते । प्रेजते । ‘एङि पररूपम्’ । एजां चक्रे ।
एजितेत्यङि । एजिजिषते । एजयति । मा भवानेजिजत् । अदित्त्वा-
चोपधाह्रस्वः । अन्यथा इदिधदित्यादिवद् द्विर्व्यवनात्पूर्वमेवोपधाह्रस्वः
स्यात् । अङ्गमेजयतीत्यङ्गमेजय । ‘एजेः खशि’ति एयन्तादस्मात्कर्म-
ण्युपपदे खशः शित्वात्सार्वधातुकत्वाच्छपि गुणायादेशौ । अन्यथा धेधा-
तुकत्वात् ‘एयल्लोपे’त्यादिना गुण बाधित्वा णिलोपः स्यात् । खित्वा ‘दह

द्विषदजन्तव्ये'ति पूर्वपदस्य मुम् । वृत्तौ तु एजृ कम्पनइति परस्मैपदिस्य-
न्तात खगुक्' । उदेजयतीत्युदेजयः । 'अनुपसर्गाल्लिम्मे'त्यादिना उत्पूर्वात्
इयन्तादम्माच्छ्रान्त्ये अपि गुणायौ । अनुपसर्गग्रहणमर्थोदन्यविशेषणम् ।
अत्राप्युपसर्गान्तरनिवृत्त्यर्थं च, तेन समुद्र' इत्यादौ अचि णिलोपः । भ्रजते ।
भ्रजितेत्यादि । विभ्रजिषते । वेभ्रज्यते । वेभ्रेजीति । वेभ्रेक्ति । भ्रजयति ।
अविभ्रजन । 'ह्रस्व' इति इकारोभ्यामस्य, पूर्ववद्दृष्टित्वाच्चापाधाह्रस्वः ।
भ्राजनइत्यादि भ्रजिषत् । 'ब्रश्चभ्रसजे'त्यादिना भलि पदान्ते च विधीय-
मानं पत्वमस्य नास्ति । राजिसाहचर्यात्फणादिपठितस्यैव तत्र ग्रहणा-
दिति मैत्रेयदीरस्वामिममताकारादयः । एवं चावश्यपठितव्येन फणा-
दिकेन भ्राजनइत्यादीना सिद्धेरिह पाठो ऽनार्ष इवेति न्यासोक्त दुरुक्त,
यद्वा तत्रापीवशब्देन पूर्वाक्त एव पत्नः सूच्यते । भ्राजयति । अविभ्रजत् ।
अब्रभ्राजत् । 'भ्राजभासभापटीपजीवमीलपीडामन्यतरस्यामि'ति चङ्परिणौ
उपधाह्रस्वविकल्पः । एवं चास्य च्छदित्वमनुदात्तेत्वमात्रफलम् । भ्राजि-
ष्णुः । 'भ्रवश्चे'ति चकारादिष्णुच् । विभ्राक् । 'भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजु-
बावस्तुषः क्विच्' इति ताच्छीलिके क्विपि 'चोः कु'रिति कुत्वम् । ब्रश्चादि-
सूत्रे राजिसाहचर्यात् फणादिकस्येव ग्रहणमित्युक्तत्वाच्च पत्वम् । यत्तु वृत्तौ
क्विमूत्रे विभ्राडिति कृतपत्वस्यैवोदाहरण तद्वन्वक्तृत्वेपीह फणादिक-
मपि एकातइति सूचयितुं न त्वस्यापि पत्वमस्तीति । अत्र रेजिरपि क्त
चित्पठ्यते, तदनार्षमिव । यदाह भट्टभास्करः । रेजते अग्ने पृथिवीमखेभ्य
इत्यत्र राजनेश्वान्दसत्वमिति ॥ १७९ ॥

ईज गतिकुत्सनयोः ॥ ईजते । ईजां चक्रे । ईजितेत्यादि । कर्मणि
ईज्यतइत्यादि । ईजिजिषते । ईजयति । मा भवानिजिजत् । द्विर्वच-
नात्पूर्वं 'णौ चही'ति ह्रस्व इत्युक्तम् । वर्चादय उदात्ता अनुदात्तेतः ॥ १८० ॥

शुच शोके ॥ एतदादयो व्रजन्ता उदात्ता उदात्तेतः ॥ शोचति ।
शुशोच । शोचिता । शुशुचिषति । शुशोचिषति । शुचित्वा । शोचित्वा ।
कित्त्वविकल्पः । शोशुच्यते । शोशुचीति । शोशोक्ति । शोचयति । अशू-
शुचत् । 'दीर्घा लघोः' । शोचनः । 'जुचङ्ङ्म्यदङ्म्यसृग्धिञ्जलशुचलषपतप-

द'इति तच्छ्रीलादौ युच् । प्रशुचितः । प्रशोचितः । 'उदुपधादिति' कित्त्वविकल्पः । शूद्रः । 'शुचेर्देशे'ति रक्प्रत्ययो दकारोन्तादेशः दीर्घश्च, 'शूद्रा चामहत्पूर्वा जाति'रित्यजादिपाठात् 'जातेरस्त्रीविषयादि'ति ङीष् बाधित्वा स्त्रिया टापि शूद्रा । जातिवचनात्पुंयोगे शूद्रीति ङीष् भवति । अमहत्पूर्वत्युक्तेर्महाशूद्रशब्दाज्जातिलक्षणो ङीषेव भवति महाशूद्रीति । महाशूद्रशब्दे ह्याभीरजातिवचनः । अयमेवामहत्पूर्वस्येतिप्रतिषेधो ज्ञापकः स्त्रीप्रत्ययेषु तदन्तविधेः । शोकः । घञ् । वार्त्तिकमते 'तुन्दशोकयारि'ति निपातनात् कुत्वमेष्टव्यम् । शुचिर् पूतीभावइति दिवादौ ॥ १८१ ॥

कुच शब्दे तारे ॥ कोचति । चुकोच । कोचितेत्यादि पूर्ववत् । कुचः । इगुपधात्कः । कुच गताविति स्वामी, अय सपर्वनार्थं ज्वलादौ, पुनः पाठे प्रयोजन तत्रैव वक्ष्यते । सकोचनार्थस्तुदादौ ॥ १८२ ॥

कुञ्च कुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः ॥ दन्त्योपधौ । गतिकौटिल्याल्पीभावयोः, गतौ कौटिल्ये द्रव्याल्पत्वे चेति क्षीरस्वामी । कुञ्चति । चुकुञ्च । कुञ्चितेत्यादि । चुकुञ्चति चोक्त्यते । 'अनिदिता'मिति नलोपः । चोक्त्यतीति । 'न लुमताङ्गस्ये'ति निषेधात् प्रत्ययलक्षणेन नलोपो न भवति, 'चोः कु'रिति कुत्वेन चकारे निवर्त्तिते निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभाव इति अकारे निवृत्ते ऽनुस्वारस्य पुनः परसवर्णो ङकारः । अचोक्त्यतीत् । अचोक्तु । सयोगान्तलोपे सति पूर्ववन्निमित्ताभावात् अकारे ऽनुस्वारे च निवृत्ते नकारो ऽवतिष्ठते । कुञ्चयति । अचुकुञ्चत् । चङपेक्षोऽ'निदिता'भिति नलोपो णिलोपस्य स्यानिवत्त्वा'दसिद्धवदत्रेत्यसिद्धत्वाद्वा व्यवधानाच्च भवति । कुचितः, कुचितवान् । 'अनिदितामि'ति नलोपः । कुञ्चित्वेत्यत्र तु 'न त्वा सेङि'त्यकित्वाच्चलोपो न भवति । निकुचितमनेनेत्यादौ भावादिकर्मणोः 'उदुपधादिति' कित्त्वविकल्पो न भवति, 'सन्निपातलक्षणे विधिरनिमित्त तद्विधातस्ये'ति । तथा चास्याः परिभाषायाः प्रयोजनवार्त्तिकम् । उदुपधत्वमकित्वस्य निकुचितमिति, इदमेवाप्यनोपधत्वे मानम् । अत एवादित्याठिनौ चन्द्र*तरङ्गिणीकारौ प्रत्युक्तौ

* आभरणकाराविति २ पु. पाठः ।

यनस्तन्मते 'उदितो वे'ति त्वायामिटो विकल्पनाचिष्ठायां 'यस्य विभा-
वे'ति प्रतिषेधात्सेटो निष्ठाया एवाभावः । इदित्पाठोप्यनेनैव प्रत्युक्तः ।
यत इदित्त्वाचलोपस्य नैव प्रसङ्गः, निकुचितमित्यत्र 'तितुत्रतथसिसुसरक-
सेषु चे'ति तिप्रत्ययस्य विधीयमानमनिटत्वं तितुत्रेष्वयहादीनामित्युक्त-
त्वाच्च भवति । एव क्रुञ्चतीत्यादि । क्रुङ् । 'चत्विकृदधृक्स्रग्दिगुणिग-
ञ्वयुजिक्रुञ्चा चे'ति क्तिन् । तस्य सर्वापहारी लोपः । पदत्वे चकारस्य
संयोगान्तलोपे 'क्तिन्प्रत्ययस्य कुः'क्तिन्प्रत्ययो यस्माद्विहितस्तस्य पदस्य
कवर्गादेश इति नकारस्य ङकारः । संयोगान्तलोपात्पूर्वं प्रत्ययलक्षणानां नि-
दितामि'तिलोपो न भवति । चत्विकित्यादिभिर्निपातनैः साहचर्यात् ।
अन्यस्याप्यलाक्षणिकस्य कार्यस्य ज्ञापनात् । तदुक्तं वृत्तौ । नलोपः
कस्माच्च भवति । चत्विकित्यादिनिपातनैः साहचर्यादिति । अत एव
माह्नर्पादुपपदाधिकारोपि केवलात् क्तिन्प्रत्ययः । क्रुञ्चा । अजादिपाठा-
ट्टनन्तादपि टाप् । क्रुञ्चैव क्रौञ्चः । 'प्रजादिभ्यश्चे'ति स्वार्थेण प्रत्ययः । क्रु-
ञ्चा अम्मिन्मन्तीनि क्रुञ्चकीयो देशः । 'क्रुञ्चा ह्रस्वत्व चे'ति नडादिपाठात्
वानुसार्थिकः कृप्रत्ययस्तत्सन्निधौ कुगागमो ह्रस्वत्व च । 'चोः कुरि'त्यत्र
यदुक्तं वामनेन । क्रुञ्चेत्यत्र सङ्गीतिवचनाञ्जकारस्य चकारे भ्रूलि परतः
कुत्त्व न भवति, युजिक्रुञ्चा चेति निपातनाद्वा । नकारोपधो वा धातुरपरै
रेफवर्जितः क्रुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोरिति पठ्यते, नलोपो निकुचित
इत्यत्र दृश्यते, युजिक्रुञ्चामिति तस्यैव रेफाधिको नलोपाभावश्च
निपात्यतइति तत्क्रुञ्चेनोपधत्वेपि क्रुञ्चाशब्दे दोष इत्येवंपरं न त्वयं
धातुर्नास्ति । यद्वा जकारोपध इत्येव परम् । स्पष्टं चैव तत्र न्यासपद-
मञ्जर्यां, न त्वासेडित्यत्र च द्वावपि धातू न्यासकतोपात्तौ । तथा
'चत्विका'दिसूत्रे जयादित्यश्च, क्रुञ्चेर्नलोपः कस्माच्च भवति, निपातनैः
साहचर्यादिति ॥ १८४ ॥

लुञ्च अपनयने ॥ लुञ्चतीत्यादि पूर्ववत् । लुचित्वा । लुञ्चित्वा ।
'अञ्चिलुञ्चतश्चे'ति सेटः त्वः क्तिन्विकल्पनात् पक्षे नलोपः । के चिद-
मुमुदिन पठन्ति तदनार्थं, राजदन्तादिषु लुचितमिति पाठाद्, उदित्वे हि

त्वाया 'मुदितो वे'तीटो विकल्पनाद् निष्ठायां 'यस्य विभाषे'ति प्रतिषेधा-
लुचितमिति न स्यात् ॥ १८५ ॥

अञ्चु गतिपूजनयोः ॥ अञ्चति । आनञ्च । अञ्चितेत्यादि ।
गतौ व्यत्यञ्चनीत्यत्र 'न गतिहिंसे'ति तङ्निषेधः । पूजायां तु 'नाञ्चः
पूजायामि'ति नलोपनिषेधादञ्च्यते गुरुः, अञ्च्यादिति भवति । अञ्चि-
त्वा । अङ्त्वा । 'उदितो वे'ति इडिकल्पः । इटि 'न त्वा सेडि'त्यकि-
त्वाच्चलोपाभावः । निष्ठायां 'यस्य विभाषे'तीटः प्रतिषेधात्समक्रमिति,
'अञ्चोनपादान'इति निष्ठानत्वम् । अयादाने तूदक्तमुदकं कृपादिति ।
पूजायां तु त्वानिष्ठयोः 'उदितो वे'ति विकल्प 'यस्य विभाषे'ति निषेधं
च बाधित्वा 'अञ्चः पूजायामिति नित्यमिट् । अञ्चित्वा । अञ्चितोऽस्य
गुरुः । 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्चे'ति वर्त्तमाने क्तः । मनिरिच्छा, बुद्धिर्ज्ञानं,
पूजा सत्कारः, 'क्तस्य च वर्त्तमान'इति 'न लोकाव्यये'ति निषेध बाधित्वा
कर्त्तरि षष्ठी । अस्याश्च 'क्तेन च पूजायामिति समासो निषिध्यते ।
पूजितो यः सुरासुरैरपीत्यत्र वर्त्तमानक्तेन तत्कौण्डिन्यन्यायेन भूते क्तस्य
बाधात् तृतीया चिन्त्या । यद्वा तेनेत्यधिकार, 'उपज्ञात'इति भूते क्तेन
निर्देशाद् अयं वर्त्तमानक्तेन न बाध्यतइति सामान्येन ज्ञापकाश्रयणेनाय
प्रयोगः समर्थनीयः । तैलमुदच्यतेस्मिन्निति तैनेदङ्गस्वर्ममयस्त्रिकाटिः ।
'उदङ्कोनुदक'इति घञिनापात्यते । उदके तूदकोदञ्चनम् । ल्युट् । 'पुंसि
संज्ञाया'मिति घस्तु न प्रत्युदाहृतः, घघञो रूपे स्वरे वा विशेषाभावात् ।
घञोपि ऋदुत्तरपदप्रकृतिस्वरमाद्युदात्तत्वं बाधित्वा 'थायघञ्क्ताजबिन्न-
काणा'मिति उत्तरपदं घञन्तोदात्तमेव । प्रत्यञ्चतीति प्रत्यङ् । 'चत्वि-
गि'त्यादिना क्तिनि 'अनिदिता'मित्यादिना नलोपे सौ 'उगिदचां सर्वनाम-
स्थाने'इति नुमि हलङ्यादिसंयोगान्तलोपयोः 'क्तिप्रत्ययस्य कु'रिति कुत्वं
ङकारः, प्रत्यञ्चावित्यादि । भसंज्ञायां तु 'अचः' । लुप्तनकारस्याञ्चते-
रकारस्य लोपो भसंज्ञायामित्यल्लोपे 'चौ' लुप्तनकारेञ्चतौ परे पूर्वपदस्य
दीर्घ इति दीर्घं प्रतीच इत्यादि, हलादौ जश्त्वे प्रत्यग्भ्यामित्यादि ।
प्रत्यत्त्वित्यत्र 'खरि चे'ति चत्वम् । नपुंसके तु स्वमोर्लुकि प्रत्यक् । द्विव-

युचु न्तुचु कुचु खचु स्तयकरणे ॥ योचति । जुयोच । योचितेत्यादि ।
लोचनीत्यादि स्रुचिवत् । जृत्स्मसूत्रे युचिमपि केचित्पठन्ति । कोजति ।
खोजति । इमाग्रपि स्रुचिवत्, अङ्भावे विशेषः । प्रणिकोजति । प्रणिखा-
जति । 'शेषे विभाये'ति उपमर्गस्यादिमितात्परस्य नेर्णत्व तत्रैव सूत्रे कखा-
दाग्रभान्तउपदेशद्विती पर्युदासाच्च भवति, शेषश्च गदादिर्व्यातिरिक्तो धातुः ।
बौक्, बौक्यं, घञ्प्रत्ययो 'श्चजोः कु घिण्प्रत्ययो'निष्ठायांमनिटइति वार्तिक-
सूत्रेण कृत्वम् ॥ १९८ ॥

म्लञ्च वस्त्र गतौ ॥ म्लञ्चति । नुम्लञ्च । म्लञ्चितेत्यादि ।

लुङि 'जृस्तम्भ्व'त्यादिना वा ऽङनलोपे । अलुचत् । अनुञ्चीत् । अङ्-
विधौ भुचिभुच्योरेकतरोपादानेनापि अलुचदभ्लोर्चादिति सिद्धौ उभ-
योपादनमर्थभेदादिति केचित् । अपरे तूभयोपादानसामर्थ्याद् भुञ्चेर्न-
लोपो न भवतीति अलुञ्चदिति चतुर्थमपि रूपमाहुः । इदमुद्वाप्यम-
न्यतरोपादानेनापि रूपत्रयसिद्धेरन्यतरञ्चक्यमकर्तुमिति प्रतिपादित-
त्वात् । अनेकार्थत्वाद् धातूनामत्र विषये ऽर्थभेदो न प्रयोजक इति तत्र
कैयटे । भुचित्वा । सज्जति । 'धात्वादेः षः स'इति द्वितीयस्य सकारस्य
जश्चत्वेन शकारे तस्य 'भलां जश् भशी'ति जश्चत्वेन जकारः । ससज्ज ।
सज्जितेत्यादि । सिसज्जिषति । 'स्तौतिष्योरेवे'ति नियमादणायणत्व, 'हे-
तुमति चे'त्यत्र यदभिप्रायेषु सज्जतइति भाष्यप्रयोगादयमात्मनेपदपि,
अतो ऽस्यात्मनेपदं दूषयन्तो वर्तुमानत्वीरस्वाम्यादय एव दुष्टाः । अत्र
सश्चिमपि केचित्पठन्ति तमजिकोसश्चतेत्यादि च दृश्यते ॥ २०० ॥

गुञि अव्यक्ते शब्दे ॥ गुञ्जति । जुगुञ्ज । गुञ्जितेत्यादि । गुञ्जा ।
'गुरोश्च हल'इत्यकारः । गुञ्ज्यते । इदित्वाचलोपाभावः । अत्र स्वामी
अनिदिदित्येकइति स्वसूत्रे । सुधाकरस्तु अनिदित्पारायणेष्वपाठीत्,
लट्ये पुनरिदमविगीतमिति । शाकटायनस्तु द्वावपि पपाठ । गुञ्ज-
शब्दइति तुदादौ ॥ २०१ ॥

अर्च पूजायाम् ॥ अर्चति । आनर्च । अर्चितेत्यादि । अयं युजादौ
स्वरितित् पठिष्यति । तत एवार्चतीति सिद्धे क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वे
परस्मैपदार्थ इह पाठः । अयमात्मनेपदीति शाकटायनः, प्रयोजनं तु
तन्मते क्रियाफलस्याकर्तृगामित्वेपि तद् । यः पूर्णादुदचति अविरघ्नीमु-
दचन्त्वाप इत्यादिदर्शनात् । अञ्च इत्येकइत्याभरणोक्तं युक्तम् ॥ २०२ ॥

श्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे ॥ इहाव्यक्तशब्दोऽस्फुटशब्दोऽपशब्दश्च । उक्तं हि
पस्पशायां 'तस्माद्वाह्मणेन न श्लेच्छितवै नापभाषितवै श्लेच्छेह वा एष
यदप्रशब्द इति, न श्लेच्छितवाइत्यस्य पर्यायो नापभाषितवाइति कैयटे ।
श्लेच्छति । मिश्लेच्छ । श्लेच्छितेत्यादि । 'दीर्घात्'दीर्घाच्छकारे परतो

दीर्घस्य तुगिति तुक् 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्ये'ति सप्तमीनिर्देशे
 पूर्वस्य षष्ठौ प्रकल्प्येति दीर्घस्य तुगागमः । ननु 'तस्मादित्युत्तरस्ये'ति पञ्च-
 मीनिर्देशे उत्तरस्य षष्ठौ प्रकल्प्येत्युक्तत्वादित्थं चानवकाशया दीर्घादि-
 तिपञ्चम्या 'हे चे'त्यत्र सावकाशया क्वइति सप्तम्या एव षष्ठौ प्रकृति-
 र्युक्ता, ततश्च तुक्ः क्त्विन ककारात्परत्वे चत्त्वचत्त्वयोर्ज्ञेय्यतीति द्विवका-
 रकं रूपं स्यात् । नैष दोषः । यतः 'विभाषा सेनासुराच्छाये'ति निर्देशाल्लि-
 ङ्गान् पञ्चम्या एव षष्ठौ प्रकल्पयिष्यते । मिक्षेच्छति । मिक्षेच्छते ।
 मिक्षेच्छीति । मिक्षेष्टि । मिक्षेष्टः । मिक्षेच्छति, इत्यादि, भलि 'व्रश्वा'दिना
 षत्वे ण्यत्वं । सति । 'पठोः कः सीति' क्त्वे षत्वं, मिक्षेष्टि मिक्षेष्टम्
 इत्यत्र 'च्छो' शृङनुनासिके च 'च्छकारवकारयोर्ध्यासङ्ख्यं' शकारोऽठौ
 भवतोऽनुनासिकादौ प्रत्यये भलादौ च कृतीति च्छकारस्य शकारः ।
 अयं च 'क्रमश्च त्वि' 'च्छो'रिति निर्देशात्सतुक्कस्य । अन्त्यादेशस्तु न भवति
 नानयके ऽलोत्यस्य विधिरिति नडो डित्क्वणाद्वा, अन्त्यादेशे विश्व
 इत्यत्रानिगुपधत्वादेव गुणाप्रमङ्गात् किं क्त्विन । अत एव डित्त्वाच्छ्वोरि-
 ति निर्देशः मनुक्कस्येन्यपि ज्ञायते, ये तद्विधौ कृतीति नानुवर्त्तयन्ति तेषां
 भलादिमात्रे शकारे कृते तस्यैव 'व्रश्वा'दिना षत्वं द्रष्टव्यम् । अत्र मते तत्र
 क्वहणं व्यर्थं स्यात्, वृत्तिप्रदीपे तु क्वस्य शावादेश उक्तः, तुगभावस्त्वकृत-
 व्युहाः पाणिनीयाः, कृतमपि शास्त्रं निवर्त्तयन्तीति । स्मिष्टम् । 'तुभ्यस्वान्त-
 ध्वान्तलग्नसिष्टविरथफाण्टचाठानि मन्यमनस्तमः सक्ताविस्पृष्टस्वरानाया-
 सभृगेष्वि नि अविस्पृष्टार्थे निपातितः । अपशब्दे तु स्नेहितमिति भवति,
 अस्य शपि पाठो स्नेह्यतीति 'शपश्यनोर्नित्य'मिति नित्यनुमर्थः, शे हि
 विकल्पः स्यात्, स्वरे भेदः । शपि शपः पित्वाद् 'अनुदात्तौ सुप्पिता'विति
 अनुदात्तः, शस्नु प्रत्ययस्वरेणाद्युदात्तः । एवमीदृशमन्येषामपि धातूनां
 विकरणभेदे फलत्रयम् । अयञ्चुरादावपि ॥ २०३ ॥

लङ् लङ्गि लङ्गे ॥ लङ्गति । ललङ् । लङ्गितेत्यादि । 'हे
 च' इत्थस्य हे परनस्तुगिति तुक् । अलङ्गीदित्यत्रान्तरङ्गत्वान्पूर्वं तुकि
 अकारम्यालघुत्वाद् 'अतो हलादे'रिति वा वृद्धिर्न भवति । तथा ललङ्गे-

त्यादा'वत उपधाया' इति वृद्धिरनुपधात्वाच्च भवति । लाञ्छतीत्यादि पूर्ववत्, लालाञ्छतइत्यादाविदित्वाचलोपो न भवति । लाञ्छः । 'क्वि' बि ति सोपपदनिरूपदसाधारणे क्विपि तस्य लोपे 'च्छोः शूडि'त्यत्र द्विच्छकारनिर्देश एकः सतुक्को ऽपरः केवल इति न्यासपदमञ्जयादि-भूतत्वात् लान् लाशौ लाश इत्यादि भवति । च्छोरिति निर्देशः पूर्व वितुक्सतुक्कोः समाहारद्वन्द्वे पश्चाद् वकारेणेतरेतरयोगे द्विवचनयथा-सख्यपोरुपपत्तिः, 'द्वन्द्वान्नुदषहान्तादि'ति समासान्तः सौत्रत्वाच्च भव-ति । हरदत्तस्तु सतुक्छकारवकारयोः समाहारद्वन्द्वे पश्चाद् वितुक्छने-तरंतरयोग इति समासान्ताभावो द्विवचनोपपत्तिश्चेति । अत्र मते सतु-क्कस्यापि च्छकारस्योऽत् स्यादिति तदभावे यन्नः कर्तव्यः, एव च यङ्लु-क्यपि शत्वे लालाष्टि लालाष्ट इत्यादि पूर्ववद्भवति । शूडिधौ कडिद्व-हणानुवृत्तिपत्रे लालाष्टीत्यादौ व्रश्चादिसूत्रे क्यहणे षत्वम्, । तत्रापि पूर्ववत् केवलोपि को गृह्यते ॥ २०५ ॥

वाञ्छि इच्छायाम् ॥ वाञ्छतीत्यादि लाञ्छिवत् ॥ २०६ ॥

आञ्छि आयामे ॥ आञ्छति । आञ्छ । अत्र लिट्यभ्यासह्रस्वे 'अत आदे'रित्यत्र तपरकरण स्वाभाविकह्रस्वपरिग्रहार्थमिति न्यासकारहरद-त्तादिभिः प्रतिपादितत्वाद् दीर्घाभावाद् नुडभावे सवर्णदीर्घः । अन्ये तु तपरकरणं मुखमुखार्थमिति आनाञ्छेत्युदाहरन्तीति मैत्रेयः । आञ्छितेत्या-दि । आञ्चिच्छति । 'न न्द्रा' इति नकारवर्ज द्वितीयैकाच् द्विरुच्यते । आञ्छयति । आञ्चिच्छत् ॥ २०७ ॥

ह्रीच्छ लज्जायाम् ॥ ह्रीच्छति । जिह्रीच्छ । ह्रीच्छितेत्यादि श्लेच्छिवत् । ह्री लज्जायामिति जुहोत्यादौ ॥ २०८ ॥

हुर्क्ष कौटिल्ये ॥ इह कौटिल्यमपसरणमिति मैत्रेयस्य मतम् । हूर्क्षति । जुहूर्क्ष । हूर्क्षितेत्यादि । 'उपधायां चे'तीको दीर्घः, जुहूर्क्षति । जोहूर्क्षति । जोहोर्क्षति । जोहूर्क्षति । जोहोर्क्षति । जोहोर्क्षति । जोहोर्क्षति । जोहोर्क्षति । 'राल्लोप' इति रेफात्परयोः क्लोर्लोपः क्लौ भलादावनुनासिकादौ

प्रत्यये । अत्र मनुकस्य ह्रस्वाभावात् केवलो गृह्यत इति वृत्त्यादौ । ह्रूः । हुरी ।
 हुरः । 'राल्लोपः', तत्र पदत्वे च 'वोरुपधाया दीर्घ' इति रेफवकारान्तस्य
 धातोः पदस्योपधाया इको दीर्घ इति इको दीर्घः । हूर्णः । हूर्णवान् । 'आदि
 तश्चेत्य'निट् निष्ठायाम् । राल्लोपे 'रदाभ्या'मिति नत्वे 'रषाभ्या'मिति
 णत्वम् । भावादिकर्मणोस्तु 'विभाषा भावादिकर्मणो'रिति आदिता नि-
 ष्ठायाः पक्षे इद्विधानाद् हूर्णमनेन, हूर्कृतमनेनेत्यादि द्रष्टव्यम् ॥ २०९ ॥

मूर्कः मोहममुद्गाययोः ॥ मूर्कति । मूर्कित्वत् । विशेषस्त्वनिटो नि-
 ष्ठायां 'न ध्याख्यापृमूर्कमदा'मिति नत्वनिषेधः । मूर्तः । मूर्तवान् । मूर्तमने-
 नेत्यादि । मूर्कस्य सज्जाता, मूर्कितः । 'तदस्य सज्जातं तारकादिभ्य इतच्' ।
 तदिति प्रथमाममर्यात् सज्जातोपाधिकादस्येत्यर्थादितच् ॥ २१० ॥

स्फूर्कः विस्तृता ॥ स्फूर्कति । पुस्फूर्कृत्यादि पूर्ववत् । अभ्यासे
 स्त्रयः शेषः ॥ २११ ॥

युच्छ प्रमादे ॥ युच्छति । युयुच्छ । युच्छितेत्यादि स्नेच्छादिवत् ।
 अन्तरङ्गात्वात्तुकि अलघूपधन्वाच्च गुणः । 'वार्णादाङ्गं बलीय'इत्याङ्गस्य
 बलीयस्त्व यत्राङ्गवार्णयोर्युगपत्प्राप्तिः समानाश्रयत्व च तत्रेति, इह
 वैपरीत्याच भवति ॥ २१२ ॥

उच्छि उच्छे ॥ उच्छः कणश आदानं कणिशार्द्रजनं शिलमिति
 यादवप्रकाशः । एवं विज्ञानेश्वरोपि । 'उच्छति' सूत्रे उच्छति उच्चि-
 नातीत्यर्थे इति न्यासो बदराण्युच्छति वादरिकः । श्यामाक्रानुच्छति
 श्यामाकिक् इत्युदाहरतो वृत्तिकारस्यापि व्यापित्वेनोच्चयनार्थे इत्यभि-
 प्रायो लक्ष्यते । उच्छति । उच्छा चकार । उच्छितेत्यादि । इदित्वाद् उच्छयते
 इत्यादौ नलोपो न भवति । उच्चिच्छिषति । 'न न्द्रा'इति छादेद्विर्वचनम-
 भ्यासस्य चत्वं ह्रस्वे 'छे चे'ति तुकि हलादिशेषो न भवति, अवयवभक्तत्वे-
 नाभ्यामभक्तत्वाभावात् । न च स्वङ्गुलिर्देवदत्त इत्यादिवत् इहावयवावय-
 वस्य समुदायावयवत्वम् । यतः 'छे चे'त्यात्रागमिनो भावादेव पूर्वसूत्रात्
 ह्रस्वस्येत्यनुवृत्तिसिद्धावपि चकारेण तदनुकृष्यते, पूर्वसूत्रे ह्रस्वान्तस्येति स्थि-
 तम् । इह तु तथा माभूदिति हि यवः । उच्छयति । मा भवानुच्चिच्छत् । अयं

तुदादौ पठिष्यते । स पाठ उच्छती उच्छन्तीति शीनद्वोर्नुम्बिकल्पार्थो ऽव-
 श्याभ्युपगन्तव्य इति इह पाठः किमर्थ इति चेत् स्वरार्थः । उच्छतीत्यत्र शपि
 'अनुदात्तो सुप्पिता'विति शप्प्रिपोरनुदात्तत्वेन 'धातोः' । धातोरेतन्त उदात्त
 इत्युकारस्योदात्तत्वे 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित' इति शबकारस्य स्वरितत्वे
 'स्वरितात् सहितायामनुदात्ताना'मिति विकारस्य प्रचयत्वे अचः क्रमेणोदा-
 त्तस्वरितप्रचया भवन्ति, शे तु आद्युदात्तत्वे प्रत्ययान्वेनाकारस्योदात्तत्वे
 'अनुदात्त पदमेकवर्ज' यत्र पदे उदात्तः स्वरितो वा विधीयते तत्र तं वर्ज-
 यित्वा ऽन्यदनुदात्तमिति धातोरेष्यनुदात्तत्वे पूर्ववत्तिपः स्वरितत्वे ऽचोनु-
 दात्तोदात्तस्वरिता भवन्ति । विपर्ययः कस्मात् भवति धातोरेतोदात्तत्वे
 शस्यानुदात्तत्वमिति यतोऽयं स्वरभेदो न स्यात् । नैतदस्ति । सति शिष्ट-
 स्वरो बलीयानिति यस्मिन्नसति यः शिष्यते स बलीयानित्यर्थः । नन्व-
 न्यत्र विकारणेभ्य इत्यपि तत्र पठ्यते । नायं पर्युदासो धातुस्वरविषयः । किं
 तु लसार्वधातुकस्वरविषयः । लादेशस्य सार्वधातुकस्य प्रत्ययाद्युदात्तत्वं
 सति शिष्टोपि विकरणस्वरो न बाधतइति, अस्य च ज्ञापक तादृशमेव ।
 तथाहि । 'तास्यनुदात्तेन्द्रिदुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमन्विडो'रिति
 तासेः परस्य सार्वधातुकस्य सति शिष्टस्वरेणानुदात्तत्वेपि सिद्धे पुनर्विधा-
 नाज् ज्ञायतेऽन्यत्र विकरणेभ्य इति तच्च लसार्वधातुकविषयम् ॥ २१३ ॥

उच्छी विवासे ॥ समाप्तिर्विवास इति तरङ्गिण्यां, विपूर्वश्चायं
 प्रायः प्रयुज्यतइति पुरुषकारे । व्युच्छति । व्युच्छं चकार । व्युच्छितेत्या-
 दि । आम्बिधात्रागमनिमिना गुरुमत्ता गृह्यते, अत एवानृच्छ इति प्रति-
 षेधः । उचिच्छिषति । अत्र द्विवर्चने तुकि श्चुत्वस्य पूर्वत्रासिद्धत्वात्
 हलादिशेषेण तकारस्य शेषे प्राप्ते 'खपूर्वाः खय इति वक्तव्यं' शपूर्वाः
 खय इत्यत्र शर्ग्रहणमपनीय खर्ग्रहणं कर्तव्यमित्यर्थः । तेन खपूर्वाः खयः
 शिष्यन्ते अन्ये निवर्त्तन्तइति तकारस्य निवृत्तौ ककारस्य 'अभ्यासे चर्च'ति
 चर्त्वं रूपम् । अभ्यासचर्त्वंस्य तुक्यसिद्धत्वादुकारस्य पुनस्तुङ्ग भवति
 अभ्यासजश्चर्त्वंमेवतुकोः सिद्ध वक्तव्यमिति चर्त्वंस्य सिद्धत्वात् ।
 अत्र पूर्वत्रासिद्धीयमद्विवर्चनइति अनाश्रित्याक्तं खपूर्वाः खय इति । यदा-

यमादेशविकल्पः, यलि तु भवत्येव यतस्तत्रेद्विकल्पित इति । ननु विव्यतु-
 रित्यादौ द्विर्वचनान्पूर्वं परत्वादियङि 'द्विर्वचनेचीति' तस्य द्विर्वचने कर्त्तव्ये
 स्यानिवत्त्वादुत्तरखण्डे जगमनुरित्यादिवत् आदेशरूपमेवावतिष्ठेति कुतो
 यणः प्रसङ्गः । उच्यते । द्विर्वचनार्थमियङि निवृत्ते पुनरयमिच्छतावश्य प्रव-
 र्त्तयितव्यं, तत्र दशाया 'मसिद्ववदत्रे' तीयङोऽसिद्वत्वादङ्गस्यानेकाच्त्वा-
 दपवादत्वेन वा यणेषु भविष्यतीति इट किटेत्यत्रायमर्थः प्रपञ्चयिष्यते ।
 अजिता । वेता । अजिष्यति । वेप्यति । अजतु । आजत् । आशिषि । वीयात् ।
 वलाद्याट्टधातुक्त्वाचित्यं वीभावः । आजीत् । अवैवीत् । आजिष्यत् ।
 अवेप्यत् । अजिजिपति । विवीपति । 'इको भलि'ति सनः कित्वाव
 गुणः । आट्टधातुकइत्यस्य विषयसप्तमीत्वात् प्रागेव प्रत्ययोत्पत्तौ वीभावे
 हलादित्वाद्यङि वेवीयते । नात्र यङ्लुगस्ति । यतो लुका यडाट्टधातुकस्य
 विषयत्वापहारावाट्टधातुकाभिव्यक्तिरिति वीभावस्य नैव प्रसङ्गः, उक्तञ्चैव
 'न लुमताङ्गस्ये'त्यत्र कैयटे, न लुमता यस्मिन्निति चेत् हनिणिङादेशा न
 सिद्ध्यन्तीति भाष्यवार्तिकयोक्तं 'लुङि चे'त्यादौ विषयसप्तम्याश्रयेनादे-
 शाः सेत्स्यन्तीत्याशङ्क्य लुका लुङो विषयत्वापहाराद्विषयसप्तम्याश्रयेण्य-
 सिद्विरिति । वाययति, अवीव्रयत्, कर्मदौ वीयतइत्यादि, स्यादिषु स्यसिच्-
 सीयुत्तामिषु वाचिण्वदिङिति वृद्धाययोः । वायिष्यते । अवायिष्यत । अवा-
 यिष्यथ । अवायिष्यताम् । वायिषीष्ट । अवायिष्टेत्यादि । चिण्वदिटोऽभावे
 वेप्यते, अवेप्यत, अवेष्ट । वेपीष्ट, वेनेत्यादि । अत्र यत्ते वलाद्याट्टधातुक-
 सद्भावात्पक्षे आदेशाभावे अजिष्यते । अजिष्यत । अजिषाताम् । अजि-
 षीष्ट । अजिनेत्यादि, इति त्रैरूप्यम् । लिटि ध्वमि चिण्वत्पक्षे वृद्धाययादेश-
 योः 'विभाषेष्ट' इति मूर्धन्या विकल्पेन, अन्यदा 'त्वणः वीध्व'मिति नित्यो
 आदेशाभावश्चेति चानूरूप्यम् । वायिषीध्वम् । वायिषीद्वम् । वेपीद्वम् । अ-
 जिषीध्वमिति । लुङि तु 'धि चे'ति सिचो लोपे चिण्वदिटि व्यादेशस्य
 वृद्धाययोर्मूर्धन्यस्य पूर्ववद्विकल्पः । अचिण्वत्पक्षे तु नित्यः, आदेशाभावे च
 सिञ्जलोपे इदमङ्गमिण्वन्तमिति नित्यो मूर्धन्यः । अवायिध्वम् । अवायिद्वम् ।
 अवेद्वम् । अजिद्वमिति चानूरूप्यम् । येषां तु दर्शनमिणः वीध्वमित्यत्रेण-

ग्रहणेनेटो न ग्रहणमिति तेषां मूर्द्धन्याभावात् लिङ्बदेव रूपाणि । कर्मकर्त्तरि तशब्दे 'अचः कर्मकर्त्तरौ'ति चिणो विकल्पनात्यक्ते सिचि चिण्वदिति च अवायि । अवेष्ट । अवायिष्टेति त्रैरूप्यम् । अन्यत् सर्वं कर्मवत्, संभवति च क्षेपणार्थस्य कर्मकर्त्ता । प्रवयणम् । प्राजनम् । 'वा यावि'ति वीभावविकल्पः, 'कृत्यच' इति विभाषा णत्वम् । समजः पशूनां सघ इत्यर्थः, उदजः तेषामेव प्रेरणम् । 'समुदोरजःपशुष्वित्यप् । धात्वर्थस्यापशुविषयत्वे समाजः । उदाज इति घजेव । अघजपोरिति पर्युदासाच्च वीभावः । 'अजिन्नज्योश्चे'ति अकुत्वम् । समज्या । 'संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदपुञ्जशीङ्भृजिण' इति स्त्रियां भावादौ क्यप् । 'प्रतिषेधे क्यप् उपसंख्यानमि'ति वीभावनिषेधः । प्रवेयम् । आर्द्धधातुकइत्यस्य विषयसप्तमीत्वात् प्रागेव वीभावे 'अचो यत्', अन्यथा एयति वृद्धौ प्रवेयमिति स्यात् । वातमृजा मृगाः । खश्प्रकरणे 'वानशुनीनिलशर्धष्वजधेटुदजहानिभ्य उपसंख्यानमि'ति खश् । अस्य शित्वेन सार्वधातुकत्वाच्च वीभावः । अजिरम् । 'अजिराशिशिरे'ति निपातितः । वेणुः । 'अजितृरीभ्यो निदि'ति णुः । वेणुकीयम् । 'नडादीनां कुक् चे'ति चातुरर्थिकशब्दः कुगागमश्च । आजिः । 'अज्यतिभ्यां चे'तीणि वृद्धिः, 'पादस्य पदाज्याती'ति निर्देशाच्च वीभावः । अच्, अजा । अजादिपाठाट् । अत एव वीभावाभावः । अजानां समूह आजिकम् । 'गोत्रोक्तोष्टोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजानुजि'ति वुज् ॥ २२८ ॥

तेज पालने ॥ तेजति । तितेज । तेजितेत्यादि । तेजः । 'असुन्तिज' इति नित्यासुन्नतः । क्षमार्थाये । तिज निशानइति चुरादौ ॥ २२९ ॥

खज मन्ये ॥ खजति । चखाज । खजितेत्यादि । अखजीत् अखाजीत् । 'अतो हलादे'रिति वा वृद्धिः । खजाको मन्यः । 'खजेराक' इत्याकः । अत्र के चित् कज मदइत्यपि पठन्ति ॥ २३० ॥

खजि गतिवैकल्ये ॥ खज्जति । चखज्ज । खज्जितेत्यादि । इदित्वाच्चोपाभावः ॥ २३१ ॥

एजृ कम्पने ॥ एजति । एजां चकार । एजिता । एजिजिषति ।
एजयति । मा भवानेजिजन् । अदित्वात्रोपधाह्रस्वः । एजतिदीर्घोऽप्यौ
गतः ॥ २३१ ॥

टुआम्फुजा वज्रनिघाणे ॥ टुशब्दस्य 'आदिर्जिटुडव' इतीच्छे लोपः ।
'द्वितो ऽयुर्जित्ययुचि स्फूर्जयुरिति । ओकार 'आदितश्चे'ति निष्ठान-
त्वार्थः । स्फूर्णवान् । 'आदितश्चे'त्यनिटत्वम् । ननु निष्ठानत्वार्थादोदि-
त्कारणमामर्श्यादेवानिटत्व मिदृम् । एवं तर्हि 'विभाषा भावादिकर्मणो'-
रिति इद्विकत्वार्थमादित्वम् । स्फूर्णमनेन स्फूर्जितमनेनेत्यादि । स्फूर्जति ।
पुस्फूर्ज । स्फूर्जन्ता । पुस्फूर्जिषति । पोस्फूर्ज्यते । पोस्फूर्क्ति । अपोस्फूर्क् ।
स्फूर्जयति । अपुस्फूर्जन् । अस्य दीर्घादेशे लोपधाया चे'ति दीर्घस्यानि-
त्यत्वज्ञापनात् । मुहंति हुहंति स्फुहंतीत्यपि भवतीति के चिदिति मैत्रे-
यप्रतिपादने ॥ २३३ ॥

ति तये ॥ अनिट् स्वरान्त इत्ययमनिट्, इह पाठस्तु उत्तरधातुसा-
म्यादिति मैत्रेये प्रतिपादितम् । तयति । चित्ताय । चित्तियतुः । चित्तेय ।
चित्तिमिथ । चित्तिमिव । क्वादिनियमादिट् थल्य'वस्तास्वदि'ति निषेधाद्
भारद्वाजनियमाच्च विकल्पितः । अजादा'वचि शुधात्वि'त्यादिनेयङ्, 'एर-
नेकाच' इति यण् तु सयोगपूर्वत्वाच्च भवति । तेना । तेप्यति । तयतु ।
अतयत् । तयेत् । आशिषि क्षीयात् । 'अकृत्सार्वधातुकयो'रिति दीर्घः ।
अक्षीपीत् । सिचि वृद्धिः । कर्मोद्वा क्षीयतइत्यादि वीवत् । अन्तर्भाव-
तण्यर्थाय सकर्मकः । न क्षीयतइत्यन्तरमिति भाष्ये दर्शनात् । चित्तीषति ।
'अज्जनगमा सनी'ति भलादौ सनि दीर्घः । चेक्षीयते । चेक्षयीति । 'सा-
र्वधानुकार्दृधातुकयोरि नि गुण' । 'नाभ्यस्तस्ये'ति निषेधो लघूपधगुणस्य ।
क्षीणः । क्षीणवान् । क्षीणमिदम् । अस्य ध्रौव्यार्थत्वात् क्त्वाधिकरणे क्तः ।
'अधिकरणवाचिनश्चेति' तद्व्यागे कर्तरि षष्ठी, 'निष्ठायामण्यदर्थ'इति
क्षियो दीर्घः, एयदर्थो भावकर्मणी, 'क्षीयो दीर्घादि'ति निष्ठानत्वम् ।
एयदर्थं तु क्षितमनेन क्षितोयमनेन क्षीणस्तपस्वी । क्षीणो जात्मः । क्षित
इति, 'वाक्लोश दैन्ययो'रिति क्षियो निष्ठायां वा दीर्घः । पूर्ववद्दीर्घपक्षे

नत्वम् । क्षेतुं शक्यः क्षयः । 'क्षय्यज्यौ शक्यार्थे' इति निपातनादया-
देशो भवति । प्रक्षीय । 'क्षिय' इति ल्यपि दीर्घः । क्षी निवासगत्योरिति
तुदादौ । क्षिप् हिंसायामिति कथादौ । क्षिणु हिंसायामिति तनादौ ॥ २३३ ॥

क्षीज अव्यक्ते शब्दे ॥ क्षीजति । चिक्षीज । क्षीजिता । चिक्षीजिष-
ति । चेक्षीज्यते । चेक्षीक्ति । क्षीजयति । अचिक्षीजत् । 'क्षौ चक्षी'ति
ह्रस्वः । कूजिना सहाय न पठितोऽप्रसिद्धत्वात् ॥ २३४ ॥

लज लजि भर्त्सने ॥

लाज लाजि भर्त्सने च ॥ चकारो भिन्नक्रमः । एतावपि भर्त्सन-
इति मैत्रेयः । भर्त्सनग्रहणं भर्त्सनस्याप्युपलक्षणमिति पुरुकारः । लज-
ति । ललाज । लेजतुः । लजिता । अलजीत्, अलाजीत् । 'अतो हला-
दे'रिति वा वृद्धिः । लिलजिषति । लालज्यते । लालक्ति । लाजयति ।
अलीलजत् । लज्जति । ललज्ज । लज्जिता । लिलज्जिषति । लालज्ज-
ज्यते । इदित्वान्नलोपाभावः । लालङ्कि । लज्जयति । अललज्जत् ।
एवं लाजति लाज्जतीत्यादि । लाजः । ओलजी ओलस्जी व्रीडनइति
तुदादौ । लज प्रकाशनइति कथादौ । लजिति दण्डके भाषार्थः ॥ २३८ ॥

जज जजि युद्धे ॥ जजति । लजिवत् । जङ्गलम् । बाहुलकात्
कलप्रत्ययः कुत्व च । कुरुजङ्गलेषु भव कौरुजाङ्गलम्, कौरुजङ्गलम् ।
'तत्र भव' इत्यण् । 'जङ्गलश्चेन्नलज्जान्तस्य विभाषितमुत्तरमि'ति पूर्वप-
दस्य नित्या वृद्धिः, उत्तरपदस्य तु वा ॥ २४० ॥

तुज हिंसायाम् ॥ तोजति । तुतोज । तोजिता । तुतोजिषति ।
तुतुजिषति । तुजित्वा । तोजित्वा । 'रलोव्युपधादि'ति कित्त्वविकल्पः ।
तोतुज्यते । तोतोक्ति । तोजयति । अतूतुजत् । भावादिकर्मणो 'रुदुपधा-
दि'ति कित्त्वविकल्पनात् तुजितमनेन तोजितमनेनेत्यादि ॥ २४१ ॥

तुजि पालने ॥ तुज्जति । तुतुज्ज । तुज्जिता तुतुज्जिषति । तो-
तुज्ज्यते । तोतुङ्कि । अतोतुन् । तुज्जयति । अतुतुज्जत् । तुङ्गः । वार्तिकमते
न्यङ्गादित्वात् कुत्वम् । भाषार्थाय युजादौ ॥ २४२ ॥

गज गजि एज एजि मुज मुजि शब्दार्थाः ॥ गजति । गज्जतीत्यादि । नज्जतिवत् । जगज्जुर्नित्यादावादेशादित्वाच्चेत्वाभ्यासलोपौ । गजः । अच् । गज्जा तु मदिराशृङ्गम् । गर्जति । जगर्ज । गर्जिता । जिगर्जिषति । जरीएज्ज्यने । जर्जरीतीत्यादि पूर्ववत् । गर्जयति । अजगर्जत् । अजीएजत् । 'उच्चेत्' । एज्जनि । जएज्ज । एज्जिता । जिएज्जिषति । जरीएज्ज्यने । 'रीएत्वन्' इति रीक् । जरिएज्जरीतीत्यादि । मोजति । मुज्जनीत्यादि । तुज्जिवत् । मृज्मृजीति स्वामिचन्द्रौ । गज मदने च । अथ चुरादावपि शब्दार्थः । गर्ज शब्दइत्यथे ॥ २४८ ॥

वज व्रज गतौ ॥ वजति । ववाज । ववजतुः । वजितेत्यादि । 'न शमददवादिगुणे'त्येत्वाभ्यासलोपनिषेधः । अवजीत् । अवाजीत् । 'अतो हलादेरिति वा वृद्धिः । वाजः । वाज्यम् । घञ्ण्यतौ । 'अजिन्न-ज्योश्चे'ति चकारेण कुत्वनिषेधः । व्रजतीत्यादि । लुङि 'वदव्रजे'ति नित्या वृद्धिः । अव्राजीदिति । व्रज्या । 'व्रजयजोभावे क्यबि'ति क्यप् । व्रजः । 'गोचरसद्वरवहव्रजव्रजपणनिगमाश्चे'ति अधिकरणे घञन्तो निपातितः । परिव्राट् । 'परौ व्रजेःषः पदान्त इति क्विपि षत्वं दीर्घश्च । एतौ चुरादावपि ॥ शुचादय उदात्ता उदात्ततः निवर्जम् ॥ २५० ॥

अथ क्रमेण प्राप्तानात्मनेपदिनष्टवर्गीयान्तानाह ॥

अट् अतिक्रमहिंसयोः ॥ इतः शाठ्यन्ता उदात्ता अनुदात्ततः । दोष-धायं स्मर्यन् इति मैत्रेयः । तोपधायमिति 'ष्टुना ष्टुरित्यत्र न्यासवृत्तिप्र-दीपकारादयः । स्वाम्यपि क्विपि अदिति तकारश्रवणार्थं तोपधत्वमुक्त्वा दोषधत्वमप्याह । मैत्रेयस्तु स्वमते दोषधत्वमुक्त्वा तोपधत्व मतान्तर-आह । अहु इति डान्तपाठः प्रकरणविरोधादुपेक्ष्यः । अटते । आनट्टे । अटताम् । आट्टत । अट्टेत । आशिषि । अट्टिपीष्ट । मा भवानट्टिष्ट । आट्टिष्यत् । ष्टुत्व सर्वत्र, दोषधत्वे वत्त्वं अटिष्टिपते । तोपधत्वे 'पूर्वत्रा-मिष्टीयमट्टिर्वचन' इति ष्टुत्वस्यासिद्धत्वाभावाद् द्विटकारस्य सनन्तस्य द्विर्वचने हलादिशेषे रूपम् । यदापि प्राणिणिषतीत्यादौ णत्वे कृते तस्यामिष्टत्वाभावान्तरणस्य द्विर्वचनेनैवेष्टिसिद्धौ 'उभौ साभ्यासस्ये'ति

पुनर्लुत्वविधानात् 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विवचन' इत्यस्यानित्यत्वज्ञापनात् लु-
त्वस्यासिद्धत्वात् न न तदापि 'शपूर्वा स्वय' इति टकार-
स्यैव शेषादिदमेव रूपम् । एवं च पुरुषकारादिषु अतिट्टिपतीति तका-
रस्य शेषेणोदाहरणप्रदर्शनं चिन्त्यम् । दोषधत्वे तु 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्वि-
वचन' इत्यस्य द्विवचनविषयत्वाच्च न्द्रा' इति द्विवचननिषेधे प्रयुक्त्यभावात्
लुत्वस्यासिद्धत्वात् दकारवर्जं द्विरुच्यते, दकारस्य पुनर्लुत्वे चत्वं च
अट्टिपतइति भाव्यम् । अट्टयति । आट्टिटत् । दोषधत्वे तु आट्टिटत् ।
अट्टा । 'गुरोश्चे'त्यकारः । अट्टां करोति । अट्टायते । अट्टायेत्यादिना
क्यप् । अयमनादरे चुरादिः ॥ २५१ ॥

वेष्ट वेष्टने ॥ वेष्टते । विवेष्टे । वेष्टिता । विवेष्टिषते । वेवेष्टते ।
वेवेष्टीति । वेवेष्टि । वेवेष्टः । लङि अवेवेष्ट । वेष्टयति । अविवेष्टत् ।
अववेष्टत् 'विभाषा वेष्टिचेष्टोरिति चङ्परं णावभ्यासस्य पठे ऽकारः ।
कर्मादौ वेष्टतइत्यादि ॥ २५२ ॥

चेष्ट चेष्टायाम् ॥ वेष्टिवत्, अकर्मकस्त्वयम् ॥ २५३

गोष्ट लोष्ट सघाते ॥ गोष्टते । जुगोष्टे । गोष्टिता । लोष्टते ।
लुलोष्टे । लोष्टितेत्यादि, वेष्टिवत् ॥ २५४ ॥

घट्ट चलने ॥ घट्टते । जघट्टे । घट्टितेत्यादि । अयं चुरादा-
वपि ॥ २५६ ॥

स्फुट विकसने ॥ स्फोटते । पुस्फुटे । स्फोटितेत्यादि । पुस्फुटि-
षते । पुस्फोटिषते । स्फुटित्वा । स्फोटित्वा । 'रलो व्युपधादिति
क्त्विक्कल्पः । पोस्फुट्यते, पोस्फुटीति । पोस्फोटि । अपोस्फोट ।
स्फोटयति । अपुस्फुटत् । अयं तुदादावपि, विशरण्याद्यां परस्मैपदेषु,
भेदनार्थश्चुरादौ ॥ २५७ ॥

अटि गतौ ॥ अण्टते । आनण्टे । अण्टिता । अण्टिटिषते ।
अण्टयति । आण्टिटत् । 'न न्द्रा' इति नवर्जं द्विरुच्यते ॥ २५८ ॥

वाटि एकचर्यायाम् ॥ एकचर्या सहायगमनम् । वाटते । वावण्टे ।
वावण्टिता । विवाण्टिषते वावण्टीति । वावण्टि । लुत्वम् । चत्वंम् । लोटि

नेट्टित्वे णुत्वे जशत्वे वावण्डि । लडि अवावन् । वण्डयति । अवव-
ण्टत् । अयमनिदिद् स्यात्यर्थः परस्मैपदिषु ॥ २५९ ॥

मठि कठि शोके ॥ इह शोक आध्यानम् । मातुर्मण्डते उत्कण्ठ-
तइत्यर्थः । 'अधीगर्थं ति कर्मणि शेषे षष्ठी । मठ मदनवासयोः, कठ
कृच्छ्रजीवनइत्यये परस्मैपदिष्वनिदिता । कठि शोकइतीदिद् चुरा-
दौ ॥ २६१ ॥

मुठि पालने ॥ मुण्डतइत्यादि ॥ २६२ ॥

हेठ विवाधायाम् ॥ अमु परस्मैपदिष्वपि के चित् पठन्ति ।
विवाधन शाठम् । हेठते । जिहेठे । हेठिता । इत्यादि, हेठयति ।
अर्जाहिटन् अजिहेटन् । 'काण्यादीना वे'ति णौ चड्युपधाया ह्रस्व-
विकल्पः । काणेरणेन्तया आणेर्भाणेर्हेठेर्लुठेरपीति ण्यन्तस्य भाष्यकारेण
काण्यादित्वं प्रदर्शितम् ॥

बोधिन्यासकृता लोठिलीपिर्वाणिश्च व्हायिना ।

सहिताः पूर्वमुक्ताश्च काण्यादौ परिकीर्तिताः ॥

दुर्गश्चाणि च काण्यादि मन्यन्ते शाकटायनः ।

लोठि तदेव मैत्रेयो धातवो द्वादश स्मृताः ॥ २६३ ॥

एठ च ॥ विपूर्वायमिति स्वामिकाश्यपौ । मैत्रेयादयस्तु केवलमे-
वे'द्राजहुः । एठने । एठाचक्रे । एठिता । एठिठिपते । एठयति । मा भवा-
निठिटत् । द्विर्वचनात् पूर्वमुपधाह्रस्व इत्युक्तम् ॥ २६४ ॥

हिडि गत्यनादरयोः ॥ हिण्डते । जिहिण्डे । हिण्डिता । जिहि-
ण्डिपते । जेहिण्डयते । जेहिण्डि । अजेहिन् । अजिहिण्डत् ॥ २६५ ॥

हुडि सघाते ॥ हुण्डते । जुहुण्डे । हुण्डितेत्यादि पूर्ववत् ।
अत्र काश्यपः । आर्यास्तु न पठन्ति । द्रविडास्तु पठन्तीति । भाष्यादौ-
तु हुण्डेन्यविगीतमुदाह्रियते ॥ २६६ ॥

कुडि दाहे ॥ कुण्डनइत्यादि । कुण्डः । कुण्डम् । अच् । स्त्रियां
कुण्डी । 'जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद्

त्यमत्रावपनाकृत्रिमः श्रान्तस्यौन्ययोगानाच्छादनायोविचारमैयुनेच्छाके-
विशेषु' इति अत्रे डीष् । अन्यत्र कुण्डा । वैकल्याणार्थेव पठिष्यते,
क्षणार्थश्चुरादौ ॥ २६७ ॥

वडि विभाजने ॥

मडि च ॥ अत्र स्वामी वडि विभाजने, मडि चेति पृथक् सूत्रणा-
र्थान्तरेण । नन्दी तु वडि विभाजने, मडि वेष्टनइति भङ्क्त्वा पठ-
ति । वण्डते । वण्डे । वण्डता । मण्डते । ममण्डे । मण्डिते-
यादि । मण्डकः । 'शरिमण्डभ्यामूकणि'त्युक्त्वा । कूपमण्डकः । उदपान-
ण्डकः । कच्छमण्डकः 'पात्रेसमितादयश्चे'ति क्षेपे सप्तमीतत्पुरुषः ।
पश्च कूपे मण्डक इवेत्यदृष्टविस्तारताद्वयगमात् । 'क्रुधमण्डार्थेभ्य-
वे'ति युजिधौ भूषणार्थ एव वृत्तौ उदाहृतः । तस्यानुदात्तेत इति युचः
सदृत्वाच त्वस्य युज् नेतीति । मण्डि भूषायामित्यये परस्मैपदिषु, शौ-
र्षे च ॥ २६९ ॥

भडि परिभाषणे ॥ परिहास इति देवः । परितो भाषणं परिभाष-
मिति स्वाम्यादयः । यः सनिन्द उपालम्भस्तत्र स्यात्परिभाषणमिति
गण्डुः । भण्डतइत्यादि । भण्डिलो दूतः । 'सलिकल्पनिमहिभडिभ-
डी'त्यादिना इलच् । कल्याणार्थश्चुरादौ ॥ २७० ॥

पिडि सघाते ॥ पिण्डतइत्यादि । पिण्डिलो माणवकः । पूर्व-
दिलच् । चुरादावप्ययम् ॥ २७१ ॥

मुडि मार्जने ॥ शुद्धिन्यग्भावौ मार्जनम् । मुण्डतइत्यादि ।
ण्डनार्थः परस्मैपदिषु ॥ २७२ ॥

तुडि तोडने ॥ तोडनं दारणं हिंसनं च । तुण्डनइत्यादि । तुण्डिः ।
नि'तीन्प्रत्ययो नाभिवृद्धौ । सास्यास्तीति तुण्डिलः । 'तुण्डादिभ्य इल-
च्'त्यत्र स्वाङ्गाद् वृद्धाविति गणसूत्रेण वृद्धौ वृत्तात्स्वाङ्गादस्मादिलच् ।
ण्डिल एव तुण्डिभः । 'तुण्डिवलिवटेर्भ', इति मत्वर्थीयो भः । तुण्डिलो
हुभाषी । 'सलिकल्पनी'त्यादिनेलच् । अयमनिदित्परस्मैपदिषु ॥ २७३ ॥

हुडि वरणे ॥ वरणं स्वीकारः । हरणमिति मैत्रेयः । हुण्डते ।
जुहुण्डे । हुण्डनेत्यादि । स्फुडि विकसनइत्येके पठन्ति ॥ २७४ ॥

चडि कोपे ॥ चण्डतइत्यादि । चण्डनः । 'क्रुधमण्डे'ति वा 'अनुदा-
त्तेत'इति वा युच् । चण्डालः । 'चण्डपतिभ्यामालजि'त्यालच् । चण्डाल-
स्यापत्य, चाण्डालकिः । अत इजि 'सुधातुरकड् च' 'व्यासवरुडनिषादच-
ण्डालजिम्बाना'मित्यकडादेशोन्त्यस्य । चाण्डालीति शार्ङ्गरवाद्रित्वान्
डीनि नद्युनादिति सूत्रप्रकरणे 'कुनानलकुटकर्माख्यासवरुडनिषादच-
ण्डालमित्रामित्रेभ्यश्चन्दस्युपसख्यान'मिति उक्तत्वाच्छान्दसः । चण्डालः ।
चण्डीति 'कृदिकारादक्तिन'इति डीप् । अय चुरादौ च ॥ २७५ ॥

शडि रुजाया सघाते च ॥ तालज्योष्मादिः । शण्डतइत्यादि ।
शण्डः, अमरपुरोहितः । शण्डिलः तीर्यमृषिश्च । 'सलिकल्पनी' त्यादिने-
लच् ॥ २७६ ॥

तडि ताडने ॥ तण्डतइत्यादि । तण्डः । अच् । वतण्डः । षष्टि
भागुरिल्लोपमवाप्योरुपमर्गयोरित्युपसर्गस्याल्लोपः । वतण्डस्य गोत्रा-
पत्य, वातण्ड्यः । वातण्डः । गर्गादिभ्यो यज्, 'शिवादिभ्योणि'ति
यज्येयौ । यदा त्विदमपत्यमाङ्गिरसं भवति तदा 'वतण्डाच्चे'ति शिवाद्यण
बाधित्वा यजेव, अपत्ये तु स्त्रीलिङ्गे 'लुक् स्त्रिया'मिति लुक् । 'शार्ङ्गरवाद्य
त्रो डीनि'ति डीना वतण्डी । अनाङ्गिरसे तु लुगभावात् वातण्डायनी ।
'प्राचां ऋ तद्धित' इति यजन्तात् ऋः, कस्यायनादेशः । षित्करणसाम-
र्थ्यात् स्वार्थे डीप् । ऋप्रत्ययाभावे 'यजश्चे'ति डीप् 'यस्येति चे'त्यल्लोपे
'आपत्यस्य च तद्धितेनाति' आपत्ययकारस्यानकारादौ भसज्जानिमित्ते तद्धि-
तईति च परे लोपे वातण्डी । अनातीति वचनात् वातण्डायनीत्यत्र
यलोपो न भवति । वितण्डा, तण्डुला । लुठितनितण्डिभ्य उलजि'त्यु-
लच् ॥ २७७ ॥

पडि गतौ ॥ पण्डते । पण्डितः । गोष्ठेपण्डितः । 'पात्रेसमिताद-
यश्चे'ति स्त्रेपे सप्तमीतत्पुरुषः । तत्रैव पाठादलुक्, गोष्ठेव पण्डितो न
पदमीति लेपावगतिः । पण्डः । अच् । पण्तेर्वा 'अमन्ताडुः' । पण्डस्या-

पत्य, पाण्डारः । आरुगुदीचा मित्यत्र रकापि गोधार इति सिद्धे आरुग-
चनादन्यत्रापि भवतीति वृत्तावुक्तम् । नाशार्थश्चुरादौ ॥ २७८ ॥

कण्ड मदे ॥ कण्डतइत्यादि । भेदने चुरादिः । अनिदिदिहैव ।
अदादौ च परस्मैपदी ॥ २७९ ॥

खडि मन्ये ॥ खुडीत्यप्येके पठन्ति । खण्डते । खण्डः । खडि
भेदने चुरादिः ॥ २८० ॥

हेडु होडु अनादरे ॥ हेडते । जिहेडे । हेडिता । जिहेडिषते ।
जेहेडते । जेहेडि । हेडयति । अजिहेडत् । अदिस्वान्नोपधाद्भवः । एवं
होडते । जुहोडइत्यादि । होडः । पचाद्यच् । होडइवाचरति । होडते ।
'आचारेऽवगल्भक्कीबहोडेभ्यः क्तिञ्चेति' क्तिपि 'सनाद्यन्ता' इति धातुत्वे
लादयः । होडादीनामकारस्यानुदात्तत्वानुनासिकत्वयोः प्रतिज्ञानात्
'अनुदात्तङिते' इति तङ् । तथा च भाष्यम् । सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्तिबि-
त्युक्त्वा न तर्हीदानो गल्भाद्यनुक्रमण कर्त्तव्यं, कर्त्तव्यं च, आत्मनेपदा-
र्थमनुबन्धानासङ्ख्यामीति क्तिञ् भवति, 'कर्तुः क्यङ्लोपश्चे'ति उपमा-
नात्कर्तुः सुवन्तादाचारे क्यङिति क्यङ् । उपमानस्य कर्तृत्व संनिधाना-
दाचरणक्रियापेक्ष, लोपश्चेति चशब्दस्यान्वाचयशिष्टत्वान् यत्रान्त्यः
सकारःसंभवति तस्य लोपः, स च व्यवस्थितविभाषया, होडायते । अनु-
नासिकत्वप्रतिज्ञानं क्तिप्सनियोगेनैवेतीत्संज्ञाया अभावाद्दङ्गत्सार्वधातुक-
यो'रिति दीर्घः । हेडु वेष्टनइति घटादौ । होडु गतावित्यप्ये परस्मै-
पदी ॥ २८२ ॥

वाडु आप्लाव्ये ॥ वशादिः । आप्लवन्माप्लवः । वाडते । अववाड-
तेत्यादि ॥ २८३ ॥

द्राडु ध्राडु विशरणे ॥ द्राडते । ध्राडतइत्यादि ॥ २८५ ॥

शाडु श्लाघायाम् ॥ शाडतइत्यादि । लङ्योरैक्यात् शालतइति
काश्यपः । अत एव मैत्रेये रूपशाली शालेत्युदाहृतं, 'लस्ये'त्यत्र भाष्य-
कैयटयोः शालेति श्यतेर्लप्रत्यये व्युत्पादनीयः । शालीनः, अष्टुष्टः । 'शाली-
नकौपीने अष्टुष्टाकार्ययो' रिति खजि निपातितः । गवा शाला, गोशालं,

गोशाला । 'विभाषा सेनापुराच्छायाशालानिशाना'मिति सेनाद्यन्तस्य तत्पुरुषस्य वा तृपुंसकत्व, गोशाले जातः । गोशालः । 'तत्र जात' इत्यण्, 'स्थानान्तगोशानावरगालाच्चे'नि लुक् । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया गोशालाशब्दादप्यणो लुभ्रवति । एव खरशालः । वत्सशालाया जातः, वत्सशालः । वान्सशालो वा । 'वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिपजो वे'ति अणो वा लुक् । शालिः, इनितीन् । शालीना भवनं क्षेत्र, शालेयम् । 'व्रीहिशान्ये'र्ङमि ति ठक् ॥ अट्टादय उदात्ता अनुदात्तैः ॥ २८६ ॥

शौटु गवै ॥ इतो गद्यन्ता उदात्ता उदात्तैः । शौटति । शुशौट । शौटिना । शौटिष्यति । शौटतु । अशौटत् । आशिषि शौट्यात् । अशौटीन् । अशौटिष्यत् । शुशौटिषति । शौशौट्यते । शौशौटि । अभ्यासस्य ह्रस्वः । गुणः । शौटयति, अशुशौटन् । शौटीरः । 'कृशृष्टृकटिपटिशौटिभ्य ईरनि'तीरन् ॥ २८७ ॥

यौटु वन्ये ॥ यौटतीत्यादि ॥ २८८ ॥

मेटु स्नेह उन्मादे ॥ द्वितीयस्मृतीपान्तः । तथा च 'तस्य परमा-
मेहित'मिति दृश्यते, अत्र न्यासे आमेदयते आधिक्येनोच्यतइति, टान्त-
मध्ये पाठस्तु तदर्थसाम्यावायतिवत् । मेटति । स्नेडतीत्यादि ॥ २८९ ॥

कटे वर्षावरणयोः ॥ अयमनेदिदये । कटति चकाट । कटिते-
त्यादि । अकटीन् । 'अनो दलादे'रिति वा वृद्धिः 'ह्यन्तक्षणश्वसजाय-
णिरञ्ज्येदिनामि'ति एदितां निषिध्यते । कटः । पचाद्यच् । कटी । क-
टास्तु आणिवचनइति डीप् । निकटे वसति नैकटिकः, 'निकटे वसती'ति
सप्तम्यन्तादुपत्ययै ठक् । काटोङ्गन्, मधिकरणे सजायां घञ् । कटीरः ।
अघनं कन्तुकम् । कृशश्चइत्यादिना डीरन् । कटिरं चर्म । असिञ्चादिने-
रन् । कटिञ्चं चर्म । अशिञ्चादिभ्य इतीञ्चः । कटकम् । 'कुन् शिल्पिसं-
ज्ञयो'रिति कुन् । कटुः । बाहुलकादुपत्ययः । कटुरः । 'द्वित्वरद्वित्वरधी-
वरपीवरमीवरचीवरनीवरगह्वरकटुरसयटुरा' इति वरचि निपात्यते । चटे-
त्येकइति काश्यपः । चटतीत्यादि पूर्ववत् । चाटुः । सनिजनिचटिर-
हिभ्य उणिति ण् । चटुः । बाहुलकादुकारः । चटुलः । बाहुलकादु-

लच् । चटकः । 'कुन् शिल्पिसंज्ञयोरिति कुन् । चटका । अजादिपाठा-
ट्ठाप्, 'प्रत्ययस्यादि'तीत्वाभावश्च । चटकाया अपत्य, चाटकैरः । 'चट-
काया ऐरगित्यैरक् । चटकाच्चेति वक्तव्यात् चटकस्यापत्यमपि चाटकैरः,
स्त्रिया त्वपत्ये 'स्त्रियानपत्येनुगन्तव्य इति ऐरको लुकि चटकेति
भवति । भेदनाथाय चुरादौ ॥ २९१ ॥

अट पट गतौ ॥ अटति । आट । अटिता । अटिष्यति । अटतु ।
आटत् । अटेत् । आशिषि अट्यात् । मा भवानटीत् । 'नेटि' इति सिचि
वृद्धभावः । अटिपिपति । अटाट्यते । 'सूचिमूत्रिमूत्रयत्यर्थशूणातीनामुपसं-
ख्यानमिति' यङ्, अजादित्वात् ट्यशब्दस्य द्विवचने ऽभ्यासस्य 'दीर्घाकि
त'इति दीर्घः । नन्वत्र यङेव कार्यो निमित्तं च, एकस्य कार्यनिमित्तत्वे
च विशुद्धे । नैतत् । आकारभेदात्, अनभ्यासाकारेण कार्यो यडाकारेण
निमित्तम्, तथा हि । देवदत्तशालाया ब्राह्मण आनीयतामित्युक्ते यदि
देवदत्तोपि ब्राह्मणश्च शालास्यश्च भवति तदा सोप्यानीयते, यङ्लुकि
'सन्त्यङो'रित्यस्य षष्ठ्यन्तत्वात् यङपेक्षया पूर्वस्य कार्याभावात् 'न लुमते'ति
प्रत्ययलक्षणस्य प्रतिषेधाभावाद्ग्रहन्तत्वाद् अटशब्दस्य द्विवचने हलादि-
शेषे 'दीर्घाकित' इति दीर्घं सवर्णदीर्घं च तिपष्टुत्वे आटि इति भवति ।
ईटपत्ते तु । आटीति । आटुः । आटति । आटसि । आटुः । आटाचकारे-
त्यादि । आट्टीत्यत्र हेर्धिभावे ष्टुत्वे पूर्वस्य जश्त्व डकारः । लङि हल्-
ङ्यादिना तिस्योर्लोपे आट् । अटतीत्यटा । अचि टाप् । तां करोति ।
अटायते । अटाट्येत्यादिना क्यङ्, कुलस्य अटा कुलटा । शकन्भ्वादित्वात्
'कुलटाया वे'ति निर्देशाद्वा पररूपं, कुलटाया अपत्य, कौलटिनेयः ।
कौलटेयः । स्त्रीभ्यो ठकि 'कुलटाया वे'ति पत्ते इनङादेशोऽन्त्यस्य ।
यदायं कुलटाशब्दः लुद्रायां वर्तते लुद्रा दुःशीला अङ्गहीना वा तदा
'लुद्राभ्यो वे'ति ठकि कौलटेर इति भवति, तदभावे वाशब्देन ठकि
कौलटेय इति । अटाट्या । 'परिचर्यापरिसर्यामृगयाटाट्यानामुपसंख्यान'-
मिति गमनमात्रे शप्रत्यये यकि द्विवचनहलादिशेषाभ्यासदीर्घेषु निपा-
त्यते । पटति । पपाट । पेटतुः । पेटिथ । पटिता अपटीत् । अपाटीत् ।

‘अतो हनादे रिति वृद्धिः । पिपटिषति । पापट्यते, पापटीति । पापट्टी-
 त्यादि । पाटपति । अपीपटन् । पाटूपटः । एयन्तात्पचाद्वचि ‘पाटोर्णि-
 लुक् चोक् च’भ्यामप्ये’ति णिलुक्, द्विवचनमभ्यासस्योपागम उपधादी-
 घञ्च, उक्तो दीर्घाच्चारणमार्थ्यात् ह्रस्वस्याभावः । अस्यागमत्वसामर्थ्याच्च
 हलादिशेषः । अन्यथादेशमेव विदध्यादुकारम् । ‘अभ्यासस्यानची’ति वा
 हलादिशेषह्रस्वयोरभावः अभ्यासस्य यदुक्त तदचि नेति ‘णेरनिटी’ति
 णिलोपे सिद्धे लुग्वचनं प्रत्ययलक्षणे वृद्धेरभावाये, पाट्यका सुराविशेषः ।
 पाट्यकाः लावदानहुरायामिति स्थूलादिपाठात् एयन्तादस्मात् क्नुन् ।
 पटुः, ‘कलिपाटनमिमनिजना मुक्पटिनाक्रिधतश्चे’त्युप्रत्यये यथासख्या-
 त्पटादेशः, अत्र गुणेक आगमः, अन्ये आदेशाः, पटोर्भावकर्मणी । पटि-
 मा । ‘पृष्ठादिभ्य इमनिञ्चे तामनिच्, ‘टे’रिति टिलोपः । तदभावे ‘इग-
 न्ताच्च लघुपूर्वादि’ त्यणि पाटवम् । गोष्ठेपटुः । ‘पात्रेसमितादयश्चे’ति
 स्तेपे सप्तमीनन्पुरुषः तत्रैव पाठादलुक्, गोष्ठएवपटुर्न सदसीति स्तेपाव-
 गतिः । पटाका । शलिपटिपदिभ्यो निदित्याकिचिच्च । पटलम् । ‘वृषा-
 दिभ्यश्चिदि’ति कलप्रत्ययः चिच्च । पटलिका, सज्ञायां कन् । पटीरः ।
 कृष्टन्यादिनेर्न् । पाटलम् । एयन्तात्कलप्रत्ययो बाहुलकात् । पाटली ।
 ‘त्रातेरस्त्रीविषयादयोपधा’दिति डीप् । पाटल्याः पुण्याणि, पाटलानि ।
 ‘बिल्वादिभ्योणि’ति विकारावयवयोरण्, तस्य ‘पुष्पफलमूलेषु बहुल’मिति
 लुप् तत्रैव बहुलपहणाच्च भवति, लुपि हि कौशीतक्याः फलानीत्यादि-
 वत् ‘लुपि युक्तवद्वक्तिवचने’इति युक्तवद्भावः स्यात् ॥ २९३ ॥

रट परिभाषणे ॥ रटतीत्यादि । परिराटी । ‘संपृचानुरुधा-
 झमाङ्यमपरिभृमंसृजपरिदेविसञ्जरपरिज्ञपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुह-
 दुषद्विषदुहदुहयुजाकीडविवचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्चे’ति
 परिपूर्वादस्मान्नाच्छीलिको घिनुण् । परिराटकः । ‘निन्दहिसे’त्यादिना
 मुन् ताच्छीलिकः ॥ २९४ ॥

लट बान्ये ॥ लटनीत्यादि । लट्वा । ‘अशुश्रुगुपुटिलटिकाणिखटिपि-

शिभ्यः क्वचि'ति क्वन् । लाटयतीति लाटः । एयन्तादच् । केवलाट्टा
संज्ञायां घञ् ॥ २९५ ॥

शट् रुजाविशरणगत्यवसादनेषु ॥ शटतीत्यादि । शाटकः ।
घञन्तात्संज्ञाया कन् । शाटो । जातिलक्षणे ङीष् ॥ २९६ ॥

वट वेष्टने ॥ वटति । ववाट । ववटतुः । वादित्वादेत्वाभ्यासलोपा-
भावः । वटिः । 'इनि'तीत्यत्ययः । वटिभः । 'तुन्दवलिवटेर्भ'इति मत्वर्थे भः ।
वटकः । संज्ञायां कन् । वटका अचमस्या पौर्णमास्यां वटकिनी पौर्ण-
मासी । 'तदस्मिन्नच' प्राये संज्ञाया'मित्यत्र 'वटकेभ्य इनिर्वक्तव्य' इतीन् ।
घटादावयं परिभाषणार्थः । पठ वट यन्यइति कथादौ । वट वेष्टनइति
वीरस्वामी । यस्तु तत्र विभाजनार्थः । त वटीति शाकटायनादयः पठन्ति ।
वटी विभाजनइति इहैवाये चुरादौ चानदन्तेषु ॥ २९७ ॥

किट खिट् त्रासे ॥ केटति । चिक्रेट । केटिता । चिक्रिटिषति ।
चिक्रेटिषति । किटित्वा । केटित्वेत्यादि, एवं खेटतीत्यादि । खेटः ।
'हलश्चे'ति संज्ञाया घञ्, इह त्रासो भयोत्पादनम् । किटिर्गत्यर्थे भ-
विष्यति । इहैके न पठन्ति । मैत्रेयादीनामर्थभेदात् पुनः पाठ इत्य-
भिप्रायः ॥ २९८ ॥

शिष्ट पिष्ट अनादरे ॥ आद्यस्तालव्यादिः, अपरो मूर्धन्यादिः ।
शेष्टति । सेष्टतीत्यादि किष्टवत् । सिसेष्टिषतीत्यत्र 'स्तौतिष्योरेवे'ति
नियमाच्च षत्व, षोपदेशफलं तु सेष्टित्यते, । असीषिटदित्यादौ ॥ ३०१ ॥

जट भट सङ्घाते ॥ जटति । जजाट । जेटतुः । जटिता । जटा ।
अजादित्वाट्टाप् । निन्दिता जटा अस्य जटालो जटिलः । जटाघटाकलाः
क्षेपइति सिध्मादौ पिच्छादौ च पाठाल्लजिलचौ । जटीति भाष्यकारप्रयो-
गाद् अनदन्तत्वेपीनिः । भटति । जभाट । जभटतुः । भटितेत्यादि ॥ ३०३ ॥

भट भृतौ ॥ भटति । भटिन् शूलेन सस्रुत मांसमिति निघण्टुः ।
वेतनमित्युणादिवृत्तौ । अशिन्नादिभ्य इतीन् । अयं घटादिः परिभाष-
णार्थः ॥ ३०४ ॥

तट उच्छ्रये ॥ तटति । तटोऽस्या अस्तीति तटिनी । 'अत इनि-
ठना'विति मत्वर्थे इनिः । तटी । गौरादिपाठान् डीप् । तड आघात-
इति ढकारान्तग्नुरादौ ॥ ३०५ ॥

खट काङ्क्षायाम् ॥ खटति । खट्वा । अशुष्णीत्यादिना क्त्वा ।
खट्वाकटो जाल्मः । 'खट्वा खेप'इति खेपे गम्यमाने द्वितीयान्तस्य खट्वा-
शब्दस्य क्तान्तेन तत्पुरुषः ॥ ३०६ ॥

णट नृतौ ॥ अत्र पुरुषकारे णट नृतावित्यपि क्षीरस्वामी, इत्युभय-
थापि नर्तनमेवायं इति, अयं णोपदेशः । नृतिनन्दीति णोपदेशपर्युदा-
सवाक्ये नाटीति सवृट्टिकस्य ग्रहणादस्य घटादित्वात्मित्त्वात् नाटिरू-
पाभावादग्रहणम् । यदाह हरदत्तः । 'जासिनिप्रहणे'त्यत्र नट नृताद-
त्यस्य घटादिपठितस्याग्रहणं, विज्ञतनिर्देशादिति, अत एव णोपदेशपर्यु-
दामविचरणेऽपि न्यासपदमञ्जरीपुरुषकारादिभिरवस्यन्दनार्थस्य चौरादि-
कस्य ग्रहणं कृतम् । ननु क्षीरस्वामी घटादौ नट नृताविति पठित्वा
नटयति शाखा इत्युदाहृत्य नृतौ नाटयतीति वक्ष्यति, अवश्य हरदत्ता-
दिभिरप्युभयत्र पाठसामर्थ्यादस्य नाटयतीत्यङ्गीकार्यं, तत्कथमुक्तं विज्ञत-
निर्देशादिति । उच्यते । द्वयोर्यहणे नटीत्येव निर्दिशेत् न नाटीति
विज्ञतं, तत्सामर्थ्यात् यस्य नाटीत्येव रूपं तस्यैव पर्युदासो विज्ञास्यते न
तु यस्य नटिरूपं नाटिरूपं च । ननु योऽस्ति घटादिधातुर्नित्यं नटि-
रूपमापव', स एव विज्ञतनिर्देशेन व्यावर्त्यते, मैवम् । येऽन्यत्र पठिता
घटादौ पठ्यन्ते न ते पृथग् धातवः, किन्तु मित्त्वार्थमेव तेषामनुवाद
इति तत्र स्थितत्वात् । इह नृतिर्नर्तनं, यत्कारिषु नटव्यपदेशः । न तु
मार्गदेशीशब्दाभ्यां प्रसिद्धं नृत्तं नृत्यं च, यत्कारिषु नर्तकव्यपदेशः ।
तत्र वाक्यार्थाभिनयो नाट्य, पदार्थाभिनयस्तु नृत्यम् । अभिनयशून्यः
पुनः शास्त्रोक्ताङ्गभङ्गः स्वगात्रविशेषो नृत्त इति तद्विदः, नैघण्टुकानां
तु ताण्डवं नटन नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्तनमिति अभेदव्यवहारो निरु-
द्धलक्षणया नेयः । प्रणटतीत्यादि । नटी । गौरादित्वात् डीप् ॥ ३०७ ॥

पिट शब्दसङ्घातयोः ॥ पेटति । पिपेट । पेटितेत्यादि । पिपिटि-

पति । पिपेठिषति । पिठित्वा । पेठित्वा । पेठयति । अपीपिठन् ।
पिठकम् । 'कुन् शिल्पिसञ्जयो'रिति कुन् । पिठाकः । पिठाकादयश्चे-
त्याकः ॥ ३०८ ॥

हट दीप्तौ ॥ हटति । जहाट । हटिना । अहटीत् । अहाटी-
दित्यादि । हाटकम् । 'सञ्जाया चे'ति एबुल, बाहुलकादस्त्रियामपि
हाटशब्दान् कन्वा ॥ ३०९ ॥

षट अवयवे ॥ सटति । ससाट । सेटतुः । सटिता । सिसटिषति ।
'स्तौतिष्यारेवे'त्यषत्वम् । साटयति । असौषटत् । सटा । अजन्ता-
ट्वाप् ॥ ३१० ॥

लुट त्रिलोडने ॥ एतदादयः पाठत्यन्ताष्टवर्गवृत्तयान्ता इति कौ-
शिककाश्यपनन्दद्विविडाः । ते चास्मादनन्तरे पिठहटी च पेठुः । लोटति ।
लुलोठ । लोटिता । लुलुटिषति । लुलोठिषति । लुटित्वा । लोटित्वा । लोट-
यति । अलूलुटत् । अलुलोठत् । काण्यादित्वादुपधाह्रस्वविकल्पः । लूसूत्रे
सुधाकरः, लुल विलोडन इति लान्तेऽपि दृश्यते । लोलभुजाकारबृहत्तर-
ङ्गमिति माघः । डलयोरेकत्वस्मरणमिति वा प्रतिविधेयमिति । अयं
दिवादावपि । भाषार्थश्चुरादौ । प्रतिघाते व्युतादौ इति । स्तेयार्थः
परस्मैर्पादिषु । लुठतिः चुरादौ ॥ ३११ ॥

चिट परप्रेष्ये ॥ चेटतीत्यादि । पूर्ववत् । काण्यादित्वाभावो
विशेषः । चेटौ । इनन्ता'त्सर्वतोक्तिचर्यादित्येक'इति ङीष् ॥ ३१२ ॥

विट शब्दे ॥ वेटतीत्यादि । विटः । इगुपधलक्षणः कः । विटपः ।
विटपविष्टपविशिपोलपा इति निपातितः ॥ ३१३ ॥

बिट आक्रांशे ॥ बशादिः । बेटतीत्यादि । हिटेत्यत्र के चित्पठ-
न्ति, हेठतीत्यादि ॥ ३१४ ॥

इट किट कटी गतौ ॥ अत्र मैत्रेयः । कटीति ह्रस्वान्त पठन्तीति
चतुर्थे धातुमुक्त्वा मतान्तरेण दीर्घान्त पठन् ई इति चतुर्थे धातुं दीर्घमुक्त्वा
फलं च व्यपदेशिवद्भावेन गुरुमत्त्वे इजादित्वात् अयाचकारेत्याम्सिद्धि-

ह्रस्व गिलोपे तस्य स्यानिवत्त्वेन यिशब्दस्य द्विर्वचनम् । इतः । इतवान् ।
प्रेत्य । ल्यपि 'यत्वतुकोरमिटृ' इति एकादेशस्यासिद्धत्वाद् ह्रस्वनिबन्धन-
स्तुक् । क्तिटिति मैत्रेयमतेन चासे गतः । कटिश्च वर्षावरणयोः ॥ ३१७ ॥

मडि भूषायाम् ॥ मण्डति । ममण्ड । मण्डितेत्यादि । मण्डते
कन्या स्वयमेव । अमण्डिष्ट कन्या स्वयमेव । भूषाकर्मत्वाद्वाक्चिणोर्नि-
षेधः । मिमण्डयति । मामण्डते । अमामन् । मण्डयति । अममण्डत् ।
मण्डनः । क्रुधमण्डः यैभ्यश्चेति युच् । मण्ड इति विभागे गतः ॥ ३१८ ॥

कुडि वैकल्ये ॥ कुण्डतीत्यादि । कुण्डतइति दाहे गतम् । अत्र
स्वामी । कुटीति कौशिकदुर्गाविति, शाकटायनः पुनः प्रकरणानुरोधेन
हान्तमेवाध्यर्गिष्ठ ॥ ३१९ ॥

मुट प्रमर्दने ॥ मोटति । मुमोट । मोटिता । मुमुटिषति । मुमो-
टिषति । मुटित्वा । मोटित्वा । 'रलो व्युपधा' इति क्तिवविकल्पः ।
मुडेति धनपालः । पुडिति पकारादिहान्त इति शाकटायनः । क्षीर-
स्वामी तु द्वावपीदितौ पपाठ । मैत्रेयस्त्वमुं हान्तमेव पठित्वा मुडि
खण्डन इति चापि पठित्वा पुडि चेत्येकइत्याह । मुट प्रमर्दनात्तेषोरिति
तुदादौ । मुड मचूर्णनइति चुरादौ ॥ ३२० ॥

चुडि अल्पीभावे ॥ चुण्डनीत्यादि । चुटेति दुर्गः । चुट छेदन-
इति तुदादौ । चुटच्युटी द्वावपि चुरादौ ॥ ३२१ ॥

मुडि खण्डने ॥ मुण्डतीत्यादि । मुण्डः, तं करोतीति मुण्डयति ।
'मुण्ड' मिश्रलक्षणवृणव्रतवम्प्रहलकलकृन्तूस्तेभ्यो णिजि'ति करोत्यर्थे
णिचि णाविष्टवदिति टिलोपः । यवनमुण्डः । काम्बोजमुण्डः । मयूरव्य-
मक्रादिन्वादिशेषणस्य परनिपानः । अत्र मैत्रेयः । पुडि चेत्येके । पुण्डति ।
पुण्डः । पुण्डरीकमिति । डकारवत् पवर्गादिप्रकरणादिहायं निर्दिश्यते,
मुडि भूषायामित्युकारवच्च भवति इति डकारान्तोप्यकारवत्त्वादादौ
निर्दिष्ट इति मैत्रेयः । अत्र शुटि खण्डनप्रमर्दनयोरिति क्व चिद्वातुकोशे
पठ्यते । मैत्रेयादयस्तु न पठन्ति । तत्राद्यपाठ एव ज्यायान्यदिहैवापि शुटि

शोषणइति भविष्यति, अस्मिन् हि सति तस्य रूपाभेदाद् शोषणग्रहण-
मपीहैव कर्तव्यं स्यात् ॥ ३२२ ॥

रुठि लुठि स्तेये ॥ रुठति । लुठतीत्यादि । रुठि-लुठिन्येकइति क्षी-
रस्वामी । शाकटायनस्मृत्यान्वै पपाठ । लोठतीति त्रिलोडने गतम् । लुठ
प्रतिघातइति युजादौ । रुठ रोषणइति चुरादौ । तत्र रुठेत्येके ॥ ३२४ ॥

स्फुटिर्विशरणे ॥ अय पाठो मैत्रेया-दीनाम् । स्फोठति । पुस्फोठ ।
स्फोठिता । पुस्फुटिषति । पुस्फोठिषति । स्फुटित्वा । स्फोठित्वा
इत्यादि । इकाररफयो 'रूपदेशेजनुनासिक इत्' 'हलन्त्य'मितीत्त्व, तेन
लुडि 'इरितो वे'ति परस्मैपदे विधीयमानो ऽङ् विकल्पो भवति । अस्फुटत् ।
अस्फोटीदिति । 'इदितो तुम् ध्रानो रिनि तुम् अन्तेदितो विधानादस्य न
भवति । स्फुटेति चन्द्रः । अस्याङ् नास्ति । स्वामिकाश्यपौ तु स्फुट
स्फुटि स्फुटिरिति त्रीन् धातून् पठतः । स्फुठति । स्फोठतीत्यादि ।
स्फुटा । अच्, टाप् । स्फुट विक्राशनइत्यात्मनेपदिषु टान्तः ॥ ३२५ ॥

पठ व्यक्तायां वाचि ॥ पठति । पपाठ । पठतुः । पठिता ।
अपाठीत् । पाठयति श्लोकं पुत्रमित्यादि ॥ ३२६ ॥

वठ स्यौल्ये ॥ वठति । ववाठ । वठितेत्यादि । वादित्वान्नैत्वाभ्यास-
लोपौ । वठि एकवर्थायामात्मनेपदी गतः ॥ ३२७ ॥

मठ कठ मदनिवासयोः ॥ अय पाठो मैत्रेयस्य । अन्येषां मठ मद-
निवासयोः । कठ कृच्छ्रजीवनइति । मठति । कठति । इत्यादि । कठः ।
अच् । कठेन प्रोक्तं कृन्दः 'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्चे'ति वैशम्पाय-
नान्तेवासित्वाणिनिः । तस्य 'कठचरकाल्लुगि'ति लुक् । 'कृन्दोब्राह्म-
णानि च तद्विप्रयाणी'ति नियमात् 'तदधीते तद्वदे'ति अध्येतृवेदितृप्रत्ययान्त
एव प्रयोगार्हः । तस्य चाणः 'प्रोक्तात् लुगि'ति लुक् । तदेव कठेन प्रोक्तं
कृन्दोधीयमानोपि कठः । कठिनम् । औणादिक इत् । वशकठिने व्यव-
हरति व्राशकठिनिकः । 'कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरती'ति कठिना-

न्तादिभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यो व्यवहरतीत्यर्थे ठगिति ठक् । कठोरम् । कठिच-
क्रिभ्यामोरजित्योरच् । अनन्तर मठ गताविति क्व चित्पठ्यते । मैत्रेयादय-
स्तु न पठन्ति ॥ ३२८ ॥

रठ परिभाषणे ॥ रठतीत्यादि ॥ ३३० ॥

हठ प्रतिशठत्वयोः ॥ हठति । जहाठेत्यादि । हठ बलात्कार-
इति चन्द्रदुर्गा ॥ ३३१ ॥

रुठ लुठ उठ उपघाते ॥ रोठति । लोठतीत्यादि । अत्र
मैत्रेयः । उठेत्यप्येकइति । धनपालशाकटायनौ तु रुठलुठेत्येव पठतुः ।
क्षीरस्वामी तु उठं पठित्वा रुठ लुठ इत्यपि दौर्गा इत्याह । उठति । उवो-
ठ । ऊठतुः । ओठितेत्यादि । पठतिवत्प्रक्रिया । लुठः काण्यादित्वात् अलू-
लुठत् । अनुलोठदिनि भवति । अयं श्लेषणे तुदादिः । लुठि आलेख्ये प्रति-
घाते च । रुठि लुठि गनावित्यर्थे इदितौ । लुठ श्लेषणइति तुदादौ ।
असौ डान्त इत्येकइति मैत्रेयः । तथा च स्वामी लुठतीति लट्यदर्शनात्
तुदादौ पाठ इति । लुठ प्रतिघातइति द्युतादौ ॥ ३३४ ॥

पिठ हिमामक्लेशनयोः ॥ पेटतीत्यादि । पीठम् । घञ् । 'अन्ये-
षामपि दृश्यत' इति दीर्घः । पीठी । इअन्तात् 'कृदिकारादक्लिन' इति
ङीप् ॥ ३३५ ॥

शठ कैतवे च ॥ चकारादिसासंक्लेशनयोश्च । शठति इत्यादि ।
स्वाम्यादयः पुनश्चकार नैव पठुः । गत्यसंस्कारयोरयं चुरादौ । तत्रैव
श्लाघापामात्मनेपदिषु, सम्यगवभाषणे कठादौ ॥ ३३६ ॥

शुठ गतिप्रतिघाते ॥ प्रतिघातइत्येव धनपालः । तथा च कुठि इत्यु-
त्तरभातौ प्रतिहतिमात्रं प्रतीयते इत्यर्थे इति स एवाह । शोठतीत्यादि ।
शुठीनि क्षीरस्वामी । आलापइति चुरादौ । शुठि शोषणइत्यत्रैवाये ॥ ३३७ ॥

कुठि च ॥ कुण्ठतीत्यादि । कुण्ठः ॥ ३३८ ॥

लुठ आलस्ये प्रतिघाते च ॥ लुण्ठतीत्यादि । लोठतीत्युपघाते
गतम् ॥ ३३९ ॥

शुठि शेषणे ॥ शुण्ठति । शुण्ठः । शुण्ठी । शोठतीति गतिप्रति-
घाते गतः ॥ ३४० ॥

रुठि लुठि गतौ ॥ अर्थभेदात्पुनः पाठो लुण्ठेरित्याहुः । रुण्ठति ।
लुण्ठन्तीत्यादि ॥ ३४२ ॥

चुडु भावकरणे ॥ भावकरणप्रभिप्रायनू ऽनम् । चुडुति । चुवुडु ।
चुडितेत्यादि । चुचुडिषति । चोचुडते । अचोचुत् । अयं दोषध इति
सयोगान्तलोपे तकारस्य अवणम् । चुडुयति । अचुचुडुत् ॥ ३४३ ॥

अडु अभियोगे ॥ अयमपि दोषध इति क्लिप्यदिति भवति ।
अडुति । आनडु । अडुिता । अडुडिषति । 'न न्द्रा' इति दकारवर्जस्य
द्विवचनम् । अडुयति । आडुडत् ॥ ३४४ ॥

कडु कार्कश्ये ॥ कडुतीत्यादि । अस्यापि दोषधात्वाद्भलुकि क्लिपि
च । अचीकत् कद् इति च भवति । कच्च तत् जलं च कज्जलम् ॥ ३४५ ॥

क्रीडु विहारे ॥ क्रीडति । चिक्रीड । क्रीडिता । चिक्रीडिषति ।
चेक्रीडते । चेक्रीटि । अचेक्रीट् । आक्रीडते । 'क्रीडोऽनुसपरिभ्यश्चे'ति
अन्वादिपूर्वाच्चकारादाङ्पूर्वात्तङ्, एवमनुक्रीडतइत्याद्युदाहार्यम् । समा
साहचर्यादनोरुपसर्गस्य ग्रहणं, तेन 'तृतीयार्थ'इति यदानोः कर्मप्रवच-
नीयत्वं तदा तङ् न भवतीति माणवकमनुक्रीडतीति, माणवकेन सह क्रीड-
तीत्यर्थः । 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीये'ति माणवकाद् द्वितीया । सक्रीडन्ति
शकटानीत्यत्र 'समोऽकूजनइति वक्तव्य'मिति उक्तत्वाच्च तङ् । कूजन्ति
शकटानीति ह्यस्यार्थः । आक्रीडी । 'संपृचे'त्यादिना घिनुण् । चिक्रीडः ।
'कृजादीना के द्वे भवत' इति कप्रत्यये द्विवचनम् ॥ ३४६ ॥

तुडु तोडने ॥ तोडनं दारणं हिंसनं चेत्युक्तम् । तोडति ।
तुतोड । तोडितेत्यादि । तड इति स्वामिशकटायनौ, तुडतइत्यात्म-
नेपदी गतः ॥ ३४७ ॥

हूडु हुडु होडु गतौ ॥ हूडति । जुहूड । हूडिता । हूडयति ।
अजुहूडत् । होडति । जुहोड । होडिता । होडयति । अजुहोडितेत्यादि ।
हुडु हूडु गताविति धनपालशाकटायनौ । होडतइत्यादरे गतः ॥ ३४८ ॥

दित्वाऽन्मिन्त्वम् । त्रपित्वा । त्रप्त्वा । त्रप्तः । त्रप्तवान् । 'यस्य विभा-
षेति निष्ठायामिग्निपेधे । त्राप्यम् । 'आमुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्चे'ति
भाषेण्यत् 'पौरुषधादि'ति यतोऽपवादः । त्रपा । 'पिद्विदादिभ्योऽडि'ति
स्त्रियामद् । अपत्रपिष्णुः । 'अलङ्कृन्निराकृजप्रजबोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्र-
पवृत्तुवृधुमहचर इष्णुजि'ति तच्छीलादाविष्णुच् । त्रपु । 'शस्वृत्तिहित्र-
प्यमिहनिक्त्रिद्वन्मिन्मिन्भ्यश्चे'त्युप्रत्ययः । त्रपुणो विकारस्त्रापुषम् ।
'त्रपुजनुनोः पुगि'ति पुगागमोऽणप्रत्ययश्च ॥ ३७१ ॥

कपि चने ॥ कम्पते । चकम्पे । कम्पितेत्यादि । कम्पयति ।
'निराणचने'ति नित्य परस्मैपदम् । कम्पः । 'नमिकम्पिभ्यजसकमहिं-
सदीपो र' इति तच्छीलादौ रः । वा सरूपविधिना 'अनुदात्तेत' इति
वा 'चननगञ्चे'ति वा युचि कम्पनः । ननु पदेरनुदात्तेत्वादेव युचि
मिट्टे 'त्रुचङ्कम्पादि'ना पुनर्युज्जिधानेन ताच्छीलिकेषु वासरूपविधि-
नेति ज्ञापितम् । अन्यथा 'लपपतपदे'त्युक्तञ्च अनुदात्तेल्लक्षणयुचः
समावेशे मिट्टे पुनस्तद्विधानमनर्थकं स्यात् । नैतदस्ति । 'सूददीपे'ति
युज्जिन्पेधादस्यानित्यत्वज्ञापनान्, नित्ये हि 'नमिकम्पी'त्यादिना विशे-
षविहितेन रप्रत्ययेन युचो बाधस्य सिद्धत्वात् किं तत्रिपेधेन । विक-
पितः । विकृतशरीर इत्यर्थः । 'लगिकम्प्योरुपतापशरीरयो'रिति नलो-
पः । कपिः । 'कटिकम्प्योर्नलोपश्चे'तीन्प्रत्यये नलोपः । कपेर्भावकर्मणी
कापेयम् । 'कपिज्ञान्योऽङ्गति' ठक् । वृषो धर्मस्तस्याकपिः, अकम्पिता,
वृषाकपिः विष्णुः रुद्रश्च । वृषाकपायी । श्री गौरी च । 'वृषाकपी'त्या-
दिना पुंयोगलक्षणे ङीष् अनित्यस्येकारः । कपिलः । 'कपेश्चे'तीलच्प्र-
त्ययः बाहुलकादत एव निर्वृताद्वा नलोपः । कबलः कम्बलः, बाहुल-
कात् कलप्रत्ययः पकारस्य वकारः पञ्चे मलोपश्च । कम्बल्यमूर्णापलश-
तम् । कम्बलाय हितमिति विषये 'कम्बलाच्च संज्ञाया'मिति यत् ।
द्विभ्या कम्बल्याभ्यां क्रीता शाटी द्विकम्बल्या । 'तद्वितार्थोत्तरपदसमा-
हारं चे'ति तद्वितार्थे समासे 'द्विगुश्चे'ति द्विगुत्वे 'प्राग्वतेष्ठजि'ति
प्राग्वतीयेष्वर्थेषु विहितस्य ठञोऽ'धर्तुपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञाया'मिति लुक् ।

अत्र 'द्विगो' रिति प्राप्तस्य ङीपोऽपरिमाणबिस्तादितकम्बल्येभ्यो न तद्वितलुकि' इति निषेधः । अपरिमाणान्तात्परिमाणत्वेऽपि बिस्तादन्ताच्च द्विगोस्तद्वितलुकि सति ङीवेति सूत्रार्थः । पाण्डुकम्बलेन परिवृत्तो रथः पाण्डुकम्बली । 'पाण्डुकम्बलादिनिरिति पाण्डुकम्बलशब्दात्तृतीयान्तात् परिवृत्तो रथ इत्यर्थे ङीनिः । येन तत्परिवृत्तं तत्तस्यास्ति इति मत्वर्थीयेन सिद्धे इदं वचनं ठनो निवृत्त्यर्थम् ॥ ३७२ ॥

रबि लबि अबि शब्दे ॥ रम्बते । ररम्बे । रम्बिता । रिरम्बिषते । रारम्ब्यते । रारम्बीति । रारम्पि । अरारन् । हे इति रम्बतइति हेरम्बः । लम्बतइत्यादि । अम्बते । आनम्बे । अम्बिबिपते । अम्बयति । आम्बिबत् । त्रीण्यम्बकानि चतूषि अस्येति अम्बकः, त्रयाणां लोकानामम्बः पितेत्यागमविदः । द्यौर्भूमिरापस्तिस्त्रोम्बा अस्य इति भारतम् । अम्बः त्रयः शब्दा अकारोकारमकाराः प्रतिपादका अस्येति भट्टभास्करः, स एव सृष्टिस्थितिसंहारविषयास्तिस्त्रो वा शक्तयोस्येति च । अम्बरीषम् । भ्राष्टमम्बरीष मिनि निपात्यते । अम्बा । हे अम्ब । 'अम्बार्थनद्वो'रिति ह्रस्वः सम्बुद्धौ ॥ ३७३ ॥

लबि अवसंसने च ॥ 'नजि लम्बेर्नलोपश्चे'ति नञ्युपपदे उकारप्रत्ययो नलोपश्च णिट्ठ्वावात् वृद्धिश्च ॥ ३७४ ॥

कवृ वर्ण ॥ कबते । चकवे । कबिता । चिकबिपते । चाकब्यते । चाकप्ति । काबयति । अचकाबत् । कवरः । बाहुलकादरः । कबरी । 'जानपदे'त्यादिना केशवेशे ङीष्, अन्यत्र कवरा । कर्वुरः । बाहुलकादुरः प्रत्ययो रेफोपजनश्च ॥ ३७५ ॥

क्लीवृ अधाष्ट्ये ॥ क्लीबते । चिक्लीबे । क्लीबिता । क्लीबयति । अचिक्लीबत् । क्लीब इवाचरति क्लीबते । 'आचारेवगल्भक्लीबे'ति क्लिप्, तत्सन्त्रियोगेन चैषामकारस्यानुदात्तताऽनुनासिकताप्रतिज्ञानादनुदात्तत्वात्तडिति होडतौ प्रतिपादितम् । क्लिबभावे 'उपमानादाचार'इति अयडि क्लीबायते ॥ ३७६ ॥

सीवृ मदे । सीवते । चिहीवे । हीविता । हीवयति । अचिही-
वन् । सीवः । 'अनुपमर्गः लुगुल्लर्तावे'ति निष्ठाया मिडभावस्तलोपश्च,
इच्छन्वोपो वा निपात्यते ॥ ३९६ ॥

शीभृ कृत्यने ॥ शीभते । शिशीभे । शीभिता । शिशीभिपते ।
शीगीभ्यते । शेशीभ्यि । 'भ्रयस्तयो'रिति तकारस्य धकारे 'भ्रलां जश्
भर्गा'नि भकारस्य बकारः । शीभयति । अशिशीभन् । शीभरः बाहु-
लकादरः । ३९७ ॥

चीभृ च ॥ चीभतइत्यादि ॥ ३९८ ॥

रेभृ शब्दे ॥ रेभने । अरेभतेत्यादि । विरिञ्चः । 'तुव्यस्वान्ते'-
त्यादिना स्वरे निष्ठाया मिडभावे उपधाह्रस्वत्व च निपात्यते । अन्यत्र
रेभिन् । अभिरभी च कृ चिन्पठ्येने । अम्भते रम्भतइत्यादि । अम्भः ।
अमुन् । अम्भोपत्य आम्भिः । 'अम्भसः सलोपश्चे'ति बाह्यादिपाठा-
दिभिः सलोपः ॥ ३९९ ॥

एभि स्क्भि प्रतिवन्धे ॥ स्तम्भते । तस्तम्भे । खयः शेषः । स्तम्भिता ।
तिस्तम्भिपते । 'स्तौतिण्यारेवे'त्यपत्वम् । योपदेशफल एयन्तात्सनि
निष्ठम्भयिपतीति पत्वम् । उत्तम्भते । उत्तम्भिता । उत्तम्भित । 'उदः
स्यास्तम्भोः पृथम्येति' उदः परयोरनयोः सकारस्याने पूर्वस्य सवर्ण इति
तकारः । 'स्तम्भे रित्यादा'नुपमर्गान्तरस्य पत्वविधौ स्तम्भुम्भिनि प्रति-
पदोक्तम्यैव ग्रहण स्तम्भेः, न त्वस्य लाक्षणिकस्येति विस्तम्भइत्यादौ न
पत्वम् । 'उदः स्यास्तम्भो'रित्यत्र तु नाय न्यायः, यतस्तम्भुरूपमुभयोरपि
लाक्षणिकम् । अत्र स्वामिमैत्रेयौ षष्ठे षकारमेकैयमतेनौपदेशिकमाहतुः ।
तत्र षम्भते विष्टम्भतइत्यादौ सर्वत्र षत्वान्न पत्वे लिङादावभ्यासे
षकारस्य शेषे तष्टम्भइत्यादि भवति । स्क्भते । चस्क्भे । स्क्भितः ।
स्क्भितः । 'वसितस्क्भिते'ति निपातनं तु छन्दसि 'विः स्क्भ्रातेर्नित्य-
मि'ति बन्ध यनानिर्दृष्टात् सौत्रस्यैव नास्येति विस्क्भितइति भवति ।
स्तम्भु स्तुम्भु स्क्भु स्कुम्भु इति सौत्राश्वत्वारो धातवस्ते च 'स्तम्भुस्तुम्भु-

स्क्रम्स्कुम्स्कुञ्भ्यः श्नुश्चे'ति वा श्नाश्नुविकरणा इति तत्रोदाह्रियते ।
लोभतइत्यये स्तम्भार्थे ॥ ३८४ ॥

जभी जृभि गात्रविनामे ॥ जभीत्येके, जब्धमिति मैत्रेयः । अयमेव
पाठः प्रायेण वृत्तिकारस्य समतः । यदाह । 'रधिजभोरचि'इत्यत्र अज्-
ग्रहणप्रत्युदाहरणे जब्धमिति अनीदित्वे इटा भाव्यमिति कथमेवमुदाहरे-
त् । जम्भते । जजम्भे । जम्भिता । जम्भिष्यते । जम्भताम् । अजम्भत । जम्भेत ।
जम्भिषीष्ट । अजम्भिष्ट । अजम्भिष्यत । जिजम्भिषते । 'रधिजभोरचि'
इति अजादौ प्रत्यये नुम् । जज्जभ्यते । 'लुपसदवरजपजभदहदशगृभ्यो भाव-
गर्हायामि'ति यङ् । भावो धात्वर्थस्तस्य गर्हा भावगर्हा । अयं च यङ् पूर्वसू-
त्राच्च यग्रहणा नुनृत्त्या ऋः कैंः णिङ् न्यत्या देन या ऋया ममभिहः यङो वाधक्
इति भाष्यादौ स्थितम् । 'जपजभदहदशभज्जपशा चे'ति अभ्यासस्य यङि
यङ्लुकि च नुगागमः । इदं च नुग्रहणमनुस्वारोपलक्षणार्थं 'नुगतोनुनासि-
कान्तस्ये'ति अत्रान्तग्रहणात्, तद्विद्विधनाप्यनुनासिकान्तस्य धातो-
रभ्यासस्य नुकि सिद्धे तदन्तस्य यत्कार्यं तद्वथा स्यादिति । न च नुको-
न्त्यत्वे किं चित्कार्यमस्ति, अस्ति चानुस्वारस्य 'वा पदान्तस्ये'ति परसव-
र्णविकल्पः । 'कर्तुः क्यङ् से'तिषदनुनासिकेत्यविभक्तिको निर्देशः । तेन ज
ज्जभ्यते इत्यत्रानुस्वारस्यापि पक्षे श्रवणं भवति । जज्जभीति । जज्जब्धि ।
जज्जब्धः । जज्जम्भतीत्यादि । 'रधिजभोरची'त्यत्र प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्त-
स्यापि ग्रहणमिति अजादौ नुमागमः । जम्भयति । अजजम्भत् । जम्भो
दन्तविशेषो ऽभ्यवहार्यं च, शोभनो जम्भोऽस्यास्तीति सुजम्भा । 'जम्भा-
सुहरितवृणसोमेभ्य' इति स्वाद्यादेर्जम्भात् बहुव्रीहेरिति 'सर्वनामस्थाने
चासबुद्धावि'ति नान्तस्योपधाया दीर्घः । पदत्वे 'न लोपः प्रातिपदिका-
न्तस्येति'ति नलोपः भसंज्ञाया 'मल्लोपोन'इत्यल्लोपः । सुजम्भ इत्यादि ।
हौ तु 'विभाषा डिश्योरि'ति विकल्पित इति सुजम्भि सुजम्भनीति भव-
तः । सबुद्धौ न डिस्बुद्धोरिति नलोपनिषेधः । नपुसके तु 'वा नपुसकाना-
मि'ति पक्षे न लोपः । अन्यत्र तु नित्यः, दीर्घस्तु न भवति असर्वनामस्थान-
त्वात् । शौ सर्वनामस्थानपरत्वात् सुजम्भानीति 'विभाषा डिश्योरि'ति

श्यामल्लोपत्रिकल्पनात् सुजम्भी सुजम्भनी इति भवतः । स्त्रिया 'मृचेभ्य' इति ङीपो 'ऽनो बहुव्रीहेरि' नि निषिद्धत्वात् पुंसीव रूपम् । यदा तु 'डाबु-
भाभ्यामन्यतरस्या' मवन्तात्प्रातिपदिकादनन्ताद्बहुव्रीहेश्च डाग्रिति डापृदा
द्वित्वाट्टिनेपे सुजम्भा सुजम्भे इत्यादि । ङीप् प्रतिषेधस्य डापः श्रवणस्य च
वचनद्वयप्राप्ताण्यदेव सिद्धौ अन्यतरस्याग्रहणेन भिन्नेन योगेन ङीपोभ्यनुज्ञा-
नात् सुजम्भीत्या अपि भवति । अत्र च योगे 'अनो बहुव्रीहेरि'त्येवानुवर्त्तते न
तु 'मन' इति सीमादेः प्रातिपदिकाद् ङीवभावः । सुजम्भीत्यादौ तु अव-
न्तबहुव्रीहत्वाद्भवत्येव । सुपर्वो सुशर्मेत्यादौ तु 'अन उपधालोपिने-
न्यतरस्यामि'ति नियमाव भवति । सिद्धे सन्यः रभ्यमाणाय नियमार्थः ।
यदन्यतरस्या ङीव्विधान तदुपधालोपिन एवेति, अत्र ह्यल्लोपो 'न संयो-
गादुमन्तादि' नि निषिध्यते । वमन्तात् संयोगात् भसजानिमित्ते प्रत्यये
एरे ऽल्लेपो नेति सूत्रार्थः । 'जम्भा सुहरितवृणे'त्यत्र जम्भेति भाविना
समामान्नेन निर्देशात्समासार्थं तदुत्तरपदादकृते एव समासे समासान्ता
इत्यय पक्षो ज्ञायते । तेन द्विपुरीत्यादि सिद्ध्यति । यदि ह्यत्र 'अक्पू-
रञ्च'रित्यक् र. समासे कृते स्यात् तदा समासस्याकारान्तोत्तरपदत्वाभा-
वात् 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्यत इति स्त्रीलिङ्गता न स्यात् ।
जृम्भते । जृम्भिनेत्यादि । यङ्लुको 'रीष्टत्वत' इति वचनादुपिथीको भवन्ति ।
जरीजृम्भते । जरीजृम्भीति । इत्यादि । जृम्भयति । अजजृम्भत् । जृम्भिति
विनाशनायं चुरादौ । भाषार्थाय परस्मैपदित्वपि इति केचित् ॥ ३८६ ॥

शल्भ कन्यने ॥ शल्भते । शशल्भे । शल्भितेत्यादि ॥ ३८७ ॥

वल्भ भोजने ॥ दन्त्योष्ठादिः । वल्भते । णौ निगरणार्थत्वात्
नित्य परस्मैपदम् । वल्भयति ॥ ३८८ ॥

गल्भ धातुर् ॥ गल्भते । प्रगल्भः । अवगल्भ इवाचरति अवगल्भ-
ते । 'आचारे ऽवगल्भे'ति क्तिप्, तत्पनियोगेनाकारस्यानुदात्तत्वानुनासि-
कत्वप्रतिज्ञानात्प्रागेवाक्तमित्यनुदात्तत्वात्तङ्किपोरभावे क्यङि अवगल्भ-
यते । अवगल्भेति विशिष्टग्रहणादनुपसृष्टादन्योपसृष्टाच्चाचारक्किपि
गल्भति । प्रगल्भर्ताति भवति ॥ ३८९ ॥

श्रम्भु प्रमादे ॥ तालव्योष्मादिः, एवं काश्यपः । दन्त्यादिरिति चन्द्र । स्वामी चैव पठित्वा मतान्तरेण सन्सेति दन्त्यान्तमप्याह । मैत्रे-
यस्य त्वयमेव पत्नः । यदाह स सयोगान्तसाधर्म्येण सान्तोष्यत्र निर्दि-
श्यते । द्युतादावप्ययं पठिष्यते । तस्यैव च ध्वन्सुसाहचर्यादीगित्याहुः ।
दत्त्वे पुनरसाहचर्यमिच्छतीति । दैवेष्वेवमेवाक्तम् । तत्र तावदयं पक्षो
वृत्तितद्वाख्याकृतामनभिमत इव प्रतीयते, यद्वत्त्वसूत्रे उभयोर्यहण नीक्-
सूत्रे नास्येति चाहुः । सति ह्येवमवश्यवक्तव्यं, तथैव स्वामिचन्द्रयोरपि
पाठोनभिमत इव । यत् 'वौ कपलसकृत्यश्रम्भ' इत्यत्र श्रम्भु विश्वामदिति
वदन्नमु नेपाददत्ते, वृत्तिकारो ऽयहणे कारणं चाचष्ट । तथा व्याख्याकृ-
तोपि न वृत्तिकारवचनमुपनञ्जनानाचनना नान्यग्रहणे कारणम् । श्रम्भते ।
शश्रम्भे । श्रम्भिता । श्रम्भित्वा । श्रम्भ्या । उदित्त्वादित्थिकृत्यः 'न त्वासे-
डि'त्येकित्त्वान्नलोपाभावः । श्रम्भ्यः । 'यस्य विभाषे'त्यनिटत्वम् ॥ ३९० ॥

ष्टुभु स्तम्भे ॥ स्तोभते । तुष्टुभे । स्तोभिनेत्यादि । तुस्तुभिषते ।
तुस्तोभिषते । स्तुभित्वा । स्तोभित्वा । 'रलो व्युपधादि'ति वा कित्त्वम् ।
उदित्त्वात्पक्षे त्वायामिडभावे 'निष्ठे'ति निष्ठाया 'यस्य विभाषे'ति
स्तुब्धम्, सति 'स्तौतिण्यो'रेवेत्यणत्वं, निष्ठोभिता । निष्ठोभ्या । 'उप-
सर्गात्सुनोती'त्यादिना 'प्राक् सिनाद्दृग्ग्रथायेपी नि च षत्व, नितुस्तोभि-
षते इत्यत्राभ्यासेन व्यवायाद् स्यादित्वाच्च 'स्तौतिण्योरेवे'ति नियम एवा-
वतिष्ठते । अनुष्टुप् । पूर्ववत् षत्व, त्रिष्टुप् 'सुणामादिषु चे'ति षत्वम् ।
अनुष्टुबेवानुष्टुभम् । एव त्रैष्टुभं, कृन्दसः प्रत्ययविधाने नपुसके स्वार्थउ-
पसख्यानमिति स्वार्थे उत्सादिभ्यः प्राग्दीव्यतीयोण, स्वार्थेपि प्राग्दीव्य-
तीयः । तिष्यादय उदात्ता अनुदात्तेतः तिपिबर्जम् ॥ ३९१ ॥

गुपू रक्षणे ॥ एतदादयः शुम्भान्ता उदात्ता उदात्तेतः ॥ 'गुपूधूप-
विच्छिपणिपनिभ्य आय' इत्यायः स्वार्थे । 'आयादय आर्द्धधातुके वे'ति
आर्द्धधातुके विषये विकल्पेनायमुत्पाद्यते । तस्मिन् लघूपधगुणः, आया-
दय आये यङ्णिङः । 'सनाद्यन्ता धातव' इति धातुत्व, गोपायति । गोपायां
चकार् । कास्मत्यया 'दि'त्याम् । गोपायिता । गोपायिष्यति । गोपायतु । अगो-

स्तद्विन' इति टिलोपः । अत्र शाकटायनः क्षीरस्वामी सचति चाहुरि-
त्युक्त्वा सचति सचिव इत्यप्याह ॥ ३९७ ॥

रप लप व्यक्ताया वाचि ॥ रपति । लपतीत्यादि जपिवत् ।
विनापयति पुत्रमित्यत्र जन्यन्यादिवात्प्रयोज्यस्य कर्मत्वम् । अलील-
पत् । अनलापत् । काण्यादित्वाद् उपधाह्रस्वविकल्पः । राप्यः ।
लाप्यः । 'आमुयुवपिरपिलपित्रपी'ति एयत् । यतोऽपवादः । अत एव जप-
तिना ममानार्थत्वपि पृथग्निर्देशः । रिपुः । 'रपेरिच्ञोपधाया' इति उप-
त्यय उपधाया इकारः ॥ ३९८ ॥

चुप मन्दाया गतौ ॥ चोपयति । चुपोप । चोपिता । चुचुपि-
यति । चुचोपिपयि । चुपित्वा । चोपित्वा । 'रलो व्युपधादि'ति कित्त्व-
विकल्पः । चोचुष्यते । चोचुपीति । चोचोप्ति । चोपयति । अचूचुपत् ।
चोपनः । चलनार्थत्वाद् युच् । शौ नित्यं परस्मैपदम् । गले चोष्यते
गलेचोपक्र । 'कृत्यल्युटो बहुलमि'ति बहुलवचनाद् एयन्तादस्मात्क-
र्मणि शचुन् । 'कर्तृकरणे कृता बहुलमि'ति बहुलवचनात् सप्तम्यन्त-
स्यापि समासः । 'तत्पुरुषे कृति बहुलमि ति अलुक्, 'अमूर्द्धमस्तका-
त्स्वाङ्गादकाम' इति वा, उदुपधाद्वावादि कर्मणोर्निष्ठायां वा कित्त्वे
चुपिनमनेन । चोपितमनेनेत्यादि । चुप्रम् । चजेन्द्रादौ रकि निपातितः ।
'स्वरेण नीचेन शपिञ्छुपिं विपिमि'त्यनिट्कारिकापाठो द्वितीयादेरिति
तत्र तौदादिकस्य कुप सस्पर्शनइत्यस्यैव ग्रहणं न त्वस्य ॥ ४०० ॥

तुप तुम्य रुप रुम्य तुफ तुम्फ रुफ रुम्फ हिंसार्थाः ॥ तोपती-
त्यादि चुपिवत् । तुम्यति । तुतुम्यतुः । सयोगान्तत्वाल्लिटो न कित्त्व-
म् । तुम्पिता । तुम्पिष्यति । तुम्यतु । अतुम्यत् । तुप्यात् । 'किदाशि-
षी'ति कित्त्वा दनिदितामि'ति नलोपः । अतुम्पीत् । अतुम्पिष्यत् । तुतु-
म्यपनि । तोतुप्यते । तोतुम्पीनि । तोतुम्पि । तोतुप्तः । तुम्ययति ।
अतुतुम्यत् । प्रस्तुम्यनि गौः । प्रातुम्यतौ गवि कर्त्तरीति सुट् । तुम्यते-
स्तुम्यनाशिर्नि धातुनिर्देशो न तिङन्तानुकारणमिति प्रस्तुम्यः प्रस्तुम्यक
इत्यादावपि भवति, प्रतोतुम्पीतीत्यादावत एव शित्वा निर्देशाद् भव-

ति । ज्ञोपति । जुम्पति । तोफति, तुम्फति । ज्ञोफति । जुम्फतीत्यादि
तुपितुम्फवत् । तत्रारेफसरेफयोः सानुषङ्गपट्वितीयान्तयोः सेट्त्वाद्
'नोपधात्यफान्ताद्वे'ति क्त्वविकल्पनात् पक्षे नलोपे जुपित्वा । जुम्पि-
त्वा । जुफित्वा । जुम्फित्वा इति भवति । अरेफाश्चत्वारस्तुत्रादावपि ।
आद्यस्तु चुरादावपि । तत्र त्वर्दनमर्थः ॥ ४०८ ॥

परं रफ रफि अर्बं पर्वं लर्बं बर्बं मर्बं कर्बं खर्बं गर्बं शर्बं पर्वं चर्वं
गती ॥ आद्यः प्रथमान्तः । परौ द्वावपि द्वितीयान्तौ । एकादश परे
तृतीयान्ताः । द्वितीयतृतीयौ मुक्त्वा सर्वे रोपधाः । पर्पति । पपर्प ।
पर्पितेत्यादि । पर्यन्तेनेति पर्पः, येन पीठेन पङ्गवश्चरन्ति स उच्यते ।
'हलश्चे'ति घञ् । पर्पेण चरति, पर्पिकः । 'पर्पादिभ्यष्टनि'ति तृतीया-
न्ताच्चरत्यर्थे ष्टन् । षित्वात् स्त्रियां पर्पिकी । रफति । अर्बति । आन-
र्ब । अर्बिता । पर्वति । लर्बति । बर्बति । मर्बति । कर्बति । खर्बति ।
गर्बति । शर्बति । सर्बति । असिषर्बत् । चर्वति । अर्वादयो नोपधा
इति कौशिकः ॥ ४२२ ॥

कुबि क्वादने ॥ कुम्बतीत्यादि । कुम्बा । गुरुमत्त्वादकारः । 'चि-
न्तिपूजिकणिकुम्बिचर्वश्चे'त्यङ्विधौ चौरादिकस्य ग्रहणम् ॥ ४२३ ॥

लुबि लुबि अर्दने ॥ लुम्बति । तुम्बतीत्यादि । तुम्बी अलावूः ।
गौरादित्वान् ङीष् ॥ ४२५ ॥

लुबि वक्रसंयोगे ॥ लुम्बतीत्यादि । लुम्ब्यादयस्त्रयश्चुरादौ ॥ ४२६ ॥

शृभु शृम्भु हिंसार्थौ ॥ अत्र मैत्रय एव पठित्वा शिभु पिम्भु इत्ये-
कद्विचकारस्य स्थाने इकारमप्याह । तरङ्गिण्या तु चकारवन्तौ
दन्त्यादौ पठित्वा योषदेशपर्युदासे स्रग्गणेनानर्थकस्यापि ग्रहणमित्यु-
क्तम् । सर्भति । ससर्भ । सर्भितेत्यादि । सिषर्भिषति । मैत्रेयपाठे 'स्तौ-
तिण्योरवे'त्यणत्वम् । सरीशृभ्यते । सरीशृभीति । सरिशृभीति । सर्षु-
भीति । सरीशृब्धि । सरिशृब्धि । सर्षुब्धि । सर्भयति । अससर्भत् ।
असीसृभत् । उर्चद्वा । सिषर्भिषति । तरङ्गिणीमते तु षत्व न भवति ।

बाणिज्यमिति 'प्रज्ञादिभ्यश्चेत्यणन्ताद् वाणिजशब्दात् 'गुणवचनज्ञा-
 ह्यणादिभ्यः कर्मणि चेति ब्राह्मणादेराकृतिगणत्वात् ष्यञि । कर्मणि
 चेति चकारेण भावः समुच्चयीते । विविधमत्र पणन्तइति विपणिः ।
 इतिर्नाम् । पणमम् । पणपर्याय' । 'अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनभि-
 तपिपनिपनिपणिमहिभ्योऽमजित्यमच् । 'गुणधूपे त्यायो व्यवहारार्थस्य
 नेत्युक्तान्युदाहरणानि तद्विपर्याणि । तथा च वृत्ति, स्तुत्यर्थेन पणिना
 साहचर्यात्तदर्थः पणिः प्रत्ययमुत्पादयतीति । एव न्यासपदमञ्जरीदि-
 ष्वपि । अत एव नरङ्गिण्यामपि । न चोपलेभे वणिजा पणाया इति
 प्रयुञ्जानो भट्टिर्धनं इत्युक्तम् । पणायति राजानम् । पणायां चकार ।
 पणायितेत्यादि । आट्टधानुवविचक्षायामाधानुत्पत्तौ उक्तान्येवोदाहर-
 णानि । गुण्यादिवदापोत्यतिविकल्पस्य प्रयोजनं पणइत्यादिसिद्धिः ।
 पणा चकारेत्यादिनिवृत्तिश्च । निवृत्तिविकल्पे हि प्रत्ययलक्षणं प्रत्य-
 यान्तादाम् स्यात् । एवमन्यत्रापि प्रयोजनानि गुणवक्ष्यानि । अत्र
 स्वामिकाशयपममताकारवासुदेवादयः पणायतइत्याधान्तादात्मनेपदमु-
 दाहरन्ति । तदमत् । यदम्यानुदात्तत्वं व्यवहारार्थस्यायाभावात् स्तुत्य-
 र्थम्याट्टधातुक्रयायविकल्पनान् प्रकृतावेव चरितार्थम् । अवयवे चावरि-
 तार्थं लिङ्गं समुदायस्य विशेषकं यथा जुगुप्सतइति, स्पष्टं चैव 'गुणधूपे'-
 त्यत्र न्यासपदमञ्जरीदिषु । अत्र मैत्रेन्द्रन्यासे पणते. सार्वधातुकेष्वप्यो
 विकल्प उक्तः । तथा मुधाकरकाशयपनरङ्गिणीकाराश्च विच्छेस्तुदादि-
 पाठान्लिङ्गात् सार्वधातुके ऽपि विकल्पमाहुः । नित्ये ह्याये विच्छाय-
 तीति शेषापि सिद्ध्यतीति किं तत्र पाठेन, न चास्ति स्वरभेदः । शे कृते
 प्रत्ययस्वरेण तस्यादात्तत्वे धातुर्वर्ज्यमानस्वरेणानुदात्तः, शपि तु अस्य
 पित्त्वेनानुदात्तत्वात् धातोरेतत् इति धातुरन्तोदात्तः । तत्र 'एकादेश
 उदात्तोनादात्त' इत्युभयथापि विकरणान्तस्योदात्तत्वात् । अनेनैवाभि-
 प्रायेण च्छुः, शूडि'त्यत्र न्यासे गा विच्छति गोविडित्युक्तम् । नैतत्साधु ।
 विच्छायती विच्छायन्ती, 'आच्छीनदो'रिति नुम्विकल्पस्य प्रयोजनस्य
 संभवात् । शपि तु 'शप्श्यनोर्नित्य'मिति नित्यो नुम् स्यात् । 'गुणधूपवि-

च्छी'त्यत्र कैयटपदमञ्जर्यादिष्वप्येवमेव स्थितम् । विच्छ गतावित्यत्रा-
त्रेयमैत्रेयावप्येवमेवाहतुः । तथा देवोपि विच्छेरपि शतुर्वा नुम् स्यादिति
तुदादितेति । अत्र पुरुषकारे तुदादौ विच्छिः पठ्यते, न तु विच्छाय-
तिरिति विच्छेरेवानन्तरेण शेष भाव्यम् । स चैव भवत्रायविकल्पस्य
कल्पकः स्यादेव । अत्रैवा'यादय आर्द्धधातुके वे'त्यत्र न्यासान्तरम्,
आयादयः शपि नित्यमिति भाव्य चानुकूलम् । नित्ये विच्छेराये शब्द-
हण शित उपलक्षणमिति कल्प्य स्यादिति सुधाकराद्युक्तमेव समर्थितं,
नाय भाष्यस्यार्थः । तत्र हि परवत्तमीत्वमाश्रित्य सूत्र दूषयित्वा तत्प-
रिहाराय सार्वधातुके नित्यमित्यभिहितम् । तत्रायायेनानवकाशेन विक-
रणाना बाधदोषमुद्भाव्य तत्परिहारायैव यथा पुनरयं सूत्रभेदेन परि-
हारः, यदि पुनः शपि नित्यमित्युच्यत सिध्यतीत्युक्तं, तेनापि न्यासेन
सार्वधातुके नित्यमित्यनेन समानफलेन भाव्य, तच्च शब्दहणस्य
शित उपलक्षणत्वमेव युज्यते, अतश्चोपलक्षणत्वमेष्टव्यम् । तत्तत्र यथा-
न्यासमेवास्तु इति सूत्रमेव विषयसप्तम्याश्रयणेन सिद्धान्तितम् । अत
एव च तत्र कैयटेन तौदादिकाद्विच्छेः शेष भाव्य न तु शप, एवं तर्हि
न्यासभेदोपलक्षणार्थमिदं शिति नित्यमिति न्यासः कर्तव्य इत्युक्तम् ।
यदप्युक्तं पुरुषकारे 'तुदादिभ्यः श' इति हि शो विधीयते न तु विच्छा-
ये, विच्छेरेव तुदादिषु पाठात्तच्चैतद्विच्छेः शविधानमाये नित्ये सति
आयान्ताद्वावात्यरिक्लिश्यतइति, तदपि सूत्रस्वभावादाये नित्ये सति
गुणाद्रिष्वनुबन्धकरणवत् विच्छेः पाठोऽपि समुदायार्थेतया युज्यतइति
न संकटम् । तथा च हरदत्तः । विच्छिरयं तुदादौ पठ्यते तत्सामर्थ्या-
दायप्रत्ययान्तादपि शविकरणो भवति न तु शप्, यथा जुगुप्सते इत्या-
त्मनेपदं, तेन विच्छायती विच्छायन्तीति 'आच्छीनद्वो'रिति नुम्विकल्पो
भवतीति । पनायतीत्यादि । पणिवत् । पनसः । 'अत्यमी'त्यादिना
असच् ॥ ४३६ ॥

भाम क्राधे । भामते । बभामे । भामितेत्यादि । बिभामिषति ।
बाभान्ति । बाभान्मि । बाभान्वः । बाभान्मः । 'नुगत' इति तपरक-

रणात् यङ्लुकोरभ्यामस्य न लुगागमः । 'म्बोश्चे'ति मकारान्तस्य धातो-
र्नकारादेशो भवति मकारवकारयोः परन् इति मकारस्य नकारः । लुङि
अब्रामान् । 'मा नो धातो' रिति नकारः पदस्येति शेषः । एवं क्विपि
भान् । भामः क्रोधः मोऽस्यास्तीति भामिनी । देवदत्ताय भामतइ-
त्यत्र 'क्रुधद्रुहेर्यामुपार्याना यं प्रति कोप'इति कोपविषयत्वेन देवदत्तस्य
संप्रदानत्वम् । अमर्षः क्रोधः । अपकारो द्रोहः । अक्षमा ईर्ष्या । गुणेषु
द्रोषाविकरणमूपा ॥ ४३७ ॥

तमूप् सहने ॥ तमते । चतमे । चतमिषे । चतसे । चतमिध्वे ।
चतन्ध्वे । चतमिवहे । चतण्वहे । चतमिमहे । चतण्महे । ऊदित्वा-
त्सर्वत्र घलाद्याटुंधातुकङ् द्विकल्पः । अनिटपक्षे 'म्बोश्चे'ति नत्वे 'रणा-
भ्या'मिति णत्व, तमिष्यते । तस्यते । तमताम् । अक्षमत । क्षमेत ।
आशिषि । तमिषीष्ट । तमीष्ट । अक्षमिष्ट । अक्षस्त । अक्षमिष्यत् ।
अक्षस्यत् । कर्मादौ तम्यते । अक्षमि । 'नादात्तोपदेशस्य मान्तस्याना-
चमे'रिति चिणि णिति कृति च वृद्धिनिषेधः । चित्तमिषते ।
चित्तमते । चङ्म्यते । चङ्ममीति । चङ्मन्ति । 'तुगत' इत्यभ्यासस्य नुक् ।
लुङि 'ह्यन्ते'ति वृद्धिनिषेधात् अचङ्ममीत् । तमयति । अचित्तमत् । 'ज-
नीवृषकसुरज्जोमन्ताश्चे'ति अमन्तत्वलक्षणे मित्वे 'मितां ह्रस्व'इत्युप-
धाया ह्रस्वः । तमित्वा । क्षान्तः । क्षान्त्वा । 'यस्य विभाषे'त्यनिट-
त्वम् । क्षमः । घञ् । क्षमकः । एवुल् । अपराधक्षमः । अपराधक्षमा ।
'ईक्षितमिभ्यां चे'त्यणोपवादे णः । अणि हि ङीप्स्यात् । क्षमा । 'वि-
द्विदादिभ्योङि'ति षित्त्वात् स्त्रियामङ्, एयन्तस्यास्य 'चिण्णमुलोर्दीर्घा-
न्यतरस्या'मिति चिण्णमुत्परे णौ मितामुपधाया दीर्घविकल्पनात् अक्ष-
मि । अक्षामि । क्षमंक्षमम् क्षामंक्षाममिति भवति । 'आभीक्ष्ण्ये णमुल्
च' । अस्मिन् गम्यमाने समानकर्तृकत्वे पूर्वकाले च णमुलिति णमुल् ।
चकारः त्वाममुच्चयार्थः । आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति द्विर्वचनम् । पौनः-
पुन्यमाभीक्ष्ण्यम् । स्याद्विष्यपि दीर्घविकल्पः चिण्वदिटपक्षे भवति ।
क्षामिष्यते । क्षमिष्यते । अक्षामिषाताम् । अक्षमिषाताम् । क्षामिषीष्ट ।

तमिषीष्ट । तामिता । तमितेत्यादि । चिण्वदिटोभावे तमयिष्यते । अक्ष-
मिषाताम् । तमयिषीष्ट । तमयितेति । लुङ्येकवचने चिण्परो णिरि-
ति पक्षे दीर्घा भवति । अक्षमि, अक्षामीति । यङ्लुगन्तादपि चिण्णमु-
लोश्चिण्वदिटि च अयं दीर्घविकल्पो द्रष्टव्यः । अचङ्क्षामि । अचङ्क्षमि ।
चङ्क्षामचङ्क्षामम् । चङ्क्षमचङ्क्षम् । चङ्क्षामिष्यते । चङ्क्षमिष्यते इत्यादि ।
अत्राप्यचिण्वत्पक्षे चङ्क्षमिष्यतइत्यादि । अत्र 'चिण्णमुलोऽन्यतरस्या'मिति
ह्रस्वविकल्पेनापि सिद्धे दीर्घग्रहणं ग्यन्ताद्ग्रन्ताच्च णौ चिण्णमुल्पर-
दीर्घन्तार्थम्, अक्रियमाणेस्मिन् णिलोपाल्लोपयोः परनिमित्तयोः पूर्वस्य
ह्रस्वविकल्पे कर्तव्ये स्थानिवत्त्वाच्च चिण्णमुल्पर-
णौ मिदङ्गमनन्तरमि-
त्यसौ न स्यात्, क्रियमाणे तु दीर्घविधिं प्रति न स्थानिवदिति स्था-
निवत्त्वं निषिद्ध्यते । नन्वेवमपि दीर्घं कर्तव्यं ग्यल्लोपयोः 'सिद्धवद-
त्रे'त्यसिद्धत्वात् व्यवधानं दुर्वारम् । नैतत् । व्याश्रयत्वेनासिद्धत्वाभा-
वात्, तथा च वामनः, णौ हि णियङोर्लोपः, चिण्णमुल्पर-
णावङ्गस्येति दीर्घत्वमिति । अयमपि दिवादौ ॥ ४३८ ॥

कमु कान्तौ ॥ 'कमेर्णिङि'ति स्वार्थं णिङ्, अयमाहुर्धातुके विक-
ल्पेनोत्पद्यते । अत्राप्युत्पत्तिविकल्पस्य प्रयोजनं गुपिवद् द्रष्टव्यम् ।
कामयतेर्ङित्वात्तङ्, कामयाञ्चक्रे । कामयिता कामयिष्यते । कामय-
ताम् । अकामयत । कामयेत । आशिषि कामयिषीष्ट । अचीकमत ।
णियग्रहणेऽप्ययमपि गृह्यतइति 'णिश्रीति' कर्तरि चङ् । 'णेरनिटी'ति
णिलोपे 'णौ चङी'ति ह्रस्वः । चिकामयिषते । कामयति । णिङन्ताण्यौ
'णेरनिटी'ति लोपः । कामयित्वा । कामना । 'ण्यास्रश्चन्ये'ति युच् । मांस-
कामः । मांसकामा । 'शीलिकामिभित्तिचरिभ्या ण' इति अणोऽपवादे
णः । अणि हि सति स्त्रिया ङीप्स्यात् । णिङभावे चकमे । कमिता ।
कमिष्यते । कमिषीष्ट । अचकमत । 'कमेरुपसख्यान'मिति कर्तरि चङ् ।
अकमिष्यत । चिकमिषते । चङ्कम्यते । अत्र यङ्लुङ् नेति गुप् रत्न-
इत्यत्र स्थापितं तत एवागन्तव्यम् । कामयति । 'न कम्यमिचमा'-
मिति, मित्वनिषेधाद् वृद्धिः । 'चिण्णमुलो'रिति दीर्घविकल्पो मिद्वि-

स्य'नुक्रममुन्वयार्थत्वात् घः । कणिका । संज्ञाया कनि प्रत्ययस्यादि'ती-
त्वम् । कण्ठः । कण्ठः । बाहुलकात् ठस्येकाभावः । अयं निमीलना-
र्थश्चुरादौ । कणति । चक्राण । कणितेत्यादि । क्राणः । कणः ।
निक्राणः निक्रणः । क्रन्याणप्रक्रणा वीणा । क्रन्याणप्रक्राणेति वा ।
'क्रणो वीणाया च' । अनुरसुटाः विपूर्वात् वीणाविषयान्व क्रणोर्वा उप-
त्ययः । सोपमगार्थे वीणाग्रहणम् । कुणालो धान्य यज्ञोपकरणं च ।
'पीयुक्कणिभ्या कालन् ह्रस्वः सप्रसारण चेति कालन्प्रत्ययः यथासख्या-
त्सप्रसारणं च । कुणपम् । 'कण' सप्रसारण च' इति पन्प्रत्ययः सप्रसा-
रण च । कङ्कणीका । प्रतिमरः । 'चङ्कणेः कङ्कणश्चेति यङ्लुगन्ता-
दीकन्प्रत्ययः कङ्कणादेशश्च । व्रणति । व्रणाण । व्रणितेत्यादि । अयं
वशादिः क्वचि त्यज्यते । दन्तोद्यादिरेव सर्वत्र, तथा च यादवः, व्रणे-
श्शब्दार्थेऽप्ये, व्रणमात्रवृत्तेनैव गान्त्रवृत्तेनार्थोय कयादिः । भ्रणति ।
व्रणाण । भ्रणिता । ध्वणति । दध्वाण । ध्वणितेत्यादि । ध्रणिरपि
संभतायामत्र पठ्यते ॥ ४४८ ॥

ओणृ अपनयने ॥ ओणति । प्रोणति । ओणा चकार । ओणिता ।
ओणिणिषति । ओणयति । मा भवानौणिण् । ऋदित्वाच्चेपधाह्रस्वः ।
इदमेव ऋदित्त्वं द्विवचनान् पूर्वमुपधाह्रस्वत्वे ज्ञापकमित्युक्तम् । अवावा ।
'अन्येभ्योपि दृश्यत' इति वनिपि विद्वनोरनुनामिकस्यात् इति णकारस्या-
कारे ऽवादेशे 'सर्वनामन्यान' इत्युपधादीर्घे नलोपः । स्त्रियामवावरी ।
'वनो र चेति वचन्तप्रातिपदिकत्वात् ङीब्रौ । 'वनो न हश्' । हशन्ता-
व्यो षन् विहितस्तदन्तान् ङीब्रौ नेत्यय प्रतिषेधः प्रायिकत्वादत्र नेति
न्यासादौ ॥ ४५० ॥

शोणृ वर्णगत्याः ॥ शोणति । शुशोण । शोणिता । शुशोणिषति ।
शोशोण्यते । शोशोण्टि । शोणयति । अशुशोणत् । शोणितम् । शोणः ।
शोषी । शोषा । 'शोषात्प्राचामि'ति वा ङीप् ॥ ४५१ ॥

ओणृ संधाने ॥ ओणतीत्यादि । ओणिः । इन्प्रत्ययः । ओषी ।
कृदिकारत्वाद्वा ङीप् । ओषा । नञ्चम् । अजन्ताद्वाप् ॥ ४५२ ॥

श्लोण च ॥ श्लोणतीत्यादि । शोणादयः तालज्योष्मादयः ॥ ४५३ ॥

पैण् गतिप्रेरणश्लेषणेषु ॥ लेण् इति क्वचिन्मथने । पैणती-
त्यादि ॥ ४५४ ॥

ध्रण् शब्दे ॥ उपदेशे नान्तायमिति प्रागस्य निर्देशो न कृतः । तस्य
प्रयोजनं यङ्लुकीति मैत्रेयः, अतोस्य दण्डके पाठः प्रत्युक्तः । ध्रणतीत्यादि ।
'रषाभ्या'मिति णत्वम् । यङ्लुकि दन्धन्ति दन्धान्त इत्यादौ णत्वस्य
'नश्चापदान्तस्ये'त्यनुस्वारे ऽसिद्धत्वात् कृते तस्मिन्यसवर्णः, तस्यासिद्ध-
त्वात् पुनर्णत्वम् न भवति । अभ्यासस्य 'नुगत' इति तुक् । अस्मादनन्तरं क्वचित्
कोशे वण भण धण इति त्रयः पठ्यन्ते, तत्र भणिमैत्रेयानुसारेण दण्डके
पठितः । धणिरपि समतायामिति तत्रैवोक्तम् । वणति । वणः । उद्वुण
इत्यच् ॥ ४५५ ॥

कनी दीप्तिकान्तिगतिषु ॥ कनति । चक्रान । कनितेत्यादि ।
कन्या । कन्याया अपत्य कानीनः । 'कन्यायाः कनीन चे'ति अण् कनीना-
देशश्च । अत एव निर्देशाद्वत्, स्वरितान्तत्वं तु 'तिल्यशिश्र्यमर्त्यकाश्म-
र्यधान्यकन्याराज्यमनुष्णामन्त' इति, अन्यथा 'यतोनाव' इति यदन्तस्य
द्वचो विधीयमान आद्युदात्तः स्यात् । कनकम् 'कुन् शिल्पिसंज्ञयो'रिति
कुन् ॥ ४५६ ॥

ष्टन वन शब्दे ॥ स्तनति । तस्तान । स्तनितेत्यादि । तिस्तनि-
षति । तंस्तन्यते । तंस्तनीति । तंस्तन्ति । ध्वनतिवत्प्रक्रिया । स्तन-
यति । अतिष्टनत् । अभिनिष्ठानः । विसर्जनीयः । 'अभिनिः स्तनः
शब्दसंज्ञायामि'ति वत्वम्, अन्यत्राभिनिस्तनति मृदङ्गः । अत्र न्यासे सका-
रादिरय पठितः । तदस्य पोऽद्वेगपर्युदासगच्छे उपादानाविर्मूलम् । अत
एव पुरुषकारे मूर्द्धन्यादिरेवायं दर्शितः । स्तान्यम् । ण्यत् । स्तनः । अच् ।
स्तन्यम् । 'शरीरावयवाद्यत्' इति भवार्थं यत् । स्तनितम् । स्तनयतीति
देवशब्दार्थस्य कथादिपठितस्य । वनति । ववान । ववनत् । वनितेत्या-
दि । वनितम् । वनित्वा । वतिः । क्तिनि 'तितुत्रे'तीणनिषेधा'दनुदात्ताप-
देशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो भलि क्ङिति' इत्यनुनासिकलोपे

वतिरिति भवति । अनुदानोपदेगा यमिरमिनमिहनिगमिमन्यतयः । प्रवत्य ।
 'आ ल्ययी ल्यनुदानोपदेगादीना विधीयमानोयमनुनासिकलोपविकल्पो
 अवस्थितविभाषाविनानात् नान्तेषु नित्यः, अन्यत्र विकल्प इतीह
 नित्यः । वन्तिः । क्तिच् 'न क्तिचि दीर्घश्चे'ति दीर्घानुनासिकलोपयो-
 निषेधः । 'अनुदानोपदेगवननी'ति शितपा निर्देशात् ववान्त इत्यादावनुना-
 सिकलोपो न भवति । वनोतिनिवृत्त्यर्थं तु शितपा निर्देशो न भवति ततो-
 त्यादित्वेन तस्यानुनासिकलोपस्येष्टत्वात् । वनिष्ठः । अपान मांसविशे-
 षश्च । अतन्यद्विवनित्यन्त्यादिनेष्टुच् । वनम् । अच् । वनाना समूहो वन्या ।
 'पाशादिभ्यो य'इति समूहे यः । तदेतत्त्वभावात् स्त्रीलिङ्गम् । वन्यम् ।
 दिगादिन्याद्वृत्तार्थं यच् । वानेयम् । पूर्वमगरीति नद्यादित्वात् ढक् शेषिकः ।
 वनिः । वनी । कृदिकारादक्तिन'इति वा ङीप् ॥ ४५८ ॥

वन पण सभक्तौ ॥ वनेरर्थभेदाभ्यामनः पाठ इति मैत्रेयः । तथैवेदा-
 हरणानि । मनति । ममान । सेननु । मनितेन्यादि । सायात् । सन्यात् ।
 'किडागिर्षानि' क्तिच्वाद् । 'ये विभाषा'जनसनखना यकारादौ क्तिन्यात्वं
 वेति तद्विकल्पः । एव यथङोरपि । धातुपारायणे तु 'लोपो यी'तिवद्वृत्त-
 मात्रे निर्देष्टव्यं य इत्यत्वतो निर्देशाद्यासुट्यात् नन्युक्तम् । सिसनिषति ।
 सिषासति । 'मनीवन्तवृभस्जदभुश्रिस्व्यूर्णुभरजपिमना'मितीद्विकल्पः ।
 इदभावे'जनमनखना मन्भक्तौ रिति भलादौ सनि कृडिति विधीयमा-
 नमात्व भवति । सामायते । संसन्यते । 'ये विभाषे'त्यात्वम् । इदं च क्तिन्ये-
 वेति एयति न भवति सान्यमिति । संसनीति । ससन्ति । ससातः ।
 प्रकृतिग्रहणन्यायेन 'जनमने'त्यात्वे 'अनुनासिकस्ये'तिदीर्घ परत्वाद् बा-
 धित्वा ऽच्चापि भवति । सातिः । सातः । सातवान् । आत्वसूत्रे च भला-
 दिसन् जनमनोर्न सभवतीति सनोतेरेव विशेषणमिति वदता वृत्तिकारेण
 मनोनेः 'सनीवन्ते'नि पठदडागमः, तदिह सनोत्यर्थमेव सन्ग्रहणमित्यभि-
 धानादिद्विधात्वात्वे च तानादिकस्यैव ग्रहणमिति च प्रतीयते । अन्ये तु
 पुनरभयत्राभयोर्ग्रहणमाहुः । एवं वृत्तौ सनोतेरित्युपादानं तस्यानुनासि-
 कलोपादात्वं विप्रतिषेधेनेति वक्ष्यामीत्येवमर्थं मन्तव्यम् । सानुः । 'दृस-

निजनिचरिचिठभ्यो जुणि'ति जुण्प्रत्ययः । वनु पाने, षणु दानइति द्वय
तनादौ ॥ ४६० ॥

अम गत्यादिषु ॥ कनी दीप्तिगतीत्यत्र गतेः परयोः शब्दसभक्त्योरा-
दिशब्देन यहः । अमति । आम । आमतुः । अमितेत्यादि । अमिमिषति ।
आमयतीत्यत्र 'न कम्पमिचमा'मिति मित्वनिषेधा 'न्मितां ह्रस्व' इति ह्रस्वा-
भावः । अम्यम् । अमितवान् । 'पोरदुपधादि'ति यत् । अमित्त्वात् निष्ठा-
या 'ह्रस्वमत्वरसधुषास्वना'मितीड्विकल्पनात् अमितः । आन्तः । अमि-
तवान्, आन्तवान् इति भवति । इडभावे 'अननासिकस्य क्किभलोः क्किड-
ती'ति दीर्घः क्किपि पूर्ववत् । दीर्घं 'मो नो धातो'रिति नत्वे आनिति
भवति । नलोपस्तु न भवति असिद्धत्वादिति प्रागेवोक्तम् । अमः । घञि
'नोदात्तोपदेश' इति वृद्धिनिषेधः । अत एव चिण्यपि ण्यन्तात् 'न
कम्पमी'ति मित्वनिषेधात् । ण्यपेक्षया वृद्धौ मा भवान् आमीति
भवति । आमय इत्यम रोगइति चौरादिकस्य । अमत्रम् । 'अमिनक्षि-
यजिबध्निषतिभ्यो ऽत्रनि'त्यत्रन् । अमित्र । 'अमेवृषि चिच्चे'तीत्रप्रत्य-
यः । आम्रः । 'अमितम्योर्दीर्घश्चे'ति रप्रत्यये दीर्घः । आन्त्रम् । 'अत्य-
मिचमिशसिभ्यः क्रनि'ति क्रन् ॥ ४६१ ॥

द्रम हम्म मीमृ गतौ ॥ द्रमति । दद्राम । द्रमितेत्यादि । लुङि 'ह्यन्ते'ति
वृद्धिनिषेधात् अद्रमीत् । दिद्रमिषति । दन्द्रम्यते । दन्द्रमीति । दन्द्रन्ति ।
दन्द्रान्त इत्यादि । उत्तमे 'म्बोश्चेति' नत्वे णत्वम् । दन्द्रणीत्यादि ।
अदन्द्रचित्यत्र तिप्सिपोर्हल्ङादिलोपे 'मो नो धातो'रिति नत्वे 'पदा-
न्तस्ये'ति णत्व न भवति । द्रमयति । अदिद्रमत् । अमन्तत्वान्मित्वम् ।
अद्रमि । अद्रामि । द्रमद्रमम् । द्रामंद्रामम् । 'चिण्णमुलो'रिति दीर्घ-
विकल्पः । स्यादिषु चिण्वदिटपत्ते दीर्घविकल्पे णिलोपे च द्रमिष्यते द्रामि-
ष्यतइत्यादि । शुद्धे पुनरिति गेर्गुणायादेशयोर्द्रमयिष्यतइत्यादि । अण्य-
न्तात् चिणि 'नोदात्तोपदेशे'ति वृद्धिनिषेधात् अद्रमीत्येवेति । एवं
णिति कृति च द्रमः द्रमक इत्यादि । दन्द्रमणः । 'लुचङ्गुम्ये'त्यादिना
तच्छीलादौ यहन्तादस्माद्युचि अल्लोपयलोपौ । द्रमिडः । 'अमत्ताडु'

इति ङः । 'नेद्वृशि कृती'ति निषेधो बाहुलकाच्च भवति । हम्मति । जह-
म्म । हम्मिनेत्यादि । जिहम्मिषति । जेहम्म्यते । जहम्मीति । जंहन्ति
जहन्त इत्यादावनुपधात्वाचोपधादीर्घः । लङि हल्ङ्यादिसयोगान्तलोप
योर्मा नो धानो रिनि नन्वे अजहन् । हम्मयति । अजहम्मन् । हम्मित्वा ।
हम्मतिः । ज्ञान, गत्यर्थो वृद्ध्यर्थः, न हम्मतिः अहम्मतिः अज्ञानम् । यद्वा
अहमिति मतिः । अहशब्दो मान्तो हङ्कारवचनोऽयम् । मीमति । मिमीम ।
मिमीमत् । मीमितेत्यादि । मिमीमिषति । मेमीम्यते । मेमीमीति । मेमीन्त
इत्यादि । लङि अमेमीन् । मीमयति । अमिमीमत् । मीमित्वा । मीमितः ।
अयं शब्दे चेति क्वचित्पठ्यते ॥ ४६४ ॥

चमु क्मु जमु भमु अदने ॥ चमति । चचाम । चेमत् । चमितेत्या-
दि । आङ्पूर्वत्वे 'तु छिबुक्कुमुचमा शीती'ति दीर्घः । आचामति ।
आचामन् । आचामत् । आचामि । आचामयति । चिणि जिति णिति कृति च
'नोदात्तोपदेशे'ति वृद्धिनिषेधात् अचमि । चमः । चमकइत्यादि । अत्रापि
अनाचमीति वचनाद् आचामि आचाम इति वृद्धिरेव । ननु वार्तिके
अचमिकमिवमीनामिति केवलस्योपादानात् सर्वत्र वृद्ध्या भाव्यम् ।
नैतत् । यत इदं वार्तिकं धात्वन्तरमपि पर्युदसनीयं न केवलं सूत्रोपात्त
इत्येवं परम् । तथा च भाष्ये अध्यगीष्ट । अन्यल्पमिदमुच्यते अनाचमे-
रिति । अत एव न्यामश्चमेस्तावत् अनाचमेरिति सूत्रेणोपादानात्
प्रतिषेधइति । तथा वट्टम'नोपि उपसर्गोपादानात् अचमि, पर्यच-
मीति । अपि च वृत्तावपि वार्तिकस्यादाहरणमाङ्पूर्वमेव दर्शितम् ।
विचमिषति । चञ्चम्यते । चञ्चन्ति । चञ्चान्त इत्यादि । अत्रापि
प्रकृतिवदाङ् पूर्वत्वे चिणि जिति णिति कृति वृद्धिः, अन्यत्र तद-
भावश्च । चामयति । 'न कम्पमिचमा'मिति मित्वनिषेधः । चम्यते-
चेति चमसः । 'अत्यमिचमी'त्यमन् । चमूः । 'अपिचमितनिरमिसर्जिभ्य
क'रित्युकारप्रत्ययः । क्मति । चक्काम । क्ममितेत्यादि । चिक्कमिषति ।
चञ्कम्यते । चञ्कमीति । चञ्कन्ति । चञ्कान्त इत्यादि । क्मयति ।
अमन्तत्वान्मित्वम् । चिण्णमुत्परे णौ 'चिण्णमुलोर्दीर्घान्यतरस्या'मिति

वा दीर्घः । अच्छमि । अच्छामि, छमंछमम् । छामछाममिति ।
चिण्वदिटि वृद्धेर्भावाभावाभ्यां, णिलोपे'कमिष्यते, छामिष्यते इत्यादि ।
शुद्धे पुनरिति गुणाययोः छमयिष्यतइत्यादि । णिवोभावे चिणि जिति
णिति कृति च 'नोदात्तोपदेशस्येति वृद्धिनिषेधात् अच्छमि इत्यादिरेव
भवति । जमति । जजाम । जेमतुः । जमिता । भमति । जभाम ।
भमितेत्यादि पूर्ववत् । अत्र मैत्रेयः । जिमि के चिदिच्छन्ति, जेमन-
मिति । एषामुदित्वात्क्रायामिद्विकल्पे चमित्वा । चान्त्वेत्यादि भवति ।
निष्ठायां 'यस्य विभाषे'त्यनिट्त्वाच्चान्त इत्यादि । अनिति । 'अनुनासि-
कस्य क्किभ्रलोः कृडिती'ति दीर्घः ॥ ४६८ ॥

क्रम पादवित्तेपे ॥ क्रामति । चक्राम । चक्रमतु । क्रमिता । क्रमि-
ष्यति । क्रामतु । अक्रामत् । क्रामेत् । आशिषि । क्रम्यात् । अक्रमीत् ।
'ह्यन्ते'ति वृद्धिनिषेधः । अक्रमिष्यत् । 'क्रमः परस्मैपदेष्विति परस्मैपदे
शिति दीर्घः । क्रामेत्यत्र हेर्लुकि प्रत्ययलक्षणेन परस्मैपदपरशित्परत्वेन
दीर्घः । न च 'न लुमते'ति निषेधः । तस्य लुमता लुप्तप्रत्ययनिमित्ता-
ङ्गसंज्ञाविषयत्वात् । इह च हौ विकरणान्तमङ्ग क्रमस्तु विकरणे, विक-
रणश्च नित्यत्वात् पूर्वमत्र भवति । 'वा भ्राशभ्राशभ्रमुक्रमुक्रमुत्रसिचुटि-
लष' इति शब्दविषये पक्षे श्यनो विधानात् क्राम्यति, क्राम्यतु, अक्राम्यत् ।
क्राम्येदित्यपि भवति । पूर्ववद्दीर्घः । चिक्रमिषति । चङ्क्रम्यते । चङ्क्रमीति ।
चङ्क्रान्ति । इत्यादि । क्रमयति । अचिक्रमत् । 'मितां ह्रस्व'इत्यत्र वृत्तिः ।
के चिदत्र वेत्यनुवर्तयन्ति सा च व्यवस्थितविभाषा, तेन संक्रामयतीत्ये-
वमादि सिद्धं भवति, अविगीतस्तु संक्रमयतीति, अत्रैव रसातले संक्रमि-
तेत्यादिप्रयोगानुकूलः । क्रमते । चक्रमे । क्रन्ता । क्रंस्यते । अक्रमत ।
क्रमेत, क्रंसीष्ट । अक्रस्त । अक्रस्यत । 'अनुपसर्गाद्वे'ति पक्षे तङ् । अत्रापि
शब्दविषये वा श्यनि क्रम्यतइत्यादि 'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रम' इति वृत्त्यादिषु
नित्यस्तुद्धाहार्यः । वृत्तिरप्रतिबन्धः । सर्ग उत्साहः । तायनं स्फीतता,
अयं वृत्त्यादिविषयस्तु 'पपराभ्या'मिति सिद्धे सत्यारम्भाच्चियमादन्योपसृ-
ष्टाच्च भवति, तेन संक्रामतीति परस्मैपदमेव । यदायमाङ्पूर्वं उद्गमनार्थ-

स्तदा 'आह उद्गमन' इति वचनान् नित्यस्तङ्गुदाहार्य' । आक्रमते भानु-
 रित्यादि । अत्र 'ज्योतिरुद्गमन' इति वक्तव्यमित्युनन्वात् आक्रामति धूमो
 हर्म्यन्नादित्यत्र न भवति । उद्गमने वर्तमानोपमकर्मक इति कैयटउक्तम् ।
 पदमञ्जर्यां तु आक्रमति धूमो हर्म्यतनमिति वृत्तिमुपदाय उद्गमने क्रमि-
 रकर्मकः तस्मादाक्रामति धूमो हर्म्यतनादिति पठितव्यमित्युक्तम् । यद्वा
 उद्गमनपूर्विकाया व्याप्तौ अत्र क्रमिर्द्रष्टव्य इति द्वितीया समर्थिता । नभः
 समाक्रामति चन्द्रमा इत्यत्र नोद्गमन विवक्षितं किं तर्हि व्याप्तिरिति
 परस्मैपदमिति तत्रैवोक्तम् । विक्रमते । सृष्टु पदानि विविपतीत्यर्थः ।
 अश्वादीनां गतिविशेषो विक्रम इति वृत्तिः । 'वेः प'दविहरण' इति
 नित्यस्तङ्गु, अन्यत्र विक्रामत्यजिनसन्धिरिति । नृत्यतीत्यर्थः । प्रक्रमते
 भोक्तुम् । उपक्रमते भोक्तुम् । 'प्रोपाभ्यां समर्थोभ्यां' मिति नित्यस्तङ्गु ।
 समर्थौ समानार्थौ । तच्च समानार्थत्वादिश्रमणि । अन्यत्र प्रक्रामति
 उपक्रामतीति, आगच्छति उपगच्छतीति चार्थः । आत्मनेपदेषु वलाद्या-
 ध्रं धातुकस्य 'सुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्त' इतीडभावः । सुक्रमोर्वलाद्या-
 ध्रं धातुकस्येहागमो भवति आत्मनेपदनिमित्ताभावइत्युक्तार्थः । तद-
 र्थादनयोर्वलात्त्वादेवेष्टः सिद्धावारम्भादात्मनेपदनिमित्तत्वे निषेधाथं
 सूत्रं भवति । निमित्तग्रहणं कुर्वद्रूपताप्रतिपत्त्यर्थं न तु योग्यतापर-
 मिति कर्मकर्तृविषयाद्भावकर्मविषयाच्चास्मात् कृतः सत्यामपि योग्य-
 तायामात्मनेपदाभावात् प्रक्रमिता प्रक्रमितुं प्रक्रमितव्यमितीड भव-
 त्येव । न चार्थविशेषादुपमगविशेषाच्चात्मनेपदस्य निमित्तं न क्रामति-
 रिति कथमस्यात्मनेपदनिमित्तत्वमिति मन्तव्यम् । यतस्तेषां विषयतया
 विशेषणत्वात् तद्विगिष्टी धातुतेव निमित्तम् । चिक्रसतइत्यादौ 'पूर्ववत्
 सन' इत्यतिदेशात्प्रकृतिगतमेव सनन्त्यात्मनेपदस्य निमित्तमिति तस्य
 क्रमिनिमित्तत्वादितिडभावः । चिक्रस्यतइत्यादौ भावकर्मणोरपि परत्वात्
 'पूर्ववत् सन' इत्यात्मनेपदमिति प्रकृतेरेवात्मनेपदनिमित्तत्वमितीडभावः
 सिद्धः । अस्ति च विप्रतिषेधः, 'भावकर्मणो' रित्यात्मनेपदक्रमिनिमित्तत्वा-
 भावादित् स्यात्, अनेन तु सति नेति । यदा तु सनन्ताणि च तदात्मने-

पदस्य क्रमिनिमित्तत्वाभावात् चिकमीयतीतीटा भाव्यम् । तथा विक्रमि-
 षते स्वयमेवेति कर्मकर्तर्यपि । अत्र हि कर्मवदनिदेशनिमित्तमेवात्मनेपदं
 न तु क्रमिनिमित्तम् । अत्र हरदत्तः । सिद्धं सुक्रमोरात्मनेपदेन समानपदस्य-
 स्येतिनपेधात् । 'क्रमेश्चे'ति वार्तिककारवचनादिहाप्यात्मनेपदेन समानप-
 दस्यलाभादिटा न भाव्यमित्याह । भाव्यवार्तिकपूर्वापरपर्यालोचनाया समान-
 पदस्यत्वे तात्पर्यं नेति प्रतीयते । यतस्तु वार्तिककार आत्मनेपदे परं सुक्रमो-
 र्नेदित्येव सूत्रार्थं आश्रीयमाणे निर्दिष्टपरिभाषया आनन्तर्यं एव भाव्यत्वात्
 प्रचिक्रसिष्यतइत्यत्र स्येन व्यवधानात् प्रकृसिष्टेत्यत्र च सीयुट आत्मनेपदभ-
 क्तत्वात् प्रकृत्येते इत्यत्र व्यपवर्गाभावात् आत्मनेपदपरत्वाभावादिगिनपेधा-
 प्रसङ्गादात्मनेपदपरतद्परसीयुडेकादेशेषु च प्रतिषेधो वक्तव्य इत्युक्तत्वात्,
 परिहारमात्राय सिद्धं त्वात्मनेपदेन समानपदस्यस्येणनिपेधादित्याह । भा-
 व्यकृता च यथान्यासमेवास्त्विति सूत्रमेव स्थापितम् । न च तत्र समानपद-
 स्यत्वावगतिः, तथा कृतावपि, न चेत्सुक्रमी आत्मनेपदस्य निमित्ते, निमि-
 त्तग्रहणं सीयुडादेस्तात्पर्यं च प्रतिषेधार्थमित्युक्तम् । गतमदः, प्रकान्तेत्या-
 दावात्मनेपदाभावेपि क्रमेस्तु कर्तर्यात्मनेपदविषयादसत्यप्यात्मनेपदे प्रकृ-
 तिप्रतिषेधो वक्तव्य इति इडभावः । अनुपसर्गात् क्रमेः कान्ता क्रमितेत्युभ-
 यमपि भवति । 'अनुपसर्गाद्वे'ति विकल्पेनात्मनेपदविषयादित्येके । अन्ये
 त्वात्मनेपदविषयादिति अनन्यभावे विषयशब्दं वर्णयन्तः क्रमितेत्येव
 भवितव्यमित्याहुरिति । पदमञ्जर्याम् आत्मनेपदे तासावनिट्-
 त्वात् 'उपदेशेत्वत्' इति थल इणनिपेधो न्यङ् । यतः परस्मैपदे
 तासौ सेट्त्वान्नित्यानिट्त्वाभावः । कान्त्वा क्रमित्वा । उदित्वाद्वि-
 कल्पः । इडभावे 'क्रमश्च त्वी'ति वा दीर्घः । कान्तः । 'यस्य विभा-
 षे'तीणनिपेधः । क्रमः । घञ् । 'नोदात्तापदेश'इति वृद्धिनिपेधः । क्रम-
 मधीति क्रमकः । 'क्रमादिभ्यां वुन्'इति तदधीति तद्वेदेति विषये वुन् ।
 चङ्क्रमणः । 'जुचङ्क्रम्ये'ति युच् । न क्रामतीति नक्रः । 'डान्यत्रापि दृश्य-
 त'इति डः । 'नभायनपात्रवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्र-
 नाकेषु प्रकृत्ये'ति निपातनात्रयो नलोपाभावः । क्रिमिः । क्रमिगमिनमिस्य-

म्भामव इच्चेतीन्' त्यये अकारस्येकारः । क्रिमिणः । 'लोमादिपामादि-
पिच्छादिभ्यः शनेलच' इति यामादिपाठान्मत्वर्थीयो नः ॥

* यज्ञनारायणार्थेण प्रक्रियेयं प्रपञ्चिता ।

तस्या नि.शेषनस्सन्तु वोढारो भाष्यपारगाः ॥

अणादय उदात्ता उदात्तेतः ॥ ४६८ ॥

अय वय पय मय चय तय णय गतौ ॥ इत आरभ्य रेवत्यन्ता
उदात्ता अनुदात्तेतः । अयते । अया चक्रे । दयायासखे'त्याम् । अयिता ।
अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । आशिषि । अयिषीष्ट । आयि-
ष्यत । अस्य लुङ्लिटोर्ध्वमि 'विभाषेष्ट' इति मूर्द्धन्यविकल्प उदाहार्यः ।
एवमन्येष्वपि यान्तेषु । अयियिषते । आययति । माभवानयियत् । आयः ।
अयः । घञचौ । चलनार्थत्वेपि नास्य युजस्ति, 'न य' इति यान्तानां तन्नि-
षेधात् । तेन अयितेति सामान्यस्तृत् भवति । ग्रायते । 'उपसर्गस्यायता'-
विति उपसर्गस्य रेफस्यायतिपरत्वाल्लत्वम् । नन्वेकादेशस्य स्यानिव-
त्त्वात्रेफस्यायतिः परो न भवति । सत्यम् । येन नाव्यवधानेन व्यवहितेपि
वचनप्रामाण्यादिति एकेन वर्णेन व्यवधानमाश्रयिष्यते । न चास्ति पूर्वत्रा-
सिद्धे न स्यानिवदिति, तस्य दोषः संयोगादिलोपलक्षणत्वत्वेऽपि तस्य
सापवादत्वात् । एव च पत्ययतइत्यत्रापि लत्व भवति । न चानन्तरो
निर्दुरो रेफोवकाश इति वाच्यम् । तर्हि लाघवायं तावेवोपाददीत । येषा-
मुपसर्गविशेषणमयतिग्रहणम् अयनिपरस्योपसर्गस्य यो रेफ इति तेषां
नैवास्य चोद्वेगस्यावसर, किं तु प्रत्यय इत्यत्रापि लत्वं स्यात् । भवितव्यमे-
वेति तेषामेव केचित्, अपरे तु प्रतिपूर्वस्यायतेर्नैव प्रयोग इति, तेषां प्रत्यय-
शब्दः प्रतिपूर्वादिलोचि, प्रत्ययितशब्दोऽप्यस्मादेव तारकादित्वादितचि ।
निरयते । दुरयते । इति प्रयोगस्सान्तयोर्द्रष्टव्यः । नह्यत्र लत्वप्रसङ्गः,
'सप्तजुषो' रित्यस्यासिद्धत्वात् । वयते । ववये । वादित्वान्नैत्वाभ्यासलोपौ ।

* यतद्व्यक्तुं द्वाटयोर्हि पित्रा कृतं नाम, सायणेति तु कुलनामेति भूमिका-
यामस्माभिर्निरधारि ।

वयितेत्यादि पूर्ववत् । विवयिपते । वावय्यते । वावयीति । वावति । वावतः ।
 वावयति । वावयीपि । वावसि । वावयः । वावय । वावयीमि । वावामि ।
 वावावः । वावानः । वलि यलोपः । यज्जादौ तु कृते लोपे 'अतो दीर्घा यजी'ति
 दीर्घः । क्त्वा यलोपात्पूर्वं नित्यत्वाद्वाङ्मात्रे वल्परत्वाभावाद्भलोपाभावः, लोटि
 सार्द्धभावात् परत्वात्पूर्वं वलि लोपे तदनन्तरं हिरादेशः, तस्यैवा'तो हे'रिति
 लुकि वावेति भवति । पूर्व तु हिभावे तत्राश्रित्य वलि लोपे सविपातप-
 रिभाषया हेर्लुङ् न स्यात्, उत्तमे तु नित्यत्वादाटि यनोग्राप्रसङ्गात्
 वावयानीत्यादि भवति, लङि तिप्सिपो परमपि हल्ङ्यादिलोपं यलोपो
 बाधतइति अवावत्, अवाव इति भवति । इदं च व्योर्वलि लोप इत्य-
 नुवादपूर्वं विधेय निर्दिश्य तस्य पूर्वनिर्देशेन विट्प्रत्ययान्तद्वलीयस्त्वज्ञापना-
 दवगम्यते, यत् तत्र वृत्तावुक्तं पूर्वनिर्दिश्य फलं वेरपृक्तलोपात्पूर्वं वलि
 लोप इति, तद्विध्यन्तरोपलक्षणम् । आहुश्चैव तत्र व्याख्यातारः । यद्वा
 प्रकृतिविशेषं प्रत्ययविशेषं चापेक्षमाणं हल्ङ्यादिलोपात् वर्णमात्रापेक्ष-
 त्वादन्तरङ्गे वलि लोप इति पूर्वमेवासावत्र प्रवर्तिष्यते । पयते । पेये ।
 पयिता । मयते । मेये । मयिता । चयते । चेये । चयिता । तयते । तेये ।
 तयिता । नयते । नेये । नयितेत्यादि । चयिवत् । नयतेर्लोपदेशत्वात्
 प्रणयतइति ण्यत्व भवति । अत्र पयीति मूर्धन्याप्यादिरपि क्वचित् कोशे
 पठ्यते, मैत्रेयादिभिस्तु न पठ्यते । नयादेनामपि अयिवत् 'न य' इति
 युञ्निषेधात् तच्छीलादौ तुनेव । णय रक्षणे चेति मैत्रेयः । तय
 ण्येत्येके । अयादीनां क्त्वा वलि लोपे तुकि यत्, वत्, इत्यादि
 भवति । अतो लोपस्तु न भवति, कर्तुं धनुनेन दृश्ये यदकारान्त
 तस्य तद्विधानात् ॥ ३७६ ॥

दय दाङ्गनिरक्षणाहिसादानेषु ॥ सर्पिषो दयते । सर्पिर्दयते ।
 'अधीगर्धदयेशां कर्मणी'ति कर्मणि शेषे षष्ठी । अशेषे तु द्वितीयैव । दयां
 चक्रे । 'दयायासश्चे'त्याम् । दयितेत्यादि । वयिवत् । दयालुः । 'स्पृहि-
 र्हिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुजि'ति ताच्छीलिक आलुच्, दया ।
 दयतिर्भिदादिषु द्रष्टव्यः ॥ ४७७ ॥

रय गतौ ॥ रयनइत्यादि वयिषत् । रायः, घञ् । रयस्तु
अचि ॥ ४७८ ॥

ऊयी तन्तुमताने ॥ ऊयते । ऊया चक्रे । 'इजादेश्च गुरुमत'इ-
त्याम् । ऊयितेत्यादि । ऊययति । मा भवानूयियत् । द्विर्वचनान्पूर्वमुप-
धाह्रस्वत्वमित्युक्तम् । ऊयित्वा, ऊतः, ऊतवान् । ईदित्वाविष्टायामनि-
ट्त्वम् । ऊति । बाहुलकात् क्तिन् । 'ऊतियूती'ति निपातनमञ्चतेः
क्तिनि उदात्तार्थमिति वृत्तावुक्तम् ॥ ४७९ ॥

पूयी विशरणे दुर्गन्धे च ॥ पूयते । पूयये । पूयितेत्यादि । पूययिषते ।
पोपूय्यते । पोपूयीति । पोपोति । पोपूनः । इत्यादि वयतिवत् । तसा-
दौ ङित्वाच्च गुणः । पूययति । अपूपुयत् । पूयित्वा । पूतः । पूतवान् ।
ईदित्वाविष्टायामनिट्त्वम् । पूतिः । 'गन्धस्येदुत्पूती'त्यादिनिर्देशात्
क्तिन् । पूयः । पचाञ्च् ॥ ४८० ॥

कूयी शब्दे उन्दे च ॥ कूयते । कुकूये । कूयितेत्यादि पूयति-
वत् । कूपयति । 'अर्निहीव्लीरीकूयीत्माय्याता पुङ्णावि'ति पुक्ति यलोपे
'पुगन्तलघूपधस्य चे'ति गुणः । अचुकूपत् । कृतेपि गुणे णौ 'चडी'ति
ह्रस्वः । कूयीति सानुबन्धकस्य निर्देशाद्भङ्गुकि चोक्कूयीतीति भवति ।
चेलकूप वृष्टो देवः । 'चेले कूपे'रिति एयन्तादस्मात् कर्मणि चेलउपपदे
वर्षप्रमाणे गम्यमाने णमुल् । यावता वर्षेण चेल कूयते तावद् वृष्ट
इत्यर्थः । चेलइत्यर्थग्रहणमिति वस्त्रक्रेपमित्याद्यपि भवति । अस्यापी-
दित्वाविष्टायामनिट्त्वम् ४८१ ॥

ह्मायी शब्दे विधूनने ॥ ह्मायते । चत्माये । ह्मायितेत्यादि ।
चिह्मायिषते । चाह्माय्यते । चाह्मायीति । चाह्माति । तसादौ कृति
सार्वधातुके 'श्नाभ्यस्तयोरानः' 'ईहल्यघोरि'तीत्वम् । चाह्मीत इत्यादि ।
लोढि तानहपक्षे तस्य ङित्वात् चाह्मीतादिति भवति, हेरय्यपित्वात्
ङित्वात् चाह्मीहि । लङि नित्यत्वाद्भलोपात्पूर्वं 'सिजभ्यस्ते'ति जुस्-
भावो भवति । अचाह्मायीत् । अचाह्मीताम् । अचाह्मायुरित्यादि ।

ह्मापयति । अचित्पत् । 'अर्त्तद्दी'त्यादिना पुक् । अस्यापि सानुब-
न्धकस्य निर्देशात् यङ्लुकि वाह्माययतीति । ईदित्वाचिष्टायां ह्मातः ।
ह्मातवान् ॥ ४८२ ॥

स्फायी ओष्यायी वृद्धौ ॥ स्फायते । पस्फाये । अभ्यासे 'शूर्पूर्वाः खय'
इति खयः शेषः । स्फायितेत्यादि ह्मापिवत् । गौ 'स्फायो व'इति यकारस्य
वकारे स्फावयति । अपिस्फावदिति भवति, स्फीतः, स्फीतवान् 'स्फायः स्फी
निष्ठायामि'ति स्फीभावः । वत्वस्फीभावौ प्रकृतियहणन्यायेन यङ्लुक्पि
भवत इति पास्फावयति । स्फीतः । स्फीतवानिति भवति । स्फायतइति
स्फाः । क्विपि कर्ल लोपः । अय वेरपृक्तलोपात्पूर्वं भवतीति वयतौ
प्रतिपादितम् । स्फाश्च तदण्ड च स्फाण्डम् । एवं स्फान्त्रम् । वृद्धा-
ण्डमुच्यते । स्फारः । स्फायितञ्चीत्यादिना रक् । प्यायते । पिप्ये ।
पिप्यिषे । पिप्याथे । पिप्यिध्वे । पिप्यिवहे । परत्वात् 'लिङ्गडोश्च'
इति प्यायः पीभावः । पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् पीशब्दस्य द्विवचनम् ।
'हरनेकाच' इत्यजादौ यण् । प्यायितेत्यादि पूर्ववत् । लुङि 'दीपजन-
बुधपूरितायिप्यायिभ्यान्त्यतरस्या'मिति कर्त्तरि तशब्दे वा चिणि अप्यायि
अप्यायिष्ठेति भवति । यङि लिङ्गत् पीभावे पेपीयतइत्यादि । यङ्लुकि
तु पाप्याति । पाप्यात इत्यादि पूर्ववत् । पीनः पीनवान् । 'प्यायः पी
निष्ठाया'मिति वा पीभावात् । इयं च व्यवस्थितविभाषेति अनुपसृष्टे
नित्यम्, उपसृष्टे तु नैव । आप्यानः प्रप्यानश्चन्द्रमा इति, आङ्पूर्वाद-
न्धसोर्भवत्येव । आपीनोन्धः, आपीनमूध इति । 'ओदितश्चे'ति
निष्ठानत्वम् । ईदित्त्वं पीभावाभावे निष्ठाया इणनिवृत्त्यर्थम् । ईदितो-
नन्तराया निष्ठाया नत्वार्थमिदमोदित्वम् । कृते पीभावे स्वरान्तत्वा-
दनिट्स्वरान्तइत्यनिट्वे सावकाश इति पीभाव इणिनवृत्तेर्न ज्ञापकः ।
स्फायेस्त्वौदित्वे स्फीभावस्य नित्यत्वात् स्वरान्तत्वादनिट्वे सिद्धे
अनुदात्तेत्वमात्र फलम् । न च सत्यपीटि सवर्णदीर्घत्वेनेदमेव रूपमिति
मन्तव्यम् । परत्वादियङ्प्रसङ्गात् ॥ ४८४ ॥

.तायृ सतानपालनयो ॥ संतानः प्रबन्धः । तायते । तताये ।

तायिनेत्यादि पूर्ववत् । लुङि 'दीपजनेत्यादिना कर्तरि तशब्दे वा निष्णि अतायि अतायिगृति भवति । ऋदित्वाण्यौ चङ्युपधाया ह्रस्वाभावात् अततायन् । अनीदित्वादिष्ठाया तायितः तायितवान् ॥ ४८५ ॥

शल चननमवरणयोः ॥ शलते । शले । शलिता । शलिष्यते । शलनाम् । अशलन । शलेन । आशिपि शलिषीष्ट । अशलिष्ट । शाशल्यते । शाशनीति । शाशल्ति । लङि तिप्सिपोर्हल्ङ् यादिलोपः । अशागल् । शालयति । अशीशलन् । शलित्वा । शलित । शलभः । श्लुश्लिभ्यो भन् । शल्कम् । 'इणिकापाशलि'ति कन् । शलाका । 'शलिपतिपटिभ्यो नि दिव्याक । शालूकः । 'शलिमण्डिभ्यमू'त्ति'त्युक्ता । शललं, कनात्ययश्चेत्यत्र प्रत्ययस्य पूर्वनिर्देशस्य धात्वन्तरादप्ययं भवतीति सूचनार्थत्वात् कुण्डलादिवत् कल प्रत्ययः । शलली । पिप्पल्यादित्वान् डीप् जातिलक्षणे वा । शलालुः । गन्धद्रव्यविशेषः, शलालुः पण्य व्यवहार्यनस्य शलालुकः । 'शलालुनोन्यतरस्यामि'ति प्रथमान्तादस्य पण्यमित्यर्थे णन्, पित्वात् स्त्रिया शलालुकी । अन्यतरस्याग्रहणात् 'प्राग्वहनेष्टुमि'ति ठक् 'किति चे'त्यादिवृद्धौ शलालुकः । उभयोरपि टशब्दये रुक् । परन्वात् 'इसुसुक्तान्तात्क'इति कादेशः । अत एव शलालुन इति निर्देशादालुप्रत्ययः । शालेति शालताबुक्म् । अय गत्यर्थो ज्वलादौ परस्मैपदी ॥ ४८६ ॥

वल वल्ल सवरणे सचरणे च ॥ वलते । वल्ले । वलिनेत्यादि शलिषत् । णौ घटादित्वद्वलयतीति । वालः । 'हलश्चे'ति करणे घञ् । वारः । वानमूनेत्यादिना पञ्चे रः । वलिः । वली । इनन्तात् 'कृदिकारादक्तिन' इति वा डीप् । वलिनः । पामादित्वान्मत्वर्थे नः । वलिभः । 'तुन्दिवलिवटेर्भः,' अयमपि मत्वर्थीय । वलिः । 'वलेर्वलश्चाहिरण्य' इति इन्प्रत्यये वलादेशः । वलभी । बाहुलकादभचि पिप्पल्यादिदर्शनात् डीप् । वलयः । 'वलिमलितनिभ्यः कयचि'ति कयन् । वल्लुः । 'वलेर्गुक्वे'ति उक्प्रत्ययो गुणागमश्च । वलाकः । 'वलाकादयश्चे'त्याकनन्ता निपातितः । वलाकाया अपत्यं वालाकि ।

‘बाह्वादिभ्यश्चे’तीञ्प्रत्ययः । अत्र पाठात् जातिलक्षणडीपं बाधित्वा
 टाप् अजादित्वाद्वा । वलाका अस्य सन्तीति वलाकी, ‘व्रीह्यादिभ्य-
 श्चे’ति मत्वर्थेऽनिः । वलिकं लिप्तम् । ‘अलीकादयश्चे’तीकन् ।
 वल्मीके बाहुलकान्मुडागमः । वल्लते । ववल्ले । वल्लितेत्यादि ।
 यङ्लुकि तिप्निपोर्हल्ङ्यादिलोपे सयोगान्तलोपे च अवावल । वल्लभः ।
 ‘रासिवल्लिभ्या चे’त्यभच् । वल्लरी । व हुनकादरप्रत्यये पिप्पल्यादि-
 दर्शनात् डीप् । वल्लिः वल्ली इति कृदिकारत्वाद्वा डीप् । वल्लूर
 शुष्कमासम् । खर्जपिञ्जादिभ्य ऊरोलचाविति ऊरः ४८८ ॥

मल मल्ल धारणे ॥ मलते । मले । मलिता । मल्लतइत्यादि
 पूर्ववत् । माला । ‘अकर्त्तरि च कारक’इति कर्मणि घञ् । ‘लस्ये’त्यत्र
 भाष्यकैयटयोर्मोडो ऽय लप्रत्यय उक्तः । माली । व्रीह्यादित्वादिनिः ।
 मालभारी । ‘इष्टकैषीकामालाना चिततूलभारीष्विति यथासख्यान्मा-
 लाया भारिण्युत्तरपदे ह्रस्वः । के चित्तु तत्र हारीति पठन्ति । माल्यम् ।
 ‘अहलोर्ग्यत्’ । मलयः । वलिमलीति कयन् । शरीरं धार्यतइति मलम् ।
 अच् । मृजेर्वा व्युत्पादयिष्यते । मलिनः मलीमसः । ‘ज्योत्स्नातमिस्राश्च-
 द्विगोर्जस्विन्तृज्जम्ब्यनगोमिन्मलिनमलीमसाः’ इतीनजीमसजनौ मत्वर्थे
 निपातितौ । केन मल्यतइति कमलम् । घञर्थे कविधानमिति कः, ‘कर्तृ-
 करणे कृते’ति समासः । कमेर्वा कलप्रत्यये व्युत्पादनीयः । आमलकी ।
 ‘कुन् शिल्पिमज्जयोरपूर्वस्यापि इनि कुनि गौरादित्वान्डीप् । मल्लः ।
 अच्प्रत्ययः । मल्लिका । ‘संज्ञायामि’ति स्त्रियां ण्वुल् । मल्लकः । क्वन् ।
 मल मल्लते धारयतीति मलमल्ल कौपीनम् ॥ ४८९ ॥

भल भल्ल परिभाषणहिसादानेषु ॥ भलते । भल्लतइत्यादि ।
 भालम् । ‘अकर्त्तरि च कारक’इति घञ् । भा दीप्ति लातीति वा भालः ।
 भलूकः श्वापदः । ‘डलूकादयश्चे’ति ऊकनन्तो निपातिनः । भल्लूकोप्यलू-
 कादिः । भल्यते हिंस्यतेऽनेनेति भल्लः । ‘पुंसि संज्ञायामि’ति घः, ‘हल-
 श्चे’ति घञ् वा । भल्ली । ‘जातेरस्त्रीविषयादयोपधादि ति डीष् । अय-
 माभयुडने चुरादिः ॥ ४९० ॥

मामौथः । मामौथ । यलोपः ऊठि वृद्धिः । मामव्यीमि, मामौमि । अनुनासिकत्वाद्ऊठि वृद्धिः, मामौवः, व्योर्लोपः, 'अतो दीर्घो यञी'ति दीर्घः । मामौमः । मामव्यीतु । मामतु । मामौनात् । मामौताम् । मामव्यतु । मामौहि । मामौतात् । मामौतम् । मामौत । मामव्यानि । मामव्याव । उत्त्वहित्वाभ्या परत्वात्पूर्वमेव व्योर्लोपे पञ्चा तुह्यो रिति तातडि तदाश्रय उठ् नाशङ्कनीयः । पूर्वमेव वकारस्य लुप्तत्वात्, हेस्त्व'तो हे'रिति लुक् । उत्तमे नित्यत्वादाठि न व्योर्लोपः । अमामव्यीत् अमामौताम् । अमामव्युः । अमामः । अमामव्यम् । अमामाव । अमामौम । तिप्सिपोर्हल्ङ्-यादिलोपादन्तरङ्गत्वाद्गुनि लोपः । क्षिप्सिपोर्जुम्भावाभ्यावौ वलि लोपं नित्यत्वाद् बाधते । वसि व्योर्लोपे 'ऽतो दीर्घो यञी'ति दीर्घः । मसि यलोपेऽनुनासिकादित्वाद्ऊठि वृद्धिः । मव्ययति । अममव्यन् । मव्यित्वा । मव्यितः । क्षिपि 'लोपो व्योर्वली'ति विधेयस्य लोपस्य पूर्वनिर्देशाद् घेरृक्तलोपाद्गुलोपस्य बलीयस्त्वस्य ज्ञापनादृक्तलोपात् पूर्व यकारस्य वलि लोपः, वकारस्य त्वपवादेनोठा बाधा न भवतीति ऊङ्वृद्ध्यौमौः । यथा तु भाष्य तथास्य न यङ्लुगस्ति तच्च तेवतावुक्तमुपादित च ॥

अत्रापि शिष्यबोधाय प्रक्रियेयं प्रपञ्चिता ।

यजनारायणार्थेण बुद्धता भाष्यपारगैः ॥ ५०३ ॥

सूर्त्य ईर्त्य ईर्ष्य ईर्ष्यार्थाः ॥ सूर्त्यति । सुपूर्त्य । सूर्त्यिता । सूर्त्यिष्यति । सूर्त्यतु । असूर्त्यत् । सूर्त्यत् । आशिषि । सूर्त्यात् । असूर्त्योत् । असूर्त्यिष्यत् । सुसूर्त्यपति । 'स्तीतिष्यारोवे'ति नियमाच्च पत्वम् । सोसूर्त्यति । 'हलो यमा'मिति पत्ते यलोपः । अन्यदा तु यकारद्वयम् । सोसूर्त्योति । सोसूर्ति । बहूनां समवाये द्वयोरपि सयोगसंज्ञाया आश्रितत्वात् 'स्को'रिति कलोपः । लङि तिप्सिपोर्हल्ङ्गादिलोपे पदान्तसंयोगादित्वात् कलोपे जश्त्वचत्वयोरसोसूर्त् । सर्वत्र यकारस्य वलि लोपः । सूर्त्ययति । असुसूर्त्यत् । सूर्त्य आदरद्वयये । ईर्त्यति । ईर्त्या चकार । ईर्त्यिता । ईर्त्यिष्यति । ईर्त्यतु । ईर्त्यत् । ईर्त्यत् । ईर्त्यात् । ऐर्त्यिष्यत् । ईर्चिर्त्यपति । 'न न्द्रा' इति रेफवर्जस्य द्विवचनहलादिशेषे चत्वम्,

उभयया रूपे न विवादः । फलितेत्यादि । अफालीदित्यत्रा'ति लृान्तेति' वृद्धिः । पिफलपति । पम्फुल्यते । पम्फुलीति । पम्फुल्लः । पम्फुल्लि । 'चरफनोश्चे'ति यङि यङ्लुकि अभ्यासस्य नुक् । अत्रापि पूर्ववत् सानु-
बन्धकस्यापि 'उत्परस्यान्' इत्यभ्यासाच्चरफलाकारस्योत्वम् । तपरकरणं
नटृपधगुणनिवृत्त्यर्थम् । फालयति । अपीफलत् । फलम् । अच् ।
फलित्वा । फुल्लः । अस्याकर्मकत्वात्कर्तृभावाधिकरणे क्तः । 'आदित-
श्चे'ति निषेधे 'अनुपमर्गात्फुल्लतीवङ्गशोन्लाघा' इति निपातनान्निष्ठा-
तकारस्य लत्वम् । अत एव निपातनादुत्वं च । यद्वा नचम्यापिदृ-
क्तकारादिप्रत्ययपरत्वा'ति चे'त्युक्ते 'आदितश्चे'ति निषेधस्य 'विभाषा
भावादिस्मरणे'रिति विकल्पनात् फलितमित्यपि भवति । अनुपमर्गा-
दिति वचनादुपपद्येत्येत्वं लत्वाभावात्फुल्लमिति भवति । समुत्पूर्वत्वे
तु 'उत्फुल्लसकुल्लयोरुपसङ्ख्यान'मिति लत्वम् । क्तवतोरप्येतल्लत्वमिष्य-
तइति वृत्तिः । तेन फुल्लवानिति भवति । फलुः । फलिपाटीत्यादिना-
प्रत्यये गुणागमः । क्लिपि फल् । फलिवाचरतीति 'सर्वप्रातिपदिकेभ्य'इति
क्लिपि फलो धातुत्वे फनति । पफाल । फेलतुः । फेलुः । पम्फुल्यत-
इत्यादि प्रकृतिवत् । प्रत्ययान्तधातुत्वे आम् न भवति, कास्यनेकाच इति
उक्तत्वात् । निष्ठाया फलितमिति नित्यमिडेवादित्वाभावात् ॥ ५११ ॥

मील शमील ह्मील निमेषणे ॥ निमेषण सकोच । द्वितीयस्ता-
लव्यादि । वृत्तीदो दन्त्यादिः । मीननि । मिमील । मीलिता इत्यादि ।
मिमीलिपति । मेमीन्यते । मेमीलीनि । मेमील्लि । मीलयति । अमीमि-
लत् । अमिमीलन् । भ्राजभासे त्यादिना शौ चङ्युपधाया ह्रस्वविकल्पः ।
शमीलति । ह्मीलतीत्यादि । मिल श्लेषणइति ह्रस्वोपधस्तुदादौ ॥ ५१४ ॥

पील प्रतिष्ठम्ने ॥ प्रतिष्ठम्ने रोधनम् । पीलति । पिपील ।
पीलितेत्यादि । पीला नाम का चित् । इगुपधलक्षणे कप्रत्यये टाप् ।
पीलाया अपत्य पैल । 'पीलाया वे'त्यण् । तदभावे ठक् च इति पैले-
यः । अणन्ताश्चपत्याञि तस्य पैलादिभ्यश्च'ति लुकि पैल पुत्रः । पीलुः ।
मृगध्यादिभ्यश्चेति उप्रत्ययः । पीलोः पाकः, पीनुकुणः, 'तस्य पाकमूले

पील्यादिकर्णोदिभ्यः कुण्जाहवा'विति पद्यन्तात्पील्वादेः कर्णोदेशे यथासंख्य पाकमूलयोः कुण्जाहवोर्विधानादस्मात् कुणप्, ककारस्य 'लश कृतद्वित'इति तद्विनत्याच्चेत्स्वम् ॥ ५१५ ॥

शील वणे ॥ नीलति । प्रणीलति । निनील । नीलिवा इत्यादि । नीलः । इगुपधलक्षणः कः । नीली औपधिर्वडवा च । 'जानपदे' त्यत्र नीलादोषधौ प्राणिनि चेति डीप् । अन्यत्र नीला शाटी । जानपदभावे च सञ्ज्ञा वेति वचनात्सञ्ज्ञाया नीली नीलेत्युभय भवति नील्या रक्तं वस्त्र नील, 'तेन रक्त रागाच्' । रज्यने नेनेति रागः, शुक्रम् वर्णान्तरापादनमिह रज्जधर्म इति वृत्तिः । रागवचनात्तृतीयांतादस्मादे यथाविहित प्रत्यय इत्यणि प्राप्ते 'नील्या अन्वक्तव्य' इत्यन् । णिल गतौ इति ह्रस्वोपधस्तुदादौ ॥ ५१६ ॥

शील समाधौ ॥ शीलतीत्यादि । शीलम् । इगुपधलक्षणः कः, घञ् च । शीले समाधाने भवा वृत्तिः शैनी । अणि डीप् । शील उपधारण इति चुरादौ । शिल उज्झइति ह्रस्वोपधस्तुदादौ ॥ ५१७ ॥

कील बन्धने ॥ कीलतीत्यादि । कीलः । इगुपधलक्षणः कः, 'हलश्चे'ति घञ् वा । कीलकं, संज्ञाया कन्, कुन्वा ॥ ५१८ ॥

कूल आवरणे ॥ कूलतीत्यादि । कूल पूर्ववत्कः ॥ ५१९ ॥

शूल हजाया सघाते च ॥ शूलति । शूलम् । शूलेऽु सङ्कृत शूल्यम् 'शूलोखाद्य'इति सप्तम्यान्तसङ्कृतमित्यर्थं यत् । शूले पचति शूला करोति । शूले प्रोच्य पचतीत्यर्थः, 'शूलात्याक'इति कृजा योगे डाच् । 'डाचि बहुलं द्वे भवत' इति द्वित्वम् अव्यकानुकरणस्य डाजन्तस्य नेच्यतइत्युक्तत्वाद् भवति । 'ऊर्यादिच्चिडाचश्चे'ति डाजन्तस्य निपातत्व गतित्व च तत्र निपातत्वेऽव्ययत्वात्साल्लुक्, गतित्वत् शूलाकृत्येत्यत्र 'कुगतिप्रादय'इति समासे त्को ल्यप्, अथ शूलेनान्विच्छति आयःशूलिकः । 'अयः शूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठजा'विति तृतीयांतादस्मादन्विच्छतीत्यर्थं यथा संख्य ठक् । अयःशूनशब्देन क्रूराकार उच्यते ॥ ५२० ॥

तूल निष्कर्षे ॥ निष्कर्षो निष्कोपण, तच्चान्तर्गतस्य बहिर्निःसारणम् । तूलति । तूलम् । तूलेनानुकुशाति, अनुतूलयति । 'सत्यापपाशे' त्यादिना णिचि टिलोपः । यौ चङ्यन्तोपित्वादतुतूलत् ॥ ५२१ ॥

तूल सघाते ॥ तूलति । तूलः ॥ ५२२ ॥

मूल प्रतिष्ठायाम् ॥ मूलति । मूलम् । मूले जातो मूलकः । 'पूर्वा ह्यापराह्लाद्रामूलप्रदोपावस्करादुन्नि'ति तत्र जात इति विषये वुन् । नलत्राणोपवादः । उत्पाटनीय मूलमस्य इति मूल्यो मुद्रः । 'मूलमस्याबर्ही'त्यापाधिकात्मयमान्तान्मूलादभ्येत्यर्थे यत् । आबर्हीति बृह् उद्यमन-इत्यस्माद्वावे घञा बर्हः । सोऽस्यास्तीतीनिः । उद्यमनमिहोत्पाटनं, ये सुपक्वा मूलात्पाटनमन्तरेण ग्रहीतुं न शक्यन्त इति ते एवमुच्यन्ते, मुद्रा-विषु मध्यतो लूयमानेषु कोशा अपि लूयेरचित्यवश्यमेवं मूलमुत्पाटनी-यम्, मूलेनानाम्य मूल्य लाभाख्य द्रव्यम् । 'नौवयोधर्मविषमूलमूलसीता-तुलाभ्यस्ताप्यन्तुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसमितेष्वि ति ययासख्य मूला-दानाम्ये यत्, आनाम्यप्रभिभवनीय शेषीक्रियमाणमित्यर्थः । मूलं नाम पादादीनामुत्पत्त्यर्थे वणिभिर्विनियुक्त द्रव्य, तेन हि स्वस्मादतिरिक्तं लाभाख्य शेषीक्रियते । आत्मन उपकारक क्रियते, यतः स्वय तेन सगुणी, गुणो भाग, इदमेव मूलमस्य भागीकरणं, तत्प्रति मूलस्योपकारकत्व शेष-त्वमानाम्यत्व च । मूलेन समो मूल्यः पटः । उपादानसमानफल इत्यर्थः । अनेनैव सूत्रेण तृतीयान्तान्मूलात्समे यत् । न विद्यते मूलमस्याः साऽ-मूला । 'पाककर्णे'त्यादिना प्राप्त डीप् बाधित्वा 'मूलावज' इत्यजादिपाठा-ट्टाप् । शनमूली । 'पाककर्णे'त्यादिना डीप् । अयं रोहणार्थश्चुरादिः ॥ ५२३ ॥

फल निष्पत्तौ ॥ फलति इत्यादि जिफलावत् । फलितमिति निष्ठा-यामिडेव । फलतीति फलं, संफला । 'पाककर्णे'ति डीप् बाधित्वा 'सभस्मा-जिनशणपिण्डेभ्यः फला'दित्यजादिपाठाट्टाप् । भस्मफलादयोप्येवम् । 'झ्यापोः सञ्जाच्छन्दसोर्वहुलमि'ति ह्रस्वः । अल्प फलं, फलिका । ततोऽन्य-त्फलम् । फलं च तत्फलिका च फलाफलिका । 'कृतापकृतादीनामुपसंख्या-न'मिति कर्मधारयः । 'अन्येषामपि दृश्यत'इति दीर्घः पूर्वपदस्य । 'एकमेव

फलमवस्थाभेदादल्पत्वमहत्वाभ्या युज्यते । त्रिफला । अजादिदर्शनाट्टाप् ।
फलिनः । 'फलवर्हाभ्यामिनञ्चत्तव्य' इति मत्वर्थे इनच् । फलकं, सञ्जायां
कन् । निष्पाद्यते कृपिरनेनेति फालः । 'हलश्चे'ति करणे घञ् ॥ ५२४ ॥

चुल्ल भावकरणे ॥ भावकरणमभिप्रायाविष्कारः । चुल्लिः । चुल्ली ।
इनन्तत्वाट्टा ङीष् ॥ ५२५ ॥

फुल्ल विकसने ॥ फुल्लति । फुल्लः । अच् । फुल्लित्वा ।
फुल्लितः ॥ ५२६ ॥

चिल्ल शैथिल्ये भावकरणे च ॥ चिल्लति । चिल्लः । तिल गतौ
इति दुर्गमैत्रयौ । तिल्लेत्यन्ये । तिलतीत्यादि । तिलः । द्गुपधलक्षणः कः ।
तिल खेहनइति तौदादिकाट्टा । तिलाना भवन चञ्चं तिल्यं तैलीनम् ।
'विभाषा तिले'ति यत्खञौ । तिलेभ्यो हित तिल्यम् । 'खलयवमपति-
लवृषब्रह्मणश्चे'ति चतुर्थ्यान्ताद्वितार्थे सत् । निष्फलस्त्रिलः तिलपेजः ।
तिलपिञ्जः । 'तिलात्रिष्फलात्पिञ्जपेजा'विति तौ । तिलकम् । सञ्जायां
कुन् । तिल खेहनइति चुराट्टौ च ॥ ५२७ ॥

वेल्ल चेल केल खेल ह्वेल वेल्ल चलने ॥ वेलतीत्यादि । वेला । 'गुरो-
श्चे'त्यकारः । चेलाति । चेलः । पचाट्टौ चेलडिति पाठात् अच्, टित्वं स्त्रियां
ङीबर्थं, चिल वसनइत्यस्माट्टा चेलम् । प्रसङ्गादत्र किं चिदुच्यते । कुत्सिता
ब्राह्मणी ब्राह्मणिचेलीति 'कुत्सिनानि कुत्सनैः' कुत्साहेतुधर्मवचनैः समा-
नाधिकरणैः समस्यन्तइति तत्पुरुषः । 'घरूपे'त्यादिना ह्रस्वः । चेलादयो
वृत्तिविषये कुत्सनवचना इति भवनावुक्तम् । तत्र चेलमकुलीनेन तन्तुवा-
येनात्यादित भवति, तत्सादृश्याद् ब्राह्मण्यादिषु वृत्त्या चेलशब्दस्य
कुत्सनवचनत्वम् । स्त्रिचेली, स्त्रीचेली वा, वामोरुचेली, वामोरुचेली वा ।
'नद्याः शेषस्यान्यतरस्यामि'ति ह्रस्वविकल्पः । अङी च या नदी ह्यन्तं
च यदेकाच् स शेषः, तस्य घादिषु वा ह्रस्व इति सूत्रार्थः । अत्रान्तरेणापि
शेषग्रहणं पूर्वसूत्रव्यतिरिक्तविषयत्वे सिद्धे तत्सामर्थ्यात्पूर्वश्रुतव्यस्तानेका-
जपेक्षं शेषत्व बोधयितुं, तेन यदङ्गन्तमनेकाच्च ह्यन्तमेकाच् तत्रैवायं

तूल निष्कर्षे ॥ निष्कर्षो निष्कोषण, तच्चान्तर्गतस्य बहिर्निःस
रणम् । तूलति । तूलम् । तूलेनानुकुशाति, अनुतूलयति । 'सत्यापपाशे
त्यादिना णिचि टिलोपः । लौ चङ्यलोपित्वादानुतूलत् ॥ ५२१ ॥

पूल सघाते ॥ पूलति । पूलः ॥ ५२२ ॥

मूल प्रतिष्ठायाम् ॥ मूलति । मूलम् । मूले जातो मूलकः । 'पूर्वा
ह्वापराह्वाद्रामूलप्रदोषावस्करादुचि'ति तत्र जात इति विषये वुन् ।
नचत्राणोपवादः । उत्पाटनीय मूलमस्य इति मूल्यो मुद्रः । 'मूलमस्याब-
हो'त्यौपाधिकात्प्रथमान्तान्मूलादस्येत्यर्थे यत् । अबर्हीति वृह उद्यमन-
इत्यस्माद्भावे घञा बर्हः । सोस्यास्तीतीनिः । उद्यमनमिहोत्पाटनं, ये
सुपक्वा मूलोत्पाटनमन्तरेण गहीतु न शक्यन्तइति ते एवमुच्यन्ते, मुद्रा-
दिषु मध्यतो लूयमानेषु कोशा अपि लूयेरचित्यवश्यमेषां मूलमुत्पाटनी-
यम्, मूलेनानाम्य मूल्य लाभाख्य द्रव्यम् । 'नैवयोधर्मविषमूलमूलसीता-
तुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवधानाम्यसमसमितसमितेष्वि ति यथासख्य मूला-
दानाम्ये यत्, आनाम्यमभिभवनीय शेषीक्रियमाणमित्यर्थः । मूलं नाम
पादादीनामुत्पत्त्यर्थे षणिभिर्विनियुक्त द्रव्य, तेन हि स्वस्मादतिरिक्त
लाभाख्य शेषीक्रियते । आत्मन उपकारक क्रियते, यतः स्वयं तेन सगुणी,
गुणो भाग, इदमेव मूलमस्य भागीकरणं, तत्प्रति मूलस्योपकारकत्व शेष-
त्वमानाम्यत्व च । मूलेन समो मूल्यः पटः । उपादानसमानफल इत्यर्थः ।
अनेनैव सूत्रेण तृतीयान्तान्मूलात्समे यत् । न विद्यते मूलमस्याः साऽ-
मूला । 'पाककर्णे'त्यादिना प्राप्त डीपं बाधित्वा 'मूलावज' इत्यजादिपाठा-
ट्टाप् । शतमूलो । 'पाककर्णे'त्यादिना डीष् । अयं रोहणार्थश्चुरादिः ॥ ५२३ ॥

फल निष्पत्तौ ॥ फलति इत्यादि जिफलावत् । फलितमिति निष्ठा-
यामिडेव । फलतीति फलं, संफला । 'पाककर्णे'ति डीपं बाधित्वा 'सभस्मा-
ज्जिनशणपिण्डेभ्यः फला'दित्यजादिपाठाट्टाप् । भस्मफलादयोप्येवम् ।
'ह्यापोः सत्राच्छन्दसोर्बहुलमि'ति ह्रस्वः । अल्प फलं, फलिका । ततोऽन्य-
त्फलम् । फलं च तन्फलिका च फलाफलिका । 'कृतापकृतादीनामुपसंख्या-
न'मिति कर्मधारयः । 'अन्येषामपि दृश्यत'इति दीर्घः पूर्वपदस्य । 'शकमेव

फलमवस्थाभेदादल्पत्वमहत्वाभ्यां युज्यते । त्रिफला । अजादिदर्शनाट्टाप् ।
फलिनः । 'फलबर्हाभ्यामिनज्यक्तव्य' इति मत्वर्थे इनच् । फलकं, सजायां
कन् । निष्पाद्यते कृपिरनेनेति फालः । 'हलश्चे'ति करणे घञ् ॥ ५२४ ॥

चुल्ल भावकरणे ॥ भावकरणमभिप्रायाविष्कारः । चुल्लिः । चुल्ली ।
इनन्तत्वाद्वा डीष् ॥ ५२५ ॥

फुल्ल विकसने ॥ फुल्लति । फुल्लः । अच् । फुल्लित्वा ।
फुल्लितः ॥ ५२६ ॥

चिल्ल शैथिल्ये भावकरणे च ॥ चिल्लति । चिल्लः । तिल गतौ
इति दुर्गमैत्रयौ । तिल्लेत्यन्ये । तेलतीत्यादि । तिलः । द्रुगुपधलक्षणः कः ।
तिल खेहनइति तौदादिकाद्वा । तिलानां भवनं क्षेत्रं तिल्यं तैलीनम् ।
'विभाषा तिले'ति यत्खजौ । तिलेभ्यो हित तिल्यम् । 'खलयवप्रापति-
लवृषब्रह्मणश्चे'ति चतुर्थ्यान्तादितार्थे सत् । निष्फलस्तिलः तिलपेजः ।
तिलपिञ्जः । 'तिलात्रिष्फलात्पिञ्जपेजा'विति तौ । तिलकम् । सजायां
कुन् । तिल खेहनइति दुरादौ च ॥ ५२७ ॥

वेल्ल चेल्ल केल्ल खेल्ल ल्वेल्ल वेल्ल चलने ॥ वेलतीत्यादि । वेला । 'गुरो-
श्चे'त्यकारः । चेलति । चेलः । पचादौ चेलडिति पाठात् अच्, टित्त्व स्त्रियां
ङीबर्थे, चिल वसनइत्यस्माद्वा चेलम् । प्रसङ्गादत्र किं चिदुच्यते । कुत्सिता
ब्राह्मणी ब्राह्मणचेलीति 'कुत्सितानि कुत्सनैः' कुत्साहेतुधर्मवचनैः समा-
नाधिकरणैः समस्यन्तइति तत्पुरुषः । 'घरूपे'त्यादिना ह्रस्वः । चेलादयो
वृत्तिविषये कुत्सनवचना इति भवतावुक्तम् । तत्र चेलमकुलीनेन तन्तुवा-
येनात्पादितं भवति, तत्सादृश्याद् ब्राह्मण्यादिषु वृत्त्या चेलशब्दस्य
कुत्सनवचनत्वम् । स्त्रिचेली, स्त्रीचेली वा, वामोरुचेली, वामोरुचेली वा ।
'नद्याः शेषस्यान्यतरस्यामि'ति ह्रस्वविकल्पः । अङी च या नदी इत्यन्तं
च यदेकाच् स शेषः, तस्य घादिषु वा ह्रस्व इति सूत्रार्थः । अत्रान्तरेणापि
शेषग्रहणं पूर्वसूत्रव्यतिरिक्तविषयत्वे सिद्धे तत्सामर्थ्यात्पूर्वश्रुतव्यस्तानेका-
जपेक्षं शेषत्वं बोधायितुं, तेन यद्व्यन्तमनेकाच्च व्यन्तमेकाच् तत्रैवायं

विकल्प इति यदभाषितपुष्कमामनस्यादि यच्च समानायामाकृतौ अभा-
षितपुष्क द्रोण्यादि पूर्वसूत्रविषय तत्र न भवति । लक्ष्मीचेली । यवागू-
चेर्ना । इत्यादौ च इत्यन्तवदीत्यपि 'कृत्रयाः प्रतिषेध' इत्युक्तत्वात्त्राय
विधर्भवति । श्रीचेलीत्यादौ तु नदीग्रहणानामस्य प्रसङ्गः । नापि पूर्वसूत्रस्य,
इत्यन्तनेकाच्चाभावात् । विदुर्लीचेलीत्यादौ 'उगितश्च' उगितः परा या
नदी तस्या कृत्र विकल्पः । विदुच्छ्रेयोः पुत्रद्वयोश्च पक्षे वक्तव्य इति वृत्ता-
वुक्तत्वात् विदुच्छेलीत्यपि भवति । केलति । केलि । इत्यन्यये केली ।
अप्रत्ययः केली । केलयति । 'कण्डूदिभ्यो यगि'ति स्वार्थे यकि सनाद्यन्त-
त्वेन धातुत्वे लडादि । खेनति । खेला । अयत्रपि कण्डूदिः । वेल्लति ।
वेल्लो विषम् । मज्जाया घञ् । वेल्लयति । वेल्लादीना पञ्चानामृदित्वा-
च्छङीनि इष्वाभावाद्विवेदइति भवति । वेल्लस्त्वनुपधात्वाच्च
ह्रस्वप्रसङ्गः ॥ ५३३ ॥

पेन् शेन् फेन् गतौ ॥ पेलति । अपिपेलत् । पेला, शुक्लमुष्मिन् ।
शेलति । अगिशेलत् । अत्र क्व चित्प्रेतपेलसेल इत्यपि त्रयः पठ्यन्ते ।
तत्र खेलतिमैत्रेयाद्यानुसारेणायै पठिष्यते । सेलतेस्तु दन्त्यादेः पाठः षोप-
देशपर्युदासवाक्येन उपदानादनार्थः । मूर्धन्यादिस्तु सेलुः श्लेषान्तक
इत्यादिदर्शनाद् बाह्यः ॥ ५३६ ॥

खन सचलने ॥ खलति । खखाल । अखखालीत् । खै घटादि-
त्वान् खलयति ॥ ५३८ ॥

खन मवये ॥ खलति । खखाल । अखखालीत् । खलति पापानि
संचिनोतीति खलः । खल्यते संच्रीयते धान्यादिकमिति खलम् । 'खनो घ
चे'त्यत्र वृत्तिः । खलं भगः पद चेति वक्तव्यमिति । अत्र हरदत्तः । घि
त्करणमामर्थ्यादन्येभ्योऽप्ययं भवति, नहि खनः कश्चिदवयवः कुत्वप्रा-
गस्ति । खलाना समूहः, खल्या । 'खलगोरथा'दिति षष्ठ्यन्तात्समूहे यत्,
खलिनी । 'इनित्रकट्यचश्चे'ति पूर्वत्रेव विषये इत्यादिविधानादिह यथा-
संख्यादिनि । सर्वेते यादयः स्वभावात् स्त्रीविषयाः । खलाय हितं
खल्या । 'खलयथे'ति यत् । यस्मिन्काले खले यवा भवन्ति स. कालो

खलेयवः । एव खलेबुमम् । 'तिष्ठद्बुप्रभृतीनि चे'त्यव्ययीभावः । तत्र ह्येव पठ्यते, खलयवादीनि प्रथमान्तानि विभक्त्यन्तरेण न सवध्यन्ते, अन्यप-
दार्थं च वर्तन्तइति । नैतौ प्रथमान्तावेद । अव्ययीभावा'दव्ययीभावश्चे'ति
नपुसकत्वम् । खलन्ति मचलन्ति केशा अस्मादिति खलतिः । अयं च
भीमादिषु पाठात् 'भीमादयोपादान इत्यपादानविषयः । अत्रैव पाठादे-
वातिप्रत्यये धातूनामनेकार्थत्वात्सचलने वृत्तिः । यद्वा पूर्वस्यैव धातो-
र्भीमादिषु पाठात् सलोपः । खलतइत्यपि निपातितः । शास्त्रं शाठ
शिरोमध्य च ॥ ५३८ ॥

गल अदने ॥ गलति । अगालीत् । गलः । 'गोचरसंचरेत्या'दौ
चकारेण 'पुंसि सज्ञाया घः प्रायेण', गिरतेर्वा ॥ ५३९ ॥

गल गतौ ॥ सलति । सालयति । असीसलत् । सालः । 'अकर्त्तरि
च कारऋ इति सज्ञाया घञ् । सलितम् । सलिकलीत्यादिनेलच् ॥ ५४० ॥

दल विशरणे ॥ दलति । लौ घटादित्वादलयति । दाडिमम् ।
दालशब्दात् घञन्तात्तेन निवृत्तमित्यत्र विषये 'भावप्रत्ययान्तादिमज्ज-
क्तव्य' इतीमच्, डलयोश्चाभेदः । कु दलतीति कुदालः, पृषोदरादिः ।
अयं घटादावपि ॥ ५४१ ॥

श्वल श्वल्ल आशुगमने ॥ श्वलति । शश्वाल । अश्वालीत् ।
शिश्वलिपति । शाश्वल्यते । श्वालयति । अशिश्वलत् । श्वल्लति ।
अश्वल्लीत् । अत्राङ्गान्त्यस्य लकारस्याकारसमीपत्वाभावा'दतो लान्त-
स्ये'ति वृद्धिर्न भवति ॥ ५४३ ॥

खोल खोर्च गतिप्रतिघाते ॥ खोलति । चुखोल । खोलयति । अचु-
खोलत् । ऋदित्वाचोपधाह्रस्वः । खोडः खञ्जः । पचाद्यच्, डलदोरभेदः ।
एवं खोरतीत्यादि ॥ ५४५ ॥

धोर्च गतिचातुर्ये ॥ धोरति । धोरिता । अदुधोरत् । धौरितकोऽ-
श्वाना गतिविशेषः । निष्ठान्तात्सज्ञाया कन् ॥ ५४६ ॥

त्सर हृद्गतौ ॥ त्सरति । तत्सार । नत्सरतुः । त्सरिता । अत्सा-
रीत् । 'अतो लान्तस्ये'ति वृद्धिः । तित्सरिषति । तात्सर्यते । तात्सरीति ।

दृश्यन्' इति भूते । चर्मण्यस्याः सन्ति चर्मण्वती नदी । 'आसन्दीव-
दष्टीवज्जनीवज्जनीवद्रुमण्वज्जर्मण्वती'ति मनुपि नलोपाभावो णत्व च
सज्ञाया निपायते । चर्मो । 'ग्रीह्यादिभ्यश्चे'ति मत्वर्थेऽनिः 'नस्त-
द्वित इति टिलोपः । चर्मिणोऽपत्य चार्मिकायणिः । 'वाकिनादीना
कुक्वे'ति फिज् कुक्वागमः । कुकि नान्तत्वाभावेऽपि चर्मचर्मिणोर्नलो-
पश्चेति वचनाच्चेनापः । सर्वचर्मणा कृतः सर्वचर्मिणः । सार्वचर्मिणः ।
'सर्वचर्मण कृतः खञ्जावि ति कृत इत्यर्थे तृतीयान्ताद् अस्मात् खखजौ,
सर्वचर्मण इत्यममर्थः ममामः, यतः सर्वशब्दस्य कृत इत्यनेन सम्बन्धो वृत्त्या-
दावुक्तः । चर्मणः कोशश्चर्मः । 'चर्मणः कोश उपसख्यानमि'ति
टिलोपः, अन्यत्रा नि ति प्रकृतिभावाच्चार्मण चतुः । चारु । दृसनिजनि-
चरीति जुण् प्रत्ययः । चरु । भृमृशीनृचरीत्युप्रत्ययः । अय हि भीमादि-
त्व दपादाने चरन्त्यस्मादिति हि व्युत्पत्तिः । चरक वृक, चरकेण
प्राक्तमपि चरकम् । तेन प्राक्तमित्यण, कटचरकाल्लुगि'नि लुक्, चरको
नाम वैशम्पायनः । उक्तं च कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्चे'त्यत्र अल-
म्बिश्चरकः प्राचा पतिलिटिकमलानुभावान्युपादाय चरको नाम वैशम्पा-
यन इति, तत्राभेदविवक्षाया भव्यादीनामिदं विशेषण, चरकाय हित
चारकीणम् । 'माणवचरकाभ्या खजि'ति तस्मै हितमिति विषये खज् ।
चर मञ्चयनइति चुरादौ ॥ ५५२ ॥

छिबु निरसने ॥ सुव्यातुछिबुष्वक्कीनां प्रतिषेध इति प्रतिषेधः
सत्त्वस्य । अस्य द्वितीयम्यकारणकारो वेति वृत्तिः, आचार्येण शिष्येभ्य
उभयथा प्रतिपादनात् उभयमपि प्रमाणमिति व्याख्यातारः । छीवति ।
'छिबुक्रमुचमा शिती'ति दीर्घः । तिष्ठेव । तिष्ठिवतुः । अभ्यासे खयः
शेषः । छेविता । छेविष्यति । छीवतु । आशिपि छीव्यात् । 'हलि
चे'ति दीर्घः । अष्टेवीत् । तिष्ठेविषति । तुष्टूपति । 'सनीवन्तर्द्वे'ति सनः
पक्षे इहागमः, अन्यदा च 'हलन्ताच्चे'ति सनः क्त्वि वलि लोपं बाधित्वा
'च्छो शृडि'ति कृठि यणादेशे द्विवर्चनम् । अत्र वर्णमात्राश्रयत्वेन चान्त-
श्चे यणि कर्त्तव्ये बाह्यप्रकृतिप्रत्ययाश्रयत्वेन बहिरङ्गस्योऽसिद्धत्वं न

भवति नाजानन्त्येति निषेधात् । तिष्ठाव्यते । पृथयति । अतिष्ठवत् ।
ऊङ्गादिना वकारान्ताना यङ्लुङ्गास्तीति तेषतावृत्तम् । टकारपक्षे सर्व-
त्राभ्यासे टकार उदाहार्यः । टिष्ठेवेत्यादि । छेवित्वा । छूत्वा, उदि-
त्वादिद्विकल्प इति 'न त्वासेडि ति कित्वनिषेध'द्वयः, अन्यदा तु
कित्वादूठि यणादेशः । छूतः । छूति । 'यस्य विभाषा'तितुत्रेत्य-
निटत्वम् । छीवनम् । छेवनम् । पृषोदरादित्वात्पक्षे दीर्घः, तथा च
चान्द्रसूत्रम् । छिबुसिवोर्दीर्घश्चेति । अयं दिवादावपि ॥ ५५३ ॥

जि जये ॥ अत्र मैत्रेय उत्तरधातुपाठस्यानुरोधेनाजन्तोऽप्यत्र निर्वृ-
श्यतइति । इह जय उत्कर्षप्राप्तिरित्यकर्मकोऽयम् । यस्त्वयऽभिभवार्थः स
सकर्मकः । यदाह देवः ।

जिर्दिग्याभिभवेः ऋद्धेऽसावकर्मकः ।

उत्कर्षप्राप्तिरद्वयार्थः, द्वितीयर्थः सकर्मक इति ॥

जयति । जिगाय । जिगयतुः । जिगयिष्य । जिगेथ । जिगिष्व ।
'सन्लिटोर्जे'रित्यभ्यासादुत्तरस्य कुत्व गकारः । अजन्तत्वादनिटत्वे
क्रादिनियमादिट्, यलि तु भारद्वाजनियमादिद्विकल्पः । अजादौ
कृडिति लिटि एरनेकाच' इति यण् । जेता । जेष्यति । जयतु । अज-
यन् । जयेत् । जीयात् । 'अकृत्सार्वधातुकयो'रिति दीर्घः । अजैषीत् ।
जिगीषति । 'इको भलि'ति सनः कित्वाच्च गुणः । 'अभनगमा सनि'
अजन्ताना हन्तेर्गमेश्च भलादौ सनि दीर्घ इति दीर्घः । पूर्ववदभ्यासा-
त्परस्य कुत्वम् । जेजीयते । जेजयीति । जेजेति । जेजितः । जेज्यति ।
अजादौ कृडिति यण् । जापयति । 'क्रीड्जीनाणा' वित्येचः स्थाने आत्वे
पुगागमः । अजीजपत् । विजयते । पराजयते । 'विपराभ्या जे'रिति तङ् । अयं
प्रकृतिग्रहणन्यायेन यङ्लुगन्तादपि इति विजेजिते पराजेजितइति ।
यङ्लुगन्तात्सनि 'सन्लिटोर्जे'रिति कुत्व न भवति, तत्र प्रत्यासत्त्या
सन्लिङ्निमित्तस्यैवाभ्यासस्य ग्रहणात् । तथा च वृत्तिः । सनि लिटि च
प्रत्यये जेरङ्गस्य योऽभ्यास इति । विपराभ्या मिति अत्रोपसर्गयोर्ग्रहणात्

या जयति मेनेत्यादौ तद् न भवति । अस्याकर्मकत्वात्सर्वे कृतो न सन्तीनि नन्वेणाभिभवार्थे प्रदर्शयिष्यन्ते ॥ ५५४ ॥

जीव प्राणधारेण ॥ प्राणनलणस्य कर्मणो धात्वर्थेनोपसयहणाद-
कर्मकोपम् । जीवति । जिजीव । जीवितेत्यादि । जिजीविषति । जेजीव्यते ।
वकारान्तानामूभवाविना यङ्नुङ् नास्तीति तेवतावुक्तम् । जीवयति ।
अजिजीवत् । अजिजीवत् । आजभामेत्यादिना णौ चङ्युपधाद्ब्रह्मवि-
कल्पः । यावज्जीवम् । यावति विन्दजीवो रिति यावत्युपपदे णमुल् ।
जीविना । धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यं इति ण्वुल् । जीवनस्य मूर्तो
जीमूतः । एषोदरादिपाठाज्जीभावः । उणादौ तु जेर्मुट् चोदात्त इति
जयतौ व्युत्पद्यतः । जीवात् । 'जीवेरातुरित्यातुप्रत्ययः । जैवावृकः ।
'जीवेरावृकत् वृट्ठिरेति आवृकनि वृट्ठिः । जीवन्तः । 'हृहिनन्दिजीवि-
प्राणिभ्यो भक् पिट्ठदाशिपी'ति भक्, पिट्ठभावात् स्त्रिया ङीषि जीव-
न्ती । जीवन्तस्य गोत्रापत्यं जैवन्तायनः । 'द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतर-
स्या'मिति गोत्रापत्ये वा फक् । तदभावे इजि जैवन्तिः ॥ ५५५ ॥

पीव मीव तीव णीव स्यौल्ये ॥ पीवति । पिपीव । पीविता ।
पिपीविषति । पेपीव्यते । पीवयति । अपीपिवत् । एव मीवति ।
नीवतीत्यादि । प्रणीवति । 'उपसर्गादसमासेपी'ति णत्वम् । पीवरः स्थूलः ।
मीवरः मार्गः । तीवरो निपादः । नीवरो वणिक् । 'छित्वरेत्यादि'ना
वरचि वलि लोपे निपात्यन्ते । टित्त्वात् स्त्रिया ङीषि पीवरीत्यादि । उणा-
दिवृत्तौ तु पा पाने तेव देवने, मार्गं मार्गणे, णीञ् प्रापण, इत्येतेभ्य एते
व्युत्पादिता ॥ ५५६ ॥

तीवु निरमने ॥ तीवतीत्यादि । उदित्त्वात् त्वायामिड्विकल्पः ।
तीवित्वा । त्यूत्वा । इडभावे ऊठि यणादेशः । निष्ठाया 'यस्य विभा-
वे'तीङ्निषेधात् त्यूतः । तेवु निरसनइति चन्द्रः । तेवतीत्यादि ॥ ५५७ ॥

उर्वी तुर्वी शुर्वी धुर्वी दुर्वी हिंसार्थाः ॥ ऊर्वति । ऊर्वां चकार ।
ऊर्विना । ऊर्विष्यति । ऊर्वतु । और्वत् । ऊर्वत् । और्व्यात् । और्वीत् ।

ऊर्विविपति । ऊर्वयति । मा भवानूर्विषत् । रेफोपधत्वाऽदुपधायां
 चे'ति सर्वत्र दीर्घः । ऊर्ण्य । उर्ण्यवान् । ईदित्वाचिष्टायामनिट्त्वे
 भ्रलादिप्रत्ययपरत्वाद्वाल्लोप'इति वलोपे रेफस्य हल्परत्वाद्'हलि चे'ति
 दीर्घः । 'रपाभ्या'मिति निष्ठानस्य एत्वम्, एव क्लियपि । 'वाल्लोप' इति
 वलोपे 'व्राह्मधायी' इति पदत्वे दीर्घः, ऊ. उरौ उर इत्यादि ।
 तूर्वति । तूर्व । तूर्विता । तूर्नूर्वति । तौतूर्व्यते । 'हलो यमा मिति
 वकारस्य लोपो ययासख्यात्र भवति । तौतूर्वीति । तौतूर्ति । तौतूर्तः ।
 तौतूर्वति इत्यादि । पिदुवनेष्वनिट्त्व वकारस्य भ्रत्परत्वेनानुनासिका-
 दिप्रत्ययपरत्वेन च वाल्लोपे लघूपधगुणः । 'हलि चे'ति दीर्घत्व तु गुणे
 पूर्वत्रासिद्धम् । डित्स्वरैर्नैव दीर्घः । तौतूर्जतीत्यत्र परत्वाच्चित्यत्वाद्
 वाल्लोपात्पूर्वमद्भावे कृते भ्रत्परत्वाभावाच्च वाल्लोपः । 'उपधाया
 चे'ति रेफोपधत्वाद्दीर्घः । तौतूर्त इत्यत्र वलि लोपे 'हलि चे'ति दीर्घः ।
 अभ्रलादित्वादनुनासिकत्वाच्च वाल्लोपस्य न प्रसङ्गः । तौतौर्तु । तौतू-
 त्तात् । तौतूर्हि । तौतूर्त्तम् । उत्तमे वाल्लोपस्यानित्यत्वादाडागमः । लुङि
 तिप्सिपो. परत्वाद्वाल्लोपे हल्ङादिलोपे अतोति'रिति । अतोतूर्वुरित्यत्र
 परत्वाद् जुमि भ्रत्परत्वाभावाच्च वाल्लोपः । तूर्वयति । अतुतूर्जत् । तूर्वित्वा ।
 तूर्ण्यः । तूर्ण्यवान् । ईदित्वाचिष्टायामनिट्त्वम् । एव यूर्वति, दूर्वति,
 धूर्वतीत्यादि । धूः । धुरौ । 'भ्राजभासभाषे'त्यादिना क्लिपि वाल्लोपः ।
 पदत्वे 'वोरि'ति दीर्घः । धूर्षित्यत्र खरवसानयो'रिति विसर्जनीयो 'रोः
 सुपि' रोरेव सुपीति नियमाच्च भवति । धूर्पतिः । 'अहरादीना पत्यादिषु
 उपसख्यान'मिति विसर्जनीयापवादः पत्ते रेफ । उभयत्राण्यादिशब्दः
 प्रकारइति हरदत्तः । रेफाभावे विसर्जनीयो धूर्पतिः । अत्र विसर्ज-
 नीयस्य 'कुप्वाङ् कङ् पौ चे'ति पवर्गपरत्वेन पत्तुपध्मानीय उदाहार्यः ।
 'इणः ष'इति पत्वमपदादिकवर्गपवर्गपरविसर्जनीयविषयमितीह न
 भवति । धुर्यो धौर्यः । 'धुरो यङ्कावि'ति द्वितीयान्ताद्दृहतीत्यर्थे
 यङ्कौ । धुर्यमित्यत्र 'हलि चे'ति दीर्घस्य 'न भ्रङ्ङुरामि'ति प्रतिषेधः ।
 'वोरि'ति दीर्घस्तु 'यचि भ'मिति भत्वेन पदत्वस्य बाधाच्च भवति ।

परा जयति मेनेत्यादौ तद् न भवति । अस्याकर्मकत्वात्सर्वे कृतो न सन्तीति तन्त्रेणाभिभवार्थे प्रदर्शयिष्यन्ते ॥ ५५४ ॥

जीव प्राणधारणे ॥ प्राणनक्षणस्य कर्मणो धात्वर्थेनोपसयहणाद-
कर्मकायम् । जीवति । जिजीव । जीवितेत्यादि । जिजीविषति । जेजीव्यते ।
वकारान्तानामृडभाविना यङ्नुङ् नास्तीति तेवतावुक्तम् । जीवयति ।
अजिजीवत् । अजीजिवत् । भ्राजभासेत्यादिना शौ चङ्युपधाह्रस्ववि-
कल्पः । यावज्जीवम् । यावति विन्दजीवि'रिति यावत्युपपदे णमुल् ।
जीविना । धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्य' इति ण्वुल् । जीवनस्य मूतो
जीमूतः । एषोदरादिपाठाज्जीभावः । उणादौ तु जेर्मट् वोदात्त इति
जयतौ कृत्य दिनः । जीवातु' । 'जीवेरातुर'त्यातुप्रत्ययः । जैवातृकः ।
'जीवेरातृकत्' वृट्ठिचे'ति आतृकनि वृट्ठिः । जीवन्तः । 'रुहिनन्दिजीवि-
प्राणिभ्यो भृच् पिट्ठदाशिपी'ति भृच्, पिट्ठद्भावात् स्त्रिया ङीप् जीव-
न्ती । जीवन्त्य गोत्रापत्य, जैवन्तायनः । 'द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतर-
स्या'मिति गोत्रापत्ये वा फक् । तदभावे इजि जैवन्तिः ॥ ५५५ ॥

पीव मौव तां व णीव स्यौल्ये ॥ पीवति । पिपीव । पीविता ।
पिपीविषति । पेपीव्यते । पीवयति । अपीपिवत् । एव मीवति ।
नीवर्तान्यादि । प्रणीवति । उपमर्गादसमामेपी'ति णत्वम् । पीवरः स्थूलः ।
मीवर मानी । तीवरो निपादः । नीवरो वणिक् । 'क्वित्वरेत्यादि'ना
वरञ्चि वलितोपे निपात्यन्ते । टित्वात् स्त्रिया ङीप् पीवरीत्यादि । उणा-
दिश्रुतौ तु पा पाने तेव देवने, मार्ग मार्गणे, णीञ् प्रापण, इत्येतेभ्य एते
स्युत्यादिताः ॥ ५५६ ॥

क्षीवु निरमने ॥ क्षीवतीत्यादि । उदित्वात् क्ष्वायामिद्विकल्पः ।
क्षीवित्वा । क्ष्यत्वा । इडभावे ऊठि यणादेशः । निष्ठाया 'यस्य विभा-
वे'नीङ्निषेधान् क्ष्यतः । क्षेवु निरसनइति चन्द्रः । क्षेवतीत्यादि ॥ ५५७ ॥

उर्वी तुर्वी युर्वी धुर्वी दुर्वी हिंसार्थाः ॥ ऊर्वति । ऊर्वा चकार ।
ऊर्विता । ऊर्विषति । ऊर्वत् । और्वत् । ऊर्वत् । और्व्यात् । और्वीत् ।

ऊर्विष्यति । ऊर्वयति । मा भवानूर्विषत् । रेफोपधत्वा दुपधाया
 चेति सर्वत्र दीर्घः । ऊर्णम् । ऊर्णवान् । ईदित्त्वान्निष्ठायामनिट्त्वे
 भलादिप्रत्ययपरत्वा द्वाल्लोप इति वलोपे रेफस्य हन्यरत्वाद् 'हलि चे'ति
 दीर्घः । 'रषाभ्या'मिति निष्ठानस्य एत्वम्, एव क्तिपि । 'राल्लोप' इति
 वलोपे 'वोऽपधाया' इति पदत्वे दीर्घः, ऊ. उरौ उर इत्यादि ।
 तूर्वति । तूर्वम् । तूर्विता । तूर्वपति । तौतूर्वते । 'हलो यमा'मिति
 वकारस्य लोपो यथासख्यान्न भवति । तौतूर्वीति । तौतूर्ति । तौतूर्तः ।
 तौतूर्वति इत्यादि । पिबुवनेष्वनिट्त्व वकारस्य भ्रत्यरत्वेनानुनासिका-
 दिप्रत्ययपरत्वेन च राल्लोपे लघूपधगुणः । 'हलि चे'ति दीर्घत्व तु गुणे
 पूर्वत्रासिद्धम् । डित्स्वरैव दीर्घः । तौतूर्वतीत्यत्र परत्वाच्चित्यत्वाद्
 राल्लोपात्पूर्वमद्भावे कृते भ्रत्यरत्वाभावाच्च राल्लोपः । 'उपधाया
 चे'ति रेफोपधत्वाद्दीर्घः । तौतूर्त इत्यत्र वलि लोपे हलि चे'ति दीर्घः ।
 अभलादित्वादनानासिकत्वाच्च राल्लोपस्य न प्रसङ्गः । तौतौर्तु । तौतू-
 तात् । तौतूर्ह । तौतूर्तम् । उत्तमे राल्लोपस्यानित्यत्वादाडागमः । लुङि
 तिप्सिपोः परत्वाद्वाल्लोपे हल्ङादिलोपे अतोतारिति । अतोतूर्वुरित्यत्र
 परत्वाद् जुमि भ्रत्यरत्वाभावाच्च राल्लोपः । तूर्वयति । अतुतूर्वत् । तूर्वित्वा ।
 तूर्णम् । तूर्णवान् । ईदित्त्वान्निष्ठायामनिट्त्वम् । एव यूर्वति, दूर्वति,
 धूर्वतीत्यादि । धूः । धुरौ । 'भ्राजभासभाषे'त्यादिना क्तिपि राल्लोपः ।
 पदत्वे 'वोरि'ति दीर्घः । धूर्षित्यत्र 'खरवसानयो'रिति विसर्जनीयो 'रोः
 सुपि' रोरैव सुपीति नियमाच्च भवति । धूर्पतिः । 'अहरादीना पत्यादिषु
 उपसख्यान'मिति विसर्जनीयापवादः पक्षे रेफ । उभयत्राप्यादिशब्दः
 प्रकारइति हरदत्तः । रेफाभावे विसर्जनीयो धूर्पतिः । अत्र विसर्ज-
 नीयस्य 'कुप्वाः कू पौ चे'ति पवर्गपरत्वेन पक्षउपध्मानीय उदाहार्यः ।
 'इणः ष'इति पत्वमपदादिकवर्गपवर्गपरविसर्जनीयविषयमिनीह न
 भवति । धुर्यौ धौर्यः । 'धुरो यडुकावि'ति द्वितीयान्तादृहनीत्यर्थे
 यडुका । धुर्यमित्यत्र 'हलि चे'ति दीर्घस्य 'न भकुर्हुरामि'ति प्रतिषेधः ।
 'वोरि'ति दीर्घस्तु 'यचि भ'मिति भत्वेन पदत्वस्य बाधाच्च भवति ।

सर्वधुर वहति सर्वधुरीण । 'व. सर्वधुरादि'ति खः । ख इति योग-
भागादुन्निगुणी । उन्नरधुरीण इति वृत्तिः । योगविभागस्येष्टसिद्धयर्थ-
त्वाद् धुरीण इत्यपि द्रष्टव्यम् । अत्र ऋक्पूरञ्च पथ्यामानन्त'इति ऋगा-
अन्ते समामे ङकारस्य सामामान्तस्य विधानात्परवलिङ्गं दृन्दुतन्युत्प-
यो'रिति परवलिङ्गतया सर्वधुराया इति निर्द्वैष्ट्ये सर्वधुरादिति निर्देशः
शब्दरूपापेक्ष इति वृत्तावुक्तम् । अनन्तइति वचनादक्षस्य धूरक्षधूः वृठा
धूरस्य वृठधूरत इत्यादावकारो न भवति । सुधूरतिधूः किधूरधूरित्यत्र
'न वृजनात् किम् क्षेपे' 'नञस्तन्युनपादि'ति सामामान्ताभावः । पूजाया
स्वनी परिगणितौ । 'किम् क्षेपे'इत्यत्र न्यासान्तरेणापि क्षेपग्रहण लक्षण-
प्रतिपदोक्तपरिभाषया 'कि क्षेपे'इति विहितस्य क्षेपविषयस्यैव नत्युत्पस्य
लाभे तत्करणान्मा च नेहास्तीति कुत्सिता धूरस्य किधू शकट इत्यत्रापि
सामामान्ता नेत्युक्तपदमञ्जया, नद्वायविरोधादुपेयमिति । अय चाकारः
सामासायादुत्तरपदादङ्गनएव समामे भवति, तेन द्विधुरीत्यादावकारान्ता-
त्तरपदत्वाद् द्विगो'रिति डाप्सिद्धः । एतच्च जेमतावुत्पादितम् । एकधुर
वहति, एकधुरीणः । एकधुरः । 'एकधुराङ्गुक् चे'ति लुक् खश्च पठे । धूर्ता
हस्ती । ह्रिमिभृगिगवामिन्यादिना तन् । अक्षेपु धूर्तः । 'सप्तमी शौण्डे'-
रिति सप्तम्यन्त शौण्डादिना समस्यते, ब्राह्मणधूर्तः 'पिठायावती'त्यादिना
समाम् ॥ ५६५ ॥

गूर्वा उद्यमने ॥

मूर्वा वन्थने ॥ गूर्वति । मूर्वति । मुमूर्वेत्यादि । गूर्वा । 'गुरोश्चे'-
त्यकारप्रत्ययः । मौर्वा । 'तस्य विकार' इत्यण्, डीप् ॥ ५६७ ॥

पूर्वं पर्व मर्व पूरणे ॥ पूर्वति । 'उपधाया चे'ति दीर्घः । क्षिपि
राल्लोपेपूः । पिपत्तां च व्युत्पादयिष्यते । पुरि भवादि पौरयम् । नद्वादिभ्यो
ठगि ति शैषिको ठक् । वृत्तौ पूर्वमगरीति पठित्वा केचित्पूर्वमगरीति पठन्ति
विच्छिद्य च प्रत्यय कुर्वन्ति, उभयमपि प्रमाणमित्युक्तम् । द्विपुरी 'ऋक्पूर-
ञ्च'रित्यकारः सामामान्तः, स चाङ्गुतएव समामइति जम्भतावुक्त, तेनाका-
रान्तात्तरपदद्विगुत्वे डाप् पूर्ववदत्रापि । स्वतः किनञः परत्वे सामासान्ता न

भवति । पूर्वः । अच् । 'सर्वादीनि सर्वनामानि' अमज्ञोपसर्जनानि सर्वादीनि सर्वनामसज्ञानोति सर्वनामत्वे 'सर्वनाम्नः स्मै' इति डेः स्मैभावः । पूर्वस्मै । 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वेति पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्व । इति पूर्वस्य स्मात्स्मिनौ, आमि सर्वनाम्नः सुडि'ति पूर्व्वपामित्यामः सुडागमः, 'बहुवचने भक्त्ये द्वित्येत्वे पत्वम् । 'जसि च' 'पूर्व्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसज्ञाया'मिति जसः कार्ये प्रति सर्वनामसज्ञाविकल्पनात् सर्वनामत्वे 'जमः शी'ति शीभावे पूर्व । पूर्वाः । जसः कार्ये प्रतीत्युक्तत्वाद् 'द्वय्यसर्वनाम्नामकृत् प्राक् टे रित्यर्काच्च सज्ञाया विकल्पनाभावात्पूर्व्वके । पूर्व्वका इति भवति । व्यवस्था नाम स्वाभिधेयापेक्षोऽवधिनिधमः । मासेन पूर्वाय मासपूर्वायेत्यत्र 'पूर्व्वनदृशेति' तृतीयासमासत्वे तृतीयासमास'इति सर्वनामत्वाभावः । अत्र समास'इति प्रकृते पुनः समासवचनाद्वाक्येपि नेय सज्ञा । स्त्रियां तु 'सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्चे'ति ङिङ्चनेषु स्याडागमे ह्रस्वत्वे पूर्व्वस्यै पूर्व्वस्याः, पूर्व्वस्यामिति । शीभावाद्यनदन्तत्वाच्च भवति । पूर्व्वस्मिन्नहनि, पूर्व्वद्युः । 'सद्य परन्परार्येपम. परेद्व्यद्यपूर्व्वदुरत्येदुरत्यतरेदुरि-रेदुरधरेदुरभयेदुरहत्तरेदुरि'ति द्युप्रत्यये यस्येति लोपो निपात्यते । 'तद्धितश्चामर्शविभक्ति'रिति अव्ययश्चायम् । पुरो वसति । पुरत आगत , पुरो रमणीयम् । 'पूर्वाधरावरणामसि-पुरधवश्चैषामि'ति सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यः पूर्वादिभ्यो ऽसिप्रत्ययः स्वार्थे तत्सन्निधोगेनैषां यथासख्यं पुरादय आदेशा इत्यसिप्रत्यये पूर्व्वस्य पुरादेशः पुरस्ताद्गमति । पुरस्तादागतः । पुरस्ताद्रमणीयम् । 'अस्ताति च' अस्तातौ परतः पूर्वादिभ्यः पूर्व्ववत् पुराद्यादेशाः । पूर्व्वतः । पूर्व्वत्र । 'किं सर्व्वनामबहुभ्यो ऽद्यादिभ्य'इत्याधिकृत्य 'पञ्चम्यास्तमित्' 'सप्तम्यास्त्रलि'ति स्वार्थे तसिलुत्रलौ, पुरो भव पौरस्त्यम् । 'दक्षिणापश्चात्पुरमञ्चगि'ति शैषिकस्त्यक्, पुरस्कृत्य 'पुरोव्ययमि'ति क्रियायोगे गतित्वा 'त्कुगती'ति समासे त्त्वो ल्यप् । 'नमस्युरसोर्गत्योरि'ति कुप्वाः परतो विसर्जनीयस्य सत्वम्, गतिसज्ञायामव्ययवचनात् पुरः कृत्वेत्यत्रानव्ययत्वेन गतित्वाभावात् सत्वसमासयोरभावः । पूर्व्वं कृतमनेन पूर्वी । 'पूर्वादिनिरि'ति प्रथमा-

सर्वधुर वहति सर्वधुरीण । 'वः सर्वधुरादि'ति खः । ख इति योग-
भागादुत्तिगधुरीण । उत्तरधुरीण इति दृतिः । योगविभ्र गस्येऽसिद्धयर्थ-
त्वाद् धुरीण इत्यपि द्रष्टव्यम् । अत्र 'चक्रपूरब्धूः पथामानक्ष' इति ऋगा-
अन्ते समामे ऽकारस्य मामामान्तस्य विधानात्परवर्त्तिङ्गं दृन्दुतत्पुरुष-
यो'रिति परवर्त्तिङ्गनया सर्वधुराया इति निर्देष्टव्ये सर्वधुरादिति निर्देशः
शब्दरूपापेक्ष इति वृत्तावुक्तम् । अनन्तइति वचनादन्तस्य धूरत्तधूः वृद्धा
धूरस्य वृद्धधूरत्त इत्यादावकारो न भवति । सुधूरतिधूः किधूरधूरित्यत्र
'न पूजनात् किम् तेषे' 'नजस्तत्पुरुषादि'ति समासान्ताभावः । पूजाया
स्वती परिगणितौ । 'किम् तेषे' इत्यत्र न्यासान्तरेणापि तेषग्रहण लक्षण-
प्रतिपदोक्तपरिभाषया 'किं तेषे' इति विहितस्य तेषविषयस्यैव नत्पुरुषस्य
लाभे तत्करणात्सा च नेहास्तीति कुत्सिता धूरस्य किधू शकट इत्यत्रापि
समासान्तो नेत्युक्तपदमञ्जर्या, तद्व्याप्यविरोधादुपेत्यमिति । अय चाकारः
समामार्यादुत्तरपदादङ्गनएव समामे भवति, तेन द्विधुरीत्यादावकारान्ता-
त्तरपदत्वाद् द्विगो'रिति ङीप्सिद्धः । एतच्च जेमतावुषपादितम् । एकधुर
वहति, एकधुरीणः । एकधुर । 'एकधुराङ्गुक् चे'ति लुक् खश्च पक्षे । धूर्तो
हस्ती । हस्मिष्टृयिग्वामित्यादिना तन् । अन्तेषु धूर्तः । 'सप्तमी शौण्डै'-
रिति सप्तम्यन्त शौण्डादिना समस्यते, ब्राह्मणधूर्तः 'षोढायुवती'त्यादिना
समाम् ॥ ५६५ ॥

गूर्वी उद्यमने ॥

मूर्वी बन्धने ॥ गूर्वति । मूर्वति । मूर्मूर्वत्यादि । गूर्वा । 'गुरोश्चे'-
त्यकारप्रत्ययः । मौर्वी । 'तस्य विकार' इत्यङ्, ङीप् ॥ ५६७ ॥

पूर्वं पर्वं मर्वं पूरणे ॥ पूर्वति । 'उपधाया चे'ति दीर्घः । क्विपि
रान्कोपे पूः । पिपत्तौ च व्युत्पादयिष्यते । पुरि भवादि पौरेयम् । 'नद्यादिभ्यो
ठगि'ति शैषिको ठक् । वृत्तौ पूर्वनगरीति पठित्वा केचित्पूर्वनगरीति पठन्ति
विच्छिद्य च प्रत्यय कुर्वन्ति, उभयमपि प्रमाणमित्युक्तम् । द्विपुरी 'चक्रपूर-
ब्धू' रित्यङ्कारः, समासान्तः, स चाङ्गुतएव समासइति जम्भतावुक्तं, तेनाका-
रान्तान्तरपदद्विगुत्वे ङीप् पूर्ववदत्रापि । स्वतः किनजः परत्वे समासान्तो न

भवति । पूर्वः । अच् । 'सर्वादीनि सर्वनामानि' अमज्ञोपसर्जनानि सर्वादीनि सर्वनामसज्ञानोति सर्वनामत्वे 'सर्वनाम्नः स्मै' इति डेः स्मैभावः । पूर्वस्मै । 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वे'ति पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वं । इति पूर्वस्य स्मात्स्मिनौ, 'आमि सर्वनाम्नः सृडि'ति पूर्व्यामित्यामः सुडागमः, 'बहुवचने भक्त्ये'दित्येत्वे पत्वम् । 'जसि च' 'पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसज्ञाया'मिति जसः कार्यं प्रति सर्वनामसज्ञाविकल्पनात् सर्वनामत्व 'जमः शी'ति शीभावे पूर्व । पूर्वाः । जमः कार्यं प्रतीत्युक्तत्वा 'द्वय्यसर्वनाम्नामकृक् प्राक् टे'रित्यकचि सज्ञाया विकल्पनाभावात्पूर्वके । पूर्वका इति भवति । व्यवस्था नाम स्वाभिधेयापेक्षोऽवधिनिधमः । मासेन पूर्वाय मासपूर्वायेत्यत्र 'पूर्वनदृशेति' तृतीयासमामत्वे 'तृतीयासमास'इति सर्वनामत्वाभावः । अत्र समासइति प्रकृते पुनः समासवचनाद्वाक्येऽपि नेय सज्ञा । स्त्रिया तु 'सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्चे'ति ङिदुचनेषु स्याडागमे ह्रस्वत्वे पूर्व्यै, पूर्वस्याः, पूर्वस्यामिति । शीभावाद्यनदन्तत्वाच्च भवति । पूर्वस्मिन्नहनि, पूर्वदुः । 'अथ पस्त्यरायैयम.परेद्वय्यद्वयपूर्वदुरन्येदुरन्यतरेदुरिरेदुरधरेदुरभयेदुरहत्तरेदुरि'ति द्युप्रत्यये यस्येति लोपो निपात्यते । 'तद्वितश्चासर्वविभक्ति'रिति अव्ययश्चायम् । पुरो वसति । पुरत आगत , पुरो रमणीयम् । 'पूर्वाधरावराणामसि-पुरधवश्चैषामि'ति सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यः पूर्वादिभ्यो ऽसिप्रत्ययः स्वार्थे तत्सन्निधोगेनैषा यथासख्यं पुरादय आदेशा इत्यसिप्रत्यये पूर्वस्य पुरादेशः पुरस्तादुसति । पुरस्तादागतः । पुरस्ताद्रमणीयम् । 'अस्ताति च' अस्तातौ परतः पूर्वादिभ्यः पूर्ववत् पुराद्यादेशाः । पूर्वतः । पूर्वत्र । 'किसर्वनामबहुभ्यो ऽट्टादिभ्य'इत्यधिकृत्य 'पञ्चम्यास्तमिल्' 'सप्तम्यास्त्रलि'ति स्वार्थे तसिल्लत्रलौ, पुरो भव पौरस्त्यम् । 'दक्षिणापश्चात्पुरमस्त्रगि'ति शौषकस्त्यक्, पुरस्कृत्य 'पुराव्ययमि'ति क्रियायोगे गनित्वा त्कुगती-ति समासे त्वो ल्यप् । नमस्पुरमोगंत्योरिति कुप्वाः परतो विसर्जनीयस्य सत्वप्, गतिसज्ञायामव्ययवचनात् पुरः कृत्वेत्यत्रानव्ययत्वेन गतित्वाभावात् सत्वसमासयोरभावः । पूर्व कृतमनेन पूर्वी । 'पूर्वादिनिरि'ति प्रथमा-

न्विष्ण्व्योर चेति शब्दविषये उपत्यय, अकारश्चान्तादेशः । तस्यातो लोपः, तस्य स्यानिवन्वात् उपत्ययमपेक्ष्य लघूपधगुणो न भवति, तस्य पित्मु गुण । धिनोति । धिनुन । धिन्वन्ति । अन्तादेशे यणादेशः । धिनोषि । धिनुवः । धिन्वः । लोपश्चास्यान्यनरस्या म्वोः । असयोगपूर्वा य उकार-स्तदन्तस्य वरु रमकारादौ प्रत्यये वा लोप इति पक्षे उलोपः । पिति तु परत्वाद्गुणे उकारस्याभावः । धिनोनु । धिनु । 'उतश्च प्रत्ययादसयोगपूर्वात्' । योयमुकारो ऽसयोगपूर्वः तदन्तान्वय्यात् परस्य हेर्लुगिति लुक् । धिनवानि । निन्वत्वादुकारलोपात् पूर्वमाट् । अधिनोत् । अधिनुताम् । अधिनोः । अधिनवम् । अधिन्व । अधिनुव । धिनुयात् । अन्यत्र लकारे पूर्ववत् । धिन्वयवीन्यादि । जिन्व ीत्यादि देवने गतम् ॥ ५८६ ॥

गिवि रवि धवि गत्ययाः ॥ रिण्वति । धन्वतीत्यादि । धन्वा । 'कनि-न्युष्टपिनितिराजिधन्विद्युप्रतिदिव' इति कनिन् । उणादिवृत्तौ धन्विः सौत्रो धातुरुच्यते । नान्तत्वादसवुष्टौ सर्वनामस्थाने दीर्घः । भसज्ञायां 'न सयोगादृमन्तादि'ति अल्लोपनिषेधात् धन्वन इति । स्त्रियाम् 'अनो षहुर्वाङ्' इति डीपो निषेधात् सुधन्वा सुधन्वानावित्यादि । यदा 'डाबु-भाभ्यामि'ति डाप् तदा सुधन्वा सुधन्वे इत्यादि । अत्रान्यतरस्यायङ्गणात् यत् इ पोभ्यनृजानमुक् तद्रुपधानोपिन एवेति जेमतावुक्तम् ॥ ५८७ ॥

ह्रिवि हिमाक गयोश्च ॥ चकाराद्वनौ । कृणोति । 'धिन्विष्ण्व्योर, चे'ति शब्दविषये उकारप्रत्ययोकारश्चान्तादेशः । अल्लोपादिसर्वं धिन्विषत् । अय स्वादौ च ॥ ५८८ ॥

मव वन्धने ॥ मवति । ममाव । मेवतुः । मविता । अमवीत् । अमा-धीत् । 'अनो हन्ताड्' इति वा वृद्धिः । मिमविषति । मामव्यते । मामवीति । मामोनि । मामून । मामवति । मामोषि । मामोमि । मामावः । मामूमः । 'ज्वरत्वरस्त्रिष्य विमवामुपधायाश्च । ज्वरादिनामुपधावकारयोः कौ भूला-दावनुनानिकादौ च प्रत्यये परे ऊङ्ङित्पृडादेशे पिति गुणः । मामवतीत्यत्र परत्वान् निन्वत्वात् अद्वावे ऽभूलादित्व पर्यवमवमिति ऊण भवति । मा-मावेत्यत्र वल लोपे 'अतो दीर्घो यजीति' दीर्घः । 'ज्वरत्वरेत्यत्र क् चित्

धावु गति शुध्योः ॥ उदात्तः स्वरितेत् । 'स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफल' इति क्रियाफलस्य प्रधानस्य कर्तृगामित्वविवक्षाया नङ् । धावति । दधाव । दधावतुः । धावितेत्पादि । तङ्पक्षे धावते । इत्यादि । यदा क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वमुपपदेन प्रतीयते तदा 'विभाषोपपदेन प्रतीयमान' इति परस्मैपद भवति । स्वार्थं धावतीति । दिधाविषति । दिधाविषते । 'पूर्वव-

त्सन'इति क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वे तङ् । दाधायते । धावयति । अदी
धवन् । धावित्वा । धौत्वा । 'उदितो वे'तीद्विकल्पः । इडभावे 'क्वो'
शृङि'नि कटि 'स्येध'यट्'स्वि'ति वृट्, निष्ठाया यस्य विभाषे'ति अनि-
ट्त्वान् धौतः । धौतव न् । अत्र मैत्रेयः कथं धावितो धावितवानिति
उपक्रम्य कृतिचृतिनृनीनामीदित्व यस्य विभाषे'त्यस्यानित्यत्वे ज्ञापक-
माह, नित्यत्वे ह्येनेया 'सेमिचि कृनचृनकृनचृदचृन'इति सकारादाविटो
विकल्पनान् निष्ठायामनिट्त्वस्य मिट्टत्वात्किं तदर्थेनेदित्वेन ॥ ५८३ ॥

अथ ऊमान्ता आत्मनेपदिनः ॥

धुत् धित सदीपनक्लेशनजीवनेषु ॥ धुत्ते । दुधुत्ते । धुत्तिष्यते ।
धुत्तनाम् । अधुत्तत । धुत्तेत । धुत्तिपीठ । अधुत्तिष्ट । दुधुत्तिपते ।
दो'धुत्तानि । दो'धुत्ति । अनिटि 'स्को'रिति कलोपः । तस्यानिट्त्वात्
न लघ्वधगुणः । दो'धुत्ति । अनिट्त्वे 'स्को'रिति कलोपे 'ण्टेः कः सी'ति
कन्वे मियः पन्वप् । दो'धुत्तु । दो'धुत्तु । । अत्र सेहिः, तस्य धित्वे
भना जश् भशांति डकारः । दो'धुत्ताणि । लङि तिप्सिपोहंलङ्गा-
दिलोपे पद'न्तमयोगत्वात् कलोपे 'भला जशान्ते' इति जरत्वस्य
'वावमान'इति चत्वं अदोधाट् । धुत्तयति । अदुधुत्तत् । धुत्तः । एवं
धिततइत्यादि ॥ ५८५ ॥

वृत्त वरणे ॥ वृत्तने । वृत्ते । द्विवचने उरदत्वे च हन'दिशेष ।
वृत्तितेन्यादि । वृत्तिप्रने । वरीवृत्तने । 'रीरत्व'इति रीगागमः ।
वृत्तिष्टि । वरिवृत्तिष्टि । इत्यादि । वृत्तयति । अववृत्तत् । वृत्तः ।
वृत्ताः ॥ ५८६ ॥

शित्त विप्रोपादाने ॥ शित्तने । शिशित्तइत्यादि धुत्तिवत् । अत्र
सरङ्गिणीकरादयः शित्तेर्जिज्ञासायाम् इति वचनं नियमार्थम् इति
आचक्षणा जिज्ञासाया अन्यत्र परस्मैपदमाहुः । तदयुक्तम् । शक्तेः
सचन्तस्य विद्युर्यमभवान्, न च विधिमभवे नियमो युज्यते, एवमेव सम-
र्थितः न्यानकैयटपदमज्जयादिषु ॥ ५८७ ॥

भित्त भित्तायाम् अलाभे लाभे च ॥ भित्ततद्व्यादि पूर्ववत् ।
अथ द्विकर्मक, तत्राप्रधाने दुहादीनामिति वचनात् लङ्प्रत्ययनर्या अप्र-
धाने भवन्ति पौरवो गा भित्तये । भित्तितव्यः भित्तितः सुभित्त इत्यादि ।
षष्ठी तु द्वितीयावदुभयत्र भवति । भित्तिता गौः पौरवस्येति । अप्रधाने
तूभयथा गोणिकापुत्र इति भाष्य उक्तत्वात् पौरवमिति द्वितीयापि भवति ।
भित्तितव्यो राजा देवदत्तेनेत्यत्रानभिहिते कर्मणि कर्तरि च 'कर्तृकर्मणो'-
रिति षष्ठा उभयप्राप्तौ कृति प्रतिषेध इत्युक्तत्वात् न भवति ।
सर्वमेतच्चाथतावुपपादित तत एवावगन्तव्यम् । भित्तुः । 'सनाशसभित्त-
उरि'ति ताच्छीलिक उपप्रत्ययः । भित्ताकः । 'जल्पभित्ते'ति पाकन् । पित्त्वात्
स्त्रिया भित्ताक्री ॥ ५९८ ॥

क्लेश अव्यक्ताया वाचि ॥ वाधनइति दुर्गः । अत्र स्वामी क्लेश व्यक्ताया
वाचि चेति पठन्निमावपि पूर्वधातोर्थावेवाह । चन्द्रदुर्गत्रैयसमताकार-
देवादयस्तु धात्वन्तरमेवाहुः । क्लेशते । चिक्लेशे । क्लेशितेत्यादि । चिक्ले-
शिषते । क्लेश्यते ॥ ५९९ ॥

दत्त वृद्धौ शीघ्राय च ॥ दत्तते । ददत्ते । दत्तिनेत्यादि । दत्तिणः ।
दुदत्तिभ्यामिनिनिनन्, पूर्वशब्दवत् सर्वनामत्व तत्कार्यं च । स्त्रिया तु
टापि दत्तिणा । दत्तिणामर्हतीत्यादि दत्तिणीयः । दत्तिण्यः । 'कडकर
दत्तिणाञ्च चे'ति द्वितीयान्तादर्हतीत्यर्थं कृत्यतौ । यामय दत्तिणो वम-
ति । दत्तिणन आगतः । दत्तिणतो रमणीयम् । 'दत्तिणोत्तराभ्यामतमुजि'-
ति सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तात् स्वार्थे ऽतसुच्, 'पठ्यतमर्थप्रत्ययेने'ति तद्यु-
क्तात्षष्ठी । अतसर्थप्रत्ययइति सप्तम्यादन्तात्स्वार्थे यो विहितः स उच्यते ।
दत्तिणा यामस्य । 'उत्तराभ्यदत्तिणादाति'रिचयमातिरसुञ्चिपये पूर्ववत्
यामतः षष्ठी । दत्तिणेन यामम् । यामस्येति वा, 'एनबन्यतरस्यामदूरे
पञ्चम्या' इति उत्तरादिभ्य एनप् प्रत्ययः । अपञ्चम्या इति वचनादथ
सप्तमीप्रथमान्तेभ्य उत्तरादर्थोऽवधिमापेक्ष इति अर्धधिमतस्तस्य साम-
र्थ्यादवध्यपेक्षमदूरत्वम् । अन्यतरस्याग्रहण यथाप्राप्तानसुजादभ्यनुज्ञाना-
र्थमितरथा ह्यय दूरे बाधकः स्यात्, 'एनपा द्वितीये'ति तद्युक्तात् द्वितीया

पश्याद्यने इति पठ्यते । दक्षिणा यामात्, 'दक्षिणादाजि'त्याच्
 एतयो विषये, 'अन्यारादितरर्त्तद्विक्लब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' इत्याज-
 न्तयुक्ताप्यञ्चमी । अन्यइत्यर्थग्रहणम्, आरादितरर्त्त इति स्वरूपग्रहणम् ।
 दिक्शब्दा दिशि दृष्टाः पूर्वादयः । अञ्चूत्तरपदाः प्रागादयः । आज्ञाही
 प्रत्ययौ । दिक्शब्दत्वादेव सिद्धे ऽञ्चूत्तरपदग्रहणमस्तात्यन्तार्थम् ।
 तत्र हि पश्यातमर्थप्रत्ययेनेति पठ्यते विधीयते, एवमाज्ञाह्येऽपि । दक्षि-
 णाहि यामात् । 'आहि च दूर'इत्याहिः । पूर्ववदवध्यपेतदूरत्वे च-
 रादाज्ञपि द्रष्टव्यः । सर्वएते तद्विनाशसर्वविभक्तिरिति अव्ययसंज्ञकाः ।
 दक्षिणा भवः । दक्षिणात्यः । 'दक्षिणापश्चात्पुरसस्यगि'ति शैषिकस्य-
 क् । दक्षिणाशब्दः पश्चात्पुरोभ्या साहचर्यादिहाजन्तोऽप्ययं गृह्यते ।
 अन एव सर्वनामत्वाभावात् सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव इति पुंवद्भा-
 वो न भवति ॥ ६०० ॥

दीक्ष मौण्ड्येज्यापनयननियमव्रतादेशेषु ॥ दीक्षतइत्यादि । 'अनु-
 दानेनश्चे'ति युच् 'सूददीपदीक्षश्चे'ति निषोधादीक्षितेति सामान्यस्तु
 न भवति ॥ ६०१ ॥

ईक्ष दर्शने ॥ ईक्षते । ईक्षा चक्रे । ईक्षिता । ईक्षिष्यते । ईक्षताम् ।
 ऐक्षत । ईक्षेत । ईक्षिषीष्ट । ऐक्षिष्ट । ईक्षितपते । ईक्षयति । ऐक्षित्तु ।
 देवदत्तायेक्षते नैमित्तिकः । पृष्टः सन् शुभाशुभ पर्यालोचयतीत्यर्थः ।
 'राधीह्योर्यस्य विप्रश्नः' । अनयोस्तत्कारक संप्रदान यस्य विप्रश्नः । यद्वि-
 प्रश्न पृच्छन्नइत्यर्थः । स्वसवन्धिनः शुभाशुभस्य विप्रश्नयोगित्वात्कारक-
 मपि तथोच्यते । तदिह धातुरर्थात् शुभाशुभपर्यालोचनवृत्तिः । अन्यत्र
 देवदत्तमिति द्वितीयैव । सुख प्रतीक्षते सुखप्रतीक्षा । सुखप्रतीक्षा । 'ईक्षि-
 क्षमिभ्या चेति वक्तव्यमिति कर्मण्युपपदे णप्रत्यय ॥ ६०२ ॥

ईष गतिर्हि सादर्शनेषु ॥ ईषते । ईषा चक्रे । ईषितेत्यादि । 'तीष-
 महनुभरपरिष' इत्यत्र ह्रस्वादेर्यहणात् ईषितेत्यादौ नेद्विकृत्यः । ईषा ।
 मनम ईषा मनीषा पृषोदरादिः । समीष्ट आचार्यः । ईष्व इति वचनस्य
 निपातनमस्येति मैत्रेयः । उणादिवृत्तौ त्विषु इच्छायामिति तौदादिकस्य

निपातनमुच्यते, इषु इति ह्रस्वादिः । तन्मतेयनुज्झ'र्थे । परस्मैपदेषु
इषु गताविति दिवादा, वयमिच्छार्थः तुदादौ । आभिलष्यार्थः
श्र्यादौ ॥ ६०३ ॥

भाष व्यक्तायां वाचि ॥ भाषते । बभाषे । भाषिता । भाषिष्यते ।
बाभाष्यते । बाभाषि । भाषयति । अबभाषत् । अबभाषन् । 'भाजभा-
मे' ण्युपधात्त्वञ्चक्य । भाषकः । 'निन्दहिसे'त्यादिना वुञ् ताच्छी-
लिकः ॥ ६०४ ॥

वर्षे स्नेहने ॥ दन्त्योष्ठादिः । वर्षने । वर्षणे । वर्षिता । विवर्षिष्यते ।
वावर्ष्यते । वावर्षि । लङि तिप्सिपोरवावर्ट् । 'रात्सस्ये'ति नियमाच्च
सयोगान्तलोपः । वृषु सेचनइत्यर्थे परस्मैपदी । शत्यर्थश्चुरादौ ॥ ६०५ ॥

गेष्टु अन्विच्छायाम् ॥ ग्लेष्टु इति मैत्रेयः । अन्विच्छान्तेषणम् ।
गेष्टते । जिगेष्टे । गेष्टिता । जिगेष्टिष्यते । जेगेष्टि । जेगेष्टः । गेष्टयति ।
अजिगेष्टत । अदिस्त्वाचोपधाह्रस्वः ॥ ६०६ ॥

एष्टु प्रयत्ने ॥ एष्टतइत्यादि ॥ ६०७ ॥

जेष्टु णेष्टु एष्टु प्रेष्टु गतौ ॥ जेष्टते । नेष्टते । प्रणेष्टते । एष्टते ।
एषा चक्रे । एषिता । एषिष्यते । एषयति । मा भवानेपिषन् । प्रेष्टते ॥ ६११ ॥

रेष्टु हेष्टु अव्यक्ते शब्दे ॥ रेष्टते । अय स्वभावाद्बृकविषयः । हेष्टते ।
अयमश्वविषयः हेष्टु इति सरेफश्चात्र द्रष्टव्यः । यदाह केशवस्वामी । कौत्से
कर्दति पदंते गुदरे रेष्टेति वार्के हसे लुक्केति श्वरवे भषेति हयजे हेष्टेति
हेष्टेति चेति । तथा हेष्टा हेष्टा च निःस्वने इत्यमरः ॥ ६१३ ॥

कासु शब्दकुत्सायाम् ॥ कासते । कासां चक्रे । 'कासप्रत्यया'दित्याम् ।
कासिता । कासिष्यते । कासताम् । अकासत । कासित । कासिषीष्ट ।
अकासिष्टु । चिकासिषते । चाकास्यते । चाकास्ति । लोटि हेर्धिभावे 'धि
चे'ति सलोपे चाकाधि । न च 'धि चे'त्यत्र भाष्ये सिज्जपेक्षते । लङि तिपि
हल्ङादिलोपे प्रत्ययलक्षणान् तिप्परत्वात् 'निष्पनस्ते'रिति अस्तिवार्ज-
तस्य सान्तस्य पदस्य तिपि परे दकार इति दकारे तस्य चत्वंऽचक्रात् ।
सिपि तु 'सिपि धातोर्ध्व'ति सान्तस्य अस्तिवार्जितस्य धातोः पदस्य

पक्षे सत्त्वे अचका इत्यपि भवति । कासयति । अचकासत । ऋदि-
त्याचोपधादृस्व । कासः । 'हलश्चे'ति सज्ञाया घञ् । कासारः । औणा-
दिको बहुलकादारः । कासूः शक्तिः । कासूतरी । 'कासूगोणीभ्या ष्टर-
जि'ति अल्पत्वे द्योत्ये ष्टरच् । पित्त्वात् ङीप् । अस्मादेव निर्देशादूकार-
प्रत्ययः । कसतीति ज्वरादौ गत्यर्थः । कस इति गतिशासनयोरदिकस्य
तत्रधान्ये निर्दितादिना ऊः कसूरित्याहुः । अन्ये तु तालव्यान्त पठ-
न्तः कशूरिति ॥ ६१४ ॥

भास् दाप्तौ ॥ भासते । इत्यादि कासिवत् । भासयति । अवी-
भसत् । अवभासत् । भाज-भामे न्युदधात् ष्टादिकः ७ः । एव चास्य ऋदित्व
तद्धमात्रफलम् । अनुबन्धान्तराकरणे तु प्रकरणानुरोधात् । भास्वरः ।
न्येसभामे न्यादिना तच्छीलादौ वरच् । भाः । भासौ । भासः । 'भाजभा-
से'नि ताच्छीलिकः कर्त्तरि क्तिप् ॥ ६१५ ॥

णास् रास् शब्दे ॥ नासते । प्रणासते । रासतइत्यादि कासिवत् ।
नासा । अवारः । नासिका, सज्ञाया कनि 'केण'इति ह्रस्वः । 'प्रत्यय-
स्यादि'तीत्वम् । नासाया भव तस्यै हित नास्यम् । 'शरीरावयवाद्य-
दि'ति यत् । नासिकाशब्दात्तु यति 'नस् नासिकाया यत्तस्तुद्वेष्वि'ति
नम्भावे नस्यमिति । एव नस्तो नःस्तुद्र इत्यादि । आद्यादिभ्य उपसंख्यान-
मिति सार्वविभक्तिकस्तसिः । 'अपादाने चाहीयरुहोरि'ति वा अपादाने या
पञ्चमी तदन्तात्स्वार्थे तसिः । हीयरुहो प्रयोगे नेति, नःस्तुद्रः इत्यत्र नासि-
वया, तुद्र इति, 'पूर्वसदृशे'त्यादिना मम मन्त्रीयाया । तत्र ह्यन इत्यर्थ-
ग्रहणम् । नासिक्यो वर्णः । नासिक्य नगरमित्यत्र यति 'वर्णेनगरयोर्ने'ति
नम्भावप्रतिषेध, वाध्रीव नासा यस्य वाध्रीणस' । अजविशेषः । 'अज् ना-
सिकायाः सज्ञाया नस चासूलादि'ति नासिकान्ताद्बहुव्रीहेः सज्ञायामच्
ममासान्तः । नासिकायाश्च नमादेश । असूलादिति निषेधात् स्थूलनासि-
क इत्यत्राज्जनस्भावौ न भवतः । खुरणा, 'खुरखराभ्या नस् वक्तव्य' इति
नस्भावः । आदेशान्तरकरणे प्रत्ययानिवृत्त्यर्थमिति कैयटपदमञ्जर्यादौ ।
अत्र वृत्तावजपीयतइति तेन खुरणस, खुरणस इत्यपि भवति । प्रगता

नासिका अस्य प्रणसः । 'उपसर्गाच्च' । उपसर्गपूर्वनासिकान्ताद्बहुव्रीहेरजि-
त्यञ् नासिकायाश्च नस्भावः 'उपसर्गाद्बहुलमि'ति उपसर्गस्याद्विमित्ता-
त्परस्य नसे नकारस्य णत्वम् । उभयत्रोपसर्गग्रहणं प्राप्नुपलक्षणार्थम् ।
विगता नासिका अस्य वियः । 'वियौ वक्तव्य'इति यादेशो नासिकायाः ।
यद्ग्रहं नाथ नायास्य विनसा हतबान्धवा इति भट्टिप्रयोगे विशेषविहि-
तेन यादेशेन भाव्यमिति महान्तो न सहन्ते । के चित्तु वार्त्तिक वेः प्रो
वक्तव्य इति पठन्तो विप इति उदाहरन्ति । तुङ्गनासिका । 'नासिकोदरौ-
ष्ठजद्वादन्तकर्णशृङ्गाच्चे'ति नामिकाग्रन्ताद्बहुव्रीहेर्वो डीप् । रासः । क्रीडा-
विशेषः । रासभः । 'रासिबल्लिभ्या चे'ति अभच् । रास्वा । 'राज्ञामास्वाल्हू-
णावीणा' इति नप्रत्यये निपातितः ॥ ६१७ ॥

णस कौटिल्ये ॥ नसते । प्रणसते । नसे । नसितेत्यादि । नास-
यति । अनीनसत् ॥ ६१८ ॥

भ्यस भये ॥ भ्यसते । बभ्यसे । भ्यमिता । भ्यसिष्यते । बाभ्य-
स्यते । बाभ्यस्ति । भ्यासयति । अविभ्यसत् । बाभ्यधि इत्यत्र हेर्धि
भावे 'धि चे'ति सलोपस्तस्यामिदृत्वा'दतो हे'रिति लुक् न भवति ।
एव नरेरपि नानधि इति भवति ॥ ६१९ ॥

आडः शसि इच्छायाम् ॥ आडः शसिति प्रयोगादयमाङ्पूर्व एव
प्रयोक्तव्यः । तथा च काश्यपः । अयमाङः पर एव प्रयोक्तव्य इति, समतायां
न च केवलो नाप्युपसर्गान्तरपूर्व इति । आशंसने । आशशसे । आश-
सिता । आशिशसिपते । आशाशस्यते । इदित्त्वान्नुम् नलोपाभावश्च ।
आशाशस्ति । आशाशन्तीत्यत्र 'धि चे'ति सलोपेनुस्वारपरसवर्णौ । लङ्
तिप्सिपोर्हल्ङादिलोपे सयोगान्तलोपे चाशाशन् । आशसयति । आश-
शंसत् । आशसुः । 'सनाशसभित्त उरि'त्युप्रत्ययः । आशसितः । आशं-
स्यम् । आशस्य । त्वो ल्यप् । दौर्गस्तु नोपधमनिदित पठति । स्वाप्ती
च । तेषां नलोपाभावे विशेषः । शस स्तुतवित्यये परस्मैप्रदिपु । आडा
शासु इच्छायाम् । शासु अनुशिष्टाविति द्वयमडादौ ॥ ६२० ॥

यमु ऽलनु अदने ॥ यसते । जयसे । यसितेत्यादि पूर्ववत् । यास-
यति पिण्ड देवदनः । निगरणार्थत्वाच्चित्य परस्मैपदम् । प्रयोज्यस्य
कर्मत्वं च । यमिन्वा यम्त्वा । उदित्वादिद्विकल्पः । यस्तः । 'यस्य
विभागे'ति अनिट्त्वम् । यस्यतइति यासः कवलः । पिण्ड यसते पि-
ण्डय, 'अत्वमन्ते'ति दीर्घाऽधातेरिति प्रतिषेधाच्च भवति । यस्मिन्पुरिति
हेनाराज्ये लिङ्निर्देशे प्रयुज्यते । 'भुवश्चे'त्यत्र चकारस्यानुक्तसमुच्चया-
र्थत्वात् भ्राजिर्वाजिर्वाह्यः । अत एव 'भुवश्चे'त्यत्र वृत्तौ चकाराद् भ्राजेश्च
प्रयुज्य भाषायामिति चण्वद् क्रियते । एव ऽलसतीत्यादि ॥ ६२२ ॥

ईह चेष्टायाम् ॥ ईहते । ईहा चक्रे । ईहिता । ईहिष्यते । ईह-
ताम् । ऐहन् । ईहेत । ईहिषीष्ट । ऐहिष्ट । ईजिहिषते । ईहयति ।
मा भवार्नाजिहन् । ईहा । ऐही । पर्येही । आङ् पूर्वोच्चेनन्तात् शार्ङ्ग-
रवादिपाठान्डीन् ॥ ६२३ ॥

बहि महि वृद्धौ ॥ बहते । बबहे । बहिता । बंहिषीष्ट । बिबं-
हिषते । बाबहते । इदित्वाच्च । नलोपाभाव । बाबहिष्ट । भलि पदा-
न्ते च 'हो ङ' इति हकारस्य ङकारः । 'भपस्तथोर्धोऽध' इति तकारस्य
धकारे 'ष्टुना ष्टु'रिति ष्टुत्वे 'ढो ढे लोप' इति पूर्वस्य लोपः । अत्र ष्टुत्वे
आश्रयात् मिट्टेनेकारस्यानुस्वारपरसवर्णौ । बाबहण्डः । बाबहति । बाभङ्गि ।
ठन्वे 'एकाचो वशो भप् भपन्तस्य सध्वोरि'ति वकारस्य भप्भावेन भकारः ।
'पठोः कर्मा'ति कत्वम् । बाबह्मि । बाबंहूः । लङि तिप्सिपोठत्वात्
पूर्वे हन्ङ्मादिलोप इति भ्रन्तन्वाभावाच्च भप्भावः । बंहयति । अबबं-
हत् । एव महनइत्यादि । अय भावार्थश्चुरादाविति स्वामी । मह पूजा-
यामिति इहैवाये परस्मैपद्विपु । महीयतइत्यादि महीडितिकण्वादि-
पाठात् ॥ ६२४ ॥

अहि गनौ ॥ अहते । आनहे । अहिता । अज्जिहिषति । 'कुहो-
श्चुरि'ति हकारस्य भकारे 'अभ्यासे चर्च'ति जश्त्वेन जकारे नकारस्यानु-
स्वारपरसवर्णौ । अहयति । अज्जिहत् । अहः । अमुन् । चुरादौ
भावार्थः ॥ ६२५ ॥

गर्ह गल्ह कुत्सायाम् ॥ गर्हते । जगर्ह । गर्हिता । जिगर्हिषते । जागर्हते । जागर्हितीत्यादि बहिवत् । लङि तिप्सिपोर्हल्ङादिलोपे 'रात्सस्ये'ति नियमात् सयोगान्तलोपाभावाद्दृकारस्य ठकारे भ्रपन्तत्वात् पदान्तविषयत्वाच्च भ्रभावे अजघर्ष्ट । अयमाधृषीयोपि । गल्हतइत्यादि पूर्ववत् । यङ्लुकि तिप्सिपोर्लोपे सयोगान्तलोपे अजागल् ॥ ६२८ ॥

बर्ह बल्ह प्राधान्ये ॥ ओष्ठ्यादी । बर्हते । बल्हते इत्यादि । बर्हते सर्वेष्ववयवेषु प्रधानं भवति । बर्ह बर्हिणः । 'फलबर्हाभ्यामिनज्जक्तव्य' इतीनच् । बर्ही, मत्वर्यीय इति । इमौ भाषार्थौ चुरादी । बर्हस्हि-सायामपि तत्रैव, बृह विशृङ्गाविति अत्रैवाग्रे परस्मैपदिषु ॥ ६३० ॥

वर्ह बल्ह परिभाषणहिसादानेषु ॥ दन्त्यौष्ठ्यादी । वर्हते । वल्हते । ववल्हे । वल्हतेत्यादि । अत्र धनपालमैत्रेयौ परिभाषणादावोष्ठ्यादित्वं वाहतुः । क्वादयन्यनेनेति बर्हः, घञिति वदन् शाकटायनोऽप्यत्रैवानुकूलः । यथा वय तथा स्वामी । यदाह वर्ह बल्ह प्राध न्ये, मुनिवर्हणमिति । एव मुनिप्रवर्हा इति प्राधान्ये प्रयोग उपपद्यते । प्रवल्हिकेति च भाषार्थः । तदुक्त पुरुषकारे प्रवल्हिका प्रहेलिकेति चात्रैवानुकूल भाषाविशेषत्वात् । प्रवल्हेति । तथा च बहुवचनान्नयं प्रवल्हिकाशसति प्रवल्हिकाभिर्वै देवा असुरान् प्रवल्ह्याथैनानत्यायम् । व्याकृत चैतत् गोविन्दस्वामिना प्रवल्ह्या अनृतभाषया इति । यत्तुक्त शाकटायनेन आच्छादयतेऽनेनेति बर्हः घञिति, नैतदोष्ठ्यादित्वे साधक सर्वेष्ववयवेषु प्रधानं भवतीत्येव व्युत्पादितत्वात् । बृह उद्यमने चुरादौ ॥ ६३२ ॥

ग्लिह गतौ ॥ ग्लिहते । पिग्लिहे । पिग्लिहिषते । ग्लिहित्वा । ग्लेहित्वा । 'रलोव्युपधादि'ति कित्त्विकल्पः । ग्लीहा । 'श्वन्नुल्लन्पूपन्ग्लीहन्क्लेदन्स्नेहन्तृर्गमज्जवर्यमन्त्रिग्दम्भन्परिज्जन्मान्निग्दमयन्नि कनिनन्तो निपातितः । उगादिङ्गै' तु ग्लिहन्शब्दपूर्वाद्ग्लेहित्वेति लोपे व्युत्पादितम् ।

यथा वयं तथा मैत्रेयः, ग्रीहानावित्यादौ 'इन्हन्पूर्वे'ति नियमो हन्श-
द्धम्यनर्थकत्वाच्चेति भाष्यादौ स्थितम् ॥ ६३३ ॥

वेहृ जेहृ वाहृ प्रयत्ने ॥ आद्यो दन्त्यौष्मादिः । अन्यः केवलौ-
ष्मादिः । उभावपि केवलौष्मादी इत्येके । दन्त्यौष्मादी इत्यन्ये । वेहते ।
जेहते । वाहतइत्यादि, ऋदित्वाण्यौचडि ह्रस्वाभावः । अविवेहत्
इत्यादि । वेहत् गर्भापघातिनी गौः । सश्चतृपट्टेहदिति अतिप्रत्यये निपा-
त्यते । गोवेहत् । 'पोटायुवतिस्तोके'त्यादिना कर्मधारयः । बाहा ।
अजन्तत्वाट्टाप्, बाठ, 'लुब्धे'त्यादिना निष्ठायामिडभावो भृशार्थेऽन्यत्र
बाहितम् । जेहतिर्गत्यर्थोपि, उक्तं च रेणुभिर्जहमान भट्टभास्करी-
यम् ॥ ६३६ ॥

द्राहृ निद्राक्षये ॥ द्राहते । निद्रापदति के चित् । यङ्लुकि 'दादेर्धा-
तोर्घ'इति कलि पदान्ते चेति ह्रस्व घकारे 'भ्रपस्तथो'रिति धत्वे जश्त्वे च
दाद्राग्धि । दाद्राग्धि इत्यादि । सिपि भ्रपभावेन दकारस्य धकारः । 'खरि
चे'ति धकारस्य चत्वे सिपः सकारस्य पत्वे दाद्राक्षि । लङि हल्ङ्यादिना
तिप्सिपोर्लौपः, भ्रपभावजश्त्वचत्वेषु अदाद्राक् ॥ ६३७ ॥

काश दीप्तौ ॥ काशते । चकाशे । काशिता । काशिष्यते । काशताम् ।
अकाशन । काशेत । काशिपीठ । आकाशिष्ट । अकाशिष्यत । चिका-
शिपते । चाकाश्यते । चाकाष्टि । व्रश्च्यादिना पत्वे ण्वे चाकाक्षि ।
चाकाश्मि । चाकाश्वः चाकाश्मः । चाकाक्षीत्यत्र हेर्धिभावे व्रश्चा-
दिना पत्वे ण्वे जश्त्वम् । लङि अचाकाट् । काशयति । अचकाशत् ।
काशः । अचि घञि वा । नीकाशः । 'इकः काश'इति इगन्तस्योपसर्गस्य
काशउत्तरपदे दीर्घः । काशिः । काशी । अक्तिवन्तत्वात् वा ङीष् ।
काशिषु भवा काशिका । 'काश्यादिभ्यष्टञ्जिठावि'ति शेषिकौ ठञ्जिठौ ।
ठञि 'टिड्डु'ति ङीप् । काशिकी । काष्ठम् । 'हनिक्षुषिनीरमिकाशिभ्य'
क्ष्यन्'इति क्ष्यन् । आकारोपधप्रकरणादयमिह पठितः । अयं दिवादौ च ।
काश गनिशामनयोरित्यदादौ । अन्ये दन्त्यान्त्यमिदितं पठन्ति । अनि-
दितमपरे ॥ ६३८ ॥

जह वितर्कः ॥ वितर्कः सभावनम् । जहते । जहा चक्रे । जहिता ।
जहिष्यते । जहताम् । औहत । जहिषीष्ट । औहिष्ट । जजिहिषति ।
जहयति । औजिहत् । समूहति । समूहते । 'उपसर्गादस्यत्यूहोर्धावचन'-
मिति उपसृष्टादस्मात्परस्मैपदम् । समुह्यादित्यत्र 'क्रिदाशिपी'ति क्त्वि
'उपसर्गाद्ध्रस्व जहते'रिति यकारादौ कृडिति ह्रस्वः । एव यक्यपि समु-
ह्यतइति । यद्व्यप्युपसर्गादस्यत्यूहेरिति वार्तिकमकर्मकाधिकारेपठितं
तथापि वृत्तिकैयटादौ मकर्मकपाधारामुक्तम् । अनुक्तमप्यूहति पण्डितो
जन इति प्रयोग आडूपर्दस्येति सुधाकरः । एव च सति औहतीति
गुणः पठितव्यः । औह्यतइत्यत्रान्तादिवद्भावेनोपसर्गात्परत्वेनोपसर्गा
द्ध्रस्व जहते'रिति ह्रस्वो न भवति । उभयतरश्चाशये नान्तादिवद्भाव
इति वचनात् । यदुत्राण इति वर्त्तते, स च सामर्थ्यात्पूर्वेण णका-
रेणैति ह्रस्वाप्रसङ्गः । एव च समौह्यतइत्यादावप्यादिवृद्धौ ह्रस्वो न
भवति ॥ ६३९ ॥

गाहू विलोडने ॥ गाहते । जगाहे । जघात्ते । 'यासः से' भलि
'हो ठ' इति ठत्वे भष्भावे कत्वम् । ध्वमि ठत्वभष्भावयोः णुत्वे
ठलोपः । क्वादिनियमस्य प्रतिषिद्धविषयत्वादित्पत्ते जगाहिष्येत्यादि ।
गाठा । गाहिता । घात्यते । गाहिष्यते । गाहताम् । अगाहत । गाहेत ।
गाहिषीष्ट । अगाठ । अघात्ताताम् । अघात्तत । अगाठाः । अघाटुम् ।
अघात्ति । भक्तादौ सिञ्जनेपे ठत्वपत्वणुत्वटनेपा । प्रत्ययलक्षणेन
सादिप्रत्ययपरत्वाद्भूभावो नाशङ्क्यः, सिञ्जनेपस्य प्रत्ययलक्षणे पूर्वत्रा-
सिद्धत्वात् । अत एव सिद्धत्वात्सिञ्जनेपात्पूर्वं न भष्भाव, ध्वमि तु पर-
त्वाद्भूभावः । इट्पत्ते अगाहिष्टेत्यादि । जिघात्तते । जिगाहिषते ।
जागाह्यते । जागाठि । गाहयति । अजीगहत् । गाह्या । गाहित्वा ।
गाठाः । गाहः, गाहडिति पचादौ पाठात् । टित्वात् स्त्रिया गाही ।
गहुरम् । द्वित्वरेत्यादिक्रचि ह्रस्वो निपात्यते । उणादिवृत्तौ तु गाधते-
निपातनमुक्तम् । गहन करोति गहनायते । 'सन्नकक्षेत्य'नेन ऋणचिकी-
र्षाया क्यङ् । कण्व पाप, सन्नादयश्च वृत्तौ पापवचना इति हरदत्तादि-

भिन्नामत्रैव वार्तिके निर्देशात् ल्युटि ह्रस्वः, गृहे भव गृहीयम् । 'गृहा-
दिभ्यश्चेति शैपिकोऽत्र छः । गृह इति निर्देशादत्रि ह्रस्वः ॥ ६४० ॥

गृह् यहणे ॥ गृही । जृह् । जृहिषे । जृह्ते । जृहिष्ये ।
जृह्ये । गृहिना । गृह्ण । गृह्यते । ग्रह्यते । गृहताम् । अगृहत । गृहि-
षीष्ट । गृहीष्ट । 'निङ्सिचात्रान्मनेपदेष्वित्यनिट्पक्षे कित्त्वान् न गुणः ।
अगृहिष्ट । अगृहत । अगृहिषाताम् । अगृहिषत । अगृहताताम् । अग-
हिष्टा । अगृहयाः । अगृहिद्वम् । अगृहिध्वम् । अगृहध्वम् । अगृहिषि ।
अगृहि । अगृहिष्वहि । अगृह्णावहि । अनिट्पक्षे 'शल इगुपधादनिटः
कनः' 'कस्योच्ची'त्यल्लोपः । यजादावतो दीर्घा यजी'ति दीर्घः, ठत्वादि
तु पूर्ववत् । जिगृहिषते । जिगृहते । इडभावे 'हलन्ताच्चे'ति सनः
कित्वम् । जरीगृह्यते । 'रीगृह्यत' इति रीक् । जर्ह्येति । जर्गर्हि ।
जर्ह्यः । रुयिकोरप्युदाहार्यम् । गृह्यत्वा । गृह्णा । गृहम् । इगुपधलक्षणः
कः । अत्र मैत्रेयः । 'गृहे क' इति गृह्णातेः कविधान तस्यापि गृहमिति
यथा स्यादिति । अय क्वचित्कोपे ग्रिह इदुपधः पठ्यते तदनार्थं, यदाह
देवः । एयन्तस्य गृहणे गृह्येहयते तत्राऽनदन्ताद्गृहेर्भूवादेः शपि गृहते
शिन प्रत्यये गृह्णाति अगृह्णीत् चेति । अत्र पुरुषकारे गृह इत्यनेनैव
पूर्वस्माददन्तत्वमात्रविशेषः । गृहीत्वा विशिष्टमिति दर्शयिना गृह-
पाठाशङ्का निरवकाशना नीता । गृह इति स्वामिकाश्यपसम्मताकारा-
दयः पठन्ति तदपि ग्राह्यम् । तथा च 'अन्तेषु गृह' इत्यत्र वृत्तिः ।
गृहिः प्रकृत्यन्तरमिति । गृहतइत्यादि पूर्ववत् । गृहोऽस्तस्य । 'अन्तेषु
गृह' इत्यप् । अन्तादन्यत्र गृहाह इति घञ् । एषां तु निपातन गृहेत-
दिति तेषामनन्ते गृह इति प्रत्युदाहार्यम् । लत्वाभावो विशेषः ॥ ६४१ ॥

घुपि कान्तिकरणे ॥ घुपते । जुघुपे । घुपिता । जुघुपिपते । जोघु-
ष्यते । जोघुषि । लुटि हेर्धिभावे टुत्वज्जत्वानुस्वारपरसवर्णेषु जोघुषि ।
लङि तिप्पिपोर्लोपे ऽजोघुन् । घिपीतीदुपध पेटतुग्वन्द्रकाश्यपौ । स्वामी-
घमेति दन्त्यान्तमदुपध पपाठ । यथा वय तथा देवमैत्रेयदुर्गाः । पकारा-
न्तोप्ययम् ॥ ६४२ ॥



घुपिरविशब्देन ॥ उदात्तधातुसाम्यादिह पठितः, घुपादन्ता
उदात्ता अनुदात्तैः । घुपिरविशब्दनार्थः । इतो ऽहेत्यन्ता उदात्ता उदा-
त्तैः । विशब्देन प्रतिज्ञान, तच्च शब्देन स्वाभिप्रायप्रकाशनमिति न्यासे ।
अस्मादन्यस्मिन्नर्थे यथाप्रयोगमयं धातुर्वर्त्तत इति पुरुषकारे । सर्वत्र क्षीर-
स्वामिधनपालभागवृत्तिकारा घुषि शब्दार्थं पठु । चन्द्रदुर्गा त्वर्थशब्दमप-
हाय शब्दइत्येव पठतुः । घुप शब्द इति पठन् शाकटायनोप्यत्रैवानु-
कूलः । तेन हि य इति स्थाने अनेति न क्रियते । यदि शब्दइत्यर्थः स्यात्
तर्हि 'घुपिरविशब्देन' इति इट् प्रतिषेधेति लघु घुपिरविशब्दइत्येव वाच्य
स्यात् इति घुपिरविशब्दार्थ इति मैत्रेयादिपाठो ज्यायात् । घोषति ।
जुघोष, घोषिता, लुडी रिति वे'ति परस्मैपदेषु क्लृप्तादेर्गज्जन्तानां ।
अघुषत् । अघुषताम् । अघोषीत् अघोषिताम् इत्याद्युभय भवति । 'लुग्रा
दुहे'त्यत्र न्यासे अत्यघुषतेति वृत्तौ प्रत्युदात्तरणमुपादायानित्यमागमगान-
नमित्यनिट्त्वमुक्त्वा 'शल इगुपधा'दिति क्त उक्तः । हरदत्तादयस्तु प्रत्यु-
दाहरण घुष्यतेरिति मन्वाना इड्भावाय यत्नं कृतवन्तः । घुष्यतिर्हि
नित्यानिट् । जुघुषिषति । जुघोषिषति । घुषित्वा । घोषित्वा, 'रलो
स्युपधा'दिति क्त्विक्कल्पः, जोघुष्यते । जोघोषि । लोटि हेर्धित्वे
ष्टुत्वे च जश्त्वे च षकारस्य जोघुङ्ठि । लङि तिप्सिपोः अजोघोष्ट ।
घोषपति । अजुघुषत् । घुष्टा रज्जुः । 'घुपिरविशब्देन' इति निष्ठायां
निट्त्व, सपूर्वत्वे तु 'रूप्यमत्वरमघुषास्कना मिति इटो विकल्पनात् सघुष्टा
रज्जुः, सघुषिता रज्जुः, इत्युभय भवति । घुपिरविशब्देन इति चुरादौ ॥६४३॥

अतू व्याप्तौ ॥ अक्षति । आनक्ष । आनष्ट । आनक्षिथ । आनक्ष्व ।
आनक्षिव । उदित्वादिङ्गिकल्पः । यल्यनिट्पक्षे 'स्को'रिति कलोपे ष्टुत्वे ।
अक्षिता । अष्टा । अक्षिष्यति । अक्ष्यति । 'पठोः कः सी'ति कत्वे
आद्यस्य 'स्को'रिति लोपः । अक्षतु । अक्षत् । अक्षेत् । अक्ष्यात् । मा
भवानक्षीत् । मा भवानक्षिष्याम् । 'नेटी'ति न वृद्धिः । अनिट्पक्षे 'वद-
व्रजहलन्तस्ये'ति वृद्धौ मा भवानाक्षीत् । मा भवानक्षिष्याम् । ननु
येन वाच्यवधानमिति न्यायेनैकेन वर्णेन व्यवधानमाश्रितुं युक्तं न त्वने-

केनेति क्लृप्पस्यासिद्धत्वाद्नेकेन व्यवधानान् कथं वृद्धिः । नैतत् । तत्र
 हल्यहण हल्यमुदायप्रतिपत्त्यर्थमन्युक्तत्वात् । तथाहि । 'वदव्रजो'रिति
 योगो विभज्यते । तत्रात इति अनुवर्त्तयिष्यते । ततो ऽचइति द्वितीयो
 योगस्तत्राङ्गेनाचो विशेषणान् अपात्तीदित्यादावेकेन वर्णेन व्यवधाने
 वृद्धिमिदृशं पुनः क्रियमाणं हल्यहणं हल्यमुदायप्रतिपत्त्यर्थं भवति । अस्य
 कर्तृवाचिमात्रेधातुपरन्त्वे अन्ते न्यनरस्या मिति पक्षे शुर्भवति । अत्तो-
 ति । अत्तुनः । अत्तुवन्ति । अजादा'वचि शुधात्वि'त्यादिनोवङ् ।
 अत्तोतु । अत्तुहीन्यत्र 'उतश्च प्रत्यया'दिति हिलुङ् न भवति, तत्रै-
 वामयोगपूर्वादित्युक्तत्वात् । अत्तुवानीत्यत्र आटि परत्वादुवङ् बाधित्वा
 गुणः । आत्तोत् । अत्तुयात् । अचित्तिपति । अनिटपक्षे पूर्वत्रासिद्धीय-
 म्द्विवचनइत्युक्तत्वात् अम्मात्परत्वात् 'स्को रिति क्लोपे 'पठो'रिति कत्वे
 च सनः ककारमहितस्य द्वितीयस्यैकाचो द्विवचने हलादिशेषे 'सन्त्यत'इ-
 तीत्वं अचित्तनीति भवति । अत्तयति । चङि णिलोपस्य स्थानिवत्त्वात्
 त्रिशब्दस्य द्विवचने आचितत् । अत्तित्वा । अट् । निष्ठाया मष्टः । अत्ति ।
 'इत् इतीत्यन्यप्य' । अत्तुणा । 'अत्तिदधिमक्यत्तामनडुदात्त' इति तृतीया-
 द्यजादावन्तप्यानडादेशे अन्तोमेन इत्यल्लोपः । डौ 'विभाषा डिश्यो'-
 रिति विकल्पनान् अत्तणि अत्तणीत्युभयं भवति । विशालमत्ति यस्य स
 विशालात्तः । 'बहुव्रीहौ सक्यत्तुणोः स्वाङ्गात् पच्'इति पच् । स्वाङ्गा-
 चिमक्यत्तन्ताद् बहुव्रीहेः पच् । पित्त्वात् स्त्रिया विशालात्ती । स्वाङ्गा-
 दिनि वचनान् स्यूलात्ता वेणुयष्टिरित्यत्र 'अत्तुणोदर्शनादि'त्यचि टाङ्
 भवति । अदर्शनवाच्यत्तन्तात् समाममात्रादजिति सूत्रार्थः । इह च दर्शनं
 चतुरिति गवाक्षं कवराक्षमित्यत्राचतुर्वचनस्यात्तिशब्दस्याज् भवति । यद्वात्र
 समुदायो दर्शनमाधनं न तु नदवयवोत्तिशब्द इति तस्य दर्शनयोगाभावा-
 ददर्शनादिति निषेधस्य नैव प्रसङ्गः । कवराक्षमिति सच्छिद्रं यदश्वानां
 मुखपिधानं नदुच्यते । कथं स्यूलात्तिरित्तिरिति, यदि दृश्यते, अनित्यः समा-
 मान् इति निषेधः । अथ समामान्तः स्वतिपूर्वस्यापि भवति । 'न
 पूजना'दित्यत्र 'बहुव्रीहौ सक्यत्तुणो'रनिषेध इत्युक्तत्वात् ॥ ६४४ ॥

तत्त्व त्वत्त्व तनूकरणे ॥ तत्त्वति । तत्त्वित्यादि । अक्षिवत् । 'तनू-
करणे तत्त्व' इति पक्षे शब्दविषये शनौ तत्त्वोति, इत्यादि । अक्षोतिवत् ।
तत्त्वा । 'कनिन्युवृषितक्षी'ति कनिन् । तत्त्वोऽप्रत्य, ताक्ष्ण । 'शिवादि-
भ्योणि'त्यण् । अत्रा'चि'ति अक्षन्तस्याण्परत्वात्प्रकृतिभावे प्राप्ते 'पूर्वह-
नधृतराजामणी'ति पूर्वो योऽन्शब्दो हनश्च तयोर्धृतराजन्शब्दस्य चा-
णि प्रत्यये ऽल्लोप इत्यल्लोपः । शिवाद्याया 'सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्चे'ति
एयम्य बाधो नेष्यतइति वृत्तावुक्तत्वात्ताक्ष्ण इत्यपि भवति । 'नस्तद्वि-
त'इति लोपो 'ये चाभावकर्मणो'रिति प्रकृतिभावाच्च भवति । सेनान्तइति
सेनाशब्दान्ता गृह्यन्ते, लक्षण इति स्वरूपग्रहण, कारिणः शिल्पिन इति ।
शामस्य तत्त्वा शामतत्त्वः । कुट्या भव. कौटः, स चासौ तत्त्वा च कौटतत्त्वः
स्वतन्त्रतत्त्वोच्यते, 'शामकौटाभ्या च तत्त्व'इति टच् समासान्तः । पञ्चानां
तत्त्वणां समाहारः पञ्चतत्त्वः, पञ्चतक्षी । 'तत्त्वन्नलोपश्चे'ति नलोपः ।
पक्षे स्त्रीत्व च । द्वितक्षी । 'द्विगो'रिति ङीप् । अन्यदा 'स नपुंस-
क'मिति नपुंसकत्वम् । त्वत्त्व त्वचनइत्यग्रे तूदित् ॥ ६४६ ॥

उत्त सेचने ॥ उत्तति । उत्ता चकार । उत्तितेत्यादि पूर्ववत् । उत्तां
प्रचक्रुर्नगरस्य मार्गा इति भट्टिप्रयोगमुपादाय सुधाकारादयः । उत्ततइत्युक्ताः,
कर्मणि घञ् । उत्तान् प्रचक्रुरिति पाठान्तरं चास्यन् । उत्ता । श्वत्त्वत्त्विति
कनिनन्तो निपातितः । उत्ता समूहः औत्तकम् । 'गोत्रोत्ते'त्यादिना वुञ् ।
उत्ता इदमौत्तम् । 'औत्तमनपत्य'इति निपातनाट्टिलोपः । अपत्ये तु
औत्तणः । 'पूर्वह'न्नित्यल्लोपः । जातोत्तः । महोत्तः । वृद्धोत्तः । 'अचतुरे'-
तिकर्मधारयादचि टिलोपो निपात्यते ॥ ६४७ ॥

रत्न पालने ॥ रत्नति । ररत्न । रत्नितेत्यादि । निरत्नतीति, निरत्नी ।
रत्नमृचिप्रशानामिनिग्रहादिपाठः गिणिनि । रत्तण, रत्तणः । 'यजयाचे'त्या-
दिना नङ् । रत्तः । असुन् । रात्तसः । 'प्रज्ञादिभ्यश्चे'ति स्वार्थेण् ॥ ६४८ ॥

णिक्त चुम्बने ॥ निक्तति । निनिक्त । निक्तितेत्यादि । प्रणिक्तणम् ।
प्रनिक्तणम् । 'वा निस्निक्तनिन्दा'मिति णत्वविकल्पः । अयं विकल्पः

जुष च ॥ जूषते । जुषी प्रीतिसेवनयोरिति चुरादौ । जुष परिभा-
षणइति युजादौ ह्रस्वोपधौ ॥ ६६८ ॥

भूष अलङ्कारे ॥ भूषति । भूषते कन्या स्वयमेव । अभूषिष्ठ कन्या
स्वयमेव । 'भूषाकर्म'ति यक्विद्योर्निषेधः । भूषाफलं शोभनाख्य कर्मणि
दृश्यतइति कर्मस्यक्रियात्व कैयटइत्युक्तम् । अङ्गा सूनाः परिभूषन्त्वश्व-
मित्यत्र भट्टभास्करः । सूना मासविकर्षणसाधनान्यश्वादीनि, अश्व परि-
भूषन्तु परितो भवन्त्विति । भवतेर्लोटि सिपि रूपमुक्त्वा भूषयतेर्वा
शप् । 'हृन्दस्युभयथे'त्यसार्वधातुक्त्वाणिणलोप इत्याह । तदस्य धातो-
रस्मरणात् । न चाय नास्तीति शक्यते वक्तु, सर्वेषु व्याख्यानेष्वविवादे-
नोपादानात् । अय चुरादौ च ॥ ६६९ ॥

ऊष राजायाम् ॥ ऊषति । ऊषा चकार । ऊषिषति । मा भावानू-
षित् । णिलोपस्य म्यानिवत्त्वात् पिशब्दस्य द्विवचनम् । ऊषः ।
घञ् । ऊपरः । 'ऊषशुषिमुष्कमधो रः' मत्वर्थे रः । ऊषयति । उप दाहइति
अये ह्रस्वोपधः ॥ ६७० ॥

ईष उञ्छे ॥ ईषतीत्यादि ऊषिवत् । ईषतइति गतौ गतः ॥ ६७१ ॥

कष खप शिष जष भूष शप वष मष रूप रिष हिसार्थाः ॥ तृतीयषष्ठौ
तालव्योष्मादौ । सप्तमो दन्त्योष्मादि । कषति । चक्राप । कषितेत्यादि ।
अकषीत् । अकषीत् । 'अतो हलादे'रिति वा वृद्धिः । सर्वकषम् । 'सर्व
कूलाभकरीषेषु कष'इति खच् । 'अहृदिषदजन्तस्ये'ति खिदन्तउत्तरपदे
पूर्वपदस्य मुम् । मय कूलादिपूदाकार्यम् । विकषी । 'वै कषलपकृत्यश्रम्भ'
इति तच्छीलादिषु घितुण् । आकषः । निकषः । 'गोचरा'दिसूत्रे चकार-
म्यानुक्तममुच्ययार्थत्वात् अधिकरणे घः । आकषेण चरति, आकषिकः ।
'आकषात् षलि'ति तृतीयान्तात् अस्मात् चरतीत्यर्थे षल् । पित्वात्
आकषिकी । आकषे कुशल, आकषकः । 'आकषादिभ्यः कनि'ति सप्त-
म्यन्तात् कुशल इत्यर्थे कन् । निमूलकाप कषति । समूलकाप कषति ।
निमूल समूल च कषतीत्यर्थः । 'निमूलममूलयोः कष'इति णमुल् । उप-
पदममासः । 'कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोग'इति यस्मात् णमुलो विधानं

तस्यैवानुप्रयोगः, कपादयश्च 'निरूलसमूलयोः कप इत्यत्र' एतान् कर्म-
णि चेत्येतदन्तेरूपात्ता धातवः । अत्रानुशब्दे नानन्तर्येऽपि तु धात्वर्था-
नुवादेन पश्चाद्भावे, तेन व्यवहितपूर्वप्रयोगोऽपि द्रष्टव्यः । तथा च वृत्तिः ।
धातुबन्धे प्रत्ययविधानादनुप्रयोगः सिद्ध एव, यथाविध्यनुप्रयोगार्थं वच-
नमिति । तथा 'यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्' इत्यत्र हरदत्तः । अनुशब्दे
धात्वर्थानुवादेन पश्चाद्भावे न त्वानन्तर्यं, पूर्वप्रयोगो व्यवहितप्र-
योगोऽपि भवतीति । न्यासे च अथ पूर्वप्रयोगस्य व्यवहितप्रयोगस्य च
निवृत्त्यर्थं कस्माच्च भवति यथा 'कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटी' त्येतत् । तत्र । एत-
योरिष्टत्वात् । पाठौ कपितु शीलमस्य पत्कापी । 'सुव्यजातौ णिनिस्ताच्छि-
त्य' इति णिनिः, 'हिमकाषिहतिषु चेति हिमादावुत्तरपदे पादस्य
पद्भावः । कष्ट व्याकरणम् । कृच्छ्रसाध्यमित्यर्थः । कष्टानि वनानि ।
दुष्प्रवेशानीत्यर्थः । 'कृच्छ्रगहनयोः कप' इति निष्ठायामनिटत्वम् । अन्यत्र
कषितो देवदत्तः । कष्टाय कर्मणे क्लामति, कष्टायते । 'कष्टाय क्लमण'-
इति चतुर्थ्यन्तादनार्जवे क्यङ्, क्लमणमिहानार्जवम् । कष्टु चिकीर्षति, कष्टा-
यते । अत्र 'सत्रक्ले'त्यादिना द्वितीयान्तात्कण्वचिकीर्षाया क्यङ् । कक्षः ।
'वृत्तिवदी'त्यादिना सप्रत्ययः । 'षटोः कः सी'ति कत्व, 'तितुत्रेती' णिनपेधः ।
कक्षायते । 'सत्रक्ले'त्यादिना क्यङ् । खपतीत्यादि पूर्ववत् । खप्यः । बला-
त्कारः । 'खप्यशप्यत्राप्यपरूपकूर्यशिल्पा' इति सप्रत्ययान्ता निपात्यते ।
शिषति । शिशेष । शिशेषिथ । शेष्टा शेत्यति । शेषतु । अशेषत् । शेषेत् ।
आशिषि । शिष्यात् । अशिषत् । शल इगुपधे'ति क्तः अनिटत्व च, शिषि
पिषि श्लिष्यतिपुष्यती त्विषिमिति व्याघ्रभूतिवचनात् । तदुक्त पुरुषकारे ।
शिषेरमर्दायेगे शपि । शेषयति । शेषतीत्युभौ, लुङ्प्रभवाद्ध्यशेषत्
इति देवमुपादायाशेषीदित्युक्त, शिषि पुषिमित्यनिट्कारिकाप्रामाण्याच्छि-
षिमात्रस्यानिटत्वेन क्ते सति अशितदिति युक्तम् । तथा मैत्रेयोपि
शेष्टेत्यनिटमुदाजहार । एवं च लिटि सेट्त्व क्लादिनियमात्सिद्धम् । एव
चास्य सेटो मध्ये पाठो यथा शिषिमात्रस्यानिटत्वेन 'शलइगुपधे'ति
षान्तसाम्यात् षान्तपरस्मैपदिसाम्याच्च द्रष्टव्यः । शिशितति । 'हल-

न्ताच्चे'ति सनः कित्त्वम् । शेशिष्यते । शेशिष्टि । शेषयति । अशीशि-
षत् । शिष्टा । शिष्टः । शिष्टवान् । शिष्य कालयोगः । 'खष्यशिष्ये'ति
पप्रत्यये निपातितम् । जपति । जप्ताप । जपतुः । जपितेत्यादि कषि-
वत् । किति लिटि सेटि यलि चैत्वाभ्यासलोपौ । एव भ्रपति, शपती-
त्यादि । शष्य पूर्ववन्त्यः । शप आदानसञ्चरणयोरित्यये स्वरितेत् ।
वपति । ववाप । ववपतुः । वपितेत्यादि । वादित्वाच्चैत्वाभ्यासलोपौ ।
मपतीत्यादि । रोपति । रूरोप । रूरोपिथ । रोपिता । रोष्टा । रोषिष्यति
इत्यादि । तकारादौ 'तीपसहलुभरुपरिष'इतीद्विकल्पः । रुपित्वा । रुष्टा ।
इष्टपक्षे 'रलो व्युपधे'ति कित्त्वविकल्पः । निष्ठाया 'रुष्यमत्वरसद्युषास्वना'-
मितीदो विकल्पना द्यस्य विभागे'ति निषेधो भवति । रुष्टो, रुषितः ।
'मनिवृष्टिपूजार्थेभ्यश्चे'त्यत्र चकारभ्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वाद्गुप्तमाने क्तः ।
इष्टपक्षे उदुपधाद्वादादिकर्मणोरन्यतरस्या मिति क्रि-उदिकल्पनात्पक्षे
गुणः । रोपितमनेनेत्यादि भवति । रुष रोपइति दिवादौ चुरदौ च ।
रेपतीत्यादि रोपतिवत् । निष्ठाया 'यस्य विभागे'तीदो निषेधात् रिष्टः ।
रेपतइति शब्दे गतः । अत्र दण्डके मुपरिपि धातुः कोशे पठ्यते । स्तेया-
र्थाय पूर्वश्चेष्टे पठित इतीह पाठे नाभिनिवेष्टव्यम् । हिंसार्थत्वं यदि
दृश्यते तदा धातूनामनेकार्थत्वाद्भविष्यति ॥ ६८९ ॥

भप भर्त्सने ॥ इह भर्त्सन श्वरवो यतस्तत्रैवायं प्रसिद्धः । भपति ।
भपकः । कृत् ॥ ६९० ॥

उप दाहे ॥ ओपति । ओपा चकार । 'उषविदे'त्याम्बिकल्पः ।
उवोप । ऊपतुः । उवोपिथ । पिद्वचनेषु गुणस्य स्यानिवत्त्वादुपशब्दस्य
द्वित्वम् । पुनर्गुणे ऽभ्यासस्य त्युवङ् । न चाभ्यामस्यानादिष्टादचः पूर्वत्वे
गुणस्य स्यानिवत्त्वम्, असञ्चरणग्रहणसामर्थ्यादिति प्रागेवोपपादितम् ।
ओपिता । ओपिष्यति । ओपतुः । औपत् । औपेत् । उष्यात् । औषीत् ।
ओपिपिपति । ओपयति । मा भवानुपिपत् । प्रत्युष्टमित्यत्र भट्टभास्करः ।
'आदितश्चे'त्यत्र चकारभ्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वादाश्वस्त'दिवद्विष्टप्रतिषेधः ।
कप्मा । मनिनि बाहुलकाद् दीर्घः । ऊप रुजायामित्यस्माद्वा । उष्णः ।

इणसिधुषीति नक् । ऊष्णिका । यवागू । 'ब्राह्मणकोष्णिके सज्ञायामि'ति कनि निपात्यते । उष्ण करोति उष्णकोलसः । 'शीतोष्णाभ्या कारिणी ति कन् । उष्ण न सहते उष्णालुः । 'शीतोष्णवृषेभ्यस्तदनहन' इत्यानुच् । ओष्ठः । उषिकुषिकाशिभ्यष्टविति ठन् । बिम्बोष्ठी । बिम्बोष्ठा । 'नासिकोदरौष्ठे'ति वा डीष् 'आत्वाष्टयोः समासे वे'ति पररूप वृद्धेरपवादः । अन्यदा वृद्धौ । बिम्बोष्ठी बिम्बोष्ठा । पार्योष्ठम् । सप्तम्यर्थेऽव्ययीभावः । तस्माद्भवार्थे 'परिमुखादिभ्य उपसख्यानमि'ति ष्यञ् । उष्टुः । 'वृद्धि'ति घ्नन् बाहुलकादगुणत्वम् । उष्ट्राणा समूहः औष्ट्रकम् । 'गोत्रोत्तोष्ट्रे'ति वुञ्, उष्ट्रस्य विकारावयवयोरपि औष्ट्रकम्, 'उष्ट्रादुजिति वुञ् ॥ ६८३ ॥

जिषु विषु मिषु सेवने ॥ जेषति । जिजेष । जेषिता । जिजिषिषति । जिजेषिषति । जिषित्वा । जेषित्वा 'रलोव्युपधादि'ति क्त्विक्कल्पः । 'उदि-तो वे'ति त्वायामिडभावे जिष्टा । जेजिष्यते । जेजेष्टि । जेपयति । अजीजिपत् । जिष्टम् । वेषति । विषेप । विविषतुः । विवेषिय । विविषिव । शिषि पिषि शुष्यतिपुष्यती त्विषि श्लिषि विषि तुष्यतिद्विष्यती द्विषिमित्यनिट्कारिकापाठादस्यानिट्त्वेषि क्कादिनियमादत्रेष्ट । वेष्टा । वेष्ट्यति । अविस्तत् । 'शल इगुपधे'ति क्तः । विविस्तति । 'हलन्ताच्चे'ति सन. क्त्विक् । उदि-त्वात् त्वायामिड्विकल्पः । विषित्वा । वेषित्वा । विष्टा । बिष्टम् । वेषेण संपादौ वेष्ठी नटः । 'कर्मवेशाद्यदि'ति तृतीयान्तात्सर्पादित्यर्थं यत् । सपत्तिः शोभातिशयः । वेषेणात्यन्त शोभतइत्यर्थः । विष्ट व्याप्तौ जुहोत्यादौ । विष विप्रयोगइति च क्र्यादौ । मेषतीत्यादि जेषतिवत् । मेप इति पचा-दिषु दर्शनादचि । टित्वात्स्त्रिया मेपी । अय स्पृष्टाया तुदादौ ॥ ६८६ ॥

पुष पुष्टौ ॥ पोषति । पुषेप । पुषेपिय । पोषिता । पोषिष्यति । अपोषीत् । शिषि पिषि शुष्यतिपुष्यती इति श्यना निर्देशादयं सेट् । तथा पुषादीत्यङ्विधावपि दैवादिकस्य ग्रहणं, सेट्त्वात् क्त्वापि न भवति । स्वपोष पोषति स्वे पुष' इति णमुल् । अत्र स्वशब्दः पिबिद्विश्यते तेन पितृ-र्यायवचनस्य तद्विशेषार्थस्य च दृष्टमिदं क्त्वात् स्वशब्दे तत्पर्यायवाचिनि विशेषवाचिनि चोपपदे प्रत्यय इति गोपोष धनपोषमिति दैवादिकस्य

भवति । पोषितः । पुषितः । पुष्टमिति । पोषितमिति एयन्तस्य । पोषयतीति पोषयितुः । स्तनिर्हापेगदिमदिपुषिभ्यो शेरिबुजिति एयन्तादिबुच् । 'अयामन्ते'ति शेरयादेशः । अय दिवादि क्र्यादिश्च । धारणार्थश्चुरादिः । नन्वेक एव पुषिः विकरणभेदाय पुनः पठ्यते क्व चिच्चाय सेट् अन्यत्र पाठादभिट् इत्यर्थादार्धधातुके विकल्पितेदृत्वा 'अस्य विभाषे'तीटा न भवितव्य निष्ठा-याम् । नैतत् । यस्य वाचनिक इद्विकल्पस्तस्यैव तत्राश्रयणात् ॥ ६८७ ॥

अपु श्लिषु प्रुषु प्रुषु दाहे ॥ श्रेषति । शिश्रेष । श्रेषिता । श्लेषति । शिश्लेष । शिश्लेषिष्य । श्लेषिता । शिषि पिषि शुष्यति शिष्यतीति त्विषि श्लिषि-मित्यनिट्कारिकाया दैवादिकस्य श्लिषेर्ग्रहणं तेनाप्येतीड् उदाहृतः । उक्तं च कैयटे । श्लिष आलिङ्गनइति क्तविधावनिट्इत्यनुवर्तनाद् दाहार्थस्य सेटो-ग्रहणाभाव इति । एव तत्र न्यासपदमञ्जर्यारपि । यस्त्वनिट्कारिकाव्याख्यान-न्यासे द्वयोर्ग्रहणमिति पाठः स स्वोक्तिविरोधाद् अन्यान्तरविरोधाच्च प्रमा-दलिखितः । तथा च वर्द्धमानस्वामिसमताकारादयश्चामु सेटमाहुः । श्लेष-यतीति श्लेषः श्याद्वधासु न स्रवतीणवभावहूलिहश्लिषश्वसश्चे'ति कर्त्तरि णः । श्लेष्मा । श्लेष्मलः । मत्वर्थे । श्लेष्मणः । पामादित्वाच्च । अयमपि मत्वर्थे श्लेष्मणः शमन कोपन वा श्लैष्मिकम् । 'तस्य निमित्तप्रकरणे वातपित्तश्ले-ष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंव्यानमि ति ठक् । श्लक्ष्णः । श्लिषेरच्चापधाया इति क्तप्रत्ययः । उपधायाश्चाकारः । श्लिष्यतेर्वा श्लक्ष्णः । आचारश्लक्ष्णः । 'पूर्वसदृशे'त्यादिना समासः । आलिङ्गने दिवादिः । श्लेषणे चुरादिः । प्रोषति । प्रोषतीत्यादि । प्रुष्यतीति दिवादिपाठात् सेट् । प्रुषिप्रुषी द्वौ स्नेहने क्र्यादौ ॥ ६८९ ॥

पृषु वृषु मृषु सेचने ॥ मृषु सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च । अत्र काश्यपः । पृषु वृषु मृषु हिंसासंक्लेशनदानेष्वित्यादि पपाठ । पर्षति । पर्षिता । पर्षिष्यति । पर्षतु अपर्षत् । आशिषि पृष्यात् । अपर्षीत् । पिपर्षिषते । परीपृष्यति । पर्षिषीति । पर्षिष्टि । पर्षिर्त्ति । लोटि पर्षिषीत्यत्र हेडित्त्वाच्च गुणः । पर्षिषाणि । 'नाभ्यस्तस्याचि पिती'ति गुणनिषेधः । लङि निष्पिषेर्हल्ङ्यादिलोपः । अपर्षट् । 'रात्सस्ये'ति नियमात् न संयोगा-

न्तलोपः । अपर्पृषीत् । पूर्ववदगुणत्वं रिक्रीक्रोदाकार्यम् । पर्पयति ।
 अपपर्पत् । अपीपृषत् । पर्पित्वा । पृष्ठा । उदित्त्वादिकल्पः । पृष्ट, पृषितम्
 बाहुलकात् पृषेः किञ्चेति तच् अस्मादपीति । पृषतम् । पृषिरज्जिभ्यां किदि-
 त्यतच् । पृषन् विन्दुर्मुगश्च । 'वर्त्तमाने षन्महृज्जनन्तृयञ्चे न्यनिर-
 त्यये गुणाभावः । शतृवद्वावाद् 'उगितश्चे'ति स्त्रियां डीपि पृषती । पार्णिः ।
 मृणिमृनिपार्णिभूर्णिनूनिर्नूरित्प्रदिगिन्प्रत्यये निपात्यते । पार्णिः ।
 'सिध्मादिभ्यश्चे'त्यत्र पार्णिधमन्योर्दीर्घश्चेतिपाठात् लचि दीर्घः । तच्चा-
 न्यतरस्याग्रहणस्यानुवर्त्तनात् मतुपि पार्णिमान् । वर्षति । वषर्ष । वर्षतीति
 वर्षः । 'अज्विधौ भयादिभ्य उपसख्यान नपुसके क्तादिनिवृत्त्यर्थे'मित्यच् ।
 वृषेवौ वर्षणादिति भाष्यकारप्रयोगात् ल्युट् । वृष्टिः । 'तितुत्रे'ति नेट् ।
 वृषभः । ऋषिवृषिभ्या किदित्यभच् । वृषः । इगुपलक्षणः कः । वृषाय हितं
 वृष्यम् । 'खलयवमाषतिलवृषन्नस्त्रणश्चे'ति यत् । अत्राकारान्तस्य वृषशब्दस्य
 ग्रहणान्कनित्युवृषीनिकनिनन्तः वृषन्शब्दाद्वच भवति । प्राक्क्रीतीयस्त्वन-
 भिधानाच्च भवति । वृषमात्मन इच्छति वृषस्यति । मैथुन इच्छति इत्यर्थः ।
 'अश्वत्तीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि' इत्यसुक् । अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छा-
 याम् इति । अन्यत्र 'क्यचि चे'तीकारे वृषीयति । वृष्णिः । पृवृषिभ्या किदिति
 निः । वृषणः । बाहुलकात् क्युन् । वर्षतदति स्नेहने गतः । मर्षति । समर्ष ।
 मृषित्वा । मर्षित्वा । 'वृषिमृषिभ्यः काश्यपस्ये'ति सेट्त्वाः कित्त्वविकल्पः ।
 अनिट्पत्ते मृष्टा, निष्ठायां मृष्टम् । 'मृषस्तिस्तिज्ञायामि'ति कित्त्वमनिटो
 निष्ठायामेवेति दैवादिकस्य तत्र ग्रहण, स हि सेट्, मृषस्तिस्तिज्ञायामिनि
 दिवादिर्युजादिश्च स्वरितेतौ ॥ ६९४ ॥

घृषु संघर्षे ॥ घर्षति । संघर्षणम् । घृष्टम् ॥ ६९५ ॥

हृषु अलीके ॥ हर्षति । हृष्टानि लोमानि हर्षितानि लोमानि ।
 हृष्टं लोमभिर्हर्षितं लोमभिः । अत्रादित्त्वान्नित्यमनिट्त्वे प्राप्ते 'हृषेलो-
 मस्वि'ति लोमविषयालीकवाचित्वात्पक्षे इडागमः । यस्तु दिवादौ हृष तुष्टा-
 विति पठ्यते तस्य तु सेट्कत्वाच्चिष्टायामनेन पक्षे इगिनिषिध्यते इतीय-
 मुभयत्र विभाषा, अत्र लोमान्यङ्गजानि केशाश्चेति वृत्तावुक्तम् । लोम-

अन्यत्र दृष्टमित्येव भवति, दैवादिकस्य तु दृष्टिमिति । दृष्टो देव-
दत्तः, दृष्टो देवदत्तः, विस्मित इत्यर्थः । दृष्टा दन्ता दृष्टिता दन्ताः ।
प्रतिहता इत्यर्थः । विस्मिन्प्रतिघानयोगेति वक्तव्यमिति इद्विकल्पः ।
हर्षुलः । 'हृषेर्लजि'त्युलच् । हर्षयिषुः । स्तनिहृषीत्यादिना एयन्तादि-
बुच् ॥ ६९६ ॥

तुस ह्रस ह्रम रस शब्दे ॥ तोसति । तुतोम । तोसिता । तोसिष्यति ।
तोसतु । अतोसत् । तोसेत् । आशिपि । तुस्यात् । अतोसीत् । तुतुसिषति ।
तुतोसिषति । तुसित्वा । तोसित्वा । 'रलो व्युपधा'दिति जित्त्वविकल्पः ।
तोतुस्यते । तोतोस्ति । तोतुधात्यत्र सेहंधिभावे चकाधीतिव द्वि चे'ति
सलोपः । लङि निष्पिपेरर्हन्त्यादिलोपे 'तिथ्यनस्ते'रिति सकारस्य दत्वे
अतोनादिति भवति । सिपि तु 'सिपि धातोसर्वे'ति पक्षे सत्वे अतोना-
रिति भवति । तोसयति । अतुतुसन् । ह्रसति । जहास । ह्रसितेत्यादि ।
जिह्वमिषति । जाह्वस्यते । जाह्वन्तीत्यादि तुमिवन् । हासयति । अजिह्वसत् ।
ह्रस्वः । बाहुलकाद् 'ह्रस्व ल'घ्व'ति निर्देशाद्वा वप्रत्ययः । ह्रसिषुः । ह्रसी-
यान् । 'पृथादिभ्य इमनिज्जे'ति इमनिच् । सूलदूरेति इष्टमेय सु यणादि-
परं लुप्यते पूर्वस्य च गुणः । एतस्म्यलादिविषय यथासभवम् । अत्र यणादि-
लोपस्यामिदृशदत्ते त्यमिदृशत्वेति लोपो न भवति । ह्रस्व करोति ह्रस-
यति । णाविष्टवदिति यणादिलोपः । अङ्गुश्रुते पुनर्हताविति वृद्धभावः ।
भाष्ये अन्तोपित्वं च्छिडि इत्याभावादजह्वसन् । ल्हननीत्यादि ह्रसिवत् ।
रमणीत्यादि । रस इति रस आस्वादनस्नेहनयोरिति चौरादिकस्य एय-
न्तस्य, रनयनीति हि तस्य व्युत्पत्तिः ॥ ७०० ॥

लम ग्लेपगङ्गीहनयोः ॥ लसतीत्यादि । विलासी । 'वौ कषलसे'ति त-
च्छीलादौ घिनृण् । न लसः, अलमः । अलसस्य भावः, आलस्यम् । 'न नञ्यु-
वौत्तत्पुरुषादचतुरसङ्गतनवणावटपुथकतरमलसेभ्य' इति नञ्पूर्वात्तत्पुरुषाद-
चतुरसङ्गतलवणाद्युनरे भावप्रत्यया न भवन्तीति निषेधश्चतुरादिपर्युदा-
सादिह नेति षञ् भवति । एव नरसे, आरस्यमिति । अलमोयालस्यः । चातु-
र्वर्ण्यादित्वान्स्वार्थे षञ् भवति । लस शिल्पयोगदति चुरादौ ॥ ७०१ ॥

घस्लृ अदने ॥ अयं न सार्वत्रिकः, 'लित्यन्यतरस्यामि'ति अदेर्घस्लादेशविकल्पविधानवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । द्वैरूप्यं हि साध्यम् । ततश्च यत्र लिङ्गवचनं वास्ति तत्रैवास्य प्रयोगः । अत्रैव पाठः शपि परस्मैपदे लिङ्गम् । लृटित्करणमडि । घसिश्च सान्तेष्विति इगिनपेधो वलाद्वार्धधातुके । यत्र प्रत्यये प्रतिपदोपादानं 'सृघस्यदः क्करजि'त्यादौ तद्वचनम् । घसति । घस्ता । घत्स्यति । 'सः स्याद्वृधातुक्'इति तत्त्वम् । घसतु । अघसत् । घसेत् । शबभायानागिग्यम्य' प्रयोगः । अघसत्, लृटित्त्वादङ् । घत्स्यते देवदत्तेनावमि-त्यादौ शप्परस्मैपदाभावेपि वलादिनिमित्तः प्रयोगः । घस्मरः । 'सृघस्यदः क्करच्'इति क्करच् तच्छीलादौ । घासः भक्ष्यनृणादिः । जनिघसिभ्यामिण् । घासिः, जघासेति घासः प्रघास इति भट्टभास्करो 'बहुल छन्दसी'ति अदो घस्लादेश आणादिक इत्याह । तदस्य घसेरस्मरणात् ॥ ७०२ ॥

जर्जं चर्चं भर्भं परिभाषणहिंसातर्जनेषु ॥ जर्जति । चर्चति । भर्भति । भर्भरः । बाहुलकादरः । चर्चभर्भयोस्तुदादौ पठिष्यमाणयोरिह पाठः स्वरार्थ इति देवमैत्रेयपुरुषकारेषु । उष्मान्तेषु पाठार्थानुरोधादिति च मैत्रेयः । चर्चं अध्ययनइति चुरादौ ॥ ७०५ ॥

पिस्लृ पेस्लृ गतौ ॥ पेसति । पेसयति । अपिपेसत् । एकारोपधपाठः किदर्थ इति पिपेसतुः । पेपेस्यतइत्यादि । पेस्वरः । 'स्थेशभासपिसकसो वर-जि'ति वरच् । इह क्व चित् विस्लृ वेस्लृ पिस्लृ पेस्लृ इत्यपि पठ्यन्ते । आद्यौ दन्त्योष्मादिदन्त्यान्तौ । इतरावोष्मादी तालव्योष्मान्तौ चत्वार एते मैत्रेयादिषु न दृश्यन्ते । पिस अवयवइति तु चुरादौ ॥ ७०७ ॥

हसे हसने ॥ हसति । जहास । अहमीत् । 'ह्यन्तत्तणे'त्यादिना वृद्धिनिषेधः । व्यतिहसन्ति । 'प्रतिषेधे हसादीनामुपमख्यानमि'ति तद्धिषेधः । हसः । 'स्वनहसोर्व'त्यनुपसृष्टात् पठे अप् । तदभावे घञ्, हासः । उपसृष्टात् तु नित्य घञेव प्रहास इति । हस्तः । हसिमृषिणित्यादिना तन् । 'तित्रुत्रेती'णनिषेधः । हस्तोस्यास्तीति हस्ती 'हस्ताज्जातावि'ति इन् प्रत्ययः । हस्तिना समूहो हास्तिकम् । 'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्' इति ठक्

ण, मभ्यामस्येति शेषः । द्योतिता । द्योतिष्यते । द्योतताम् । द्योतेत । आ-
 शिषि द्योतिषीष्ट । अद्योतिष्ट । अद्युनत् । 'द्युद्धो लुडी'ति वा परस्मैप-
 दम् । द्युद्ध इति बहुवचनादाद्यर्थोवगतिः । यदा परस्मैपदं तदा पुषा-
 दित्वादङ् । दिद्युतिपते । दिद्योतिपते । द्युनित्वा । द्योतित्वा । 'रजो
 द्युपधादिति वा क्त्विम् । देद्युन्यते । द्युनिष्याये' रित्यभ्यामभ्य सप्र-
 सारणे 'गुणो यङ्लुको'रिति गुणः । देद्युतीति । देद्योति । द्योतयति ।
 अदिद्युनत् । द्युतिस्वाप्यो' रित्यभ्यामनिमित्तत्वेन प्रत्यये नानन्तर्यमाश्रीयते
 इति णिच्चा व्यवधानेप्यत्र संप्रसारणं भवति । अत एव तत्र वृत्तौ अद्यु-
 तदित्युदाहारि । तथा दाधत्यादिसूत्रे दविद्युतदित्यत्र द्युतेर्यङ्लुगन्तस्य
 शतरि अभ्यासस्य संप्रसारणाभावे विगागमश्चात्वा चास्य निपात्यतइत्यु-
 क्तम् । आनन्तर्यं ह्याश्रीयमाणे यङो लुका लुप्तत्वादानन्तर्याभावात् सप्र-
 सारणस्य प्रसङ्ग इति किं तदभाववचनेन । अत्र शिवदेव । 'हेरचडी'ति
 अभ्यासादुत्तरस्य हिनोतिः कुत्वमुक्त्वा तस्यावडीति निषेधाल्लिङ्गान्प्रकृ-
 तियहणे एयधिकस्यापि यहणमिति सामान्येन परिभाषामाश्रित्य पर्य-
 हार्येत् । अभ्यासस्य निमित्ते प्रत्ययानन्तर्यं आश्रीयमाणे ऽजीहयदित्यत्र
 णिच्चा ऽङो व्यवधानात्कुत्वाप्रसङ्गेऽपि क्रियमाणाय निषेधो एयधिकस्य
 ज्ञापयति । अस्याः परिभाषायाः सामान्यापेक्षत्वं वार्तिककारस्यानभिम-
 तम् । यदाह देवः । चङोन्यत्र एयधिकस्यापि कुत्वं भवति, तेन प्रजि-
 घाययिष्यतीति सिद्धं भवतीति । तथा च वार्तिकमपि । 'हेश्चङि' प्रति-
 षेधानर्थक्यमङ्गान्यत्वात्, ज्ञापकं त्वन्यत्र एयधिकस्य कुत्वज्ञापनार्थ-
 मिति । एवं 'स्तम्बकर्णयोरमिजपोः' 'अर्ह' इत्यादौ एयधिकस्य यह-
 णाभावाद् एयन्तादचो ऽभावादणि सुखार्हीत्यादि सिद्ध्यति । यदुक्तं
 सीरदेवेन एयधिकपरिभाषाया अत्रापिनीत्वात् अर्हादावप्रवृत्तिरिति ।
 सामान्यत्वमङ्गीकृत्य तदपि वृत्तिवार्तिकविरोधादेव प्रत्युक्तम् । अस्या-
 दुपपत्त्याद् 'उदुपधाद्वादादिकर्मणे'रिति निष्ठायाः क्त्विक्कल्प उदा-
 हार्यः । द्युतितमनेन द्योतितमनेनेत्यादि । विद्युत् । 'भ्राजभासे'त्या-
 दिना क्तिप् । दिद्युत् । 'द्युतिगमिजुहोतीना द्वे चे'ति क्वौ द्वित्वे ऽभ्या-

सस्य सप्रसारणम् । ज्योतिः । द्युतेरिसन्, आदेश्च ज इतीमन् आदेश्च
जः ॥ ७२८ ॥

शिवता वर्णे ॥ श्वेनते । शिश्विने । श्वेनिता । अश्विनन् ।
अश्वेतिष्ठेत्यादि पूर्ववत् । श्वित्तम् 'आदितरवे'ति निष्ठायां निट्त्वम् ।
भावादिकर्मणोस्तु 'विभाषा भावादिकर्मणो'रिति ङप्पुदाहार्यः । श्विति-
तमनेनेत्यादि । श्वित्रम् । स्फायितञ्चीत्यादिना रक् ॥ ७२९ ॥

जिमिदा स्नेहने ॥ मेदते । मिमिदे । मेदिता । अमिदत् ।
अमेदिष्टेत्यादि । 'मिदेर्गुण' इत्यत्र शिद्धहणमनुवर्तते तच्च कर्मधारय
इति यस्मिन्विधिरिति त्सञ्जकशकारादौ गुण इति शय्यगुणाभावः ।
भिन्नः । 'जीतः क्तः' । 'रदाभ्यामि'ति नत्वम् । आदित्त्वादिनिट्त्वम् ।
भावादिकर्मणोस्तु 'विभाषा भावादिकर्मणो'रिति वेट्, 'निष्ठाशीडि'ति
सेटो निष्ठायां कित्वाद्गुणे मेदितमनेनेत्यादि । मेदुरः । 'भञ्जभासमिदो
घुरच्' । मित्रम् । 'अमिमिदिशसिभ्यः चञि'ति चन् । अयं दिवादि-
श्चुरादिश्च । मिद मेधाहिसनयोरिति त्र्यादौ । जिमिदा स्नेहने
मोचने च । स्नेहनमोचनयोरिति क्व चित्पठ्यते ॥ ७३० ॥

जिष्विदा गात्रप्रसवणे ॥ स्वेदते । सिष्विदे । स्वेदिता । अस्वि-
दत् । अस्वेदिष्ट । सिस्विदिपते । 'स्तौतिण्यारेवे'त्यपत्वम् । सेष्वि-
द्यते । सेष्वेति । स्वेदयति । असिस्विदत् । एयन्तात्सनि 'सः स्विदि-
स्वदिसहीनां चे'ति अभ्यासात्परस्य सत्त्वम् । सिस्वेदयिषतीति । निष्ठायां
मिदिवत् स्विच् इत्यादि । अत्र स्वामी जिह्विदेति ह्रस्वकारं पठित्वा
जिष्विदेति नन्दीत्याह । तत्र स्वेदते । चित्त्विदे । अत्त्विदत् । अत्वेदि-
ष्टेत्यादि । त्वेदनीत्यव्यक्ते शब्दे भविष्यति । स्विद्यतीति स्नेहनसेकयो-
र्दिवादौ । स्विद्यतीति गात्र प्रसवणे ॥ ७३१ ॥

रुच दीप्तावभिप्रीतौ च ॥ रोचते देवदत्ताय मोदकः । 'रुच्यर्थानां
प्रीयमाण'इति प्रीयमाणस्य संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । रुच्ये । रोचिता । अरु-
चत् । अरोचिष्ट । रुचिपते । ररोचिपते । रुचित्वा । रोचित्वा । भृश रोचत-
इत्यर्थं यद्गुणित्यत इति वृत्तिन्यासादौ । रोचयति । रोचयते । 'अणावकर्मका-

द्वि'ति कर्त्रभिप्राये प्राप्ते परस्मैपदे 'न पादम्याड्यमाड्यसपरिमुहश्चिन्तित-
द्वम'इति निषिध्यते । रोचयति । रोचनः । रोचनम् । नन्दिवासिर्दा-
ह्यर्माधिर्वट्टिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः सञ्जायामिति नन्दादिपाठ ल्युः ।
रोचिष्णुः । 'अलङ्कृजि'त्यादिनेष्णुच् । रुच्यः । 'राजसूये'त्यादीना कर्त्तरि
क्यप् निपात्यते । रोकः । घञ् । 'चजोः कुघिण्यतोर्'ति निष्ठायाम-
निटः कुत्व वदतो वार्त्तिककारस्य 'विभाषा श्यावारोकाभ्यामि'ति निपा-
तनात् कुत्वम् । रोचिः । 'शुचिरुच्योः सञ्जायामि'ति सिः । रुक्मम् ।
'युजिरुचिनिजा कश्चेति मन्त्रत्ययः । चकारस्य ककारः । रोचकः । 'कुन
शित्सिञ्जयो रिति कुन् ॥ ७३२ ॥

घुट परिवर्त्तने ॥ घोटते । जुघुटे । घोटिता । अघुटत् ।
अघोटिष्ट । घुटित्वा । घोटित्वा । 'रलो व्युपधादि'ति वा कित्त्वात्,
जोघुट्यते । जोघोटि । घोटयति । अजुघुटत् । घुटितः । भावादिकर्मणोः
कित्वविकल्पे घुटिनमनेन घोटितमनेनेत्यादि । अच् । घोट । घोटकः ।
सञ्जायां कन् । घुटिका । सञ्जायां कुन् । अय तुदादौ च ॥ ७३३ ॥

रुठ लुठ लुठ प्रतीयाते ॥ आद्यौ प्रथमान्तौ । अन्त्यो द्वितीयान्तः ।
अयं पाठो देवमैत्रेयादीनाम् । हरियोगिनस्तु द्वौवेव । 'धातोः कर्मण'
इत्यत्र कैयटे द्वितीयान्तौ पठितौ । लीरस्वामी त्वेवं पठित्वा आह रुठ
लुटेत्येके । वायु लोडने इति लिङ्गाद् इति । तथा लुठ दीप्तावित्यप्य-
सावाह, लुठ इति तु शाकटायनः । सुधाकरस्तु भूवादिसूत्रे लुठतिट्ठि-
तीयान्तोपि लुठितो लोठमान इति प्रयोगदर्शनादित्याह । रोठते ।
लोठते । इत्यादि पूर्ववत् । लोठतीति लोडने गतम् । रुठति लुण्ठतीति
स्तेये । रोठति लोठनीत्यु-घाते । लुण्ठतीत्यालस्यप्रतिघातयोः । रुठति
लुण्ठतीति द्वयं गत्यर्थं ॥ ७३६ ॥

शुभ दीप्तौ ॥ शोभते । शुशुभे । अशुभत् । अशोभिष्ट । शुशुभि-
षते । शुशोभिषते । शुभित्वा । शोभित्वा । शोशुभ्यते । शोशोब्धि । शोभ-
यति । अशुशुभत् । हिंसाभवनयोः शोभति । शुभति ॥ ७३७ ॥

तुभ सञ्चलने ॥ संचलनं प्रकृतिविपर्ययो गमनं च । तोभते । अस्तु-
भत् । अतोभिष्ट्यादि पूर्ववत् । तुभ्यो मन्यः । 'तुभ्यस्वान्ते'ति मन्ये निष्ठा-
यामनिट्त्व निपात्यते । अन्यत्र तुभितः । अयं दिवादि ज्ञ्यादिश्च ॥ ७३८ ॥

णभ तुभ हिसायाम् ॥ प्रणभते । नेभे । नभिता । अनभिष्ट ।
तोभते । तुतुभे । तोभिता । अतुभत् । अतोभिष्ट । णभिरयमभावेपि
वर्तते । नभन्तामन्यके समइत्यत्र मा भूवचन्यके सर्वे इति निरुक्तम् ।
तथा नभन्तामन्यके मा ज्याका अधिधन्वसु इत्यत्र भाष्येण अन्यकेषां शूत्राणां
धन्वसु स्थिता ज्याकाः द्विवा मा भवन्त्विति । नभः समुद्रमाकाशश्च ।
असुत्रिन्यादिना असुन्मत्ययः । इमौ दिवादी ज्ञ्यादी च ॥ ७४० ॥

ससु ध्वसु भ्रसु अस्रसने ॥

ध्वसु गतौ च ॥ ससते । सससे । ससिता । अस्रसत् । अस्र-
सिष्ट । अङि नलोपः । सिस्रसिषते । सनीस्रसीति । सनीस्रस्तः ।
'नीग्वञ्चुस्रस्वि'त्यादिना नीक् । ससित्वा । स्रत्वा । उदित्वादिङ्-
कल्पः । इट्पठे कित्वाभावाच्चलोपाभावः । स्रन्तम् । उखायाः ससते
इति उखासत् । 'क्षिप् चे'ति क्षिप् । 'वसुससुध्वस्वि'ति यदान्तसकारस्य
दकारः । सनीस्रस्तः । यङ्लुगन्तात् कौ नलोपः । दत्त्वं सानुबन्धकनि-
र्देशाच्च भवति । रुत्वविसर्जनीयौ । 'अत्वसन्त ये'ति दीर्घा उधातोरिति
निषेधाच्च भवति । सनीस्रसः । अच्परं । यङ्नुकि यङो लुप्तत्वात् प्रत्य-
यलक्षणाभावाच्चलोपाभावः । एवं ध्वसते । भ्रसते इत्यादि । अत्र तृतीय
मैत्रस्वामिज्ञेय्याससम्पत्ताकारादयः तालश्रोत्रान्तं पठन्तो नीग्विधा-
वपि तथा वदन्ति । भ्रशतइत्यादि । अत्र क्वचित् भ्रशिरपि पठ्यते । भ्रशु
भ्रशु अधःपतनइति दिवादी देवमैत्रेयादिमते । ससते इति प्रमादे
गतः ॥ ७४४ ॥

संभु विश्वासे ॥ विस्रम्भते । स्रम्भे । स्रम्भिता । अस्रभत् ।
अस्रम्भिष्ट । सिस्रम्भिषते । सास्रभ्यते । सास्रम्भि । स्रम्भयति । अस्रस्र-
म्भत । स्रम्भित्वा । स्रब्ध्वा । विस्रम्भी । 'वै कणलसे'ति घिनुष् ।
स्रम्भतइत्यादि । तालव्यादिः काश्यपादिमते प्रमादे गतः ॥ ७४५ ॥

वृत्तु वर्त्तने ॥ वर्त्तते । वर्त्तते । वर्त्तिता । वर्त्तिष्यते । वर्त्स्यति
 वर्त्तताम् । अवर्त्तते । वर्त्तते । वर्त्तिषीष्ट । अवर्त्तत् । अवर्त्तिष्ट । अवर्त्तिष्यत् ।
 अवर्त्स्यत् । विवर्त्तिषते । विवर्त्सति । 'वृद्धः स्यसने वा परस्मैपदम् । वृद्धः
 इति द्रष्टव्यचननिर्देश आद्यर्थावगमार्थे इति वृत्तुवृधुश्रुस्यद्विकृपीनामपि
 स्यसनेर्वा परस्मैपद द्रष्टव्यम् । 'न वृद्धाश्चतुर्थ्ये' इति सकादेरार्धधा-
 तुकस्य परस्मैपदपरस्य इडभावः, भजदेः सनः 'हलन्ताच्चे'ति क्त्वाद्-
 गुणत्वम् । 'न वृद्धाश्चतुर्थ्ये' इति अत्र भाष्यवार्त्तिकयोः सिद्धे तु
 वृत्तादीनामात्मनेपदेन समानपदस्यस्येद्धवनादित्युक्तत्वात् कृत्परिपि सादौ
 परस्मैपदे लुकि चेष्टः प्रतिषेधो भवति । विवृत्सिता । विवृत्सितुम् ।
 विवृत्सितव्यम् । विवृत्सेति । सामान्येन वलादाविति सिद्धे आरभ्यमा-
 णमिदमात्मनेपदेन समानपदस्येद्धिधाने ऽर्थादन्यनिवृत्त्यर्थं, विवृत्सिषीय-
 तइति आत्मनेपदेन समानपदस्यत्वेप्यन्तरङ्गः प्रकृत्याश्रयः प्रतिषेधो भव-
 ति । न तु बहिरङ्ग आत्मनेपदाश्रयो विधिः । वरीवृत्त्यते । 'रीगृत्वत्' इति रीक् ।
 अवर्त्त इत्यादि नेयम् । वर्त्तयति । अववर्त्तत् । अववीवृत्तत् ।
 वर्त्स्यन् वर्त्तिष्यमाणो वा वर्त्तिष्यु । 'अलङ्कारित्यादिना इष्णुच् ।
 हस्तवर्त्त वर्त्तयति । 'हस्ते वर्त्तिष्ये'रिति हस्तप्राचिनि करणे उपपदे
 ण्यन्तादस्मात् ग्रहेश्व णमुल् । हस्तइत्यर्थग्रहणमिति पाणिवर्त्तमि-
 त्याद्यपि भवति । कृपादित्वाद्ययाविध्यनुयोगः । वृत्तः । अय यदान्त-
 र्भावितनय्यस्तदा सकर्मकः, यथा 'तेन निर्वृत्तमि'ति । निर्वर्त्तितमिति
 स्यत्रार्थः । यद्येव 'णेरध्ययने वृत्त'मिति निष्ठायामिडभावनिपातन
 किमर्थं यस्मादन्तर्भावितनय्योदस्माद्वृत्तमध्ययनमिति भविष्यति । एव
 तर्हि ण्यन्तादप्यध्ययने वृत्तमित्येव यथा स्यात्तु वर्त्तितमित्येवमर्थं
 निपातनम् । अत्र वृत्तिकारो ऽमु पक्षमुक्त्वा वर्त्तिता गुणो देवदत्तेनेति
 चेष्टमित्याह । अत्र हरदत्तः । तेषा नार्थः सूत्रेणेति । वृत्त तदिति
 वर्त्तम् । 'उणादयो बहुलम्' । 'भूतेपि दृश्यन्त' इति मनिन् । वर्त्तनिः ।
 रथमार्गः । 'अदेर्मुट्' 'वृत्तेश्चे'ति मुडागमो निप्रत्ययश्च । अदि-
 वृत्तिभ्या मुट् चेति वक्तव्ये पृथग्योगकरणात्पक्षे मुग्न भवति । वर्त्त-

निरित्यपि भवति । वर्त्तनी । कृदिकारत्वान्डीप् । अयं भाषार्थ-
श्चुरादौ ॥ ७४३ ॥

वृधु वृद्धौ ॥ वर्धतइत्यादि पूर्ववत् । वर्धिष्णुः । 'अलंकृजि'त्या-
दिनेष्णुच् । वर्द्धनः । नन्द्यादिपाठात् ल्युः । वृद्धः । अतिशयेन वृद्धो
वर्षिष्ठः । वर्षीयान् । 'प्रियस्थिरे'ति इष्टद्वीयमुर्गेर्यथासंन्याद् वृद्धस्य
वर्षादेशः । ज्येष्ठः । ज्यायान् । 'ज्य चे'ति ज्यादेशः । अकारोच्चारण-
सामर्थ्याद्विलोपो न भवतीति प्रागेवोक्तम् । वृद्धमात्रे वर्षयति । ज्याप-
यति । णाविष्टवदिति वर्षज्यादेशौ । वृद्धिः । 'तितुत्रे'ति नेट् । वृद्धार्थं
द्रव्यमपि, तत् प्रयच्छतीति वार्द्धुपिकः । प्रयच्छति गह्वं'मिति द्विती-
यान्ताद् गह्वं'पाधिकात्प्रयच्छतीत्यर्थे ठगिति ठक् । वृद्धेर्वृधुपभावः ।
वृधुपिः प्रकृत्यन्तर वेति वृत्तिः । वृद्धेर्गर्हत्वमशास्त्रीयत्वेन । अयं भाषा-
र्थश्चुरादौ ॥ ७४७ ॥

शधु शब्दकुत्सायाम् ॥ शर्द्धतइत्यादि पूर्ववत् । अयं प्रहसने
चुरादिः । वृतादयस्त्रय उदिनः ॥ ७४८ ॥

स्यन्दू प्रसवणे ॥ स्यन्दते । सस्यन्दे । सस्यन्दिवहे । सस्यन्दुहे ।
ऊदित्या त्स्वरतिमृती न्यादिना वलादावार्द्धधातु ऊद्विकल्पः । स्यन्दि-
ता । स्यन्ता । स्यन्दिष्यते । स्यन्त्स्यते । 'वृद्धा स्यसने'रिति यदा पर-
स्मैपदं तदा स्यन्देन्दिल्लजगमन्तरङ्गमपीद्विकल्प 'न वृद्धा'इति निषेध-
श्चतुर्थेहणसामर्थ्याद्वाधते इति स्यन्त्स्यति । अस्यन्त्स्यत् । सिस्यन्त्स-
तीत्येव भवति । स्यन्दताम् । अस्यन्दत । स्यन्दिपीठ । स्यन्त्पीठ ।
अस्यन्दिष्ट । अस्यन्दिष्यत । इडभावे कलि सिलोपे चत्वे अस्यन्त । अस्य-
न्त्साताम् इत्यादि । 'द्वुद्धो लुङी'ति यदा परस्मैपदं तदा 'पुपादिद्वु-
त्तदी'ति अङ् । अनुनासिकलोपः । अस्यदत् । अस्यदतामित्यादि । अस्य-
न्दिष्यत । अस्यन्त्स्यत । सिष्यन्दिष्यते । सिस्यन्त्सते । सिस्यन्त्सति । अनु-
स्यन्दते जलम् । अनुष्यन्दतइति वा । 'अनुविपर्यभिनिभ्य' इति वा षत्वम् ।
एवं पर्यादिभ्य उदाहार्यम् । अप्राणिष्वित्यस्य पर्युदासत्वात्प्राण्य-
प्राणिसमुदायोपि प्राणिव्यतिरिक्त इति मत्स्योदके अनुष्यन्दते इत्यत्रापि

वा मृद्वन्यो भवति । स्यन्दित्वा । स्यन्त्वा । 'त्किं स्कन्दस्यन्दो' रित्यनि-
 ट्यपि नलोपो निषिध्यते । स्यन्नः । निष्ठाया 'यस्य विभाषे'त्यनिटत्वम् ।
 स्यद्रः । यत्रि 'स्यद्रो जव' इति निपातनावलोपः, वृद्धभावश्च । जवा-
 दन्यत्र स्यन्दः स्यन्दनः । 'अनुदात्तेनश्चे'ति युञ्जा । सिन्धुः । 'स्यन्देः
 सप्रसारण धश्चे'त्युप्रत्ययः सप्रसारण धश्चान्तादेशः । सिन्धौ जातः सि-
 न्धुकः । सैन्धवः । सिन्धवपकराभ्यां कत् । 'अणजौ चे'ति कनणौ । सि-
 न्धुरभिज्ञनो यस्य सैन्धवः । 'मिन्धुनक्षशिलादिभ्यामणत्रा वित्यण् । सि-
 न्धौ भवादिरपि सैन्धवः । 'कच्छादिभ्यश्चे'ति शैपिकोण् । यदा त्वयं
 भवाद्विर्मनुष्यः तत्स्यो वा तदा मनुष्यनस्यये वृञ्जि'ति वुञ् । सैन्धवको
 मनुष्यः । सैन्धवक हस्मिन्मिनि । लवणमिन्धौ भव लावणसैन्धवम् ।
 'प्राग् दीव्यते ण्' । 'दृढगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य चे'त्युभयपदवृद्धिः ॥ ७४९ ॥

ऋप् सामर्थ्ये ॥ कन्यते । चकृपे । चकृपिपे । चकृप्से । इत्यादि स्य-
 न्दिबन् । विशेषस्तु 'लुटि च कृप' इति लुटि स्यमनोरित्यत्र परस्मैपदं
 तदा 'तामि च कृप' इति तासौ सकारादावनिटत्व च । कल्प्ता । कल्-
 प्तासीति पूर्ववदिदमूदिल्लक्षण विकल्प बाधते । अत्र चात्मनेपदेन समा-
 नपदस्यस्येति स्थितमिति मन्त्रन्ताङ्कति परस्मैपदे लुकि च निषेधो भवति ।
 चिकृप्सिना । चिकृप्सेन्यादि । 'हलन्ताच्चे'ति सनः कित्वाच गुणः । तथा
 यदा निङ्सिचोरात्मनेपदे इडभावस्तदा 'लिङ्सिचावात्मनेपदेऽपि'ति
 कित्वाच गुणः । कृप्पीष्ट । अकृप्त । अकृप्मानामिन्यादि । इटपक्षे कल्पि-
 पीष्ट । अकल्पिष्टेन्यादि । 'कृपो रो ल' इति रेफस्य लत्वम् । तत्र वर्णा-
 त्मकस्य रेफस्य वर्णात्मको लकारः, यस्त्ववर्णात्मक अकारस्तस्यावर्णात्मक
 लकारस्तत्र म्यान्यादिशयोः वर्णैकदेशयोः निर्देष्टुमशक्यत्वात् अकारस्य
 लकारः सपठ्यते । चलीकृप्यते । चल्कल्पि । चलिकल्पि, चलीक-
 ल्पनीत्यादौ । रिप्येयुकामपि कृपो भक्तत्वेन तद्रेफत्वान्नत्व भवति । तथा
 ह्युक्तम् । 'अदसोद्रेः पृथङ् मुत्व के चिदिच्छन्ति लत्ववदि'ति । द्युतादीनां
 यङ्लुगन्तानां लुङ्यङ् नास्ति । 'पुषादिद्युतादी'ति गणनिर्देशात् । तेन
 अदेशोर्नादित्येव भवति । सिजपेक्षेत्र गुणो नाजादिपिदपेक्षः । तथा

वृतादीनां यङ्लुगन्तानां 'न वृद्धा' इति इङ्निषेधोपि गणनिर्देशाच्च भवति । वरीवर्तिष्यतीत्याद्येव । कृपेस्तु गणनिर्देशाभावात् 'तासि च कृप' इति इङ्निषेधो भवत्येव । चल्कन्तासीत्यादि । द्युतादय उदात्ता अनुदात्ततः ॥ ६५० ॥

वृत् ॥ वृत् सपूर्णा द्युतादिर्वृतादिश्चेत्यर्थः ॥ वृत् वर्तनइत्यस्मादुत्तर्भूतेपि कृप् ॥

गणप्रयुक्तकार्यभाजो द्युतादीन् वृतादींश्च परिसमाप्यान्यानपि गणप्रयुक्तकार्यभाज आह ॥

घट चेष्टायाम् ॥ एतदादयस्त्वकारान्ता उदात्ता अनुदात्ततः षितश्च, तत्फल घटेत्यादौ 'पिद्धिदादिभ्योङि'त्यङ् । घटादयः फणान्ता मितः, तत्फल तत्रतत्र दर्शयिष्यते । घटते । जघटे । घटितेत्यादि । जिघटिष्यते । जाघट्यते । जाघटि । घटयति । अज्जीघटत् । मित्वा- 'मिता ह्रस्व' इति णाबुमधाह्रस्वः, यदा तु एयन्ताच्चिण्णमुलो तदा 'चिण्णमुलोर्दीर्घान्यतरस्यामि'ति चिण्णमुत्परे णौ मितामुपधाया वा दीर्घशासनात् अघाटि अघटि घाटम् २ घटम् २ इति भवति । अमि तस्तु वृद्धिरेव । एयन्तास्यादिषु चिण्वदिष्वपि वा दीर्घः । घटिष्यते । घाटिष्यते । अघाटिष्यत । अघटिष्यत । अघाटिपाताम् । अघटिपाताम् । घाटिषीष्ट । घटिषीष्ट । घाटिता । घटिता । चिण्वदिटोमिदृत्वाः यणेरनि टी'ति णिलोपः । चिण्वदिडभावे गुणायादेशयो कृतयोघटयिष्यतइत्यादि । कर्मकर्त्तर्यप्येवम् । लुङ्प्रकवचने तु 'णिश्च'ति यक्चिणोर्निषेधादङि अज्जी- घटत् स्वयमेवेति भवति । 'अचः कर्मकर्त्तरी'ति चिण्विकल्पस्य एयन्ते न विषय इति प्रागेवोक्तम् । 'घटादयो मित' इति गणनिर्देशेन विधीयमा- नत्वान्मित्वस्य यङ्लुक्प्रभावात् न ह्रस्वो नापि दीर्घविकल्प इति जाघाट यति । अजाघाटीत्यादि भवति । घटी । अजन्तत्वा'ज्जातेरस्त्रीविषया'दिति ङीष् । घटना । 'घटिवन्दित्रिभ्यश्चे'ति युच् । घटिका । 'कुन् शिल्पि- सज्जयो'रीति कुन् । अपरे गणान्तराधीता इह पठन्ते तेषामिहोपात्त एवार्थं मित्व, ये त्वपूर्वाः पठन्ते तेषामुपात्ते वानुपात्तेवार्थं मित्व, तदुक्त

बोधन्यासे, केचिद्विहैव पठ्यन्ते तेषामुपसर्गादिना अर्थान्तरेऽपि सानुबन्धत्वं यथा विधटयतीति, अपरे गणान्तराधीता इह पठ्यन्ते तेषामर्थेन नियमः । यथा स्मृ चिन्तायामन्यत्र पठितो ऽत्र स्मृ आधाने, आधानमुत्कण्ठापूर्वकस्मरणम् । स्मरयति । अन्यत्र स्मारयति । अत्र तरङ्गिण्यामपीदमेवार्थतत्त्वं स्थितम् । घाटयतीति घट सघातइति चौरादिकस्य, तस्य हि मित्त्वं निषिध्यते । 'नान्ये मितो हेता'विति जपादिपञ्चकव्यतिरिक्ता अहेतौ स्वार्थे णिचि मितो न भवन्तीत्यर्थः । अत एव स्वार्थे णिचि मित्वनिषेधाच्चेष्टाया मित्त्वार्थं तस्यायमनुवादो न भवति ॥ ७५१ ॥

व्यथ भयसंचलनयोः ॥ व्याघ्रात् व्यथते । 'भीत्रार्थानां भयहेतुरिति त्रिभेत्यर्थानां त्रायत्यर्थानां च प्रयोगे भयहेतुः कारकमपादानमिति व्याघ्रस्यापादानत्वात्पञ्चमी । व्यथते । विव्यथे । 'व्यथो लिटी'त्यभ्यासस्य सप्रसारण, 'न सप्रसारणे सप्रसारणमिति पूर्वस्य यणो यकारस्य सप्रसारणपरत्वात्संप्रसारण न भवति, संप्रसारणइति च सप्रसारणभाविनीत्यर्थः । यद्वास्मादेव वचनसामर्थ्यात्पूर्वं परस्य सप्रसारणं क्रियते पश्चादन्यस्य, अत्र च वेलायामस्ति संप्रसारणपरत्वम् । अथ वा 'व्यथो लिटी'ति सप्रसारणं हलादिशेषापवाद इति परस्यैव प्रसज्यते न पूर्वस्येति न चोद्भावकाशः । व्यथितेत्यादि । विव्यथिष्यते । वाव्यथ्यते । वाव्यथीति । वाव्यत्ति । व्यथयति । अविव्यथत् । घटिवच्चिण्णमुलोद्वाहार्थम् । न व्यथतइत्यव्यथ्यः । 'राजसूये'त्यादिना निषानिनः । अव्यथी । 'जिदृक्ती'त्यादिना नञूर्वात्ताच्छीलिक इनिः । व्यथा । पित्त्वादङ् । विथुरः । 'विदिभिदी'त्यत्र व्यथेः संप्रसारणं चेति वचनात्कुरचि संप्रसारणम् । विथुरः । 'व्यथः संप्रसारण धः क्रिञ्चे'ति वचनादुरचि संप्रसारणं यकारस्य धकारः । व्यथ दुःखचलनयोरिति दुर्मः । भयचलनयोरिति प्रकाशः । नवगंचतुर्यान्तोयं दिवादौ ॥ ७५२ ॥

प्रथ प्रख्याने ॥ प्रथते । प्रप्रथे । प्रथितेत्यादि । प्रथयति । अप्रप्रथत् । 'अन् स्मृदृत्वरप्रथप्रदस्तृम्यशा'मिति चङ्परं णावभ्यासस्यात्व मित्त्वापवादः । अप्रथि । अप्राथीत्यादि घटिवत् । पृथिवी । 'प्रथेः प्रिवत्संप्रसारणं चे'ति शिवन् शित्वान् डीष् । पृथिव्या निमित्तं सयोग उत्पातो

वा पार्थिव । 'सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणजा'विति अण् । पृथिव्या ईश्वरः पृथिव्या विदित इति वा पार्थिवः । 'तस्येश्वरः', 'तत्र विदितइति चे'-त्यण्, 'पृथिव्या जाजा'विति प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु जाजोः पार्थिवम् । अनयोः स्त्रिया विशेषः । पार्थिवा । पार्थिवी । पृथुः । 'प्रथिप्रदिम्भसजा संप्रसारण सलोपश्चे'ति कुप्रत्ययः संप्रसारण च । सलोपवचन भृज्जत्यर्थम् । पृथोर्भावः प्रथिमा । 'पृथादिभ्य इमनिञ्चे'ति इमनिच् । 'र क्तो हलादे'रिति ऋकारस्य रशब्दः । इमनिजभावे 'इगन्ताच्च लघुपूर्वा'दित्यणि पार्थिवम् । अत्र लघोः पूर्वत्वमिगपेक्षम् । तच्चेह द्वयोरचोरानन्तर्यणावस्थानासम्भवादेकहला व्यवधानमाश्रीयते । 'वातो गुणवचनादि'ति ङीप् पृथ्वी । गुणमुक्त्वा गुणिनि वर्त्तमानो गुणवचनः । अय कथादावपि । अत्र के चित्पृथेति ऋकारोपधमपि पठन्ति । यदाह वर्द्धमानः । पृथिकन्दिक्कन्दिक्तादीनां घटादौ पाठः चिण्णमुलोर्ध्वार्थ इति । अत्र स्वामी प्रथेः संप्रसारणविधानमार्थं मन्यते । पुरुषकारोपि यदप्रथयत् तत्पृथिव्याः पृथिवीत्वमिति औतस्य निर्वचनस्यार्थपक्षेवाञ्जस्यमिति । अन्यथा यदपर्ययदित्येव ब्रूयात् । पुनश्चेत्तम् । अथापि पृथेर्घटादिपाठे तत्फल घटादयः षित इति पित्वादाङि सति पृथेति रूप द्रष्टव्यमिति । व्यथादिस्थान्तः, पृथ प्रक्षेपइति चुरादौ ॥ ७५३ ॥

प्रस विस्तारे ॥ प्रसते । पप्रसे । पिप्रसिषति । पाप्रस्यते । पाप्रस्ति । लङि तिपि'तिप्यनस्ते'रिति दत्वे अपाप्रदिति भवति । सिपि 'सिपिधातो स्वे'ति दत्वस्त्वयोरपाप्रत् । अपाप्रः । प्रसयति । अपिप्रसत् । अप्रसि । अप्रासीत्यादि । प्रसा ॥ ७५४ ॥

म्रद मर्दने ॥ म्रदते । मम्रदे । म्रदिता । मिम्रदिपते । माम्रदयते । माम्रदीति । माम्रति । म्रदयति । अमम्रदत् । 'अत् स्मृदृत्वरप्रथमदे'त्यादिनाभ्यासस्यात्वं मित्वापवादः । मृदुः । 'प्रथिमदी'त्यादिना कुप्रत्ययः संप्रसारण च । नैतेन मृदातेरभावोनुमातव्यः । तत्र प्रसारणस्यान्यार्थं वक्तव्यत्वात्, सत्त्वएव हि मृदातेर्मृदेत्यादिनिर्देशोपपत्तिः । मृदोरपत्यं, मार्दयम् । 'शुभादिभ्यश्चे'ति ठक् । 'ठे लोपोकृत्वा' इति

उकारलोपः । मृद्वी । गुणवचनत्वात् डीप् । मृद्विका । कनि 'केण' इति ह्रस्वः । मृदिमा । पृष्ठादिभ्य इमनिचि 'र चत' इति रः । तदभावे मार्दवम्, स्वादुमृदुन इद सौवादुमृदवम् । 'द्वारादीना चे'ति वृद्धिप्रतिषेध ऐजागमश्च । मृद सौदइति ऋकारोपधः क्र्यादौ ॥ ७५५ ॥

स्वद स्वदने ॥ स्वदन विद्रावणमिति स्वामी । स्वदते । स्व-
दिता । स्वदयति । अचिस्वदत् । अस्वदि । अस्वादि । 'स्वदिरवप
रिभ्या चे'ति मित्सज्ञानिषेधस्य वक्ष्यमाणत्वात् अवस्वादयति । परिस्वा-
ददनीत्यत्र मित्त्व न भवति । अपावपरिभ्य इति बोधिन्यासे पठ्यते ।
तन्मते अपस्वादयतीत्यत्रापि मित्त्व न भवति ॥ ७५६ ॥

क्षजि गतिदानयोः ॥ क्षज इति कौशिकः । क्षज्जति । क्षज्जे ।
क्षजिता । क्षजिज्जपते । चाक्षज्ज्यते । चाक्षज्जि । क्षलि 'चाः कु'रिति
कुत्वे 'खरि चे'ति चत्वंम् । अनुस्वारपरसवर्णौ । क्षज्जयति । अक्ष-
ज्जत् । अक्षजिज्ज । अक्षजिज्ज । क्षज्जक्षजम् । क्षज्जक्षजम् । मित्त्व-
सामर्थ्यादनुपधात्वेपि चिण्णमुलो'रिति दीर्घविकल्पो भवतीति मैत्रेय-
सुधाकरादयः । क्षज्जेति गुहमत्त्वादङि सिद्ध्यति । एवमन्येषामपि सयो-
गान्तानां दक्षादीना मित्त्वसामर्थ्यात् दीर्घविकल्पः ॥ ७५७ ॥

दक्ष गतिगामनयोः ॥ वृद्धिशैथिल्योरनुदात्तेदय पठितस्तस्येहार्थ-
विशेषे मित्त्वार्थानुवादः । दक्षयति । अदक्षत् । अदाक्षि । अदक्षीत्या-
दि ॥ ७५८ ॥

क्षप क्षपायां गतौ ॥ क्षपते । चक्षपे । क्षपिता । चिक्षपिषते ।
चाक्षप्यते । चाक्षप्ति । क्षपयति । अचिक्षपत् । अक्षपि । अक्षापीत्यादि ।
अस्येह पाठो मित्त्वार्थः । न तु पित्त्वार्थः । यतः क्षपेः सप्रसाणं चेति
भिद्रादिपाठात् तत्फलमङ् सिद्ध्यति कृपेति । क्षपाणः । 'त्यजियुधि'क्षपेः
किञ्चे'त्यान् बहुलकादस्मादपि । क्षपणः । बाहुलकादेव क्युन् अस्मादपि ।
क्षपीटः । 'कृक्षपिभ्या कीटचि'ति कीटन् । अत्र 'क्षपो रो ल'इति लत्वा-
भावार्थं क्षपिस्थाने क्षपिः पठितव्य इति 'क्षपो रो ल' इत्यत्र भाष्यादौ
स्थितम् । कर्पूरः । खर्जपिञ्जादिभ्य ऊरोलचावित्यत्रापि क्षपियहणादूरः ।

कृपाणादौ बाहुलकात् सप्रसारणम् । यद्वा सर्वेष्वेते कृपेरेव लत्वाभावो
बहुलवचनादिति लत्वमूत्रे उक्तम् ॥ ७५९ ॥

कदि क्कदि क्कदि वैक्कये ॥ अत्र क्षीरम्यामेवं पठित्वाह । वैक्क-
व्यइति चन्द्रः । कद क्कद क्कदेति नन्दी अनिदितमाह । मैत्रेयस्तु कदिक्कदी
द्वाविदितौ पठित्वा क्कदक्कदेति द्वावनिदितावाह । तत्रेदितोरन्त्यःसरेफ
आद्या नीरेफः, अनिदितोस्त्वाद्यः सरेफः, अपरो लकारवान् । वर्द्धमा-
नेपि मैत्रेयवल्लकारवन्तमिदित चापठत् । यद्वाह । प्रथिक्कन्दिक्कन्दि-
स्यन्दीना घटादौ पाठः चिण्णमुलेवृद्धयर्थ इति । अत्र कदिक्कदिक्कदीना-
माह्वानरोदनयो परस्मैपदिषु गताना पुनरिहापि पाठो न केवलमित्त्वार्थः
किं त्वात्मनेपदिषु पाठसामर्थ्यात्तदर्थमपि । कन्दते । चक्कन्दे । कन्दि-
ता । चिक्कन्दिपते । चाक्कन्दते । चाक्कन्ति । कन्दयति । अक्कन्दत् ।
अक्कान्दि, अक्कन्दि । कन्दक्कन्दम् । कान्दक्कान्दमित्यादि । कज्जिवत् ।
मित्त्वनामर्थ्यादनुपधायामपि दीर्घविकल्पः । एव क्कन्दते । क्कन्दतइत्यादि ।
अनिदित्पाठे कदयति । अक्कादीत्यादि । एवं क्कदते । क्कदतइत्यादि ।
कन्दनं कन्दलः । बाहुलकादलः । कदली । गौरादित्वान्डीप् ॥ ७६२ ॥

जित्वरा सभ्रमे ॥ त्वरते । तत्वरं । त्वरिता । तित्त्वरिपते । तात्व-
र्यते । तातूर्ति । तातूर्तः । तातरीपि । तातूर्पि । तातूर्यः । तात्वरीमि ।
तातूर्मि । ज्वरत्वरं'त्युपधावकारयोः कौ भलादावनुनासिकादौ च भलि
क्कडिति ऊठ् । लोटि हेरपित्त्वान्दिक्कत्वाद्वाठि तातूर्हि । त्वरयति । अतत्वरत्
'अत् स्पृदृत्वरं'त्यभ्यासस्यात्वम् । इत्वापवादः । अत्वरि । अत्वारि ।
त्वरत्वम् । त्वारत्वारम् । तूर्णः । त्वरितः । 'रुष्यमत्वरं'ति निष्ठायां द्विक-
ल्पः । अस्यादित्त्वमात्मनेपदमात्रफलमिति मैत्रेयहरदत्तादयः । अन्ये त्वा-
दित्त्व यङ्लुक्कीडभावायर्थाहुः । नहि तत्र 'रुष्यमत्वरं'तीद्विकल्पः । एकाच
इति तत्रानुवर्त्तनादिति । तेषामयमभिप्रायः । 'आदितश्चे'त्यत्राव्य-
भिचारादेकाङ्ग्रहणं न सवध्यते । न चावयवे चरितार्थमादित्त्व यङ्लु-
गन्तार्थमपि स्यात्, तस्य धात्वन्तरत्वात् । त्वरतेरादित्त्व नावयवे चरि-
तार्थमिति सामर्थ्याद्यङ्लुगन्तार्थमिति । मैवम् । प्रयोजनकल्पनायामय-

लगे मङ्गे ॥ रगति । लगतीत्यादि कखिवत् । लगनः । 'तुअस्वान्ते'ति अनिट्त्व निष्ठाया निपात्यते । अन्यत्र लगितम् । रङ्गतिरङ्गती गन्वर्थेषु गतौ ॥ ७७४ ॥

हगे हूगे पगे ष्टगे सवरणे ॥ क चित्कोशे स्यगे इति दन्त्यादिरपि पठ्यते । तत् षोपदेशलक्षणविस्तृम् । हगति । जहाग । अहगीत् । जिहगिषति । जाह्रग्यते । जाह्रक्ति । हगयति । अजिहगत् । अहागि । अहगि । एव हूगतीत्यादि । सगति । ससाग । सेगतुः । सेगुः । आदे शादित्वमनैमित्तिक न तु निशिनमित्तमिति एत्वाभ्यासलोपौ । असगीत् । मिसगिषति । सासग्यते । सासक्ति । सगयति । असीसगत् । असगि । अमागि, इति । स्यगति । तस्याग । स्यगिता । अस्थगीत् । तिस्यगिषति । तासग्यते । तायक्ति । स्यगयति । अतिस्यगत् । अस्यगि । अस्यागीत्यादि ॥ ७७८ ॥

कगे नोच्यते ॥ अत्र मैत्रेयः । अस्यायमर्थ इति नोच्यते । क्रियासामान्यमर्थ इत्यर्थः । इह शास्त्र कगे नोच्यते इत्येके । स्वामी तु अस्यायमर्थ इति नोच्यते । अनेकार्थत्वात् इति, नोच्यतइति, योर्थस्तत्रार्थे कगे इत्येके । कगेत्युक्तत्वात्क्रियासामान्यमस्यार्थ इत्याहान्ते । कगतीत्यादि । कवादयो ऽष्टावेदितः ॥ ७७९ ॥

अक अग कुटिलाया गतौ ॥ अकति । आक । अकिता । मा भवानकीत् । अचिकिषति । अकयति । मा भवानचकत् । माभवानकि । माभवानकीत्यादि । अङ्कतइति लक्षणार्थे गतः । अगतीत्यादि । अकिषत् । अङ्गतीति गतौ गतम् ॥ ७८१ ॥

कण रण गतौ ॥ कणतीत्यादि । अकणि । अकाणीत्यादि । एवं रणतीत्यादि । 'काण्यादीना वे'त्युपधाह्रस्वविकृत्यो न शङ्कः, ह्रस्वभाविन्या उपधाया एवाभात् । कणतिरणती शब्दार्थौ । गतौ एतयोः काणयति । राणयति ॥ ७८३ ॥

चण शण अण दाने च ॥ चणिशणोश्चौरादिकयोर्हेतुमणिवोभावात् स्वार्थे तु षौ 'नान्ये मिता हेता'विति मित्वनिषेधाच्च तयोर्-

मावनुवादाविति धात्वन्तरावेतौ । चणति । चवाण । चेणतुः । चणिता ।
अचणीत् । अचाणीत् । चिचणिपति । चञ्चण्यते । चञ्चण्टि । चञ्च-
ण्टः । चणयति । अचीचणत् । अचणि । अचाणि । इत्यादि । एवं शणति ।
अणतीत्यादि । शण गतावित्यन्ये । अन्त्यौ तालाद्यादी ॥ ७८६ ॥

अथ क्रथ क्रथ हिमार्थः ॥ अथति । शश्राथ । अथिता । शिश्रथि-
पति । शाश्रय्यते । शाश्रति । अथयति । अशिश्रयत् । अश्रथि । अश्राथि ।
एव क्रथति । क्रथति । क्रथेन्तु जासिनिप्रहणनाटक्राथे'तिनिर्देशान्मित्वेपि
वृद्धिरिति वृत्तिनष्टा'न्यानेषु । तेन क्राथयति चोरस्येति भवति । मित्त्व-
फल तु अक्रथि अक्राथीत्यादौ 'चिण्णनुनोरि'नि दीर्घविकल्पः । तथा
'जासिनी'त्यत्र हरदत्तः । घटादिपाठस्तु घटादयः पित इत्यातिदेशिको
ऽद्वयथा स्यात् 'चिण्णमुलो'रिति दीर्घविकल्पश्च यथा स्यादिति । ननु
घटादयः पित इति मध्ये सूत्रस्यापूर्वपामेव पित्व न परेपामिति कथं पित्व-
मुक्तम् । सत्यम् । अत एव किलापरितुष्यन् स्वयमेव दीर्घविकल्प प्रयोज-
नमाह । एव च दीर्घविकल्पश्चेति चशब्दे वार्थो व्याख्येयः । अत्र न्यासे
क्राथीति विकृतनिर्देशस्य प्रयोजन मित्वेपि वृद्धिः । तत्रैव पठीत्युक्त्वा
चङ्गन्ते वृद्धभावाच्चेरमचिक्रथदित्युक्तम् । तत्र शेषाधिकारात्पुनः समा-
सनिवृत्तये पुनः शेषे पठीविधानमिति शेषविवक्षाया पठी दुर्गारा, कर्म-
विवक्षाया द्वितीया स्वतः सिद्धेति नेद प्रयोजनम् । क्रथ हिंसायामिति
युजादौ स्वरितेदिति देवः । अयमात्मनेपदीति शाकटायनः । 'जासि-
नी'त्यत्र क्राथीति निपातनाद्वृद्धिरिति वदता वृत्तिकारादीनां नायं धातु-
रेवास्ति ॥ ७८९ ॥

चन च ॥ हिंसायामितिशेषः । चनति । चनयति । अचनि ।
अचानि ॥ ७९० ॥

वनु च नोपलभ्यते ॥ न केवलं कगे यावता वनु चनोच्यतइति
स्वामिनोच्यतइति गतौ व्याख्यातम् । उदित्करणमामर्थ्यादयमन्ये धातुः,
न तानादिकस्यायमनुवादः, क्रियासामान्ये मित्त्वमात्रार्थे ह्यनुवादादिति
तानादिकएवानुवादः, न पुनः शब्दार्थः संभक्त्यर्थो वावगतो वनतिरिति,

कोयं नियमः । तेन क्रियासामान्येपि वनतीत्यादि भवति । अस्योदित्वा-
ट्ठात्त्वगतिः वान्तमिति । इदं च मित्त्व 'ग्लास्त्रावनुवमा चे'त्यनुपसृष्टानां
विकल्पस्य वक्ष्यमाणत्वात्सोपसर्गार्थं, प्रवलयति । प्रावीवनत् । प्रावनि ।
प्राशानीत्यादि ॥ ७८१ ॥

ज्वल दीप्तौ ॥ ज्वल दीप्ताविति पठिष्यते, तस्य मित्त्वार्थोयम-
वादः । इदमपि मित्त्व सोपसर्गविषय, 'ज्वनह्वनश्चननमामनुसर्गाद्वे'ति
अनुपसृष्टानां विकल्पस्य वक्ष्यमाणत्वात् । प्रज्वलयति । प्राज्जालि । प्रा-
ज्वलीत्यादि ॥ ७८२ ॥

हुल हल चलने ॥ इमौ च सोपसर्गावेव नित्य मित्त्वं प्रयोजयतः ।
ज्वलनिवदनुपसृष्टयोर्विकल्पस्य वक्ष्यमाणत्वात् । हुलति । जह्वाल ।
हूलिता । अह्वालीत् । 'अतो लान्तस्ये'ति नित्य वृद्धिः । जिहूलिषति ।
जाहुल्यते । जाहुलित । विहूलयति । व्यहूलि । व्यह्वालीत्यादि । एवं
हलतीत्यादि । जिह्वलन्यनीत्यत्र 'यवलपरे यवला वा' इति यवलपरे
हकारे परे मकारस्य पक्षे यवलविधानात्सानुनासिको वकार उदाहार्यः ।
किम् हलयति । किं हलयतीत्यत्र 'हे मपरे वे'ति मकारपरे हकारे परे
मकारस्य पक्षे मकारविधानान्मकारोऽप्युदाहार्यः ॥ ७८४ ॥

स्मृ अध्याने ॥ स्मृ चिन्तायामित्यस्याध्याने मित्त्वार्थोऽनुवादः ।
आध्यानमुत्कण्ठापूर्वक स्मरणम् । मातुः स्मरति । मातुः स्मरयति ।
अस्मरि । अस्मारि । अनाध्याने स्मारयति । 'अधीगर्थे'ति कर्मणि षष्ठी ।
अधीगर्थाः स्मरणार्था इत्युक्तम् ॥ ७८५ ॥

दृ भये ॥ अत्र देवधनपालपूर्णचन्द्रा अमुं धात्वन्तरमाहुः । मैत्रेयस्तु
दृ विदारणइति श्रयादि, तस्य मित्त्वार्थे पाठः । दृणन्त प्रयुङ्क्ते दरयति ।
भयादन्यत्र दारयति । धात्वन्तराभ्युपगमे दरतीत्येके इति क्षीरस्वामी ।
पुनर्दरतीत्युदाहृत्य कैयादिकस्यैव मित्त्वार्थमिहानुवाद इत्येकइत्याह ।
तत्राभरणकारो ऽमुं ह्रस्वान्तधात्वन्तरं पठित्वा 'अतस्मृदृत्वरे'त्यत्रापि
ह्रस्वान्त पठन् षौ चङि अददरदित्युदाजहार । तदसत् । तत्र दीर्घान्त-
पाठस्याविगीतत्वात्, दृ विदारणइति व्याख्यातृभिरुपादानाच्च । किं च

ह्रस्वान्ताभ्युपगमे 'शृदृप्रा ह्रस्वो वे'ति दृष्टान्तेर्विकल्पेन ह्रस्वविधानमनर्थकं स्यात्, यतः ह्रस्वान्तादम्मात् लिटि विदद्रतुरिति यणादेशे सिध्यति विदद्रतुरिति च दृष्टान्ते 'वंच्छृत्यतामि'ति गुणे । न च विदारणे रूपद्वयार्थं ह्रस्वविकल्पन स्यादिति वाच्यम् । धातूनामनेकार्थत्वेन अस्यापि विदारणे वृत्तिसंभवात् । तथा च शृणातेः तत्र विशशरतुरिति भविष्यति विशश्रतुरिति आ पाकइत्यस्य, न चार्थभेदो, धातूनामनेकार्थत्वादिति शृण्वण प्रत्याख्याय ह्रस्वर्थमुक्तम् ॥ ७६६ ॥

नृ नये ॥ नरयति । अनरि । अनारीत्यादि । अन्यत्र नारयति । मैत्रेयस्तु नामुमिच्छन्नि यदाह नृ नयइत्यप्येके इति ॥ ७७ ॥

आ पाके ॥ अ पाकइत्यथे कृतात्वन्त्य तस्य आ इत्यादादिकस्य च सामान्येनेदमनुकरणं, नुविक्कणानुविक्कणदोरिति आयेतेः, लक्षण-प्रतिपदोक्तयोरिति आतेः । अत्र सर्वत्र पाको विकृतिरिति कैयटकारादयः । अपयति । अश्रपि । अश्रापीत्यादि । विक्लेदयतीत्यर्थः । पाकादन्यत्र आपयति, स्वेदयतीत्यर्थः । धातूनामनेकार्थत्वात् स्वेदे वृत्तिः ॥ ७६८ ॥

मारणनोपणनिशामनेषु ज्ञा ॥ एषु जानातिर्विद्वति । परं संज्ञ-पयति । मारयतीत्यर्थः । विष्णु विज्ञपयति, सतोपयतीत्यर्थः । प्रज्ञपयति रूपं दर्शयतीत्यर्थः । कौमाराणां मतेनात्र सोपनर्गाः प्रदर्शिताः । अन्यत्र ज्ञापयति बोधयतीत्यर्थः । नेह निशामन ज्ञापनमात्रं किं तु चक्षुःसाधनं ज्ञान, शमलक्ष आलोचनइत्यस्य हीदं रूपम्, आलोचन चक्षुर्विज्ञाने प्रसिद्धम् । उक्तं चैवं वृत्तिकारादिभिः । 'त्यदादिषु दृशोनालोचने कञ्च पश्यार्थै-श्चानालोचने'इत्यादौ मैत्रेयपुरुषकारादिष्वपि निशामन चक्षुर्विज्ञानमिति स्थितम् । अत एव न्यासे 'श्लाघन्हुइस्ये'त्यत्र ज्ञीप्स्यमानइति मारणादिषु पठितस्य घटादेः हेतुमणिश्च इत्युक्त्वा अथ वेत्यपरितोषात् 'ज्ञप मिच्चेति' चौरादिकस्य स्वार्थे णाविति प्रक्रियान्तरमुक्तं, चौरादिकश्च ज्ञानज्ञापनयोर्व-सैतइति तत्रैव वक्ष्यते, तेन ज्ञापने ज्ञपयति, यद्वज्ज्ञापयेदित्यपि स्यादिति । मैत्रेयोपि इहान्यत्र ज्ञपयति ज्ञापयतीति रूपद्वयं भवति । तथा च देवः । जानातीति शिन सिद्धे ज्ञपयति तु पुनर्मारणादौ घटादौ णौ मित्वेपीदमेव

ज्ञपनमिति पद ज्ञापने मारणादौ । तेनार्थात् ज्ञापनेर्थे ज्ञपयतिपदवत्
 ज्ञापयेदित्यपि स्यादिति, तथा मैत्रेयोपि इहाप्यत्र ज्ञापयति स्वामिनमि-
 त्युदाहृत्य चुरादौ 'ज्ञपमिच्चे'त्यत्र ज्ञपयतीति मितमुदाहृत्य ज्ञापने मार-
 णादिषु चाभिध नमप्येत्याह । अत्र चन्द्रः । 'मारणतोपणनिशानेखि'ति
 वदुमानञ्चैव पठित्वा निशानं तीक्ष्णीकरणमिति चाभिधाय निशामनइति
 केचिन् निशामन दर्शनमिति । स्वामिशाकटायनौ वदुमानवदेव, तत्र प्रज्ञ-
 पयति शरमित्युदाहरण, तीक्ष्णीकरोतीत्यर्थः । अत्र मित्त्वं बोधिन्यासकारो
 न सहते । यदाह प्रचीनास्तु निशान नच्छन्तीति । एव काश्यपसम्पत्ताका-
 रादयोपि, इति मैत्रेयाद्वाङ्गीकृतो निशामनपाठ एव ज्यायान् । यतूक्त 'श्ला-
 घन्नुड्'इत्यत्र ज्ञीप्स्यमानो ज्ञपयितुमिष्यमाणो बोधयितुमभिप्रेत इति वृत्ति-
 यन्यमुपादाय हरदत्तेन निशामन ज्ञानमात्र न चतुर्विज्ञानमेव, यदाह बोध-
 यितुमभिप्रेत इति, कथं तर्हि प्रयुज्यते तज्ज्ञापयत्याचार्यः । विज्ञापना
 भर्तृषु मिदृमेतीति । तस्मान्निशानेखिति पाठः, शे तनूकरणे, ल्युट् ज्ञीप्स्य-
 मानो ज्ञपयितुमिष्यमाण इति प्रयोगः 'ज्ञप मिच्चे'ति चुरादिणिजन्तस्येति
 नात्र ज्ञापयति प्रयोग उपोद्वलं निशानमिति पाठाङ्गीकारस्येति, यदस्मा-
 भिस्मिन्मिदृन्ययैवादौ साधिता । अपरे तु प्रतिपत्वा निशामनं ज्ञापन-
 मात्र ज्ञापयति प्रयोगो ज्ञा नियोगइति चौरादिकस्य धातूनामनेकार्थ-
 त्वात् इति, अनेकार्थताङ्गीकारे ज्ञानइव मारणतोपणयोरपि ज्ञापयतीति
 स्यात् ॥ ६६६ ॥

कम्पने चलिः ॥ चल कम्पनइति ज्वलादौ तस्य मित्त्वार्थे एवा-
 नुवादः । चलयति शाखाम् । कम्पयतीत्यर्थः । अन्यत्र शीलं चालयति,
 अन्यथा करोतीत्यर्थः । हरनीत्यर्थ इति स्वामी । सूत्र चालयति, क्षिप-
 तीत्यर्थ इति सुधाकरः ॥ ८०० ॥

कृदिरुर्जने ॥ ऊर्जनं प्राणन बलन वा, ऊर्जं बलप्राणनयोरिति
 हि धातुः । कृदि अपवारणे इति यौजादिकस्य स्वार्थे शिञ्जभावे मित्त्वा-
 र्थायमनुवादः । धातूनामनेकार्थत्वात् ऊर्जने वृत्तिः । कृदन्त प्रयुङ्गे
 कृदयति । बलवन्त प्राणवन्त करोतीत्यर्थः । अन्यत्र कृादयति, अपवा-

रयन्तं प्रयुङ्क्ष्व इत्यर्थः । यदा च क्वादयतीति स्वार्थं ण्यन्तस्तदा बलीभवति प्राणीभवति, अपवारयतीत्यर्थः । अत्र बलप्राणनयोरपि 'नान्ये मितोहेता' वित्यमित्वम् । अत्र स्वाम्यादयः कृदि सवरणइति चौरादिक कृदेत्यनि दित पठन्तः, तस्यायमूर्जने मित्त्वार्था अनुवाद इत्याहुः । तदयुक्तम् । तस्यानिदित्याठेपि नित्यण्यन्तत्वात् कर्तरि णिचोभावात् स्वार्थेपि णौ 'नान्ये मित' इति मित्व निषिद्धमेव । अत्र देवः । कृदि धात्वन्तर मन्यते । यदाह यो वा णावपवारणे कृदतइत्येक द्वितीय वदन् अन्य दा यति कृदयति पुनः स्यादूर्जनेर्धे मित इत्यादि, चौरादिकस्यैव स्मरत्याद्रिवत् अनेकार्थत्वाऽङ्गीकरणात् ऊर्जनेपि कृदतीति सिद्धे धात्वन्तराऽङ्गीकरणं परस्मैपदमेव यथा स्यादिति तन्मतम् । अनुवादे हि तस्य स्वरितेत्वात् कृदतइत्यपि स्यात् । यद्व्ययेनत्फल भवति अथाप्यन्यत्र पठिनानामिह पाठो मित्वमात्रफल इति घटतौ व्यवस्थापितत्वात् पृथक् धातुत्व न सुल- भम् । किं चेह धातुनिर्देशार्थमिकारनिर्देशादवश्यमनुवादत्वमेष्टव्यम्, यत्फलमुक्त नित्य परस्मैपदमेव यथा स्यादिति तच्छाकटायनमतेनैव प्रयो- जनं, यतः चौरादिकः परस्मैपदोऽप्येव ॥ ८०१ ॥

जिह्वान्मथने लङिः ॥ लङ् विलासइति पठितस्य मित्त्वार्थाय- मनुवादः । उन्मथनं ज्ञापनम् । अत्र मैत्रेयस्य जिह्वाया उन्मथने इति मतम् । यदाह लङ्यति जिह्वामिति । अयमेव पक्षो गुप्तस्यापि । पुरुषकारे तु जिह्वया उन्मथने लङ्यति जिह्वयेत्युक्तं भवति । अपरे तु जिह्वा चोन्मथनमिति समाहारद्वन्द्व व्याचक्षते, जिह्वाशब्देन तद्विषयो व्या- पार उच्यते । अत्र चोन्मथने चेति लङ्यति शत्रुं, लङ्यति दधि चेति भवति । धनपालस्त्वेव पठित्वा आर्याणां जिह्वान्मथनयोरिति पाठ इति । स्वामी तु जिह्वान्मथनयोर्लङीति, मन्यनमेव मथनम्, अन्यत्र लाङ्यति पुत्रम् । चल्यादीनां त्रयाणामिकारो धातुनिर्देशार्थः ॥ ८०२ ॥

मदी हर्षश्लेषनयोः ॥ दैवादिकस्य मित्त्वार्थायमनुवादः । मदयति । हर्षयति श्लेषयति चेत्यर्थः । श्लेषनं दैन्यमन्यत्र मादयति चित्तवि- कारमुत्पादयतीत्यर्थः । निमादयत्यन्तरव्यञ्जनानि स्पष्टमुच्चारयतीत्यर्थः ।

तथा च प्रातिशाख्यम् । उपलब्धिर्विमाद इति, अक्षरव्यञ्जनानामिति शेषः ॥ ८०४ ॥

ध्वन शब्दे ॥ भाव्ययं मित्त्वार्थमनूयते । ध्वनयति घण्टाम् । अन्यत्र ध्वानयति । अस्पष्टाक्षरमुच्चारयतीत्यर्थः । तथा च प्रातिशाख्यम-
क्षरव्यञ्जनानामुपलब्धिर्ध्वनिरिति । अत्र भोजः । दलिवलिस्वलिरणिध्व-
निस्वनित्रपित्तपयश्चेति पपाठ । तत्र ध्वनिर्जट्टमानानुसारेण पठितः, उदा-
हृतश्च । तथा रणिरपि । दल विदारणे । वल सवरणे, स्वल सवलने,
अपूप लज्जाया, मिति गताः । तेषां लौ दलयति, वलयति, स्वलयति,
अपयतीति । क्षपयति । तै क्षयति वक्ष्यमाणस्य कृतात्वस्य पुकि निर्दे-
शः । तथा च सुधाकरः । तै क्षये णिचि पुकि मित्वे क्षपयतीति । स्वन
अवतसने । स्वनयति, अन्यत्र स्वानयति । अय शब्दार्थः पठिष्यते । अत्र
मैत्रेयः । ध्वन शब्दे । स्वन अवतसनइत्येकइति ॥ ८०५ ॥

घटादयो मितः” ॥ मित्सञ्ज्ञका इत्यर्थः ॥

“जनीजृप्कसुरञ्जोमन्ताश्च” ॥ चशब्दान्मित इत्यपकृष्यते ।
जनी प्रादुर्भावे, जृप् वयोहानौ । कसु हुरणदीप्त्योः । दिवादयः, रञ्ज
रागे । भूवादश्च । अम् शब्दे ऽन्ते येषां ते अमन्ताः, यथासभवं
सर्वेषु विकरणेषु ते च मितः । जनयति । जरयति । जृति पिनिर्दे-
शात् जृणानेरमित्त्वात् जारयतीति । बोधिन्यासादौ मैत्रेयो जृणातेः
स्याने भृ इत्येकइति चतुर्थ्यादिं च वक्ष्यति । कसयति । रजयति मृगान्,
रमयतीत्यर्थः । ‘रञ्जेणौ मृगरमणउपसंख्यानमि ति नलोपः । मृगाद-
न्यत्र नलोपो न भवति रञ्जयति पक्षिणः । तथा रमणादन्यत्र न
लोपः । रञ्जयति मृगान् तृणादिदानेन । नलोपाभावे मित्वफलमरञ्ज,
अराञ्जीन्यादौ ‘चिणमुलो रिति दीर्घः । अमन्ताः खल्वपि क्रमयति,
गमयतीत्यादि । अत्र के चित् । ‘जनीजृष्णस्वि’ति अककारं सूत्रं
पठन्तः षकारमुत्तरधातोरादि व्याचक्षाणाः देवादिकस्य निरसनार्थस्य
स्त्वयतेः स्मयतीति मित्वमाहुः । तथा च दिवादावात्रेयमैत्रेयो णासु
निरसनइत्येके मिदिति ॥

“ज्वलहुलहलनमामनुपसर्गाद्वा” ॥ ज्वलादीनां वा मित्त्व भवति उपसर्गात् परेषां नायं विकल्प इत्यर्थः । क्व वित्तु पठ्यते । ज्वनहुलनमोऽनुपसर्गाद् वेति । तत्र न क्लेशो मित इति सवन्धः । ज्वलादीनां पूर्वपाठात् प्राप्तिः, नमस्त्वमन्तत्वात् । ज्वनयति ज्वालयति । हुलयति, ह्वालयति । हलनयति, ह्वालनयति । नमयति, नामयतीति । उपसृष्टे तु नित्ये मित्वे प्रज्वनयनीत्यादि । उवाचयतीति प्रयोगो घञन्तात् ‘तत्करोती’ति शै । एवमन्येषामपीदृशां निर्वाहः । ‘मिना ह्रस्व’इति वृत्तौ ‘वा चित्तविराग’इत्यतो वेत्यनुवृत्तेर्वाचस्यनविभाषाविज्ञानाच्च संक्रामयतीत्यादिसिद्धिरिति । यत्तु सुधाकरोक्त घञन्तादुत्क्रामशब्दात् ‘तत्करोती’ति णिचि उक्रामयतीति, तदयुक्तं, ‘नोदात्तापदेशस्येति वृद्धिनिषेधात् उक्रामशब्दस्यैवाभावात् ॥

“ग्लास्त्रावनुवमा च” ॥ अनुपसर्गाद्वेति वर्तते । पूर्ववत् व्याख्यानमत्रापि । अत्रापि पूर्ववत् क्व चित् ग्लास्त्रावनुवमश्चेति प्रथमान्त पठ्यते । ग्लै हर्षतये । अत्र ह्येति ण्यौ शौचवेष्टनयोरिति वक्ष्यमाणस्य ण्या शौचइत्यादादिकस्य च, आ पाकइत्यत्रोक्तन्यायेन । वनु च नोच्यतइति इह पठितो वनतिः अनन्तरस्य विधिरिति न्यायादनुवने न तु तानादिको वनोतिः । हुवम उद्गिरणे । अमन्तः । तदयं वन्वमोः प्राप्ते ग्लास्त्राप्राप्ते इत्युभयत्र विभाषेयम् । ग्लपयति । ग्लापयति । स्त्रपयति । स्त्रापयति । वनयति । वानयति । वमयति । वामयति । ग्लास्त्रोऽपसृष्टयोर्मित्त्वाभावात् प्रग्लापयति, प्रस्त्रापयतीत्येव । वनुवमोस्तु नियमिनत्वात् प्रवनयति । प्रवमयतीत्येव ॥

“न कम्यमिचमाम्” ॥ कमु कान्तौ, अम गत्यादौ, चमु अदने, एषाममन्तत्वात् मित्वे प्राप्ते निषिध्यते । कामयते । आमयति । आचामयति ॥

“शमो दर्शने” ॥ शम उपशमने दिवादिः । अयं च दर्शने न मिदमन्तोपि, निशामयति रूपम् । अत्युत्कृष्टमिदं तीर्थं भारद्वाज निशामयेति, शम लक्ष्मालोचनइति चौरादिकः । अस्मात् कारिते णावर्थं

यमानो लोपः 'प्रकृत्याके राजन्यमनुष्ययुवान्' इति प्रकृतिभावात् भवति ।
यद्वायं यकारो राज्ञोपत्ये जातिग्रहणमित्युक्तत्वात्वापत्ये, राज्ञ इदं
राजकीयम् । 'राज्ञः क चे'ति कृप्रत्ययः शैषिकः । कश्चान्तादेशः । राज्ञः
कर्म भावो वा राज्यम् । पत्यन्तुरोहितादिषु 'राजास'इति पाठादसमा-
सेयम् । यकारस्य भावकर्मविषयत्वात् प्रकृतिभावाभावात् 'नस्तद्धित'इति
टिलोपः । समामे तु ष्यञ् । आधिराज्यम् । ब्राह्मणादिषु राजन्शब्दः
पठ्यते, स हि तदन्तात् ष्यञर्थः । केवलस्य यको विधानात्, 'राजास'इत्ये-
तद्वचनं ज्ञापकमत्र तदन्तत्वम् । अत्रैके ब्राह्मणादेराश्रुतिगणत्वात्
राजन्शब्दान्तात् ष्यञि सिद्धे तत्र राजन्शब्दस्य पाठसामर्थ्यात् केवलात्
ष्यञपि भवतीत्याहुः । तथा च शाबरभाष्यमते व्यधिकरणे राज्य, तस्य
कर्मणि ष्यञिति । अधिको राजा अधिराजः, 'कुगनिप्रादय इनि समासः ।
'राजाह.मविभ्यष्टजि'ति राजाश्रन्तात् तन्युपाटुचि टिलोपः । अत्र
लघ्वन्तरं पूर्वं निपतति इति 'द्वन्द्वे घी'ति च लघ्वन्तरत्वात् घ्यन्तत्वात्
सविशब्दस्य पूर्वनिपाने कर्तव्ये राजन्शब्दं पूर्वं निपात्य सवर्णदीर्घेण
निर्देशात् यस्य राजन्शब्दस्य सवर्णदीर्घप्रसङ्गस्तस्यैव टञिति ज्ञापना-
ल्लङ्गविशिष्टपरिभाषया अधिराज्ञीत्यादौ टञ् भवति । अयं समासान्त
उत्तरपदादकृतश्च समासे भवतीत्युक्तं, तेन पञ्चराज्ञीत्यादौ अकारान्तो-
त्तरपदसमाहारद्विगुत्वेन स्त्रिया ङीष् भवति । शोभनो राजा, सुराजा ।
अतिराजेत्यत्र 'न पूजना'दिति समासान्तनिषेधः । तत्र 'स्वती पूजाया'मिति
परिगणित, प्रतिराजेत्यत्र तु 'प्रतिरश्वादयस्तत्पुरुषे' इति प्रतेः परेषाम-
श्वादीनामाद्युदात्तविधौ प्रतिराजेति पाठात् समासान्ताभावः । कि-
राजा अराजेत्यत्र 'किमः पेते' 'नजस्तत्पुरुषा'दिति समासान्ताभावः ।
महाराजो देवता अस्य, महाराजिकः । 'महाराजप्रोष्ठपदाटुजि'ति
प्रथमान्ताद्वेवतोपाधिकात् अस्येत्यर्थं ठञ् । महाराजो भक्तिर्भजनीयो
यस्य महाराजकः । 'महाराजाटुजिति' प्रथमान्तात् भक्त्युपाधिकात्
अस्येत्यर्थं ठञ् । शोभनो राजा यस्यास्ति स राजन्वान् । 'राजन्वान्
सौराज्य'इति मतुपि नलोपाभावो निपात्यते ॥ ८०७ ॥

दुभ्राजृ दुभ्राश्च दुभ्रलाश्च दीप्ता ॥ उदात्ता अनुदात्तैः । अत्र स्वामी आद्यावधिकृत्य टुरुभयसङ्गीत्येके इत्याह । त्रयोपि द्वित इति मैत्रेय । वृत्तिकारोप्यत्रैवानूकूलः । यदाह 'वा भ्राशे'त्यत्र दुभ्राश्च दुभ्राश्च इति । तथा 'फणा च मज्जाना'मि यत्र न्यासपदमञ्जयोः त्रयोपि द्वितः पठ्यन्ते । तस्मादयमेव पाठो बहूनां संमतः । भ्राजतेः पठितस्यापीह पाठः फणादित्वेन किति लिट्येत्वाभ्यासलोपविकल्पार्थः । द्वित्वं तु न फल भवति तत्रापि टुशब्दस्यामङ्कु शक्यत्वात् । अनेनैव सिद्धे तस्य पाठो ब्रश्वादिपत्वनिवृत्त्यर्थे इति तत्रैवोक्त, भ्राजते । बभ्राजे । भ्रजे । भ्राजितेत्यादि । बाभ्राष्टि । अब्राभ्राट् इत्यादौ ब्रश्वादिपत्वम् । भ्राजयुः । 'द्वितो ऽयुच्' । न भ्राजतइति नभ्राट् । 'नभ्राण् नपादि'ति नञः प्रकृति-भावः । चङ्परि णौ 'भ्राजे'त्यादिना उपधाङ्गस्वविकल्पनात् अबिभ्रजत् । अब्रभ्राजत् । अस्यापि ऋदित्व पूर्ववत् अनुदात्तत्वमात्रफलम् । भ्राष्ट्रम् । घृन् । भ्राष्ट्रमिन्धइति भ्राष्ट्रमिन्धः । कर्मण्यण् । 'भ्राष्ट्राण्योरिन्धे' इति मुम् । भ्राशते । बभ्राशे । भ्रशे । भ्राशिता । भ्राशियते । भ्राशिताम् । अब्रा-शत । भ्राशेत । आशपि भ्राशिगीष्ट । अब्राशिष्ट । सार्वधातुके 'वा भ्राशे'त्यादिना पक्षे शपोपवादे श्यनि भ्राश्यते । भ्राश्यताम् । अब्रा-श्यत । भ्राश्येतेति भवति । बिभ्राशिपते । बाभ्राष्टि । भ्राशयति । अब्र-भ्राशत् । ऋदित्वाचोपधाङ्गस्वः । भ्राशति । सर्वं भ्राशतिवत् । भ्राशयुः । भ्राशयुः । द्वित्वात् युच् ॥ ८१० ॥

स्यम् स्वन ध्वन शब्दे ॥ स्यमादयः ज्वलन्ता उदात्ता उदात्तैः । स्यमति । सस्याम् । सस्यमतुः । स्यमतुः । सस्यमिथ । स्यमिथ । स्यमुः । इत्यादि । अस्यमीदित्यत्र 'अतो हल'दे रिति वृद्धिः 'स्य ते'ति निषिध्यते । सिस्यमिपति । सेसिम्यते । 'स्वपिस्यमिष्येजां यङी'ति सप्रसारणे विद्धुचने अभ्यासस्य गुणः । संस्यमीति । संस्यन्ति । यङो लुका लुप्रत्वात् तत्प-रत्वाभावाच्च सप्रसारणम्, 'नुगतोनुनासिकान्तस्ये'ति अभ्यासस्य नुक् । संस्यान्त इत्यादौ अनुनासिकस्य क्किन्नोरिति दीर्घः । संस्यन्मि । 'मो नो धातोः' 'स्वोस्वे'ति नत्वम् । संस्याहीत्यत्र पूर्वमनुनासिकस्य दीर्घे

पश्चाच्चपदान्तस्य भ्रूणीत्यनुस्वारः । असंस्यवित्यत्र पदान्तत्वात्
 'मो नो धाने'रिति नः । स्यमयति । असिस्यमत् । अमन्तत्वान्मिस्त्वम् ।
 स्यमित्वा । स्यान्त्वा । उदित्त्वादिविकल्पः । अनिट्पत्वे 'अनुनासकस्ये'ति
 दीर्घः । स्यान्तम् । 'यस्य विभाषे'त्यनिट्त्वम् । स्यमन्तको मणिः । बाहु-
 लकादन्तचि सज्ञाया क्तम् । अय चुरादौ वितर्कार्थः । स्वनति । सस्वान ।
 सस्वनतुः । स्वेनतुः । स्वनितेत्यादि । अस्वनीत् । अस्वानीत् । 'अतो
 हलादे'रिति वा वृद्धिः । सिस्वनिषति । सस्वन्यते । सस्वन्ति । सस्वा-
 न्तः । स्वनयन्ति । असिस्वनत् । शब्दे घटादित्वान्मिस्त्वम् । विष्वण-
 ति । अवष्वणति । 'वेश्व स्वने'ति षत्वम् । चकारेणावादित्यनुश्रूयते ।
 विष्वणन सशब्दभोजनम् । तथा च वृत्तौ अभ्यवहारक्रियाविशेषोभिधी-
 यते । यत्र स्वननमप्तीति सशब्द भुङ्क्ते इत्यर्थः । पिनाकी तु भुञ्जानः
 किं चिच्छब्द करोतीति । काश्यपस्तु भोजनमेवार्थमाह । वेतिधन्यासेपि
 पत्तत्रयमपि दर्शितम् । विष्वण । विष्वणिपतीत्यादौ 'स्यादिविष्व-
 सेने'त्युभयत्र षत्वम् । तच्चापोपदेशार्थमवर्णाभ्यासार्थे षणि प्रतिषेधार्थे
 चेत्युक्तम् । व्यष्वणत् । 'प्राक्सितादि'ति षत्वम् । अवष्वण्यतइत्यादौ
 'नुम्विसर्जनीये'ति 'वेश्व स्वन' इति षत्वम् । उक्तं च अयोगवाहानाम-
 ट्सु णत्वं शर्पु भष्भावपत्वे इति । अयोगवाहाश्चानुस्वारविसर्जनीयो-
 पधानीयजिह्वामूलीययमा उक्ताः । षत्वे कृते 'रपाभ्या'मिति णत्वे
 विष्वणनीत्यत्र णत्वम्, पूर्वत्रासिद्धत्वात् 'नश्चापदान्तस्य भ्रूणी'त्यनु-
 स्वारे परसवर्णा नकारः । तस्य पुनर्णत्वम् न भवति । असिद्धत्वादेव ।
 स्वनः स्वानः । 'स्वनहसोर्वे'ति वा अष् । तदभावे घञ् । उपसृष्टान्तु
 प्रस्वान इत्येव । निस्वानः, निस्वनः । 'नो गदनदे'त्यादिना घञ्पौ । स्वा-
 न्तम् । 'तुअस्वान्ते'त्यादिना निष्ठायामनिट्त्वं निपात्यते मनोभिधानं
 चेत्, अन्यत्र स्वनितो मृदङ्गः । आङ्पूर्वादस्माद्दुष्यमत्त्वरसंघुषे'ति
 निष्ठायामिड्विकल्पः । इय चोभयत्र विभाषेति मनसोन्यत्र च आस्वा-
 नितम्, आस्वनितमिति । फलादयो गताः । ध्वनति । दध्वान । ध्वनि-
 तेत्यादि स्वनिवत् । ध्वान्तम् । 'तुअस्वान्ते'ति तस्यानिट्त्वम् । अन्यत्र

ध्वनितम् । ध्वनिः । अत्र कथादिश्च । अत्र स्वनिध्वन्यार्मध्ये घटनेति क्वचित् पठ्यते । पुन वन शब्दइति पूर्वमेव गतत्वादयमनार्पः, केचित्पौनरुक्त्यपरिहारादन्त्यादि पठन्ति सोऽयनार्पः । पोपदेशलक्षणविरोधात् । अत एव 'फणां चे'त्यत्र सप्तानामिति किमित्युक्त्वा ध्वनिः प्रत्युदाह्रियते, तथा च न्यासे फणादीन् ध्वन्यन्तानपि पठित्वा ध्वनिवर्जिताः शेषाः फणादयः सन्त्युक्तम् । पदमत्र्यां चैवमपि पठित्वा ऽन्त्यवर्जं फणादय इत्युक्तम् ॥ ८१३ ॥

पम पम वैक्लये ॥ समति । ससाम । सेमतुः । सेमिथ । समिता । सिसमिपति । ससम्यते । ससमीति । ससन्ति । ससान्तः । समयति । असीपमत् । स्तमति । तस्ताम । तस्तमतुः । स्तमिता । निस्तमिपति । तंस्तम्यते । तस्तन्ति । स्तमयति । अतिष्टमत् । अत्र स्वाम्यादयः केचिदेतदन्ता घटादय इति । बोधिन्यासे तु ध्वन्यन्ता इति । तत्र फणतौ मित्वे न विवादः । राजादीनां त्वनन्तराणां चतुर्णां णौ चङ्युपधाह्रस्वनिषेधार्थादुदित्करणाल्लिङ्गाच्च मित्वं भविष्यति । स्यमेरमन्तत्वात्स्वनिध्वन्याश्च पूर्वत्र पाठान्मित्वं, सिट् सवैरपि शब्दार्थत्वएव मित्वं यथा स्यादिति पूर्वत्र पाठोद्गीकृतः । पमिष्टम्योरप्यमन्तत्वदेव मित्वं सिट्मिति आहोपुरुषिकामात्रमेवैतत्, ध्वन्यन्ता घटादय इति मतद्वयम् । यत्तु तैश्च पमिष्टम्योरमन्तयोः पुनः पाठेनामन्तलक्षणस्य मित्वस्यानित्यत्वज्ञापकादुत्क्रामयतीत्यादिसिद्धिरिति, तदस्माभिरमन्ताच्चेति मित्वविधौ प्रकारान्तरेणोपपादितम् ॥ ८१५ ॥

ज्वल दीप्तौ ॥ ज्वलति । जज्वाल । जज्वलतुः । ज्वलिता । अज्वालीत् । 'अतो लान्तस्ये'ति वृद्धिः । जिज्वलिपति । जाज्वल्यते । जाज्वलीति । ज्वालयति । ज्वलयति । प्रज्वलयति । घटादिपाठान्नित्यं मित्वं सोपसर्गत्वे, अन्यदा तु ज्वलहूलेति विकल्पेन, घटादिपाठादेव ज्वलयतीति सिद्धाविहास्य पाठो 'ज्वलीति कसन्तेभ्यो ण' इति पात्तिके णप्रत्यये ज्वाल इति यथा स्यादिति । ज्वलीतीतिशब्द आद्यर्थः । णाभावे पचाद्यचि ज्वलः ज्वलनः, 'जुचङ्कुम्ये'ति तच्छीलादौ युच् कर्त्तरि ॥ ८१६ ॥

चल कम्पने ॥ चलति । चचाल । चेलतुः । चेलुः । चलितेत्यादि पूर्ववत् । कम्पने घटादिपाठात् चलययि । अन्यत्र चालयति । चलः । चालः । ज्वलतीति णविक्रम्य । चलाचल । चलइत्यर्थः । 'चरिचलिप-
तिवद्दीना द्वित्वमन्याक्रान्धासस्येति द्विर्वचनम् अभ्यासस्यागमश्च ।
चाचलिः । सहिवहचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनाविति तयोरन्यतर' ।
'अतो लोपः' 'यस्य हल' इति अल्लोपयलोपौ । चलनः । 'चलनशब्दार्था-
दकर्मम'द्युच् इति युच् । चल विसलनइति तुदादौ, चल गताविति
चुरादौ ॥ ८१७ ॥

जल घातने ॥ घातन तैत्तण्यमिति स्वामी । जलतीत्यादि पूर्व-
वत् । जलः । जालः । लङ्योरेकत्वस्मरणात् जडः ।
गोधागब्दाद्रकापि गोधार इति सिद्धे 'आरगुदीचामि'त्यागवचनं
जाडारः पाण्डार इति सिद्ध्यर्थमिति तत्र स्थितम् । जाडम् । जडिमा ।
'वर्णदृटादिभ्यः ष्यञि'ति ष्यञ् । दृटादित्वात् भावकर्मणोः ष्यञिमनिचौ ।
जल अपवारणइति चुरादौ ॥ ८१८ ॥

टल द्रुल वैक्लभ्ये ॥ टलतीत्यादि चलतिवत् । द्रुलति । टट्वाल ।
टट्वालतुः । द्रुलितेत्यादि । अट्वालीत् । ट्वालः, द्रुलः ॥ ८२० ॥

स्यल स्याने ॥ स्यान प्रतिष्ठा । स्यलति । तस्याल । स्यलिता ।
अस्यालीदित्यादि । तिस्यलिपति । 'स्तौतिण्योरेवे'ति न षत्वम् । तास्य-
ल्यते । तास्यलि । स्यालयति । अतिष्ठलत् । स्यलः । स्यालः । स्यलम् ।
स्यली । 'ज्ञानपदे'त्यत्राकृत्रिमाया भूमौ डीप् । अन्यथा स्याल । स्याली ।
गौरादित्वात् डीप् । विष्ठलम् । 'विकुशमिपरिभ्यः स्यल'मिति मूर्द्धन्यः ।
एवं क्वादिभ्यः । कपिष्ठलम् । 'कपिष्ठलो गोत्र'इति मूर्द्धन्यो निपात्यते ।
अन्यत्र कपीनां स्यल, कपिस्यलम् ॥ ८२१ ॥

हल विलेखने ॥ विलेखनं कर्षणम् । हलति । जहाल । हलिता ।
अहालीदित्यादि । हलः । हालः । हलि । इन् । हलिं गृह्णाति हल-
यति । अजहलत् । 'मुण्डमिश्रे'त्यादिना गृह्णातीत्यर्थे णिचि हलिकल्यो-

रदन्तत्वनिपातन सन्वद्वावप्रतिषेधार्थमितीकारस्यात्वे वृद्धौ कृतायामङ्ग-
ताया वा लोपे ऽलोप्यङ्गमिन्वभ्यामस्य सन्वदित्वं न भवति । हलानां समूहो
हल्या । 'पाशादिभ्यो य'इति पाशादिपाठात् समूहे यः । हलस्येदं हालि-
कम्, 'हलसीराट्टगि'ति पञ्चन्तात् इदमर्थं ठक् । हल वहति हालिकः ।
बलीवर्दः । 'हलसीराट्टगि'ति द्वितीयान्ताट्टहनीत्यर्थं ठक् । हलस्य कर्षः
हल्यः, कर्षः कर्षणं कृष्यमाणं वा, 'मतजनहलात्करणजल्पकर्षेष्वि'ति पञ्च-
न्तात् कर्षेयं यत् । द्विहल्या भूः । रथ नीताहलेभ्यो यद्विधाविति तदन्त-
विधिः । न विद्यते हलिर्यस्य असौ अहतः । 'नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्यो-
रन्यतरस्या'मिति पक्षे समासान्तः । एव दुःसुपूर्वादिपि । अत्र हलिहलश-
ब्दाभ्यां बहुव्रीहिणा रूपद्वये सिद्धे पक्षे समानविधानं 'शेषाद्विभाषे'ति
हल्यन्तात् कम्मा भूदिति । यस्मादुहुव्रीहेः समासान्तो नाक्तः स शेषः । न
चात्र हलियहणमर्थभेदनिबन्धनं मन्तव्यं, महत् हल हलिः, हलमात्र
त्वन्वदिति नायमर्थभेदः किञ्चित्करः, यस्मादकारान्तेनापि समासो न
दण्डवारित इति प्रकरणादिवशेनैवार्थविशेषावगतिः ॥ ८२२ ॥

एल गन्धे ॥ अन्धनइति काश्यपः । प्रणलतीत्यादि । नालः, नलः ।
नाली । प्रणाली । गौरादिः । डलदोरेकत्वस्मरणात् नडः । अय्युत्पन्न
प्रातिपदिकमिति हरदत्तः । नडानां समूहो नड्या । 'पाशादिभ्यो य'इति
यः । नडा अस्मिन्देहे सन्तीति नड्वलः । नड्वान् । 'कुमुदनडवेतसेभ्यो
ड्वतुप्' । 'नडशादाड्वलजि'ति चातुर्यिको ड्वतुप् ड्वलव्व । नली । नन्दद-
त्तिभ्यामिनञिति इनन् बाहुलकादस्मादपि । नलिनी । गौरादिषु दर्शनात्
'जातेरस्त्रीविषयादि'ति वा डीप् । यद्वा नलशब्दात् 'पुष्करादिभ्यो
देश'इति मत्वर्थोपहनौ डीपि द्रष्टव्यः । नल गन्धं ददातीति नलदं
त्वामज्जकम् ॥ ८२३ ॥

पल गतौ ॥ पलतीत्यादि । पलमुन्मानविशेषः । पलल मांसम् ।
कलत्रपश्चेत्यत्र प्राक् प्रत्ययनिर्देशादन्येभ्यो भवतीति कुण्डलादिवदस्मा-
दपि कलप्रत्ययः । पलालं, स्यालयनीत्यालच् बाहुलकादस्मादपि । महत्
पलाल पलाली । पिप्पल्यादित्वान् डीप् । पलाली यस्यास्तीति पला-

लिनः । शाकीपनानीदृश्यां ह्रस्वत्व चेति पामादिपाठाच्चप्रत्ययो ह्रस्वत्व
च । पाल रक्षणइति चुरादौ ॥ ८२४ ॥

बल प्राणने धान्यावरोधे च ॥ प्राणनं जीवनं, धान्यमवरुध्यते
यत्र कुमूलादौ तद्वातनामनेकार्यत्वाद्वात्यावरोधनव्यापार इत्यर्थः । बलनी-
त्यादि । बाल । बलम् । करणस्य कर्तृत्वापचारादच् । बाला । अजादिपा-
ठात् 'अयमि प्रथम' इति ङीप् बाधित्वा टाप् । बलवान् । बलूलः । वातदन्त
बलनलः टानामूङ् चेति मिथ्यादिपाठान्त्वप्रत्यय ऊङ् चागमः । बलः । पुरु-
षः । 'अर्श आदिभ्योजि'ति मत्वर्थे ऽच् । बाहुबली । उरुबली । 'बलाद्वाहूरूप-
वर्षदादि'ति पुष्करादिपाठादिनिर्मत्वर्थे । सर्वबली । तत्रैव सर्वदेशचेति
पठ्यते । बलिः । इत् । बल्यर्थोऽस्मिन्नुना बालेयाः । 'हृदिस्वर्धबनेर्देजि'ति
हृदिबलिभ्या विकृतवाचिभ्या द्विकृत्ययोया प्रकृतौ ठजिति ठञ् । उप-
धेस्तु स्वार्थेय प्रत्ययः । कुरेय बलिः । कुत्रेबलिः । 'चतुर्थी तदर्थे'ति
चतुर्थ्यन्तस्य तदर्थेति भित्तिपुरुषः । तदर्थेत्यर्थग्रहण, तस्माददं तदर्थम् ।
अन्यानि तु प्रातिपदिकानि । अय चुरादिर्मित् ॥ ८२५ ॥

पुल महत्त्वे ॥ पोलति । पुपोल । पोलिता । पुपुलिषति । पुपो-
लिषति । पुलित्वा, पोलित्वा । 'रलो व्युपधादि'ति कित्त्वविकल्पः ।
पोपुन्यते । पोपुलीति । पोपोल्लि । पोलयति । अपूपुलत् । 'उदुपधा-
दि'ति भावादिकर्मणोर्निष्ठायाः सेटः कित्त्वविकल्पनात्, पुलितमनेन,
पोलितमनेनेत्यादि । पुलः । एयभावे इगुपधलक्षणः कः । पुलकः । सज्ञाया
कुन् । पुलिन, बाहुलकादिने गुणाभावः । पुलाकः । बलाकादयश्चे-
त्याक्रमन्तो निपातितः । अय चुरादावपि । तुदादावपीति वीर-
स्वामी ॥ ८२६ ॥

कुल सस्याने बन्धुषु च ॥ सस्यानं सघात इति स्वामी । क्व चित्तु
संतान इति पठ्यते । सतानो विजातीयैरवच्छिन्नः प्रवाहः । बन्धुशब्देन
तद्वापारः संबन्धाभिधीयते । कौलनीत्यादि, पोलतिवत् । कुलस्यापन्यं,
कुलीनः । कुल्यः । कौलेयः । कुलशब्दे वृत्तौ तद्वति वर्तते । 'कुलात्वं' ।
'अपूर्वपदादन्यतरस्या यद्वृकजावि'ति खयद्वृकजः । अत एवापूर्वपदग्रह-

णम् । खस्तदन्तादपि भवति । ब्राह्मणकुलीनः । महाकुलीनः । 'महा-
कुलादञ्ज्वजा'विति अञ्ज्वजा । अन्यतरस्याग्रहणानुवृत्तेः खश्चेति माहा-
कुलः । माहाकुलीनः । महाकुलीन इति भवति । दुष्कुनगञ्जान् 'दुष्कु-
लाड्ठगि'ति ठक् । दौष्कुलेयः । अत्रान्यतरस्याग्रहणानुवृत्तेः खे दुष्कु-
लीनः । कौलेयकः श्वा । 'कुलकुल्लिगीवाभ्यः श्वास्यलकारेण'ति यथास-
ख्याच्छुन्यभिधेये कुलाड्ठकञ् । अमुष्य कुलस्य भावः आमुष्यकुलिका ।
मनोज्ञादिपाठादुच् । 'आमुष्यायणानुष्यपुत्रिक्'मुष्यकुलिके न्युपमन्या-
मिति पष्ठा अलुक् । स्वभावात्स्त्रीलिङ्गः । कौलकम्, अय मनोज्ञादिः ।
निष्कुलाकरोति पशुम् । 'निष्कुनाविष्कोपण'इति कृजो योगे निष्कोपणा-
र्यानिष्कुलशब्दाद् डाच् । निष्कोपणमन्तरव्रयवाना वह्निर्निस्सारणम् ।
नास्ति कुलमस्य, नकुलः । 'नभ्राणनपादि'ति नञ्प्रकृतिभावः । कुलकम् ।
श्लोकसंघातः । सज्ञाया वुन् । कुलशब्दात्कन्वा ॥ ८२७ ॥

शल हुल पत्ल गतौ ॥ हुल हिंसासवरणयोश्च । अत्र मैत्रेयः ।
चकारोत्रान्वाचये गतावस्य तावत्प्रयोगः । क्व चितु हिंसासवरणयोश्चेति ।
क्व चितु पठति । शल हुल हल पत्ल गतौ । हुल हिंसासवरणयोश्चेति ।
अत्र पाठे चकाराद्गतौ चेति व्याख्येयम् । हूलतेहूलनेश्च घटादिपठित-
स्यापीह पाठो न विकल्पार्थः, घटादिपाठस्त्वर्थविशेषे मित्त्वार्थ इति
बोद्धव्यम् । शलति । शशाल । शलितेत्यादि । शालः । शाला । शल
इति चलनसंवरणयोगतः । होलतीत्यादि । पोलतिवत् । पतति । पपात ।
पेततुः । पतिता । अपप्तत् । लटित्त्वादङ् । 'पतः पुमि'त्यङि परे पुमा-
गमः । पिपतिषति । 'तनिपतिदरिद्रातीनामुपसख्यानमि'ति वा इडा-
गमः । अनिट्पत्ते 'सनि मीमे'त्यादिना अच इस् सकारादौ सनि वि-
धीयमाने इस्भावे 'सस्यार्धधातुक'इतितत्त्वे पित्सशब्दस्य द्विर्वचनम् ।
'अत्र लोपोभ्यासस्ये'न्यभ्यासलोपः । अत्र ग्रहणं 'सनिमीमे'त्यादिचतुःसू-
त्रीविषये अभ्यासलोपार्थमिति स्थितम्, अभ्यासलोपोनर्थकत्वादन्त्यस्य न
भवति । नानर्थकेनान्यविधिरिति । अन्ये त्वग्रहणं सर्वाभ्यासलोपार्थ-
माहुः । तत्र मते ऽभ्यासलोपस्य सनि मीमादिचतुःसूत्रीविषयत्वमधिका-

राट्टोद्वयम् । पित्सति । पनीपन्यते । पनीपादिपाठाच्चप्रत्ययो ह्रस्वत्व
 सस्य नीक् । प्रणिपनति । 'नेगदे'ति णत्वम् ।
 एयपपन् । पतापतः । 'चरिचलिपतिवदीना द्वित्त्वीवनं, धान्यमवरु-मते
 द्विर्वचनमक् चाभ्यासस्य । उत्पतिष्णुः । 'अलद्रजि'त्पार इत्यर्थः । बलनी-
 'नुचङ्गुम्'त्यादिना युच् । पातुकः । लपपते'त्यादिनञाला । अजादिपा-
 पत्रम् । 'दात्री'त्यादिना करणे ङ् । सर्वपत्र व्याप्नोतीन्नूलः । वातदन्त
 रथिः, 'तत्सर्वादे'रित्यादिना सर्वपत्र व्याप्नोतीत्यर्थे शमः । बलः । पुरु-
 सपत्र शर मृगकाये प्रवेशयतीत्यर्थः । निष्पत्राकरोति । सपत्र शरमपरभा-
 निष्कामयतीत्यर्थः । 'सपत्रनिष्पत्रादतिव्ययन'इति कृत्रो योगे डाच् ।
 अतिव्ययनमतिपीडा । गेहानुप्रपातमास्ते । 'विशिपतिपदिस्कन्दा व्याप्य-
 मानासेव्यमानयो'रिति कर्मण्युपपदे व्याप्यमानत्वे आसेव्यमानत्वे गम्य-
 माने णमुल् । तत्र व्याप्तिगुणेन च क्रियया वा द्रव्याणां सवन्धः । सा चेह
 विश्यादिक्रियादिभिर्गहादिकर्मणः, आसेवा पौनःपुन्य, तच्च स्वभावा-
 त्क्रियायाः । तदयमर्थः । गेहङ्गेहमनुप्रपत्य आस्ते गेहमनुप्रपत्यानुप्रपत्यास्ते
 इति वा । आमिप्रयोगो धातुसवन्धे प्रत्ययविधानात् । तत्र व्याप्या-
 सेवनयोः ममामेवैवाकत्वाच्चिन्त्यवीप्स्योरिति द्विर्वचनं न भवतीति भा-
 ष्यादौ स्थितम् । यदा 'तृतीयःप्रभृतीनां ति समासः तदा गेहगेहमनुप्र-
 पातमास्ते गेहमनुप्रपानमनुप्रपातमिति द्विर्वचनं भवत्येव । तत्र नित्यता
 पौनःपुन्य, तच्च क्रियाविषयमिति तत्र क्रियावाचिनोर्द्विर्वचनम् । वीप्सा
 तु व्याप्तुमिच्छा । सा च द्रव्यविषयेति द्रव्यवचनस्य । अत्रासेवाया'माभी-
 क्षण्यं णमुल् चे'ति क्त्राणमुलोर्विधानादेव णमुलि सिद्धे पुनर्विधानं तृती-
 यान्तस्योपपदत्वार्थं, तेन यास्तिकः समासो भवति । त्क्वो निवृत्यर्थं तु न
 भवति इष्टत्वात्तस्येति हि स्थितम् । आपततीत्यापात्यः । 'भव्ये'ति
 निपाननात्पते कर्त्तरि ण्यत् । वावचनेन यथाप्राप्ताभ्यनुज्ञानादापात्यम-
 नेनेति भावेऽपि ण्यद्ववति । पतितः । गत्यर्थत्वात्कर्त्तरि क्तः । नरक
 पतितः, नरकपतितः । 'द्वितीयाश्रिते'ति समासः । स्वर्गात्पतितः । स्वर्ग-
 पतितः । 'अपेनापोडे'ति पञ्चमीतत्पुरुषः । अल्पश इति वचनात्क चित्स-

णम् । खस्तदन्तादपि भवत्पित्तित इत्यादौ अत एव निपातनादित् ।
 कुलादञ्खजा'विति अञ्खजैकल्पेकत्वा'अस्य विभाषे'ति इट्प्रतिषेधः
 कुलः । महाकुलीनः । मीनां 'मेसिची'त्यादिना सकारादाविद्विकल्पना-
 लाङ्ठगि'ति ठक् । दौप्रमिद्वानिद्वयमिदित्कारणा'अस्य विभाषे'त्यस्या-
 लीनः । कैलेयकः श्वः । पापतिः । सहिवहिवलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः
 ख्याच्छुन्यभिधेये-कुल-कनोरन्यतरः । 'अतो लोपः' । 'यस्य हल' इति
 मनोज्ञादिपाठाः । अभ्यासस्य 'नीक् वञ्छि'त्यादिना नीक् न भवति
 नां निपातनमिति वार्तिककारवचनात् । सन्निपातः । घञ् ।
 तस्य शमन कोपन वा, सान्निपातिकम् । 'सन्निपाताच्चेति वक्तव्यमि'ति
 ठक् । पतङ्गः । 'पतेरङ्गच् पतिणी'त्यङ्गच् । पतत्रम् । 'पतेरत्रि'त्यत्रन् ।
 पतत्रिः । 'पतेरञ्चेति त्रिन्प्रत्ययः, अगागमश्च । पतत्रिशब्दः पतत्रश-
 ब्दादिनौ मत्वर्थे । पातालम् । 'पतिचण्डाभ्यामालत्रि'त्यालन्, बाहुलकाद्
 वृद्धिः । के चिद्वृद्ध्यर्थमालजिति पठन्ति । तद्युक्तादित्यत्राण्प्रकरणे 'कुला-
 लवस्वङ्कर्मारनिशदचण्डालमित्रामित्रेभ्यः कृन्दसी'ति चण्डालात्स्वा-
 र्थेणविधानादयुक्तम् । पताका पिनाकादिर्वलाकादिर्वा आकप्रत्ययान्तः ।
 पताकी । मत्वर्थीय इतिः व्रीह्यादित्वात्, पन्याः । 'पतेस्य चेतीन्त्ययः,
 तकारस्य थकारः । 'पथिमथ्यभुतामात्'इति आकारादेशोन्त्यस्य सौ परे,
 'इतोत्सर्वनामस्थाने'इति पथ्यादीनामिकारस्याकारे सवर्णदीर्घः । 'थो न्य'
 इति पथिमथोस्यस्य न्यादेशः सर्वनामस्थाने । पन्यानौ । सर्वनामस्थाने
 दीर्घः । शसादञ्जादौ पथ इत्यादि । 'भस्य टेलीपः' भसंज्ञकाना पथ्या-
 दीना टेलीप इति लोपः, हलादौ नलोपः, पथिभ्याम् । विपथम् । काप-
 थम् । 'कुगतिप्रादय' इति तत्पुरुषः । 'का पथ्यतयो' रिति पथ्यतयोरुत्त-
 रपदयोः कुशब्दस्य कादेशः । त्रयाणां पन्याः त्रिपथम् । 'ऋकूपूरब्धू-
 रि'ति समासान्तो ऽकारः । 'नस्तद्वित' इति टिलोपः । 'पथः सख्याव्य-
 यादेरि'ति नपुसकत्वम् । इदञ्च परवल्लिङ्गतापवाद इति विपथो देशः ।
 विपथा नगरी । बहुव्रीहौ न भवति । यथा पन्यानमतिक्रान्तो ऽतिपथ
 इत्यादौ 'अत्यादयः क्रान्तादर्थे द्वितीयये'त्यादिना तत्पुरुषोपि न भवति ।

देशः । शतपथमधीने वेद वा शतपथिकः । एव षष्टिपथिकः । 'शत
 षष्टेः पथः षिकन्नि'ति द्वितीयान्तात् षिकन् अध्येतृवेदित्रोः पित्वात्
 स्त्रियां शतपथिकी । पन्यानपन्यान प्रति प्रतिपथम् । 'अव्यय विभक्ती'-
 त्यादिना वीप्सायामव्ययीभावः । पथोभिमुखमिति वा प्रतिपथम् । 'ल-
 क्षणेनाभिप्रती आभिमुख्य'इति लक्षणं चिन्हं तद्वाचिनाऽभिप्रती आभि-
 मुख्ये गम्यमाने समस्येते स चाव्ययीभावसमास इति । प्रतिपथमेति
 प्रतिपथिकः प्रातिपथिको वा । 'प्रतिपथमेति ठश्चे'ति द्वितीयान्तादे-
 तीत्यर्थे ठन्ठकौ । पन्यान प्रति गच्छतीति समामेनाभिधानान्नैमौ प्रत्य-
 याविति व्याख्यातारः । सर्वपथ व्याप्नोति सर्वपथीनः पथिकः । 'तत्
 सर्वादे'रिति खः । उत्तरपथेनाहृत गच्छती वा औत्तरपथिकः । 'उत्तरैप-
 थेनाहृत चे'ति तृतीयान्ताद्गच्छत्यर्थे ठञ्, आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्य-
 लकान्तरपूर्वादुपसख्यानादुपार्थादिपूर्वपदादपि ठञ् भवति । वारिपथिक-
 मित्यादि । आजिपथिकः शादुपथिकः । 'अजपथशदुपथाभ्यां चे'ति 'ति-
 नाहृत'तमित्यत्र विषये ठञ् । स्थलपथेनाहृत मधुक मारिच वा म्यालप-
 थम् । मधुकमारिचयोरण् स्थलादिभ्य इत्यण् । देवपथ इव प्रतिष्ठतिदे-
 वपथः । 'इवे प्रतिष्ठतावि'ति इवार्थे सादृश्ये वर्त्तमानात् प्रथमान्तात्कन्,
 तस्य सदृशस्य प्रतिष्ठतित्वे सतीति सूत्रार्थः । तदेतदुक्तं भवति । प्रति-
 स्तरूपे सदृशे वर्त्तमानात् कन्निति कन् । देवपथइव कश्चिद् देवपथः ।
 सत्सगइवेत्यर्थे वर्त्तमानात् कन् । उभयत्र 'देवपथादिभ्यश्चे'ति कनो
 लुक् । परिपन्यशब्दस्तु परिपथपर्यायो ऽव्यत्यन्तः, उक्तं च 'परिपन्यं च
 तिष्ठती'त्यत्र वृत्तौ, समर्थविभक्तिप्रकरणे पुनर्द्वितीयोच्चारणं लौकिकवा-
 क्यप्रदर्शनार्थं परिपथशब्दपर्यायः परिपन्यशब्देऽस्तीति ज्ञापयति स
 विषयान्तरे ऽपि प्रयोक्तव्य इति । एव पथः पन्याश्च मार्गः स्यादिति
 काण्डशेषे पथिपर्यायो ऽयं पथशब्द उक्तः । स नास्तीति प्रतीयते । सति
 हि परिपथशब्दवत् परिपन्यशब्दस्यापि सिद्धेः किं ज्ञापकवर्णनेन । 'पन्यो
 ण नित्य'मित्यत्र प्रत्ययसन्धियोगेन पथः पन्यादेशकल्पनं प्रकृत्यन्तराभाव-
 एव घटते । अथ कथादावपि ॥ ८३० ॥

कथे निष्पाके ॥ कथति । चक्राथ । कथिता । अकथीत् । काथः ।
कथयतीति घटादिपाठात् ॥ ८३१ ॥

पथे गतौ ॥ पथति । पपाथ । पथतुः । अपथीत् । पथः । पाथः ।
पथि गताविति दुरादौ ॥ ८३२ ॥

मथे विलोडने ॥ मथति । ममाथ । मेथतुः । अमथीत् । माथो ।
मथः । कथ्यादीनां त्रयाणामेदित्वात् 'ह्यम्यन्ते'ति न वृद्धिः । दण्डमाथं
धावति दाण्डमाथिकः । माथः । मन्याः । दण्डइव रज्जुरित्यर्थः । 'माथो
तरपदपदव्यनुपदं धावति' एभ्यो द्वुतीयान्तेभ्यो धावतीत्यर्थे ठगिति
ठक् ॥ ८३३ ॥

टुवम उद्गिरणे ॥ उद्गिरणमन्तर्गतस्य मुखाच्चिसारणम् । अत्र सु-
धाकर उद्गिरणइति पठन्निपातनात् तत्र इदृशोरित्याह । वमति ।
ववाम । ववमतुः । वादित्वाच्चेत्वाभ्यासलोपौ । भागवृत्तौ त्वनयोर्विकल्पेन
वेमतुरित्युदाहृत, नद्वाप्यादिषु चिरन्तनेषु ग्रन्थेषु कुत्रापि न दृष्टम् ।
वमिता । अवमीत् । 'ह्यन्ते'ति न वृद्धिः । विवमिषति । ववम्यते ।
ववन्ति । ववान्तः । हेरपित्त्वात् ङित्त्वा'दनुनासिकस्ये'ति दीर्घऽनुस्वारे
वंवाहि । अवंवन् । वमयति । वामयति 'ग्लात्वावनुवमाननुपनर्गाद्वे'ति
मित्त्वनिषेधः । वामः । 'नादात्तोपदेशस्ये'ति वृद्धिनिषेधस्य आचमिकमिव-
मीनामिति निषेधः । वान्तः । वान्तवान् । 'आदितश्चे'ति चकारस्यानुक्त-
समुच्चयार्थतया निष्ठायामनिट्त्वमिति वृत्तौ । भाष्यवार्त्तिकयोरनुक्तम-
पीदं प्रयोगवाहुल्यादुक्तमिति हरदत्तः, तदेव काश्यपादीनामुदित्पाठः
प्रत्युक्तः । वमथुः । ङित्त्वाद्युच् ॥ ८३४ ॥

भमु चलने ॥ भमति । बभ्राम । बभ्रमतुः । भ्रमतुः । भ्रमुः ।
ब्रभ्रमुः । ब्रभ्रमिथ । भ्रमिथ । 'वा जृभ्रमुचसा'मिति किति लिटि थलि च
सेटि वा एत्वाभ्यासलोपौ । भ्रमिता । भ्रमिषति । भ्रमतु । अ-
भ्र-
मत् । भ्रमेत् । भ्रम्यात् । अभ्रमीत् । शब्धिष्ये 'वा भ्राशे'ति पक्षे श्यति
भ्रम्यति । भ्रम्यतु । अभ्रम्यत् । भ्रम्येत् । भ्राम्यतीति दिवादौ शमादिषट्ठि-

तस्यानवम्यानार्थस्य 'शमामष्टाना'मिति दीर्घः । बिभ्रमिपति । बभ्रम्यते ।
 अनुनासिकान्तत्वाच्च, बभ्रन्ति । बभ्रान्तः । लोटि हौ बभ्राहि ।
 अबभ्रन् । 'मो नो धातो रिति मकारस्य नकारः । भ्रमयति । अमन्त-
 त्वान्मित्वम् । घञि भ्रमः । 'नोदात्ते'ति वृद्धिनिषेधः । प्रयोजनं तु
 भ्रमितुं न शक्ताः अभ्रम इत्यत्र 'अस्मावशक्तावि'ति अजन्तस्य कान्तस्य
 च नञः परम्योत्तरपदस्य तत्पुरुषे अशक्तौ गम्यमानाया विधीयमानस्या-
 न्तोदात्तत्वस्याभावः । तेन 'तत्पुरुषे तुन्यार्थतृतीयासप्तस्युपमानाव्ययद्वि-
 तीया कृत्या' । तत्पुरुषे तुल्यादिपूर्वपदस्य विधीयमानः प्रकृतिस्वरो भवति
 स च निपातत्वादाद्भुदान एव । अचि तु 'अन्का'वित्यन्तोदात्तमेव ।
 भ्रमित्वा । भ्रान्त्वा । भ्रान्तः । भ्रान्त देशमनेकदुर्गविषममित्यत्र देश-
 श्चाकर्मणामिति देशस्य कर्मत्वेनानभिधानं तु भवतावेवोपपादितम् ।
 भ्रमणः । चलनार्थत्वाद्युच् । भ्रमीति शमादिपठितस्य घिनुण् । भ्रमर ।
 'अर्त्तवमिक्रमिभ्रमिदेविवासिभ्यश्चेत्य'प्रत्ययः । भ्रमलः । अतिरोगः ।
 'भ्रमेरुवोपधाया' इति कलप्रत्यय उपधायास्वाकारः । भ्रूः । 'भ्रमेर्दु'रिति
 डूः । डित्वाट्टिलोपः । भ्रुवौ । भ्रुवः । अजादौ 'अचि श्नुधातुभ्रुवा-
 मि'त्युवङ् । हे भूरित्यत्र 'नेयडुवङ्स्यानावस्त्री'ति नदीसंज्ञानिषेधः ।
 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्व' इति ह्रस्वाभावः । डिटुचनेषु 'डिति ह्रस्वश्चे'ति
 नदीविकल्पः । डिटुचनेषु इयडुवङ्स्यानेष्वीदन्तमिकारोकारन्तं च
 स्त्याख्यं वा नदी स्त्रीशब्दवर्जयित्वेति सूत्रार्थः । तेन नदीसंज्ञायां माण्
 नद्या' इत्यादि वृद्धावुवङि भ्रुवै इत्यादि । अन्यदा केवलमुवङि भ्रुवै
 इत्यादि । आमि स्त्रीशब्दव्यतिरिक्तयोरियडुवङ्स्यानयो'र्लामी'ति नदी-
 निषेधविकल्पनात् भूणा भ्रुवामिति । भूर्नामा का चित्तस्या अपत्य
 भ्रौवेयः । 'भ्रुवो वृक् च'ति ठक् तत्सन्धियोगेन वृगागमः । लेखाभ्रैयः ।
 'शुभ्रादिभ्यश्चे'त्यपत्ये ठक्, 'ठे लोपो ऽकट्वा'इति ठे परे कट्पूर्वजि-
 तस्योवर्णान्तस्याङ्गस्योकारस्य लोप इत्युकारलोपः । अक्षिणी च भ्रुवौ च
 अक्षिभ्रुवम् । 'अचतुरे'त्यादिनाऽचि समामान्ते निपातित' । भ्रुकुल
 भ्रुभङ्ग इत्यादौ 'इको ह्रस्वोऽयो गालवस्ये'ति इगन्तस्याङ्गन्तस्य उत्तरपदे

विधीम् । षोढा । संख्याया विधाय धा' 'अधिकरणविचाले चे'ति धाप
त्ययः । 'तत्र षण् उत्त्व'मिति उत्त्वत्वे धासु वेति वचनाद् धापत्यं
भवे न भवत इति षड्धेयपि भवति । अत्र षकारस्य धापत्यये 'स्वादि
त्वि'तिपदत्वान्नशत्व डकारः । धकारस्य षुत्वं 'न पदान्तादि'ति
निषेधाच्च भवति । पदान्ताटुवर्गात् परस्य नामवर्जितस्य स्तोः षुत्
नेति सूत्रार्थः ॥ ८३७ ॥

रम क्रीडायाम् ॥ अनुदात्तोऽनुदात्तेत् । रमते । रेमे । रेमिषे
रेमिष्वे । क्रादिनियमादिट् । रन्ता । रंस्यते । रमताम् । अरमत
रमेत । रसीष्ट । अरंस्त । रिरंसते । ररम्यते । ररन्ति । ररतः । प्रकृति
ग्रहणन्यायेन 'अनुदात्तोपदेशे'त्यनुनासिकलोपः । ररंसि । ररणिम्
ररणम् । 'भ्योश्चे'ति नत्वे णत्वम् । ररहीत्यत्र अनुनासिकलोपस्यासि
ट्त्वात् 'अतो हे'रिति लुङ् न भवति । अररन् । 'मो नो धातो'रिति
नत्वम् । रमयति । अरीरमत् । विरमति । आरमति । परिरमति
'व्याहृपरभ्यो रम'इति परस्मैपदम् । उपरमति । 'उपाच्चे'ति परस्मैपदम्
इदं सकर्मकविषयमकर्मकत्वे उपरमति । उपरमते । 'विभाषा कर्म
कादिति' विकल्पस्योक्तत्वात् । अन्तर्भावितण्यर्थोऽय सकर्मकः । विरराम
विरेमतु । विरेमिथ । विररन्थ । यलि 'उपदेशेत्वत्'इति उपदेशेत्वत्
स्तासौ निन्यानिटम्यलीणनिषेधेपि इह भारद्वाजनियमादिट् पक्षे न भवति
लुङि 'यमरमनमाता सकृ चे'ति परस्मैपदपरे सकृ । सिचश्चेट्, 'इट ईटी'ति
सिञ्जलोपः । व्यरसीन् । व्यरसिष्टाम् । रमः । रामः । 'ज्वलितिकसन्तेभ्ये
ण'इति णः । मातन्त्वेण्यनुदात्तोपदेशत्वात् वृद्धिनिषेधाभावः । रमणः
नन्द्यादित्वान् एयन्ताङ्गुः । स्तम्बेरमः । 'स्तम्बकर्णयोरमिजपो'रिति स्तम्ब
उपपदेच् प्रत्ययः । 'हस्तिसूचकयो'रिति वचनात् हस्तिविषयश्चायम्
'तत्पुरुषे कृती'ति सप्तम्या अनुकृ । रन्तिः । 'न क्तिचि दीर्घश्चे'ति दीर्घा
नुनासिकलोपनिषेध । अयमुदिदिति के चित् । त्वायामिड्विकल्पमुदाह
रन्ति । तन्महान्तो न सहन्ते । रत्वम् । 'रमेस्तश्चे'ति नप्रत्ययस्तकार
श्चान्तादेशः । रमतिः स्वर्गः । 'रमेर्निदि'त्यतिप्रत्ययः । सुरतः कामः

‘सौ रमे क्त’ इति क्तः । सूरतः । कृपावात् । ‘रमेः पूर्वपदस्य च दीर्घ’ इति क्ते पूर्वपदस्य दीर्घः । रयः । ‘हनिकुपी’त्यादिना यत् । रय्या । रय-कट्या । ‘खलगोरथात्’ । ‘इनित्रकट्यव’श्चेति यत्कट्यवौ ‘तस्य समूह’ इति विषये । स्वभावात् स्त्रीलिङ्गता । रयस्येद रयम् । ‘रथाद्यत्’ ‘तस्येद’ विषये यत् । अत्र वृत्तौ रथाङ्गवेप्येति इति रयरीनाहलेभ्यो यद्विधौ तदन्तविधि रित्युक्तत्वात् परमरथमित्याद्यपि भवति । आश्व-रयम् । ‘पत्रपूर्वादजि ति वाहनवाचिपूर्वपदात् रथान्तात् अञ् यतोप-वादः । अयमपि रथाङ्गवेप्येति । रथ वहति रथः । ‘तद्वहति रथयुग-प्रासङ्ग’मिति द्वितीयान्तात् वहनीत्यर्थे यत् । रथाय हिना रय्या । खनपदमाप्रतिनवपत्रकलाञ्जलि चकारस्यानुक्तमुच्चयार्थेन चतुर्थ्य-न्ताद्वितार्थे यत् । वामरथस्यापत्य वामरथम् । ‘कुर्वादिभ्यो ण्य’ इति ण्यः, तत्र ‘वामरथस्य कण्वादिबत् स्वरवर्ज’मिति पठ्यते । तस्यायमर्थः । वामरथशब्दस्य गंगाद्यन्तर्गतस्य यजन्तस्य कण्वादेर्यज्कार्यं तद्वति स्वर वर्जयित्वेति, तेन ‘यज्जोश्चे’ति गोत्रबहुत्वे विधीयमानो लुगस्यापि भवति । वामरथा इति । तथात्राय ‘प्राचा फ्र तद्वित’ इति स्त्रिया विधी-यमानो ङीप्फश्चाम्यापि भवतः । वामरथ्यः । वामरथ्यायनी । फ्रस्य षित्वान् ङीप् । ‘हलस्तद्वितस्ये’ति यलोपः । ‘यस्येति चे’त्यल्लोपः । तथा यूनि ‘यज्जोश्चे’ति विधीयमानफ्रगत्रापि भवति । वामरथ्यायन इति । ‘आपत्यस्ये’ति यलोपस्तत्रैव अनातीति निषेधात् भवतीति । तथा ‘सङ्घाङ्गलक्षणेष्वायजिजामण्’ इति यजन्तात् सङ्घाङ्गलक्षणेष्वा विधीयमानोऽण् अस्मादपि भवति । वामरथानि सङ्घाङ्गकरणानीति । तत्र घोषग्रहणं चोदितं, तेन वामरथो घोष इत्यपि भवति । ‘आपत्यस्ये’ति यलोपः । तथा ‘कण्वादिभ्यो गोत्र’ इति गोत्रापत्यवाचिभ्यः कण्वादिभ्यो विधीयमानोऽण् अस्मादपि भवति । वामरथाः ह्यत्राः । स्वरवर्जमित्युक्तत्वात् ‘ज्निन्यादिर्निन्य’मिति प्रकृतेराद्युदात्तत्वं न भवति, प्रत्ययस्वर एव भवति ॥ ८३८ ॥

षट् ल विशरणगव्यवसादनेषु ॥ अयं शदिक्रुशी चानुदात्ता उदा-

तेतः । सीदति । 'पाप्राभ्याम्यादाण्' दृश्यते गतिर्न शब्दसदां पिबजिघ्र-
 धपनिष्ठमनयच्छपश्यर्द्धैः शीयमिदा' इति शिति प्रत्यये परे यथासं-
 ख्यात् सदेः सीदादेशः । ससाद । सेदतुः । ससत्य । सेदित्य । थलि
 भारद्वाजनियमादितृपत्ते 'थलि च सेटी'त्येत्वाभ्यासलोपौ । सेदिव ।
 सेदिम । क्रादिनियमादितृपत्ति । मत्ता । सत्स्यति । असीदत् । सी-
 देत् । सद्यात् । अमदन । लदित्वादङ् । सिपत्सति । सासद्यते ।
 मावगर्हाया 'लुपमदे'ति यङ् । सापत्ति । लङि सिपि 'दश्चे'ति वा
 हत्वम्, अमासः । सादयति । अमीपदत् । निपीदति । 'सदिरप्रते'-
 रिति अप्रतेरिणन्तादुपपन्नात् परस्य पत्त्वे न्यपीदत् । 'प्राक् सितादङ्-
 व्यवायेपी'ति पत्वम् । निपिपत्सति । न्यपीपदित्यत्र 'स्यादिष्वभ्या-
 सेन चे'त्युभयत्र पत्वम् । यद्वाभ्यासस्य 'सदिरप्रतेः' । प्राक् सितादङ् व्य-
 वायेपी'ति पत्वम् । उत्तरस्य 'त्विण्को'रिति । निषसादेत्यत्र तु 'सन्दि-
 ष्वञ्ज्यो परस्य लिटी'ति उत्तरखण्डस्य पत्वनिषेधः । निषेदतु रित्यादौ
 अभ्यासस्य लोपे सति अभ्य'सान् परस्वाभावावायं निषेधः । सेदिवान् ।
 'भाषाया सदवश्च' इति भूतसामान्ये वा लिट्, तस्य च कसुः ।
 अस्मादेव वचनात् भूतसामान्ये सदादिभ्यो लिङ्नुमीयते । इदं चानु-
 मान विकल्पेन, अस्य च लिटो नित्यं कसुरिति न तिङां श्रवणं नापि
 लुङो धातुमामान्यविहितस्य सदादिविशेषविहितेनानेन बाधः । न च
 सदादौ भूतसामान्ये सावकाशस्यास्य लिटः 'अनद्यतने लङ्' 'परोक्षे
 लिङि'ति भूतविशेषविहिताभ्यां बाधः, तद्विधानेऽप्यस्यानुवर्तनादिति
 भाष्यादौ म्यितम् । क्रादिनियमादितृ, उगित्त्वानुम् । 'सान्तमहत'
 इति असबुद्धौ सर्वनामस्थाने दीर्घं सो'र्हलङ्माबुध्य' इति लोपः ।
 सकारस्य मयोगान्तत्वात् लोपः । भमज्ञाया वसोः सप्रसारणे 'संप्रसार-
 णाच्चे'ति पूर्वत्वे परस्य आसेदुष इत्यादि, सप्रसारणविषये नेडागमः
 प्रवर्तते । पश्चात् निमित्तविधातो भविष्यतीति, हलादौ 'वसुसुइत्या-
 दिना दत्त्वे आमेदिवद्भ्यामिति । परिपत् । 'सत्सूद्विषे'ति क्तिप् ।
 पर्यच्छब्दस्तु पृषोदरादित्वात् परेरिकारलोपे, परिपदा कृत, पारिषद-

कम् । 'कुलालादिभ्यो वुजि ति तेन कृतमिति विषये वुज् । परिषद इदं परिषदम् । 'पत्राध्वर्युपरिषदश्चे'ति तस्येदमर्थं जः । परिषदुलः । 'रज-
 क्रष्यासुतिपरिषदो वलच्'इति मत्वर्थे वलच् । परिषद समवैति, तत्र
 साधुर्वा परिषदः । 'परिषदो एय'इति योगाभ्या समवैति तत्र साधुरिति
 विषये एयः । एकदेशविभक्तनस्यानन्यत्वात् कृनेकारनोपस्याप्येते प्रत्यया
 भवन्ति । तथा च भाष्ये 'एओडि'त्यत्र पार्षदश्रुतिरेव तत्र भवता-
 मिति, तथा सप्रति पर्षदुलोक्तमिति भारने वलच् । भट्टिकाव्ये पर्षदुल
 इति वलच् दृश्यते । दिविषत् । पूर्ववत् क्विप्, 'तन्यरूपे कृति बहुल'-
 मिति अलुक् । सुपामादिपाठात् पत्वम् । बहुनग्रहणात् लुकि द्युमत् ।
 'दिव उदि'ति षदत्वे उत्त्वम् । सदः । स द. । निषीदन्तिस्मिन् पाप-
 मिति निषादः । 'हलश्चे'ति अधिकरणे घञ् । 'उपसर्गस्य घञी'ति
 दीर्घत्तत्रैव अमनुष्य इति प्रतिषेधाच्च भवति । निषादस्यापत्व, नैषा-
 दकिः, 'अत इज्' । 'सुधातृव्यासवरुड निषादे'ति अकडादेशः । सदुः ।
 'दाघेट्सिशदसदो रु' इति तच्छीलादौ रुः । निषद्या । 'सत्राया सम-
 जे'त्यादिना स्त्रियामकर्त्तरि क्यप् । सदः । असुन् । सत्र, 'शुभ्रविषचित्र-
 वियमिमदिभ्यश्चे'ति चप्रत्ययः । पाप चिकीर्षेति, सत्रायते । 'सत्रक-
 चे'त्यादिना कण्वचिकीर्षोया श्यङ् । कण्व पाप, सत्रादयो वृत्तिविषये
 पापार्थो इत्युक्तम् । निषदुरः कामकर्दमौ, 'नौ सदे'ति वरच् । सद् ।
 मनिन् । सूकरसद्वन इमे सौकरमद्वः । 'नान्तस्य टिलोप'इत्यादिना
 अत्रिति प्रकृतिभावापवादः टिलोपः । सादिः । 'वपिवदिराजिभृषि-
 हिनिवाशिषदिवृज्भ्य' इतीज् प्रत्ययः । अयं तुदादावपि । उभयत्र पाठे
 प्रयोजन उज्ज्वलितवन्नेयम् । चुरादौ चायम् ॥ २३६ ॥

शद् शतने ॥ अत्र मैत्रेयः । शद् विशातने । विशीर्णतायां
 वर्त्तते, शातन विषयभावेन निर्दिश्यते प्रसिद्धत्वादिति । शीयते ।
 'पाप्ने'त्यादिना शीयादेशः । 'शदेः शित' इति शिद्धाविनोस्मात्तङ् ।
 शशाद् । शदतुः । शशत्य । शेदिय । शेदिव । क्रादिनियमादिट् । यलि
 भारद्वाजनियमादिङ्कल्पः । शत्ता, शत्स्यति । शीयताम् । अशीयत ।

शीयेत । आशिपि शब्दात् । अशदन् । लृटित्वादङ् । शिशत्सति ।
 शिद्भावे च शादिरात्मवेपदनिमित्तं केवल इति गङ्गोरनन्निमित्तम् ।
 'पूर्वेवत्सन' इति न भवति । शाशयते । शाशति । शातयति, शदेर-
 गतौ त'इति यौ तत्त्वम्, गतौ तु शादयते गोपालक इति तत्त्व न भवति ।
 अयमेव गतौ तत्त्वप्रतिषेधो गत्यर्थत्वे प्रमाणम् । शादः । शादः ।
 शाद्वलम् । 'नडशादाद्वलजि'ति वलच् चातुर्यिकः, डिच्चाट्टिलोपः ।
 शद्रुः । 'दाघेट्मिशदवदो रुः' शातयतीति शत्रुः, 'वृशदिभ्या जुचि'ति
 जुन् । बाहुनकात् णेलोपो वृद्धभावश्चेति प्रत्ययलक्षण्येन णिञ्जनमित्तं
 तत्त्वम् ॥ ८४० ॥

क्रुश आह्वाने रोदने च ॥ सदादयस्त्रयोनुदात्ता उदात्तेतः । तथा
 च व्याघ्रभूतिः ।

अदि हदि स्कन्दिजिदिच्छिदिनुदीन्
 सदि शदि स्वद्यतिपद्यती स्विदिम् ।
 तुदि नुदि विद्यति विन्तित्यपि
 प्रनीहि दान्तान् दशपञ्च चानिटः ॥
 दिशि वृशि दशिमथो स्पृशि मृशिम्
 रुशि रिशि ब्रोशतिमष्टम विशिम् ।
 निशि च शान्ताननिटः पुराणगाः
 पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान् ॥

ब्रोशति । चुक्रोश । चुक्रुशतुः । चुक्रोशिय । चुक्रुशिव ।
 चुक्रुशिम । क्रादिनियमदिट् । क्रोष्टा । क्रोद्यति । क्रोशेत् । आशिपि
 क्रुश्यान् । अक्रुशत् । 'शल इगुपधे'ति क्सः । चुक्रुशति । 'हलन्ताच्च'ति
 कित्त्वं, चोक्रुशते । चोक्रोष्टि । हौ चोक्रुष्टि । धित्वषत्वठत्वजश्-
 त्वानि । लङि तिप्पिपोः अचोक्रोष्ट । क्रोशयति । अचुक्रुशत् । आक्रो-
 शकः । 'देविक्रुशोश्चोपसर्ग'इति तच्छीलादौ वुञ् । हे क्रोष्टो । 'सित-
 निगमी'त्यादिना तुन् । अस्य 'वृज्वत् क्रोष्टु'रिति असबुद्धौ सर्वनाम-
 स्थाने वृजन्तरूपातिदेशात् क्रोष्टा क्रोष्टारावित्यादि । शसि क्रोष्टून् ।

अन्यत्र 'विभाषा तृतीयादिष्वची'ति वृज्वद्वावविकल्पनात् क्रोष्टा । क्रोष्टु-
नेत्यादि । आमि 'नुमचिरवृज्वद्वावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेने'ति नुटि
अनजादित्वात् वृज्वद्वावाभावे क्रोष्टूनामिति भवति । क्रोष्ट्री । 'स्त्रियां
चे'ति वृज्वद्वावः । 'मतिबुद्धी'त्यत्र चकारस्यानुक्तममुच्चयार्थत्वादाक्रुष्टः ।
वर्तमाने क्तः । क्रोशः । क्रुशः । णाभावे इगुपयत्वात्कः ॥ ८४९ ॥

कुच सपर्चनकौटिल्यप्रतिष्ठम्भविनेखनेषु ॥ एतदादयः कसन्ता
उदात्ता अनुदात्तेतः । कौचति । कुच शब्दे तारइति पठितस्यापीह पाठः
सपर्चनादावेव कौच इति ज्वलादिसवन्धेन णो यथा स्यादिति ॥ ८४२ ॥

बुध अवगमने ॥ बोधति । बुबोध । बोधिता इत्यादि । बुबुधि-
यति । बोधित्वा । बुधित्वा । 'रलो व्युपधेति' कित्त्वविकल्पः । रुधिः
सराधिर्युधिबन्धिसाधयः क्रुधिलुधी युद्धातिबुध्यती व्यधिरित्यत्र श्यना
निर्देशात् दैवादिकस्य ग्रहणं नान्यस्य नापि बुधिर्बोधनइति वक्ष्य-
माणस्य । बोबुध्यवे । बोबोद्धि । 'भ्रष्टस्तयो'रिति धत्वे जश्त्वे बोभो-
त्सि । 'एकाचो बशो भप् भ्रष्टन्तस्य सध्वो'रिति भ्रष्टत्वे खरि चे'ति
चत्वे, लोटि हेट्टिभावे जश्त्वे च बोबुद्धि । बोबुधानि । 'नाभ्यस्तस्ये'ति
गुणनिषेधः । लङि तिपि अबोभोत् । पदत्वात् भ्रष्टभावो जश्त्व च ।
सिपि तु 'दश्चे'ति वा रुत्वे अबोभोरित्यपि भवति । बोधयति देव-
दत्तः । अबूबुधत् । 'अणावकर्मकादि'ति परस्मैपदं, यदायमणावचित्त-
वत्कर्तृकस्तदापि 'बुधयुधे'ति परस्मैपदमेव, न च तत्र युधादिसाह-
चर्यात् बुध्यतेरेव ग्रहणमिति वाच्यम् । एव बुधियग्रहणं व्यर्थं स्यात् ।
यतो बोधने बोधयते इति दुर्भारम्, न च बोधतिबुध्यत्योरर्थभेदः, एवं
'दीपजने'ति लुङि तशब्दे वा चिखिधावपि श्यन्विकरणैरात्मनेपदिभिश्च
साहचर्यात् बुध्यन्निबोधत्योर्द्वयोर्थग्रहणमिति व्यत्यबोधि, व्यत्यबोधिष्ठेति
भवति, असत्यपि वाग्रहणे न विशेषः, यतो दैवादिकेन व्यत्यबोधि व्यत्य-
बोधिष्ठेति रूपद्वयं दुर्भारं, भावादिनर्मणे बुधितमनेन बोधितमनेने-
त्यादि ॥ ८४३ ॥

निषेधः । निष्ठायां निटत्वे कृत्ववचनमिति वार्तिकमते कृत्वस्य नैव प्रसङ्गः ॥ ८४८ ॥

रेट् परिभाषणे ॥ रेटति । रिरेट । रेटिता । रिरेटिषते । रेरि-
ष्यते । रेरिटि । रेटयति । अरिरेटत् । अदित्वात्रोपधाद्व्यस्यः । रेटते । रिरेटे ।
इत्यादि । रेटित्वा । रेटितः ॥ ८४९ ॥

चते चदे याचने च ॥ चचात । चेतुः । चतिता । अचतीत् ।
अदित्वात्र वृट्तिः । चिचतिषति । चाचत्यते । चाचति । चातयति ।
अचीचतत् । चतते । चेने । चिचतिषते । इत्यादि । चतित्वा । चतितः ।
चत्यम् । 'चतिवक्रिणो'ति यत् । चतुरः । 'मन्दिवाशी'त्यादिनारच् ।
न चतुरः, अविद्यमाना वा चतुरा यस्य अचतुरः, तस्य भावः आचातु-
र्यम् । ब्राह्मणादिपाठान् प्यञ् । न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषात् इति निषेधोत्रैव
अचतुरेति पर्युद्गामात् न भवति । चत्वार । 'चनेरन्'इत्युत् । 'चतुरन्-
हुहोरामुदान'इति मन्त्रनामम्याने आमागमः । तदन्तविधेरन्नेष्ट्यात् प्रि-
यचत्वाः । प्रियचत्वारविन्यादावाम् भवति । हे प्रियचत्वाः । 'अम् सञ्जुष्टा'-
वित्यमागमः । अयं समासश्च । केवलं नित्यबहुवचनान्तत्वात् सञ्जुष्ट-
भावत् । आमि 'षट्चतुर्थ्यश्चे'ति नुटि चतुर्थ्याम् । अत्रापि तदन्तवि-
धिना परमचतुर्णामित्यत्रापि नुट् भवति । 'षट्चतुर्थ्यश्चे'ति बहुवचन-
निर्देशात् यत्र मत्यायाः प्राधान्यं तत्रैवायमिति प्रियचतुरामित्यादौ अप्र-
धाने नुट् न भवति । चतुर्थ्य इत्यत्र 'रोः सुवी'ति नियमाच्च विसर्जनीयः ।
स्त्रिया 'त्रिचतुरोः स्त्रिया तिसृचतसृ' इति विभक्तौ चतस्रादेशे 'अचि र
अत'इति अजादावृकारस्य पूर्वसवर्णदीर्घापवादे च रेफे चतस्र इत्यादि ।
'अत्रेभ्यो ङीप्' स्वस्रादिपाठान् न षट्स्वस्रादिभ्य'इति निषिध्यते । चतसृ-
णामित्यत्र 'नुमचिरवृज्वद्वावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेने'ति नुट् । अजादि-
विभक्त्यभावे न रेफादेशः । नामि दीर्घा न तिसृचतसृ' इति प्रतिषेधाच्च भव-
ति । चतस्रदेशान्तन्तेऽपि भवति परमवतस्र इत्यादि । यत्र बहुव्रीह्यादिना
समासस्यान्यलिङ्गत्वं तत्रापि चतुर्थस्त्रीत्वाश्रयोपमादेशो भवति । प्रिया-
श्चनसो यप्य प्रियचतमा ब्राह्मणः । प्रियचतस्रावित्यादि । सावानाडादेशः ।

अजादा 'वचिर चतः,' अय परत्वात् पूर्वमवर्णन्त्र बाधने । 'चते' डि सर्वनाम-
स्यानयो गुण बाधित्वा पूर्वविप्रतिषेधेन, तेनाजादौ सर्वत्र रेफ एव भवति ।
अत्र 'नदृतश्चे'ति कप् सविपातपरिभाषया न भवति । कपि हि प्रकृतिवि-
भक्त्योरानन्तर्यं विहन्यते । प्रियाश्चत्वारोऽस्यः प्रियच च्वा स्त्री । प्रियच-
त्वारोऽविव्यञ्ज अङ्गस्य स्त्री चेपि चतुर्थस्यास्त्रीत्वात् चतस्रादेशो न भवति ।
चतुर्थो पूरणश्चतुर्थः । 'तस्य पूरणे डडि'ति डटि पट्कृतिकतिपयचतुरा युक्'
इति युक्, तुर्यः, तुरीयः 'चतुरश्च्यतावाद्यक्षरलोपश्चे'ति पूरणार्थं द्वयतौ
आद्यक्षरलोपश्चेति चशब्दस्य लोपः । तुरीय भिन्नायाः तुरीयभिन्ना, चतुर्थ
भिन्नायाश्चतुर्थभिन्ना । 'द्वितीयतुरीयचतुर्थतुर्याण्यन्यनस्या'मिति द्विती-
यादीत्येकदेशवाचिना पठ्यन्तेन सह वा सम्यन्ते इति तत्पुरुषः । एकदे-
शिसमासः । अन्यदा पठ्योसमासे भिन्नातुरीय, भिन्नाचतुर्थमिति भवति ।
पूर्वनिपानभेदः । चतुष्टयम् । 'सख्याया अवयवे तयवि'ति अवयवे वर्त्त-
मानायाः सख्याया अवयवविनि तयप् । 'खरवसानयोरिति रेफस्य विसर्ज-
नीये 'ह्रस्वात्तादौ तद्धित इति सस्य पत्व ष्टुत्व तकारस्य । जसि 'प्रथमच-
रमतये'ति वा सर्वनामत्वात् चतुष्टये, चतुष्टयाः । स्त्रिया 'टिड्ढाणजि'न्या
दिना डीप् । चतुष्टयी । चतुर्भुङ्क्ते, चतुरो वारान् भुङ्क्त इत्यर्थः । 'द्वि-
त्रिचतुर्थ्य, सुजि'ति क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् । 'रात्स्ये'ति सकार-
लोपः । एककर्तृकाणां तु न्यजातीयानां क्रियाणां जन्मसंख्यानं क्रियाभ्या-
वृत्तिगणनम् । स्वाद्युप्यतिः । स्वरादिषु सुजितिपाठात् अव्ययत्वात्
सुबलुक् । चतुः करोति । चतुष्करोति । 'द्विस्त्रिचतुरिति कृत्वोर्थे' इति
कृत्वोर्थे वर्त्तमानानामेव विसर्जनीयस्य कुप्त्वोर्वा पत्वम् । अन्यदा तु
'कुप्त्वोः ऋकृपौ चेति' विसर्जनीयजिड्ढामूलौ । चतुष्कपालम् । चतु-
ष्पात् । 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' इकारोकारोपधस्य यो विसर्जनीयोऽ-
प्रत्ययसंबन्धी तस्य कुप्त्वो पत्वमिति पत्वम् । अविद्यमानानि विशि-
ष्टानि शोभमानानि चत्वारि यस्य सः अचतुरः । विचतुरः । सुचतुरः ।
'अचतुरे'त्यादीनां बहुव्रीहौ अचि निपात्यन्ते । त्रयश्चत्वारो वार्धोऽन्य-
पदार्थः । त्रिचतुराः । वृत्तिस्वाभाव्यात् सदिग्धस्य वृत्तिः । चतुर्थो समीपे

उपचतुराः । 'सख्ययाव्ययासत्रादूराधिकस व्याः सख्ये' । अत्रयादीनि पूर्वपदानि संख्येयवाचीनि सख्यया समस्यन्तइति बहुव्रीहिः । चतुरो-
त्पकरणे 'च्युराभ्य सुपनञ्यान्मि'त्यच् समाप्तान्तः । चात्वाल, यत्
उत्तरवेग्यैः पासवो द्वियन्ते तदुच्यते । 'स्याचतिमृजेरालज्वालजाली-
यव'इति ययास व्यात् वालञ् । चत्वरम् । 'द्विचस्वचत्वे'ति रचि निपा-
त्यते । उणादिवृत्तौ छद्द अपवारणइत्यस्य निपातनमुक्तम् । द्वितीया-
दिश्च पठ्यते । चदति । चदते इत्यादि ॥ ८५९ ॥

प्रोथृ पर्याप्ते ॥ प्रोथति । प्रोथय । प्रोथिता । प्रोथने । इत्यादि ।
प्रोथिषति । प्रोथिषते । प्रोथिष्यते । प्रोथिषति । प्रोथयति । अप्रो-
थत् । अदित्वात्रोपधाह्रस्वः । प्रोथदश्चोभयवसइत्यत्र प्रोथति सूदति
शश्वदश्चइवायमभिनरिति भट्टभास्करः । अयमेवापप्रोथदुन्दुमे दुच्छुना-
दित्यत्रापप्रोथत् । यमारभ्य दुच्छुनात् दुस्वलिप्तात् उपसर्गस्य त-
कारः, प्रोथु पयोप्तिगताविन्याह । तरे अप्रोथयन कारणमिति । प्रोथः ।
'हलश्चे'ति करणे घञ् ॥ ८६२ ॥

मिदृ मेदृ मेधाहिनसयोः ॥ अयं पाठो दिवादीनाम् । मेदति ।
मिमेट् । मेदिता । मेदियति । मिमिदिषति । मिमेदिषति । मिदित्वा ।
मेदित्वा । मेमिदते । मेमेति । मेदयति । अमिमेटत् । मेदतइत्यादि
द्वितीयस्य तु मिमेदतुरित्यादौ कृडितोरेकाश्रवण विशेषः । तीरस्वामी
थान्तावेनौ । भिदादिसूत्रे मेधाशब्द व्युत्पादयत् न्यासकारो धान्तावाह ।
भोजराजन्तु मेधि नानुमन्यते । यदाह । अङ्विधौ रखिलिखिसिधिमि-
थिगुह्यो गुणश्चेति । कौमारश्चात्रैवानुकूलः । मेदतइति व्युत्पादौ
स्नेहने गतः ॥ ८५४ ॥

मेधृ सगमे च ॥ मेधति । मिमेध । मेधिना । मेधिष्यते इत्यादि ।
मेधृ सेचने । भिदादित्वादङ् । एहमेधो देवातास्य एहमेधम् । एहमे-
धीयम् । 'द्यावापृथिवी'त्यादिना कृत्यतौ ॥ ८५५ ॥

णिदृ शेदृ कुत्सासनिकर्षयोः ॥ नेदतीत्यादि, मिदृमेदृवत्
प्रणेदति । 'उपसर्गादि'ति णत्वम् । निन्दतीति कुत्सायां गतम् ॥ ८५७ ॥

शुधु मृधु उन्दने ॥ उन्दनं क्तिन्नम् । शर्दुति । शशर्दु । शशधत् ।
 शर्दुति । शर्दुते । शशधे । इत्यादि । शिशर्दुपति । शरीशधत् । शरी-
 शर्दु । हो हेर्दुः । 'भ्रपस्तथोरिति धत्वे जरत्वे, लोटि हो शरीशर्दु ।
 लङि तपि अशरीशर्त् । 'रात्सस्ये'ति नियमात् न सयोगान्तलोपः । सिपि
 तु जरत्वे 'दश्चे'ति वा रुत्वे 'रो रिलोपे 'द्रलोप'इति दीर्घं अशरीशा
 इत्यपि भवति । एव रुधिकोरपि । शर्दुयति । अशशर्दुत् । अशीशधत् ।
 उदित्त्वाट्टे । शर्दुत्वा । शर्दु । शर्दुः । एव मर्दुतीत्यादि । शृधेर्दु
 तादौ पाठः शब्दक्रुत्साया क्रियाफलस्य अकर्तृगामित्वेपि आत्मनेपदार्थः ।
 तथा 'वृद्धा स्यसनोरिति स्यसनेर्लुटि च क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वेपि
 परस्मैपदार्थः । तथा 'पुषादिद्युनादी'त्यङर्थश्च । वृतादिश्च द्युताद्य-
 न्तर्गणः । तथा 'न वृद्धाश्चतुर्भ्यश्चे'ति स्यसनोः परस्मैपदङ्निषेधा-
 र्थश्च ॥ ८५९ ॥

बुधिर् बोधने ॥ बोधति । बुबोध । बोधिता । अबुधत् । अबो-
 धीत् । 'इरितो वे'त्यङ् विकल्पेन । बोधते । बुबुधे । इत्यादि । क्षीर-
 स्वामी तु बुधेत्यनिरित पयाठ । बोधनीति ज्वलादिः परस्मैपदी अव-
 गमने गतः । अस्य तशब्दे 'दीपजने'ति चिण् नेति अबोधित्येव भवति ।
 अत्र देवादिकैर्नि यात्मनेपदिभिरकर्मकैः साहचर्यात् तादृश एव बुधिर्य-
 ह्यते । तथा 'बुधयुधे'त्यत्र बुधनशजनैरकर्मकैः साहचर्यात्तास्य सयहः ।
 स्पष्ट चैतदेव तत्र वृत्तौ । तेन बोधयति बोधयते इति भवति ॥ ८६० ॥

उबुन्दिर निशामने ॥ निशामन चतुर्विज्ञानम् । बुन्दति । बुबुन्द ।
 बुन्दिता । अबुन्दत् । अबुन्दीत् । बुबुन्दिषति । बोबुन्द्यते । बोबुन्ति ।
 हो डित्त्वादननासिकलोपे बोबुद्वि । बुन्दते । बुबुन्दे इत्यादि । उदि-
 त्त्वात् त्वायामिद्विकल्पनात् । बुन्दित्वा । बुत्वा । निष्ठाया बुचम् ।
 नलोपे 'रदाभ्यामि'ति निष्ठानत्वम् । बुदुदः । 'घञर्थे कृजादीना के द्वे
 भवत'इति द्विवचनम् । एषे'दर दित्त्वान् न हलादिशेषः ॥ ८६१ ॥

वेणु गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रयहणेषु ॥ वादित्रयहणं नाम
 वादित्रयस्य वाद्यभाण्डस्य वादनार्थं ग्रहणमिति क्षीरस्वामी । वेणति ।

विवेण । वेणिता । विवेण्यति । वेवेण्यते । वेवेण्ट । वेणयति । अवि-
वेणत् । वेणते । विवेणे इत्यादि । वेणि । वेणी । इन् । 'कृदिकाराद-
क्तिन' इति डीप्वा । उत माता महिषमत्त्ववेनम् इत्यत्र भाष्यकारास्त-
वर्गपञ्चमान्तममु णेटुः ॥ ८६२ ॥

खनु अवदारणे ॥ खनति । खनान । खन्तुः । 'गमहने'त्यजादा-
धुपधालोपः । तस्य 'द्विर्वचनेची'ति स्थानिवत्त्वात् द्विर्वचनम् । खनिता ।
खनिष्यति । अखनत् । खनेत् । खन्यात् । खायात् । 'जनसनखना सन्-
भलोः' 'ये विभाषे'त्यात्वम् । धातुपारायणे तु 'ले'पो यी'तिवत् 'ये वि-
भाषे'ति वर्णप्राप्ते निर्देष्टव्ये य इत्यत्वतो निर्देशादिदमात्व ययङोरेव न
तु यासुटीत्युक्तम् । अखनीत् । अखानीत् । खिखनिषति । चङ्ङन्यचे । चाखा-
यते । चङ्ङन्ति । चङ्ङातः । 'अनुनासिकस्येति दीर्घ परत्वात् बाधित्वा
जनमनमना'मित्यान्व भवति । तत्र भक्त्यहण मनोत्यर्थे तस्यैव भलादेः
सनः सभवात्, तेन चिखनिषतीत्यत्रात्वाभावः । खानयति । अचीखनत्
खनते । चखे इत्यादि । खेयम् । 'ई च खन'इति क्यपि तत्सन्निधौ
ईकारेन्तादेशे आद्रुणः । इइ इति प्रश्लेषेणोकारद्वय विधीयते । एकस्मि-
न्विधीयमाने 'ये विभाषे'त्यात्वाभावपक्षे सावकाशोसौ परेणान्तरङ्गेण
चात्वेन बाधेत, यतो हि यकारादौ बुद्धिस्यैव विधानादन्तरङ्गमात्वम्,
ईकारः, क्यप्सन्निधौ विधानात् बहिरङ्गः । यदा तु 'ये विभाषे'ति पर-
सप्तमा तदात्वमेव बहिरङ्गः, मीत्व तु क्यप्सन्निधौ न्यन्तरङ्गमिति नार्थः
प्रश्लेषेणावबोधनार्थेन, एव च सूत्रेपि ह्रस्व एव पठितव्यः । नन्वेवमेका-
देशस्य 'पत्वतुकोरसिद्ध'इत्यसिद्धत्वात् ह्रस्वाश्रयस्तुक् स्यात्, नैतत् ।
'पदान्तपदाद्योरेकादेशोसिद्ध' इत्येव तत्र व्यवस्थापनात् । खनकः ।
खनकी । 'शिल्पिनि प्लुन्' । तत्र च 'नृतिखनिरञ्जिभ्य इति परिगण्यते ।
परिनः खाता, परिखा । 'अन्येष्वपि दृश्यन्'इति डः । खायते अनेनेति
खनित्रम् । 'अता'त्यादिना करणे इत्रः । खात्वा । खनित्वा । उदित्वा-
दनिट्पक्षे भलादिक्रित्परत्वात् पूर्ववदात्वम् । निखाय । 'ये विभाषे'ति
आत्व वा । खातः । 'यस्य विभाषे'त्यनिट्त्वम् । खन्यतेनेन अत्रेति वा

खनः । 'खनो घ चे ति करणाधिकरणयोर्घः । चकारात् घञि आखानः ।
 आखः । डो वक्तव्य इति डः । आखरः । डरो वक्तव्य इति डरः ।
 आखनिकः । इको वक्तव्य इतीकः । आखनिकवकः । इकवको वक्तव्य
 इति इकवकः । आखादयः खनित्रवचनाः । परिखा भवेदस्मिन्नस्य वा
 पारिखेयं स्यात् । 'परिखाया ठञि'ति प्रथमान्तात् सभावनोपाधिकात्
 अस्यास्मिन्नित्यर्थे ठञ् । आखनतीत्याखुः । आङ्पर्योः खनिशुभ्या
 ङिङिति उपत्यये ङित्वाट्टिलोपः । मुख, ङित् खनो मुट् चोदात्त इत्य
 चप्रत्यये ङित्वाट्टिलोपः, धातोर्मुङागमश्च । मुखे भव, मुख्यम् । 'दिगा
 दभ्यो यदि'ति यन्प्रत्ययः । इह पाठोऽशरीरावयवार्थः । शरीरावयवस्य तु
 'शरीरावयवद्वयदित्वेव सिद्धः । मुखमित्र मुख्या । 'शाखादिभ्यो य' इति
 भवार्थे यः । मुखतो भव नुपनिदम् । 'मुखपार्श्वेनसलोप' इति गहादि-
 पाठाच्छ्रुप्रत्यये सलोपो 'यस्ये'ति लोपः । परिमुखं भवं पारिमुख्यम् ।
 'अग्र्ययीभावार्च्चे'ति यः । तत्र हि 'परिमुखादिभ्य उपसंख्यानमि'ति वार्तिकं,
 तेन परिमुखादेरेवाग्र्ययीभावादयं प्रत्ययः । परिमुखं वर्त्तते पारिमुखिकः
 सेवकः । 'परिमुखं चे ति द्वितीयान्तात् अस्मादुत्ते इत्यस्मिन्नित्यर्थे ठञ् ।
 मुखस्य सादृश्यं यथामुख, प्रतिविम्बत् । सम मुख समुखम् । समशब्दः
 सर्वपर्यायः । यथामुख दर्शनः यथामुखीनः । आदर्शादिः । एव समुखस्य
 दर्शनः समुखीनः । दर्शन इत्यधिकरणे ल्युट् । यथामुखसमुखस्य दर्श-
 न'इति पृष्ठाभ्यामाभ्यां दर्शनइत्यर्थे खः । अत एव सादृश्येपि निर्दे-
 शात् यथ मुखमित्यव्ययीभावः । तथा समोन्त्यलोपश्च । अयं च लोपः
 प्रत्ययनियोगेनेति केवलो न प्रयोगार्ह इति व्याख्यातारः । यथामुखीना
 सीताया इति भट्टिप्रयोगश्चिन्त्यः । गौरमुखा नाम का चित्, 'नखमुखात्
 संज्ञाया'मिति स्वाङ्गलक्षणस्य ङीषो निषेधात् टावेव । असंज्ञाया तु
 सुमुखी सुमुखा इत्युभय भवति ॥ ८६३ ॥

चीवृ आदानसवरणयोः ॥ चीवति । चिचीव । चीविता । चिची-
 विषति । चेचीव्यते । चीवयति । अचिचीवत् । चीवते । चिचीवे ।
 इत्यादि । ऊङ्गावित्वावास्य यङ्लुगस्ति । अनृदिदित्येके । चीवरम् ।

‘द्वित्वरे’त्यादिना वरचि वलोपः । चिनोतेर्वा निपातनम् । संचीवरयते भित्तुः । चीवरमर्जयति परिधत्तइति वार्थः । ‘पुच्छभाण्डचीवराणिङ्-डि’ति णिङ् । तत्र चीवरादर्जने परिधाने चेति वृत्तिः । अयं चुरादौ च ॥ ८६४ ॥

चायू पूजानिशामनयोः ॥ चायति । चचाय । चायिता । चिचा-
यिषति । चेकीयते । ‘चायः की’ति यङ्यङ्नुक्तोः कीभावः । दीर्घाच्चा-
रणं यङ्लुगर्थमिति स्थितम् । चेकीयति । चेकेति । चेकीतः । चाययति ।
अचचायन् । चायते । चचाये । इत्यादि । अचायिष्ट । चायित्वा ।
अपचितः । ‘अपचितश्चेति निष्ठायामनिट्त्व चिभावश्च पक्षे निपा-
त्यते, अन्यदा अपचायितम् । ‘क्तिनि नित्य चिभावो वक्तव्यः’ । अप-
चितिः । वनः । अत्रम् । चायतेह्रस्वश्चेत्यसुनि नुडागमे ह्रस्वश्च, वलि
लोपः ॥ ८६५ ॥

व्यय गतौ ॥ व्ययति । वव्याय । व्ययिता । व्याययति । अव्य-
व्ययत् । व्ययते । वव्यये इत्यादि । व्ययतइति वितत्यागे नित्यमात्मने-
पदी । अयं चुरादावदन्तः ॥ ८६६ ॥

दाश दाने ॥ दाशति । ददाश । दाशिता । द्विदाशिषति ।
दादाशयते । दादाष्टि । दाशयति । अददाशत् । दाशते । ददाशे
इत्यादि । दाश्वान्माह्वान्’ इति कृसावद्वित्वमनिट्त्व च निपात्यते ।
दाशतेस्मै इति दाशः । ‘दाशगोष्ट्रौ सप्तदान’इति अचि निपात्यते ।
पुरो दाशयतइति पुरोडाशः । तत्सहचरितयन्योपि पुरोडाशः । पुरो-
डाशस्य सस्कारको मखस्य शिरोसि इत्यादि मन्त्रः । पौरोडाशः ।
पुरोडाशस्य पौरोडाशस्य च व्याख्यान तत्र भव वा पुरोडाशिक, पौरो-
डाशिकम् । ‘पौरोडाशपुरोडाशात्पठन्’ इति प्रत्येक षष्ठ्यन्ताभ्यामाभ्या
भवव्याख्यानयोरर्थयोष्टुन् । अत्रैव निर्देशात् दाशेर्दकारस्य डकारः ।
अस्मादनन्तरं स्वामिकाशयपावयति पठतः । तदनार्थं प्रतीयते । यदाह ।
‘उपसर्गस्यायता’विन्यत्र हरदत्तः । अयतिरनुदात्तेदिति ॥ ८६७ ॥

भेष्ट भये ॥ कृ चित् गताविति पठ्यते । भेषति । बिभेष । भेषिता । बिभेषिषति । बिभेष्टि । भेषयति । अबिभेषत् । भेषते । बिभेषे इत्यादि ॥ ८६८ ॥

भेष्ट भेषु गतौ ॥ भेषतीत्यादि पूर्ववत् । भेषः ॥ ८७० ॥

अस गतिदीप्तादानेषु ॥ असति । आस । असिता । असि-
सिषति । आसयति । आसिसत् । आसते । आसे इत्यादि । अप इत्ये-
कइति द्वीरस्वामिमैत्रेयौ । शाकटायनमूभाष्ये ॥ ८७१ ॥

स्पश बाधनस्पर्शनयोः ॥ स्पर्शनं यथनमिति स्वामी । ग्रहणश्ले-
षयोरयं चुरादौ । स्पशति । पस्पश । स्पशिता । अस्पाशीत् । अस्प-
शीत् । पिस्पशिषति । पास्पश्यते । पास्पष्टि । पस्पश । यङ्लुगन्तादचि
टाप्, संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति नाभ्यासस्य दीर्घः । स्पाशयति । अप-
स्पशत् । 'अस्मृदृत्वरे'त्यादिनाभ्यासस्यात्वम् । स्पशते । पस्पशे इत्यादि ।
अत्र स्वामी पप इत्येकइति, तेन पापण्डः, पापाण, इत्याह । दुर्ग-
शाकटायनयोरप्ययमेव पल, अनयोः पाठे प्रतिस्पशो विसृजतूर्णितम,
यतो व्रतानि पस्पशे । अपमर्गश्च पस्पशः । शब्दविद्वेष्ट नो भाति
राजनीतिरपस्पशेत्यादिप्रयोगाननुगुणः । पापण्डवायागत्रयेताम् 'अनु-
पसर्गादि'ति कथादेर्भविष्यति । यद्वा पप बन्धनइति युजादेः । अस्ति
चाय युजादौ, यद्व्यति चुरादौ मैत्रेयः पप बन्धनइति युजादावेके
पठन्तीति । अत्र स्वामिकाश्यपादयः । पाशादिदर्शनात् पशेति पठन्ति ।
पाशादयोपि चौरादिकेन खण्डनार्थेनापि सिद्धाः । पशुशब्दस्तु पशेव्यु-
त्पादयिष्यते । पसेति दन्त्यान्तसौत्रो धातुः । तस्य पमतीत्यादि ।
पशेर्यङ्लुकि 'जपजभे'त्यादिना अभ्यासस्य नुकि पपश्यते । पंपशीती
त्यादि । पंपश्यतीति कण्ठ्वादे । दुःखायतइत्यर्थः ॥ ८७२ ॥

लष कान्तौ ॥ कातिरिच्छा । लपति । ललाप । अलपीत् । अला-
पीत् । लिलपिषति । लालयते । लालष्टि । लापयति । अलोलपत् ।
लपते । लेषे इत्यादि । 'वा भाषे'त्यादिना शब्धिषये वा श्यनि । लप्यति,
लप्यते । लपणः । 'जुचङ्गम्येत्या'दिना युच् । लापुकः । 'लषपते'त्यादि ।

व्यमि'ति क्यप् । तदभावे ण्यति गोह्यं, काकेभ्यो गुह्यन्तइति काकगु-
हास्तिलाः । 'मूलविभुजादिभ्य उपसख्यानमि'ति कः । गूहतेत्रानयेति
वा गुहा । गिर्योपधोरित्यङ् । गूढिरित्यत्र । गूहित्वा । गूढ्वा । गूढः ॥
हिक्कादय उदात्ताः स्वरितेतः ॥ ८८० ॥

अथाजन्तानुभयपदिन आह ॥

अिञ् सेवायाम् ॥ उदात्तः । अयति । शिश्राय । शिश्रियतुः ।
शिश्रियुः । शिश्रियिथ । शिश्राय । शिश्रय । शिश्रियिव । अचि इयादेशः ।
अन्यत्र वृद्धिगुणौ अत्र असयोगाल्लिट् कि'दिति लिटः कित्त्वात् 'श्युकः
किती'ति प्राप्तस्येटो निषेधस्य क्तादिनियमेन बाधः । अयिता । अयिष्यति ।
अयतु । अययत् । आशिषि श्रीयात् । अङ्गस्वार्थधातुऋयो'रिति दीर्घः ।
आशिष्रियत् । 'णिश्री'ति चङ् । लघूपधगुणादन्तरङ्गत्वादियङ् । अयते ।
शिश्रिये इत्यादि । शिश्रियिषति । शिश्रीषति । 'सनीयन्तर्दृ' न्यादिना इङ्-
कल्पः । अनिट्पक्षे 'अङ्भने'ति दीर्घः । 'इको भलि'ति कित्त्वादगुणत्व,
शेश्रीयते । शेश्रीयीति । शेश्रेति । आययति । अशिष्रयत् । वृद्ध्यायौ, लौ कृतस्य
स्यानिवत्त्वात् श्रीशब्दस्य द्विवचनम् । आयः । 'श्रिणीभुवेनुपसर्गे' इति घञ् ।
उच्छ्रायः । 'उदि अयतियौतिपूदुव' इति घञ् । कथ पतनान्ताः समु-
च्छ्रया इति, 'कृत्यत्युटो बहुल'मिति वचनात्, एवं च उदिअयतीति तिपा
निर्देशात् यदनुगन्तात् उच्छ्रेय इति अज्ञेय । विश्रयी । 'जिटृक्षिवि
श्री'ति नाच्छीलिक इनिः । श्रित्वा । श्रितः । 'श्युकः किती'ति इगि-
न-
षेधः । कटश्रितः । 'द्वितीया श्रिते'ति समासः । श्रेणिः । 'वहिश्रियुदु-
लाहात्वरिभ्यो निदि'ति निः । श्रेणीकृताः । 'श्रेण्यादयः कृतादि'भिरिति
तत्पुरुषः । 'श्रेण्यादिषु च्यर्थवचनमि ति तत्र वार्तिकम् । 'क्विप् वचिप्र-
च्छ्रयायतस्तुकटुञ्जुश्रीणा दीर्घा ऽसप्रसारणं च' इति क्विद्दीर्घा । इयङ्
स्यानित्वात्, नदीत्वाभावात् हे श्रीरित्यत्र 'अम्भार्थनद्योर्ह्रस्व' इति न
ह्रस्वः । डिटृचनेषु 'डिति ह्रस्वश्चे'ति पक्षे नदीत्वादाटि डेश्चामि श्रियै ।
श्रियाः । श्रियामित्यादि । अन्यद्वेयङि श्रिये, श्रियः । श्रियि । पठौबहुवचने
च 'वामी'ति नदीत्वे नुटि श्रीणा, श्रियाम् । श्रिमन्यं ब्राह्मणकुलम् ।

भाष्यकारवचनात् श्रीशब्दस्य ह्रस्वः मुमभावश्च । श्मश्रु । 'श्मनि श्रयतेङु-
वि'ति श्मन्शब्दउपपदे डुन्, टिलोपः, श्मश्रुणः, यामादित्वात् ॥ ८८१ ॥

भृञ् भरणे ॥ एतदादयो नयत्यन्ता अनुदात्ता उभयपदिनः ।
भरति । बभार । बभ्रतुः । बभर्थ । बभृव । क्तादिनियमादिङभाव । पिति
गुणः, वृद्धिः, अन्यत्राजादौ यण् । भर्त्ता । भरिष्यति । 'चट्टनोः स्ये' इतीट् ।
भरतु । अभरत् । भरेत् । आशिपि भ्रियात् । 'रिड् शयग्लिङ्' इति रिङा-
देशः । रीडि प्रकृते रिड्यहणात् अकृत्सार्वधातुकयोर्न दीर्घः । अभर्षीत् ।
भरते । बभ्रे । भर्त्तासे । भरिष्यते । भरताम् । अभरत् । भरेत । आशिपि
भृपीष्ट । 'उश्चे'ति आत्मनेपदविषययोर्भलाद्योर्लिङ्सिचोः कित्वाच्च
गुणः । अभृत । 'ह्रस्वादङ्गा'दिति सिचो लोपः । सिञ्जाश्रयो गुण 'उश्चे'-
ति कित्वाच्च भवति । बिभरिषति । 'सनीवन्ते'त्यादिना वेट् । इङभावे
सनी भलादित्वा'दिको भलि'ति कित्त्वे 'अजभनगमामि'ति दीर्घे 'उदोष्ठ-
पूर्वस्ये'ति उत्तरपरत्वयोर्'हलि चे'ति दीर्घे वुभूर्पति । वेभ्रीयते । 'रीड
चत' इति परत्वाद्गीडि कृते द्विवचन, बभर्त्त । लोटि हेडित्वादगुणत्वे
वर्भृहि । लङि 'हल्'वावि'ति लोपे अबर्भः । एव रिथीकारपि । 'सनीवन्ते'-
त्यत्र भरेति शपा निर्देशात् यङ्लुकि नेङ्विकल्प इति बभर्भरिपति इत्येवं भव-
ति । अत एव शपा निर्देशात् आचार्याः शञ्चिकरण नेच्छन्तीति मतं प्रत्यु-
क्तम् । तथा च वर्तमानसुधाकरशिवस्वाम्यादयो भरेति शपा निर्देशाद्भृञ्
भरणइति भौवादिकस्य ग्रहणमिच्छन्ति । भारयति । अवीभरत् । भर्त्ता ।
भर्त्तुर्भावकर्मणी, भार्त्रम् । उद्गात्रादित्वादङ् । यामभर्त्ता । याजकादित्वात्
समासः । जारं भरति इति जारभरः । जारभरेति पचादिपाठादच् । भृत्या
भरणीयः । 'भृजोसञ्ज्ञाया'मिति क्यपि तुक् । सपूर्वाद् विभाषेत्युक्तत्वात्
ण्यदपि भवतीति सभृत्यः सभार्य इति क्यङ्ण्यतौ भवतः । सञ्ज्ञाया
ण्यदेव भार्यति, पाणिहृतीतीत्यर्थः । सभार्य, गवामयनो हविर्विशेषः ।
भृत्या भरणविशेषः । 'सञ्ज्ञाया समजे'त्यादिना स्त्रिया भावे क्यप्, 'कर्मणि
भृता'विति निर्देशात् भृतिरिति क्तिन् भवति । आत्मम्भरिः । 'फलेग्रहि-
रात्मम्भरिश्चे'ति इन्नन्ययान्तो निपातितः । चकारात् कुत्तिम्भरिश्चेति

उद्यमने तु भारहार इत्येव । कवचहरः । 'वयसि चे'ति कर्मोपपदात्
हरतेरच् वयसि गम्यमाने । कालकृतशरीरावस्था यौवनादिवयः । उद्यम-
नार्थोयमारम्भः । उद्यमन क्रियमाणं संभाव्यमानं वा वयो गमयतीति
वृत्तिः । पुण्याहरः । 'आडि ताच्छील्य'इति कर्मोपपदात् आहुपसृष्टात्
ताच्छील्येऽच् प्रत्ययः । दृतिहरिः पशुः । नाथहरिः पशुः । 'हरतेर्दृति-
नाथयोः पशा'विति दृतिनाथयोः कर्मणोरुपपदयोः हूजः पशौ कर्त्तरि
इन् प्रत्ययः । सह्रियन्तेऽनेनात्रेति वा सहारः । अध्यायन्यायोऽत्रावसंहा-
राधारावायाश्चेति करणाधिकरणगोर्धञ् निपात्यते । हरणं हारा,
काराबन्धनइति भिदादिपाठादङ् गुणो दीर्घत्वं च । आह्रियन्तेस्माद्रस
इत्याहारः । 'अकर्त्तरि च कारक'इति घञ् । हरिः । इन्प्रत्ययः । प्रहिः
कूपः । प्रहरतेः कूप इति प्रोपसृष्टादस्मादिकारप्रत्ययः । तत्र डिटित्य-
नुवृत्तेः टिलोपः । हृदयम् । धृद्भ्योऽयुक्कुडौ चे'ति कयप् प्रत्ययो
दुगागमः । हृदयस्य प्रिय, हृदयम्, 'हृदयस्य प्रिय' इति षष्ठ्यन्ताद्वत्,
हृदयस्य बन्धनो हृदयो मन्त्रः, 'बन्धने चर्पा'विति षष्ठ्यन्तात् यत् । बध्यते
ऽनेनेति बन्धनम् । चर्पिर्वदः । हृदये भव हार्दम् । 'प्राग्दीव्यतोण्', हृदयं
लिखतीति, हृल्लेखः । हृदय्यम् । ब्राह्मणादिपाठात् ष्यञ् । एवं दौर्हृद-
य्यम् । हृदयस्य लामो हृल्लासः । 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेष्वि'ति
हृदादेशः । तत्र वृत्तौ लेखेन्यणन्त्यस्य ग्रहणं घञि हृदयलेख इति ।
हृदयस्य शोको हृच्छोकः, हृदयशोकः । रोगे, हृद्वेगः । हृदयरोगः । 'वा
शोकष्यज्ज्रोगेष्विति'हृदादेशविकल्पः । ष्यञि हृद्वावपत्ते 'हृद्वगसिन्ध्वन्ते
पूर्वपदस्य चे'त्युभयपदवृद्धिः । सुहृत् । दुहृत् । 'सुहृद्दुहृदौ मित्रामि-
त्रयो'रिति बहुव्रीहौ हृदयस्य हृदादेशः समासान्तः । मित्रामित्राभ्या-
मन्यत्र सुहृदयो दुहृदय इति भवति । सुहृदो भावकर्मणी सुहृदयस्य,
सौहार्दम् । 'हायनान्तयुवादिभ्यो ऽणि'ति अण्, 'हृद्वगे'त्युभयपदवृद्धिः ।
'हृदयस्य हृल्लेखे'त्यादिना हृदयस्य हृद्वावः । हृदयस्य भावकर्मणी हार्दम् ।
युवादिषु हृदयस्य हृद् इति पाठात् अणि हृद्वावः । हृदयमस्यास्तीति
हृदयालुः । 'हृदयाच्चालुरन्यतरस्या'मिति मत्वर्थीय आलुच् । तदभावद-

निठनौ । हृदयी हृदयिक इति । हरिणः, शास्त्याहृश्विभ्य इनच् इतीनच् ।
हरिणी । 'जातेरस्त्रीविषयादि'ति ङीष् । हरेणुः । गन्धद्रव्यविशेषः । 'ऋहृ-
भ्यामेणु'रिति एणुः प्रत्ययः । हरितः । हृश्याभ्या तच्चिति तन् । हरिणी
ब्राह्मणी । 'वर्णादनुदात्तात्तोपधादि'ति स्त्रिया वा ङीष् तकारस्य नकारः ।
अयमितनो नित्यादुदात्तादिस्तकारोपधश्च भवति । ङीवभावे टापि
हरिता ब्राह्मणी । हरित् । 'हृस्युपिभ्य इति रिति इतिप्रत्ययः ॥ ८८३ ॥

धृञ् धारणे ॥ धरतीत्यादि भरतिवत् । 'धारेरुत्तमर्ण इत्यत्र धृञ्
अन्वस्थाने इति तौदादिकस्य ग्रहणमिति न्यासपदमञ्जर्यादिषु । 'इङ्धा-
र्योरित्यत्राप्यस्येति न्यासे, अध्यायन्याये नि निपातनमस्येति वृत्तिकारेण
दर्शितम् । धारयतीति धारयः । 'अनुपसर्गांल्लिप्पिन्दि'त्यादिना शे शपि
गुणायौ । वसु धारतीति वसुन्धरा । 'सज्ञाया भृतृवृजौ'ति खचि 'खचि हृ-
स्वश्चे'ति ह्रस्वत्वे सुमागमः । धारा । धारा प्रपातनइति भिदादिपाठादङि
गुणो दीर्घत्वं च । द्रवद्रव्यनिपातन धारेति न्यासे खङ्गधारादाबुपमानात्
प्रयोगः । धर्मः । 'अर्निस्तुद्रुसृष्टृभायाश्चदियत्तिभ्योमचि'ति मन् । धर्मं चरति
धार्मिकः । 'धर्मं चरती'ति द्वितीयान्तात् चरतीत्यर्थे ठक् । तत्र 'अधर्मा-
च्चेति वक्तव्य'मित्युक्तत्वात् आधर्मिकेऽपि । धर्मण प्राप्य, धर्म्यम् । 'नौवयो-
धर्मे'ति तृतीयान्तात् प्राप्यर्थे यत्, धर्मादनपेतमपि धर्म्यम् । 'धर्मपथ्य-
र्थे'ति यत् । कल्याणो धर्मा ऽस्येति कल्याणधर्मा । 'धर्मादनिच् केव-
लादि'ति धर्मान्तात् बहुव्रीहेरिति । अत्र केवलादिति बहुव्रीह्यादिप्तस्य
पूर्वपदस्य विशेषणत्वेन पूर्वपदीभवतः केवलादन्यनिरपेक्षात्परो यो धर्म-
शब्दस्तदन्तात् बहुव्रीहेरिति सूत्रार्थः । तेन परमस्वधर्मोऽस्य परमस्वध-
र्म इति त्रिपदे बहुव्रीहाविति न भवति । अत्रान्यपदापेक्षयैव स्वशब्दः
पूर्वपदं भवति । 'सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानमि'ति स्वशब्दस्य पूर्वनिपातो
न भवति आहिताग्न्यादेराकृतिगणत्वात् । यदा स्वं धर्मः स्वधर्मः । परमः
स्वधर्मोऽस्येति बहुव्रीहिस्तदा यद्यपि पूर्वपदं केवलं भवति तथापि ततः
परो न धर्मशब्द इति समासान्ताभावः । निवृत्तधर्मा हीत्यत्र निवृत्ति-
शब्दो बहुव्रीहेः पूर्वपदं भवन्नान्यमपेक्षतइति केवलादस्मात् परो धर्म-

द्वै स्वप्ने ॥

धै नृत्तौ ॥

धै चितायाम् ॥ द्रायति । धायति । धायति । इत्यादि
गतायतिवत् । निद्रालुः । 'सृष्टिह्री'त्यालुचि द्रा कुत्साया गता-
वित्यदादिकस्य ग्रहणमिति वृत्तौ । निद्रा । 'आतश्चोपसर्ग'इत्यङ् ।
अनिद्रो निद्रावान् भवति, निद्रायते । 'लोहितादिडाज्भ्यः क्य-
पि'ति लोहितादेराकृतिगणत्वादस्मात् रयर्थे भवत्यर्थे वा क्यप् ।
'वा क्यप्' इति पक्षे तङ्, निद्राशब्दे वृत्तिविषये तद्वृत्ति वर्तते इति
न्यासकैयटपदमञ्जर्यादिषु । निद्रातीति निद्रः । 'आतश्चोपसर्ग' इति
कर्तरि कः, अस्माद्वा, उक्त चैतत् द्रा कुत्साया गतावित्यत्र गणे ।
निद्राणः । अकर्मकत्वात् कर्तरि निष्ठा, 'सयोगादे'रिति निष्ठानत्वम् ।
निद्रित इति तारकादेराकृतिगणत्वादिनच् । सुष्ठु ध्यायतीति ध्यायतेः
क्लिप्प्रसारणयोः 'संप्रसारणाच्चे'ति परपूर्वत्वे 'हल'इति दीर्घः । सुधीः ।
सुधियावित्यादौ 'एरनेकाच' इति यणो 'न भूसुधियो'रिति निषेधात्
'अचि श्नुधात्वि'ति इयङ् । ध्यातः । 'सयोगादे'रिति निष्ठानत्वं 'न
ध्यात्ये'ति निषिध्यते । धीवा, 'ध्यायोः संप्रसारण चे'ति क्विनिपि संप्रसा-
रणं पूर्वत्व दीर्घत्व, स्त्रियां 'अनो र चे'ति ङीप् । धीवरी ॥ ८८२ ॥

रै शब्दे ॥ रायति । ररौ । रातेत्यादि पूर्ववत् । कीति रायति
इति कीरः । 'सुपि स्य'इति अत्र सुपीति योगविभागात्कः । एवमीदृश
अन्येपि निर्वाह्याः । रा दानइत्यदादौ ॥ ८८३ ॥

स्त्यै ष्ट्यै शब्दसघातयोः ॥ एको दन्त्यादिः । परो मूर्धन्यादिः ।
पोपदेशलक्षणपर्युदासमक एव गृह्यते उभयोः पाठवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । तत्रा-
र्थयोर्थयासम्य न भवति पृथग् निर्देशात् । स्त्यायति । तस्त्यावित्यादि,
लैवत् । पोपदेशस्यापि 'धात्वादेः यः स' इदमेव रूपम् । प्रयोजनं तु
तिष्ठामिनि । अतिप्रपदित्यादावादेशसकारत्वात् षत्वम् । यत्तु मैत्रेयस-
म्मताकारकाश्रयपादिभिरुक्तं पुनः पाठफलं 'धात्वादेः यः स' इति सत्त्वा-
भाव इति तत् अज्दन्त्यपराः सादयः पोपदेश इति लक्षणस्याव्याप्ति-

प्रज्ञादुपेत्यम् । पाठे षोपदेशानां प्रयोगे सादित्वादज्ञन्त्यपरत्वं हि लक्षणं, व्यापकेन च नाम लक्षणेन भवितव्यम् । प्रस्तीतः । प्रस्तीतवान् । प्रस्तीमवान् । 'स्त्यः प्रपूर्वस्येति निष्ठायाः सप्रसारणे परपूर्वत्वदीर्घत्वयो-
'प्रस्त्योन्त्यतरम्यामि'ति प्रोपसृष्टादस्मात्पराया निष्ठायास्तकारस्य पक्षे मकारः । मकाराभावे 'सयोगादेरिति निष्ठानत्वस्य 'स्त्य' इति सप्रसारणे पूर्वचासिद्धत्वात् कृते च तस्मिन् यणवत्त्वाकारान्तत्वयोरभावादप्रसङ्गः । प्रस्त्य इति लघु वक्तव्ये 'स्त्यः प्रपूर्वस्येति वचनं प्रशब्दो यस्माद्वातूपसर्ग-
समुदायात्पूर्वं इत्याशयणार्थम् । तेन प्रसस्तीत इत्यादावन्योपसर्गव्यवधानेऽपि संप्रसारणं भवति । मत्व तु 'प्रस्त्य इति निर्देशाद्भवहिते न भवति । स्त्या-
नः, सस्त्यान इत्यादौ प्रस्त्याभावान्न संप्रसारणं, नापि मत्व, संप्रसारणविधौ षोपदेशोप्ययं स्त्यायो गृह्यत इति वृत्त्यादौ, तेन तस्यापि निष्ठायामुक्ता-
न्येवोदाहरणानि द्रष्टव्यानि । ये ऽस्य सत्व नेच्छन्ति तेषां स्त्यारूपमा-
पवयोर्दुयोर्यह इति वृत्त्यादिमहायन्यविरोधश्च । न च स्त्यस्य प्रकृतिवद-
नुकरणमिति स्त्यारूपत्व यतस्तैः प्रकृतावेव सत्व नाभ्युपगम्यते । स्त्या-
यति सहन्यने ऽस्या गभं इति स्त्री । सस्त्याने स्त्यायतेर्द्ध्विति द्वटि
डित्वाटिलोपे वलि लोपे च टित्वान्डीप् । अज्ञादौ 'स्त्रिया' इतीयाङि
स्त्रियावित्यादि । अमशसोस्तु 'वाम्शसो'रिति इयङ् विकल्पनात् स्त्रीम् ।
स्त्रियम् । स्त्रियः स्त्रीगिति प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घा भवति । 'नेयङुवङि'-
त्यत्र अस्त्रीति निषेधादियङ्स्यानत्वेषि नदीत्वात् स्त्रियै स्त्रियामित्यत्र
'आण् नद्या' इति द्विचनस्याडागमो 'डेरामि'ति डेराम् भवति । तथा
स्त्रीणामित्यत्र 'ह्रस्वनदी'ति नुङ् भवति । हे स्त्रि इत्यत्र 'अम्बार्थनद्यो'रिति
ह्रस्वो भवति । स्त्रियाः सर्वान्धि स्त्रैणम् । 'स्त्रीपुमाभ्यां नञ्ङुजौ भव-
नात्' । आभ्यां यथासंख्यं प्राग्भवार्येष्वर्थेषु तत्तदर्थानुकूलसमर्थविभ-
क्तिभ्यां नञ्ङुजाविति नञ् । स्त्रीत्वम्, स्त्रीता । 'आ च त्वादि'ति चका-
रेण त्वतलोरभ्यनुज्ञानात् त्वतलौ । स्त्रीवन्मा भूमेति भाष्यकारप्रयोगादुति-
स्साधुः । 'स्त्री पुंवच्चे'त्यादिनिर्देशस्य प्रयोगापेक्षत्वाद्वा । अत्र विषये
बाधकान्येव निपातनानीति नञ्ङुजौ बाध्येते । यथा सर्वनामेत्यत्र गत्वम् ।

परस्त्रिया अपत्य, पारशवम् । परस्त्री परशु चेति शिवादिपाठादपत्ये परशुभावरच । पारस्त्रैण्यम् । 'कल्याण्यादीनामिनङि'ति ठकि एयादे-
शान्त्यस्येनङ् । अनुशतिकादित्वादुभयपददृष्टिः, कुस्त्रिया भावः कर्म व
कौस्त्रम् । दुवादित्वादण् । एव दौस्त्रम् । स्त्रीतरा, स्त्रितरा । 'नद्याः
शेदस्ये'ति ह्रस्वो वा । सूत्रार्थश्च ज्वलत्यादौ द्रष्टव्यः^१ । स्तूपः ।
उच्छ्रायः । 'स्त्यः संप्रसारणमुच्चे'ति पप्रत्ययः, प्रसारणपूर्वत्वे तस्य चेकारस्य
उकारो दीर्घः । ऊच्चैत्येव वक्तव्ये दीर्घविधानं ह्रस्वस्यापि श्रवणार्थं, तेन
स्तूप इत्यपि भवति ॥ ८९५ ॥

खै खदने ॥ खदन स्यैर्यै हिसा च । खायति । चखौ । खाते-
त्यादि ॥ ८९६ ॥

क्षै क्षै पै क्षये ॥ क्षायति । चक्षौ । क्षातेत्यादि । क्षामः । क्षाम-
वान् । 'क्षायो म' इति निष्ठातो म । क्षौ क्षपयति । अय मिदिति
घटादौ ध्वनतावुक्तम् । एवं जायति, जजौ, जाता । सायति । ससौ ।
साता । 'घुमास्येत्य'त्र सायहणेन स्यतेर्ग्रहणं नास्येति आशीर्लिङि एत्वा-
भावात्सायादिति भवति । अत एव सासायते सायतइत्यादौ 'घुमा-
स्येति' ईत्व न भवति । तथा च तत्र न्यासे । गामादाग्रहणेष्वविशेष-
मुक्त्वा पो अन्तर्कर्मणीत्ययमेवोपात्तः । तथा च तन्त्रान्तरे । पास्यति
जास्यति सास्यतीति स्पष्टं पो अन्तर्कर्मणीत्ययमेव निर्दिश्यते । 'विभाषा
घ्रायेद्माह्वम' इति सिचो लुग्विधावपि श्यन्विकरणाभ्यां साहचर्यात्स्य-
तिरेव गृह्यते इत्यस्मान्मिचि सति च असार्षादित्येव भवति । सिषा-
सति । आदेशसकारत्वात्पत्वम् । मापयति । असौपत् । 'शाब्दासे'ति
युग्विधावपि श्यन्विकरणाभ्यां साहचर्यात् स्यतिरेव गृह्यते इति अस्य
पुगेव भवति । केचिदमुं दन्त्यादि पठन्ति । तत् पेपदेशलक्षणविरोधा
दुपेत्यम् ॥ ८९९ ॥

कै गै शब्दे ॥ इह शब्दः शब्दविशेषः । उक्तं ह्येवं स्वामिना ।

कायति । चकौ । काता । काकः । इण्नाकेति कन् । गायति । जगौ ।
गातेत्यादि । 'घुमास्ये'त्यत्र गामादायहणेष्वविशेष इति लातणिकगारु-
पस्य गायतेरपि ग्रहणात् आशीर्लिङि एत्व गेयादिति भवति । गाति-
स्ये'त्यत्र गापोर्यहणे इण्यद्व्योर्ग्रहणमिति वृत्तावुक्तत्वात् अस्मात्सिचो
लुगभावात् अगासीदिति भवति । गायकः । गायनः । 'गस्यक्त्रि'ति
'एयुट चे'ति कर्त्तरि यक्न्, एयुटो णित्वा'दातो युगि'ति युक्, टित्वात्
स्त्रिया गायनी । वा सरूपेण खल्वृचौ, गायकः, गातेति भवति । उद्गा-
ता । तस्य भावकर्मणी औद्गात्रम् । उद्गात्रादिभ्योत्रि'ति अत्र । साम गाय
तीति, समागः । 'गापोष्टगि' ति कर्मण्युपपदे टक् । टित्वात् स्त्रिया
सामगी । गीत्वा । गीतम् । 'घुमास्ये'ति ईत्वम् । प्रगीतिः । 'स्यागापा-
पचो भाव' इति स्त्रिया भावे क्तिन् । 'स्त्रिया क्तिन्' त्वेव सिद्धे पुनर्ब-
चनमातश्चोपमर्ग'इति अडो बाधनार्थम् । गाया गद्यविशेषः । 'उपिक्कु
पिगाद्यि'यस्यचि' ति स्यन् । अत्रगद्यः प्रातस्सवनं सोमो वा । 'निशीथगो-
पीथावगथा' इत्यवपूर्वादस्मात्पनि धातोर्ह्रस्वत्व च निपात्यते । उद्गीथः
'गश्चोदी'ति उदुपसृष्टात्कथन् । 'घुमास्ये' तीत्वम् ॥ ८०१ ॥

शै श्रै पाके ॥ इह पाको विक्रितिः । तथा शृत पाक'इत्यत्र वृत्त्या-
दावुक्तम् । शायति । शशौ । शाता । श्रायति । शशौ, श्रातेत्यादि । गाय-
तिवत् । श्रपयतीति घटादित्वात्पाके मित्वम् । अन्यत्र श्रापयति ।
स्वेदयतीत्यर्थः । शृतं क्षीरम् । 'शृत पाक'इति क्ते श्रभावो निपात्यते ।
तत्र पाको विक्रितिः, तत्फलको व्यापारश्च । तत्र तत्फलके व्यापारे
णिवमन्तरेण वृत्तेरभावात् श्रपेरप्ययं श्रभाव इति शृतं क्षीरं देवदत्तेनेति
भवति । तथा च तत्र वार्तिकं, श्राश्रयोः श्रभावो निपात्यते इति । यत्तु
श्रपेर्णचि अपिशब्दः, न तस्यायमादेशः, पाक इति वचनात्, अत्र पाच-
नार्थः पाकस्तु गुणीभूतः, अयं श्रभावो व्यवस्थितविभाषाविज्ञानात् क्षीर-
हविर्पोर्नित्य भवति । अन्यत्र तु न भवति । श्राणा यवागूः । श्रपिता
यवागूरिति । 'संयोगादे'रिति निष्ठानत्वम् । श्राणास्मै नियमेन दीयते
श्राणिकः । 'श्राणामासौदनाट्टिठचि'ति नियमेन दीयमानोपाधिकार्यात्त-

दस्मै दीयने चतुर्थ्यर्थे टिठन् । टित्वात् स्त्रियां आणिकी । आतीत्या-
दादिकस्य, आपयतीति चौरादिकस्य ॥ ६०३ ॥

पै ओवै शोषणे ॥ पायति । पयौ । 'पाप्ते' त्यत्र नास्य ग्रहणम् । पारु-
पस्य लाक्षणिक्त्वात् । एज् नोपदेशमः मर्यादशित्ति पारूपस्य भेदाभावात् ।
पयौ । पाता । पास्यति । पायतु । अपायत् । पायेत्, आशिषि पायात् ।
'धुमास्ये'तीन्व तद्विशेष 'एलिङी'त्येत्वं चास्य न भवति, पारूपस्य लाक्षणि-
क्त्वात् । अत एव 'गातिस्ये'ति सिञ्जुन्विधावपि अस्याग्रहणात् अपासी-
दिति भवति । पिपासति । पापयते । 'ई हल्यघो'रित्यभ्यस्ताश्रयमीत्वं
डित्सार्धधातुक्रविषयमिनीह भवति । पापाति । पापेति । ईटि गुणः,
पापीतः । 'ई हल्यघो'रिति डित्सार्धधातुक्रपरत्वादीत्वम् । पापति ।
'शनाभ्यस्तयो'रित्यालोपः । लङि अपापेत् । अपापात्, अपापीतामित्यादि ।
'सिञ्जभ्यस्ते'ति नित्य जुस्भावे अपापुः । 'लङः शाकटयनस्यैवे'ति विकल्पो
नेति धयतावुक्तम् । आशिषि लिङि आर्द्धधातुक्त्वात् 'ई हल्यघो'रिती-
त्वाभावात् पापायादिति भवति । 'धुमास्ये'ति ईत्वमस्य नेति प्रागेवोक्तं,
पाययति । 'शाच्छासाह्वाव्यावेपा युक्' इति णौ युगागमः । तत्र लाक्षणि-
कपारूपस्य ग्रहणमिति वृत्तिन्यासपदमञ्जर्धादिषु । पीत्वा । पानं सरः ।
पा इति पानार्थे इहाये । रत्तणार्थादादौ । वायति । वयौ । इत्यादि,
पायतिवत् । णौ वाययति शिरः, आत्वे युक् । 'वो विधूने जुगि'ति अत्र
वा गतिगन्धनयोश्चित्यादादिकस्यैव ग्रहणं तस्यैव विधूनने वृत्तिसम्भा-
दिति व्याख्यातारः । 'शाच्छा'सेति युक्तु तत्रैव वा इति निर्देशात् वेज्
तन्तुसन्तानइत्यग्रे पठिष्यमाणस्यैव न त्वस्य प्रसजति, वानं तु फलम्,
ओदित्वाचम् ॥ ६०५ ॥

ष्टै वेष्टने ॥ स्तायति । तस्तौ । स्ताता । स्तापयति । अतिष्टपत्
इत्यादि । अयं च पाठो मैत्रेयस्य । भट्टभास्कारोप्यत्रैवानुकूल, यदाह
स्तायूनां पतये नम इत्यत्र स्तेना वस्वादीनपहरन्ति । स्तायवः । ष्टै वेष्टन-
इत्यस्माद्वाहुलकादुच्यते । स्वाम्यादयस्तु ष्णै वेष्टनइति पठन्ति, तथा च
निरुक्तम् । उष्णीषं स्तायतेर्वाचरकः । एवमुष्णीषं शिरोवेष्टनम् । स्तायतेः

शोभार्थस्य उभयत्रापि सभवादिति । अत एव व्याख्यानात् ष्यै शोभन-
इत्यपि भूवादौ द्रष्टव्यः । प्रयुज्यते च भारते ।

पाञ्चाल्याः पदुपत्रात्याः स्थायन्ति जघन घनम् ।

याः स्त्रियो दृष्टवन्त्यस्ताः पुम्भावं मनसा ययुः ॥

इति । क्रियानिघण्टौ च स्तायति स्थायत्याप्प्रवतइति, दैवे च
स्थातीति । शौचे स्थायेदिति चेच्छन्ति के च नेति ॥ ८०६ ॥

दैप् शोधने ॥ पकारो ऽदाञ्चिति विशेषणार्थः । अयमेव लात्तणि-
कानामपि घुसञ्जकाना यङ्गणे लिङ्गम् । दायतीत्यादि पायतिवत् ।
णिचि दापयति अदीदपत्, दाण् दाने । देङ् रत्तणइतीहैवाये । दाप्
लवनइत्यदादौ । डुदाञ् दानइति जुहोत्यादौ । दो अवखण्डने दीङ्
रत्तणइति दिवादौ ॥ ८०७ ॥

पा पाने ॥ पिबति । 'पाघ्रे'त्यादिना पिबादेशः । पिबेर्गुणप्रति-
षेध इति कात्यायनः । वर्तमानस्तु 'लोपः पिबते'रिति लिङ्गाद्गुणो नेति ।
वृत्तौ तु अकारान्तायमादेश आद्युदात्त इति, अतो लघूपधत्वाभावाच्च
गुणप्रसङ्गः । पपौ । पाता । पास्यति । पिबतु । अपिबत् । पिबेत् ।
आशिषि पेयात् । 'एलिङी'त्येत्वम् । अपात् । 'गातिस्ये'ति सिचो लुक् ।
पिपासति । पेपीयते । 'घुमास्ये'त्यादिनेत्वे द्वित्वम् । पापेति । पापाति ।
पापीतः । 'ई हल्यघो'रितीत्वम् । पापति । 'श्नाभ्यस्तयो'रित्याल्लोपः ।
पापितेत्यादाविटि 'आतो लोप इटि चे'त्याल्लोपः । लङि 'मिजभ्यन्ते'ति
नित्य जुसि अपापुः । 'लङः शाकटायनस्यैवे'ति विकल्पो नेति धयतावु-
क्तम् । लिङि पापायात् । अनार्धधातुकत्वात् 'घुमास्येती'त्वं न भवति ।
आशिषि आर्द्धधातुकत्वादीत्वापवादः, 'एलिङी'त्येत्वम्, पापेयात्, लुङि
'गातिस्ये'ति सिचो लुकि अपापात् । अपापु । 'आत' इति जुस् । पाययति ।
पाययते । 'न पादमी'ति निगरणे परस्मैपदनिषेधः । 'शाच्छासे'त्यादिना
युक् । षोश्चङि 'लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्ये'त्युपधाया आकारस्य लोपः ।
युक्क्यमुपधा भवति । अल्लोपस्य षौ कृतं स्यानिवदिति स्यानिवत्त्वात्
पायशब्दस्य द्विवचनमीच्चाभ्यासस्येतीकारे अपीष्यत् । तत्र पिबतेरिति

निर्देशाद् यङ्लुकि अपापदिति भवति । उत्पिबः । 'पाघ्राध्माधेट्टृश
 श' इति कर्तरि शप्रत्यये पिबादेशः । सुरापः । शीधुपः । 'गापोष्टगि'ति
 कर्मण्युपपदे टक्, टित्वात् स्त्रिया सुरापी । अत्र 'पिबतेः सुराशीध्वा'रि
 त्युपपदनियमादुपपदान्तरे 'आतोऽनुपसर्गं क' इति को भवतीति विशेषः
 स्त्रियां डीवभावः, क्षीरपा ब्राह्मणीति । द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः । 'सुपि
 स्य' इत्यत्र सुपीति योगविभागात्तत्र चात इत्यनुवर्तनादाकारान्तादस्मा-
 त्सुप्युपपदे कप्रत्ययः । एव कच्छपादयः । प्रपिबन्त्यस्यामिति प्रपा । घञ्
 कविधानमिति कः । प्रपीतिः । 'स्यागापापचो भाव'इति भावे क्तिन् ।
 'स्त्रया क्तिनि त्येव सिद्धे वचन'मातश्चोपसर्ग'इत्यङ्बाधनार्थम् । पीत्वा ।
 'धुमास्ये'तीत्वम् । प्रपाय । 'न ल्यपी तीत्वनिषेधः । निपीयेति पीडो
 रूपम् । पीत्वास्तिरकः । 'मयूरव्यसकादयश्चे'ति तत्पुरुषः । 'समासे
 नञ्पूर्व'इति तत्रो ल्यबादेशोऽत एव मयूरव्यशकादिपाठाच्च भवति ।
 यद्वा अनञिति नञ्सदृशमव्यय परिगृह्यते, तेन नञोऽन्येनाव्ययेन क्तान्तस्य
 समासेऽयं ल्यव्विधिरिति इह नैव प्रसजति । पीतिः । पीयतेऽनेनेति पान
 क्षीरस्य पान क्षीरपानं, क्षीरपाणमिति वा । वा भावकरणयो रिति पूर्वप-
 दस्यान्विमितादुत्तरस्य भावकरणविषयपाननकारस्य णत्वविकल्पः, क्षी-
 पान येषां ते क्षीरपाणा उशीनरा इत्यत्र 'पान देश'इति पूर्वपद-
 स्यान्विमितादुत्तरस्य भावकरणविषयपाननकारस्य देशेऽभिधेये नित्य
 णत्वम् । पयः पान भुजङ्गानामित्यत्र 'कर्मणि च येन संस्पर्शात् कर्तुः शरी-
 रसुखं' येन कर्मणा सस्पृश्यमानस्य कर्तुः शरीरस्य सुखं भवति तस्मिन्कर्म-
 ण्युपपदे धातोर्भावे ल्युडिति ल्युट् । एवं चोपपदसमासः सिद्धः । 'ल्युट्
 चे'ति ल्युटि तु षष्ठीसमासस्य 'कर्मणि चे'ति निषेधः स्यात् । समाना
 पीतिः । सपीतिः । विशेषणममासः, 'समानस्य कृन्दसी'ति समानस्येति
 योगविभागात्समानस्य सभावः । कथं पीता गाव इति, यतः प्रत्यवसाना-
 र्थत्वात्कर्तरि निष्ठया न भाव्यम् । उच्यते । पान पीतमेवामस्तीत्यर्थं
 व्यञ्जन्तीयं द्रष्टव्यः । पायुः । 'कृवापाजी'त्युण् । सोमपीथः सोमपानम् ।
 'पावानुदिवदितिविभ्यः क्यञि'ति क्यन् । पेरुः । आदित्यः । 'वापोरुच्चे'ति

रूपस्य इकारश्चान्तादेशः । तस्य च गुणः । पापम् । 'पानीयाभ्यः प' इति पः । पाथः । 'पातेरमुवि'त्यसुन्प्रत्ययः युगागमश्च । पयः । 'पिबतेरी' च्चे त्यसुनि इकारान्तादेशे गुणायादेशौ । पय इवाचरति । पयायते पय-स्यते । 'कर्तुः क्यङि'ति क्यङ् । 'आजसोप्परसे' नित्य पयसस्तु विभाषया इति पक्षे सलोपः । 'नः क्य'इति नान्तस्यैव पदसञ्ज्ञेति नियमात्ससञ्ज-पोहरि'ति न भवति । पयसो विकारः पयस्यः । गोपयसोर्यदि'ति यत् । पाकः । अर्भकः । 'इण्भीपाके'ति कन् । पात्रम् । घृत् । पित्वात् स्त्रियां डीप् पात्री । पञ्चाना पात्राणा समाहारः पञ्चपात्रम्, 'तद्वितार्थे'ति समाहारे द्विगुः, 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रिया भाष्यत'इति डीपि प्राप्ते 'पात्रादिभ्यः प्रतिषेध' इति निषिध्यते । 'स नपुसक'मिति समा-हारद्विगुद्वन्द्वनिबन्धन नपुसकत्वमेव भवति । पात्रस्य वापः क्षेत्र पात्रिकम्, उष्यतेस्मिन्निति वापः । 'पात्रात् षट्त्रि'ति षष्ठ्यन्ताद्वापेर्घं षट् । पित्वात् डीपि पात्रिकी क्षेत्रभक्तिरिति । पात्र परिमाणविशेषः । पात्र संभवति अवहरति पचति वा पात्रीणा स्याली । 'आटकाचितपात्रात् खान्यतरस्या'मिति द्वितीयान्तात्संभवत्यादिष्वर्थेषु खः । खाभावे प्राग्व-तीये षट्नि पात्रिकी । आधरप्रमाणादधेयप्रमाणात्निरिक संभवः । उप-सहरणमभ्यवहारः । विक्लेदनं पाकः । द्वे पात्रे संभवति अवहरति पचति वा द्विपात्रिकी, द्विपात्रीणा । 'द्विगोष्ठश्चे'ति आटकाचितपात्रान्तात् द्विगोद्वितीयान्तात् संभवत्यादिष्वर्थेषु ठक् । चकारात् खश्च । अत्रान्य-तरस्याग्रहणानुवृत्तेः प्राग्वतीयषट्त्रिपि भवति । तस्य चार्होयप्रत्ययत्वा द-ध्यर्द्धपूर्वं'ति लुकि 'द्विगो'रिति डीपि द्विपात्री स्यालीत्यपि भवति । ठन्खजोस्तु विधानसामर्थ्याच्च लुक् । पात्रमर्हति पात्रियः । पात्र्यः । 'पात्राद् घञ्चे'ति द्वितीयान्तादर्हतीत्यर्थं घयतौ । इह पात्र भाजनं परिमाणं च । सर्वपात्र व्याप्नोति सर्वपात्रीणः सूपः । 'तत्सर्वादे'रिति खः । पात्रेसमितः पात्रेबहुलः । 'पात्रेसमितादयश्चे'ति क्षेपे सप्तमीत-त्पुरुषः । अत्रैव पाठादलुक् । अत्रावधारणेन क्षेपः । पात्रएव समितो न पुनः क्व चित्कार्यं । अयस्पात्रम् । 'अतः कृकमिकंसे'त्यादिना अकारा

त्परस्य विसर्जनीयस्य पात्रे परतः सत्वम् । अत्र करोतिधातुः कमिश्च ।
अन्यानि प्रातिपदिकानि । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया अयस्याचीत्यत्रापि
भवति । पायतीति शोषणे गतम् ॥ ६०८ ॥

घ्रा गन्धोपादाने ॥ जिघ्रति । 'पात्रे'त्यादिना जिघ्रादेशः शिति ।
जघ्रौ । जघ्रिथ । घ्रातेत्यादि । आशीर्लिङि घ्रायात्, । घ्रेयात्, 'वान्य-
स्ये'ति एत्वविकल्पः । लुङि अघ्रात् अघ्रासीत्, 'विभाषा घ्राधेङि'ति
सिचो वा लुक् परस्मैपदे । आत्मनेपदे अघ्रायि, अघ्रासाताम् सुमनसौ
इति नित्य सिचः अवणमेव । जिघ्रासति । जेघ्रीयते । 'ई घ्राध्मोर'रिति
यङीत्वम् । जाघ्रेति । जाघ्राति । जाघ्रीतः । 'ई हल्यघो'रितीत्वम् । घ्रापयति ।
अजिघ्रपत् । अजिघ्रिपत् । 'जिघ्रतेर्व'ति चङ् परे णाबुपधाया वेत्वम् ।
शितपा निर्देशात् यङ्लुकि अजाघ्रपदित्येव । आ जिघ्रतीत्याजिघ्रः ।
'पात्रे'त्यादिना उपसृष्टादस्माच्चे शपि जिघ्रादेश, व्याजिघ्रतीति व्याघ्रः ।
'जिघ्रतेः सज्ञाया'मिति कः । 'गतिकारकोपपदानां कृद्विः सह समासव-
चन प्राक् सुबुत्पत्ते'रिति सुबुत्पत्तेः प्रागेव समासस्तेन स्त्रियां 'जातेरस्त्री-
विषयादि'ति अदन्तलक्षणो ङीष् भवति व्याघ्रीति । सुबन्तेन समासे
पूर्वं स्त्रियां टापि अदन्तत्वाभावात् ङीष् न स्यात् । व्याघ्रस्य विकारश्चर्म
वैयाघ्रम् । 'प्राणिरजतादिभ्योजि'ति प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च
षष्ठ्यन्तेभ्यो यथायोगं विकारावयवयोरर्थयोरजि 'न खाभ्यामि'ति वृद्धि-
निषेधे ऐजागमश्च । वैयाघ्रेण परिवृते रथो वैयाघ्र । 'द्वैपवैयाघ्रादजि'ति
द्वैपवैयाघ्रशब्दाभ्या परिवृते रथ इति विषये ऽञ् । प्राग्दीव्यतीयस्याणो-
पवादः । घ्राणम् । घ्रातम्, 'नुदविदे'ति निष्ठानत्वविकल्पः ॥ ६०९ ॥

ध्मा शब्दाग्निसयोगयोः ॥ इहाग्निसयोगो मुखवायुना ऽग्निसं-
योगः । धमति । 'पात्रे'त्यादिना धमादेशः शिति । दध्मौ, ध्मातेत्यादि ।
लिङि धमेत् । आशिषि ध्मायात् । धमेयात् । 'वान्यस्ये'त्येत्वविकल्पः ।
दिध्मासति । देध्मीयते । 'ई घ्राध्मोर'रिति यङीत्वे, दाध्मेति । 'ई हल्य-
घो'रितीत्वम् । दाध्मति । 'आभ्यस्तयो'रित्यालोपः । ध्मापयति । अदि-
ध्मपत् । उद्धुम । 'पात्राध्मे'त्युपसृष्टाच्चे शपि धमादेशः । नासिकंधमः ।

'नासिकाम्तनयो'रिति नासिकाया कर्मण्युपपदे ऽस्मात् खश् । नाडि-
धमः । 'नाडीमुष्मोश्चे'ति नाडीमुष्मोः कर्मणोरुपपदयोः खश्प्रत्ययः ।
तस्य मुष्टिशब्दस्यापूर्वनिपाताल्लक्षणव्यभिच र त् निङ्गात् ध्माधेटोरुपप-
दयोश्च यथासम्य न भवति । पाणयोः ध्मायन्ते येषु पाणिधमाः पन्थानः ।
'उपपश्येरमदपाणिधमाश्चे'ति खशि निपात्यते । ध्मात्वा ध्मात्म् ॥ ८१० ॥

गृा गतिनिवृत्तौ ॥ तिष्ठति । 'पात्रे'ति तिष्ठदेशः । तस्यौ । अधि-
तष्ठौ । 'स्यादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्ये'ति पत्वम् । स्याता । स्याम्यति ।
अधिष्ठाता । अधिष्ठास्यति । 'उपसर्गादित्यादिना पत्वम् । तिष्ठतु ।
तिष्ठेत् । आशिषि स्येयात् । 'एलिङी'त्येत्व 'वा ऋस्ये'ति विकल्पस्तु न भव-
ति । अन्यस्येति घुमास्यादिपर्युदासात् । अस्यात् । 'गातिस्ये'ति सिचो
लुक् । अध्यष्ठात् । 'प्राक् सितादङ्ग्रवायेपी'ति पत्वम् । तिष्ठामति ।
तेष्टीयते । 'घुमास्ये'तीत्वे द्वित्वम्, तास्याति । तास्यीतः । 'ईहल्यघे'रिती-
त्वम् । तास्यति । 'आभ्यस्तयो'रित्यालोपः । स्यापयति । अनिष्ठितम् ।
'तिष्ठतेरिदि'ति च ष् परे णाउपधाया इत्व शितपा निर्देशात् अनास्यपदि-
त्यत्र न भवति । सतिष्ठते । सतस्ये । सस्याता । सस्याम्यते । सनिष्ठताम् ।
समतिष्ठत । सतिष्ठेत । सस्यासीष्ट । 'समत्रप्रविभ्यस्य'इति तङ् । समस्यित,
समस्यिषातामित्यादि । 'स्याध्वोरिच्चे'ति सिचः क्तिव तिष्ठतेश्चेकारः ।
'ह्रस्वादङ्गादि'ति सिञ्जलुक् सन्निपातपरिभाषाया नेति धयतावुक्, सिचः
क्तिवात्प्रत्ययलक्षणेन गुणो न भवति । एवमवतिष्ठते प्रतिष्ठतइत्यादि ।
नित्यं शब्दमातिष्ठते । प्रतिजानातीत्यर्थः । 'आङः स्यः प्रतिजाने'इति
तङ् । अर्थस्वभावादयमाङ्पूर्वः । तिष्ठते कन्या क्वात्रेभ्यः । स्यानेन
स्वाभिप्राय प्रकाशयतीत्यर्थः, प्रकाशनमर्थं ऽनेकार्थत्वाद्वातूनामिति
कश्चित् । 'श्लाघहुडि'त्यत्र पदमञ्जर्या तु म्यानेन स्वाभिप्रायप्रकाश-
नमर्थ इत्युक्तम् । 'श्लाघहुडि'ति ज्ञीप्स्यमानस्य सप्रदानत्वम् । धर्मा-
ध्यक्षे तिष्ठते । तत्र निर्णयमपेक्षमाणस्तिष्ठतीत्यर्थः । 'प्रकाशनस्येयाख्य-
योश्चे'ति तङ् । प्रकाशनं स्वाभिप्रायाविवरणं, स्येयस्याख्या, स्येया-
ख्या । तिष्ठत्यस्मिन्निति स्येयः । रुढश्चाय विवादपदस्य निर्णेतारि, तिष्ठ-

त्यस्मिन्निति स्येय इत्यत्र प्रकरणादिना विवादपदनिर्णेतुः प्रतीतिः । ननु शब्दे नेत्यात्मनेपदाभावो हरदत्तेनोक्तः । कुटुम्बउत्तिष्ठते तदर्थं घटनइत्यर्थः । उदानूद्वृक्कर्मणीति तद् । ऊर्ध्वकर्मणि आसनादुत्तिष्ठति । अत्र उद ईहायामित्युक्तत्वात् अनूद्वृक्कर्म ॥ ईहया विशेषणादस्माद्धामाच्छतमुत्तिष्ठति इत्यत्र ईहाभावात् तद् न भवति । उत्पद्यतइति ह्यत्रार्थः । ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते । ऐन्द्र्या च्चा गार्हपत्यमभिधत्तइत्यर्थः । 'उपान्मन्त्रकरण'इति तद् । मन्त्रः करण यस्यार्थस्य मन्त्रकरणः । तदर्थोदुपोपसृष्टान् स्यस्तडिति सूत्रार्थः । आदित्यमुपतिष्ठते पूजयतीत्यर्थः । गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते । सश्लिष्यनीत्यर्थः । राजक्रीयानुपतिष्ठते मित्रीकरोतीत्यर्थः । अय पन्याः क्षुप्नुमुपतिष्ठते । प्राप्नोतीत्यर्थः । 'उपाद्वेवपूजासगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वक्तव्यमिति तद् । आज्ञा प्रलिसुर्विनयादुपास्युरित्यत्र भट्टिश्लोके देवपूजादिभ्योन्यार्थ इति तद् न ह्यनः । अर्यो राजानमुपतिष्ठते । उपतिष्ठतीति वा । लिप्सुसर्पतीत्यर्थः, उपोपसृष्टोपमार्थान्तरदृष्ट्या सकर्मकः । 'वा लिप्साया'मिति तद् विकल्पः । यावदुक्तमुपतिष्ठते । वीसायामव्ययीभावः । भोजने भोजनं सनिधत्तइत्यर्थः । अकर्मकाच्चेति'उपोपसृष्टादस्मादकर्मकात् तद् । तिष्ठतीति स्यायी । यहादित्वाणिनिः । समे तिष्ठतीति समस्य । 'सुस्य' इत्यत्र सुपीति योगविभज्य आकारान्तानां कर्तरि कविधानात् प्रत्ययः । अत्र स्य इति वचनं तिष्ठतेरप्याकारान्तत्वात्पूर्वैर्णैव कसिद्वत्त्वात् अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थं भवन्तीति भावे कविधानार्थेतेनामृनामुत्थानमावृथ्यम् । शलभोत्थम् इति भवति । 'उदस्यस्तभ्योः पूर्वस्ये'ति सकारस्य पूर्वसवर्णस्तकारः । श सुख तत्र तिष्ठतीति शंस्यः । 'स्यः कः चे'ति कप्रत्ययः । चकारात् क्विपि सस्याः । 'धुमासंती'त्व भाष्यकारयोगाच्च भवति । ईत्वमवकारादाविति तु न स्थितम् ननु 'सुपि स्य' इत्यत्र योगविभागात्कः सिद्धः, क्विबिति क्विबपि वा रूपेण, तत्र किं 'स्यः कः चे'ति सूत्रेण, उच्यते । 'शमि धातोः संज्ञाय'मित्यत्र धात्वधिकारादेव धातुग्रहणे सिद्धे पुनर्धातुग्रहण बाधकबाध-

र्थमित्युक्तम् । तेन यदा शङ्करा नाम परिव्राजिका तच्छीला चेत्यत्र 'कृजो हेतुताच्छील्ये'ति ठ बाधित्वाञ् भवति, तथा कृजिपावपि बाधित्वात्राप्यच् स्यात्, क तु परत्वादपि बाधेनेति तस्मा भूदित्यारथ्यमेव 'स्यः क चे'ति सूत्रम्, एवमपि किं कृजो विधानेन, यतो वामहरेणायमपि भविष्यति । न । अस्य विधाने यथा कः अच बाधने तथा कृजमपि बाधेत । स्यात्तुः । 'भ्लाजित्य चे'ति तच्छीलादौ कृत्तुः 'धुनास्ये'तीत्य स्या आ इत्याकारप्रश्लेषेणकारान्तस्य विधानान्नेति भाष्ये स्थितम् । अन्ये तु गिदयं तेनेत्वय न प्रसङ्गः । जिष्णुरित्यत्र गुणाभावस्तु 'न धातुनोप-आर्द्धधातुके' 'कृति चे'ति सहितया सूत्रपाठात् कृतवत्त्वस्य गकारस्यापि तत्र निर्देशात् । तथा 'श्रुकः किती'त्यत्रापि चत्वेन गकारस्यापि निर्देशात् भूष्णुरित्यत्रेडभाव इत्याहु । उक्तं च ।

स्तेरित्वाङ् स्य ईकार, किन्डिवेरीत्वशामनात् ।

गुणभावस्त्रिषु स्मार्यः श्युक्रोनिट्त्वं कगोरितोः ॥

इति । स्यायुक् । 'लपपते त्यादिनोक्त्' । स्य'वरः । 'स्ये'ति वरच् । प्रस्यास्यतइति प्रस्यायो । 'प्रे स्य'इति णिनिः । णित्वाद्गुणागमः । गम्यादियु पाठाद्भविष्यति गम्यादय इति भविष्यकालता । म्यित्वा । स्यितम् । उपस्यितो गुरु शिष्यः । उपस्यितो गुरु शिष्येण, 'गम्यर्थे'त्यादिना कर्तृकर्म णोः क्तः । उपपूर्वाय सकर्तृकः । 'द्युतिस्पतिमास्यामि'ति 'धुनास्ये'तीत्वाप-वाद इकारः । प्रस्यायेत्यन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो ल्यप् बाधनइति पूर्वमीत्वं न प्रवर्तते । पश्चात्तु निमित्ताभावात्तस्य प्रसङ्गः । प्रतिष्ठतेस्मि-ति प्रस्यः । घञर्थे कविधानमिति कः । माहकिप्रस्यो नाम उदीच्यग्रामः, तत्र भावो माहकिप्रस्यः । 'प्रस्यात्तरपदपलद्वादिकोपधादणि'ति प्रस्यात्तरपद-लक्षणेण शेषिकः । 'उदीच्यग्रामाज् बहुचोन्तोदान्ता'दिति अचोपवादः । अणचोः स्वरे विशेषः । इन्द्रप्रस्ये भवः ऐन्द्रप्रस्यः । अनुदीच्यग्रामत्वात्प्राग्दी व्यतीयाण् । मालाप्रस्ये भवः मालाप्रस्यकः । 'प्रस्यपुरवहान्ताज्'ति प्रस्या-द्यन्ताद्देशवाचिनः शेषेयं युञ् । छस्यापवादः । प्रतिष्ठत्यये गच्छतीति प्रष्ठः । 'आतश्चापसर्ग' इति कः । 'प्रष्टोयगामिनी'ति षत्वन् । अयगामिनोऽन्यत्र

प्रत्ययः । अत्र केवलस्य स्यान्वोपत्येन सबन्धाभावात्तदन्तविज्ञानम् ।
स्यलम् । 'स्यापती'त्यादिना लः । स्याली । गौरादिपाठात् ॥ ८११ ॥

आ अभ्यासे ॥ मनति । 'पाप्ने'त्यादिना मनादेशः शिति ।
अन्यत्र भ्लैवत् । मन्नावित्यादि । आन्वायः । घञि युक् । आन्वातः ।
आन्वातमनेनान्वाती व्याकरणे । 'इष्टादिभ्यश्चे'ति प्रथमान्तादनेनेत्यर्थे
इतिः, सप्तमीविधाने 'क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपनंत्यानमि'ति कर्मणि
सप्तमी । नीचभावमभ्यस्यतीति निम्बम् । सुपीति योगविभागा'दातो
ऽनुपसर्ग'इति वा कः । नेनीचभाववचनत्वेन मनत्यर्थस्याविशेषणाच्च तं
प्रतीहोपसर्गत्वं, दिने आन्वायतइति द्युम्बम् । घुशब्दे दिनवचनम्, दृश्यते
च धारयेरत्र द्यून् । सुतरामान्वायतइति सुम्बं सुखम् । घञर्थे कः ॥ ८१२ ॥

दाण् दाने ॥ यच्छति । 'पाप्ने'ति यच्छादेशः शिति । अत्रैव दा-
णिति विशेषणार्थो णकारः । प्रणियच्छति । घुत्वा'नेर्ग'देति णत्वम् । ददौ ।
दाता । दास्यति । यच्छतु । अयच्छत् । यच्छेत् । आशिषि देयात् । घुत्वा-
'देर्लिङी'ति एकारः । अदात् । 'गातिस्ये'ति सिचो लुक् । प्रणययच्छत् ।
प्रणयदात् । अङ्गव्यवायेपि नेर्गदादिषु णत्वमिति उक्तम् । दित्सति ।
'सनि मीमे'ति इस्भावः । 'अत्र लोप' इत्यभ्यासस्य लोपः । 'सस्याङ्गु-
धातुक्'इति तत्वम् । देदीयते । 'घुमास्ये'तीत्वे द्विवचनम् । दादेति ।
दादाति । दातः 'श्नाभ्यस्तयो'रित्यालोपे चत्वंम् । 'पूर्वत्रासिद्धमि'ति
वा चत्वंम् । चत्वंविधि प्रतीति चालोपस्य न स्यानिवत्त्वम् । लोटि है
'घ्वसोरेट्टा'वित्यन्त्यस्येकारे अभ्यासलोपे च देहि, दापयति । अदीदपत् ।
दास्या मालां संप्रयच्छते, कामुकः सन् ता तस्यै ददातीत्यर्थः । 'दाणश्च
सा चेच्चतुर्थ्ये'इति समुपसृष्टातृतीयायुक्तादस्मात्तङ्, सा चेतृतीया
चतुर्थ्यर्थे, तृतीया 'अशिष्टव्यवहार' इति । पूर्वसूत्रे सम इति षष्ठ्यन्त-
मित्युक्तं तदेवात्रानुवर्तइति प्रेण व्यवधानेपि तद्वति दास्या मालां
संप्रयच्छते । संप्रादित । 'स्याध्वोरिच्चे'ति सिचः कित्त्वे इत्व च,
'ह्रस्वादङ्गादि'ति सिचो लोपो भलि । दाण इति सानुबन्धकनिर्देशा-
द्वाङ्लुकि नायं तङ्विधिरिति दास्या मालां संप्रददातीति भवति ।

गां प्रयच्छतीति, गोप्रदः । 'प्रे दाज्ञ' इति कर्मण्युपपदे प्रोपसृष्टाद-
स्मादणोपवादः कः । न 'न्वातश्चोपमर्ग' इति कप्रत्ययेन प्रदशब्द कृत्वा
गोशब्देन षष्ठीसमासे गोप्रद इति सिद्धिः किं सूत्रेण । उच्यते । गा
प्रयच्छतीति विवक्षायामणि गोप्रदाय इति स्यात् । यथा प्रादन्येनोपसृ-
ष्टादोसप्रदाय इति स मा भूदिति । गोदः । 'आतोनुपमर्ग' इति अनु-
पसृष्टत्वे कः । तं रत्नदाय जिनमृत्युनोकं रात्रिवरः कान्तिसुतो
ऽध्यातिष्ठदिति भट्टिप्रयोगाय दय दाणित्यस्यापि द्रष्टव्यः । यद्वा
'श्याद्गुधे'त्याकारान्तलक्षणे णे दायशब्द व्युत्पाद्य तेन रत्नस्य दायो
रत्नदाय इति षष्ठीसमासे विधेयः । दाहः । 'दाधेष्टुसिश्दसदो ह'रिति
हः । दानीयो ब्राह्मणः । 'कृत्यल्युटो बहुल'मिति सप्रदानेनीयर् ।
उपदीयतइत्युपदा । आतश्चोपमर्ग' इत्यङ् । देयम् । 'अचो यदि'ति
यति 'ईदृशी'तीत्वे गुणः । दत्त्वा । दत्तः । दत्तवान् इति । 'दो दद्
घो'रिति तकारादौ किति दद्भावः । प्रत्तम् । 'अच उपसर्गात्' इति
अजन्तादुपसर्गात्परस्य दाइत्यस्य योच् तस्य तकारादेशः । 'खरि चे'ति
दकारस्य तकारः । अत्राच इति द्विरावर्त्तने, तत्रैकेनोपमर्गा विशेष्यते
परेण स्थानी निर्देश्यते इत्याकारस्य स्थानित्वलाभः । अन्यथा ऽऽदे-
परस्येति दकारस्यैव तकार स्यात् । अन्ये तूपसर्गात् इति द्वितकारको-
यमादेशो निर्दिश्यतइति अनेकालत्वात्सर्वादेश कुर्वन्ति, तेषां मपो भि'इ-
त्यत्रैकस्तकारोऽनुवर्त्यः । अन्यथाद्विरित्यादावपि सर्वादेशत्वं स्यात् ।
नीतम् । सूतम् । 'दस्ति'दा इत्यस्य यस्तकारस्तदादावुत्तरपदे इगन्त-
स्योपमर्गस्य दीर्घ इति दीर्घः । चत्वंम्याश्रयान्सिद्धृत्वानकारादित्वमुत्त-
रपदस्य । येषां 'मच उपमर्गान' इति द्वितकारक आदेशस्तेषामाश्र-
यात् सिद्धिरनपेक्ष्या ।

‘अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि ।

सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेप्यते ॥

इति वचनादवदत्तादौ तो न भवति । अत्रैव वार्तिके चकारा-
दवत्तादीनामबाधः, तत्रादिकर्मणीत्यर्थात्प्रदत्तविशेषणम् । अन्ये तु

अवदत्तादाववाद्य उपसर्गप्रतिरूपका निपाता न तूपसर्गा इति तत्त्वस्य नास्ति प्रसङ्ग इति चाहुः । मरुद्विर्दत्तो मरुतः । 'मरुच्छब्दस्योपसंख्या-
न'मिति उपसर्गसंज्ञाविधानसामर्थ्यादनजन्तत्वेऽपि तत्त्वं भवतीति व्याख्या-
तारः । प्रदाय । 'न ल्यपी'ति 'धुमास्ये'तीत्य निषिध्यते । ल्यपः पूर्व-
'मच्च उपसर्गात्'इति तो न भवति । 'अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यप्
बाधत'इति । दानुः । 'दाभाभ्यां नु'रिति नुप्रत्ययः । देणुः । दान-
शीलः । गादाभ्यां चेणुः । दायतीति शोधने गतम् ॥ ८१३ ॥

हृ कौटिल्ये ॥ हूरति । जह्वार । जह्वरतुः । जह्वर्थ । जह्वरिव । क्रादि-
नियमादित् । यलि तु 'अचस्तास्वदि'ति निषिध्यते । 'अतश्च संयोगादे-
गुण'इति गुणः । अयं वृद्ध्या पूर्वविप्रतिषेधेन स्वविषये बाध्यते । हूर्त्ता ।
हूरिष्यति । 'अह्वनोः स्य' इति इट् । हूरतु । अह्वरत् । आशिषि हूर्यात् ।
'गुणोर्त्तिमयोगाद्व्या'रिति अर्त्तैर्हकारान्तस्य संयोगादेर्येकं यकारादावाहु-
धातुके लिङि च गुण इति गुणः । अह्वर्ष्टाम् । यकि हूर्यते । लिङीव
गुणः । यदाशीर्लिङि यगात्मनेपदे च तदा 'लिङ्सिचारात्मनेपद'इत्य-
धिकृत्य 'अतश्च संयोगादे'रिति पठे इटि व्यतिह्वरिणीष्ट । व्यात्यहूर्त्त-
त्यादि । 'लिङ्सिचावात्मनेपदेष्वि'ति अधिकृत्य 'उश्चे'ति कित्त्ववि-
धानात् न गुणः । झलि सिचलोपः जुहूर्षति । 'अञ्जनगमां सनी'ति दीर्घं
'उद्गोष्पपूर्वस्ये'त्युत्वे रत्वे च 'हलि चे'ति दीर्घः । जाह्वर्यते । 'गुणोर्त्ति-
संयोगाद्व्या'रित्यधिकृत्य 'यङि चे'ति गुणः । जहूर्त्ति । जहूर्त्ते इत्यादि ।
लोटि हेर्ङित्त्वात् । जहूर्त्ति । उत्तमे । जहूर्त्तराणि । लङि अजहूर्त्तः ।
हृतम् ॥ ८१४ ॥

स्वृ शब्दोपतापयोः ॥ स्वरति । सस्वार । सस्वरतुः । सस्वर्य ।
सस्वरिय । सस्वरिम । 'स्वरतिसूती'ति वलादाविद्विकल्पः । अत एव
तासौ नित्यानिट्त्वाभावाद्'दचस्तास्वदि'ति निषेधो न भवति । नापि
'अतो भारद्वाजस्ये'ति निषेधः । यतोयम् 'अचस्तास्व'दुपदेशेत्वं इति
निषेधावकारान्तैकविषयाविति नियमादर्थोदकारान्तेषु पात्तिकत्वमात्र-
फलौ । 'श्युकः किली'ति निषेधेन पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यात्

परस्यापि स्वरन्यादिविकल्पस्यापि बाधः । तेन वमयोः क्वादिनियमेन नित्यमिडेव, न च मन्तव्य 'श्युकः किती'ति निषेधस्य बाधक क्वादिनियमं स्वरन्यादिविकल्पः परत्वात् बाधेतेति, तस्मिन् प्रसङ्गे पुनर्बाधकस्य निषेधस्यापि प्रसङ्गात् । अस्ति च लिङ्ग पुरस्तादारभ्यमाणेनापि प्रतिषेधेन स्वरन्यादिविकल्पस्य बाधेतेति । यदयं स्वरतेः 'सनीवन्ते'त्यादिना विकल्पं शास्ति, इदं च 'सनि यहगुहोश्चे'ति उगन्ताना सन्यारभ्यमाणेन निषेधेन परस्यापि स्वरन्यादिविकल्पस्य बाधनेर्येवम् । येषां तु दर्शनं यावात् कश्च-
नेडभावः प्रतिषेधनिबन्धनो विकल्पनिबन्धनो वा स सर्वः क्वादिसूत्रेण नियम्यतइति तेषामत्र यत्पि नित्यमिटा भाव्यम् । स्वर्ता । स्वरिष्यति । 'चट्टनोःस्य'इति नित्यमिट् विप्रतिषेधेन । स्वरतु । अस्वरत् । आशिषि स्वर्यात् । 'गुणोर्त्तिसयोगाद्यो'रिति गुणः । अस्वारीत् अम्वारिष्टाम् । अस्वार्षात् अस्वार्ष्टाम् । सिस्वरिषति । सुसूर्षति । 'सनीवन्ते'त्यादिना इडविकल्पः । इडभावे 'अज्जनगमामि'ति दीर्घं 'उद्योःपूर्वस्ये'ति उत्वे रपरं 'हलि चे'ति दीर्घः । सास्वर्यते । 'गुणोर्त्तिसयोगाद्योः', 'यडि चे'ति गुणः । सस्वर्त्ति । सस्वर्त्त इत्यादि । सस्वरिता इत्यादौ स्वरन्यादिविकल्पस्य न प्रसङ्गः । स्वरतीति तिपा निर्देशात् । स्वारयति । अस्-
स्वरत् । सस्वरते । 'समो गमृच्छिप्रच्छिस्वरन्यर्त्तिस्वृविदिभ्य' इति समु-
पसृष्टादकर्मकात् अस्मात्तड् । संस्वरे । संस्वरिषे । किति लिटि स्वर-
न्यादिविकल्पो नेत्युक्तम् । तेन क्वादिनियमाच्चित्यमिट् । संस्वरिता ।
संस्वर्त्ता । संस्वरिष्यते । 'चट्टनो स्य'इति नित्यमिट् । संस्वरताम् ।
संस्वरेत । आशिषि संस्वरिषीष्ट । संस्वृषीष्ट । लुङि समस्वरिष्ट । सम-
स्वृत । इडभावे हुरतिवत् । 'उश्चे'ति कित्त्वादगुणत्व तड्विधौ स्वर-
तीति तिपा निर्देशात् सास्वरीतीत्यादौ न तड् । स्वृत्वा स्वृतः । 'श्युकः
किती'ति नित्यमिड् न । स्वरः । यूपे छिद्यमाने प्रथमपतितशकलो
वज्रश्च । 'स्तृस्वृस्त्रिही'त्यादिनोपत्ययः ॥ ८१५ ॥

स्मृ चिन्तायाम् ॥ मातुः स्मरति । इत्यादि हुरतिवत् । 'अधीग-
र्थे'ति कर्मणि शेषे षष्ठी । सुसूर्षते । 'ज्ञाशुस्मि'ति तड् । स्मरयतीत्या-

ध्याने घटादिपाठात्, अन्यत्र स्मारयति । असस्मरत् 'अत्सृष्टृत्वरे'त्य-
भ्यासस्याकार इत्वापवादः । अयमनेकार्थत्वात् विस्मरणे चित्तादपक्र-
मणे वर्तते । अनन्तरं वृद्धिर्न क्व चित्पठ्यते । दुरतीत्यादि स्मरतिवत् ।
द्वर्त्यते संव्रियते इति द्वारम्, द्वारे नियुक्तो दौवारिकः । 'तत्र नियुक्त'
इति ठक् 'द्वारादीनां चे'ति वृद्धिप्रतिबन्ध एजागमश्च । द्वारादिषु
तदादिविज्ञानात् द्वारपालस्येदं, दौवारपालमित्यत्रापि वृद्धिप्रतिबन्ध
एजागमश्च भवति । द्वारिति एयन्तात् क्तिप् ॥ ८१६ ॥

सृ गतौ ॥ सरति । ससार । सस्रतुः । सस्रुः । ससर्थः । सस्रव ।
अज्ञादीववृद्धिविषये यण् । क्कादिपाठादनिट्त्वम् । सर्त्ता । सरिष्यति ।
'स्रट्ठुनोः स्य इति इट् । असरत् । सरत् । स्त्रियात् । 'रिङ् शयग्लिङ्'तु
इति रिडादेशः । असार्षात् । असार्ष्टाम् । 'सर्त्तिशास्ती'त्यङ् विधौ
अविद्यमानशपा शासिना साहचर्यात् सत्यर्त्यारण्यविद्यमानशपोर्जुहो-
न्यादिक्रयोर्यहणमिति नास्याङ्स्ति । सीषीर्यति । 'अज्जवे'ति दीर्घं
'अत'इतीत्वे रपरं 'हलि चे'ति दीर्घं द्विर्वचने सेस्त्रियते । 'रिङ् शये'ति
रिङ् । ससर्त्ति । सस्रत इत्यादि । सारयति । असीसरत् । यदायं
सरतिर्विगतगमने वर्तते तदा पाप्मादीनां शित्प्रत्यये धावादेशे धाव-
तीत्यादि । उपसर्गो गर्भग्रहणे प्राप्तकाला । 'उपसर्गो काल्या प्रजन'इति
यति निपात्यते । प्रजनं गर्भग्रहणं तत्र प्राप्तकालेत्यर्थः । अन्यत्र एयति
उपसर्गो । सूर्यः । 'राजसूयसूर्ये'ति क्यपि उत्त्वं निपात्यते । सूवतेर्वा
रुगागमे सूर्यशब्दात् प्रत्ययाः सुवतौ प्रदर्शयिष्यन्ते । साधु सरतीति
सरकः 'पृस्रुत्वः समभिहारे वुवि'ति समभिहारेणात्र साधुकारित्वमुच्यते ।
तथा च वार्त्तिकम् । साधुकारिणि वुन्विधानमिति । पुरः सरतीति
पुरःसरः । 'पुरोयतोयेषु सर्त्तिरि'ति ठः । अयेसरइति 'तत्पुरुषे कृती'ति
सप्तम्या अलुक् । अत्र न्यासे अये इत्येकारान्तत्वं निपातनादित्युक्तम् ।
अयं सरति अयेण सरतीत्यादावपि एकारान्तत्वम् । एवं हि सवख्याव
ख्यायसरो रूपा, आयोधनायसरतां त्वयि वीर याते इत्यादयः प्रयो-
गाश्चिन्त्याः स्युः । पूर्वः सरतीति पूर्वसरः । 'पूर्वं कर्त्तरी'ति कर्तृवा-

चिनि पूर्वशब्दउपपदे सत्तेष्टः । कर्तुरन्यत्राणोव । पूर्वदेशं सरतीति
 पूर्वसारः । उदासारी, प्रत्यासारी । 'उत्प्रतिभ्यामाङि सत्तेष्टसंख्यान'-
 मिति णिनिः । परिमारी । 'मपृत्रे'त्यादिना घिनुण् । सरणः । 'जुचङ्क-
 म्ये'त्यादिना युच् । समरः । 'सुघस्यदः क्करच्' इति क्करच् । सुत्व-
 रः । 'इण्णशजिसर्त्तिभ्यः क्करप्' इति क्करप् । सुत्वरी । 'टिड्डाण'त्रिति
 ङीप् । ससिः । 'भापया धाञ्ङ्मृगमिजनिभ्य' इति किकिनोरन्यतर' ।
 लिङ्वद्वावाद् द्विर्वचनम् । सारः । कालान्तरस्यायी । 'सु स्थिरे'इति
 कर्त्तरि घञ् । स्थिरादन्यत्र भावादौ घञि मारः । अपमुत्कर्षे पुल्लिङ्गः ।
 न्यायादनपेने नपुंसकलिङ्गः । अतिसारो व्याधिः । विसारो मत्स्यः । सारो
 बलं, 'व्याधिमत्स्यबलेष्वि'ति घञ् । अस्थिरार्थमिदं वचनम् । अनीमारः ।
 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्य'इति दीर्घः । अनीमारोम्यास्तीति अनीमारकी ।
 'वातातीसारभ्यां कुञ्चे'ति मत्वर्थे इनिः कुगागमश्च । प्रसारः । आसारः ।
 भावे 'अकर्त्तरि च कारके संज्ञायामि'ति घञ् । रुदोरुदन्तमुपलप्रसरं नि-
 पेवे इति माघे बाहुलकादप् । एवं निसर इत्यपीत्यात्रेयः । उपसरो गवां
 स्त्रीगवीषु पुंगवानां गर्भाधानाय प्रथममुपसरणमुच्यते । 'प्रजने सत्ते'रित्यप् ।
 परिसरः । अपसरः । 'पुसि सज्ञायामि'ति करणाधिकरणयोर्घः । परितः
 सरणं परिसर्या । 'इच्छे'त्यत्र 'परिचर्यापरिमर्यामृगया' इति भावे शे यकि
 गुणः । विसारिणो मत्स्यः । 'विसारिणो मत्स्य'इति विसारिन्शब्दान्म-
 त्स्यवृत्तेः स्वर्थे ऽण् प्रत्ययः । 'इनण्यनपत्य'इति प्रकृतिभावः । अस्मादेव
 विसारिण इति निर्द्वंशादण्, तत्सन्निधौगेन णिनिः । यहादिन्वाणिनि-
 रित्यात्रेयः । एवं हि प्रथक्प्रयोगार्हः स्यात् । यहादिषु न दृश्यते, प्रति-
 पिदृश्च पदमञ्जरी पृथक्प्रयोगः । पृथक्प्रयोगमसहमानेनैव न्यासकारे-
 णापि यहादित्वाणिनिरित्युक्त्वा अत एव निपातनादित्युक्तम् । निपा-
 तनं च प्रत्ययसन्निधौगेनैव । सुणिक्का । 'सत्तेर्नुट् चे'ति इकन् प्रत्ययः ।
 नुडागमः । सार्थः । 'सत्तेर्णिच्चे'ति यन्प्रत्ययः णित्वादृष्टिः । सर्वः । 'स-
 र्वेषु'त्यादिना वन्, अत्र वक्तव्यं तत् स्वर्तावुक्तम् । सरयूः । 'सत्तेरयू'रि-
 त्ययू । सरय्वां भवं, सारवम् । 'दाण्डिने'त्यादिना अण्प्रत्यये युशब्द-

लोपो निपात्यते । सरणिः । 'अर्तिसृष्टुवृत्तौ'त्यादिना अनिप्रत्ययः । सरित् । 'हृसृहृही'त्यादिनेतिप्रत्ययः । सृणिः । 'सृष्टिभ्या क्तिप् चे'ति निप्रत्ययः । सरः । असुन् । सरसी । 'वर्त्तमाने पृष्टृहृन्महत्जगत्सरसां शतृवच्चे'ति शतृवद्भावात् डीप् । सारङ्गः । 'सृष्टोर्वाङ्गिश्चे'ति अङ्गप्रत्यये वृद्धिः । अद्गः सृतेत्यप्सरा । 'अङ्गिराअप्सरा'इत्यसुनि निपात्यन्ते । उणादिवृत्तौ त्वप् इति सौत्रो धातुः, अस्मात् सरसुन् प्रत्यय इत्युक्तम् । बहुष्वप्सरस इति बहुवचनं प्रायिकम् । तदुक्तम् । अप्सराःसुमनस्सकता-वर्षाणामिति बहुत्व प्रायिकम् । अप्सरा इव आचरति अप्सरायते । 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्चे'ति क्यङि सलोपश्चेति । तत्र विभाषायहणे व्यवस्थित-विभाषाश्रयत्वात् इह नित्यं सलोपः । उक्तं च । 'ओजसोप्ससो नित्यं पयसस्तु विभाषये'ति । सारथिः । 'सर्तेर्णिदि'ति आथिन्प्रत्यये णित्त्वात् वृद्धिः ॥ २१७ ॥

च गतिप्रापणयोः ॥ चच्छति । 'पाप्नेत्या'दिना शिति चच्छा-देशः । आर । आरतुः । आरिथ । आरिव । लिटीत्यधिगत्य 'चच्छत्यृता'-मिति गुणः । तत्र हि च इत्यपि सवर्णदीर्घेणात्तिर्चकारान्ताश्च निर्देश्यन्ते । वृद्धिष्वप्ये पूर्वविप्रतिषेधेन वृद्धिः । तत्र गुणवृद्धोर्द्विवचनेची'ति स्यानि-वत्त्वात् चशब्दस्य द्विवचने अभ्यासस्यारदत्वे हलादिशेषे च 'अत आदे'रिति दीर्घे पुनस्तत्खण्डस्य गुणवृद्धोः सवर्णदीर्घः । वलादौ च क्तादिनियमा-दिट्, यलि तु 'क्षतो भारद्वाजस्ये'ति नियमं बाधित्वा 'इडत्यर्तिव्ययतीना-मि'ति इट् । अर्ता । आरिष्यति । 'चट्टनोः स्य'इति इट् । चच्छतु । आच्छत् । चच्छेत् । आशिषि अर्यात् । 'गुणोर्त्तिसंयोगाद्यो'रिति गुणः । सर्वत्रात्तिर्यहणेषु भौवादिकजुहोत्यादिकयोर्द्वयोरपि ग्रहणमिति स्थितं व्याख्यानेषु, अत एवार्तोत्यविकरणनिर्देशः कृतः । भौवादिकग्रहणे चच्छतीति वक्तव्यं, जौहोत्यादिकस्य तु शपः श्लौ इत्यर्तोति । 'अत्तिपिपत्त्योश्चे'ति अत्र श्लावित्यधिकारात् भौवादिकस्य न संभवः । 'सर्त्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चे'त्य-ङ्विधात्रपि शासिना अविद्यमानशपा साहचर्यात् सत्यर्तो अप्यविद्यमा-नशपो वृक्षेते इति ह्युक्तं, तेनास्य लुङि आर्षोत् । आर्षोम् इत्यादि

भवति । अरिर्वति । 'स्मिपृङ्ङञ्जशां सनी'ति ईट् । अत्र च इति भौवा-
 दिक्रजौहोन्यादिकयोर्द्वयोरपि ग्रहणम् 'चच्छृत्युता'मिति वन् । अत्र द्विर्व-
 चनात् पूर्व गुणे रपरत्वे 'अजादेर्द्वितीयस्येति रिशब्दस्य द्विवचनं, 'द्विर्व-
 चनेचि'इति नात्र स्यानिवत्त्वम् । 'सन्त्यङो'रित्यस्य पप्र्यन्तत्वात् । न च
 कार्यो निर्मातृत्वेनाश्रीयते । अत्र हरदत्तः । यत्र सप्तम्या निमित्तं श्रुतं
 तन्निमित्तं न तु तद्भावितामात्रमिति । आर्यने । 'सूचिसूत्री'त्यादिना यङि
 'यङिचे'ति 'गुणेन न्द्रा इति निषेधस्य यकारपररेफस्य प्रतिषेध इति बाधात्
 रेफादेर्द्विवचने 'दीर्घाकृत'इति दीर्घः । अरर्त्ति । अरियर्त्ति । अशब्दस्य
 द्विवचने अभ्यासस्यारदत्वे हलादिशेषे 'अतश्चे'ति रुग्रीगृकः । उत्तरख-
 ण्डस्य गुणः । अत्र रीयिक्तेर्न रूपभेदः । उभयत्रापि 'अभ्यासस्यामवर्ण'इ-
 तीयङा भाव्यत्वात् । ईट्पक्षे अरर्तीति । तस्मादौ डित्वादुत्तरखण्डस्य न
 गुण इति अर्त्ततः । अरियृत् इत्यादि । भौ अशब्दस्य द्विवचने अभ्या-
 सस्य कार्ये हकि च 'अदभ्यस्तादि'ति केरद्वावे परखण्डस्य यणि 'रो री'ति
 रेफस्य लोपे 'द्विलोप'इति दीर्घं आरवीति भवति । 'पूर्वत्रासिद्धे न
 स्यानिवदिति'ति निषेधात् 'रो री'ति लोपे 'अचः परस्मिन्'इति न यणः
 स्यानिवद्भावः । रीयिक्तेर्नकारमाश्रित्य इयङि पश्चादद्वावमाश्रित्य तस्य
 यणि अरियति इति भवति । न च 'लोपो व्योर्वली'ति यलोपप्रसङ्गः ।
 'अचः परस्मिन्'इति यणः स्यानिवत्त्वात् । न चास्ति यलोपं प्रति न
 स्यानिवदिति, स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाजादेशो न स्यानिवदिति वचनात् ।
 अरर्षि । अरियर्षि । अरर्मि । अरियर्मि । अर्चवः । अर्चमः । अर्युवः ।
 अर्युमः । अररांचकार । अरियरांचकार । अररिता । अरियरिता, अररि-
 ष्यति । अरियरिष्यति । अरर्त्तु । अरियर्त्तु । अर्चहि । अरियर्हि । डित्वाच
 गुणः । अरराव । अरियराव । आटि पित्वात् गुणः । लङि अभ्यासस्य हकि
 परस्य गुणे तिप्तिपोर्हल्ङ्यादिलोपे रेफस्य विसर्जनीये अङ्गस्याटि आठः
 रीयिक्तेरियङि आरियः । आर्चताम् । आरियताम् । बहुवचने 'जुचि
 चे'ति गुणे आरहः । आरियहः । लिङि । अर्चयात् । आरिययात् ।
 आशिषि आरियात् । 'रिङ् शयलिङ्क्षु' इति रिङादेशे 'रो री'ति लोपे

द्रुलोपदीर्घः । रियीक्रोरियङि परस्य रिङादेशे तस्य स्यानिवत्त्वात् यलोपा-
 भावे अरिग्रियात् । यलोपविधिं प्रति न स्यानिवदिति तु न भवति तस्य
 लोपाज्जादेशविषयत्वात् । 'गुणोर्ती'ति गुणः शितपा निर्देशात् न भवति ।
 लुङि आरारीत् । आरियारीत् इत्यादि । अर्पयति, 'अर्त्तिह्रीति पुक् । 'पुग
 न्तलघूयधस्ये'ति गुणः । मा भवानर्पयन् । 'उर्च्दि'ति पक्षे ऋकारो
 गुणापवादः । णिलोपस्य 'द्विर्वचनेची'ति स्यानिवत्त्वात् पिशब्दस्य
 द्विर्वचनम् । ऋकाराभावपक्षे गुणे 'न न्द्रा' इति रेफस्य द्विर्वचननिषे-
 धात् पिशब्दद्विर्वचने मा भवानर्पयदिति भवति । शितपा निर्देशाद्व्यङ्-
 लुकि पुगभावात् आरारयतीति भवति । रिक्रीक्यते अरियारयतीति ।
 उपाच्छति । 'उपसर्गादृति धाता'विति ऋवर्णान्तादुपसर्गात् ऋकारादौ
 धातौ परे पूर्वपरयोर्वृद्धिः । सा च ऋवर्णस्यानिका इति रपरत्वम् ।
 अर्यः । 'अर्यः स्वामिवैश्ययो'रिति यति निपात्यते । स्वामिवैश्याभ्या-
 मन्यत्र 'ऋहलोर्ण्य'दिति एयत् । आर्यः । स्त्रियाम् आर्या । आर्याणी ।
 'आर्यतत्रियाभ्या वे'ति ङीषानुक्तौ । पक्षे विना पुंयोगं स्वार्थेऽवायं विधि-
 रिति वृत्तिः, तेन पुंयोगेन नित्य ङीप् भवति । आरी । अरित्रम् । अर्त्तिलू
 इति करणङत्रः । आरा प्रतोदः । आरा शस्त्रिकायामिति भिद्रादिपाठात्
 अङ् वृद्धिश्च । अन्यत्रार्त्तिः । 'उपसर्गादि'ति वृद्धिः । अणम् । 'अणमा-
 धमर्ण्य'इति निष्ठानत्वं निपात्यते । अधमः अणो अधमर्णः । अत एव
 निर्देशात् सप्तम्यन्तेन समासः । अधममृणमस्येति बहुव्रीहिर्वा, निष्ठा-
 न्तस्यपरनिपातः । अत एव निर्देशात् एयभावआधमर्ण्यम् । इदं च
 कालान्तरदेशविनिमयोपलक्षणार्थं, तेनात्तमर्ण्यं इत्यपि भवतीति वृत्तिः ।
 'धारेस्तमर्ण्य' इति निपातनात् वा पूर्ववत् समासः । प्रगतं प्रवृद्धं वा
 अणं प्राणं 'प्रादयो गतादर्थे प्रथमया' इति समासः । 'प्रवत्सतरकम्बल-
 वसनार्ण्यदशानामृण'इति वृद्धिः । अणार्ण्यम् । अणापाकरणार्थं यदुपा-
 दीयते तदुच्यते । षष्ठीसमासः । दशार्ण्यं देशो नदी च । विशेषण-
 समासः । यथा कथञ्चित् व्युत्पाद्य अणदशभ्यां वृद्धिः । दशार्ण्यम-
 पहाय सर्वं बहुव्रीहयो वा, लिङ्गन्तु विशेषणायत्तं द्रष्टव्यम् । वत्सतरार्ण्यं

कष्यलार्णम्, आधमर्ण्यादन्यत्र चतः । सुवेन चनः सुवार्तः । 'चते च
तृतीयाममामे' इति वृद्धिः । अन्यत्र परमर्तः, आर्त इत्यत्राद्युपपदे 'उप-
सर्गादृती'ति वृद्धिः । आत्रेयस्तु सौत्रादृतीरतचि प्रज्ञाद्वयि व्युत्पादयति ।
अन्यथापि सिद्धे को ऽयं यत्र इति न जानीमः । अरुः । अर्तौखपिय-
जितनिधनिवृषिभ्यो निद्रित्युसिप्रत्ययः । अरुक्रोति । 'अरुर्मन' इति
च्चिप्रत्यये सलोपः । 'च्चौ चे'ति दीर्घः । अर्शः । अर्तैर्गुणः शुङ् चेत्यमुत्प्रत्ययः
शुडागमश्च, अर्शास्यास्ति अर्शसः । 'अर्शाद्भिज्जिति अच्
मत्वर्थे । अरुः असुरविशेषः । अर्तरुत्प्रत्ययः । अर्भो बालः । 'अर्त्ति-
दृभ्यां भञ्जिति भञ्ज् । अर्भकः । स्वार्थे कन् । अर्थः । 'उपिकुपिगर्त्ति-
भ्यस्यञ्जिति यञ् । कर्मिः । 'अर्त्तु चे'ति मित्रप्रत्ययः उकारस्वान्तादेशः ।
अर्वः । 'स्वामदिपद्यर्त्तिपृशक्रिभ्यो वनिञ्जिति वनिष् । अर्वन्तौ । 'अर्व-
णस्त्रसावनज' इति असौ तृ इत्यादेशः, अदित्वा 'दुगिद्वामि'ति लुप् ।
अर्वन्तीत्यत्र ङीव भवति, अनजिति वचनात् अनर्वाणावित्यत्र नायमा-
देशः । निर्धेयः साम । अर्त्तैर्निरीति निर्धुपपदे यञ् प्रत्ययः । अरणिः ।
'अर्त्तिस्तृप्तमी'त्यादिना अनिप्रत्ययः । अरुणः । 'अर्त्तेश्चे'नि उनन्प्र-
त्ययः । अरुतुः । 'अर्त्तेश्चे'ति तुन्प्रत्ययः । किदिति तत्रानुवृत्तेर्न गुणः ।
अरुतुः प्राप्तोऽस्य अर्त्तैव पुण्यम् । 'अनोरणि'ति तदस्य प्राप्तमित्यस्मिन्
विषये अण् प्रत्ययः । अरुतुर्देवतास्य अरुतव्यम् । 'वाय्वृतुपित्रुपसो यदि'ति
'सास्य देतने'ति विषये यत्, 'ओर्गुणः' 'वान्तो यि प्रत्यय' इत्यत्रादेशः ।
अररं कवः । अर्त्तिकमीत्यादिना अरप्रत्ययः । इरिणम् ऊपरम्, अर्त्तः
किदिनश्चेतीत् प्रत्ययः । किद्रुचनाव गुणः, धातोरिकारादेशश्च । अर्णः
अर्त्तैर्नुडित्यमुन्प्रत्ययः नुडागमश्च । अर्णवः । अर्णसो लोपश्चेति मत्व-
र्थेयि वप्रत्यये सलोपः ॥ ८९८ ॥

ए घृ सेचने ॥ गरति । जगार । जयतुः । जगर्थ । जयिष्व ।
गर्त्ता । गरिष्यति । गरतु । अगर्त् । गतेत् । आशिषि यियात् । रिङ् ।
अगर्षीत् । जिगीर्षति । 'अञ्भने'ति दीर्घं अत इत्वे रपरे 'हलि चे'ति
दीर्घः । जेयीयते । 'रीङ् अत'इति रीङ् । जर्गति । गारयति । अजी-

श्रु श्रवणे ॥ शृणोति । शृणुतः । शृण्वन्ति । शृणोषि । शृणोमि ।
 शृणुवः । शृण्वः । शृणुमः । शृण्वः । 'श्रुवः श्रु चे'ति श्नुप्रत्ययः । शृभावश्च
 धातोः । श्नोः शित्त्वात् सार्वधातुकत्वात् अपित्त्वात् ङित्त्वाच्च गुणः
 प्रकृतेः । स्वस्य तु भवत्यङ्ङिति । शृण्वन्तीत्यत्रान्तादेशे 'हुश्नुवोः सार्व-
 धातुक'इति यणादेश उवङोऽपवादः । सूत्रार्थस्तु जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्त-
 स्यानेकाचोङ्गस्यासयोगपूर्वा य उकारः तस्याजादौ सार्वधातुके यणिति
 श्नोस्कारस्य च 'लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वो रिति पक्षे लोपः । श्रुश्राव ।
 श्रुश्रुवतुः । श्रुश्रोथ । श्रुश्रुव । श्रुश्रुम । पित्सु वृट्गुणयोरात्रावौ, अन्यत्रा-
 जादावुवङ् । क्रादिषु पाठात् स्रवतिवत् थल्यप्यनिङ् । श्रोता । श्रोष्यति ।
 शृणोतु । शृणु । 'उतश्च प्रत्ययादसयोगपूर्वात्' इति हेर्लुक् । शृण्वानि ।
 आटि गुणावौ, अशृणोत् । अशृणुताम् । शृणुयात् । आशिषि श्रूयात् ।
 'अङ्गत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' । अश्रोषीत् । श्रुश्रूषते । 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सन' इति
 तङ् । प्रतिश्रुश्रूषति । आश्रुश्रूषति इत्यत्र 'प्रत्याङ्भ्यां श्रुव' इति सन्नि-
 मितस्य तङो निषेध इह प्रत्याङोरुपसर्गयोर्ग्रहणात् देवदत्त प्रतिश्रुश्रूषते ।
 भाष्यादा श्रुश्रूषतइत्यत्र तङेव भवति । अत्र हि प्रत्याङौ कर्मप्रवचनीयौ
 'लक्षणेभ्यभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः' । 'आङ् मर्यादावचन'इत्ये-
 कसंज्ञाधिकारात् कर्मप्रवचनीयसंज्ञया उपसर्गसंज्ञा बाध्यते । लक्षणं चिह्नं
 कं चित् प्रकारं प्राप् इत्यभूतस्तस्याख्यानमित्यभूताख्यानं, भागः स्वीक्रिय-
 माणोऽशः, उक्ता वीप्सा, विना तेनेति मर्यादा, सह तेनेत्यभिधिः, वचनय-
 हणादभिधिरपि दृश्यते । तत्र प्रतिश्रुश्रूषतइत्यस्य देवदत्तः श्रुश्रूषया लक्ष-
 णमित्यर्थः, देवदत्तसकाशात् श्रुश्रूषतइति यावत्, भाष्यादा श्रुश्रूषतइत्यस्य
 विना भाष्येण सह वा तेन श्रुश्रूषतइत्यर्थः । शोश्रूयते । शोश्रूवीति । शोश्रीति ।
 'उतो वृट्'नीभ्यस्तस्येत्यनुवर्त्तनात् नेत्युक्त, श्रावयति । अश्रुश्रवत् । अशिश्र-
 वत् । श्रौ कृतस्य स्यानिवत्त्वात् श्रुशब्दस्य द्विवचनं 'स्रवतिशृणोती'ति पक्षे
 अभ्यासस्येत्वं, संशृणुते । संशृण्वते । संशृण्वते । संशृण्वे । संशृणुवहे ।
 संशृण्वहे । सशुश्रूषे । संश्रोता । संश्रोष्यते । संशृणुताम् । समशृणुत ।
 संशृण्वीत । आशिषि । संश्रोषीष्ट । समश्रोष्ट । कलि सिङ्गलोपस्य पूर्वत्रा-

सिद्धत्वात् गुणे ह्रस्वाभावाच्च सिञ्जलोपप्रसङ्गः । कर्मकर्तरि स्रवतिवत् । शुश्रु-
वान् । 'भाषायां सदवमश्रुव' इति लिट् कसु । अयं च लिट् लुङ् विषयः
पाक्षिकः । कस्वादेशश्च नित्यः । तेनानेन लिटा मुक्ते यथायोगं लुङ्ल-
ङ्लिटो भवन्तीति । सर्वं चैतत् सीदतावुपपादितम् । भसन्नाया संप्रसारणं
सवर्णदीर्घं बाधित्वा धातुवर्णत्वादुर्वङि शुश्रुवुष इत्यादि । पदत्वे 'वसु-
स्वस्वि'त्यादिना दत्वे शुश्रुवद्गामित्यादि । देवदत्ताय गां प्रतिशृणोत्याशृणोति
वा । याचितः सन् तस्मै ददामीति प्रतिज्ञानीतइत्यर्थः । 'प्रत्याङ्भ्यां
श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता' प्रत्याङ्भ्यामुपसृष्टस्य शृणोतिः प्रयोगे प्रतिशृणोति आश-
ृणोतिक्रियापेक्षया पूर्वस्याः क्रियायाः कर्त्ता संप्रदानमिति देवदत्तस्य संप्र-
दानत्वाच्चतुर्थी । प्रत्याङ्भ्यामुपसृष्टः शृणोतिः प्रतिश्रवणार्थे इति अर्थात्
पूर्वा क्रियेह याचनं, निश्चायी रत्नश्रुवपशा नाविति यहादिपाटाणिनिः ।
विश्वावः । 'वौ लुश्रुव' इति घञ् । श्रूयते अनया इति श्रुतिः । 'श्रूयजिस्तुभ्यः
करण' इति क्तिन् स्त्रियां, ल्युटोपवादः । अस्त्रिया श्रूयते अनेनेति श्रवणं
श्राञ्, यदा नञ्चवचनस्तदा श्रवणेन युक्ता रात्रिरिति विग्रह्य 'नञ्चरेण
युक्तः काल' इति विहितस्याणः 'सन्नाया श्रवणाश्रवत्याभ्या' मिति लुपि श्रवणा
रात्रिरिति भवति । अत्र 'लुपि युक्तवद्गुक्तिवचने' इति प्रकृत्यर्थेलिङ्गं न
भवति, 'विभाषा फाल्गुनीश्रवणे'ति निर्देशात् । लुबिति लुप्सन्नया लुप्तप्र-
त्ययार्थं उच्यते । तत्र युक्तवद्गुक्तिवचने भवत इति सूत्रार्थः । युक्तः प्रकृ-
त्यर्थः प्रत्ययार्थेन संबद्ध इति कृत्वा, व्यक्तिर्लिङ्गं, वचनमेकत्वादिति । यदा
श्रवणाशब्दः, पौर्णमासीवचनस्तदा श्रवणा पौर्णमासी अस्मिन्निति विग्रह्य
'विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्य' इति अण्लुकोः कृतयोः श्रावणः
श्रावणिक इति भवति । श्रवः । असुन्, विश्रवसोऽपत्यं वैश्रवणः राव-
णश्च । शिवादिषु विश्रवणं चेति पाठात् अपत्येणि तत्सन्धियोगेन
विश्रवणरवणावादेशौ । श्राञ्म् । प्रृचिति प्रृन् । श्राणिः । 'वहिश्रुश्रि-
युद्गुह्लाहात्वरिभ्यो निदि'ति नित् प्रत्ययः ॥ ८२४ ॥

ध्रु स्यैर्य ॥ ध्रवति । दुध्राव । दुध्रुवतुः । दुध्राय । दुध्रविथ । क्रा-
दिनियमादिट्, थलि भाट्टाजनियमादिट्विकल्पः । शेष श्रवतिवत् । ध्रुव

इति बाहुलकात्कः, यद्वा 'ध्रुवमपाय' इति निर्देशात् साधुः, अथ तुदादौ गत्यर्थश्च । तस्मात् वा अचि ध्रुवः । स हि कुटादः ॥ ९२५ ॥

दु द्रु गतौ । द्रवति । दुदाव । दुद्रुवतुः । दुद्रोथ । दुद्रुविथ । दुद्रुविव । दोता । इत्यादि पूर्ववत्तत्, लिटि क्रादिनियमादिट्, थलि भारद्वाजनियमादिङ्विकल्पः । द्रवः । पचाद्यच् । 'दुन्योरनुपसर्ग' इति णविधौ दुनोतिरेव वृत्तौ गृहीतः । पदमञ्जर्या नयतिना साहचर्यात् सानुबन्धकस्य दुनोतिरेहि ग्रहणमिति । संदावः । 'समि युद्रुदुव' इति घञ् । दूनः । 'त्वादिभ्य' इत्यत्र दुग्नेर्दीर्घश्चेति वचनाच्चिष्टानत्व दीर्घत्वं च । दूतः । 'दुतनिभ्या दीर्घश्चे'ति तन् दीर्घश्च । दूतस्य भावकर्मणी दूत्यम् । 'दूतवर्णाभ्या चेष्यत' इति यः । दूञ् उपतापइति स्वादौ । द्रवति । दुद्राव । दुद्रुवतुः । दुद्रोथ । दुद्रुव । क्रादिपाठादनिटत्वम् । ननु सुद्रुस्तुश्रुवां निषेधस्य थलोन्यत्र चरितार्थत्वात् थलि भारद्वाजनियमाद्विकल्पः स्यात् । न चैव शक्यते वक्तु स्वादिव्यतिरिक्तानां ग्रहणं नियमार्थमिति, स्वादीनां तु भारद्वाजनियमप्राप्तस्यैवेदो निषेधार्थमिति । एवं हि क्रादिनियमात् थलोन्यत्र नित्यमिट् स्यात् । एवं तर्हि स्वादीनां ग्रहणं यः क्रादिनियमात् इट् प्राप्तो यश्चापि भारद्वाजनियमात् तयोर्द्वयोर्निषेधार्थं भविष्यति । न च मन्तव्यं येन नाप्राप्तित्यायेन क्रादिनियमप्राप्तस्यैवेदो निषेधो युक्त इति । 'पुरस्तात् प्रतिषेक्षाण्डारम्भादुभयोर्निषेध इति वृत्तावुक्तत्वात् । अथ वा सर्वेषां नियमार्थत्वेऽपि न दोषः । अनेन नियमेन यः क्रादिव्यतिरिक्तानां नित्यमिट् प्राप्तः सो 'ऽचस्तास्वदि'ति निषिध्यते । यत्र चायं निषेधस्तत्रैव भारद्वाजनियम इत्यर्थादस्य नियमस्य क्राद्याष्टकव्यतिरिक्तविषयत्वलाभात् । द्रोता । द्रोष्यतीत्यादि पूर्ववत् । लुङि 'णिश्चिद्रुसुभ्य' इति चङि अद्रुद्रुवत् । लघूपधगुणादन्तरङ्गत्वादुवङित्युक्तं, दुद्रूषति । दोद्रूयते । दोद्रोति । द्रावयति । अद्रुद्रवत् । अदिद्रवत् । 'अवतिशृणोतिद्रवती'त्यभ्यासस्येत्वम् । 'बुधयुधे'त्यादिना नित्यं परस्मैपदम् । सन्द्रावः । 'समि युद्रुदुव' इति घञ् । उद्द्रावः । 'उदि अयती'त्यादिना घञ् । प्रद्रावः । 'प्रे द्रुस्तुसुव' इति घञ् । हरिद्रुः । मित-

द्रुः । शतद्रुः । 'द्रुप्रकरणे मितद्रुवादिभ्य उपसंख्यानमि'ति द्रुः । हरिद्रुणा
प्राक्त छन्दोधीने हारिद्रविण । 'कनापिवैगम्यायनान्तेवानिनश्चे'ति प्रोक्तार्थे
णिनिः । तदन्ता छन्दोवाह्यणानी'ति नियमादध्येतुवेदितुप्रत्ययान्तमे-
वेत्युक्त, तस्याणः 'प्राक्ताल्लुगि'ति लुक् । कलाप्यन्तेवानिनश्च

हरिद्रुरेपा प्रथमस्तनश्च गलितुम्बुरु ।

उलपेन चतुर्थेन कालापकमिहोच्यते ॥

इत्युक्ताः । द्रविणम् । 'द्रुदत्तिभ्यामिननि'ति इनत् । द्रोणः ।
परिमाणादिः । 'द्रुजुमिपण्यनी'ति नप्रत्ययः । स्त्रिया गौरादिपाठान्
द्रोणी । द्रोणस्य गोत्रापत्य द्रौणापनः । द्रौणिः । 'द्रौणपर्वतजीवन्ता-
दन्यतरस्या'मिति फक् । तदभावे 'अन इज्' । द्रोण पचतीति द्रौणः,
द्रौणिकः । 'तत् पचतीति द्रोणादण् च' इति अण्टकौ । द्विद्रोणेन धान्य
क्रीणाति । तृतीयाविधाने 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानमि'ति तृतीया ॥ ८२६ ॥

जि जि अभिभवे ॥ अभिभवो न्यूनीकरणम् । जयति । जिगाय,
इत्यादि तिङन्त जि जयइतिवत् । पुनः पाठे फलं तत्रैवोक्तम् । अध्यय-
नात्पराजयते पराजिरत्र न्यूनीभवे वर्तते । अत्रायमकर्मकः । अध्येतु
ग्लायतीत्यर्थः । अत्र पठ्या प्राप्तायां 'पराजिरसोठ' इति अध्ययनस्याप'दा-
नत्वात् पञ्चमी, परापूर्वस्य जयतेः प्रयोगे असोठः सोढुमशक्यो योऽर्थ-
स्तत्कारकमपादानमिति सूत्रार्थः । धनञ्जयः । 'सञ्ज्ञाया भृतृवृजी'ति
खचि मुमागमः पूर्वपदस्य । शत्रुजित् । प्रजित् । 'सत्सूद्रिषे'त्यादिनोप
सर्गेष्वनुपसर्गेऽपि सुबन्ते उपपदे क्तिप् । जिष्णुः । 'भ्लाजिस्वस्वम्'रिति
गुह्यः । जयी । 'जिवृत्ती'ति इनिप्रत्ययः । जित्वरः । 'इयनशजी'ति
क्वरप् । त्रयोपि ताच्छीलिकाः । जैत्रम् । बहुलकात् जण् प्रत्ययः ।
जयति । जिजाय । जिजियतुः । जिजियिथ । जिजेथ । जिजियिथ ।
जिता । जेष्यति । जयतु । अजियत् । जयेत् । आशिषि जीयात्
अजैषीत् । जिजीषति । 'इको भलि'ति सनः कित्वात्र गुणः । 'अउक-
नगमामि'ति दीर्घः । जेजीयते । जाययति । अजिजयन् । जु इति
सौत्रो धातुः । जवतीत्यादि । अयं गत्यर्थः । वेगवचन इत्यपरे ।

जवनम् । 'जुचङ्गुम्ये'त्यादिना युच् । प्रजवशीलः, प्रजवी । 'प्रजोरिनि'-
रितीनिप्रत्ययः । जूः । भ्राजभास्ति त्यादिना क्तिप् । तत्रैव जू इतिपाठात्
क्लिप्सन्नियोगेन दीर्घः । जवः । अप् । जूतिः । 'अतियूतिजूती'ति
निपातनात् क्तिनि दीर्घः । धयत्यादयोनुदात्ता उदात्तेतः । अयतिस्त्-
दात्तः । तथा जित उभयपदिनः ॥ ८२८ ॥

ष्मिङ् ईषट्सने ॥ एतदादयः स्वरन्त्यन्ता अनुदात्ता आत्मनेप-
दिनः । स्मयते । सिष्मिये । सिष्मियिद्वे । सिष्मियिध्वे । सिष्मिये ।
सिष्मियिवहे । 'अवि श्नुधात्वि'त्यादिना इयङ् । स्मेता । स्मेष्यते ।
स्मयताम् । अस्मयत । स्मयेत । स्मेपीष्ट । अस्मेष्ट । सिष्मियिष्यते ।
'स्तौतिण्योरवे'त्यपत्वम् । 'स्मिपूङ्गुज्ज्वा सनी'तीट्, सेष्मीयते ।
सेष्मेति । मुण्डो विस्मापयते । अस्मिष्मपत् । 'नित्य स्मयते'रिति
हेत्वैककारके स्मयत्यर्थे आत्व, तत्र पुक्, 'भीग्यार्हेतुभये'इति हेत्वैक-
कारक्योर्नित्य तङ् । अत्र भययहण चित्तविकारोपलक्षण, तेन बिभेते-
हेतुभये स्मयतेहेतुस्मयदत्यर्थो भवति । यदा तु हेतुत एव स्मयो न
भवति तदात्व न नापि तङ्नियम इति मुण्डो रूपेण विस्माययतीति
भवति । स्मेरं मुखम् । 'नमिक्मयी'ति रः । स्मिन्त्वा । स्मितम् । अयम-
नादरे चुरादिः ॥ ८२९ ॥

गुङ् अव्यक्ते शब्दे ॥ गवते । जुगुवे । जुगुविषे । जुगुविवहे ।
गोता । गोप्यते । आशिपि गोपीष्ट । अगोष्ट । अगोष्यत । जुगूषते ।
'अज्जने'ति दीर्घः । जोगूयते । 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' । जोगोति ।
गावयति । अज्जगवत् । णौ कृतस्य स्यानिवत्त्वाद् गुणब्दस्य द्विवचनं,
गुत्वा । गुतः । 'दुवोर्दीर्घंश्चे'ति अत्र निरनुबन्धस्य तौदादिकस्य गु
पुरीषोत्सर्गदत्यस्य ग्रहणमिति नात्र निष्ठानत्वदीर्घत्वे भवतः । गोत्रम् ।
'गुपची'त्यादिना ञप्रत्ययः । ब्राह्मणगोत्रा । 'कुत्सितानि कुत्सनै'रिति
समासः । वृत्तिविषये गोत्रशब्दः कुत्सनवचन इति चेलतावुक्तम् ।
'घरूपे'त्यादिना पूर्वपदस्य ह्रस्वः । गवाक्कः क्रमुकवचनः, पिनाकादि-
पाठादाकप्रत्ययः । गवल माहिप शृङ्गम् । बाहुलकादलप्रत्ययः । अनन्तरं

धृञ् धारणइति पठ्यते । वर्धमानोऽमु न सहते । यदाह केचित् धृञ् धार-
णइति पठन्ति । सेनार्यः । धरति । धरने इति प्रयोगदर्शनात् तत्साह-
समात्र मुपादीयते चा नुपमर्गात् लिप्तेत्यत्र न्यामपदमञ्जरीर्धृञ् धारण-
इति । दैवेऽवधारणार्थः । धरति । धरते इत्युभयमिति । अस्माभिस्तु
मैत्रेयादनुसारेण करणे प्रत्यये हरनेरनन्तर पठित्वायमुदाहृतः ॥ ६३० ॥

गाङ् गतौ ॥ गाते । त्रिष्वपि वचनेषु समान, गा अ आतामिति
स्थिते अत्रान्तरङ्गत्वाद्धानुशपरेक्रादेशे सवर्णदीर्घे डिद्वयव आकारोऽतः
परो न भवतीति 'आतो डि' इतीयादेशो न भवति । न च सवर्णदी-
र्घस्यादिवद्भावेनातः परत्वमकारस्य, अन्तादिवद्भावेः वर्णाश्रयेनेति स्थित-
त्वात् । न च मन्तव्यं वर्णाद्राङ् वलीय इति सवर्णदीर्घात् प्रागेव
इयादेशः स्यादिति, यदयमङ्गात् परस्येत्यङ्गस्य न भवति । बहुवचने
भस्य 'आत्मनेपदेष्वनत' इति अद्भावेः, अत्राप्यनत इति पर्युदास आदि-
वद्भावेन न भवति वर्णाश्रयत्वात् । न च मन्तव्यमित्यादि पूर्ववत् ।
गासे । गाथे । गाध्वे । गै इति टेरेत्वे वृट् । धानुशपरेक्रादेशस्यादि-
वद्भावात् 'अतो गुण' इति पररूप वर्णाश्रयत्वादेव न भवति । 'आतो
लोप इटि चे'त्यत्र आर्द्धधातुकस्येठो ग्रहणात् नालोपप्रसङ्गः । जगे ।
जगाते । जगिषे । जगिध्वे । जगे । जगिवहे । 'आतो लोप इटि चे'त्या-
ल्लोपः । गाता । गास्यते । 'गाङ्कुटादिभ्योऽणिण्डि'दित्यत्र गाङिति
इडादेशग्रहणात् अस्मात् परस्याऽणिणतः प्रत्ययस्य डित्वाभावात् न
'घुमास्थाने'तीत्व, गाताम् । गास्व । गै । गावहै । अगात । अगाताम् ।
अगात । भस्याद्भावः, अगाथाः । अगे । 'आद्गुणः' । अगावहि । गेत ।
गेयाताम् । गेथाः । गेय । लिङः मलोपः, 'आद्गुणः,' यलोपः । आशिषि
गासीष्ट । अगास्त । आगासाताम् । आगासत । अगास्याः । अगासि ।
जिगासते । जेगीयते । 'घुमास्थाने'तीत्वम् । गाययति । अजीगयत् ।
'गापोष्टि'त्यत्र न्यामपदमञ्जरीरय धातुरादादिक इति स्थित शपि
पाठे चास्य प्रयोजनं नास्ति । अस्माभिस्तु क्वापि पठितव्य इति मैत्रेया-
दनुसारेणैह पठितः । गायतीति गत शब्दे शपि ॥ ६३१ ॥

कुङ् घुङ् उङ् डुङ् शब्दे ॥ कवते । चुकुवे । घवते । जुघुवे ।
इत्यादि गवतिवत् । कोकूयतइत्यत्र 'न कवतेर्यङी'ति अभ्यासस्य कुत्व-
निषेधः । यङीति वचनात् तल्लुकि चोक्तोतीति कुत्व भवति । अयम-
व्यक्तशब्दइति न्यासे । तथा देवश्च अव्यक्तशब्दे कवतइति, अयमार्तशब्दे
तुदादौ, शब्दमात्रे ऽदादौ, अवते । अवसे । कवे । ऊविवहे । अत्रोवडि
तस्य 'द्विर्वचनेची'ति स्यानिवत्त्वात् उशब्दस्य द्विर्वचने वार्णादन्तरङ्गादपि
सवर्णदीर्घात् पूर्वं बहिरङ्गेष्ववडि वार्णादाङ्गुबलीय इति पश्चात् सवर्ण-
दीर्घः । ओता । ओष्यते । अवताम् । आवत । अवेत । आशिषि ओषीष्ट
माभवनौष्ट । ऊपिपते । 'इको भलि'ति सनः कित्वाच गुणः । 'अञ्भ'
नेति' दीर्घः, 'सन्डोरिति' दष्टान्तत्वात् पशब्दस्य द्विर्वचनम् । आवयति ।
मा भवानविवत् । वृद्धावौ चङि णेलोपे 'णौ चङी'ति ह्रस्वे 'चङी'ति
द्विर्वचनं, णिलोपस्य 'द्विर्वचनेची'ति स्यानिवत्त्वात् द्वितीयस्यैकाचो
विशब्दस्य द्विर्वचनम् । डवते । जुडुवे । इत्यादि गवतिवत् ॥ ८३५ ॥

चुङ् ज्युङ् मुङ् मृङ्गुतौ ॥ चवते । चुचुवे । चुचुविषे । चुच्य-
विधे । चुच्युवे । 'अचि शुधात्वि'ति डवङ् । च्याता । च्याष्यते । अच्य-
वत । च्यवेत । च्योषीष्ट । अच्योष्ट । चुच्युषते । 'इको भलि'ति कित्वे
'अञ्भने'ति दीर्घः । चोच्युयते । चोच्योति । च्यावयति । अचुच्यवत् ।
अचिच्यवत् । 'स्रवतिशृणोती'त्यादिना अभ्यासस्येत्वम् । च्यवनम् । चल-
नार्थत्वात् युच् । च्यात्रम् । बाहुलकाच्चण । च्यवतइत्यादि च्यवतिवत् ।
अत्र नन्दी जु इत्युकारं पठति, तत् जु इति सौत्रे धातुरिति वृत्तिन्या-
सपदमञ्जयादिष्वभिधानादनार्पणमिव प्रतीयते । प्रवते । पुपुवे । पूवते ।
पुपुवे इत्यादि गवतिवत् । अत्र मैत्रेयः । क्रुङ् इत्येके । क्लवतइत्यादि ।
क्लव इति विक्रव इति च बवयोरभेदात् द्रष्टव्यम् । क्रुङ् इति क्व चित्य-
ठते ॥ ८३६ ॥

रुङ् गतिरेष'णयोः ॥ रवते । रुखे इत्यादि, गवतिवत् । रावयति ।
अरीरवत् । 'ओः पुयण्जी'ति यण्परत्वादभ्यासस्येत्वे दीर्घः । रु शब्दे

इत्यदादौ । अय्यैव निरनुबन्धकस्य 'उपसर्गे रुवः' विभाषाङि रुपुवो'रित्यत्र ग्रहण वृत्त्यादौ कृतम् ॥ ८४० ॥

धृङ् अवध्वमने ॥ धरते । दध्रे । इत्यादि धृञ्भत् ॥ ८४१ ॥

मेङ् प्रणिदाने ॥ प्रणिदानं विनिमयः । प्रत्यर्पणमित्यपरे । अपमयते । प्रणिमयते । 'नेर्गदि'ति णत्व, तत्र माङ्मेङोर्यहणमिति वृत्तिः । मेङ् आत्वाभावेऽपि णत्वमिति हरदत्तः । ममे । ममिषे । 'आतो लोप' इत्याल्लोपः । मातासे । मास्यते । मयताम् । अमयत । मयेत । मासीष्ट । प्रणय-मास्त । अङ्ग्रवायेऽपि णत्वमिष्यते । मित्सते । 'सनि मीमे'तीस्, अभ्यासस्य लोपः । 'सः स्यादृधातुक'इति तत्त्व, मेमीयते । 'घुमास्ये'तीत्वम् । मामाति । मामीतः । 'ई हल्यघोरिनी'त्व हलादौ स्थितम् । अजादौ तु शनाभ्यस्तयो'रित्याल्लोपः । माययति । अमीमयत् । मितम् । 'व्यतिस्पतिमेती'त्वम् । अपमित्य याचते । अपमाय याचने । 'न ल्यपी'तीत्वनिषेधः । 'मयतेरिदन्यतरस्या'मिति पक्षङ्कारः । 'उर्दाचा माङो व्यतीहार'इति व्यतिहारार्थादस्मात् त्वा । अपूर्वकालार्थं वचनम् । याचित्वा ह्यसावपमयने । अत्रोर्दाचा ग्रहणात् यथाप्राप्तमपि भवति । याचित्वापमयतइति, अन्यथा येन नाप्राप्तिन्यायेन अपूर्वकालात् त्वो बाधः स्यात् । अपमित्य निवृत्तमापमित्यकम् । 'अपमित्ययाचिताभ्या कङ्कना'विति निवृत्ते यथासंख्यादस्मात् कङ्, धान्यमायः । 'ह्वावामश्चे'ति कर्मण्युपपदे ऽणि युक् । अत्र वृत्तौ माङ्गानइत्युपादाय 'गामादाग्रहणे'ष्वविशेष'इति मेङोप्युपलक्षणमिति हरदत्तः ॥ ८४२ ॥

देङ् रक्षणे ॥ दयते । दिश्ये । दिग्याते । दिग्यिषे । दिश्ये । 'दयतेर्दिगि लिटो'ति दिग्यादेशे 'एरनेकाच' इति यण् । दिग्यादेशेन द्विवचनस्य बाधनमिष्यतइति वृत्तिः । दातेत्यादि । अदित । अदिष्य । 'स्याध्वोरिच्छेति' सिचः कित्त्वमित्त्व च । प्रदाय । 'घुमास्ये'तीत्व 'न ल्यपी'ति निषिध्यते । शेषं मयतिवत् ॥ ८४३ ॥

श्येङ् गतौ ॥ श्यायते । शश्ये । शश्याते । शश्याषे । श्याता । श्यास्यते । श्यायताम् । अश्यायत । श्यायेत । आशिषि श्यासीष्ट ।

अश्यास्त । शिश्यासने । शाश्यायते । शाश्याति । श्यापयति । आशि-
 श्यपत् । अश्याय । प्रतिश्यायः । 'श्याद्धे'ति णः । श्यैडो ऽवस्यते ।
 श्वाकारान्तत्वादेव णे सिद्धे प्रतिपदोपादानेन सोपसर्गार्थमिति स्यितम् ।
 शीत मेदः । शीनो वायुः । 'द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्य'इति द्रवस्य मूर्त्तौ
 काठिन्ये स्पर्शगुणे च वर्त्तमानस्य श्यायतेर्निष्ठाया परतः प्रसारणे 'हल'
 इति दीर्घः । तत्रास्पर्शे 'श्योस्पर्श'इति निष्ठानन्त्वे द्रवमूर्त्तिस्पर्शाभ्याम-
 न्यत्र श्यानो वृश्चिक इति सप्रसारणं न भवति, निष्ठानन्त्व 'सथोगादे-
 रात्' इत्येव सिद्धं, प्रतिशीनं, 'प्रतेश्चे'ति श्यैडः प्रतेः परस्य निष्ठायां
 प्रसारणं, 'श्योस्पर्श'इत्यत्र स्पर्शग्रहणेन गुणो निषिध्यते न तु रोग इत्य-
 न्नापि निष्ठानन्त्व भवति । अभिशीनः । अभिश्यानः । अवशीनः ।
 अवश्यानः । 'विभाषाभ्यवपूर्वस्ये'ति श्यैडो निष्ठाया वा सप्रसारणम् ।
 अत्राभ्यवाभ्यामिति वक्तव्ये पूर्वग्रहणं व्यवहिते तथा स्यादिति अभिसंशीन
 इत्याद्यापि भवति, मूर्त्तिस्पर्शयोः परत्वादियमेव विभाषा भवति, सर्वत्र
 संप्रसारणपक्षे स्पर्शादन्यत्र 'श्योस्पर्श'इति निष्ठानन्त्वमन्यत्र 'सथोगादे-
 रात्' इति ॥ ८४४ ॥

ष्यैड् वृद्धौ ॥ प्यायते । प्ये इत्यादि श्यैवत् ॥ ८४५ ॥

चैङ् पालने ॥ चौरात् त्रायते । 'भीत्रार्थानां भयहेतु'रिति भय-
 हेतोश्चौरस्यापदानत्वम् । त्राणं, त्रातः । 'नुदविदे'त्यादिना निष्ठानन्त्व
 वा, इदं च व्यवस्थितविभाषाविज्ञानादेव त्रात इत्यादौ न भवति ।
 स्मिङ्प्रभृतय एतदन्ता अनुदात्ता आत्मनेभाषाः ॥ ८४६ ॥

पूङ् पवने ॥ एतदादयो ङीङन्ता उदात्ता आत्मनेपदिनः । पवते ।
 पुपुषे । पविता । पविष्यते । पवताम् । अपवत । पवेत । पविषीष्ट ।
 अपविष्ट । पिपविषते । 'सनि यज्ञगुहोश्चे'ति चकारेणो गन्तानां समुच्च-
 यात् निषेधे प्राप्ते तदपवादः 'स्मिपूङि'ति इट् । 'द्विर्वचनेची'ति गुणावा-
 देशयोः स्यानिवत्त्वात्पूशब्दस्य द्विर्वचनं, पुयण्जीत्यभ्यासस्येत्वं, पोपयते ।
 पोपोति । पावयति । अपीपवत् । पूत्वा । पवित्वा । पूतवान् । 'पविन-
 वान् । पूतं, पवितम् । 'पूङश्चे'ति त्वानिष्ठयोर्वैडागमः । 'पूङः त्वा चे ति

सेटोः त्वानिष्ठयोर्नान्यमकित्वं पूङ् इति मातृप्रत्ययनिर्देशात् यङ्नुक्ति-
निष्ठाया कित्वमेव । पोपुवितम् । पोपुवितवान् इति । च्वाया तु 'न
त्वा सेडि'ति कित्वनिषेधात् पोपुवित्वेति भवति । पवमानः । 'पूङ्गजोः
शानत्'इति शानत्यव्ययः । पोत्र हलस्य पूङ्गस्य वा मुत्वम् । 'हलक-
रयोः पुव' इति करणे घृत्, तच्चेत् करणं हलमृज्जोरवयवो भवति ।
पवित्र दर्भः । 'पुवः मज्जाया मिति करणं इत्र । घृत्तेनेनेति पवित्र-
मृषिर्मन्त्रश्च । पवतइति पवित्रम् आन्यादिः । 'कर्त्तरि कृ'र्देउन्वयो रिति
च्यौ करणे देवदत्ताया कर्त्तरि पवतेरित्र । यदायमित्रः कर्त्तरि तदा
नपुनकलिङ्ग एवोदाहृतः । पूङ् ज्यौदौ, तस्यापि घृत्त्रयोर्विधौ सामा-
न्येन ग्रहणमित्युक्तानि रूपाणि तस्यापि ॥ २४० ॥

मूङ् वन्धने ॥ मवनइत्यादि पवतिवत् । मूमपते । मूत्वा । मूत
इत्यत्र 'श्युक्तः किति' 'सिनि ग्रहगुहोश्चे'ति इल्लिण्येधः ॥ २४१ ॥

डीङ् विहायमा गनौ ॥ विहायमां गनाविति क्व चित्पठ्यते ।
तदाकाशगमनइतिपठ्या चन्द्रधनदालाभ्या प्रत्युक्तम् । व्यामोरोभ्या
गमने डयते अहते च इति पठन् केशवस्वाम्यत्रैकानुसूलः । अयमेव पाठो
मैत्रेयादीनामपि । डयते । डिङ् । डिङ्गिपे । 'एरनेकाच' इति यण् ।
डयिता । डयिष्यते । डयनाम् । अडयत । डयेत । डयिषीष्ट । अड-
यिष्ट । डिङ्गिपते । डेडीपते । डेडेति । डाययति । अडीडयत् ।
डयित्वा । 'निष्ठा शीङि'त्यत्र निष्ठेति योगविभागात् डयितमित्यपि
भवतीति पारायणे । डीङ् शब्दे देवादिकस्य । पूङ्गादयस्त्रय एते उदात्ता
आत्मनेपदिनः ॥ २४२ ॥

तृ प्रवनतरणयोः ॥ उदात्तः परस्मैभाषा । तरति । ततार ।
तेरतुः । तेरु । तेरिथ । तेरथुः । तेर । ततार । ततर । तेरिव । 'चच्छ-
त्युता'मिति गुणः, वृद्धा तु स्वविषये पूर्वविप्रतिषेधेनाय बाध्यते ।
'तृफलभजत्रपश्चे'ति किति लिटि थलि च सेटि एत्वाभ्यासलोपौ ।
तरिता । तरीता । तरिष्यति । तरीष्यति । 'वृनो वे'ति इटो वा
दीर्घः । वृङ् वृञ्भ्यामृदन्ताच्च परस्मैटो वा दीर्घ इति सूत्रार्थः । अत्र

अलिटीत्यनुवृत्तेर्न लिटि दीर्घः । अतरत् । तरेत् । आशिषि तीर्थात् ।
 'ऋत इट्ठातो'रिति इत्वरपरत्वयोः 'हलि चे'ति दीर्घः । इत्वात्वाभ्यां
 गुणवृद्धौ भवतो विप्रतिषेधेनेयुक्तञ्च न तयोर्विषयइत्वम् । अतारीत् ।
 अतारिष्टाम् । अतारीः । अतारिष्टम् । अतारिष्ट । 'धृत' इतीटो दीर्घः
 'सिचि च परस्मैपदेष्वि'ति बाध्यते । तितरीरिति । तितरिषति । तित-
 रीषति । 'धृतो वे'त्यधिकृत्य 'इट् सनि वे'ति इटो विकल्पनात् 'सनि
 यहुगुहोश्चे'ति निषेधोत्र न भवति । इडभावे 'इको भलि'ति सनः
 कित्वादगुणत्वे 'ऋत' इति इत्वरपरत्वयो 'हलि चे'ति दीर्घः । इट्पक्षे
 'धृत' इति दीर्घविकल्पनात् । तातीर्त्ति । अभ्यासस्यारदत्वे हलादिशेषे
 'दीर्घाकित' इति दीर्घः । 'रयिकौ चे'ति रयिणीको न भवन्ति, 'ऋत-
 श्चे'ति तपरकरणेन ऋकारान्तस्याङ्गव्याभ्यासे तद्विधानात् । तातीर्त्तः ।
 तातिरति । तातीर्षि । तातीर्यः । अगुणविषये इत्वे रपरत्व, हल्परत्वे तु
 दीर्घश्च । लोटि तानर्तु । तातीर्त्तात् । तातीर्त्ताम् । तातिरवु । तातीर्हि ।
 तातराणि । तातडे डि'त्वात्र गुण, इत्वादि, लिङि तिसिषोर्हलङ्गादिलोपे
 अतातः । अतातीर्त्ताम् । अतातरु । अत्र 'जुसि चे'ति गुणेन परत्वा-
 दित्थ बाध्यते । तातीर्थात् । तातीर्थाताम् । आशिषि सलोपाभावो
 विशेषः । तातीर्थास्ताम् इत्यादि । तारयति । अतीतरत् । व्यतितरते ।
 व्यतिरे । व्यतिवरीना । व्यतिवरिष्यते । व्यतिवरीष्यते । व्यतितरताम् ।
 व्यत्यरत । व्यतिरते । व्यतिवरिषीष्ट । व्यतिवीर्यीष्ट । 'लिङ्सि-
 चोरात्मनेपदेष्वि'ति ऋत इटो विकल्पनात् पक्षे इट् । तस्य च दीर्घत्वं
 'न लिङी'ति निषेधोत्र भवति । इडभावे 'उत्वे'ति लिङ्सिचोः
 कित्वादगुण इत्यादि लुङ्गपि पूर्ववत् । सिच इडभावे कित्वेत्वयोर्ग्र-
 त्यर्ताष्टेति, इट्पक्षे दीर्घविकल्पे व्यत्यतरिष्ट, व्यत्यतरीष्टेत्यादि । अयं
 च दीर्घविकल्पः प्रकृतस्येष्ट इति चिह्नदिटो न भवति, तेन तारिता,
 तरिता, तरीना, तारिष्यते, तरिष्यते, तरीष्यते, इति त्रीणि रूपाणि
 भवन्ति । लिङि शुद्धोपीट् पात्तिकस्तस्य च न दीर्घ इति तारिषीष्ट,
 तरिषीष्ट, तरीषीष्ट, इति त्रीणि रूपाणि । लुङि त्वेकवचने अतारि ।

अन्यत्र चिह्नद्विष्ट । अनारिषाताम् । शुद्धे पुनरिटि दीर्घविकल्पनात्, अन-
 रिषाताम्, । अतरीषाताम् । अय चेष्ट 'लिङ्सिचोरात्मनेपदेष्वि'ति पक्षे
 न भवति तदा 'उश्वे'ति कित्वेच्चादौ अनरीषातामित्यपीति चातूरूप्य
 भवति । ध्वमि चिह्नद्विष्टि शुद्धेष्टश्च दीर्घादीर्घयोर्विभाषे'इति
 मूर्द्धन्यविकल्पनात् अनारिध्वम्, अतारिध्वम्, अतरिध्वम् । अतरिध्वम्, अत-
 रीध्वम्, अतरीध्वम्, इति षड् रूपाणि । इडभावे नित्ये मूर्द्धन्ये अनरीध्व-
 मिति आह्वय सप्त रूपाणि । रयन्तरम् साम । 'सञ्ज्ञाया भृमृश्री'ति
 खच् । अवतारः । पक्षे, 'अवे तृस्त्रार्घजि'ति वरणाधिकरणयोर्घञ् । तीर्त्वा ।
 तीर्णः । तीर्णवान् । 'श्युक्रः कीनी'तीर्णनपेयः । निष्ठायामित्त्वरपरत्व-
 दीर्घत्वेषु 'रदाभ्यामि'ति नत्व, तीर्णः । कृत इकारः । कृत्वादिभ्यः
 क्तिन् निष्ठावत् भवतीति नत्वम् । तरुणः । 'कृत्तृनृद्वारिभ्य उनवि'ति
 उनन् प्रत्ययः । कवयः तरुणिमा इतीमनिच प्रयुज्जते । नास्य लक्षणमस्ति ।
 तरुणी । 'वयसि प्रथम'इति डीप् । तनुनी सुरा । कपिलकादीनां
 सञ्ज्ञाद्वन्द्वसोर्वा लत्वप्राप्यतइति लच्च, 'नञ्चञ्जीककुरुणनलुनानामुप-
 संख्यानमि'ति डीप् । नञ्चञ्जईककः प्रत्यया इनरे प्रातिपदिकानि ।
 तरुः । 'भृमृश्री'त्यादिनोप्रत्ययः । तालु । तरतेर्लश्चेति उण्प्रत्यये
 रेफस्य च लत्वम् । तीर्थम् । 'पातृतुदी'त्यादिना ये कृत इत्वादि । तर्ष
 उत्साहः । तूर्योभिलाषः । 'वृतृवदी'त्यादिना सः । तरणि । 'अर्त्तिवृतृ'
 इत्यादिना अनिप्रत्ययः ॥ ८५० ॥

गुप गोपने ॥

तिज निशाने ॥

मान पूजायाम् ॥

बन्ध बन्धने ॥

गुप गोपनकुत्सनयोरिति मैत्रेयः । एते च गुपादयः । 'गुप्तिङ्कट्प्रा-
 सन्' । 'मान्बधदान्यान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्ये'ति नित्यसनन्ताः । तथा च
 भाष्य, नैतेभ्यः प्राक् सन आत्मनेपद नापि परस्मैपद पश्याम इति ।
 तथा च 'पूर्ववत्सन' इत्यत्र वार्तिक पूर्वस्यात्मनेपददर्शनात् सनन्ता-

दात्मनेपदमिति चेत् गुपादिष्वप्रमिट्ठिरिति । अथ च सन् गुपेर्निन्दायां,
 तिज्जेः समाया, मानेर्जिज्ञासायां, बन्धेर्वैरूप्य, इति वृत्तावुक्तत्वात् । अत्रा-
 पठितेष्वर्थेषु न च सन् अस्ति, न चैषा केवलानां पठितेष्वर्थेषु प्रयोगः ।
 पूर्वाक्तभाष्यवार्तिकविरोधात् । किं च भाष्ये ऽनुबन्धकरणसामर्थ्यात्
 अवयवे ऽकृतं लिङ्गं समुदायस्य विशेषकं भवतीति सनन्तादात्मनेपदस-
 मर्थनं च विरुध्यते, तथा निन्दादेरन्यत्र केवलानां गुपादीनां प्रयोगे तत्रै-
 वानुबन्धासज्जनस्यात्मनेपदार्थत्वेन चरितार्थत्वात् कथं सामर्थ्यं कथं
 वानुबन्धत्वमेवं च गोपते, तेजते, इति स्वाम्युक्तः केवलात् तिङः
 प्रयोगः प्रत्युक्तः । अत्र नन्दिमैत्रेयौ । न ह्येतेभ्य इत्यादिना भाष्येण
 तिङामभावः प्रतीयतइति निन्दादेरन्यत्र कृतमुदाजहृतुः । हरदत्तस्त्वे-
 तन्नानुमन्यते, यदाह । 'पूर्ववत्सन'इत्यत्र कथं तर्हि जुगुप्सादेः समुदाय-
 स्यानुदात्तेत्वमन आह । अवयवइति । अवयवे ह्यचरितार्थं लिङ्गं साम-
 र्थ्यादवयविनो विशेषकं भवति । यद्येव गोपयति तेजयतीत्यादावपि
 प्रसङ्गः । अथ यं समुदायं यो ऽवयवो न व्यभिचरति तत्र कृतं लिङ्गं
 तस्य विशेषकं भवति णिजन्तं च व्यभिचरति विनापि तेन जुगुप्सतइति
 गुपेः प्रयोगादित्युच्येन, सन्नन्तादपि न स्यात्, विनापि तेन गोपयतीति
 गुपेः प्रयोगात्, वक्तव्योत्र विशेषः । अयमुच्यते । गुप गोपनइत्यस्य
 सन्विधौ ग्रहणन्तस्माच्च नित्यः सन्नेव भवति नापरः प्रत्ययः । गोपय-
 तीत्यादिकस्तु प्रयोगो गुप रक्षणे इत्यस्य, स चान्य एव । अवश्य चैतदेवं
 विज्ञेयम् । अन्य एव सन्प्रकृतिस्तस्माच्च सनेव भवतीति । अन्यथा
 निन्दाया अन्यत्र यथा णिजभवति तथा लडादिरपि स्यात् । एव
 तिजिप्रभृतयोपि समाद्वयं यत्र सन्निष्यते तन्नानुदात्तेनो नित्यसन्नन्ताश्च,
 क्षमादिभ्योन्यत्र यत्र णिजिष्यते तन्नानुबन्धका एव चुरादौ पठितव्या
 इति । तत्रैव मते अवयवे ऽकृतं लिङ्गमिति भाष्योपपत्तिः । यदि हि
 कृतः स्युस्तर्हि अनुदात्तत्वं युज्यते स्याद् इति अनुदात्तत्वस्य कथमवा-
 रितार्थम् । अथोदाहरणानि । जुगुप्सते । जुगुप्साञ्चक्रे । जुगुप्सिता ।
 जुगुप्सिष्यते । जुगुप्सताम् । अजुगुप्सत । जुगुप्सेत । जुगुप्सिषीष्ट ।

अनुगुप्मिष्ट । अत्रास्य मनो धानुमण्डनेनाविधानादनर्थधानुकम्बान्वे-
ज्जुगौ । एवं नितिननइत्यादि । मीमामनइत्यादौ 'मात्वर्थे'त्युपधा-
दीर्थः । अय चाभ्यामविकारेष्वपवादा नात्मर्गाधीन् बाध-
न्तइति अभ्यामस्य हलादिगेदृश्यादिषु कृतेष्वेव । एव यीभत्सनइत्या-
दावपि । अत्रैकाचो वश इति वकारस्य भकारः । धकारस्य खरि
चेति चत्वं तकारः । गोपायतीति रक्षणे । गुपादयश्चस्वर एतेन-
दात्तेतः ॥ ८५४ ॥

रभ राभस्ये ॥ राभस्यमुपक्रम । एतदादायो हृदेत्यन्ता अनुदात्ता
अनुदात्तेत । आभते । आरेभे । आरेभिषे । आरेभिष्वे । ऋदितियमा-
दिट् । एत्वाभ्यासलोपौ, आरब्ध । 'भक्तयो'रिति धत्वे 'भक्ता जग्
भशी'ति जश्त्व भकारस्य वकारः । आरप्स्यते । 'खरि चे'ति चत्वंम् ।
आरभताम् । आरभत । आशिषि । आरप्मीष्ट । आरब्ध । सिञ्जोपधत्व-
जश्त्वे, आरिप्सते । 'सनि मीमे'त्यादिना इत् । 'स्को'रिति सलोपः ।
आरारभ्यते । आर'रम्भीति । आरारब्ध । इट्पञ्चे 'रभेरशङ्खितेः' शङ्खि-
भ्यामन्यत्राजौ नुम्विधानानुमि अनुस्वारपरसधर्मा । आरारब्धः । आरा-
रभति । अत्राद्वावे ऽजादित्वान् कृतस्य नुमो 'ऽनिदितामि'ति नलोपः ।
आरारम्भाणि । आरारम्भामः । आद्यजादित्वानुम्, पित्वाचलोपाभावः ।
लङि तिप्सिपोर्हलङ्यादिलोपे जश्त्वचत्वंयोः आरारप् । आरम्भयति ।
आररम्भत् । अत्र परामपि वृद्धि निव्यत्वात् नुम् बाधते । आरम्भः ।
आरम्भणम् । अजादित्वानुम् । रम्भा । पचाद्यचि टाप् । रभसः ।
सत्यमीत्यादिना ऽमच् । बाहुलकानुमभाव, राभस्येति निपातनात्
वा ॥ ८५५ ॥

डुलभप् प्राप्तौ ॥ लभतइत्यादि सर्वे रभतिवत् । अस्यापि शङ्खि-
द्वर्जिते ऽजादौ नुम् । आलभ्या गौः । 'आडो यी'ति आङ्पूर्वाल्लभेर्य-
कारादौ नुम् । अत्र यीत्यस्य विषयसप्तमीत्वात् प्रागेव प्रत्ययोन्यत्तेः पूर्वं
नुमि अदुपधन्वाभावात् 'पोरदुपधादि'ति यच्चेति एयद् भवति । एयद्-
तोश्च स्वरे विशेषः, एयति 'गतिकारकोपपदात् कृदि'ति कृदन्तोत्तरपद-

प्रकृतिस्वरः, 'तित्स्वरितमि'ति स्वरितत्व भवति । यदि तु उत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वेन 'यतो ऽनाव'इति यदन्तं दृक्कमाद्युदात्त स्यात् । अत्र च विषयसंप्रमीत्वमिति 'इदितो नुम् धातो रित्यतः धातेरित्यनुवृत्त्या भाव्ये प्रतिपादितम् । उपलभ्या विद्या । 'उपात् प्रशंसाया'मिति लभेर्यकारादौ विषये नुम् । अत्र धात्वर्थस्य प्राप्तेः प्रशंसापादनद्वारेण प्राप्यमाणद्वारेण वा प्रशंसा । अन्यत्र नुम्भावात् 'पोरदुपधादि'ति यति उपलभ्यमस्मात् वृषलात् १ न किं चिद् भवति । अत्रापि एयद्व्यतोः स्वरे विशेष । ईषत्प्रलम्भः । सुप्रलम्भः । 'उपसर्गात्खल्घजो'रिति नुम् । 'लभेश्चे'ति सिद्धे वचनमिदं नियमार्थं खल्घजोरजाद्योर्धदि भवति उपसर्गात् परस्यैवेति, तेन इषल्लाभो लाभ इत्यत्र नुम् न भवति । सुलभः । दुर्लभः । सुलाभः । दुर्लाभः, इत्यत्र तु उपसर्गात् परत्वेन 'सुदुर्भ्या केवलाभ्या'मिति नुन्निषेधः । अत्र केवलशब्द उपात्ताभ्यां सुदुर्भ्यामन्यस्य सजातीयोपसर्गस्याभावमाह, तेन सुदुर्भ्यामन्योपमर्गरहितस्य लभे. खल्घजोर्नुम् न भवतीति सूत्रार्थः । उपसर्गान्तरयोगे तु अतिप्रसुलम्भ इति नुम् भवत्येव । सुदुर्लभमतिदुर्लभ सुलभ, सुदुर्लाभः, अतिदुर्लाभ, इति प्रयोगास्तु 'सुः पूजायाम्' 'अतिरतिक्रमणे चे'ति स्वत्योः कर्मप्रवचनीयत्वे द्रष्टव्याः । अतिक्रमणं फलप्राप्तावपि क्रियानुपरतिः । उक्तेषूदाहरणेषु खल्घजोर्न बाधः, विषयभेदात्, कर्मणि खल्, भावे च घञ् इति । यद्वा सुरत्र त्रये यथा सुषिक्तं किं तवात्रेति, दुर्निदायां यथा दुर्ब्राह्मण इति । तेन कृच्छ्राकृच्छ्रार्थत्वाभावात् खलभावः । अलाभि, अलम्भि, लाभलाभं, लम्भलम्भं, 'विभावा चिण्णमुलो'रिति लभेर्नुम्बिकल्पः, व्यवस्थितविभावाविज्ञानात् सोपसर्गस्य नित्यं नुम् भवति । प्रालम्भि, प्रलम्भप्रलम्भमिति । लाभेन निर्वृत्तं लब्धिम, द्वितः क्रिः 'किर्न्नित्य'मिति मप् । पित्वादङ् । लभा । लब्धिः । क्तिचवादिभ्य इति क्तिन् ॥ ८५६ ॥

स्वञ्ज परिष्वङ्गे ॥ स्वजते । 'दंशसञ्जस्वजां शपी'ति अनुनासिकलोपः । सस्वजे, सस्वञ्जे । सस्वजिषे । सस्वजिषे । सस्वजिहवे । 'इन्धिभ-

वतिभ्यामि'त्यत्र अन्यायन्यदभिस्वञ्जीनां वेति वक्तव्यमिति लिटः क्त्वि-
विकल्पनात् पठे ऽनुनामिकलोपः । तथा 'सदिस्वञ्ज्या' रित्यत्र वृत्तिव्याख्या-
नेषु स्वञ्जे. सयोगान्तादपि लिटो विभाषा क्त्वमिच्छन्तीति । स्वङ्गा ।
स्वङ्गते । स्वजताम् । अस्वजन । स्वजेत । स्वङ्गीष्ट । अस्वङ्ग । मिस्व-
ङ्गते । 'स्तौतिण्योरेवे'त्यपत्वम् । सास्वज्यते । सास्वङ्गि । सास्वञ्जीति ।
सास्वक्तः । सास्वजति । लोटि हौ सास्वक्थि । लङि तिप्पिरोर्हल्-
ङ्यादिलोपे सयोगान्तलोपे अमास्वत् । स्वञ्जयति । अमस्वञ्जत् ।
प्रतिष्वजते । 'उपमर्गात् मुनोती'त्यादिना पत्व प्रत्यष्वङ्ग । 'प्राक् सिता-
दङ्ग्यवायेपी'ति पत्व, परिष्वजते । निष्वजते । विष्वजने । 'परिनिवि-
भ्य' इत्यादिना पत्वम् । 'उपमर्गात् मुनोती'त्यादिनैव सिद्धे स्तुस्वञ्-
ज्योऽपादान 'सिवादीना वाङ्ग्यवायेपी'ति परिनिविभ्यः परन्वे अङ्ग्य-
वाये सिवादित्वादनयोः पत्वविकल्पोऽयं यथा स्यादिति । तेन पर्यष्व-
जत पर्यस्वजत इत्याद्युभय भवति । प्रतिमस्वजे इत्यादौ 'स्यादिष्व-
भ्यासेने'त्याभ्यासात् परस्य प्राप्त पत्व 'सदिस्वञ्ज्या. परस्य लिटी'ति
निवार्यते ॥ ६५७ ॥

हृद पुरीषोत्सर्गं ॥ हृदते । जहदे । जहदिपे । हत्ता । हत्प्यते ।
हृदताम् । अहृदत । हृदेत । सत्सीष्ट । अहत । जिहत्सते । जाह
द्यते । जाहदीति । जाहसि । हादयति । अजीहदत् । हवः । 'रदा-
भ्यामि'ति नत्वम् । रभादयश्चत्वारोऽनुदात्ता अनुदात्तेतः । नन्दी तु हादिं
विभाषानुदात्तेतमाह ॥ ६५८ ॥

जित्त्विदा अव्यक्ते शब्दे ॥ अयमुदात्त उदात्तेत् । त्वेदति ।
चित्त्वेद । चित्त्वेदिथ । चित्त्विदिव । तासौ नित्यानिट्त्वाभावान्न भार-
द्वाजनियम इत्युक्तम् । ह्वेदिता । ह्वेदिष्यति । ह्वेदतु । अह्वेदत् ।
ह्वेदेत् । त्विद्यात् । अह्वेदीत् । चित्त्विदिपति । चित्त्वेदिपति । 'रलो
व्युपधादि'ति क्त्वविकल्पः । चेत्वेति । ह्वेदयति । अचित्त्विदत् ।
त्विदित्वा । ह्वेदित्वा । त्विणः । जीतः क्वेति वर्त्तमाने क्तः । 'आदि
तश्चे'ति इडभाषः, 'रदाभ्यामि'ति निष्ठानत्वम् । त्विणमनेन, त्वेदि-

तमनेन । प्रत्विणः । प्रवेदितः । 'विभाषा भावादिकर्मणो'रितीड्-
विकल्पः । 'निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिस्विदिधृष' इति सेटो निष्ठाया
अकित्वात् गुणः । जिह्विदा स्नेहनमोहनयोरिति दिवादौ ॥ ८५८ ॥

स्कन्दिर् गतिशोपणयोः ॥ इतो मिहन्ता उदात्तेतो ऽनुदा-
त्तेतः । स्कन्दति । चस्कन्द । चस्कन्दिथ । चस्कन्य । चस्कन्दिव । ज्ञा-
दिनियमादिट्, यलि भारद्वाजनियमात् विकल्पः । स्कन्ता । स्कन्त्स्यते ।
स्कन्दतु । अस्कन्दत् । स्कन्देत् । स्कन्दात् । 'किदाशिषि' इति
कित्वा'दनिदितामि'ति नलोपः । अस्कदत् । 'इरितो वे'ति वाङि
नलोपः । अङोभावे अस्कान्त्सीत् । अस्कान्ताम् । अस्कान्त्सुः । 'वदव्र-
जे'ति वृद्धिः, भलादौ 'भलो भली'ति सिञ्जलोपः । चिस्कन्त्सति । चनी-
स्कदते । 'नीभवञिच्च'त्यादिना नीक् । चनीस्कन्ति । चनीस्कतः ।
चनीस्कदति । स्कन्दयति । अचस्कन्दत् । गेहास्कन्दमास्ते । 'विशिपती'-
त्यादिना णमुल् । नृतीयाप्रभृतिन्याद्गुः समासः । तेनैवाकृत्वात् 'नित्यवी-
प्सयो'र्न द्विवचनम् । असमासे वीप्साया द्रव्यवचनस्य द्विवचनं नित्यत्वे
क्रियावचनस्येति गेहगेहमवस्कन्द, गेहमवस्कन्दमवस्कन्दमिति । क्रियाभेदे
त्कापीयते इत्युक्तत्वात् गेहङ्गेहमवस्कन्देत्याद्यापि भवति । विस्कन्ता
विस्कन्ता । 'वेः स्कन्देरनिष्ठाया'मिति वा षत्वम् । अनिष्ठायामिति
पर्युदासे नञिव्युक्तन्यायेन कृत्येवायं विकल्पः । तथा च वृत्तिकारेण पर्यु-
दासो व्याख्यातः, कृतश्चोदाहृताः । निष्ठायां विस्कन्नः । 'रदभ्यामि'ति
निष्ठानत्वम् । परिष्कन्ता, परिस्कन्ता । 'परेश्वे'ति वा षत्वम् । पृथग्यो-
गकरणात् अनिष्ठायामिति नानुवर्त्ततइति वृत्तिः, तेन परिष्करणः परि-
स्कन्न इति भवति । अत एव पर्युदासाभावात् नञिव्युक्तन्यायो नास्तीति
तिङ्यपि भवत्येव विकल्पः । परिष्कन्दति, परिस्कन्दति इति । परि-
स्कन्दः, 'परिस्कन्दः प्राच्यभरतेष्वि'त्यपत्वम् । अस्य प्रयोगस्य प्राच्यभर-
तविषयत्वम् । स्कन्त्वा । प्रस्कन्द्य, 'त्तिव स्कन्दिस्पन्दो'रिति नलोपा-
भाषः । उत्कन्दो नाम रोगः । 'उदः स्यास्तम्भो'रित्यत्र 'रोगे चेति वक्त-
व्यमि'ति वचनात् स्कन्देः सकारस्य पूर्वसवर्णस्तकारो भवति ॥ ८६० ॥

यभ विपरीतमैयुने ॥ विपरीतानुष्ठानइत्यर्थे इति मैत्रेयः । पुरुष-
कारे तु यभ विपरीतमैयुने इति विपरीतयन्तइत्यर्थे इति । क्व चित्य-
त्यते यभ मैयुनइति । यभनि । ययाभ । येभतुः । येभिय । ययश्च ।
येभिष । ऋादिनियमाच्चित्यमिट् । यलि भारद्वाजनियमात् विकल्पः ।
यब्धा । यप्स्यति । यभतु । अयभत् । यभेत् । यभ्यात् । अयाप्सीत् ।
अयाब्धाम् । यियप्स्यति । यायभ्यते । यायश्च । याभयति । अयीयभत् ।
यब्धा । यभ्यम् । 'पोरदुपधा'दिति यत् । जभेत्येकइति मैत्रेयः । जभ
चेति धनपालशाकटायनौ । जप जभेति शाकटायनः । तत्र जभेः पाठो
न्यामपदमञ्जरीकृतोरनभिमतः, सति ह्यस्मिन् 'लुपसदचरजपजभदहद-
शभञ्जपशा च' । 'रधिभजोरची'त्यादौ जभजृभीतिवदमुन्पुपाददीया-
ताम् । किञ्च जभेः पाठेनाप्यनिटा भाव्यत्वात् 'रभिश्च भान्तेष्वय
मैयुने यभिस्तनसृतीषो लभिरेव नेतर' इति व्याघ्रभृतिवचनेनापि विरोधः
स्यात् । तृतीयश्च यभिरेव, तत्र वृत्तौ यभेत्युदाहरणान् । जम्भनइति
गात्रविनामे गतः ॥ ६६१ ॥

यभ प्रहृत्वे शब्दे ॥ नमति । ननाम । नेमतुः । नेमिय । ननन्य ।
नन्ता । नन्यति । नमतु । अनमतु । नमेत् । नम्यात् । अनसीत् ।
अनसिष्टाम् । 'यमरननमातामि'ति सगिटौ, परस्मैपदे निनसति । ननं-
म्यते । ननमीति । ननन्ति । ननन्तः । ननमति । ननन्वः, नचन्मः । 'म्वा-
श्चे'ति नत्वम् । लङि अननन् । अनन्ताम् । 'मो नो धातो'रिति पदान्ते
नत्वम् । नमयति । नामयति । 'ज्वलद्वलह्वलनमामनुपमर्गाद्वे'ति मित्व-
विकल्पः । सोपसर्गात् अमन्तत्वाच्चित्यमित्वम् । प्रणमयति । 'उपसर्गा-
दसमासेपी'ति णत्वम् । अनीनमतु । नमते दण्डः स्वयमेव । अनस्त
दण्डः स्वयमेव । 'न दुहसुनमामि'ति यक्चिणोर्निषेधः । नमः । 'नमि-
कम्पी'ति रः । नेमिः । भाषाया 'धाञ्छुगमिजनिनमिभ्य'इति किकिने-
रन्यतरः । तस्य लिङ्गद्वावादेत्वाभ्यासलेपौ भवतः । 'अनुदात्ते'त्यनुनासि-
कलोपः । प्रणत्य । प्रणम्य । 'वा ल्यपी'त्यनुनासिकलोपविकल्पः । नृन् नम-
यति इति नृनमो नाम कश्चित् । 'लुभादिषु चे'ति पाठारण्यत्वाभावः । नमः ।

असुन् । नमस्यति देवान् । पूजयतीत्यर्थः । 'नमोवरिवश्चित्रङः क्यजि'ति क्यच् । नमसः पूजायामिति तत्र वृत्तिः । नमस्कृत्य । नमस्कृत्वा । 'साक्षा-
त्प्रभृतीनि चे'ति कृजो योगे पक्षे गतिसञ्ज्ञा, गतित्वे 'कुगती'ति समासः ।
'नमस्पुरसोर्गत्यो'रिति विसर्जनीयस्य सत्त्व च । नमो देवेभ्यः । 'नमःस्व-
स्तिस्वाहास्वधालंघयद्योगाच्चे'ति नमोयुक्ताच्चतुर्थी । नाशुर्वस्मीकः ।
'फलपाठिनमी'त्यादिना उपत्ययो नाकादेशश्च । नप्ता । 'नप्तेनेष्टृ'इ-
त्यादिना वृत्ति मकारस्य पकारो निपात्यते । नप्तारावित्यादौ असबुद्धौ
सर्वनामस्थाने 'अप्ता'वित्यादिना उपधादीर्घः ॥ २६२ ॥

गच्छु सप्ता गतौ ॥ गच्छति । 'इषुगमियमां छ' इति छः । 'छे
चे'ति तुक् । जगाम । जगमत्तुः । जगन्त्य । जगमिय । जगिम् । जगिम ।
क्रादिनियमादिट् । यलि भारद्वाजनियमात् विकल्पः । डितोरजाओ-
'गमहने'त्युपधालोपे तस्य 'द्विर्वचनेची'ति स्यानिवत्त्वात् द्विर्वचनम् ।
गन्ता । गमिष्यति । 'गमेरिट् परस्मैपदेष्व'ति सकारादेरिट् । गच्छतु ।
अगच्छत् । गच्छेत् । आशिषि गम्यात् । अगमत् । लृटित्त्वात् अङ् ।
'गमहने'त्यत्रानङ्'ति पर्युदासात् नोपधालोपः । जिगमिपति । जिग
मिष त्वमित्यत्र हेर्लुका लुप्तत्वात् परस्मैपदाभावे भाष्यवार्तिकयोः
सिद्धं तु गमेरात्मनेपदेन समानपदस्यस्येष्टः प्रतिषेधात् इति न्यासान्त-
रेण आत्मनेपदेन समानपदस्यस्य गमेः सकारादेरिग्नियेधात् इडभाव
इति । एवं जिगमिपितेत्यादौ कृत्यपीठं भवति । इदं भाष्यवार्तिकं चेति
आत्मनेपदेषीग्नियेधे सिद्धेणैवारभ्यमाणमर्थान्वयेन बोधयति । अत एव
भाष्यवार्तिकविरोधात् 'गमेरिङि'त्यत्र परस्मैपदग्रहणं गम्युपलक्षणा-
र्थम् । परस्मैपदेषु यो निर्देष्ट इति पुरुषकारदर्शनमुपेत्य, वृत्तावय पक्षः
प्रतिषेधार्थमेव उपलक्षितः । यदाह तत्र हरदत्तः । न पुनरय पक्षः
स्थापितो भाष्यवार्तिकविरोधादिति । कः पुनरत्र फलभेदः । उच्यते ।
सम्पूर्वस्याकर्मकस्य गमेः 'समो गमृच्छी'त्यात्मनेपदित्वात् परस्मैपदेष्व



दर्शनात् संजिगमिषिते इत्यादौ इण् न स्यात्, तथा जिगमिषा चक्रइत्यत्र भावकर्मविषयस्य गमेः परस्मैपदेष्वदर्शनात् इण् न स्यात् । अथ मतं परस्मैपदेषु दृष्ट एव गमिः उपसर्गादिवशेनात्रात्मनेपदेपीति^१ दृष्टविष्यतीति । तर्ह्यस्य गमेः सर्वत्रेष्ट स्यात्, गम्यते स विशेष इति भाष्यप्रयोगश्च विरुद्धेत । कथं तर्ह्यात्मनेपदेन समानपदस्यस्येयिनपेये जिगमिषितेवाचरति जिगमिषितीयतइति हरदत्तादयः । बहिरङ्गस्य आत्मनेपदस्य प्रतिषेधाभाव इति । अथ च प्रकारो ऽस्माभिः क्रमतावुपपादितः । जङ्गम्यते । 'नित्य कौटिल्ये गन्ता'विति गतिवचनत्वान् कौटिल्ये एव यङ्, 'नुगत' इत्यभ्यासस्य नुक्क्यनुस्वारपरमवर्णौ । जङ्गमीति । जङ्गन्ति । जङ्गतः । 'अनुदानोपदेशे'त्यनुनासिकलोपः । जङ्गमति । प्रकृतिग्रहणन्यायेन 'गमहने'त्युपधालोपः । जङ्गन्मि । जङ्गन्त्वः । 'म्योश्चे'ति नत्वम् । जङ्गहीत्यत्रानुनासिकलोपे तस्या'सिटृवदन्त्ये'सिटृत्वान् 'अतो हे'रिति लुग् न भवति । अत्र सुधाकर । अनुदानोपदेशा यम्यदय इति यम्यादेर्गणत्वेन निर्देशात् निर्दिष्ट यङ्गणेन चेत्यनुनासिकलोपाभावमुक्त्वा यदा धातुपाठ एव गणस्तदा भवितव्यमेव लोपेनेत्याह । 'हन्नेर्ज'इत्यत्र जङ्गीत्युदाहरणे न्यासकारोपि व्याख्यातवान् । निर्देशेन गणनिर्देशं नानुमन्यते । अत एव न्यासकारमुधाकरविराधान् शितपा शपेन्यत्र यत्रोपदेशग्रहणमिति क्व चित्पाठः स उपेत्यः । अजङ्गन् । 'मो नो धातो'रिति नत्वम् । गमयति । अजीगमत् यामं देवदत्त यत्तदत्तः, यामायेति वा । 'गतिबुद्धी'ति प्रयोज्यस्य कर्मत्वम्, अत्र 'गन्त्यर्थकर्मणी'ति यामात् द्वितीयाचतुर्थ्या । यामश्चात्र गमेरेव कर्म, यतो यामकर्मिकाया गतौ प्रेष्यते याम गच्छतीति, प्रयोज्यस्तु एयन्तस्य कर्म न गमेरिति न तत्र चतुर्थी भवति । अत्र कर्मणि लादयो 'एयन्ते कर्तुश्च कर्मण' इत्यभिधानात् प्रयोज्ये भवन्ति । गम्यते याम देवदत्तः । गमयितव्य इत्यादि, अत्र कृत्योपलक्षणा षष्ठी 'गन्त्यर्थकर्मणी'त्यत्र चतुर्थी चेति वक्तव्येति द्वितीयाग्रहणात् बाध्यते, यद्वा 'कृत्याना'मित्यत्र योगविभागेन उभयप्राप्तौ कृत्ये षष्ठी नेत्युक्तत्वात् कर्तृवत्

कर्मण्यपि षष्ठा नैव प्रसङ्गः । याम गन्ता गमयितेत्यादौ तु पुनर्द्वितीयाय-
हणादेव षष्ठा बाधः । अत्रानध्वनीति पर्युदासात् अश्ववचनेभ्यो यथायोगं
द्वितीयापष्ठावेव भवतः, अध्वानं गच्छति पन्थानं गच्छति अध्वनो गन्ता
पथो गन्ता इति । अयं चानध्वनीति प्रतिषेध आस्यितप्रतिषेधश्चायं
विज्ञेय इति वृत्तावुक्तत्वात् आस्यितिविषयः, आस्यितः प्रथममेव स्वीकृतः,
तेन यदेत्येन पन्थानं गच्छति तदा यामादिवत् द्वितीयाचतुर्थौ द्वे अणु-
दाहार्ये, द्वितीयया षष्ठा बाधेपि चेष्टाग्रहणं मनसा पाठलिपुत्र गच्छ-
तीत्यादौ चतुर्थीनिवृत्त्यर्थम् । आगमयते माणवकः, कालं हरति न
त्वरते इत्यर्थः । 'आगमेः क्षमायामात्मनेपदं वक्तव्यमिति' एयन्तात्तङ्,
क्षमा उपेता, कालहरणमिति वृत्तिः । एयन्त एवायमत्रार्थं च वर्तत इति
तस्यादाहरणं, सङ्गच्छते, 'समो गमृच्छी'त्यकर्मकात् सङ्गमेः तङ् ।
सञ्जमे । सञ्जमाते । 'गमहने'त्युपधालोपः । सङ्गन्ता । सङ्गंस्यते । सङ्ग-
च्छताम् । समगच्छत । सङ्गच्छेत । आशिषि सङ्गसीष्ट । लुङि समगत ।
समगंस्त । समगंसाताम् । 'वा गम'इति कनःप्रोत्तिङ्मित्रोऽन्त्यनेरद-
विषये वा कित्वा तदा 'ऽनुदात्तोपदेशे'त्यनुनासिकलोपः भलि, 'ह्रस्वाद-
ङ्गादि'ति सिञ्जलोपः । न चास्मात् पूर्वमतो लोप इत्यल्लोपस्य प्रसङ्गः,
आर्द्धधातुकोपदेशे ऽनकारान्तत्वात् 'असिद्धवदत्रे'त्यनुनासिकलोपस्या-
सिद्धत्वात् वा, सर्वत्र गमेरात्मनेपदेन समानपदस्यत्वात् सकारादेरिड-
भावः । सिञ्जगंसते । अत्रा वक्तने'ति दीर्घा न भवति, आदेशस्य गमेर्य-
हणात् । यत्तु तरङ्गिण्या दीर्घप्रदर्शनं तद्वमेर्दीर्घं इगिङ्ग्रहणमग्रहणे
क्षणादेशस्यापि दीर्घत्वप्रसङ्गात् इति वार्तिकविरोधादुपेत्य, गम्यम् ।
'पोरदुपधा'दिति यत् । सुतङ्गमो नाम कश्चित् । 'गमश्चे'ति सुषुपपदे
सञ्जाया खच् । 'असिद्धिपदजन्तस्ये'ति मुम् । सुतङ्गमेन निवृत्तः सौत-
ङ्गमिः । 'बुद्धिः कठजिलसेनिर्दग्ध्ययफक्फिज्ज्यकक्ठकोऽरीहणकृशा-
श्वश्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसकाशबलपदकर्णसुतङ्गमप्रगदित्वराहकु-
मुदादिभ्यः' । इति यथासख्यात् सुतङ्गमादेश्चातुरर्थिक इज् । अन्तगः ।

‘अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु ड’ इति अन्तादिषु गमेडः कर्मसूपपदेषु, डित्वसामर्थ्यादभत्वेपि टिलोपः । एवमत्यन्तग इत्युदाहार्यम् । सर्वत्रगः । पत्रगः । ‘सर्वत्रपत्रयोरुपसङ्गानमि’ति डः । उरमा गच्छतीत्युरगः । उरसो लोपश्चेति डप्रत्ययः, उरसः मलोपश्च । मुचेन गच्छतीति मुगः । दुर्गः । ‘सुदुर्गेरधिकरण’ इति डः । अत्र न्यासे वासरूपविधिना ल्युङित्युक्तम् । तदयुक्तम् । कल्युटुमुन्वलयेषु वासरूपविधेः प्रतिषेध इत्युक्तत्वात् । अधि-
 कारणादन्यत्र सुगम इति खलेव भवति । निर्गच्छन्त्यचेति निर्गा देशः । ‘निर्गा देश’ इति डः, देशादन्यत्र निर्गमनमिति ल्युट् भवति । ग्रामगः । डोन्यत्रापि दृश्यत इति डः । मित गच्छतीति मितङ्गमो हस्ती, खच्-
 प्रकरणे ‘गमेः सुष्युपसङ्गानमि’ति खच् । विहङ्गमः । ‘विहायसो विहश्चे’ति खचि विहायसश्च विहादेशे मुमागमः । विहङ्गः । खश्च डिट्वा वक्तव्य इति खचो डित्वाटिलोपः, विहगः । ‘डे च विहायसो विहादेश’ इति विहादेशः । अस्मादेवानुवादात् डोऽन्यत्रापि दृश्यत इति वा डः ।
 गामुकः । ‘लपपने’त्यादिना उक्ञ् । गत्वरः । ‘गत्वरश्चे’ति कुरपि अनुना-
 सिकलोपो निपात्यते । गत्वरी । ‘टिट्वाणञ्’ इत्यादिना डीप् । जमिः । ‘भाषायां धाञ्कृमृगमी नि किकिनोरन्यतरस्मिन् उपधालोपः, लिङ्गद्वावात् द्विवचनम् । जगत् । ‘अतिगमिजुहोनीना द्वे चे’ति कौ द्विवचनम् ‘गमः क्वावि’त्यनुनामिकलोपः, स्त्रियां ‘वर्तमाने पृषद्बृहन्महन्जगत्सरसा शतृब-
 च्चे’ति शतृबद्वावान् डीप् । उत्सादिषु जगतीति पाठात् जगत्या अपत्यादिषु जागवम् । ‘उत्सादिभ्योजिति’ प्राग्दीव्यनोऽञ् प्रत्ययः । जगत इदं जागतमित्यत्र अचामादिरचो वृद्ध्या उपधालजगणा वृद्धिर्बाध्यते इति वृत्तिः । जगत्येव जागतं कृन्दः । कृन्दसः प्रत्ययविधाने ‘नपुमके स्वार्थ-
 उपसङ्गानमि’त्यञ् । अध्वगत् । कलिङ्गगत् । ‘अन्येभ्योपि दृश्यत’ इति क्तिपि अनुनासिकनोपः । अये गच्छत्ययेगूः । ‘ऊङ् गमादीनामि’ति कौ अनुनासिकलोपे अकारस्येकारः, अय च धातोस्कार इति अयेवावित्या-
 दाबुवडादेशे प्राप्ते ‘क्रोः सुपी’ति यण् । ‘तत्पुरुषे कृती’त्यलुक् । गमी । ‘गमेरिनि’ति ‘भविष्यति गम्यादय’ इति भविष्यदर्थे च । आगामी । आडि

कर्मण्यदिति णित्वात् वृद्धिः । अयमपि गम्यादिपाठात् भविष्यति, अयं
 ह्राहुलकात् केवलादपीति गामीत्यपि भवति । यामगमी । यामगामी ।
 अत्रादिपु गमिगामीत्यादिना तत्पुरुषः । 'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययो'रिति
 कृद्योगलक्षणा पठौ बाधित्वा एतयोर्योगे द्वितीया । गमः । 'यहवृद्धि-
 श्चिगमश्चे'ति भावे कर्त्तरि च कारके अप्रत्ययः । एकाहेन गम्यतइत्ये-
 काहगमः । 'अश्वस्यैकाहगम' इति निपातनादपु । अन्यथात्र 'परिमा-
 णाख्याया सर्वेभ्य' इति परिमाणस्य गम्यमानत्वात् घञ् स्यात् । अत्र
 सर्वयहणमजपोर्बाधनार्थमित्युक्तम् । निगमः । 'गोचरा'दिना करणाधि-
 करणयोर्घः । गत्वा । 'अनुदात्तोपदेशे'त्यादिना अनुनासिकलोपः ।
 आगम्य । आगत्य । 'वा ल्यपी'ति अनुनासिकलोपविकल्पः । गतम् ।
 'क्लोधिकरणे चे'ति कर्त्तृकर्मभावाधिकरणेषु क्तः । यामगतः । 'द्वितीया-
 श्रिते'ति तत्पुरुषः । गत च तत्प्रत्यागत च गतप्रत्यागतम् । कृतापकृता-
 दीनामुपसख्यानमिति तत्पुरुषः । गतमेव तत्कालं गतप्रत्यागमनेन गत-
 प्रत्यागतमुच्यते । गन्तुः^१ । 'तनिगमी'त्यादिना तुन् । गान्त्रम् । 'भस्जि-
 गमिनमिहनिविश्यशा वृद्धिश्चे'ति घृनि वृद्धिः । गन्त्री कम्बलिवाह्य
 शकटम् । बाहुलकात् वृद्धभावाः । वृत्वावित्यादिना सञ्ज्ञायां वृ-
 चोरन्यतरो वा । कम्बलः साक्षा तद्योगान्त्वर्थीयेनिना कम्बलिना
 बलीवर्द्धा उच्यन्ते । तथा च रभसः । प्रवारिष्युत्तरासङ्गे सान्वायामपि
 कम्बल इति । गात्रम् । 'गमेरा चे'ति घृनि मकारस्याकारः, सुगात्री ।
 सुगात्रा । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादि'त्यत्र अङ्गात्रकण्ठेभ्य इति पठे डीष् ।
 गौः । 'गमेर्ङा' इति डोप्रत्यये ङित्वात् टिलोपः । 'गोतो णिदि'ति
 सर्वनामव्यानस्य णित्वात् वृद्धिः । अम्शसोस्तु 'औनोऽम्शने'रिति
 पूर्वपरयोराकारे गा गा इति, 'तस्माच्छसो नः पुंसी'त्यत्र तच्छब्देन
 प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घस्य परामर्शनादिह नत्व न भवति । ङसिङ्सोस्तु
 'ङसिङ्सोश्चे'ति ङसोरेङश्च पूर्वरूपे गोरिति, गवां समूहे गव्या
 गोत्रा । 'खलगोरयादि'ति यः, 'इनित्रकट्यचश्चे'ति यथासख्याचस्य

भावात् स्त्रीलिङ्गैः, यकारादौ प्रत्यये 'वान्तायी'त्यवादेशः । गोत्रास्या-
स्तीति गौत्रिकः, 'एकगो'पूर्वाट्ठञ् नित्य'मिति मत्वर्थे ठञ् । गोमी ।
'ज्योन्वातमिस्राशृङ्गिणोर्जास्विचूर्जम्बलगोमिन्मलिनमनीमसा इति मत्वर्थे
मिनिप्रत्यये निपात्यते । गोर्विकारावयवो वा गव्यम् । 'गोपयनोर्पदि'ति
षष्ठ्यन्तात् विकारावयवयोर्पत् । गोः पुरीष गोमयम् । गोः पुरीषे मयट्,
गवे हितं गव्यम् । 'उगवादिभ्यो यदि'ति प्राक्कीनीयो यन् । गोर्निमित्त
सयोग उत्पातो वा गव्यः । प्राणिना शुभस्य अशुभस्य वा सूचको महा-
भूतविकार उत्पातः । 'गोद्व्यचोमन्यापरिमाणाश्वादेर्यदि'ति यन् ।
गोशब्दात्सख्याश्वादिर्वर्जनान् द्यवश्च तस्य निमित्त सयोग उत्पातो
वेति विषये यदिति सूचार्थः । गोरिदं गव्यम् । 'सर्वत्र गोरजादिप्रत्यये
यद्वक्त्र्य' इति प्राग्दीव्यतीये वार्थे यत् । एव च तत्र तत्रार्थे सूत्रेण
यद्विधानं प्रपञ्चार्थम् । दाराश्च गावश्च दारगवम् । दृन्ढा दचतुरेत्या-
दावचि निपातितः । अनुगवं शकटम् । गौर्यया आयत तथायनमित्यर्थः ।
'अनुगवमायामे'अनुगुशब्दादचि निपात्यते । इह आयाम इति अर्गआद्य-
जन्तः, तद्वृत्ति वर्त्तते । अनुगुशब्दश्चायं 'यस्य चायाम'इति अव्ययीभावः,
अनुर्यस्यायामवाची तेनान्यस्यायामवतो लक्षणभूतेन समस्यतइति सूचार्थः ।
इह गोरायामः शाकटायामस्य लक्षणं भवति । आगवीनः । गवा भूतो य
आगतः । यः प्रत्यर्पणात् कर्म करोति स एवमुच्यते । आगवीन इति आगु-
शब्दात् कारिणि खप्रत्यये निपात्यते । आगुशब्दश्च 'आङ्मर्यादाभि-
धो'रिति आङो मर्यादावचनस्य पञ्चम्यन्तेन गोशब्देन गोप्रत्यर्पणे वर्त्त-
मानेनाव्ययीभावे पञ्चमी, 'आङ् मर्यादावचन'इति आङ्, कर्मप्रवचनीयत्वे
तद्युक्तत्वात् 'पञ्चम्यपाङ्परिभि'रिति विधीयते, गोः पश्चात् अनुगु,
'अव्ययं विभक्ती'त्यादिना पश्चादर्थेऽव्ययीभावः । अनुग्वल पर्याप्त
गन्तुं शीलमस्य अनुगवीनो गोपालकः । 'अनुग्वलं गामी'ति क्रिया-
विशेषणाद् द्वितीयान्तादलङ्गामीत्यर्थे खः । तिष्ठन्ति गावो यस्मिन्
काले दोहनाय स कालस्तिष्ठद्गु । वहन्ति आगच्छति गावो दोहनाय
यस्मिन् स कालः वहद्गु । अयन्ति यस्मिन्काले गोदोहनाय स

कालः श्रयद्गु इति । आयन्ति यस्मिन् काले दोहनाय स कालः श्रयद्गु इति । तिष्ठद्गुप्रभृतीनि चेति अव्ययीभावे निपात्यते । परमगवः । 'सन्महत्परमे'ति तत्पुरुषे 'गोरतद्वितलुक्की'ति टच् । टित्त्वात् स्त्रिया परमगवी । अतद्वितलुक्कीति वचनात् पञ्चभिर्गोभिः क्रीतः पञ्चगुरित्यत्र टच् न भवति । अत्र हि 'आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणादुगि'ति गोपुच्छादिव्यतिरिक्तात् प्रातिपदिकात् यथायथं समर्थयुक्तात् आर्हायेष्वर्थेषु विहितस्य ठकः 'अध्यर्तुपूर्वद्विगोलुंगसत्तायामि'ति लुक् क्रियते, द्विगुत्व च तद्वितार्योत्तरपदे'ति समासे 'संख्यापूर्वा द्विगुरिति द्विगोश्च 'द्विगुश्चे'ति तत्पुरुषत्वात् अस्ति टचः प्रसङ्गः, पञ्चगवधन इत्यत्र पञ्च गावो धनमस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ 'तद्वितार्योत्तरपदे'ति पूर्वयोः समासे संख्यापूर्वत्वेन द्विगुत्वात् तत्पुरुषत्वे टच् । पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम् । 'तद्वितार्ये'ति समासे पूर्ववत् द्विगुतत्पुरुषयोश्च टच्, अत्र समासार्थादुत्तरपदादकृतएव समासे समासान्ता इति अकारान्तोत्तरपदद्विगुत्वात् 'आकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां भाष्यत'इति प्राप्स्य स्त्रीत्वस्य पात्रादिभ्यः प्रतिषेध इति निषेधः । चित्रा गावो यस्य चित्रगुः । 'गोस्त्रियोः-सर्जनस्ये'ति उपसर्जनगोशब्दान्तप्रातिपदिकत्वात् ह्रस्वः, अत्र 'गोः पूर्वत्व-णित्वात्वस्वरेषु' इति स्यानिवृत्तिनिषेधात् न गोतो णित्वम् । ननु तत्कालव्यावृत्त्यर्गाद् गोत इति तपरकरणदेव न भविष्यति, अस्त्वत्र परिहारः चित्रगो चित्रगव इत्यत्र सम्युद्धौ 'जसि चे'ति गुणे विकृतं गोरूपमिति स्याणित्वं, नन्वेवमत्रायनेन निषेधेन स्यानिवृत्तकृतमेव णित्वं निवार्यतां न तु स्वाश्रयमपीति गोरूपस्याव्याहतत्वात् तदाश्रय णित्वं स्यादेव, नैष दोषः । यदत्र गोरूपस्य लाक्षणिकत्वान्नक्षत्रप्रतिपदोक्तपरिभाषया तदपि न भविष्यति । वृत्तौ तु गोत इति पष्ठान्तमाश्रित्य गोशब्दार्थसंबन्धिसर्वनामस्यानं णिदिति व्याख्यातमत्र मते न कुत्रापि णित्वप्रसङ्गः । यदत्र सर्वनामस्यानं तदन्यपदार्थस्य संबन्धिनो गोशब्दार्थस्य, तपरकरणं त्वोकारान्तोपलक्षणार्थं, वर्णनिर्देशेषु प्रसिद्धत्वात्, तेन दोशब्दस्यापि णित्कार्थं भवति, अपरे तु श्रोत इति पठन्तीति चोक्तं वृत्तौ । गोऽयम् गोअयम् । 'सर्वेच

विभाषा गो'रिति ह्रस्वसि भाषाया चाति परे वा प्रकृतिभावः । अन्यदा 'एङः पदान्तादतीति पूर्वत्वम् । गवायम् । अवङ् म्फोटा'यनम्ये'ति अवडादेशः, अयं च व्यवस्थितविभाषात्वात् गवाक्षमित्यत्र नित्य, चित्रावयमित्यत्र गोः पूर्वति स्यानिवत्त्वनिषेधात् प्रकृतिभावादिति । गवाश्वम् । गवाविकम् । गवैडकम् । अत्र 'गवाश्वप्रभृतीनि चेति समाहार एव द्रुन्दुः, अयं च नियतो गवाश्वप्रभृतिषु यथोच्चारित द्रुन्दु वृत्तमिति वृत्तावुक्तत्वात् अवडभाव इति । 'विभाषा वृत्ते'त्यादिना पशुद्रुन्दु विभाषैव तेन गोश्व गोश्वा इत्यादि । गङ्गा । 'गन् गम्यादे'रिति गन् प्रत्ययः । गङ्गाया अपत्य गाङ्गेयः । 'शुभादिभ्यश्चेत्यत्र चकारेणाकृतिगणत्वद्वयाननाटुक । तिकादिपाठादपत्येपि फिजि गाङ्गायनिरित्यपि भवति । सर्पेति । समर्पे । ससृपतुः । ससर्पिष्य । ससृपिव । क्रादिनियमादिट् । स्रप्ता । सर्प्ता । सर्म्यति । स्रस्यति । 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यरस्या'मिति भलादावकिति प्रत्यये पक्षे मित्वादन्यादचः परे ऽमागमे यणादेशः । अन्यदा गुणः । सर्पेत् । असर्पेत् । सर्पेत् । आशिपि स्रय्यान् । असृपन् । असृपनाम् । लृदि-त्वादङ् । सिसृप्सति । 'हलन्ताच्चे'ति सनः कित्वाच्च गुणो नाप्यमागमः । सरीसृप्यते । 'रीष्टत्वत' इति रीक् । सरीसृपीति । सरीसर्पिः । सरीसृपि । प्रकृतिग्रहणन्यायेन 'अनुदात्ते'ति अमागमः । सरीसृपः । पचाद्वचि 'दङोचि चे'ति यङो लुकि 'न धातुलोप' इति लघूपधगुणभाव, यङ्लुगन्तात् इगुपधलक्षणः को वा । सर्पेयति । अससर्पेत् । असरीसृपन् । 'उर्चैत्' वा । स्रय्यः । 'स्रदुपधाच्चे'ति क्यप् । सर्पेः । पचादित्वादच् । स्रप्ता । स्रप्तः । पीठेन स्रप्तुं शीलमस्येति पीठसर्पी, णिनिः सुप्यजानाविति, पीठसर्पिण इमे पैठसर्पा 'इनण्यनपत्य'इति प्रकृतिभाव बाधित्वा 'नान्तस्य टिलोपे पीठसर्पो'त्यादिना टिलोपः । सर्पिः । 'अर्चिगुचिहुसृपिच्छादिच्छर्दिभ्य इसि'तीस्प्रत्ययः । प्रियसर्पिः । उर प्रभृतिन्त्वात् नित्य कप् । 'इणः ष'इति अप-दाङ्गोः कुप्चेर्त्रिसर्जनीयस्य षत्वम् । सृप्रः । 'सृज्जेन्द्रे'त्यादिना रक् ॥ ८६३ ॥

यम उपरमे ॥ अत्र मैत्रेयः उदित्वमस्य के चिदिच्छन्तीति । यच्छति । 'इगुगमियमामि'ति छः शिति । ययाम । येमतुः । ययन् । येमिथ ।

यन्ता । यंस्यति । यच्छु । अयच्छत् । यच्छेत् । आशिषि यम्यात् ।
 अयंसीत् । 'यमरमे'ति सगिटौ । यियसति । ययम्यते । ययन्ति ।
 यंयन्तः । यमर्याति । अयीयमन् । भोजयतीत्यर्थः । अमन्तत्वात् मित्वम् ।
 अस्य च 'यमोपरिवेण'इति परिवेणणादन्यत्र मित्वनिषेधात् आयामयते
 आयामयतीति भवति । 'न पादम्ये'त्यत्रायामग्रहणेना'णावकर्मकादि'ति
 कर्त्रभिप्रायप्राप्तस्य परस्मैपदस्य निषेध इति ययायोगमत्रात्मनेपदपरस्मै-
 पदे भवतः । आयच्छते । दीर्घो भवति, व्याप्रियतइति वार्थः । आय-
 च्छते स्वरूपाणि द्राघयति व्यापारयति वेत्यर्थः । 'आडो यमहन' इति
 अकर्मका'त्स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यमिति अकर्मकात्स्वाङ्गकर्मकाच्चाङ्-
 पूर्वादस्मात्तङ् । इह स्वमङ्ग स्वाङ्ग न तु अद्रवन्मूर्तिर्मदित्यादिना लक्षितं
 पारिभाषिकमिति देवदत्तस्य पाणिमायच्छतीत्यत्र न भवति । उपय-
 च्छते कन्या, परिणयतीत्यर्थः । 'उपाद्वमः स्वकरण'इति तङ् । अत्र
 भाष्यम्, इह कस्मान्न भवति स्व शटकं तमुपयच्छति, अय यदा स्वं
 करोति तदा भवितव्यमेव । अत्र वृत्तिकारशिवस्वामिभ्यामिदं भाष्योक्त-
 मस्वस्य स्वत्वेन करण प्रसिद्धिवशात् पाणिग्रहणविषयउपसंहृतम्^१ । कैयटे
 तु निष्पादनलक्षणोऽत्र करोत्यर्थो गृह्यते इति, सामान्येनापि वार्तिकका-
 रेण पाणिग्रहणविशिष्टं स्वकरणं शिवस्वामिजयादित्याबूवतुः । प्रसिद्ध-
 त्वा, दुपायस्त नतीरित्यादिप्रयोगस्तु साधर्म्यात् । भाष्यकारस्तु स्वक-
 रणमात्रे विशिष्टे स्थित इत्युक्त, भट्टिकाव्ये च शास्त्राण्युपायस्त जित्वरा-
 णीति सामान्येन प्रयुज्यते । सयच्छते व्रीहीन्, उपयच्छते भारम् । आय-
 च्छते वस्त्रम् । 'समुदाङ्भ्यो यमोयन्य'इति समादिभ्यो यमेस्तङ् । यदा
 तु कर्तृभिप्रायत्वमुपपदेन प्रतीयते तदा 'विभाषोपपदेन प्रतीयमान'इति
 स्वान् व्रीहिन् सयच्छतीत्यपि । इहाडो ग्रहणमन्वाङ्गकर्मकार्यम् । स्वाङ्ग-
 कर्मका दाडो यमहन'इत्येव सिद्धम् । अयन्यइति वचनात् उदयच्छति
 विक्रिन्सां वैद्य इति अत्र परस्मैपदमेव, विचिकित्सामधिगन्तुमुद्यमं
 करोतीत्यर्थः । यदायं यमिर्गन्धने वर्तते गधनं सूवनं परेण प्रच्छादयमा-

नस्य आविष्करणं तदा 'यमो गन्धन' इत्यात्मनेपदम् । परस्मैपदस्य
सिचः कित्वादनुनासिकलोपः । उदायत । उदायसानामित्यादि । भलि
सिचलोपः । उपयमनार्थे तु 'विभाषोपयमन इति तङ् । तङ्परस्य
यमेः सिचः कित्त्वधिकल्पनात् उपायत कन्याम्, उपायस्त कन्यामित्यु-
भयं भवति । उपयमनमिह दारकर्म । यम्यम् । 'गदमदेत्या'दिना यन् ।
उपसृष्टात् एयति विनियाम्यमिति । त्वया नियम्या इति प्रयोगः निय-
मशब्दात् करोतीति लौ यति द्रष्टव्यः । धातोर्लौ 'यमोपरिवेषण' इति
मित्त्वनिषेधात् वृद्धा भाव्यम् । वाचयमः । 'वाचि यमो व्रत' इति
खच् । 'वाचयमपुरन्दरौ चे'ति निपातनादनुक् । सयमः । सयाम् ।
'यमस्ममुपनिविषु चे'ति निपातनादनुक् । एव समुपनिविध्योपुदाहा-
र्यम् । सयत् । सम्पदादित्वात् 'अन्येभ्योपि दृश्यत' इति वा क्पि 'गमः
क्वावि'त्यत्र 'गमादीनामिति वक्तव्यमिति उक्तत्वात् अनुनासिकलोपे
तुक् । यच्छतीति यमः । अच् । याम्यम् । प्राग्दीव्यतीयेष्वयम् 'यमश्चेति
वक्तव्यमिति एयः । यमुना । 'अर्जियमिशीङ्भ्यश्चे'ति उनत् प्रत्ययः ।
यन्त्रम् । 'एधृजी'त्यादिना ञः प्रत्ययः ॥ ८३४ ॥

तप सन्तापे ॥ तपति । तताप । तेषिथ । ततप्य । तप्ता ।
तप्यति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्तीत् । अताप्यात् ।
'भलो भली'ति सिचलोपः । तितप्सति । तातप्यते । तातप्ति । तापयति ।
अतीतपत् । चौर सन्तापयतीत्यत्र 'रुजार्थाना भाववचनानामञ्जरे' इति
कर्मणि पठ्ठी न भवति तत्राञ्जरे सन्ताप्योरिति निषेधात् । उत्तपते चित-
पते । 'उद्विभ्या तप' इत्यकर्मकास्त्वाङ्गकर्मकाश्च तङ् । अकर्मकस्य भास-
नार्थत्वेन । यदाऽयमस्त्वाङ्गकर्मकस्तदोत्तपति सुवर्णमित्येव भवति ।
तप्यते तपस्तापसः । अतप्त तपस्तापसः । 'तपस्तपःकर्मकस्यैवे'ति तपः-
कर्मकस्य तपेः कर्तुः कर्मवद्वावादात्मनेपदम् । अत्र तपेरर्जनमर्थ इति
तापसस्तत्र कर्ता, यत्रासौ कर्मोपवासादीनि तपासि तापस मन्तपन्तीति
तत्र तपिर्दुःखानुभावनार्थ इति कर्मणस्तपसो व्यापारो दुःख
क्रियाभेदाद्विध्यर्थमेतत् । एवकारः सूत्रे च सर्ववाक्याना

येत्वादर्थप्राप्तस्यैवावधारणस्यानुवादकः । अत्र 'तपोनुतापे चे'ति चकारेण कर्मकर्त्तरि चिणो निषेधात्सिच् । अत्रानुतापग्रहणस्य कर्मकर्त्तृत्वा-
दन्वतप्त पापेन कर्मणेत्यत्रापि चिणन भवति, अनुतापादन्यत्रोदतापि
सुवर्णे मुन्नर्गजारंगेनि भवितव्यमेव चिणा । तप्यम् । 'पोरदुपधादि'ति
यत् । ललाटतप आदित्यः । 'असूर्यललाटयोर्दृशितपो'रिति यथासख्यात्
ललाटे कर्मण्युपपदे तपेः खशि मुम् । शत्रुन्तपः । 'सञ्ज्ञायां भृतृवृजौ'
त्यादिना खचि पूर्वपदस्य मुमागमः । द्विषन्तपः । परंतपः । 'द्विषत्परयोस्ता-
पे'रिति खचि णिलोपे 'खचि ह्रस्व' इति ह्रस्वः । द्विषतस्तकारस्य मुमि सयो-
गान्तलोपः । अत्र द्विषत्परयोरिति द्वितकारनिर्देशात्तकारान्तएव द्विषच्छ-
ब्दउपपदेऽयं प्रत्ययः, न तु लिङ्गविशिष्टपरिभाषया द्विषतीशब्दउपपद-
इति कर्मण्यणि द्विषतीतापइति भवति । तथा तापेरिति यन्तस्य ग्रह-
णात्केवलादप्यणैव भवति । असञ्ज्ञायां द्विषताप इति, सञ्ज्ञायां तु
'सञ्ज्ञाया भृतृवृजौ'त्यादिना खजुक्तः । तपः । असुन् । तपश्चरति तपस्यति ।
'कर्मणो रोमन्यतपोभ्यां वर्तिचरो'रिति रोमन्यतपोभ्यां कर्मभ्या यथासंख्यं
वर्तिचरोरर्थयो क्यङिति क्यङ् । कर्मण इति प्रत्येकसम्बन्धापेक्षमेकत्वम् ।
'तपसः परस्मैपद चे'ति परस्मैपदम् । तपस्या । क्यङन्तत्वात् 'अ प्रत्य-
यादि'ति स्त्रियामकारः । तपः शीलमस्य तापसः । 'कृत्रादिभ्यो ण'इति
णः । अत्र णेऽणकृतं कार्यं भवतीति प्रागेवोक्तं, तेन तापसीत्यत्र ङीप्
भवति । तपस्वी । 'तपः सहस्राभ्यां विनीनी'इति मत्वर्थे विनिः । अत्रै
वार्थे 'अश्वे'त्यणि तापसः, तपस्वीत्यत्र 'तसौ मत्वर्थे' तकारान्त सकारान्तं
च मत्वर्थे प्रत्यये भमिति भसञ्ज्ञयाऽऽकङारीययाऽनवकाशया 'स्वादि-
ष्वसर्वनामस्यान'इति पदसञ्ज्ञाया बाधा 'त्ससजुषोरुरि'ति ह्रस्वं न भवति ।
तापः । घञ् । सन्तापाय प्रभवति सान्तापिको रोगः । 'तस्मै प्रभवति
सन्तापादिभ्य' इति चतुर्थ्यन्तात्सन्तापशब्दात्प्रभवत्यर्थे ठञ् । निष्ठपति ।
निष्ठपत् । 'निसस्तपनावनासेवन'इति षत्वम्, आसेवन पौनःपुन्य
ततोऽन्यदनासेवनम् । अयमैश्वर्यं दिवादौ, दाहे चुरादौ ॥ ६५ ॥

त्यज हानौ ॥ त्यजति । तत्याज । तत्यजतुः । तत्यजिथ । तत्य-
कथ । तत्यजिव । त्यक्ता । त्यज्यति । त्यजतु । अत्यजत् । त्यजेत् ।

त्यज्यात् । अत्यातीत् । अन्याक्ताम् । तित्यजिषति । ताव्यज्यते ।
 ताव्यक्ति । त्याजयति । अतित्यजत् । त्यागशीलस्यागी । सपृचादि-
 त्वाद् घिनृण् । 'वज्रोः कु घिण्यनोरिति कुत्वम् । त्याज्यमित्यत्र एयति
 प्रतिषेधे त्यजेरुपमग्यानमिति कुत्वाभावः । त्यद् । 'त्यजियजितनिभ्यो
 ङिङि'त्यदिप्रत्यये ङित्वाट्टिलोपः । स्यः । 'त्यदादीनाम'इति त्यदाद्यर्थ-
 विभक्तिनिमित्तनिबन्धनेत्यस्याख्ये पररूपे च त्यदादीनामित्यधिकारे 'तदोः
 सः सावनन्त्ययो'रिति तकारस्य सकारः । त्यौ त्ये इत्यादौ सर्वनाम-
 कार्ये पूर्ववत् । अन्वादिस्त्यदादिप्राधान्यपीष्यतइति परमस्य इत्यादि
 भवति, अप्राधान्ये तु अतित्यदित्यादि । त्यस्येद त्यदीयम् । 'त्यदादीनि
 चे'ति वृद्धत्वा वृद्धाच्छ इति छः । त्यस्यापत्य त्यादायनिः । 'उदीचा वृद्धा-
 दगोत्रादि'ति फिञ्, अगोत्रनत्ययान्तावृद्धादपत्ये फिञ्उदीचा मतेनेति
 सूत्रार्थः । स्यस्व देवदत्तस्व त्यौ । 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्य'मिति त्यदः शेषः ।
 स च स्यस्व तावित्यत्र त्यदादीना यन्पर तच्छिष्यतइति वा परस्य तदः
 शेषः । स्त्रिणं 'त्यदादीनाम'इति विभक्तावत्वे टापि 'हल्ङ्राभ्य' इति
 सुपो लोपे स्या इति भवति । मन्त्रिपानपरिभाषा 'न यामयो'रिति
 निर्देशाल्लिङ्गादनित्यत्वज्ञापनाच्च भवति । अय एयन्तो द्विकर्मक इति
 सुधाकरादिमतेन नायतावुक्तं, दृश्यते च प्रयोगः, 'त्याजितैः फलमुत्पातैः,
 'पूषोष्मणा त्याजितमात्रभाव'इत्यादि । 'अक्रयितं चे'त्यत्र गौः पयस्य-
 जति गवा पयस्याजयतीति प्रयुज्जानयोः कैषट्हरदत्तयोः प्रयोज्यस्य
 कर्मत्वमनभिमतम् ॥ ६६६ ॥

षज्ज सृते ॥ सजति । 'दशसज्जस्वज्जे'त्यनुनासिकलोपः । ससज्ज ।
 ससज्जनुः । ससङ्ग्य । ससज्जिय । ससज्जिव । 'असयोगाल्लिट्किदि'ति
 कित्त्वनिषेधा'दनिदितामित्युपधालोपो न भवति । सङ्गा । सङ्ग्यति ।
 सजतु । असजत् । सजेत् । आशिपि कित्वादुपधालोपे सज्यान् । अमा-
 ङ्गीन् । असाङ्गाम् । वदत्र'जेति वृद्धिः । तत्र हल्ग्रहण हल्प्रमुद्रायप्र-
 तिपत्यर्थं, सिसङ्गति । 'स्तौतिण्योरेवे'त्यपत्वम् । अभिषजनि । 'उपस-
 र्गादि'ति पत्वम् । अभ्यषजदित्यादौ तु 'प्राक् सितादङ्ग्रवायेपी'ति

षत्वम्, अभिषिपद्गतीत्यत्र 'स्तौतिण्योरेवे'ति नियमं बाधित्वा 'स्यादि-
 प्वभ्यासेन चे'त्यादिना परस्य षत्व, पूर्वस्य नूदपर्गादि न्यनेनैव सिद्धम् ।
 अङ्कुतौ सगोस्याः अङ्कुलिषङ्गा यवागूः । 'समासेङ्कुले'रिति षत्वम् ।
 अभिषजति । 'उपसर्गा'दिति षत्वम् । प्रासङ्ग वहति, प्रासङ्गः । 'तद्वहति
 रथयुगप्रापङ्गमि'ति द्वितीयान्तात् वहतीत्यर्थं यत् । प्रासङ्गे युगाद्या-
 सङ्गः । निषङ्गः । 'नौ सज्जेर्घजि'ति घञ् प्रत्ययः । घित्वात् कुत्वम् ।
 सक्रिय । 'असिसज्जिभ्यः क्यनि'ति क्यन् । अजादौ विभक्तौ 'इकोची'ति
 नुमि सक्रयीनीत्यादि । नृतीयाद्यजादौ तु 'अस्यिदधिसक्रयी'त्यादिना
 ङित्वादन्यस्य अनडादेशे 'अल्लोपोन'इत्यल्लोपे सक्रियेत्यादि । सप्तम्ये-
 कवचने अल्लोपस्य 'विभाषा ङित्यो'रिति विकल्पितत्वात् सक्रियि
 सक्रयीनीत्युभयं भवति । अङ्गाधिकारे तदन्तविधेरभ्युपगमात् प्रियसक्रिये-
 त्यादावप्यनङ् भवति । यदानङ्विधौ नपुंसकेत्यनुवृत्त तदस्यादीनां
 विशेषण नाङ्गस्येति प्रियसक्रिया शुनेत्यादौ लिङ्गान्तरेपि भवति । नपुं-
 सक्रानुवृत्तिस्तु यदृच्छाशब्दाना पुल्लिङ्गानामस्यादीनामनङ् मा भूदिति
 अस्थिर्नाम कश्चिदित्यादि । नन्वत्र

‘अभिव्यक्तपदार्था ये प्रसिद्धा लोकविश्रुताः ।

शास्त्रार्थस्तेषु कर्तव्यः शब्देषु न तदुक्तिषु’ ।

इति नास्ति प्रमङ्ग इति चेत्तर्हि मन्दधियामनुयहायैवानुवृत्तिरा-
 श्रिता, अत्रोदाहरणे सक्रियशब्दो ऽस्वाङ्गवाची द्रष्टव्यः । स्वाङ्गवाचि-
 नस्तु 'बहुव्रीहौ सक्रियत्वेन स्वाङ्गात् षच्' इति षच् समासान्तः प्रिय-
 सक्रिय इति, स्वमङ्गं चेह स्वाङ्गं न तु पारिभाषिकम्, उत्तरसक्रिय, मृगस-
 क्रिय, पूर्वसक्रियम्, 'उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्रिय'इति तत्पुरुषे टच् समासान्तः ।
 अत्र चकारेणोपमानादित्यनुवृत्तौ फलकमिव सक्रिय फलकसक्रियमित्य-
 त्त्रापि भवति । अस्मादेव ज्ञापकात् असामान्यवचनेनापि सक्रियशब्देन
 उपमानस्य समासः । न विद्यते सक्रिय यस्य असक्रिय, असक्रियः । 'नज्जु-
 स्सुभ्यो हलि सक्रियोरन्यतरस्यामि'ति पक्षेच् समासान्तः । एवं सुदुरोह-
 दाहार्यम् । एवं सुसक्रियः । गौर्याः सक्रयीव सक्रिय यस्य गौरिषक्रियः, 'बहु-

ग्रीहो सकृद्यत्नयो'रिति षच् । यदा गौर्याः सक्रयीति षष्ठीसमासस्तदा
'अच् प्रत्ये'त्यत्र अजिति योगविभागादनुभयत्र, सुषामादिषु गौरिसक्यः
सजायामिति पाठात् पत्व पूर्वपदस्य ह्रस्वत्व च ॥ ६६९ ॥

दृशिर् प्रेक्षणे ॥ पश्यति । 'पात्रे न्यादिना पश्यादेश इत्संज्ञकाश-
कारदौ शपि । ददर्श । ददृशतुः । ददर्शिथ । दद्रष्ट । ददृशिथ 'विभाषा
सृजिदृशोरिति थलि इडभात्रपक्षे 'सृजिदृशोर्भल्यमकिनी'ति अकिति
भलादौ अमागमविधानात् अमि यणि 'व्रश्चा दिना पत्व च । द्रष्टा ।
द्रक्ष्यति । पत्व, 'पठोः कः सी'ति क्त्वं, पश्यतु । पश्येत् । आशिषि दृश्यात् ।
अदर्शत्, अदर्शताम् । 'इरितो वे'त्यङि 'चदृशोङि गुण इति गुणः ।
अडभावे 'न दृश' इति क्स्विनिषेधात् सिच्यमि यणादेशे हलन्तलक्षणया
वृद्धौ अद्रावीत् । दिदृक्षते । 'ज्ञाश्रुस्मृदृशा सन इति सनन्तात्तङ् । 'हल-
न्ताच्चे'ति सनः क्त्वात् न गुणः, नाप्यमागमः । दरीदृश्यते । रीक् ।
दद्रष्टि । दद्रष्टः । लोटि हेधित्वेऽमागमे पत्व टुत्वज्ञात्वेषु दर्दङि । दर्दृ-
शानि । आटि 'नाभ्यन्त'स्येति गुणनिषेधः । लङि निष्प्रियोः अदर्दृक् ।
'क्विन्प्रत्ययस्य कुरित्यत्र क्तिन् कुरिति वक्तव्ये प्रत्ययग्रहणं यस्मात् क्विन्-
स्ति तस्य सर्वत्र पदान्ते कृत्वार्थमिति पत्व बाधित्वा दकारस्यान्तरत्नम्या-
त्कृत्वेन खकारे 'वावसाने'चत्वं ककारः । दर्शयति रूपतर्कं कार्षापणम् ।
अदीदृशत् । अददर्शत्, 'उचंद्वा' । दृशेः सर्वत्र प्रयोज्यस्य रूपतर्कस्य कर्मत्व,
यदायं दृशिश्चतुःसाधने ज्ञानविशेषे वर्तते तद्देदमुपमख्यान, यदा तु ज्ञा-
नमात्रवचनस्तदा बुद्ध्यर्थत्वादेव पिदुम् । तत्र बुद्ध्यर्था ज्ञानमामान्यवच-
ना न तु विशेषवचना इति स्थित, यदा तु एयन्तादात्मनेपद तदा
'अभिवादिदृशोरात्मनेपदउपमख्यान'मिति प्रयोज्यस्य कर्मत्वविकल्पनात्
दर्शयते रूपतर्केण कार्षापण रूपतर्कमित्युभय भवति, पश्यन्ति भृत्या रा-
जान्, दर्शयते भृत्यान् राजा भृत्यैरिति वा । सपश्यते 'दृशेश्चेति वक्तव्य'-
मिति संपूर्वात् अकर्मकात् तङ् । संदृशे । सद्रक्ष्यते । सपश्यताम् । सम-
पश्यत । सपश्येत । आशिषि सदृवीष्ट । समदृक्षत लिङ्सिचोः
क्त्वात् न गुणः, नाप्यमागमः । भलि सिञ्जलोपे प्रत्ययलक्षणेन' पठोः

कः सी'ति क्त्वं न भवति सिञ्जोपस्य प्रत्ययलतणेऽसिद्धत्वादिति तत्रोक्तम् । कर्मणि दृश्यते । अदर्शि । स्यादिषु पक्षे विगर्शदिति दर्शिष्यते । द्रव्यते । अदर्शिपाताम् । अदृक्ताताम् । दर्शिणीष्ट । द्रवीष्ट । दर्शिता । द्रष्टेत्युभयं भवति । दृश्यम् । 'अदुपधाच्चे'ति क्यप् । उत्पश्यः । 'पाप्नाध्माधेट्टृशः श'इति उपसृष्टात् कर्त्तरि शे पश्यादेशः । दर्शनं पश्यः । अत्र 'पश्याथै'रिति निपातनात् भावे शः । अदर्शनमित्यादिनिर्देशात् ल्युङपि भवति । असूर्यपश्या राजद्वाराः । गुप्तिपरं चैतत् । एवं नाम गुप्ता यदपरिहार्यदर्शनं सूर्यमपि न पश्यन्ति इति 'असूर्यललाटयोरिति खश् । अत एवासूर्येति निर्देशात् दृशिना नञ्संबन्धेन असमर्थत्वेपि समासः । उयंपश्यः । 'उयपश्येत्या'दिना म्रियःप्रिगेदले कर्मण्युपपदे खशि निपात्यते । तादृक् । 'त्यदादिषु दृशेनालोचने कञ् चे'ति त्यदादिषु कर्मसूपपदेषु आलोचनात् चतुर्विज्ञानात् अन्यत्र वर्त्तमानात् दृशेः कञ् प्रत्ययः । चकारात् क्तिन्, कजः कित्वात् न गुणः, तादृशी । 'टिड्डाणजि'त्यादिना डीप्, तादृक्तः, 'क्त्तश्च वक्तव्य'इति क्तश्च । 'आ सर्वनाम्'इति दृग्दृशवतुषु परतः सर्वनाम्नाऽन्त्यस्याकारः । 'दृक्ते चेति वक्तव्य'मिति चाकारः । सदृक् । सदृशः । सदृक्तः । दृग्दृशवतुषु इति समानस्य सभावे 'दृक्ते चेति वक्तव्य'मिति दृक्ते च सभावे, अत एव दृगादिषु सभाववचनात् समानान्ययोश्चेति व्यक्तव्याद्वा कञ् । क्तिन् कः । समान्यान्ययोरपि उपपदयोर्भवति । सदृशीत्यत्र पूर्ववन्डीप् भवति । परलोक्तदृश्व । 'दृशेःक्निबि'ति कर्मण्युपपदे भूते क्निप् । स्त्रिया 'वनो र चे'ति डीप् । परलोक्तदृश्वरी । सुदर्शनः । 'भाषाया शासियुधिदृशिभ्यो युज्वक्तव्य'इति खलोपवादो युच् । कन्यादर्शं वरयति । यां यां कन्या पश्यति ता तां वरयतीत्यर्थः । 'कर्मणि दृशिषिदोः साकृत्य'इति कर्मण्युपपदेस्मात् साकृत्ये गम्ये णमुल् । पशुः । 'अर्जिदृशी'त्युप्रत्ययः पश्यादेशश्च । यदायमसत्त्ववचनस्तदा चादित्वाचिपातत्वं, यथा लोध नयन्ति पशु मन्यमाना इति, पशु सम्यगिति ह्यत्रार्थः । दर्शनः । 'भृदृशी'त्यादिना ऽनच् । दृक् । संपदादित्वात् क्तिप् । क्तिनपीष्यत'इति क्तिनि दृष्टिः ॥ ६६८ ॥

दश दशने ॥ दंशनं द्रष्टाध्यापारः । अत एव निर्देशादनुनासिकलोप इति स्वामी । दशति । तत्रापि 'दशसञ्जे'ति अनुनासिकलोपः शपि । ददश । ददशतु । ददशिय । ददश । ददशिव । दष्टा । दङ्क्षति । दशतु । अदशत् । दशेत् । दश्यात् । 'किदाशिपि' इति यामुटः कित्वादनुनासिकलोपः । अदाङ्गीत् । अदाष्टाम् । 'वदत्रे'ति वृद्धिः । दिदङ्क्षति । दन्दश्यते । 'लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्या भावगर्हाया'मिति यङ् भावगर्हायाम् । 'जपजभदहदशे'त्यभ्यासस्य नुक् । दन्दशीति । दन्दष्टि । दन्दष्टः । यङ्विधौ नुविधौ च दशेति कृतनलोपस्य निर्देशात् यङ्लुकि अङित्यपि लोपो नुक् च भवति । दशयति । अददशत् । ददशूकः । 'यजजपदशा यङ इति यङन्ताद्रूपप्रत्यये 'अतो लोपः' 'यस्य हल'इत्यल्लोपयलोपौ । दष्टा । 'दानी'त्यादिना प्रुत् । अजादिषु दर्शनात् टाप्, अत्रैव पाठान् नलोपाभावश्च प्रुत्, दशेति नलोपनिर्देशस्तु करणे ल्युङर्थः, दशनइति, दष्टी । 'वीक्षादिभ्यश्चे'ति मत्वर्थीय इतिः । मूलकोपदशं भुङ्क्ते मूलकेन उपदशमिति वा । उपदशमन्वीयाया'मिति यामुल् । 'तृतीयाप्रभृतीनी'ति ममासविकल्प । वामरूपविधिनः तत्रापि भवति । मूलकोपदश्यते । उक्तं च सर्वत्रैवात्र प्रकरणे क्रियाभेदे सति वासरूपविधिना त्कापि भवतीति । मूलकोपदशमित्यत्र मूलकस्य भूजिनैवान्वयो न दशिना । न ह्यत्र मूलकेन करणेनान्य उपदश्य भुङ्क्ते इत्यर्थः । ननु तेन तृतीयान्तस्योपदशिना सामर्थ्याभावात् उपपदत्वमेति कथं प्रत्ययः, वचनं दशनोपदशं भुङ्क्तेत्यत्र सावकाश, मुच्यते । यद्यत्रैव स्यात् करणइत्येव ब्रूयात् । तृतीयायामिति वचनात् सर्वत्र भविष्यति । तद्वि तृतीयान्तस्योपदशिना आर्षेयन्वये यथा स्यादिति, अस्ति चात्रार्थान्वयः, कर्मापेक्षस्योपदशेः सन्निहितेन मूलकेन संबन्धात् ॥ ६६६ ॥

कृष विलेखने ॥ विलेखनमिहाकर्षण, तथा च पुरुषकारे कर्षति-श्चाकर्षणे प्रसिद्ध इति द्विकर्मकोय, कर्षति शाखा यामम् । चकर्ष । चक्रपतुः । चकर्षेथ । चक्रपिब । कृष्टा । कष्टा । 'अनुदात्तस्य चर्दुपध-

स्ये'त्यत्राम्विकल्पः । कर्ष्यति । क्रष्यति । कर्षेतु । अकर्षेतु । कर्षेतु ।
 क्रष्यात् । अक्रष्यात् । अक्रष्यताम् । 'शल इगुपधे'ति कसः । यदा 'सृश-
 मृशक्रपत्पृद्रुपा सिञ्जे'ति सिच् तदा पूर्वमेवामागमविकल्पे हलन्तलज-
 णायां वृद्धौ आकार्त्तीत् । आकार्ष्टाम् । अक्रात्तीत् । अक्राष्टामित्यादि ।
 चिक्कति । 'हलन्तञ्चे'ति सनः कित्वाच गुणो नाप्यमागमः । चरिक्क-
 ष्यते । चरिक्कष्टि । चरिक्कष्टि । चरिक्कपीति । चरीक्कष्टः । चरिक्कष्ट
 इत्यादि । लोटि हेर्धित्वष्टुत्वजश्त्वयोरमागमपक्षे चरीक्कष्टि । लङि
 तिप्सिपोः हल्ङादिलोपे च अचरीक्कट् । अमागपक्षे अचरीक्कट् । एव
 वचनान्तरेषु सर्वेषु रिक्करीकोश्च उदाहार्यम् । कर्षयति शाखा ग्रामं देव-
 दत्तं यज्ञदत्तः । अचरीक्कपत् । अचकर्षेतु । 'उर्च्चेद्वा' । अच कृषेः प्रापणार्थ-
 त्वेपि अस्ति फलतया गतेः प्रतीतिरिति गत्यर्थत्वात् 'गतिबुद्धी'ति
 प्रयोज्यस्य कर्मत्वम्, अच ग्रहणमुपसर्जनीभूतयापि गत्या तदर्थत्वे लिङ्गम्,
 अन्यथा एयन्तस्य गमनार्थ इति किं णिग्रहणेन । अत एव तत्र नीवहोः
 प्रतिषेधः कृतः । कर्मणि लादयो नयत्यादिवन्नेयाः । कृष्यम् । 'चदुप-
 धाञ्चे'ति क्यप् । कर्षतीति कृषः । इगुपधलक्षणः कः । पाण्युपकर्षे पयः
 पिबति, पाणिना उपकृष्य, पाणावुपकृष्य वा पयः पिबतीत्यर्थः ।
 'सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्ष' इति सप्तम्यन्ते वशब्दात् तृतीयान्ते च
 उपपदे उपपूर्वात् अस्मात् णमुल् । तृतीयाप्रभृतित्वात् समासविकल्पनात्
 पाणावुपकर्षम्, पाणिनोपकर्षमित्यपि भवति । क्रियाभेदेन वासरूपेण
 त्वापि भवतीति प्रागेवोक्तम् । अत्र णमुत्विधावुपसर्गग्रहणं पीडरेव
 विशेषणमिति भाववृत्तौ, भट्टिकारस्त्वतन्त्र मन्यते । यदाह धनुररिभिर-
 सह्यमुष्टिपीड दधान इति । इदं तावत् साहसमात्रं, यदाचार्येण प्रयु-
 क्तस्यातन्त्रत्वाङ्गीकरणं, यदपि पीडिनैव संबन्धकथनं तदपि न न्याय्यं
 बहुक्तस्यास्य पूर्वनिपातायोगात्, अत एव वृत्तिन्यासपदमञ्जर्यादिषु
 सबन्धोङ्गीकृतः । कष्टां शाखां, कृष्टां शाखाम् । अत्र वृत्ति 'जित्यादिर्नित्य-
 मि'ति प्रकृतेराद्युदात्तत्वेप्युपदेशावस्थायां कृषेरनुदात्तत्वात् अमागमविधौ
 चोपदेशग्रहणानुवर्तनात् पक्षे ऽमागमो भवत्येव । अयं तुदादावपि ॥ ८७० ॥

दह ऽस्मीकरणे ॥ दहति । ददाह । देहतुः । देहिय । ददग्ध ।
 यलि भारद्वाजानियमादिविकल्पः । तत्रानिष्टपक्षे 'दादेर्धातोर्घः' 'भ्रप-
 स्तधोर्धाधः', 'भला जश् भशी'ति धन्वधत्वजशत्वानि । दग्धा । धस्यति ।
 हकारस्य घत्वे 'एकाच'इति भ्रपभावेन दकारस्य धकारे धकारस्य 'खरि
 चे'ति वत्त्वे, दहतु । अदहत् । दहेत् । दह्यात् । अधातीत् । घत्वादि
 पूर्ववत् । अदाग्धाम्, भलि सिञ्जलोपः । ददह्यते । 'लुपसदेत्या दिना यङः
 'जपजभे'ति लुक्, ददग्धि । दाहयति । अदीहत् । परिदाही । घिनुष् ।
 निदाघः । अवदाघः । परिदाघः । सजाया मघमेघनिदाघावदाघा
 इति न्यङ्कादिपाठान् कुत्व, दहनः ॥ ८७१ ॥

मिह सेचने ॥ मेहति । मिमेह । मिमेहिय । मिमिहिव । क्रादि-
 नियमादिट् । मेठा । टत्वयत्वष्टुत्वठनोपगुणाः । मेह्यति । पत्वकत्वे,
 मेहतु । अमेहत् । मेहेत् । मिह्यात् । अमिहत् । 'शलगुपधादिति' क्तः ।
 मिमिहति । 'हन्ताच्चे'ति सनः कित्वाच्च गुणः । मेमिह्यते । मेमेठि ।
 मेमीठः । ठलेपौ, दीर्घः । मेहयति । अमीमिहत् । मेद्रम् । 'दाम्नी'-
 त्यादिना घृन् । मेघः अचि, सजाया मेघेति न्यङ्कादिषु पाठात् कुत्वं,
 मीद्वान् । साह्यान्मीद्वान्चेति क्सावद्वित्वानिट्स्वोपधादीर्घस्वठत्वानि
 निपात्यन्ते । मिहिरः । इपिमिहीत्यादिना किरञ् । स्कन्दादय एतदन्ता
 अनुदात्ता उदात्तेतः ॥ ८७२ ॥

कित निवासे रोगापनयने च ॥ अयमुदात्तेत् । गुपिवदयमपि
 नित्यसचन्तः । चिकित्सति । 'गुप्तिजि'ति सन् । अस्य सनो ऽनाट्टुधातुक-
 त्वाच्चेटःप्रसङ्गे नापि गुणस्य । अत्र वृत्तौ व्याधिप्रतीकारे सन्निति यदुक्तं
 तदुपलक्षणं, यतः स्वयमेव 'क्षेत्रियच् परतेत्रे चिकित्स्य'इत्यत्र नियहापय-
 ननाशनादर्थान् वक्ष्यति, तथा च य एव विद्वान्विचिकित्सतीत्यादौ सशयेपि
 प्रयुज्यते, निघण्टुरपि विचिकित्सा तु सशय इति । चिकित्सपति ।
 इच्छासनन्त इव सन्प्रतिषेधः, केतयतीति चौरादिकस्य । अत्राभरणकारो
 गुपादिसूत्रे गुप्तिञ्किट्वा इत्यनुक्रम्य गुपादिष्वनुदन्धकरणमात्मनेपदार्थ-
 मिति भाष्ये वार्तिके चोक्तत्वात्किन्त् परस्मैपदिषु पठितोपि आत्मनेपदी ।

न च गुपादिष्विति बहुवचनं वक्ष्यमाणमर्थपेक्षमिति वक्तुं युक्तं, यतस्तु खलु तत्र गुप्तिज्जकिदित्यनुक्रम्य गुपादिष्वित्युक्तमित्याह । कैयटे तु क्रमदर्शनाय कितिः पठितो न त्वयमनुदात्तेदिति । हरदत्तोपि गुपादिष्विति बहुवचनं मान्बधसूत्राभिप्रायं कितिस्तु परस्मैपदीत्याह । इन्दुरपि गुप्तिजावनुदात्तेतौ न कितिः, तस्य चिकित्सतीत्येव प्रयोग इति, एवं स्वामिकाश्यापादयोपि । एव बहुवचनं मान्बधसूत्राभिप्रायम्, एवं बहुभिर्महायन्यैर्विरोधान्परस्मैपदिषु प्राठाच्चाभरणाद्युक्तं यत्किं चित्^१ ॥ ६७३ ॥

दान खण्डने ॥

शान तेजने ॥ इमावपि नित्यसनन्तौ स्वरितेतौ । दीदांसति । दीदांसते । शीशासति । शीशांसते । 'मान्बधे-या'दिना सनीत्वे च कृतेभ्यासस्य दीर्घः, अयं नार्द्धधातुक इति नेट्प्रसङ्ग इत्युक्तम् । दानेराजवे, शानेर्निशान, इति वृत्तावर्थविशेषणाय सनुक्तः । दानयति । शानयतीत्यादि चौरादिकस्य ॥ ६७५ ॥

डुपचष् पाके ॥ इतो बह्व्यन्ता अनुदात्ताः स्वरितेतः ॥ पचति । पपाच, पेचतुः । पपच्य । पेचिथ । पक्ता, पच्यति । पचतु । अपचत् । पचेत् । पच्यात् । अपाक्षीत् । पचते । पेचे । पक्ता । पच्यते । पचताम् । अपचत । पचेत । पक्षीष्ट । अपक्त । अपक्षाताम्, भलि सिज्जलोपः । स्वामिदासौ पचत इत्यत्र दासधर्मस्य स्वामिन्यारोपात् परस्मैपदम् । पचेते इत्यत्र स्वामिधर्मस्य दासे समारोपात्तडिति कैयटादौ । पिपक्षति । पिपक्षते । पापच्यते । पापक्ति । पापक्तः । कृष्टे स्वयमेव पच्यन्तइति कृष्टपच्याः । राजसूयादौ क्वापि निपात्यते, कर्मकर्तारि निपातनमिति वृत्तिः । पचः । अच् । श्वान पचतीति श्वपचः । पचादिपाठसामर्थ्यात्कर्मापपदादप्यच् । उक्तं च

अज्विधिः सर्वधातुभ्यः पठन्ते च पवादयः ।

अण्बाधनार्थमेव स्यात् सिद्ध्यन्ति श्वपवादयः ॥

इति । श्वपाकः । मासपाकः । पिण्डपाकः । कपोतपाकः । अत्र
न्यङ्कादिपाठात्कर्मण्यणि कुत्वम् । दूरेपाकः । फलेपाकः । न्यङ्कादि-
पाठादचि वृद्धिकुन्वे । 'तत्पुरुषे कृती'त्यलुक् । न्यङ्कादिपाठादेव चैमौ
कर्मकर्तरीति वृत्तौ । तलेपाकइति के चित्पठन्ति, दूरेपाका फलेपाकेति
टावन्तावन्ये । उकारान्तावपरे । दूरेपाकुः । फलेपाकुरिति उपत्ययो निपा-
तनादिति वृत्तौ । प्रस्यपचः । मितपचः । नखपचः । 'परिमाणे पच'
इति 'मितनखे चे'ति परिमाणवाचिनि कर्मण्युपपदे मितनखयोश्च खच् ।
उत्पचिष्णुः । 'अलङ्घ्यित्यादि'नेष्णुच् । पचेलिमाः शालयः । केलिमा
उपमंख्यानमिति केलिमा । अयं कर्मकर्तरीति वृत्तिः । रेफ 'उपोत्तमं
रिती'ति स्वरं विशेषणार्थः । पक्किमम् । 'द्वितः किरि'ति क्किप्रत्यये 'कर्म-
न्विन्यमि'ति मप् । पाकेन निर्वृत्ते पाकिमम् । 'भावप्रत्ययान्तादिमप् वक्तव्य'
इति इमप् । पक्तिः । 'स्यागापापच' इति क्तिन् । पित्वादाडि पचा । पक्कः ।
पक्कवानिति 'पचो व'इति निष्ठातकारस्य वकारः । तस्य पूर्वत्रासिद्धत्वा-
ज् झलपरत्वाच्चोः कुरि'ति कुत्वम् । प्रपक्कानि फलानीत्यत्र 'कुमति चे'ति
कवर्गवन्त्युत्तरपदे पूर्वपदस्याविमितात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्बिभक्तिस्यस्य
नस्य प्राप्त णत्व युवादीनां प्रतिषेध इति न भवति । पाकः । पचनम् ।
मांसस्य पाको मास्याकः । मासपाकः । एव मासस्य पचन मांसपचनम् ।
मांसपचनम् । मासस्य पचि युङ्घजोरिति पत्तेऽन्तलोपः । पचनः । भृशी-
त्यादिना युच् । अयं द्विकर्मक इति नाद्यतावुक्तं, तेन तण्डुलानोदनं
पचतीति भवति । अत्र कैयटकारः । अत्र विक्लेदनापसर्जननिवर्तनार्थं
धातुरिति तण्डुलानां विक्लेदनापेक्षं कर्मत्वम् । ओदनस्य तु प्रधानभूतनि-
वर्तनापेक्षमिति तण्डुलानोदनं पचतीतिप्रयोगः । प्रकृतिविकाराभाववि-
षतायां तण्डुलैरोदनं पचतीति साधकतमत्वविवक्षायाम् । उदुम्बरः पलं
पच्यते । दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोरिति कर्तुः कर्मवद्भावः । अत्र कैय-
टो वृत्तस्य कर्तृत्वविवक्षायामन्यतमप्राप्ते वचनम् । अन्ये त्वाहुः । पचिरत्र
विषये द्विकर्मकः । वृत्तस्य पाकमन्तरेण फलपाकासम्भवात् वृत्तोऽकथित
कर्म । तस्यैव च यदा कर्तृत्वविवक्षा तदाऽयं कर्मवद्भावः । एवंविधे

रञ्जतुः । रङ्घ्य । ररञ्जिघ । आदिनियमादिट् । यलि भारद्वाजनि-
यमादिद्विकल्पः । रङ्गा । रङ्घ्यति । रजतु । अरजत् । रजेत् । आशिषि
रज्यात् । 'क्रिदाशिपी'ति क्त्वादनुनासिकलोपः । अराङ्गीत् । अरा-
ङ्गाम् । अराङ्गुः । रजते । ररञ्जे । ररञ्जिषे । रङ्गामे । रङ्घ्यते । रज-
ताम् । अरजत । रजेत । रङ्गीष्ट । अरङ्ग । अरङ्गाताम् । रिरङ्घति ।
रिरङ्घते । रारज्यते । रारङ्गि । रारक्तः । तसौ ङित्वादनुनासिकलोपः ।
रजयति मृगान् । अरीरजत् । रञ्जेर्णौ मृगरमणे इति नलोपः । 'जनी-
जृष्णसुरञ्जोऽमन्ताश्चे'ति मित्वाद्ब्रुस्वः । मृगादन्यत्र रञ्जयति पक्षिणः ।
तथा रमणादन्यत्रापि रञ्जयति मृगान् तृणादिदानेन, वशयतीत्यर्थः ।
कर्मकर्तरि 'कुपिरञ्जोः प्राचां श्यन्परस्मैपदं चे'ति पक्षे श्यन्परस्मैपदयोः
रज्यति वस्त्रं स्वयमेव । रज्यतु । अरज्यत् । रज्येदिति भवति, अन्यदा
यगात्मनेपदयोः रज्यतइत्यादि । श्यनो ङित्वाद्यकः क्त्वाच्च नलोपः,
श्यन्विधी रज्यन्तीत्यत्र 'शप्श्यनोर्नित्यमि'ति नित्यनुमर्थः, एते च श्य-
न्परस्मैपदे प्राचां ग्रहणस्य व्यवस्थितविभाषात्वाद्यविषये । तथा च
वार्तिकम् । 'कुपिरञ्जोः श्यन्विधाने लसार्वधातुकवचनमवचने हि
लिङ्लिटोः प्रतिषेधः स्यादिविषये चे'ति । अत्र लिङाशीर्विषयः, स हि
सार्वधातुप्रतियोगी, तेन रङ्गीष्ट वस्त्रं स्वयमेव । ररंसे । रङ्गामे । रङ्-
घ्यते । अरञ्जि । अरङ्गातामित्यत्र श्यन्परस्मैपदं न भवति । रजकः ।
'शिल्पिनि प्लुन्' । रजकरजनरजःसूपसंख्यानमिति नलोपः । रजकस्य
वस्त्रं ददातीति भाष्ये प्रयोगादिति । न्यासे त्वक्ङित्यपि रज्जोर्मित्व-
विधानाल्लिङ्गाच्चलोप इति तरङ्गिणीपदमञ्जयैः । इदं प्रौढिवादमात्र,
यतो मित्त्वं रञ्जेर्णाविति नलोपे रजयति मृगानित्यत्र ह्रस्वार्थं स्यात् ।
तथा नलोपाभावे अरञ्जि । अराञ्जि । रञ्जरञ्ज, राञ्जराञ्जमित्यत्र
'चिण्णमुलो'रिति दीर्घविकल्पार्थं स्यात् । 'दंशसञ्जस्वज्जां शपी'त्यत्र
भाष्ये तु रजकरजनरजःसूपसंख्यानमिति नलोपं प्रेरयित्वा कित एवैते
त्वौणादिका इति परिहृतम् । अत्र कैयटेन रजक इति 'कुन् शिल्पिसञ्ज-
योरि'ति कुन् प्रत्ययः । रजकीति तु 'पुंयोगादाख्यायामि'ति ङीष् । अपुं-

योगे तु डीया न भाव्यमिति भाष्यकाराभिप्रायः । रजनमित्यत्र 'रज्जेः क्यु-
निति' क्युत्प्रत्ययः, स च बाहुलकादिति द्रष्टव्यः । तेन रजनीनि डीप्
भवति । रज इत्यत्र 'भूरज्जिभ्यां किट्' इत्यमुत्प्रत्ययः किट्प्रवर्तनीत्युक्तम् ।
एवमेतत्पदमज्जयामपि । रागी । सृष्टादित्वद् घिनुण् । अत्रैव रजेति नि-
र्देशाच्चलोपः । रजनं रागः । रज्जनेऽनेनेति वा । 'घञि च भावक्रणयो'-
रिति नलोपः । अन्यत्र स्वयमेव रज्यति प्रेतकाना मनासि यत्रेति रङ्गः ।
'हलश्चे'ति घञ् । विरागमहंति वैरागिकः । 'छेदादिभ्यो नित्यमिति
तदर्हतीति' विषये ठक् । अत्र 'विरागो विरङ्ग' चेति पाठाद्विरङ्गादेशः ।
रजः । असुन् । विरज्जीकरोति । 'असुर्भन' इत्यादिना च्विसलोपो । 'अस्य
च्चा' वित्यकारयेकारः । सरजनम् । 'अव्ययविभर्त्ता' इत्यादिना साकल्येऽव्य-
यीभावः । 'अव्ययीभावे चाकाले' इति सहस्य सः । 'अचतुरे' इत्यादिपाठादच् ।
अयमव्ययीभाव इति वृत्त्यादौ । तेनान्यत्र सरजस्क पङ्कजमित्येव भवति ।
यस्तु बहुव्रीहौ सरजसमिति भारविप्रयोगः स वामनालङ्कारे दूषितः,
सरजसमित्यव्ययीभाव इति । रजोम्यास्तीति रजस्वला । 'रजः कृष्यामुनी'-
त्यादीना मत्वर्थे बलच् । 'तसौ मत्वर्थे' इति भसज्जया पदसज्जया बाध-
नात्सकारस्य न सत्वम् । रजनम् । एपीरज्जिक्किट्प्रत्ययः । तस्य विकारो
राजतम् । 'प्राणिरजतादिभ्योञ्' इति यष्ट्यन्ताद्विकारेऽञ्प्रत्ययः । अत्रा-
'नुदात्तादे'रित्येवाञि सिद्धे पुनरञ्विधानं 'मयद्वैतयोरिति' विकारमयटो
बाधनार्थं, मयं दिवादावपि ॥ ६७६ ॥

शप आक्राशे ॥ इहाक्राशो विरुद्धानुध्यानम् । शपति । शशाप ।
शेषतुः । शशप्य । शेषिथ । क्रादिनियमादिट् । यलि भारद्वाजनिय-
माद्विकल्पः । शप्ता । शस्यति । अशपत् । शपेत् । शप्यात् । अशा-
प्सीत् । अशाप्ताम् । शपते । शपे । शप्तासे । शपताम् । अशपत ।
शपेत । शप्सीष्ट । अशप्त । अशप्सानाम् । शिशप्सति । शाशप्यते ।
शाशप्ति । शापयति । अशीशप, देवदत्ताय शपते । देवदत्त शपथेन
किं चित्प्रापयतीत्यर्थः । 'शप उपालम्भन' इति अकृत्तभिप्राये तद्, 'श्लाघ-
द्भुडि' इत्यादिना जीप्यमानस्य संप्रदानत्वाच्चतुर्थी, वाचा शरीरस्य स्पर्श-

रञ्जतुः । रङ्ग्य । ररञ्जय । क्रादिनियमादिट् । यलि भारद्वाजनि-
यमादिद्विकल्पः । रङ्गा । रङ्ग्यति । रजतु । अरजत् । रजेत् । आशिषि
रज्यात् । 'क्रिदाशिषी'ति क्त्वादननासिकलोपः । अराङ्गीत् । अरा-
ङ्गाम् । अराङ्गुः । रजते । ररञ्जे । ररञ्जये । रङ्गामे । रङ्ग्यते । रज-
ताम् । अरजत । रजेत । रङ्गीष्ट । अरङ्ग । अरङ्गाताम् । रिरङ्गति ।
रिरङ्गते । रारज्यते । रारङ्गि । रारक्तः । तसौ ङित्वादननासिकलोपः ।
रजयति मृगान् । अरीरजत् । रञ्जेर्णौ मृगरमणे इति नलोपः । 'जनी-
जृप्कसुरञ्जोऽमन्ताश्चे'ति मित्वाद्भ्रुस्वः । मृगादन्यत्र रञ्जयति पक्षिणः ।
तथा रमणादन्यत्रापि रञ्जयति मृगान् नृणादिदानेन, वशयतीत्यर्थः ।
कर्मकर्तारि 'कुपिरञ्जोः प्राचा श्यन्यस्मैपद चे'ति पक्षे श्यन्परस्मैपदयोः
रज्यति वस्त्र स्वयमेव । रज्यतु । अरज्यत् । रज्येदिति भवति, अन्यदा
यगात्मनेपदयोः रज्यतइत्यादि । श्यनो ङित्वाद्यकः क्त्वाच्च नलोपः,
श्यन्विधी रज्यन्तीत्यत्र 'शप्श्यनोर्नित्यमि'ति नित्यनुमर्थः, एते च श्य-
न्परस्मैपदे प्राचांयहणस्य व्यवस्थितविभाषात्वाद्यविषये । तथा च
वार्तिकम् । 'कुपिरञ्जोः श्यन्विधाने लसार्वधातुक्रवचनमवचने हि
लिङ्लिटोः प्रतिषेधः स्यादिविषये चे'ति । अत्र लिङाशीर्विषयः, स हि
सार्वधातुक्रप्रतियोगी, तेन रङ्गीष्ट वस्त्र स्वयमेव । ररंसे । रङ्गामे । रङ्-
ग्यते । अरञ्जि । अरङ्गातामित्यत्र श्यन्यरस्मैपदं न भवति । रजकः ।
'शिल्पिनि प्लुन्' । रजकरजनरजःसूपसंख्यानमिति नलोपः । रजकस्य
वस्त्र ददातीति भाष्ये प्रयोगादिति । न्यासे त्वक्ङित्यपि रञ्जोर्मित्त्व-
विधानाल्लिङ्गाच्चलोप इति तरङ्गिणीपदमञ्जयैः । इदं प्रौढिवादमात्रं,
यतो मित्त्वं रञ्जेर्णाविति नलोपे रजयति मृगानित्यत्र ह्रस्वार्थं स्यात् ।
तथा नलोपाभावे अरञ्जि । अराञ्जि । रञ्जरञ्जं, राञ्जराञ्जमित्यत्र
'चिण्णमुलो'रिति दीर्घविकल्पार्थं स्यात् । 'दंशसञ्जस्वञ्जां शपी'त्यत्र
भाष्ये तु रजकरजनरजःसूपसंख्यानमिति नलोपं प्रेरयित्वा कित एवैते
त्वौणादिका इति परिहृतम् । अत्र कैयटेन रजक इति 'कुन् शिल्पिसञ्ज-
योरि'ति कुन् प्रत्ययः । रजकीति तु 'प्रयोगादाख्यायामि'ति ङीष् । अपुं-

योगे तु डीपा न भाव्यमिति भाष्यकाराभिप्रायः । रजनमित्यत्र 'रज्जेः क्यु-
नि'ति क्युन्यत्ययः, स च बाहुलकादिनि द्रष्टव्यः । तेन रजनीति डीप्
भवति । रज इत्यत्र 'भूरजिभ्यां किट्'त्यमुन्यत्ययः किट्त्वतीत्युक्तम् ।
एवमेतत्पदमञ्जर्यामपि । रागी । सपृचादित्वाद् घिनुण् । अत्रैव रजेति नि-
र्देशात्रलोपः । रजनं रागः । रज्यतेऽनेनेति वा । 'घञि च भावक णयो'-
रिति नलोपः । अन्यत्र स्वयमेव रज्यन्ति प्रेतकाना मनसि यत्रेति रङ्गः ।
'हलश्चे'ति घञ् । विरागमर्हति वैरागिकः । 'क्वेडादिभ्यो नित्य'मिति
तदर्हतीति विषये ठक् । अत्र 'विरागो विरङ्ग' चेति पाठाद्विरङ्गादेशः ।
रजः । असुन् । विरज्जीकरोति । 'अस्मर्न इत्यादिना च्चिमलोपौ । 'अस्य
च्चा'वित्यकारव्येकारः । सरजनम् । अय्यय विभक्ती'त्यादिना साकृत्येऽव्य-
यीभावः । अय्ययीभावे चाकाले' इति सहस्य सः । 'अचतुरे'त्यादिपाठादच् ।
अयमव्ययीभाव इति वृत्त्यादौ । तेनान्यत्र सरजस्क पङ्कजमित्येव भवति ।
यस्तु बहुव्रीहौ सरजसमिति भारविप्रयोगः स वामनालङ्कारे दूषितः,
सरजसमित्यव्ययीभाव इति । रजोम्यास्तीति रजस्वला । 'रजः कृष्यासुती'-
त्यादीना मत्वर्थे बलच् । 'तसौ मत्वर्थे'इति भमजया पदसत्राया बाध-
नात्सकारस्य न सत्वम् । रजतम् । पृषीरज्जिक्किदित्यनच् । तस्य विकारो
राजतम् । 'प्राणिरजतादिभ्योज्' इति पष्ठान्ताद्विकारेऽज्प्रत्ययः । अत्रा-
'नुदात्तादे'रित्येवाजि सिद्धे पुनरज्जविधान 'मयद्वैतयोरि'ति विकारमयटो
बाधनार्थे, मय द्विवादावपि ॥ ८९८ ॥

शप आक्रोशे ॥ इहाक्रोशो विरुद्वानुधानम् । शपति । शशाप ।
शेषतुः । शशपथ । शेषिथ । क्रादिनियमादिट् । थलि भारद्वाजनिय-
मादिद्विकल्पः । शप्ता । शस्यति । अशपत् । शपेत् । शप्यात् । अशा-
प्सीत् । अशाप्ताम् । शपते । शपे । शप्तासे । शपताम् । अशपत ।
शपेत । शप्सीष्ट । अशप्त । अशप्ताताम् । शिशप्सति । शाशप्यते ।
शाशप्ति । शापयति । अशीशप द्वेवदत्ताय शपते । द्वेवदत्त शपथेन
किं चित्प्रापयतीत्यर्थः । 'शप उपालम्भन'इति अकर्त्तृभिप्राये तङ्, 'श्लाघ-
हृदि'त्यादिना जीप्स्यमानस्य सप्रदानत्वाच्चतुर्थी, वाचा शरीरस्य स्पर्श-

नमुपलम्भनमिति वृत्तिः । अत्र हरदत्तः । त्वत्पादौ स्पृशामे नैतन्मया
 कृतमित्येतद्रूपः शपथविशेष इति । भागवृत्तिकारस्य तूपलम्भनं प्रका-
 शनं, देवदत्ताय शपते किञ्चित्प्रकाशयतीत्यर्थः । त्वच्चा शरीरस्य स्पर्श-
 नमित्यदः कस्य चित्काव्यमिति । कैयटे चोपलम्भनं प्रकाशनमिति ।
 शाकटायनसूपलम्भनं प्रकाशनं, देवदत्ताय शपतइत्येवं भूतोऽसाविति
 देवदत्तमाचष्टइत्यर्थः । अथ वा स्वाभिप्रायस्य पराविष्कारणमुपलम्भनं
 शपथः । देवदत्ताय शपते । वाचा मात्रादिशरीरस्पर्शनेन देवदत्ते स्वा-
 भिप्रायं प्रकाशयतीत्यर्थ इति । चन्द्रभोजकौमारास्तु प्रोषितस्य भाव-
 योरुपलब्धययोः किं चिदासेवनमुपलम्भनं, देवदत्ताय शपतइति प्रोषि-
 तस्य देवदत्तस्य भावाभावायोरुपलब्धययोः किं चिदासेवनइत्यर्थः ।
 भोज्यादयस्तु शपः शपथइति । 'शीङ्शपिगमिवञ्चिविजिग्राणिभ्यो-
 ऽथ' इत्यथः प्रत्ययः । शबलः । 'शपेर्वश्चे'ति कलप्रत्यये बकारश्चान्ता-
 देशः । शब्दः । शाशपिभ्यान्द्दनावि'ति दन्, 'शब्दवैरे'ति निपात-
 नात् बत्वं, शब्द करोति शब्दायते । 'शब्दवैरे'ति क्यङ् । शब्द
 करोति शाब्दिकः । 'शब्ददर्दुरं करोती'ति द्वितीयान्तात्करोतीत्यर्थे
 ठक् । माशब्द इत्याह माशब्दिकः । 'तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसं-
 ख्यानमि'ति ठक् । एवं नैत्यशब्दिक इत्यादि । अयं दिवादावपि ॥ ६८० ॥

त्विष दीप्तौ ॥ त्वेषति । तित्वेष । तित्विषतुः । तित्विषिथ ।
 तित्विषिव । क्रादिनियमादिट् । त्वे टा । त्वेक्षति । त्वेषतु । अत्वेषत् ।
 अशिषि त्विष्यात् । अत्विक्षत् । अत्विक्षाताम् । 'शल इगुपधादनिटः क्तः' ।
 त्वेषते । तित्विषे । त्वेष्टाप्ते । त्वेक्ष्यते । त्वेषताम् । अत्वेषत । त्वे-
 षेत । त्विषीष्ट । अत्विक्षत । अत्विक्षाताम्, त्विषन्त । 'क्त्स्याची'त्य-
 लोपः । तित्विक्षति । तित्विक्षते । तेत्विष्टि । तेत्विष्टः । त्वेषयति ।
 अतित्विषत् । त्वेष्टा । त्विषेर्देवतायामकारश्चोपधाया इति वृन् उप-
 धाया अत्वं, त्वेष्टारौ । 'अतो डी'ति गुणे 'अप्तृचि'त्यादिना दीर्घाऽसं-
 वृद्धौ सर्वनामस्थाने । वृचन्तत्वादेव सिद्धे नप्रादीनां ग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे
 नियमायै संज्ञाशब्दानामेषामेवेति वृत्तौ । त्वष्टुरिदं त्वाप्प्रम् । अचामा-

देरवो वृष्टिरन्त्यलक्षणा वृष्टि बाधनइति वृत्तौ । त्विष्ट । सपदादि-
त्वात् क्लिप् । अवपूर्वाय दाननिरसनयोरिति मैत्रेयादयः ॥ ८८९ ॥

यज देवपूजामङ्गलिकरणदानेषु ॥ यजति । इयाज । ईजतु ।
इयजिथ । इयष्ट । ईजिव । क्वादिनियमादिष्ट । यलि भारदुज-
नियमादिङ्गिकल्पः । इडभावे भन्तरत्वाद्दृश्चेत्यादिना पत्वन् । किति
'वचिष्वपियजादीनां किनी'ति संप्रसारणे पुनः प्रमङ्गविज्ञानाद् द्विर्व-
चनमकिति 'लित्यभ्य'सस्योभयेषामिति वद्यादीनां यद्यादीनां चाभ्या-
सस्य संप्रसारणम् । अत्राधिकारादेवोभयेषामिति सिद्धे पुनस्तत्करणं
विध्यत्यादौ परमपि हलादिशेषं बाधित्वा संप्रसारणं यथा स्यादिति ।
यष्टा । यत्यति । यजतु । अयजन् । यजेत् । अशिपि कित्वात्संप्रसारणे
इज्यात् । अयातीत् । अयाष्टाम् । यजने । ईजे । यष्टासे । यत्यने ।
यजताम् । अयजत । यजेत । यतीष्ट । अयष्ट । अयक्षाताम् । यियक्षति ।
यियक्षते । यायज्यते । यायष्टि । याजयति । अयीयजत् । इज्यते । यकि
संप्रसारणे ऐज्यतेत्यत्र लङ्मङ्गं बाधेत्तमाणादडागमादन्तरङ्गत्वात्पूर्व-
लादेशः । कृते च लादेशे नित्यत्वादट् । पूर्वं यगटोरुभयोरपि कृताकृत-
प्रसङ्गित्वाविशेषेण यकि कृते तदन्तस्याङ्गस्य अकृते तु केवलस्येति शब्दा-
न्तरप्राप्त्या अटोऽनित्यत्वं, कृते च यकि नित्यत्वात्संप्रसारणे पश्चादजा-
दित्वादाडागमः । नन्वत्राटः प्राप्तिराटा बाध्यते न तु संप्रसारणेनैवेति
यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं व्याहृत्यते न तदनित्यमिति अट्प्रथमनित्यः ।
अत्र हरदत्तः । यस्य च लक्षणान्तरेणेति न्यायोऽनित्यादिह नाश्रीयतइति,
यद्वा संप्रसारणं संप्रसारणाश्रयं च बलवदिति अटः पूर्वमेव संप्रसारणं
भविष्यति, अथ वा परित्यज्यापवादविषयमुत्सर्गभिनिविशतइत्याट्
पश्चादुविध्यतीत्यडागमो नैवात्र प्रसजति । याज्य, ययति 'यजयाचे'ति
कुत्वनिषेधः । यागः । य'अ 'चजोः कुघिण्यतो'रिति कुत्व, सोमने-
ष्टवान् सोमयाजी । 'करणे यज'इति करणवाचिन्युपपदे भूते णिनिः ।
यज्वा । 'सुयजोर्ध्वनिवि'ति भूते ह्रस्विप्, यजमानः । 'पूज्यजोः शानचि'-
ति शनान्, यजमानकर्म याजमान. युवादित्वादण् । यायजूकः । 'यज-

जपदशां यङ् इति यङन्तादूकः प्रत्ययः । अल्लोपयलोपौ च । इष्टिः ।
 'श्रयजिस्तुभ्यः करण' इति क्तिन् । इज्या । 'व्रजयजोर्भावे क्यञि'ति
 क्यप् । यजुः । 'यजयाचे'ति नङ् प्रत्ययः, कुत्वनिषेधः । यज्ञविद्याम-
 धीते वेद वा याज्ञविद्विदः । 'क्रतूक्यादिसूत्रान्ताट्ठि'ति उक्यादिपा-
 ठाट्ठक् । याज्ञिकानां धर्म आन्वायो वा याज्ञिक्यम् । 'द्वन्द्वौगौक्यक-
 याज्ञिकबहुवचनटाञ्ज्य' इति षष्ठ्यन्ताट्ठ्मात्वाययोर्यः । यज्ञमर्हति यज्ञियो
 यज्ञमानः । 'यज्ञत्विग्भ्या घञजा'विति द्वितीयान्तादर्हतीत्यर्थः घः ।
 यज्ञकर्मार्हति यज्ञिय ऋत्विक् । यज्ञऋत्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीति चोपसंख्या-
 नमिति घः । ऋत्विक्, ऋतौ यजति ऋतु यजति ऋतुप्रयुक्तो वा यज-
 तीति 'ऋत्विगा'दिना क्तिनि निपातितः । नवयज्ञोऽस्मिन्वर्तते नावय-
 ज्जिकः । 'तदस्मिन्वर्त्त' इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानमि'ति ठक् । एवं
 पाकयज्ञिकः । इष्टमनेन इष्टी । 'इष्टादिभ्यश्चे'ति प्रथमान्तात्तृतीयार्थे
 इनिः । यजुः । 'अर्तिषुयपी'त्यादिनोसिप्रत्ययः । ऋयजुषम् । 'अवतुरे'-
 त्यादिना द्वन्द्वेऽजन्तो निपात्यते । यद् । 'यजियमितनिभ्यो डिदि'त्य-
 दिप्रत्यये डित्वाट्ठिलोपः । त्यच्छब्दवत्सर्वनामकार्यं त्यदादिकार्यं च ।
 यस्मिन्काले यदा । 'सर्वैकान्ये'त्यादिना दाप्रत्ययः । 'प्राग्दिशो विभक्ति'-
 रिति विभक्तित्वात्त्यदाद्यत्वम् । यस्मिन्काले यर्हि । 'अनद्यतने र्हिल्' ।
 पूर्ववद्विभक्तित्वात्त्यदाद्यत्वम् । यत्परिमाणस्य यावान् । 'यत्तदेतेभ्यः
 परिमाणे वतुञि'ति परिमाणोपाधिकात्प्रथमान्तादस्येत्यर्थः वतुप् ।
 अर्थोद्दिह षष्ठ्यर्थः परिमाणी । 'आ सर्वेनाम्' इति दृग्दृशवतुषु परेष्वि-
 त्याकारः । सा'वत्त्वसन्तस्ये'ति दीर्घः । 'उगिदचामि'ति नुम् । हल्ङ्यादिसं-
 योगान्तलोपौ । 'उगितश्चे'ति ङीपि यावती । 'बहुगणवतुडति संख्ये'-
 ति संख्यात्वात् यावता पूरणइति विग्रहः 'तस्य पूरणे डङि'ति षष्ठ्य-
 न्तात्संख्याशब्दात्पूरणे डटि कृते 'वतोरिथुगि'ति इथुगागमः । याव-
 तियः । यतरो भवतो देवदत्तः स समागच्छतु । 'क्रियत्तदो निर्द्वारणे
 द्वयोरेकस्य इतरज्जि'ति 'द्वयोर्मध्ये जातिक्रियासञ्ज्ञाभिरैकस्य निर्द्वार-
 णे पृथक्करणे गम्यमाने स्वार्थे इतरच्' । महाविभाषया विकल्पनाद्वा

भवतीरित्यपि भवति । यतमो भवतां ब्राह्मणः स आगच्छतु ।
 'वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने इतमच्' । जानिश्च परिप्रश्नश्च जातिपरि-
 प्रश्नं समाहारद्वन्द्वस्तद्विषयेभ्यः किंयत्तद्गो बहूनामेकस्य निर्द्वारणे वा
 इतमजिति इतमच् । अत्र जातिग्रहणं सर्वैरपि सम्बध्यते । परिप्रश्न-
 ग्रहणं तु यत्तद्वारसम्भवात्किम एव । वायहणमकजर्थम् । यको भवतां
 ब्राह्मण इति वाक्यं तु महाविभाषया भविष्यति । इतरइतमेति
 सर्वादौ पाठादेनदन्त्योन्मर्शनामकार्थं पूर्ववत् । नपुंसकाभ्यामनुपसर्ज-
 नाभ्यां इतरइतमाभ्या परयोः स्वमेरमादेशापवादो 'ऽहुतरादिभ्यः
 पञ्चभ्य' इत्यदडादेशे डित्वाट्टिलोपे च यतरत् । यतमत् इति
 भवति, यद्यपि द्वित्रस्यात्मेरदादेशे कृते 'ऽतो गुण' इति पररूपत्वं बाधित्वा
 प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घः स्यात्, अमादेशे तु स्यान्निवद्वावेनामि पूर्वा
 भविष्यतीति न दोषः । एवं तर्हि पूर्वसूत्रादमनुवर्त्त्य सारप्यमं कृत्वा
 ऽहुतरादिभ्य इति पञ्चम्याः षष्ठौ प्रकल्प्य द्वयोः रमोः स्यानेऽदादेशः
 कार्यः किं डकारेण, किं चैवमकारेणापि नार्थः, डकार एव तु विधेयः,
 स चा'देः परत्ये'त्यमोऽकारस्य भविष्यति । मकारस्य च मयोगान्तलोपे
 कतरत् कनमदितीष्ट सेत्स्यति । मत्य सिध्यति । हे कतरदिन्यादौ हे
 कुण्डेत्यादिव 'देङ् ह्रस्वा'दिति सम्बुद्धिसम्बन्धिना हलो विधीयमानो लोपः
 स्यात्तस्मादुकारोकारवांश्च कर्तव्यः । यका । 'प्रत्ययस्यादि'तीत्व'न यास-
 यो'रिति निषिध्यते । यथा । यः प्रकारः, 'प्रकारवचने थालि'ति थाल्
 प्रत्ययः । यथायथम् । यो य आत्मा यत्तदात्मीयमिति वाक्यार्थः ।
 'यथास्वे यथायथ'मिति यथाशब्दस्य द्विर्वचन नपुंसकत्वं चोक्त्यर्थं निषा-
 त्यते । आयायातय्यम् । अयायायय्यम् । आयायापुय्यम् । अयायापुय्यम् ।
 यथातथातथापुरयो शब्दयोरव्ययीभावे नञा समासे ब्राह्मणादिपा-
 ठात् प्यजि 'यथातथयथापुरयोः पर्यायेणे'ति पूर्वोत्तरपदयोः पर्यायेण
 वृद्धिः । भाष्ये तु अयायातयाभाव अयायापुराभाव इति विवक्ष्यते तत्र
 'सुप्सुपे'ति समासो द्रष्टव्यः ॥ ८८२ ॥

टुवप् बीजसन्ताने ॥ षपति । उषाप । उषप्य । उषपिथ ।

जपदशा यङ इति यङन्तादूकः प्रत्ययः । अल्लोपयलोपौ च । इष्टिः ।
 श्रुयजिस्तुभ्यः करण' इति क्तिन् । इज्या । 'वज्रयजोभावे क्यञि'ति
 क्यप् । यजः । 'यजयाचेति नङ् प्रत्ययः, कुत्वनिषेधः । यजविद्याम-
 धीते वेद वा याज्ञविद्विक्कः । 'ऋतूच्यादिमूत्रान्ताट्टु'ति उच्यादिपा-
 टाट्टुक् । याज्ञिकानां धर्मं आम्नायो वा याज्ञिक्यम् । छन्दोगैश्चिक-
 याज्ञिकवहुवनटाज्य' इति षष्ठ्यन्तादुर्माम्नाययोर्ज्यः । यजमर्हति यज्ञियो
 यजमानः । 'यजत्विग्भ्या घञजा'विति द्वितीयान्तादर्हतीत्यर्थः घः ।
 यजकर्मर्हति यज्ञिय च्त्विक् । यजच्चत्विग्भ्या तत्कर्मर्हतीति चोपसंख्या-
 नमिति घः । च्त्विक्, च्त्तौ यजति चतु यजति चतुप्रयुक्तौ वा यज-
 तीति 'च्चत्विगा'दिना क्तिनि निपातिनः । नवयज्ञोऽस्मिन्वर्तते नावय-
 ज्ञिकः । 'तदस्मिन्वर्तते' इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानमिति ठक् । एवं
 पाकयज्ञिकः । इष्टमनेन इष्टी । 'इष्टादिभ्यश्चे'ति प्रथमान्तात्तृतीयार्थे
 इनिः । यजुः । 'अर्निपुयपी'त्यादिनोसिप्रत्ययः । च्चयजुषम् । 'अचतुरे'-
 त्यादिना वृद्धेऽजन्तो निपात्यते । यद् । 'यज्ञियमितनिभ्यो डिदि'त्य-
 दिप्रत्यये डित्वाट्टिलोपः । त्यच्छब्दवत्सर्वनामकार्ये त्यदादिकार्यं च ।
 यस्मिन्काले यदा । 'सर्वैकान्ये'त्यादिना दाप्रत्ययः । 'प्राग्दिशो विभक्ति'-
 रिति विभक्तित्वात्पदाद्यत्वम् । यस्मिन्कात्रे यर्हि । 'अनद्यतने र्हिल्' ।
 पूर्ववद्विभक्तित्वात्पदाद्यत्वम् । यत्परिमाणमस्य यावान् । 'यत्तदेतेभ्यः
 परिमाणे वतुवि'ति परिमाणोपाधिकात्प्रथमान्तादस्येत्यर्थे वतुप् ।
 अर्थादिह षष्ठ्यर्थः परिमाणी । 'आ सर्वेनाम्' इति वृग्दृशवतुषु परेष्वि-
 त्याकारः । सा'वत्त्वसन्तस्ये'ति दीर्घः । 'उगिदचामि'ति नुम् । हल्ङ्यादिसं-
 योगान्तलोपौ । 'उगितश्चे'ति डीपि यावती । 'बहुगणवतुडति सख्ये'-
 ति संख्यात्वात् यावता पूरणइति विग्रह्य 'तस्य पूरणे डडि'ति षष्ठ्य-
 न्तात्संख्याशब्दान्पूरणे डटि कृते 'धतोरियुगि'ति इयुगागमः । याव-
 तियः । यतरो भवतो देवदत्तः स समागच्छतु । 'क्रियतदो निर्द्वारणे
 द्वयोरेकस्य इतरजि'ति 'द्वयोर्मध्ये जातिक्रियासञ्ज्ञाभिरैकस्य निर्द्वार-
 णे पृथक्करणे गम्यमाने स्वार्थे इतरच् । महाविभाषया विकल्पनादो

भवतीरित्यपि भवति । यतमो भवता ब्राह्मणः स आगच्छतु ।
 'वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने इतमच्' । जानिश्च परिप्रश्नश्च जातिपरि-
 प्रश्नं समाहारदुन्दुस्तद्विषयेभ्यः कियत्तद्व्यो बहूनामेकस्य निर्द्वुरणे वा
 इतमजिति इतमच् । अत्र जातिग्रहणं सर्वैरपि सम्बध्यते । परिप्रश्न-
 ग्रहणं तु यत्तद्वोरसम्भवात्किम एव । वाग्रहणमकत्रयम् । यको भवता
 ब्राह्मण इति वाक्यं तु महाविभाषया भविष्यति । इतरडनमेति
 सर्वादौ पाठादेतदन्त्योऽसर्वनामकार्यं पूर्ववत् । नपुंसकाभ्यामनुपसर्ज-
 नाभ्यां इतरडतमाभ्या परयोः स्वमेरमादेशापवादो 'ऽहुतरादिभ्यः
 पञ्चभ्य' इत्यदडादेशे डित्वाट्टिलोपे च यतरत् । यतमत् इति
 भवति, यद्यय डित्वास्यात्सारदादेशे कृते 'ऽतो गुण' इति पररूपत्वं बाधित्वा
 प्रथमयोः पूर्वसवर्णदीर्घः स्यात्, अमादेशे तु स्यानिवद्वावेनामि पूर्वा
 भविष्यतीति न दोषः । एवं तर्हि पूर्वसूत्रादमनुवर्त्य सारण्यं कृत्वा
 ऽहुतरादिभ्य इति पञ्चम्याः षष्ठौ प्रकल्प्य द्वयोरमोः स्यानेऽदादेशः
 कार्यः किं डकारेण, किं चैवमकारेणापि नार्थः, दकार एव तु विधेयः,
 स चादेः परस्येत्यमोऽकारस्य भविष्यति । मकारस्य च सयोगान्तलोपे
 कतरत् कतमद्वितीष्ट सेत्स्यति । सत्य सिध्यति । हे कनरदिन्यादौ हे
 कुण्डेत्यादिव 'देङ् ह्रस्वा'दिति मम्बुद्विसम्बन्धिना हलो विधीयमानो लोपः
 स्यात्तस्मादुकारोकारवांश्च कर्त्तव्यः । यका । 'प्रत्ययस्यादि'तीत्व न यास-
 यो'रिति निषिध्यते । यथा । यः प्रकारः, 'प्रकारवचने थालि'ति थाल्
 प्रत्ययः । यथायथम् । यो य आत्मा यत्तदात्मीयमिति वाक्यार्थः ।
 'यथास्वे यथायथ'मिति यथाशब्दस्य द्विवचन नपुंसकत्वं चोक्त्यर्थं निपा-
 त्यते । आयथातथ्यम् । अयाथायथ्यम् । आयथापुर्थम् । अयाथापुर्थम् ।
 यथातथातथापुरयोः शब्दयोरव्ययीभावे नञा समासे ब्राह्मणादिपा-
 ठात् अजि 'यथातथयथापुरयोः पर्यायेणे'ति पूर्वोत्तरपदयोः पर्यायेण
 वृद्धिः । भाष्ये तु अयथातथाभाव अयथापुराभाव इति विवक्ष्यते तत्र
 'सुप्सुपे'ति समासो द्रष्टव्यः ॥ ६८२ ॥

टुवप् बीजसन्ताने ॥ वपति । उवाप । उवप्थ । उवपिथ ।

उवपिवेद्यादि यजिवत् । प्रणिवपति । 'नेर्गदेति' णत्वम् । प्रणयवपत् ।
 अङ्गव्यायेपीय्यवदति णत्वम् । प्रवपाणि । 'आनि लोडि'ति उपसर्ग-
 म्यान्निमित्तात्परस्य लोट्सम्बन्धिन आनेर्नकारस्य णत्वम् । वायम्,
 'आसुपुवपी'ति ण्यन् । वापी । चट्टसुवपीनामिति यद्वादिपाठादिनिः ।
 उप्प्रिमम् । 'द्वितः क्तिः' । सप्रसाण, 'क्तिर्वन्विच्य'मिति ण् । वापिः । इज्
 स्वपिप्रपिभ्य इतीज् । वापी । 'कृदिकारादक्तिन' इति ड् । वप्रः । वृधि-
 वपिभ्यां घ रन्विति रन्मन्ययः । बीजसन्तान क्षेत्रे बीजविक्राण, मयं
 गर्भाधानेऽपि दृश्यन्ते, यथा मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः । क्षेत्रेऽपि
 दृश्यते केशान्वपतीति ॥ ८८३ ॥

वह प्रापणे ॥ वहति । उवाह । कहतु । उवहिय । उवोठ । ऊ-
 हिय । क्रादिनियमादिट्, यलि भारद्वाजनियमादिडभावे धत्वउत्वटुत्वठ-
 लोपेषु 'सहिवहोरोदवर्णस्ये'त्योत्वे उवोठेति भवति । एवमन्यत्रापि तष-
 र्गादौ ठत्वादि । यजिवन्सप्रसारणम् । वोठा । वत्यति । 'षठोः कः
 सी'ति कत्वे षत्वम् । वहतु । अवहत् । वहेत् । आसिषि कित्वात्सं-
 सारणे उह्यात् । अवाचीत् । अवोठाम् । अत्र ठत्वादीनामसिद्धत्वात्पूर्वमेव
 हलन्तलक्षणायां वृद्धौ पश्चादुत्वादीति । अवोठामित्यत्राकारस्य 'सहि-
 वहो'रित्योत्वे पुनर्वृद्धिः प्रागेव कृतत्वाच्च भवति । वहते । वोठा ।
 वत्यते । ऊहे । ऊहिषे । वहताम् । अवहत । वहेत । वतीष्ट । अवोठ ।
 अवहाताम् । अवहत । अवोठाः । अवोठम् । अवत्ति । प्रवहति । 'प्रा-
 दृह' इति कर्त्रभिप्राये क्रियाफलेऽपि परस्मैपदम् । केचि'त्यरेर्मुच्य' इत्यत्र
 वहिमनुवर्त्य परिपूर्वाद्वापि नित्य परस्मैपदमेवाहुः । परिवहतीति । प्रणि-
 वहति । 'नेर्गदे'त्यादिना णत्वम् । इदमङ्गव्यायेऽपि प्रणयवहदित्यत्रापि
 भवति । प्रवहाणि । 'आनि लोडि'ति णत्वम् । कर्मणि । उह्यते ।
 औह्यत, अत्र यजिवल्लादेशे यकि सप्रसारणे आडागमः । विवहते ।
 वावहते । वावोठः । वावहतीत्यादि । वाहयति भारं देवदत्तेन ।
 अवीवहत् । अत्र प्रयोज्यस्य नीवह्योः प्रतिषेध इति कर्मत्वनिषेधः ।
 गत्यादिमुच्चे त फलतया प्रतीयमानगतयोऽपि गत्यर्थत्वेन यज्यन्ते इत्ययं

प्रतिषेधः । अयं च वहेरनियन्तृकृत्येति वचनादियन्तृकृत्यं न भव-
तीति बाहयति यवान्वलीवर्तानित्यत्र प्रयोज्यः कर्मैव । नियन्ता सार-
यिः । वहत्यनेनेति वक्ष्य शकटादि । 'वक्ष्य करण'मिति यति निपा-
त्यते, अन्यत्र एयनि बाह्यः । कूलमुद्रुहः । 'उद्रि कूले रुजिवहोरित्यु-
त्पन्नोद्गृहेः कूलशब्दउपपदे खः । वहत्यनेनेति वहः । 'गोचरे त्यदिना
करणे घः । पुरुषवाह वहति पुरुषप्रेष्ये' भूत्वा वहतीत्यर्थः । 'कर्त्राज्जात्र-
पुरुषयोर्नशिवहोरिति यथासंख्यात् कर्तृवाचिनि पुरुषउपपदे णमुल्, कपा-
दित्वात्तस्यैव धातोः अनुप्रयोगः । ऊठः । उठिः । निष्ठाकिनेः संप्रसारणे
ठत्वादि । कल्पनाया अपोठः । कल्पनापोठः । 'अपेतापोठमुक्तपतिता-
पञ्चस्तैरल्पश'इत्यनेन पञ्चमीसमामः । प्रौठः, प्रौठिः । 'प्रादूहोठौअपै-
ष्येपु वृद्धिर्बक्ये'ति वृद्धिः । प्रवाहणः । एयन्ताना नन्दादिपाठाल्ल्युः ।
'कृत्यवः' । 'लोर्विभागे'ति णत्व 'पूर्वपदात् संज्ञाया'मिति वा, प्रवाहण-
स्यापत्यम्, प्रावाहणेय । प्रवाहणेयः । 'शुभादिभ्यश्चेति ठकि 'प्रवा-
हणस्य ठ इति पूर्वपदस्य वा वृद्धिः । उत्तरपदस्य तु नित्या, स्वत एवात्त
रपदस्य वृद्धिमत्त्वेऽपि पुनर्वृद्धिविधान पूर्वपदवृध्यभावपक्षेऽपि प्रवाहणेयी-
भार्य इत्यत्र 'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्फारक्तविकार' इति पुंवद्वावनिषेधो
यथा स्यादिति 'स्त्रियाः पुवदि'ति पुवत्त्व रक्तविकारव्यतिरिक्तार्थवृद्धि-
निमित्ततद्धितान्तस्य स्त्रीप्रत्ययान्तस्य नेति सूत्रार्थः । ननु प्रवाहणेयीश-
ब्दस्य गोत्राभिधायित्वाद् 'गोत्र च चरणैः सहे'ति जातित्वा 'ज्जातेश्चे'ति
पुंवद्वावनिषेधस्य सिद्धत्वात्किं तदर्थेन वृद्धिविधानेन, एवं तर्हि 'जातेश्चे'-
त्यस्यानित्यत्वमनेन ज्ञायते, तेन हस्तिनीना ममूहो हास्तिरुमि-न्यत्र लिङ्ग-
विशिष्टपरिभाषया अचिनहस्तिधेनेपठति'ति ठकि 'भस्याठे तद्धित'-
इति पुंवद्वावो भवति । प्रवाहणेयस्यापत्य प्रावाहणेयः । 'तत्प्रत्ययान्त-
स्ये'ति ठान्तस्य प्रवाहणेयशब्दस्य जिति णिति किति वा तद्धिते परतः
पूर्वपदस्य वा वृद्धिरुत्तरपदस्य तु नित्या, अत्र बाह्यतद्धितनिमित्ता
नित्या वृद्धि' पक्षे बाध्यते । इत्तुवाहनम् । उपरिनिपतितेत्तु कं वाहनमित्यर्थः ।
इत्तुशब्द आहितेष्वित्तुषु वर्त्तते, 'वाहनमाहितादि'ति णत्व, वाहने यदा-

रोपित तदाहितमिन्नुच्यते, तादृक्पूर्वपदस्यान्निमित्तात् परस्य बाहन-
शब्दस्यनकारस्य णकार इति सूत्रार्थः । आहितादन्यत्र दाक्षिवाहनम् ।
वह्निः । वह्निश्चिदुःखाहात्वरिभ्यो निदिति निप्रत्ययः । नित्वादाद्यु-
दात्तः । वधूः । वहेर्धश्चेति ककारप्रत्ययो धश्चान्तादेशः । वध्वा भाव-
कर्मणी वाधवम् । युवादित्वादण् । अनङ्गान् । अनसि वहेः क्तिप्,
इश्चानसीति उणादिसूत्रेण अनुस्युपपदे वहेः क्तिप् अनसोऽन्यस्य
ङकारश्च सप्रसारणपूर्वत्वे सौ 'सावनडुह' इति नुम्, अयं च आदित्यधिः
कारेणावर्णान्ताद् विधाना 'अतुरनडुहो' रित्यामं न बाधते, अन्यथा सर्व-
नामस्यानान्तरे सावकाशमात्व सौ विशेषविहिते नुम् बाधेत, हकारस्य
संयोगान्तलोपः, 'वसुसस्वि'त्यादिना दत्वे पूर्वत्रासिद्वत्त्वात् न भवति ।
हे अनङ्गवित्यत्र आमम्बाधित्वा 'अम् सम्बुद्धा' विति अमागमः । अने-
नापि नुमो न बाधः । अदित्यधिकारादेव, अनडुह्यामित्यादौ पदत्वे
'वसुसस्वि'त्यादिना दत्वम् । अनुडुही । अनङ्गाही । गौरादिपाठात्
ङीष्पि पत्ते अमागमः । प्रियोऽनङ्गान् यस्य प्रियानडुक्कः । उरःप्रभृ-
तिषु अनङ्गानिति पाठात् कप् । अस्मिन् स्वादौ पदत्वात् दत्वम् ।
चत्वम् । अत्रैकवचनान्तस्य तस्य पाठात् वचनान्तरेण विग्रहे 'शेपाद्
विभाषे'ति कपो विकल्पनात् प्रियानङ्गानित्यपि भवति । अङ्गाधिकारे
तस्य तदन्तस्येत्युक्तत्वादत्रापि नुमादि भवति । धेनुश्च अनङ्गाश्च धेन्व-
नडुहम् । 'अचतुरे'त्यादिना द्वन्द्वेऽजन्तो निपातितः । पचादयोऽनुदात्ताः
स्वरितेः ॥ ६८४ ॥

वस निघासे ॥ अनुदात्त उदात्तेत् । वसति । याममुपवसति । यामे
वसतीत्यर्थः, 'उपान्वध्याङ्वस' इति उपाद्युपसृष्टात् वसेराधारस्य कर्म-
त्वात् द्वितीया । एष याममनुवसतीति, यामे उपवसति । अशननि-
वृत्ति करोतीत्यर्थः । अत्र वसेर्यस्य प्रतिषेध इति कर्मत्वनिषेधः ।
अत्र अशिशब्देन अशननिवृत्तिरुच्यते, यद्वायंशब्दे निवृत्तिवचनो यथा
श्लेष्मणोर्थे कटुकौपधीः प्रयुज्जीतेति, तेन निवृत्तेः सन्नन्धिना वसेरि-
त्यर्थो भवति । उवास, ऊपतु, उवसिथ । उवकथ । ऊषिव । संप्रसा-

रण यजिवन् । वस्ता । वन्म्यनि । 'सः स्याद्वृधातुक इति सकारे
तत्त्वम् । वस्तु । अवसन् । उव्यात् । अवान्सोत् । अवान्ताम् । अवा-
त्सुः । नकारादौ 'भक्तो भक्तीनि मिञ्जोपम्य पृत्राटुत्वात्सः स्या-
द्वृधातुक' इति सकारे तत्त्वे पश्चात् सलोपः । क भवानुपिनः, अहमत्रा-
वात्सम् । वनेर्लुङ्, रात्रिशेषे जागरणमतताविति लुङ् । यदि कश्चित्
केन चित् रात्रिशेषे तुर्ये यामे पृष्ठो यामत्रयवास प्रतिवक्ति तदा लुङि-
त्यर्थः । यामत्रयस्याव्यनत्वान्नङि प्राप्ते वचनम् । भूतमामान्यविवक्षयैव
लुङि सिद्धे वचनमिदं लङ्तिवृत्त्यर्थं, जागरणमतताविति वचनात् सुप्ता
प्रतिबुद्ध प्रतिवचने नाय नियमः । विवत्सति । वावस्यने । वावस्ति ।
लङि 'तिप्यनस्ते'रिति सकारस्य पदान्तत्वाद्वन्वे अवावत् । सिपि तु
'सिपि धातोर्ह्व'ति अवाव इत्यपि भवति । वासयति । अवीवमत् ।
अत्राणावकर्मकादि'ति परस्मैपदस्य 'न पादमी'त्यादिना निषेधात्
वासयते इत्यपि भवति । उपितवान् । 'भाषाया सदवसे'ति भूतसामान्ये
लिटो नित्य कसुः । अस्मादेवादेशविधानात् भूतसामान्ये पक्षे लिङनु-
मीयते । परस्मादनुवृत्तेर्लुङ्विषयेष्य लिङिति सीदनावुपपादितम् ।
वास्तव्यः । 'वमेन्त्यन्कर्तरि णिच्चे'ति व्यक्तव्यान् णिट्द्वावात् वृट्ठिः ।
अमा सह वसतः सूर्याचन्द्रमसावन्नैव्यमावास्या, 'अमावस्यदन्यतरस्या-
मि'ति ण्यति पक्षे वृद्धभावो निपात्यते, अन्यदा वृट्ठिः । अमावस्याया
जात अमावस्यकम् । अमावस्यम् । 'अमावस्याया वा' 'अवे'ति सप्तम्य-
न्ताज्जातार्थं कनकारौ च, वाग्रहणात् 'सधिवेले'त्यादिना शैपिकेऽणि
आमावस्यमिति भवति । एकदेशविकृतमिति न्यायेन त्रय एते प्रत्यया
अमावस्याशब्दादपि, अमावास्यकम् । अमावास्यम् । आमावास्यमिति ।
आवासी । यावव्याहृतस्याहृत्रजवदवमा प्रतिपिष्टानामिति गृहादिपठ-
ाणिनिः । प्रतिपिष्टानां नऽपूर्वाणामित्यर्थः । प्रवासी । 'प्रे लपे'त्यादिना
घिनुण् । अनुपितो गुरुः शिष्यः । अनुपितो गुरुः शिष्येण । 'गन्थर्याकर्म-
के'त्यादिना कर्तृकर्मणोः क्तः । अत्र वसियहणं सकर्मकार्थम् । अकर्म-
कत्वे तु क्ताधिकरणे चे'ति कर्तृभावाधिकरणे क्ता भवति । उपितः ।

उपितमनेन, इदमेवामुपितमिति । उपित्वा । उपितः । उपितवान् ।
 'वसतिस्तुधोरिडि'ति त्कानिष्ठयोरिट् । 'न त्कासेडि'ति निषेध बाधित्वा
 'मृडमृदे'त्यादिना सेट् कित्वविधानात् सप्रसारणम् । उपवस्या प्राप्ताऽस्य
 औपवस्यम् । उपवस्यादिभ्य उपमख्यान्मिति तदस्य प्राप्तिमिति विषये
 एयप्रत्ययः । प्रवामाय प्रभवति प्रावामिकः । एवमौपवासिकः । 'तस्मै
 प्रभवति सन्तापादिभ्य'इति चतुर्थ्यन्तात्प्रभवत्यर्थे ठक् । वत्सरः । सव-
 त्सरः । परिवत्सरः । वसेश्चेति सप्रतिपूर्वात्सरप्रत्ययः । चकारादनुवत्स-
 रादयः । सवत्सरे जात फल पर्व वा सावत्सरम् । सन्धिवेलादिषु 'सवत्स-
 रात् फलपर्वणो'रिति पाठाच्चैषिकोऽणप्रत्ययः । कालाट्टजोपवादः । संव-
 त्सरे देयमृणं सांवत्सरिकम् । सावत्सरिकम् । 'सवत्सरायहायणीभ्या ठञ्
 चे'ति सप्रत्यन्ताद्वेये ऋणे ठञ्वुजौ । अत्र सवत्सरायहायणीभ्यां चेत्युच्यमा-
 ने ऽनुवृत्त्या ठञ् भविष्यति तद्विकल्पनात् कालाट्टजपि, एव सिद्धे ठञ्वेति
 प्रतिपदमनयोर्विधानं यदा देयमृणं फलं भवति तदा 'सवत्सरात् फलपर्व-
 णोरि'ति प्राप्स्याणो बाधनार्थम् । द्विसंवत्सरीणः । द्विसावत्सरिकः । 'रा-
 ज्यहः सवत्सराच्चे'ति राज्ञाद्यन्तात् द्विगो'स्तेन निवृत्त'तमधीष्टो भूतो
 भूतो भावी'ति विषये खप्रत्ययः । 'संख्यायाः सवत्सरसंख्यस्य चे'ति उत्तर-
 पदवृद्धिः । अधीष्टस्सत्कृत्य व्यापारितः । भूतो वेतनेन क्रीतः । भूतभाविनौ
 प्रसिद्धौ । अनुसंवत्सरं दीयते कार्यं वा ऽनुसावत्सरिकम् । 'तत्र च दीयते
 कार्यं भववदि'त्यतिदेशेन कार्यदीयमानयोर्भवलक्षणः कालाट्टज् । 'अनुश-
 तिकादीनां चे'ति उभयपदवृद्धिः । आवसथः । उपसर्गं वसेरित्यथः । आव-
 सथे वसति आवसथिकः । 'आवसथात् षलि'ति षल् । षित्वात् स्त्रिया-
 मावसिथिकी । वसतिः । 'सहिवस्यत्तिभ्यः किदि'त्यतिप्रत्ययः । वसतौ
 साधु वासतेयम् । 'पथ्यतिथिवसती'ति ठञ्, वस्त्र मूल्यम् । 'सुमूल्यादायव-
 स्यतिभ्यो न' इति नः । वस्त्र हरत्यावहति वा वस्त्रिकः । 'वस्त्रक्रयविक्रयाभ्यां
 कक्कना'विति द्वितीयान्ताद्वस्त्रादुरत्यादिष्वर्थेषु यथासंख्यात् कन् । वास्त्रि-
 कः । 'वस्त्रक्रयविक्रयाद्वि'ति तृतीयान्तात् जीवत्यर्थे ठन्, वसन्तः । 'तृभू-
 वहिवसी'ति अन्तच् । वसन्तसहचरितोऽपि यन्यो वसन्तः । तमधीति वेद

वा वामनिक । 'वमन्तादिभ्यष्टगिति' अर्धतृवेदित्रोष्ठक् । वमन्ते
 पुष्यन्ति वामन्यः कुन्दलनाः । 'मन्थिवेलाऋतुनक्षत्रेभ्योणि'ति
 सप्तम्यन्ताच्चेपिकोण् । एव माधुपच्यमानयोरपि । वमन्ते उप्त वास-
 न्तम् । वासन्तकम् । 'यीष्मवमन्तादन्यतरस्य'मिति तत्रोप्तमित्येत-
 स्मिन्विषये वृत्रगौ । वस्तिः । वमेस्ति रिनि तिः । वस्तिरिव वास्तेयम् ।
 'वस्तेर्ठञि तीवार्थे' ठञ् । वस्तौ भवमपि वास्तेयमिति । 'वृत्तिकृत्तिकल-
 शिवस्त्यस्त्यहेठञि'ति सप्तम्यन्ताद् भवार्थे ठञ् । 'वमेस्तुत्रि'ति तुनि
 वास्तु । अगारे णिच्चेति णित्वाद्दृष्टिः । वस्त्रम् । शृन् । वस्त्रैः समाच्छा-
 दयति सवस्त्रयति । 'मुण्डमिश्रे'त्यादिना णिच् । वस्त्रात्ममाच्छादनइति
 वृत्तिः । वामि । वमिवपिपयजिरा'जिन्नजिमदिहनिवादिवा रभ्य इजिनीञ्
 प्रत्ययः । वसु । श्वस्वृस्त्रिही'त्यादिना उप्रत्ययः । वसुमत्तमो वसिष्ठः ।
 वसुमत्तरो वमीयान् । मनुवन्तादिष्ठवीयसुनो'र्विन्मनोर्लुङि'ति मनुषो
 लुङिष्टमेय'स्त्विति वर्तमाने 'ठेरिति' ठिनेपः । अस्मादेव लुङ्विधानाद्
 गुणवचनादपि मत्वन्तादिष्ठवीयसुन'वनुर्मायेने । वासिष्ठः । वामिष्ठौ ।
 वमिष्ठा । 'ह्यन्यकृशृशकुन्यश्चे'त्यपन्यार्थेऽण् । तस्या'जिभृगुकुन्स
 वमिष्ठगे'तमाङ्गिरोभ्यच्चेति बहुषु लुक् । श्वोवमीयः । श्वे'वमीयम् ।
 'श्वसो वमीय श्वेयस' इति समामान्ते'त् । आच्छादनेऽयमदादिः ।
 स्तम्भने दिवादिः । स्नेहनादौ कथादिश्चुरादिश्च । वम उपमेवायामा-
 च्छादनइति च कथादिः ॥ ८८५ ॥

वेञ् तन्तुमन्ताने ॥ वयति । वयते । उवाय । ऊयतुः । ऊयुः ।
 उवयिष्य । ऊययु । ऊय । उवाय । उवय । ऊयिव । ऊयिम । 'वेत्रो वयि-
 रि'ति वा वयादेशः । तस्य 'यहिज्यावयिष्यधिवष्टिविचनित्वरचनिष्ट-
 तिभृज्जतीना इति वे'ति सप्रसारणम् । चकारात् किदनुकुर्यते । अक्रिति
 तु 'लित्यभ्यासस्योभयेणामि'ति अयामस्य सप्रसारणम् । सर्वस्य यकारस्य
 'लिटि वयो य' इति निषेधात् सप्रसारणम् । सर्वत्र क्तादिनियमादिट् ।
 यन्य वन्ताम्वदि'ति निषेधे' न भवति वयेन्तासावमत्त्वात् । अत एव
 भारद्वाजविकल्पाऽपि न भवति । किति लिटि वश्चाम्यान्यतरस्या

क्रिती'ति पक्षे यकारस्य वकारे ऊवतुः । ऊवुरित्यादि । वयादेशस्य स्यानि-
 वद्भावेन अित्त्वात्तडि ऊये । ऊयाते । ऊयिद्वे । ऊयिध्वे । ऊयिवहे । ध्वमि
 'विभाषेठ' इति मूर्द्धन्यविकल्पः । अत्रापि वकारादेशपक्षे ऊवे । ऊवाते
 इत्यादि । वयादेशाभावपक्षे 'आदेव' इत्यात्वे ववौ । ववतुः । ववाय ।
 वविय । ववयुः । वव । ववौ । वविव । क्रादिनियमादिट् । यलि
 भारद्वाजनियमाद्विकल्पः । 'आत औ णल' इति णल औत्वमन्यत्रा'ति
 लोप इटि चे'त्याल्लोपः । 'वचिस्वपियजादीना क्रिती'ति 'लित्यभ्यास-
 स्याभयेषामि'ति च प्राप्त सप्रसारणं 'वेज' इति लिटि निषिध्यते । ववे ।
 ववाते इत्यादि । वाता । वास्यति । वास्यते । वयतु । वयताम् । अव-
 यत् । अवयत । वयेत् । वयेत । आशिपि ऊयात् । वासीष्ट । यासुटि
 'क्रिदाशिपी'ति क्रित्वे सप्रसारणे परपूर्वत्वे वाऽ'कृत्सार्वधातुकयो'रिति
 दीर्घः । अवासीत् । अवासिष्टाम् । अवास्त । अवासातामित्यादि ।
 परस्मैपदे 'यमरमनमाता'मिति सगिटौ । विवासति । विवासते । वावा-
 यते । वावाति । वावेति । वावीतः । 'ई हल्यघोरि'तीत्यम् । वावति ।
 'श्नाभ्यस्तघोरि'त्याल्लोपः । लोटि हावीत्वे वावीहि । वाययति ।
 अववीयत् । 'शाच्चे'ति युक् । प्रवाय । 'न ल्यपी'ति वेजः सप्रसारणनि-
 षेधः । तन्तुवायः । 'ह्वावामश्चे'ति कर्मण्युपपदेऽण् 'आतोऽनुपसर्गे क'
 इति कस्यापवादः । उता । उतः सप्रसारणपूर्वत्वे । निष्प्रवाणिः ।
 नव वासः प्रेयनेऽस्यामिति प्रवाणी तन्तुवायशलाका भण्यते । निर्गताः
 प्रवाण्यो यस्मादिति बहुव्रीहौ 'निष्प्रवाणिश्चे'ति निपातनात्कवभाव ।
 'गोस्त्रियोऽपसर्जनस्ये'ति ह्रस्वः ॥ ८८६ ॥

व्येज् संवरणे ॥ व्ययति । व्ययते । विव्याय । विव्यतुः । विव्युः ।
 विव्ययिथ । विव्याय 'न व्यो लिटी'त्यात्वनिषेधः । णिति वृद्धावापादेशे
 तस्य द्विर्वचनेची'ति स्यानिवत्त्वाद् व्येज्जस्य द्विर्वचने 'लित्यभ्यासस्यो-
 भयेषामि'त्यभ्यासयकारस्य सप्रसारणे पररूपत्वम् । संप्रसारणे चोभयेषां-
 ग्रहणादुनादिशेषं बाधित्वा भवति, 'न सप्रसारणे सप्रसारणमि'ति
 वकारस्य संप्रसारणं न भवति, किति 'वचिस्वपी'त्यादिना सप्रसारणे पूर्व-

रूपत्वे द्विवचने 'एरनेकाच' इति यण् । यलि 'इडल्यर्निअयनीनामि'नीट्
 नित्यमन्यत्र क्तादिनियमादिट् । विअे । विअ्याने । विअिये । विअियध्वे ।
 विअियद्वे । विअियवहे । सर्वत्र वचिन्वपीत्यादिना सप्रसारणे पररूपत्वे
 द्वित्वम् । आता । आस्यति । आस्यते । अयनु । अयताम् । अअयत् ।
 अअयत । व्यपेत् । व्यपेत । आशिपि । वीयात् । आनीट् । यासुट् ।
 कित्वात्मप्रसारणपूर्वरूपयोर्हने इति दीर्घः । अय्यामीत् । अय्यास्ताम् ।
 परस्मैपदे सगिटौ । विअ्यामति । विअ्यामते । वेवीयने । 'स्वपिस्यमि-
 व्येजां यङी'ति सप्रसारणे परपूर्वत्वे 'हल' इति दीर्घः । द्विवचनम् ।
 वाव्येति । वाव्याति । वाव्यीतः । वाव्यति । कृता 'श्नाभ्यस्तयो रित्या-
 कारलोपः । हलादा'वी हल्यघोरि तीत्वम् । आययति । 'शाच्छासे'त्या-
 दिना युक् । सव्याय । 'व्यश्चे'ति ल्यपि सप्रसारणनिषेधः परिपूर्वत्वे
 तु 'विभाषा परे'रिति प्रसारणविकल्पनात्यरिजीय पठिष्यायेत्युभय भवति ।
 नीविः । नी व्यो यलोपः पूर्वपदस्य च दीर्घ इति इकाप्रत्यये डित्वा-
 टिलोपयनोपयोः पूर्वपददीर्घः । नीवी । 'कृदिकारादक्तिन' इति वा
 ङाप् ॥ ८८७ ॥

हुञ् स्पर्धाया शब्दे च ॥ हुयति । हुयते । जुहाव । जुहुवतुः ।
 जुहुविथ । जुहोथ । अत्र 'चाभ्यस्तस्य चेत्यभ्यस्तीभविष्यतो हुञः
 प्रागेव द्विवचनात्मसारणेन्तरङ्गत्वात्परपूर्वत्वे पश्चाद् द्विवचनम् । पूर्वं
 तु द्विवचनेन सप्रसारणे सप्रसारणमित्यभ्यासस्य सप्रसारणं न स्यात् ।
 व्यवधानान्नायं निषेधः स्यादिति न वाच्यम् । तत्र समानाङ्ग्यहणस्य
 चोदितत्वात् । तत्र णलि वृद्धावादेशयोः स्यानिवन्वटुशब्दस्य द्विव-
 चनम्, अत्र परपूर्वत्वाभावे 'आत आ णल' इति स्यात् । जुहुवतुरित्या-
 दा'वचि श्नुधान्वि'त्यादिनेयडादेशः । तत्रापि सप्रसारणेन्तरङ्गत्वात्परपूर्व-
 त्वमवश्यमेष्टव्यम् । अन्यथा 'तो लोप' इत्याहोपे तस्य स्यानिवत्त्वाद्
 द्विवचने 'अमिदृवदत्रे'त्यमिदृत्वान्नवधानादुवङ् न स्यात् । यलि गुणः ।
 भारद्वाजनियमादिद्विकृत्यः । उत्तमे णलि णित्वाभावपक्षे गुणेऽवादेशः ।
 जुहुवे । जुहुवाने । जुहुविषे । जुहुविध्वे । जुहुविद्वे । हुता ।

ह्रातासे । ह्रास्यति । ह्रास्यते । ह्रुयतु । ह्रुयताम् । अह्र-
यत् । ह्रुयेत् । आशिषि ह्रूयात् । ह्रासीष्ट । यासुटि क्तिवात्सप्रसारणे
‘हल’ इति दीर्घः । अह्रुत् । अह्रुताम् । ‘लिपिसिचिह्रश्चे’ति परस्मैपदे
सिजपवादोऽङ् । ‘अत्मनेपदेष्वन्यतरस्यामि’त्यङो विकल्पनात् । अह्रुत् ।
अह्रुताम् । अह्रुत् । अह्रास्त । अह्रासाताम् अह्रासतेऽनुभय भवति, अङि
सर्वत्र ‘आतो लोप इटि चे’त्याल्लोपः । इदमङ् विकल्पन कर्त्तरीति
कर्मणि अह्रायि । अह्रासातामित्यादौ चिण्सिचावेव भवतः । चिण्व-
दिटि अह्रायिषातामित्यादि । एवं स्यसिचसीयुटतासिषु ह्रायिष्यते ।
ह्रायिषीष्ट । ह्रायितेत्यादि द्रष्टव्यम् । कर्मकर्त्तरी तु शब्दे ‘अचः कर्म-
कर्त्तरी’ति विणो विकल्पनात्तदभावे ‘आत्मनेपदेष्वन्यतरस्यामि’ति पक्षे
ऽङ् । तदभावे सिच् । तस्य च पक्षे विण्वदिटि अह्रायि । अह्रुत् । अह्रास्त ।
अह्रायिष्टेति चातूरूप्यम् भवति । निह्रुयते । सह्रुयते । उपह्रुयते ।
विह्रुयते । आह्रुयते । ‘निसमुपविभ्यो ह्रुः’ ‘स्पृष्टायामाङ’ इत्यत्र कर्त्रभि-
प्राये तङ् । अत्र स्पृष्टा धात्वर्थस्य शब्दनस्य हेतुनया विषय इति वृत्त्यादौ
स्यितम् । स्पृष्टमान आह्वानं करोतीत्यर्थः । अत्र च ह्रु इति न प्रयोगस्य-
स्याकारान्तस्यानुकरणं किन्तु धातोरवैजन्तस्य, आत्वन्तु लक्षणवशादिति
निह्रुयतइत्यादौ तङ् भवति । एकदेशविभक्तस्यानन्यत्वान्निह्रास्यतइत्यादि-
ष्वपि । जुहूपति । जुहूपते । ‘अभ्यस्तस्य चे’ति प्रसारणे परपूर्वत्वे ‘हल’
इति दीर्घे धातोरिगन्तत्वादिर्को भलि’ति सनः क्तिवाद्गुणो न भवति ।
जोह्रुयते । जोह्राति । जोह्रुतः । जोह्रुवति । ‘हुश्नुवोः सार्वधातुक’इति
यष् हुशब्दस्य लार्त्तणिकत्वादनर्थकत्वाच्च न भवति । ह्राययति । जुहा-
वयिषति । अजूहवन् । अजूहवताम् । अजूहवन् । अत्र ‘हुः सप्रसारण
मि’ति सन्यरे चङ्परि णौ प्रसारणे परपूर्वत्वे वृद्धावादेशयोणौ कृत स्या-
निवदिति स्यानिवत्त्वाट्टशब्दस्य हौशब्दस्य वा द्विवचन ‘णौ चङ्पुपधाया
ह्रस्व, इदं च संप्रसारणं सप्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवदिति वा ‘णौ
च संश्वडोरि’ति विषयसम्प्रीत्या ‘दातो युगि’ति युक्ः प्राक् प्रवर्त्तते । कृते
चान्तरङ्गत्वात्परपूर्वत्वमिति युगं भवति । नन्वत्राभ्यस्तस्य चे’ति

अभ्यस्तकारणस्य ह्रुयतेः सप्रसारणविधानात्सिद्धमेव तदिति किं 'ह्रु
सप्रसारणमि'त्यनेनेति ज्ञानार्थमभ्यामनिमित्तप्रत्ययेन व्यञ्जधाने यदि
भवति णावेवेति । तेन ह्रुयकमिच्छति जिह्वायकिपति, ह्रुयकीयतेः सन्
जिह्वायकीयिषतीत्यादौ सप्रसारण न भवति । एवञ्च सन्त्यरे चङ्परं णौ
'अभ्यस्तस्य चे'त्येव सप्रसारण नञ्चाभ्यस्तीभविष्यन् इति जुहावयिषति,
अजृहवदित्यत्रापि णिनुत्पत्तेः प्रागेव प्रसारणेन्तरङ्गत्वात्परद्वन्द्वे च नैव
युक्तः प्रसङ्गः । आह । 'आतोनुपसर्गं क' इत्यच्भाष्ये सर्वत्र प्रसारणिभ्यो
डो वक्तव्य इति इत्यन्ये टिनापमुक्त्वा 'आतोनुपसर्गं क' इति कप्रत्यये
वा परत्वादाल्लोपे सप्रसारणे यणि आह इति मिट्टमिच्युक्तम् । उवङ् तु
आल्लोपस्यामिट्टवदत्रे त्यमिट्टन्वाग्रवधानाच्च भवति । निहवः । अभि-
हवः । उपहवः । विहवः । 'ह्रुः सप्रसारण च न्यभ्युपविषु' 'आडि युङु' 'भावे-
ऽनुपसर्गस्ये'त्यप्रत्यये प्रसारणम् । आहावः । 'निपानमाहाव' इति
प्रसारणे वृद्धौ निपात्यते । निपानमुपकृत्य जनाशये । यत्र गावः पानार्थमाहू-
यन्ते । आहू । 'आतश्चोपसर्ग'इति स्त्रियामङ्गाल्लोपः । आहूतिः सहूति
रिति बाहुलकात् क्तिन् वेजादयस्त्रयोऽनुदात्ता उभयतो भाषाः ॥ ६८८ ॥

वद व्यक्ताया वाचि ॥ वदति । उवाद । ऊदतुः । उदुः । उव-
दित्य । उवाद । उवद । ऊदिव । यजादित्वात्किन्ति सप्रसारणम् । पिति
'लित्यम्यासम्ये'त्यभ्यासस्य । वदिता । वदिष्यति । वदतु । अवदत् ।
वदेत् । आशिषि । उद्यात् । अवादीत् । 'वदव्रजे'ति वृद्धिः । विवदिषति ।
वावदयते । वावदीति । वाधति । वादयति । अवीवदत् । वादयते ।
अवीवदत । वदेः कर्माविवक्षाया मणावकर्मकादि नि प्राप्त परस्मैपद
'न णदमी'न्यादिना निषिध्यते । अभिवदति । गुरुं देवदत्तः । अभिवाद-
यते गुरुं देवदत्त देवदत्तेनेति वा, 'अभिवादिदृशोरात्मनेपदे उपसग्या-
नमिति पक्षे प्रयोज्यस्य कर्मत्व परस्मैपदे तु कर्तृन्वात्तृतीयैव । वदते
व्याकरणे यज्ञनारायण । भासमानस्तत्र सूत्रार्थं वक्षीत्यर्थः । कर्मकरानु-
पवदते । उपसान्वयवीत्यर्थः । वदते यज्ञनारायणाचार्यः । जानाति
वदितुमित्यर्थः । गेहे वदते, तद्विषयमुत्साहमाविष्करोतीत्यर्थः । गेहे

विवदन्ते । विमतिपतिता विचित्र भाषन्तइत्यर्थः । कुलभार्यामुपवदन्ते ।
 उपच्छन्दयनीत्यर्थः । भामनोपमम्भाषाज्ञानद्वयविमत्युपमन्त्रणेषु वद'इति
 तङ् । भासन दीप्तिः, उपनम्भाषणमुपमान्वन, ज्ञान सम्यगवबोधः ।
 यत्र उत्साहः, विमतिर्नानामति । उपमन्त्रण रहस्युपच्छन्दनम् । उपसा-
 न्वनमुपच्छन्दन च धातोरर्थतया विशेषणम्, अन्यत्र धात्वर्थस्य, सप्रव-
 दन्ते राजानः । सम्भूयोच्चारयन्तीत्यर्थः । 'व्यक्तवाचा समुच्चारण'इति
 तङ् । व्यक्तवाचो मनुष्याः । समुच्चारण सम्भूयोच्चारण, अर्थस्वभावाद्दु-
 पसर्गयोगः । अव्यक्तवान्तु पर्यायोच्चारणे च परस्मैपदमेव । सप्रवदन्ति
 कुक्कुटाः । ब्राह्मणो वदति, क्षत्रियो वदति । अनुवदते कठः कलापकस्य
 अनुः सादृश्ये, यथा कालापोऽधीयानो वदति तथा कठ इत्यर्थः । 'अने-
 रकर्मकादि'ति अनुवदतेस्तङ् । अत्रानुः सादृश्ये इति सादृश्यप्रतिपादन-
 परत्वादकर्मकत्वम् । अयमपि योगो व्यक्तवाग्विषये एव । अनुवदति
 घीणा गायकस्येत्यत्र न तङ्, अकर्मकादित्युक्तेः पूर्वाक्तमनुवदनीत्यत्र च
 न भवति । विप्रवदन्ते मौहूर्त्तिकाः । युगपद्विरुद्ध भाषन्तइत्यर्थः ।
 'विभाषा विप्रलाप'इति तङ् विकल्पः । विप्रलापो विरुद्धभाषणम् । 'व्यक्त-
 वाचा समुच्चारण'इतिप्राप्ते इय विभाषेव्यक्तवाक्कर्तृके विरुद्धभाषणे
 तङ् न भवति । विप्रवदन्ति शकुनीयाः । तथा व्यक्तवाक्कर्तृके विरुद्धभा-
 षणे क्रमिकेपि न तङ्, मौहूर्त्तिकाः क्रमेण विप्रवदन्तीति । धनकामो
 न्यायमपवदते । धनार्थी न्यायं नाद्रियतइत्यर्थः । 'अपाद्वद' इति कर्त्त-
 रभिप्राये तङ् । अवद्य पापम् । 'अवद्यपण्ये'त्यादिना यति गर्ह्यं निपा-
 त्यते । ब्रह्मोद्य, ब्रह्मणो वदनमित्यर्थः । 'वदः सुपि क्यप् चे'त्यनुपसर्गे
 सुष्पुपपदे क्यपि प्रसारणं चकाराद्वति ब्रह्मवद्यम् । अनुपसर्गादुपसृष्टाच्च
 ए यति वाद्य प्रवादामिति । मृषोद्यम् । 'राजसूये'त्यादिना भावकर्मणोः
 क्यपि निपात्यते । अवादी । ग्रहादिषु यावद्याहूइत्यादिसूत्रेण नञ्पूर्वा-
 णिनिः । वदः । वदावदः । पचाद्यचि 'चलिपतिवदी'त्यादिना द्विवचन-
 मभ्यासस्य त्वागागमः । प्रियंवदः । वशंवदः । 'प्रियवशे वदः खजि'ति
 खच् । परिवादी । सपृचादित्वाद् घिनुष् । प्रवादी । 'प्रे लपे'त्यादिन

घिनृण् । परिवादकः । 'निन्दहिसे'त्यादिना एयन्तादृञ् । घञ्दृक्कस्या-
पस्य वाञ्छदृक्कः । 'कुर्वादिभ्यो एय' इति एयः । कुर्वादिपाठादेव यङ-
न्तादृदेरुक्तप्रत्ययः । प्रवादृकादयः प्रयोगागिन्त्याः उदित्वा 'न्मृडमृदे'
त्यादिना मेठः ऋः क्तिन्वात्प्रमरणम् । अच्छेद्य । अच्छ गत्यर्थवदे-
ष्विति अच्छगच्छस्य गतित्वात्समासे मन्यपि प्रमरणम् । वादिः । वदि-
षपीत्यादिना इञ्प्रत्ययः । वत्सः । 'वृत्तवदी'त्यादिना सप्रत्ययः । वत्सल-
कामवान् । 'वत्समाभ्या कामवल' इति लङ्प्रत्ययो मत्वर्थीयः । कामव-
लगच्छावर्शश्चाद्यजनौ तद्वृत्ति वर्तते वृत्तौ कामवलार्थौ । वत्सतरः ।
प्रथमव्योतिक्कान्त इत्यर्थः । 'वत्सोत्ताश्वपभेभ्यश्च ननुत्स इति प्रवृत्ति-
निमित्ततनुत्वापाधिकार्यादस्माद्वत्सादेः स्वार्थं णश्च । वत्सशब्दस्य
प्रवृत्तिनिमित्त प्रथमवयः सम्बन्धः । पितृत्वात् ङीप् स्त्रिया वत्सतरी ।
वत्साना समूहो वात्मकम् । 'गोत्रोत्ते'त्यादिना वुञ् । वादिचम् । 'अशि-
त्रादिभ्य इत्रोत्रावि'ति एयन्तादिच । अण्यन्ताद्वाहुलकाद्वृद्धिः । वदान्यः ।
वदेरान्य इत्यान्यप्रत्ययः । अपमा ऽपीयञ्च ॥ ६८६ ॥

टुञ्जोश्च गतिवृद्धेः ॥ अथ वदतिश्च परस्मैभाषावुदानेनौ । श्वय-
ति । शुशाव । शुशुवतुः । शुशुवुः । शुशुविय । शुशुवयुः । शुशुव । शुशाव ।
शुशुविव । शुशुविम । 'विभाषा श्वेरि'ति लिङ्गङा' सप्रमरणविकल्पः ।
अत्र सप्रमरण सप्रमरणाश्रयकार्यं च बलीय इति 'लिङ्गङाश्चे'ति वि-
प्रयसप्रमीत्वाद्वा सप्रमरणमुभयेप्रायदृणाद् हलादिशेष बाधित्वा ऽत्र
भवति । किति 'वत्तिस्वपी'त्यादिना सप्रमरणे पररूपत्वे द्विवचने शुशु-
वतुः, शुशुवुः । पितृवचनेषु गुणवृद्धिभ्यामन्यत्र यणश्च पूर्व सप्रमरणे ऽन्त-
रङ्गत्वात् पररूपत्वे च यथायोगं वृद्धिगुणयोरावदेशौ । किन्तु तूत्रङा-
द्वेगः । 'द्विवचनेची'ति स्यानिवत्त्वाच्छुण्डस्य द्विवचनं, प्रमरणाभावे शि-
श्वाय । शिश्वयनुः । शिश्वयुः । शिश्वयिय । शिश्वययुः । शिश्वाय ।
शिश्वय । शिश्वयिव । शिश्वयिम । यथायोगं वृद्धिगुणयोरावदेशौ । कि-
तीयङ् पूर्ववत्, स्यानिवत्त्वान्निगुणशब्दस्य द्विवचनं पिति 'लित्यभ्यास-
मोभयेपानि'त्यभ्यासस्य सप्रमरण, 'श्वयतेलित्यभ्यासलक्षणप्रतिषेध'

इति निषेधात् भवति । श्वयिना । श्वयिष्यति । श्वयतु । अश्वयत् ।
 श्वयेत् । आशिषि । शूयात् । कित्वा 'दृचिस्वपी' त्यादिना प्रसारणे 'हल'
 इति दीर्घः । अश्वयत् । 'जृन्तमिभ्व'त्यङ्, वा तत्र परे 'श्वयतेर' इती-
 कारस्याकारे अतो लोपः । पररूप च अङोभावे 'विभाषा धेट्शब्दो'रिति
 पक्षे चङि द्विर्वचने इयङि अशिश्चिष्यत्, अशिश्चिष्यताम्, अशिश्चिष्यत् ।
 अशिश्चिष्यः । अशिश्चिष्यम् । अशिश्चिष्य । अशिश्चिष्याव । चङङोरभावे
 सिचि । अश्वयीत् । अश्वयिष्टामित्यादि, 'ह्यन्तत्तणे नि वृद्धिनिषेधः ।
 शिश्चिषिषति । शेष्वीयते । शेष्वीयते । 'लिङ्गङो'रिति वा सप्रसारणं,
 शेष्वीयति । शेष्वीयते । शेष्वीयते । शेष्वीयति । लुङि प्रकृतिग्रहणादङ्चङो ।
 अशिश्चिष्यदित्यादि । अङि 'श्वयतेर' इत्यत्वं शित्पा निर्देशात् भवति
 इति तदेव रूपम् । यङ्लुकि 'लिङ्गङोरिति' सप्रसारणं लुका विषयत्वाप-
 हारात् भवति, मिश्रपक्षे अशिश्चायीत् । श्वापयति । अशिश्चपत् । अशू-
 शवत् । शिश्वापयिषति । शुशावयिषति । अत्र 'विभाषा श्वेः' 'शौ च
 सञ्चङो'रिति सन्परे चङ्परं शौ भाविनि पक्षे सप्रसारणे अन्तरङ्गत्वात्पर-
 पूर्वत्वे वृद्ध्यावौ । तयोः स्यानिवत्त्वात् शुशब्दस्य श्विश्चब्दस्य वा
 द्विर्वचनम् । श्वययुः । द्वितीः ऽयुच् । शूनवान् । शूनः । 'श्वीदितो
 निष्ठायामि'न्यनिट्त्वम् । अत्र पदमञ्जर्यादौ 'ओदितश्चे'ति ओदिनो-
 नन्तरस्य निष्ठातकारस्य नत्वविधानादेवेदभावस्य सिद्धे श्वयतिग्रहण-
 शक्यमकर्तुम् इति । उदक्तेन श्वयतइति उदश्चित् । 'क्लिप् चे'ति क्लिप् ।
 उदश्चित इति निर्देशात् प्रसारणाभावः । 'उदकस्योदः सञ्जायामि'ति
 उदकस्योदभावः । उदश्चिति संस्कृतमौदश्चित्कम् । 'उदश्चितोन्यतर-
 स्यामि'ति सप्तम्यन्तात् संस्कृतमित्यर्थे ठक् । ठस्य 'इमुसुक्तान्तात्क' इति
 कादेशः । ठगभावे प्राग्दीव्यतीयेणि औदश्चितम् । श्वा । श्वन्नुज्जिति
 निषान्यते । शूनः पश्यत्यादौ 'श्वयुवमघे'नामनट्ति इति तट्ठित-
 वर्जिते भसञ्जानिमित्ते प्रत्यये प्रसारणे परपूर्वत्वम् । अतट्ठितइति वचना-
 'प्राणिरज्जतादिभ्योञ्'इति विकारावयवयो प्राणिलक्षणेणि 'नस्तट्ठित'-
 इति टिलोपे 'द्वारादीना चे'न्यैजागमे शौव माममिति भवति । शौवः

सकोचः । अत्र प्राग्दीर्घनायेण 'शुनः सकोचे उपमाव्य' नमिति 'अन्वि'ति प्रकृतिभाव बाधित्वा टिलोपः । सकोचादन्यत्र शौवनम् । शुने हित शून्यम् । शुनः समारण वा च दीर्घत्वमिति गवादिपाठादनि प्रसारणे वा दीर्घः । अत्र 'नस्त'द्विते नि टिलोपः कस्माच्च भवति । न च प्रसारणस्य सामर्थ्यादिति वाच्यम् । यतः कृते परपूर्वत्वे टिलोपार्थमेव तत् स्याद्, अन्यथा ये चाभावकर्मणो रिति प्रकृतिभावः स्यात् । दीर्घविधान-सामर्थ्याच्च भवति । अस्तु चैवम्, अदीर्घरस्ते कस्माच्च भवति । तदुच्यते, द्वौ चकारौ क्रियेने वा च दीर्घत्वं चेति, तत्रान्यः सनियोगार्थः, आद्यो भिन्नक्रमः सप्रसारणमिच्यनेन मवध्यते प्रसारण चेति । तत्रान्यस्य समु-च्छयितव्यम्याभवात् पुनरपि प्रसारण समुच्छायते । तच्चावस्थापनार्थं सट्टिलोप बाधित्यते । शुनी । गौरादिपाठान् डीप् । शुन इव शेषस्य शुन-शेषः । एवं शुन पुच्छः । शुनोलाङ्गुलः । 'शेषपुच्छलाङ्गुलेषु शुन उसाव्यान'मिति अलुक् । अकारान्तोप्यस्ति शेषशब्दे न केवलं सकारान्त इति कैषटपदमज्जयादिषु । शुनोदन्तः श्वादन्तः । 'शुनो दन्तद्व्या-कर्णवराहपुच्छपदे'ति पूर्वपदस्य दीर्घः । एव द्वादिपूढानार्थम् । श्वादद्व्यापन्य श्वादद्विः । श्वभस्त्रस्यापन्य श्वाभस्त्र । अत्र 'श्वादेरि-जो'ति द्वारादिलक्षण ऐजागमो वृद्धिप्रतिषेधश्च निषिध्यते । अयमेव निषेधो द्वारादौ तदादिविधिज्ञापकः । श्वन्शब्देऽपि तत्र पठ्यते श्वादे-रिजोत्यत्र वार्तिके इकागादिग्रहणं च गणिकाद्वयमिति । श्वगणेन चरति श्वागणिक, श्वगणाटुञ् चेति चरन्त्यर्थे वृत्तीयान्ताटुकृठजौ । आदिशब्देन श्वद्व्यापकादिर्ह्ययते । अत्र च प्राग्भवनेरिति ठक् इजादन्ता-द्व्यादन्यन्तद्वित् उत्पद्यते तदापि 'श्वादेरिजो'ति प्रतिषेधो भवत्येव । तथा च तत्र वृत्तिः । तदन्तस्य चान्यत्रापि तद्वित् प्रतिषेध इष्यतइति । तेन श्वाभस्त्रेरिदमिति विशुद्ध 'इजश्चे'त्यणि कृते ऐजागमवृद्धिनिषेधयोः भा-वात् श्वाभस्त्रमिति भवति । यदा पुनरिकारादेरन्यस्तद्वित् भवति तदा श्वद्व्याप्या भवो मणिः शौवादद्वि इति वृद्धिप्रतिषेध ऐजागमश्च भवति । श्वापदे भव. शौवापदः । श्वापदः । 'पदान्तस्यान्यतरस्यामि'ति श्वादेः

पदशब्दान्तस्य द्वारादिलक्षण गजागमो वृद्धिप्रतिषेधश्च पक्षे निषिध्यते ।
 शुनः समीपमुपशुनम् । 'अव्यय विभक्तिसमीपे'त्यव्ययीभावे ऽचतुरादिषु
 निपातनादच् टिलोपाभावश्च सप्रसारण च, गोष्ठे श्वेव गोष्ठश्च, अय-
 मप्यचतुरादिषु निपातितः । श्वानमतिक्रान्तातिश्वः । 'अतेः शुन'इति
 ठच् । अतेरिति वचनाच्चिश्वा लोष्ट इत्यादौ न भवति । श्वेव पाषाणः,
 पाषाणश्चः । 'उपमित व्याघ्रादिभि'रिति समासः । 'उपमानादप्राणिषु'
 उपमानवाची यः श्वन्शब्दोऽप्राणिषु वर्तते तदन्ताट्टजिति टचि 'नस्त-
 द्विते' इति टिलोपः । अत्र श्वशब्दः सादृश्यात्पाषाणवृत्तिरित्यप्राणिव-
 चनः, अप्राणिष्विति वचनात् श्वेव वानरः वानरश्चेत्यादौ टज् न भवति ।
 मातरि सर्वस्य परिच्छेत्तर्याकाशे वर्द्धतइति मातरिश्वा वायुः । श्वचुञ्च-
 चित्यादिना मातरि पूर्वपदे श्वयतेः कनिनि इकारलोपो लुक्च निपा-
 त्यते, 'तत्पुरुषे कृति बहुलमि'ति चालुक्सिद्धिः ॥ ६६० ॥

वृत् ॥ यजादयो वृत्ता इत्यर्थः । भूवादिस्त्ववशिष्यतइति व्याख्या-
 तारः । तेन दुलुम्पतीत्येवमादीनामाप्तप्रयोगसिद्धानां सयहः सिद्धौ
 भवति ॥

इति पूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वरकम्पराजमुतसङ्गमराजमहाम-
 न्त्रिणा मायणपुत्रेण माधवसहोदरेण सायणेन विरचिताया
 माधवीयायां धातुवृत्तौ शब्धिकरणा भ्वादयः ॥

शुभं भूयात् ॥

श्रीःणेशाय नमः ॥

माधवीयधातुवृत्तौ ।

अदादिः

अद भक्षणे ॥ अति । अनः । अदन्ति । अस्मि । अय्य । अय । अद्भि ।
अद्भु । अद्भु । 'अदिप्रभृतिभ्यः शप्' इति शपो लुक् । 'खरि चे नि चल्चं'
जघाम । जतु । जतुः । जघमिथ । जतु । जत । जघाम । जघा । जदिव,
जत्तिम, 'लित्यन्तरस्यामि' त्यदेः पते घनादेशः । लिति वृद्धिः । उक्तमेतु
णिट्प्रकृत्य । अपित्त्व 'मपोनाल्लिट्' किंदिनि कित्त्वे गनहेतुस्यपधा-
लोपः । तस्य 'द्विर्वचनेची'ति स्यानिवत्त्वाद् द्विर्वचन, 'शान्विमिथनीना
चे'ति' एत्वम्, अत्रोपधानोपस्य पूर्वस्मादपि विधापिनि स्यानिवत्त्व
एत्वविधानवैयर्थ्यमङ्गान्पूर्वत्रामिद्वे न स्यानिवदिनि वा न भवति ।
घकारस्य 'खरि चेति' चत्वाक्कार अत्राप्यपधानोपस्य न स्यानिवत्त्व
न पदान्ते यादिना वा पूर्वत्र मिद्वे न स्यानिवदि'त्येव वा तन्निषेधात् । अ-
च.स्ताम्बदिनि यलीणितपेधस्तामौ सत इत्युक्त नेन घक्तादेशस्य तापाव-
सत्त्वात्वात्र न निषेधः । अत एव तदुपयो भारद्वाजनियमोपि न भवति,
यद्वा स्यानिवद्वावादिङ्त्वतीति नित्यमिद् भविष्यति । नन्वस्ति प्रकृत्य-
न्तरधमिस्तामौ नित्यानिट् च तस्मान्यलि^१ जघम्येति दुर्वारम् मैवम् ।
प्रकृत्यन्तरस्य धमेर्यत्र लिङ्ग वचन वास्ति तत्रच प्रयोजन न सर्वत्रति तत्रेव
धातावुपपादितत्वात्, अतो नान्ति लिटि प्रयोग । घनादेशाद्भावे,
आद, आदतुः । आदुः । आदिय । आदिव । क्कादिनियमादिट् । यलि
भारद्वाजनियम इङ्त्वतीत्ययतीना मिति वाध्यते । अत अ द्वे'रेत्यव्या-
सादेर्दीर्घः । अत्ता, अत्तामि, अत्तास्मि, अत्स्यति, अत्स्यरि, अत्स्यामि, अतु

१ इहाज्ञा परत्ये इति ३ । ४ । पुस्तकेधिकम् ।

२ इहापीति = पु या । ३ इत्येवेति नास्ति = पु ।

४ न भवतीति ४ पु नात्र प्रतिषेध इति २ पु । नास्ति निषेध इति ३ पु पाठ ।

५ यलीति नास्ति = पु ।

अत्तात् । अट्टि । अदानि । आदत् । आदः । आदम्, 'अदः सर्वेश'मित्यदोङ्गात्परस्य सार्वधातुकापृक्तस्याडामः । अद्यात् । अद्याः । अद्याम् । आशिषि अद्यात्,^१ अन्यत्र तु सलोपाभावो विशेषः । अद्यास्तामिन्यादि । अघसत् । अघमताम् । अघनन्, अघसः । अघसतम् अघसत्, अघसम् । अघसाव । अघसाम । 'लुङ्मनोर्घस्त्रि'ति घस्लादेशे लृदित्वादङ्, जिघत्सति । घस्लादेशे 'स्यार्द्धधातुक'इति तत्त्वम् । आदयते ऽत्र देवदत्तेनादयतीति वा । आदिदत् । आदिदत्, णिलोपस्य स्यानिवत्त्वाद्विशब्दस्य द्विर्वचन, निगणचलनेति कर्त्रभिप्राये प्राप्तस्य परस्मैपदस्यादेः प्रतिषेध इति निषेधः । 'आदिखाद्योः प्रतिषेध' इति प्रयोज्यस्य कर्तुः कर्मत्वनिषेधः । व्यत्यत्ते । व्यत्यदाते । व्यत्यदते । 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' इति तङ्, 'आत्मनेपदेष्वनत' इति भस्पादादेशे ऽनकारान्तादङ्गात्परत्वात्, व्यत्यदन्ति वृका मेघानिति हिंसाया द्रष्टव्य, तत्र हि न गतिर्हिसेति तङ् निषिध्यते । व्यतिजज्ञे । व्यत्यादे । व्यत्यत्ता । व्यत्यत्स्यते, व्यत्यताम्, व्यत्यात्त । व्यत्यदीत । आशिषि व्यत्यत्सीष्ट । व्यत्यघत्त । व्यत्यात्त । 'स्यार्द्धधातुक'इति तत्त्वे भ्रूलो भ्रूलीति सिचो लोपः, कर्मण्यदत्ते । अदता । शत्रन्ता 'दुगितश्चे' ति डीप् । नित्यत्वादन्तरङ्गत्वाच्च नुमः पूर्वं शपो लुगिति शप्स्यनोरिति नुमत्र न भवति । न च प्रत्ययलक्षणमस्ति, तच्चादित्यधिकाराद्वर्णश्रये च तन्निषेधात् । जग्धः । प्रजग्ध्य । 'अदो जग्धिर्त्यप् ति क्तिती'ति जग्ध्यादेशः । पुत्रो जग्धो यया सा पुत्रजग्धी, 'राजदन्तादिषु पर'मिति निष्ठान्तस्य परनिपातः । 'अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा' इत्यस्वाङ्गवाचिपूर्वपदात् क्तान्तादन्तोदात्ताद्बहुव्रीहेर्व्यङ्गी डीष्, 'वा हतजग्धपरे' इति पुत्रतकारस्य वा द्वित्वम्, अचं लब्ध्वा आचः, 'अच्चाण' इति द्वितीया^३न्ताद् लब्धेत्यर्थे णप्रत्ययः । अत एवाच्चादिति निर्देशात्सञ्ज्ञाया न जग्ध्यादेशः,^४ सर्वप्रकारमत्र भक्षयति सर्वाङ्गीनो भिक्षुः । 'अनुपदसर्वाच्चायानयं

१ आशिषि सलोपाभावो विशेष इति ४ । पु. पाठः ।

२ कर्तरिति ४ पु. नास्ति ।

३ द्वितीयासमर्थादिति ३ पु. पाठः ।

४ जग्ध्यादेशाभाव इति ३ पु. पाठः ।

बहुभजयतिनेयेष्विति द्वितीयान्तादस्माद्व्यासग्याद् भजयतीत्यर्थे
 खः । काकादनी, गवादनी, लुटि गौरादित्वात् डीप्, प्राप्तीति प्रघसः ।
 अच्, अच्युपमव्यानमिति घम्मादेशः । सम्यमतीति मस्यात् । 'अदोनचे'
 इत्यादादन्यस्मिन्कर्मण्युपपदे विट् । अचे नृपपदे कर्मण्यण्यत्वादः । सस्या-
 द इति घामरूपेण । क्रव्यात् । 'क्रव्ये चे'ति विट् । 'अदोनचे' इत्येव मिदु-
 पुनर्विधानं घामरूपवाधनार्थमिति भाष्यादौ स्थितम् । क्रव्यादशब्दस्तु
 कृत्तविकृतपक्रमशब्दे उपपदे ऽणि एषोदरादित्वादुपपदस्य क्रव्यभावइति
 वृत्त्यादौ, व्याप्तं गुहाशयैः क्रूरैः क्रव्यादैः मनिशाचरैरित्याममानभत्ये
 व्याघ्रादौ भट्टिप्रयोगश्चिन्त्यः । रात्स, कौणप, क्रव्यान् क्रव्याद इत्यादौ
 कृत्तविकृतपक्रमासस्यापि भक्षण सम्भवतीति क्रव्यादव्यवहारः । पुत्रादि-
 नी । सुप्यजाताविति णिनिः । अत्र पुत्रतकारस्य प्राप्तमनचि चे'ति द्वित्व
 'नादिन्याक्रोशे पुत्रस्येत्यादिनीशब्दे उत्तरपदे आक्रोशे गम्यमाने नेति
 निषिध्यते । 'तत्परे चे'तिवचनात्पुत्रपुत्रादिनीत्यत्रापि द्वित्व न भवति ।
 अद्वरः, सृघस्यद इति क्करच्, घामः । अकर्तरि च कारकइति घञि 'घञपो-
 र्श्चे'त्यदेर्वस्मादेशः । महत्या घासो महाघामः । महदात्वे घासकरविशि-
 ष्टेषूपसव्यानमिति पुंवद्भाव आत्वञ्च, विघसः । 'उपसर्गे'द'इत्यप्, नौ तूप-
 पदे 'नौ ण चे'त्यङ्गो भवतः । न्यादो निघमः । 'घञपोर्श्चे'त्यपि घस्मा-
 देशः । अन्धोचम् । 'अदेर्नुम् धश्चे'त्यमुनि नुमागमो दकारस्य धकारः,
 अत्री अत्ता रात्तमादिरुच्यते । अत्रिर्चपिः, 'अदेस्त्रिनि चे'ति त्रिनिप्रत्ययः
 चकारात् त्रिप् च । त्रिनेरिकारो नकारपरिचाणार्थः । अत्रैरपन्यमात्रेयः ।
 'इतश्चानिय' इति ठक् । अस्य बहुत्वे ऽत्रिभृगुकुत्सेति लुकि अत्रय इति
 भवति । अद्यते फनमूलादिक्रमस्येव्यट्टिः । अदिमधिभृगुपिभ्यः क्रिनिति
 क्रिन् प्रत्ययः । अध्वा, 'अदेर्हुं चे'ति कृनिप् । दकारस्य च धकारः,
 अध्वानमलङ्कृच्छतीति अध्वन्यः । अध्वनीनः । 'अध्वनो यत्वा'विति
 द्वितीयान्तादलङ्गामीत्यर्थे यत्वा, यति 'ये चाभावकर्मणो'रिति खे तु
 'अत्माध्वानौ ख'इति प्रकृतिभावः । विहीनो ध्वा व्यध्वः, एव दुरध्वः

‘उपसर्गादध्वन’इत्यच् समासान्तः । उपसर्गग्रहणं प्राद्युपलक्षणम् ।
प्राध्वशब्दो मान्तो ऽव्ययमानुकूल्ये वर्तते ॥ १ ॥

हन् हित्यागत्यो ॥ हन्ति । हतः, घ्नन्ति । हंसि । हयः । हय हन्मि,
हन्वः । हन्मः, भूनादौ कृडि-यनुशान्तिपदेशेयनुनासिकलोपः । भावन्त
रद्वत्त्वादन्त देशे ऽजादित्वाद्गमहनेत्युपधालोपे ‘हो हन्तेर्जिण्वे खिति’
जिति णिति प्रत्यये नकारे च परे कृत्वविधानात्सोऽप्यणो घोषवतो नादवतो
महाप्राणस्य हकारस्य तादृशो घकारः । अत्रोपधालोपस्य स्थानिवत्त्व
नकारे परतः कृत्वविधानसामर्थ्यात् भवति, सत्यपि वा स्थानिवत्त्वे वच-
नसामर्थ्यादीदृश व्यवधानमाश्रयिष्यते । जघान, जघत्तुः । जघ्निष्य ।
जघन्थ । जघ्न, जघान, जघन । जघ्निष्य । आदिनियमादिट् । यलि भारद्वाज-
नियमाद्विकल्प, यत्रोपधालोपस्तत्र ‘द्विर्वचनेची’ति स्थानिवत्त्वाद् द्विर्व-
चन, जघ्निवात् जघन्वात् । ‘त्रिभाषा गमहनविदविश’मिति क्लृप्तेरिद्वि-
कल्पः, इटि गमहनेत्युपधालोपे हो हन्तेरिति कृत्वम्, अनिटि त्व’भ्यासा-
ज्ज्वेत्यभ्यासादुत्तरस्य हन्तिहकारस्य कृत्वम् । चान्द्रास्तु भाषायामस्य
प्रयोगमिच्छन्ति, हन्ता, हनिष्यति, ‘चट्टनोः स्य’ इतीट्, हन्तु, हतात् ।
हतां, घ्नन्तु । जहि, हतं, हनानि, तातडि तस्य ङित्त्वादनुनासिकलोपः ।
हो ‘हन्तेर्ज’ इति जादेशः । अस्या सिट्त्वदत्र भा दिव्यसिट्त्वा दतो हे-
रिति लुङ् न भवति । हतात्त्वमित्यत्र जादेशात्परत्वान्तातडि तस्य स्था-
निवद्भावेन हित्वाभ्यासो जादेशः सकृद्वृत्तिपरिभाषया न भवति ।
अहन् । अहताम् । अघ्नन्, अहन् । अहतम् । अहत । अहनम् । अहन्व,
हल्ङादिना नित्यलोपः । हन्यात् । हन्याताम् । हन्तुः । हन्याम् ।
हन्याव । आशिषि वध्यत् । वध्यास्ताम् । वध्याः । वध्यामम् । ‘हने
वधलिङ्गा’दृधातुकइतिवध देशे ण्यलोपेन्यादिना कृत्सावर्ध’तुक्रयोरिति
दीर्घ’मतो लोपो बाध्यते । अवधीत् । अवधिष्टात् । अवधिषुः ।
अवधीः । अवधिषम् । अवधिष्ट, ‘लुङि चे’ति वधादेशः । अल्लोपस्य

१ पुनरिति पा ३ ।

२ दीर्घा लोपोपेन बाध्यते इति २ पु पाठ ।

स्यानिवन्धुत्वनन्तराः कृत्तुर्न भवति, वधदेग्यानेकावत्त्वादुदा-
त्तत्वनिपातनादनुदानस्याभावाच्चित्तेः वनादिनङ्गण इह भवति ।
यङ्नुगन्तव्यापि हन्तेर्निङ्नुङ्गः ॥ नियन्त्रणायैव वधादेशे वध्यादवधी
दित्येव रूपम् । अत्रादेशे स्यानिवन्धेयं यङ्कृत्वाद् द्विर्वचनं स्यादिति
न वाच्यम् । यत्र हि प्रकृतिगतमाभ्यासत्वमपि दिश्येयं तत्रैवान्या-
सस्येति निवेद्य स्यात् । आहने । आह्वाने । आहने, आहमे । आह्वाने ।
आहध्वे । आह्वे । आहव्यहे । पूर्ववत्कृतादां वृत्तनासिकलोपः ।
अजादौ तृपधानोप । 'आडो यमहन इत्यकर्मकादव्याङ्मकर्मकाच्चिति
तद् । आजग्रे । आजग्राते । आजग्रेणे आहन्त मे आहनिष्यते । आह
ताम् । अग्राताम् । आहन्व । आहनै । आटि पित्वात्रोपधानोपः ।
आहत । आग्राताम् । आहया । आग्री । आहन्वहि । आग्रीत ।
आग्रीयानाम् । आग्रीया । आग्रीय, लिङ्सलोपः, आशिपि आवधि-
षीष्ट आवधिषीयान्ताम् । 'हन्ते वध लिङी'ति वधादेशइडागमः ॥
आवधिष्ट । आवधिषाताम् । आवधिष्ठाः आवधिषोद्वम् । आवधिषि ।
'अत्मनेपदेष्वन्यतरस्य मिति पते वधादेशः । अन्यदा आहत । आहसा-
ताम् । आहमत । आहया । आहध्वम् । आहमि । आहन्वहि ।
अत्र हनः प्रितिनि कृतादेरात्मनेपदपरस्य चिच्च कृत्वादनुनासिक-
लोपे 'हन्त्यादङ्गादि'ति कलि सितो लोपः । 'आडो यमहन' इति तद्
अकर्मकान्व्याङ्मकर्मकाच्चैयुम् । अयं कथमाजग्रे विषमविलोचनस्य
वत् इति अत्र के चिदाज इति पदं कृत्वा ग्रा इति भावे कृपि चनु-
र्यकवचनान्तमुत्त्वा ग्रे हन्तमाज आजगामेत्यर्थे इति समर्थयन्ते । तदयु-
क्तम् । 'अङ्ग्रेयप्रयोगे' इति निष्कार्त्तुधानुके वीभावेन भाव्यत्वात् । अन्ये
तु विषमविलोचनस्य समीपमेव स्व वत् आस्फालिववानित्यर्थे
इति । मल्लो ह्युत्साहाविष्करणाय स्व वत् आम्फालयतीति ।
भागवतौ तु नैवाय माधुरिन्वायोधे' इति पाठान्तरमुक्तम्, एवं च

१ किरितीत्यधिक ० पु ।

२ भवितव्यमिति ० पु पाठः ।

३ अयोधे युद्धे, आपदे इति ० पु पा ।

मोदाहृषं रघूतममिति भट्टिप्रयोगोपि चिन्त्यः । तथा मदर्थं ऽरीन्
 विजघ्रियेति च । अत्र सिपः पित्त्वाद'सयोगाल्लिट्कि'दिव्यत्र चापिदि-
 त्यधिकारात् कित्वाभावादुपधालोपोपि दुर्लभः । अपिदधिकारश्चे'न्धि-
 भवतिभ्या चे'त्यत्र भवतिग्रहणाज्जायते । तथा च तत्र वार्तिकमन्येः
 सयोगार्थं वचनं भवतेः पिदर्थमिति । 'आङो यमहन' इति तङ् प्रकृति-
 ग्रहणन्यायेन यङ्लुगन्तादपि भवति, आजङ्गते । आजङ्गाचक्रे इत्यादि
 भवति । अत्रापि लिङ्लुङोर्वधादेशे प्रकृतिवदेव रूपम् । आवधिषीष्ट ।
 आवधिष्टेति । लुङि वधादेशाभावे अ जङ्गनिष्टेन्यादि, 'हनः सिजि'-
 त्यत्र भलीत्यधिकादिङा'गमे कित्वाभावादुपधालोपाभावः । जिघा-
 सति । अज्जनगमेति दीर्घः । 'अभ्यासाच्चे'ति कुत्व, जङ्ग्यते । 'नुगतो
 नून'सिकान्तस्ये'ति नुक् । इदं चानुस्वारोपलवणार्थं पदान्तवदिति च
 प्रागेवोक्तम् । तेन 'वा पदान्तस्ये'ति परसवर्णा विकल्पेनोदाहार्यः ॥
 यङि हन्तेर्हिंसाया ग्रीभावो वक्तव्य इति ग्रीभावविधानाद् हिमाया जेग्रीय-
 तइति भवति । जङ्गनीति, जङ्गन्ति । जङ्गतः । जङ्गति । अत्र सुधाकरः । के
 पुनरनुदात्तोपदेशा यम्यादय इति व्याख्यातृभिर्गणत्वेन निर्द्वैशाच्चिर्दिष्ट
 यद्वयेन चेति यङ्लुकि अनुनासिकलोपाभावादननुनासिकस्येति दीर्घं जङ्गात
 इत्युक्त्वा न क्व चिदाचार्येणानुदात्तोपदेशाना गणेन निर्द्वैशः कृत इति भवि-
 तव्यमेवानुनासिकलोपेनेत्याह । 'हन्तेर्ज' इत्यत्र च न्यासे हन्तेरिति तिपा
 निर्द्वैशाद् यङ्लुकि जभावाभावाज्जङ्गहीति भवतीति कृतानुनासिकलोपः
 प्रत्युदाहृतः, अत्रासिद्ववदत्रेयनुनासिकलोपस्यासिद्वत्त्वाद्विलुङ् न भवति ।
 अत्रात्रेयः । न्यासे प्रत्युदाहरणं जङ्गनीहिति पठन् भाषायां हेरपित्त्वादी-
 हभावाच्छान्दसमुदाहरणमिन्याह । घातयति । अजीघतत्, 'हनस्ते चि-
 ण्यलो'रिति हन्तेर्जिति णिति प्रत्यये चिण्यत्त्वार्जिते परे नकारस्य तकारः ।
 प्रकृतिग्रहणन्यायेन यङ्लुगन्तेपि तत्त्वे जङ्गातयति । कर्मणि हन्यते । जघ्ने,
 हन्ता । घानिता । हनिष्यते । घानिष्यते । हन्यताम् । अहन्यत ।
 हन्येत । आशिषि घानिषीष्ट, वधिषीष्ट । अवधि । अघानि । अव-

धिषाताम् । अहमाताम् । अघानिपनामित्यादि । स्याद्विषु चिण्वद्वाध-
पक्षे वृद्धिकुत्वे । नन्ववधीत्यत्र चिणि वधभावो दृश्यतइति चिण्वद्वावेन
स कस्मात्वातिदिश्यते । उच्यते । नात्र चिणि दृष्टमात्रमनिदिश्यते
किन्त्वाङ्गं चिणि दृष्टमिति वधादेशो न भवति । लिङ्नुङेः कर्तृवद्वादे-
शतद्विकल्पौ, लिङि चिण्वत्पक्षे वधादेशो न भवति, यत्तश्चिण्वदिट्
परत्वेन पूर्वं वधादेश बाधने, कृते तु सङ्गत्तिपरिभाषया न भवति, ननु
द्वितीयाध्याये आर्द्धधातुके इति विषयमप्तमी, तेन प्रागेव प्रत्ययेत्यत्तेर्वध-
भावेनभाव्य चिण्वद्वावस्तु भावकर्मविषयेषु स्याद्विषु परतो विधीयतइति
कथमन्तरङ्गवहिरङ्गयोर्विप्रतिषेधः । नैष दोषः । यत्रार्द्धधातुकसामान्य
निमित्तत्वेनोपादीयते 'अस्तेर्भू' रित्यादौ तत्रैव विषयमप्तम्याश्रयणान्, न
पुनर्यत्र विशेष उपादीयते 'हनो वध लिङी' त्यादौ तत्रापीति । उक्तं
चैवं चिण्वत्पक्षे व्याख्यातृभिः । वार्तिकं च वधभावात्सीयुटि चिण्व-
द्वाधो विप्रतिषेधेनेति । कैयटेन तु विषयमप्तम्याश्रयणेनापि परिहार उक्तः ॥
यथा 'एकाच उपदेशेनुदात्ता' दित्यत्र वक्ष्यति भाष्यकारः । वधिपीष्टेत्यत्र
निषातनम्बर प्रत्ययम्बरो वाधियने आर्द्धधातुकीयाः सामान्येन भवन्त्यनव-
स्थितेषु प्रत्ययेष्वित्येव ब्रुवता लिङीति विषयमप्तम्येवाभ्युपगता, ततश्चा-
न्तरङ्गत्वाद्वधभावः प्राप्नोति, प्रतिपदविधेर्वनीयमन्वाच्चिण्वद्वाधो भव-
तीति, कर्मकर्तरि आहते माणवकः स्वयमेव, आधधिष्ट माणवकः स्वयमे-
वेत्यत्र यक्चिणोः प्रतिषेधइत्यादिना यक्चिणोर्निषेधात् शप्सिचौ भवतः ।
अत्र हरदत्तेनात्मनेपदविधावकर्मका ये धातवो निर्दिष्टास्ते यदान्त-
र्भावितव्यर्थाः सकर्मका भवन्ति तत्रात्मनेपदाकर्मका आहन्ति माणवक-
मिति तदा सकर्मकत्वादनुदाहरणमिति केचित् । अन्ये त्वात्मनेपदाकर्म-
केति धातूपलक्षणत्वात्कर्मका विवक्षयामात्मनेपदस्य निमित्तत्वात्सकर्मके-
ष्विहदुमुदाहरणमित्याहुः । इत्येतन्नाविगीतमुदाहरणम् । 'वेःशब्दक-
र्मणः' 'अकर्मकाच्च' विमुञ्चते सैन्धवाः, वलान्तीत्यर्थः, तान्यदा ऽन्यो

१ अनवस्थितेषु प्रत्ययेष्विति । ३ । ४ । पु नास्ति ।

२ दृष्टमात्रमिति । ३ । ४ । पु पाठः ।

बलायति तदा तेषां कर्मकृत्व, पुनः सौकर्यातिशयाय कर्तृत्वविवक्षायां
 विभुर्वन्ते सैचन्याः स्वयमेव बलातीत्युक्तं, चोरस्य निप्रहन्ति, चोरस्य निहन्ति,
 चोरस्य प्रहन्ति, चोरस्य प्रणिहन्ति, अत्र नेर्गदेतिणत्त्व, जासिनिप्रहणेति
 कर्मणि शेषपठौ, तत्र निप्रग्रहणं सघातविशुद्धीनविपर्यन्तार्थमित्युक्तं
 प्रहणम् । प्रहन्ति । प्रहन्तः, प्रहणः । प्रहन्मः, प्रहणम् । अत्र 'हन्तेरत्पू-
 र्वस्ये'त्युपसर्गस्यान्विमितात्परस्यात्पूर्वस्य हन्तिनकारस्य विधीयमानं णत्वं
 प्रहण्यने प्रहणातीत्यादाविव नित्यप्राप्तं वमोर्वे'ति नकारवकारयोः
 परयोर्विकल्प्यते । प्राधानीत्यत्रा 'त्पूर्वस्ये'ति तपरकरणाणं णत्वस्य न
 प्रसङ्गः, प्राहन्विच्यत्र तु 'पदान्तस्ये'ति निषेधः, प्रहन्तीत्यत्रानुस्वारे कर्त्तव्ये
 णत्वपूर्वत्रासिद्धिमिति न भवति, कृते तु परसवर्णे तस्यान्तिदृष्ट्वात्पुनर्णत्व न
 भवति, 'अन्तःशब्दस्याङ्क्रिविधिगत्वपूर्वप्रदान'मित्युपसर्गसंज्ञापसत्त्या-
 नात्तत्पदस्यापि सर्वमिदं णत्वद्रष्टव्यम्, अन्तर्णिहन्तीत्यादि, एव चा'न्तर
 देशे' इति हने नकारस्य णत्ववचनमर्थाद्वेशे णत्वनिषेधार्थं भवति
 अन्तर्हननो नाम बाहीकेषु ग्रामेषु देशेतिशेष, अन्यत्रान्तर्हणनमिति
 णत्वं भवति, मध्ये हननमित्यर्थः सर्वमिदं णत्वं तिपा निर्दृशादङ्नुक्ति
 न भवति प्रणिजङ्घतीत्यादि, जामिनिप्रहणेति पठ्यीतुं भवत्येव । चोरस्य
 प्रणिजङ्घतीत्यादि । अन्तर्हत्य मध्ये हत्वेत्यर्थः, । 'अन्तरपरिग्रह' इत्यन्तरो
 गतित्वात् 'त्कुगतिस्रादय' इति तत्पुरुषे ल्यपि 'वा ल्यपी'त्यनुनासिकलोपे
 तुक् । वाग्रहणस्य व्यस्त्यनविभज्यात्वात्मान्तेषु विकल्पितोऽनुनासि-
 कलोपोऽप्यत्र नित्य इत्युक्तम् । परिग्रहेऽगतित्वादान्तर्हत्वा मूषिका
 श्येनो गत इति भवति, परिग्रह्यत्यर्थः । अत्र न्यासोद्योते अन्तरशब्दो
 धातोः परिग्रहे कृत्ति करोतीति, एव चान्तरपि परिग्रहस्येव द्योतक इत्युक्तं
 भवति, कणेहत्य पयः पिबति, मनोहत्य पयः पिबति । 'कणमनपी
 श्रद्धाप्रतीयते' इति कणमनःशब्दयोगतित्वे समासादि पूर्ववत्, अत्र कले-
 शब्दः सप्तमीप्रतिरूपको निपातोऽभिलाषातिशये वर्त्तते, मनः शब्दोऽपि
 साहचर्यादभिलाषावृत्तिरेवेति न्यासपदमञ्जर्या, हन्तिरत्रावधीकरणान्ने
 निवृत्तौ वर्त्तते, सा च सनिधानाः कणमनश्शब्दार्थयोस्तौ च निवर्त्यमानतया

ऽवधीति तयोश्च प्रतिघातो विषयतया विशेषण तद्वयमर्थः । अभिलाष-
निवृत्तिर्णन्त पयः पिबतीति । उक्तञ्च न्यासोऽनेन, प्रतीकान्ते हन्तिरव-
धिकरणेन निवृत्तौ वर्तनमिति । अभिलाषनिवृत्तिमवधीकृत्य पयः पिब-
तीति, हरदत्तोऽपि अनिशयेन अभिलष्य निवृत्तिर्णन्त पयः पिबतीत्यर्थः ।
एव चाभिलाषनिवृत्तेरवध करणस्य पयः पानात्पूर्वत्वात् त्वोपपत्तिः
श्रुताप्रतीयातादन्यत्र कणे इत्या मनो इत्या कणशब्दः, मूलमेतन्मुनावयवे
वर्तते, मनःशब्दस्तु वेत्यपि, योतद्वयमिदं स्वभावाद्भक्तिविषयः वध्यः ।
'हनो वध चेति कर्मणि पठ्, तत्सन्निधौ न वधदेशश्च घान्यइति ख्यति ।
ग्रह्णहत्या, 'हनन्त चेत्यनुपपत्तेः उपपदे क्यप् तत्सन्निधौ नकारस्य
तकारः । सोऽप्यनुपपदाच्च नाव विधिरिति घात इति घञ् भवति ।
तयोरेवेति भावनतः एवदत्तानभिधानात् भवतीत्यात्रेय । अविह-
त्याया भवमातिहायम्, 'अनुशक्तिकादीनां चेत्युभयपदवृद्धिः । अत्र के-
चिदखहत्येति पठन्ति । ततो घुक्कादित्वदखहत्याशब्दोऽस्मिन्नध्याये-
स्तीत्यण्यारहहान्यमिति भवति, हत्यागतं पानमहस्रमियादावनुपपदे
क्यवर्षः । घनाघातः । हन्तेर्वत्त्वे चेत्यचिद्विर्वचनमभ्यासस्यागागमो हका-
रस्य घकारः परत्याभ्यानाच्चेति कुत्वम्, आको दीर्घाच्चारणनामर्थान्
हलादिशेषः, यदि स्यादकमात्रं विदयात्सवर्णदीर्घाकारो भविष्यति,
परह्ये त्वविधानवैयर्थ्यात् भविष्यति । शत्रुहः । शत्रु वध्यादित्यर्थः ।
'आशिषि हन्' इत्याशिषि गम्यन् नाया कर्मण्युपपदे इप्रत्ययः ।
द्वित्वनामर्थ्यादृतेऽपि, । दारोहन्तीति दारोघाटः, 'दारावाहनो एत्यन्तस्य
च टः सज्ञाया मित्याङ्गुर्घाटन्ते कर्तर्यण्, तकारस्य च टकारः । चार्वाह-
न्तीति चार्वाघाटः चार्वाघातो वा । 'चारौ वे'ति चारौ कर्मण्युपपदेण
प्रत्यये नकारस्य वा टकारः । तदभावे 'हनस्तोऽचिण्यनो'रिति तत्त्व,
क्रियाविशेषणत्वाच्चारो कर्मत्व, वर्णान्महन्तीति वर्णमघाटो वर्णसघातो
वा, 'कर्मणि समि चेति कर्मणि समि चोपपदेऽण् वा ऽन्यस्य च

१ मवधीकृत्येति ३ पाठः ।

२ श्रयस्वभावादिति २ । पु प ।

* ३ सघात इति २ अधिकम् ।

४ सामर्थ्येदिति २ पुस्तके पाठः ।

टकारः । क्लेशपहः तमोषहः । 'अपेः क्लेशतमसो' रिति क्लेशतमसोः कर्मणोरूपपदयो रपपूर्वाट्ठन्तेर्ङ्, स्रगिय यदि जीवितापहेति प्रयोगस्तु 'क्लिप् च' इति सार्द्धकालिके क्लिपि, च्चेभ्य इति डीङ् न भवति बहुधादिषु डीष्णिकल्पार्थं हविति पाठात् । यदि हि डीषभावे डी स्याद् गौरादिष्वेव हविति पठित्वा नित्य डीषमेव विदध्यात्, अथ वा तदपि न कुर्यात्, डीपैव सिद्धत्वात् । नात्र डीषड्डीपो रूपे विशेषोऽस्ति, नापि स्वरं जीवितापहशब्दस्य 'गतिकारकोपपदात्' इति 'त्युत्तरपदप्रकृतिस्वरखान्तादात्तत्वे' ऽन्तुदात्तस्य डीपो 'ऽल्लोपोऽन' इत्युदात्तलोपनिमित्तस्या 'नुदात्तस्य च यञोदात्तलोप' इत्युदात्तत्वात्, तस्माद्बहुधादिषु हविति डीष्णिकल्पपामर्थात्तदभावे डीङ् न भवति, ज्वरापहादिवद् 'न्येष्वपि दृश्यत' इति डो वा । कुमारघाती शीर्षघाती, 'कुमारशीर्षवोर्णिनि' रित्यनयोः कर्मणोरूपपदयोर्हन्तेः कर्त्तरि णिनिः । अस्मादेव निर्द्वंशान्वययमनियोगे शिरसः शीर्षभावः । जायाघ्नो ब्राह्मणो, जायाहननहेतुलक्षणयुक्त इत्यर्थः । एवं पतिघ्नी वृषली । 'लक्षणे जायाघ्नोऽष्टनि' रित्यनयोः कर्त्त्रेणोरूपपदयोर्हन्तेर्हन्तलक्षणवति कर्त्तरि टक्, लक्षणमात्रे उत्तरसूत्रेण सिद्धत्वात्तद्वानिह लक्षणशब्देनोच्यते । कित्वाद्गमहनेन्युपधालोपः, टित्वान्डीप् । जायघ्नस्ति-लकालकः । पतिघ्नी पाण्डुरेखा । श्लेष्मघ्न मधु । 'अमनुष्यकर्तृके च' इति कर्मण्युपपदे मनुष्यादन्यकर्तृके हन्त्यर्थे टक् । मनुष्ये त्वणिव, आखुघातः शूद्रः । कृतघ्नो ब्राह्मणो गोघ्नो ब्राह्मण इत्यादिषु 'कृत्यल्युटो बहुल' इति बहुलवचनाट्ठक्, मूलविभुजादित्वाक् इत्येके । अनयोः स्थिथा विशेषो डीप्टाड्या, चोरघातो हस्तीन्यत्रामनुष्ये कर्त्तर्यव्यस्मादेव बहुलवचनादण् भवति, हस्तिघ्नो भटः, हस्तिहनने शक्त इत्यर्थः । एव कपाटप्रखोरः, 'शक्तौ हस्तिकपाटयो' रित्यनयोः कर्मणोरूपपदयोश्शक्तौ गम्यमानायां हन्तेष्टक् । अशक्तौ विषेण हस्तिन हन्ति हस्तिघात इत्यण् भवति, पाण्डिताड्योः, शिल्पिविशेषौ, 'पाण्डिताड्यौ शिल्पिनी' इति पाण्डिताड्योः कर्मणोरूपपदयोर्हन्तेष्टकि टिलोपघत्वे च निपात्येते, शिल्पिनोन्यत्र पाण्डितातः ।

सूत्रद्वयमिदं मनुष्यकर्त्रेण,^१ राजानं हन्तीति राजघन्तीत्यु उच्यते ।
 राजघ उपसंख्यानमिति पूर्ववद्विधान्यने । पितृष्व हतवान् पितृघघाती ।
 'कर्मणि हन' इति कर्मण्युपपदे कुत्सिते कर्तरि भूते णिनिः ।
 अकुत्सिते चौरघात इत्यणेत्र, ब्रह्माणं हतवान् ब्रह्महा, एव भूणहा वृत्रहा,
 'ब्रह्मभूणवृत्रेषु क्विप्' इति हन्तेब्रह्मादिपूषपदेषु भूते क्विप् । 'क्विप् चे' इति
 सामान्येन क्विपि मिद्वे नियमाय सूत्रं, चतुर्विधग्वान् नियमः । धातूपपद-
 प्रत्ययकालविषयः, तेन हिमहेत्यादौ 'क्विप् चे' इति क्विप् सार्वकालिकः ।
 'सौ चे' इति दीर्घः । ब्रह्महणावित्यादिष्वि नृहन्प्रायमणा शा' इति
 शावेव प्रत्ययउपधानतणमात्रो दीर्घो नात्यत्रेति नियमान्मर्ज्यनामन्याने
 दीर्घो न भवति, नापि क्विपमाश्रित्यानुनासिकस्य क्विप्कनोरिति । ननु
 सर्वनामस्यानदीर्घनिषेधसामर्थ्यादेव क्विवाश्रयोपि दीर्घो न भविष्यति,
 सत्यमिह वृत्रहणी ब्राह्मणकुले इति वृत्रहणि ब्राह्मणइति नपुंसकद्विवच-
 नसप्तम्येकवचनान्तयोगात् 'ल्लोपोन' इत्यवन्तस्य भस्य विधीयमाने लोपे
 'विभावा डिश्यो'रिति विकल्पिते क्विपमाश्रित्यानुनासिकस्य क्वाविति
 दीर्घः स्यात् । अयं दीर्घनियम उपधालक्षणस्यैव नात्यस्येति वृत्रहेवाचरन्ति
 वृत्रहायतइत्यत्राकृत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घो भवति, वृत्रहणावित्यादा वे-
 काजुत्तरपदे ण' इति णत्वम्, एकाजुत्तरपद यस्य तत्र समासे उत्तरपदप्रा-
 तिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्वनकारस्य पूर्वपदस्याविमितात्परस्य नित्यं वा
 इति सूत्रार्थः । भसजायामल्लोपउत्तरपदस्यानचकत्वात् स्थानिवद्वावस्था-
 त्विधित्वाच्चेकाजुत्तरपदत्वाभावा 'त्प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु चे' इति
 विकल्पो भवति वृत्रहो विचग्र इति । अत्राधिकृतस्य पूर्वपदस्य
 संबन्धिश्चत्वात्तेनातिप्तेनोत्तरपदेन प्रातिपदिकस्य विशेषणादुत्तरपदप्रा-
 तिपदिकान्ते नुम्वि विभक्तौ च स्थितस्य नकारस्य पूर्वपदस्याविमिनादुन-
 रस्य वा ण इति सूत्रार्थः । तेन गर्गाणां भगिनी गगभगिनीत्यत्र यदुत्तरपद
 भगिनीशब्दो न तत्प्रातिपदिक नापि नान्तम् । यवान्त भगिनीति प्राति-
 पदिक न तदुत्तरपदमिति खत्वं न भवति । गर्गभगिनीशब्दस्तु गर्गाणां

भगो गर्गभगः सोऽस्यास्तीतीत्यर्थे रणायामिति खल्वे । नन्वस्य 'पूर्व-
पदात्मज्ञायामग' इति पूर्वपदव्याप्तिप्रतिपादिते यदि भवति सज्ञायामे-
वेति नियमात्कुनो खल्वप्रसङ्गः । नैव दोषो, यतोऽत्र पूर्वपदग्रहणेन पक्षेन
उत्तरपदस्यान्तेपातस्यस्यैव नियम इति, अत्र च नकारो नोत्तरपदस्यः
किन्तु समामन्तिपदिकाद्विनिर्दिष्टस्य, एव च मानुषादीनां इत्यादौ
भोगोत्तरपदजनने खे नित्य खल्व भवति । माधनभीष्टे वपति माषवा-
पिणी माषवापिनीत्यत्र 'वज्रलमाभीष्टे' इति सुष्यपदे आभीष्टे गम्यमाने
णिनौ गनिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समाभवजन प्राक् सवुच्यतेरिति
कृदन्तावस्थायामिव समसे वदन्तात्तो हीविति णिनेनकार उत्तरपदमा-
तिपदिकान्तस्य इति खल्वविकल्पः । अभ्याघाती, सपृतादिना धिनु ।
घातुकः । लघपत्यादिनोक्तम् । विद्म । घञर्थे कविधानमिति कः । वध ।
'हनश्च वध' इत्यनुपसृष्टादृनो भावेऽप्ययस्तत्सद्वियोगेन वधादेशश्च,
हनश्चेति चक्रो भिन्नक्रमोत्पत्त्युपान्तर इति घञपि भवति घात
इति, भावादस्योपसृष्टाद्भावे च घञेव, हन्यतइति घातः, आहन्यते
आहननमिति वाऽऽघात । ननु वधिः प्रकृत्यन्तरमस्ति तस्मात्सिद्धं घञि
'जनिवध्याश्चे'ति जिति णिति कृति यदुक्तं तवेति वृद्धिनिषेधाद्वध इति
भविष्यति हन्तेश्च घात इति किं 'हनश्च वध' इत्यनेन, उक्तं च जनिव
धारित्यत्र वतौ, वधिः प्रकृत्यन्तरं व्यञ्जनान्तमप्यस्ति तस्याय प्रतिषेधो
विधीयतइति, तथा च हरदत्तेऽपि वध हिसायामिति ध्वादैः पाठादिनि,
सन्धमेव, वध इति रूप निश्चयति स्वरस्तु न सिध्यति । अथ ह्यादेशो
ऽकारान्तोदात्तः, तत्रापमाश्रित्यातो लेपउदात्तनिवृत्तिस्वरणाप उदात्त
त्वादन्तोदात्तो वध शब्दः, घञि त्वाद्युदात्त, एव च कर्मण्युपभोगेपि
हनो वधादेशाभावस्य प्रयोजनमन्तोदात्तवधशब्दनिवृत्तिर्भवति । प्रकृत्य-
न्तरेणाद्युदात्तो भवत्येव । अथघनः, अथय काठिन्यनित्यर्थे. 'मूर्तौ
घन' इति हैनोपसृष्टेऽपि घनादेशः मूर्तिरिह काठिन्य, घन दधी-
त्यादौ धर्मशब्देन धर्मो भण्यते । अन्तर्धनो वाहीकदेव विशेषः । 'अन्तर्धनो

देश 'हन्यन्तः' पूर्वस्य हनोपि घनादेशो निपात्यते, के चिदन्तर्यणइति
 णकार पठन्ति तदपि याज्ञमेवेति वृत्तितद्वा यानेषु । देशादन्यत्रान्तर्धान',
 प्रघणः प्रघाणः । 'अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्चेति प्रपूर्वस्य हनोपि घनादेशो
 वा वृद्धिश्च निपात्यते । अत्रागारैकदेशशब्दो निपातनस्य सूचयित्वाद्वाह्ये
 द्वारप्रकेष्टके वर्तते, प्रघाण इत्यत्र णत्वमपि निपात्यते, 'हन्तेरन्पूर्वस्ये'
 तितपरवराणां प्राप्तेति । अगारैकदेशादन्यत्र प्रघातः । उटुनः । 'उटुनो-
 न्याधान' मिति निपात्यते । उटुपरि यस्य निधायाव्यक्ताष्ट तस्यने तदिहा-
 त्याधानम्, अपघनः पाणिः पादश्च, 'अपघनोङ्' मित्यपूर्वस्य हनोपि
 घनादेशो निपात्यते । अयो हन्यते येन सोऽयोघनः । विहन्यते येन स
 विघनः समीकरणमधनम् । द्रुह्यते येन स द्रुघनः, 'करणयोविद्रुष्वि'
 त्ययोविद्रुषूष्वेपु हनोपि घनादेशः । अत्र वृत्तौ द्रुघण इति के चिदुदाह-
 रन्ति तत्र कथं णत्वमरीहगादिशठात्पूर्वपदात्मज्ञायामिति वेति । अन्य-
 त्रायोघात इत्यादि भवति, स्तम्बघ्नः स्तम्बघनः । दानादिः, स्तम्बे क
 चे'ति स्तम्बशब्द उपपदे करणे हनः कः प्रत्ययः, चकारादप् तस्मिन्निगेन
 घनादेशश्च । अत्र स्त्रिया विप्रतिषेधेन क्तिन् प्राप्नोति त बाधित्वा कर-
 णाधिकरण्येरिति ल्युङ् भवति, अत्र भाष्यम्, अथ यथा इतीकया स्तम्बो
 हन्यते कथं तत्र भवितव्यं, के चिदाहुः । स्तम्बघ्नेति भवितव्यम् । अपर
 आह । स्तम्बहेतिरिति, 'ऊर्ध्वीनिपनिहेतिर्हीनयच्'ति निपात-
 नादिति । अपर आहुः । स्तम्बहननीनि भवितव्यं वक्ष्यतेतद् 'अजबुभ्या
 स्त्रीचलनाः स्त्रीयाः चलनौ विप्रतिषेधेने'ति, अत्र कैयटे स्तम्बघ्नेति
 कप्रत्यये रूप, तस्य सर्वापवादत्वादिति भावः, स्तम्बहेतिरिति निपात-
 नस्य सर्वापवादत्वादिति भाव इति, अत्र हरदत्तः कापोः सर्वाप-
 वादत्वात् 'कृत्यल्युटो बहुल' मिति बहुलवचनादुपि स्त्रिया स्तम्बघ्ना स्त-
 म्बहनेति भवत इति । परिघः 'परौ घ.' इति पराबुपपदे करणे
 हनोप्प्रत्ययो घश्चादेशः । 'परेश्च घाङ्गो' रिति परेरेकस्य वा लत्व,
 पलिघः । प्रतिघ इति बाहुलकादित्यात्रेयः । उपग्नः प्रत्यासन्नः 'उपग्न
 आश्रये' इत्युपूर्वाट्टनोपपधालोपो निपात्यते, इत्यश्रयशब्दः प्रत्यासन्नव-

पटुती, बाह्यादित्वाद्वा डीष् । वार्त्तः, तस्येदमित्यादिनाणि 'बपूर्वहभृतरा-
जामणी' न्यल्लोपः, धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानादुनम्न'
इति तत्त्वं न भवति, ध्रौणहत्य 'दाण्डनायनहास्तिनायनाथर्ष्वणिक्-
त्रैस्नाशिनेयवा' शिनायनिध्रौणहत्यधैवत्यमारवैस्वाक्रमैत्रेयहरणमयानी'ति
नकारस्य तत्त्वं व्यजि निपात्यते । हयो विषण्णः । हनिकुपीत्यादिना
क्यनि अनुद'नो-देगेन्यनुनामिकनोप । हिमम् । 'हन्तेहिंचे'ति
मकि हि भावः, हिम न सहते हिमेतुः 'हिमाञ्चेलुर्बक्य' इति तत्र
सहते इति विषये चेत् । महिष्टिम हिमानी, इन्द्रवरुणेत्यादिना डीषा-
नुक्तौ । तत्र हिमारण्ययोर्महन्वे इति पठ्यते । हेमन्तः, हन्तेर्मुट् हि चेति
भृच्प्रत्यये मुडागमः, धातोर्हिभावे गुण, भृष् चान्तादेशः । हेमन्ते भव
हैमन्तिक, 'हेमन्ताञ्चे'ति शैषिकष्टञ् यद्यप्यत्र सूत्रे कृत्वापहणमनुवर्तितं
वृत्तौ तथाप्युत्तरसूत्रे सर्वत्र ग्रहणादय भाषाविषयोपीति वृत्तावेवाक्त,
हैमन्तः 'सर्वत्राण च तलोपश्चे'त्यणि तलोपः, अत्र चकारेण ऋत्वणोभ्य-
नुज्ञानाद्वैमन्तामित्यपि भवति, तलोपे च न भवति सर्वत्राणिति विधी-
यमानाणमनियोगशिष्टत्वात्तस्य, हनुः । 'श्वस्वृष्विहिरप्रसिबिसहनि-
क्लिद्विबन्धिमनिभ्यश्चेत्युप्रत्ययः । परिहनुभव परिहन्व्यम् । 'अव्ययीभा-
वाञ्चे'ति भवार्थे ज्यः । तत्र 'परिमुखादिभ्य उपसत्त्वात्'मिति परिमुखादि-
रेवाव्ययीभावः परिगण्यते । हनुलः 'निभ्यादिभ्यश्चे'ति मत्वर्थे लच् ।
हनूमान् 'शरादीनाञ्चे'ति सज्ञाया मतौ दीर्घः । अत्रैव पाठान्मतुषः
'सज्ञाया'मिति वक्ष्य यवादेराकृतिगणचान्न भवति । हमः, वृत्तवदीत्या-
दिना सः । आगत्य हन्तीत्यहिः, आडि त्रिहन्तिभ्या ह्रस्वश्चेतीण प्रत्य-
यः । स च डित् पूर्वपदस्य च ह्रस्वः, डित्वाट्टिलोपः, आडो ह्रस्वः ।
अहौ भवमाहेय, वृत्तिकुलीत्यादिना ठञ् । अहीवती, शरादित्वादीर्घः,
'सज्ञाया'मिति त्वम् । उपहनुः । कृहनिभ्या कृत्रुरिति कृत्तुः । कित्वा-
दनुनासिकलोप, अनेहा अनेहसौ, नञि हन एह चैति नञ्युपपदे अमुन्
एहादेशश्च हनः, 'नलोपो नञ' इति उत्तरपदे नञो नलोप, 'तस्मात्तु-

इची'ति नुप्पनकाराच्च, परम्याजादेहनपदस्य तुङागमः । ऋदुशने-
त्यादिना ऽनडादेश, सावसबुद्धौ सर्वनामस्याने चेति दीर्घः, सबुद्धौ तु हे
अनेहः जघने 'हन्ते'द्विचे'न्यनचोरन्यतरस्मिन् द्वित्वम् 'अभ्यासाच्चे'ति
कृत्व, जघने भवन्तस्मै हित वा जघन्य, 'दिगादिभ्यो यत्' 'शरीरावय-
वाच्चे'ति योगाभ्या यत् । 'दिगादावस्य पाठोऽशरीरावयवार्थः । ग्रीहा,
ग्वन्नुक्षवित्यादिना कनिनन्तो निपातितः । उणादयोऽप्युत्पन्नानि प्राति-
पदिकानीति व्युत्पत्तिकार्याभावादिहन्पृषेति नियमाभावात्सर्वत्र सर्व-
नामस्याने दीर्घा भवति । ग्रीहा ग्रीहानावित्यदि । अदिहनी अनुदाना-
बुदात्तेत्तौ ॥ २ ॥

द्विप अपीतौ ॥ लिङ्गन्ता अनुदात्ता' स्वरितः ॥ द्वेष्टि, द्विष्टः,
द्विषन्ति । द्वेत्ति, द्विष्ठ, द्विष्ठ, द्वेष्मि, द्विष्वः^१ । द्विष्टे । द्विषानि । द्विषने,
द्विष्टे, द्विष्ट्वे । द्विषे । द्विष्वहे । णत्व तवगादौ, सकारादौ णत्वस्य
पूर्वत्रामिदृत्वा ण्यडेः कः सी'ति कत्वे णत्व, दिद्वेप, दिद्विपतुः ।
दिद्वेपिथ । दिद्वेप । दिद्विप । दिद्विपिव । दिद्विषे । दिद्विपिषे, दिद्वि-
पिवहे । क्वादिनियमादिट् । द्वेष्टा । द्वेष्टासे । द्वेष्ट्यनि । द्वेष्ट्यने । द्वेष्टु
द्विष्टात् । द्विष्टाम् । द्विषन्तु । द्विष्टि । द्वेष्णि । द्वेष्वा । द्वेष्टाम् ।
द्विष्ट्व । द्विष्ट्वम् । द्वेष् । 'द्विपश्चे'ति लङि विधीयमानो जुम्भावो
'लोढो लङ्'द्विपश्चेति गान् भवति, लङः शाकटायनेत्यत्र लङ्ग्रहण
मुख्यलङ्ग्रहणार्थमिति स्थितत्वात्, है हे'र्धित्वे णत्व प्रकारस्य
जश्त्वेन हकारः । उत्तमश्राटि पिच्चादङित्वाद्गुणः, अद्वेष्ट, अद्विष्टाम् ।
अद्विष्टुः । अद्विषन् । अद्वेष्ट । अद्वेष्टम्, अद्विष्ट्व । अद्विष्ट । अद्विषा-
ताम् । अद्विष्टत, अद्विष्टाः । अद्विष्टि, तिप्तिपोर्हन्त्यादिलोपे गुणे
जश्त्ववत्त्वे 'द्विपश्चे'ति भेदो जुम्भावः । द्विष्यात् । द्विष्याताम्, द्विष्याः,

१ हन्ते'द्वित्व चेति द्वित्वमिति २ पु पा

२ शरीरावयवत्वादेव यति सिद्धे इह पाठ इति २ पु पाठ ।

३ द्विष्म इत्यधिक ३ । ४ । पु ।

४ हेरिति २ । पु नास्ति ।

५ जश्त्वे वा चत्वेमिति २ । पु पा ।

द्विष्याम् । द्विषीत । द्विषीयाः । द्विषीय । द्विषीवहि, अपित्सर्वधातुकत्वाच्च
गुणः । आशिषि मलोपाभावो विशेषः, द्विषीष्ट, गुणाभावो लिङ्सिचा-
विति क्त्वात् । अद्वित्तत् । अद्वित्तनाम् । अद्वित्तन् । अद्वितुः, अद्वितम् ।
अद्वित्ताव । अद्वित्तत । अद्वित्तानाम् । अद्वित्तन्त । अद्वितथाः, अद्वित्ति ।
अद्वित्तावहि । 'शल इगुपधादनिट्. क्तः, अचि'क्तस्याची'त्यल्लोपः,
दिद्वित्तति । दिद्वित्तते । 'हलन्ताच्चे'ति सनः क्त्वाच्च गुणः, देद्विष्यते ।
देद्विषीति । देद्वेष्टि । ईटि नाभ्यस्तस्याचि पितीति गुणाभावः । लङि
सिजभ्यस्तेति नित्य भेजुस्भावे'परत्वात् प्रकृतियहणन्यायेन 'द्विषश्चेति'
विकल्पे अदेद्विषुः, अदेद्विषन्वित्युभय भवति, यङ्लुगन्तस्य सेट्त्वान्नुङि
क्त्वाभावाददेद्वेरीदिति सिजेव । तथा त्वासनोरपि सेट्त्वे रलो व्युपधा-
दिति क्त्वाविकल्पनाद् देद्वेपिषति, देद्विषिषति, देद्वेपित्वा, देद्वि-
षित्वा इति भवति, द्वेषयति । अदिद्विषत् । कर्मणि द्विष्यतइत्यादि ।
विप्रद्विट्,^१ प्रद्विट्, । सत्सूद्विषेति सोपपदात्सोपपदाच्च क्तिप् । द्विट्श-
ब्दस्तु 'अन्येभ्योपि दृश्यत'इति ताच्छीलिके क्तिप् । द्विषी, संपृचादिना
घिनुण् । शच्च् द्विषन् शच्च्वा द्विषन् । 'द्विषो ऽमित्र' इति शता ।
अयमलादेशः । 'द्विषः शतुवे'ति कर्मणि षष्ठी विकल्पः, द्वेषण इति
बाहुलकात्कर्तरि ल्युङित्यात्रेयः, द्विष्टा, द्विष्टुः, द्विष्टवान् ॥ ३ ॥

दुह प्रपूरणे ॥ दोहि । दुग्धः ॥ दुहन्ति । दोत्ति । दुग्धः । दुग्ध,
दोह्मि । दुह्मः, दुह्यः । दुग्धे । दुहाते । दुहते । धुत्ते । धुग्धे । दुहे ।
दुहुहे । भलि पदान्ते च दादेरिति हकारस्य घकारः, भपस्तथोरिति
तकारयकारयोर्धकारः ॥ 'भलां जश् भशी'ति घकारस्य गकारः,
सकारादौ ध्वे पदान्ते च एकाचो बशो भषिति भष्भावेन दकारस्य
धकारः, तत्र सकारादा'विण्को' रिति यत्वे 'खरि चे'ति चत्वंम्,
दुहन्ति दुहते इत्यत्र पूर्वत्रासिद्धत्वादन्तरङ्गत्वाद्वा प्रागेवान्यदादेशयो-
र्भत्परत्वाभावाच्च घत्वप्रसङ्गः । दुदोह । दुदुहतुः । दुदोहिय । दुदु-

१ लुप्तभावादिति २ । ३ । पु. पा.

२ अनेनेति २ पु अधिकम् ।

३ विप्रद्विट् इति ४ । पु अधिकम् ।

४ वचनमित्यधिक २ पु ।

हयुः । दुदुह । दुहोक्त । दुदुहिव । दुदुहे । दुदुहिपे, दुदुहिद्वे । दुदुहिवहे, क्रादिनियमादिट् । ध्वमि 'विभापेट' इति मूर्द्धन्यविकल्पः । दोग्धा । दोग्धामे, धोत्पनि, धोत्पते । दोग्धु, दुग्धान्, दुग्धाम् । दुग्धि । दोहानि दोहाव, दुग्धा, दुहाता, धुत्व । धुग्ध, दोहै । हेरपिन्वान् गुणः । आटि तु पिन्वानुण् । अधोक् । अदुग्धाम् । अदुहन् । अधोक् । अदुग्धम् । अदुग्ध । अदोहम्, अदुहु, अदुग्ध । अदुहाताम् । अदुग्धाः, अदुग्धम् । अदुहि । अदुह्वहि, तिप्सिपे, हन्-ट्वादिलोपः । पदान्तत्वाद्वादेरिति हकारस्य घकारः, एकाचो वश इति दकारस्य धकारः^१, जश्त्वचत्वे, प्रत्ययलक्षणेन लघूपधगुण, दुह्यात् । दुह्याताम् । दुह्याम्^२ । दुहीत । दुहीयाः । दुहीय । अपिन्साञ्चानुक्तत्वाच्च गुणः । आशिपि सलोपाभावो विशेषः, दुह्यात्, दुह्यास्ताम्, धुत्ती-ष्टेत्यादि । तडि लिङ्सिचाविति कित्वाच्च गुणः । घत्वभ्रपभावौ । धुत्तीध्वमित्यत्रेणः प्रीध्वमिति मूर्द्धन्यो न भवति, । घत्वे पत्वस्य पूर्व-त्रामिटृत्वात्सीध्वमोऽभावात्, कृते तु घन्वादौ प्रीध्वमिणः परो न भवति । अधुत्त । अधुत्तताम् । अधुत्तन् । अधुत्तः । अधुत्तम् । अधुत्ताव । अधुत्तत । अधुत्ताताम् । अधुत्तन्त, अधुत्तथाः । अधुत्ति । अधुत्तावहि । 'शल इगुपधादनिटः क्तः' 'क्तस्याची'त्यल्लोपः । अत्र के चित् क्तस्य भाविनीमनकारान्ततामाश्रित्य भ्रस्याद्वावे 'क्तस्याची'त्यल्लोपे ऽधुत्ततेतीच्छन्ति । तदमत् । तत्राचीत्यस्य पर-सप्तमीत्वात् । अत्र दन्त्यादौ तडि लुग्धा दुहदिहेत्यादिना क्तस्य वा लुक्,^३ अदुग्ध, अदुग्धम्, अदुहुहीति भवति । अत्रात्मनेपदे ताविति घक्तञ्च दन्त्यग्रहणादन्त्याप्तेऽपि घकारो दन्त्यग्रहणेन एह्यते । दुधुत्तति, दुधुत्तते । दोदुह्यते । दोदुहीति, दोदोग्धीत्यादि द्विषिवत् । दोहयति । अदूदुहत् । अयं द्विकर्मकः, गा दोग्धिपय इति । तत्र पुरुष-

१ धकारादेश इति २ । पु. पा । ३ दुहुरिति २ पु अधिकम् ।

३ तत्तत्कार्यं सर्वत्र २ । ४ । पु. सप्तम्यन्तपदेनापातम् । सूत्रस्यापे इतीत्यस्य स्थाने इत्यनेन क्व चिदित्यादिनेति सर्वत्र पाठः ।

प्रवृत्तेः पयोर्यत्वात्पयः प्रधानं कर्मान्यदप्रधानम् । तत्राप्रधाने दुहादी-
नामिति वचनात् कर्मणि लादयो ऽप्रधाने भवन्ति । दुह्यते गौः पयो
देवदत्तेन, अदोहि गौ, दोग्धव्या, सुदोहा, दुग्धेति कृद्योगलक्षणपठौ
द्वितीयावदुभयोरपि कर्मणोर्भवति दोग्धा गो. पयस इति । उभयथा
गोणिकापुत्र इति भाष्यउक्तत्वादप्रधाने द्वितीयापि भवति । दोग्धा गा
पयस इति । दोग्धव्या गौः पयो देवदत्तेनेत्यत्राभिहिते कर्मणि कर्तरि
च कर्तृकर्मणोरिति षष्ठी न भवति, उभयप्राप्तौ कृत्ये षष्ठीनिषे-
धस्योक्तत्वात् । उपपादितं चैतद्वृत्तौ,^१ कर्मकर्तरि न दुहसुनमामि-
ति निषेधादग्नस्य न भवति । दुग्धे गौः पयः स्वयमेव । ^२अदुग्धम् ।
अदुग्ध, दुहीतेति, पयो मुञ्चतीत्यर्थः, चिण् तु 'दुहश्चे'ति विक-
ल्पनात्पक्षे भवत्येव^३, अदोहीति । अन्यदा कर्तृवत् । क्ते तस्य च वा
लुकि अधुनत, अदुग्धेति^४ भवति । एव च न दुहेति चिणिनिषेधा
दुहिष्यतिरिक्तार्था भवति । अस्ति च^५ दुहेः सकर्मकस्यापि कर्मवद्भा-
वो 'दुहिष्यत्योर्बहुल सकर्मकयो' रिति, न दुह इति निषेधा 'दुहश्चे'ति
चिण्विकल्पश्च प्रकृतियहणन्यायेन यङ्लुगन्तेपि भवति । दोदुग्धे
गौः पयः । अदोदोहि । अदोदोहिष्टेति । यङ्लुगन्तस्य सेट्कत्वाद् न
क्तेः स्तीति 'क्तेः^६ सिजि'ति सिजेव । दुह्य, दोह्यम् । शसिदुहिगुहिभ्यो
वेति वक्तव्यमिति क्यञ्ण्यतौ, गोधुक्, प्रधुक् । सत्सूद्विपेत्यादिना सोप-
पदात्सोपसर्गाच्च क्तिप् । कामदुग्धा, 'दुहः क्व घश्चे'ति कप्प्र-
त्ययो हस्य च घः । दोही, सपृचेत्यादिना घिनुण्, दुहिता । नप्तृ-
नेष्ट्रित्यादिना वृचीटि गुणाभावा निपात्यते । ऋन्नेभ्य इति ङीप्
स्वस्त्रादिपाठान्न भवति, दुहितरावित्यादौ सर्वनामस्थाने ऽप्तृनिति दीर्घा

१ नाथताविति २ पु वृत्ताविति ३ पु पा ।

२ रूपत्रयमपि २ पु नास्ति । ४ पु दुहीतेति नास्ति ।

३ यथेति २ । ४ पु नास्ति । ४ अपीत्यधिकम् २ पु ।

५ हीति २ पु. पा. ।

६ क्लेः सिजिति नास्ति २ । ३ । ४ पु. ।

७ सोपसृष्टाच्चेति २ । ४ पु. पा. ।

८ दह गुणाभावश्चेति २ । पु इत्यगुणे इति ४ पु पा ।

न भवति नत्र नप्रादीना यहण मन्त्रादन्तमैत्रादिनामै-
 पामेव दीर्घ इति नियमार्थमित्युक्तम् । सौ तु ऋदुशनेत्यनङि ना-
 न्तत्वात्मर्धनामप्याने चेति दीर्घः । दुहितुरप्य दौहित्रः । विदादि-
 त्वादञ्ज । स्त्रिया दौहित्री शार्ङ्गरवाद्यञ्ज इति ङीप् । मृतपुत्री मृत-
 दुहिता । मृतोयभोजराजमेकयो दुहितुः पुत्रद्वय वक्तव्य इति पुत्र-
 डादेशः । टित्वाङ् ङीप् । सवसुयपुत्रीत्याद्यपि भवति, वाचम इत्यञ्ज
 वृत्तौ पुत्रडादेशमुक्त्वा केचित्तु शार्ङ्गवादिषु पुत्रशब्द पठन्ति तस्य
 पुत्रीति भवति, अन्यत्रापि हि दृश्यते नैन्पुत्र-ल्युक्म् । कथं नहि वा
 मृतकापुत्रकावृन्दारकाणामितीत्यधिकृत्य उक्तः । अत्र हरदत्तः पुत्रिके
 शार्ङ्गरवादियाङ्ङात् ङीनि स्वार्थे क्त्, 'केण' इति ह्रस्व इकारस्तस्य
 पक्षेऽत्व विधीयतइति । इतिद्वयमर्द्धनार्थः शपि गतः । ४ ॥

दिह उपपद्ये ॥ देग्धि । दिग्ध इत्यादि पूर्ववत् । प्रणिदेग्धि नेर्ग
 देति णत्वम्, अत्र देग्धीति स्तिपा निर्देगात् प्रनिदेदेग्धीत्यञ्ज णत्वञ्च भव-
 ति । देहः । अकर्तरि च कारक इति कर्मणि घञ्, देहेत्यास्तीनि
 देही । 'अत इतिटना' विनीति यद्यप्ये काहरान्त्रने जातेः सप्तम्या
 च न नौ स्मृता विनीतिटनौ कृदन्ताविधिधने तथापि तदस्यान्वयस्मि-
 न्नित्यत इति करणस्यानुवर्तनात् तस्य च विषयनियमार्थत्वात्कार्योत्या-
 दिवदन्तेनिर्भविष्यति । उक्तं च वृत्तौ इतिकरणो विषयनियमार्थः
 सर्वत्र सवध्यतइति । दिह्यते उपलिप्यते इति देहनी । बाहुलकात्
 कर्मणि ल्युट्, गौरादित्वात् ङीप् ॥ ५ ॥

लिह आम्वादने ॥ लेटि लीटः, लिहन्ति । नेति, लीटः,
 लेह्मि । लीटे । लिहाने । लिहने । निह्ने लिहाथे । लीटे । लिह्ने, लिह्नुहे ।
 भनि 'हो टः' भपस्तथेःरिति तथोर्दृत्वे 'ष्टुना ष्टु'रिति ष्टुत्वे तस्य
 चाश्रयासिद्धत्वाद् टो ष्टे लोपे द्रुलोपे पूर्वस्य दीर्घ इति दीर्घः । सकारादौ

१ नान्तत्वादिति २ पु नास्ति ।

२ शैलेत्यधिकम् ४ पु ।

३ मेक इति नास्ति २ पु । ४ अकारस्तस्य पक्षे विधीयते २ । ४ पा ।

५ सञ्जायामिति २ । ४ पु अधिकम् ।

षटोरिति क्त्वं, तिपि ठत्वस्य पूर्वत्रासिद्धत्वात्पूर्वमेव गुणे ठत्वादि ।
 लिहन्ति । लिहतइत्यत्राप्यसिद्धत्वादिना पूर्वमेवान्यदादेशयोर्भलपरत्वा-
 भावाद् ठत्व न भवति । लिलेह । लिलिहतुः । लिलिहुः, लिलेहिथ ।
 लिलिहिथ । लिलिहे, लिलिहिषे । लिलिहिद्वे, लिलिहिध्वे, लिलिहिवहे ।
 क्रादिनियमादिट् । लेठा । लेठासे । लेह्यति, लेह्यते । लेठु, लीठात्,
 लीठाम्, लिहन्तु, लीठि, । लेहानि । लीठा, लिहाताम् । लित्व, लीढ्वं,
 लेहै । हौ धित्वे ण्त्वादि । अलेट्, अलीठाम्, अलिहन्, अलेट्,
 अलीठम्, अलीठ । अलेहम्, अलिहु, अलीठ, अलिहाताम्, अलीहत,
 अलीठाः अलीढ्वम्, अलिहि, अलिह्विहि । लिह्यात् । लिह्याः, लिह्यां,
 लिहीत । लिहीयाः लिहीय । अपित्सार्वधातुकत्वाच्च गुणः, अशिषि
 लिह्यात्, लिह्यास्ता, लिहीष्ट्यादि । लिङ् सिचाविति त^१ङि कित्वा-
 च गुणः, लिहीध्वमित्यत्र ठत्वे षत्वस्यासिद्धत्वाच्च षीध्वमस्ति, कृते ठत्वे
 क्त्वषत्वयोश्च नेणः परः षीध्वमिति नास्ति मूर्धन्यप्रसङ्गः । अलि-
 चत् । अलिचताम् । अलिचन् । अलिचः, अलिचम् । अलिचाव । अलि-
 चत । अलिचाताम् । अलिचथाः, अलिचि, लुग्रा दुहेत्यादिना दुहि-
 वत् क्सस्य वा लुकि अलीठ, अलीठाः, अलीढ्वम्, अलिह्वीत्यपि भवति ।
 लिलिचति, लिलिचते, लेलिच्यते, लेलिहीति, लेलेठि । लेलिहान इति
 चानशि, लेहयति । अलीलिहत् । लेहः । श्याद्वधेतीगुपधलक्षणस्य
 कस्यापवादो णः । वहलिहः । अभ्रलिहः । 'वहाधे लिह' इति वहाधयोः
 कर्मणोरुपपदयोः खश् । अर्हाद्रिषदजन्तस्येति पूर्वपदस्य मुम्, खशः
 शित्वेनापित्सार्वधातुकत्वेन न गुणः । शपस्तु लुका लुप्त्वाच्च तदपे-
 क्षापि । अत्रात्रेयः । गणकार्यस्यानित्यत्वात् सृक्क्रियालिहति जिह्रया
 कटाचिदिति, सत्रापूर्वको विधिरनित्य इति गुणाभावोपि, 'एव वैद्यके
 अलिहदित्यादय इति, श्वलिह्वौकतइत्यत्र हो ठे पदान्तरनिरपेक्षत्वेना-
 न्तरङ्गत्वाज्जशत्वमिति ठलोपो न भवति, लिता । बाहुलकात् क्सः ।

१ तङीति नास्ति २ । ४ । पु ।

२ एवं वैद्यके इत्यस्य स्थाने इतीच्छन्त्येके इति ४ पुस्तके पाठः ।

यूकालित, 'तुद्रजन्तव' इति नित्यं ममाकारद्वन्द्वे नपुमकत्वम् । द्विषाद-
यानुदात्ताः स्वरितेनः ॥ ६ ॥

अथात्मनेपदिनः ॥ चत्तिङ् व्यक्ताया वाचि ॥ अनुदानोनुदानेन ।
अय दर्शनकर्मा च, यथा विश्वा रूपाभिचट्टे शचीभिरिति । प्रायेणा-
यमाङ्पूर्वः । चंटे स्फोरिति क्लोपः । चत्तानि । चत्तते । क्लोपे
'पठोः कः सीति' कत्व, चट्टे । क्लोपटुत्वयोजंश्च, यो डः । चचत्ते ।
चचत्तानि । चचत्तिरे, चचत्तिषे, चचत्तिध्वे । चचत्ते, चचत्तिवहे । चच्ये ।
चच्यते, चच्यिरे । चच्यिषे । चच्यिध्वे । चच्ये । चच्यिवहे । चच्यि-
महे 'वा लिटी' ति ख्याज्जादेशो वा, उभयत्र क्तादिनियमादिट् । 'आतो
लोप इटि चे त्याल्लोपोजादौ किति इटि च, ध्वम्याल्लोपे इणन्तादङ्गात्य-
र' इडिति 'विभाषे' इति मूर्द्धन्यविकल्पाभावः परस्तादुपपादयिष्यते ।
ख्याजो जित्वात्यत्ते परस्मैपदमपि भवति, चख्यौ । 'आत औ णलः',
चख्यतुः । चख्युः, चख्यिथ । चख्याथ । चख्यथुः । चख्य । चख्यौ ।
चख्यिव । यत्त्वयस्तास्वट्टने भारद्वाजस्येतीदृक्कल्पः, क्शादिरप्ययमादेश
इष्यते इति वृत्तौ, तेन चक्षे । चक्षते । चक्षिध्वे । चक्षिवहे । चक्षतुः
चक्षुः, चक्षिथ । चक्षाय, चक्ष । चक्षौ । चक्षिवेति भवति । भाष्ये
तु ख्याज्क्षाजावुत्वोभयोः सयाहकमादेशान्तरमुक्तं, यथा, क्शादिर्वा
अथ ख्शादिर्भविष्यति । केनेदानौ क्शादिर्भविष्यति चत्वेन अथ
ख्यादिः कथम्, असिद्धे शस्य यवचन विभाषेति । असिद्धे शस्येत्यस्य कैयटः,
'पूर्वत्रासिद्धे मित्यधिकारे णत्वविधानानन्तरं शस्य यत्त्व विभाषा वक्तव्य-
मिति, हरदत्ताप्येवम् । सुधाकरस्तु वाशब्दापजीवनाय 'यरोनुनासिके
ऽनुनामिको वेत्यस्यानन्तरमिति । अस्यास्व कल्पनायाः प्रयोजनानि
सुप्रव्यस्य भावः सौप्रव्यमित्यत्र 'योपधाद्रूपोत्तमाद्रुजि' ति योपधत्त-
त्वे वुजि, यत्त्वस्य पूर्वत्रासिद्धत्वेनायोपधत्वाद्रुजभावाद्रुणवचनत्राहण्या-

१ उदात्तइति २ पा० । २ पुस्तके लटि आङ्पूर्वकं म्वायमुदाहृतः ।

३ 'इणको' रिति पत्वमित्यधिक २ पुस्तके । ४ उत्तरइति ३ पु पा० ।

दिभ्य इति ष्यञ्, तथा सुप्रख्येन निर्वृत्तेः देशस्तौ प्रख्यस्तत्र भवः सौप्रख्यीय इत्यत्र 'धन्वयेपधातुजि ति वुञ्' न भवति, यत्वस्यासिद्धत्वात्, तदभावाद् दृष्टाच्छः । पुसः ख्यान पुख्यान्मित्यत्र च सयोगान्तत्वेन सलोपे सपुक्राना सो वक्तव्य इत्यम्परे खयि मकारस्य विधीयमानः सकारो यत्वस्यासिद्धत्वादम्परत्वाभावात् भवति, चख्यध्वे इत्यत्र ध्वमि इत्यात्लोपदणः पीध्व'विभाषे ट' इति मूर्धन्यो यत्वस्यासिद्धत्वाद् न भवति, नमः ख्यात्र इत्यत्रापि यत्वस्य 'शर्परे खरि विसर्जनीय' इति विसर्जनीये कर्त्तव्ये ऽसिद्धत्वादस्ति शर्परेति विसर्जनीयः, अन्यथा 'कुप्वोऽक्रभौ चे'ति विसर्जनीयजिह्वामूलीयौ द्वौ स्याता, किं च ख्यातमित्यत्र 'सयोगादेरतो धातोर्येष्वत' इति निष्ठान्तत्वे कर्त्तव्ये यत्वस्यासिद्धत्वात्तत्वाभावः, तथा पर्याख्यानमित्यत्र 'कृत्यच' इति नत्वे यत्वस्यासिद्धत्वादन्टा शकारेण व्यवधानाद् एत्वाभावः । ननु ख्यात इत्यत्र न ध्याख्येति नत्व-प्रतिषेधस्य सिद्धत्वात्कथमिदं भाष्ये प्रयोजनमुक्तम् । अत्र कैयटः । न ध्याख्येति तु प्रतिषेधः ख्या प्रकथनइत्यस्यैव प्रतिपदोक्तत्वादस्य तु शस्य यत्वेन लातृष्टिकत्वादिति मन्यतइति । ननु नमः ख्यात्रे इत्यत्र जिह्वामूलीयस्याभावः कथं प्रयोजनमुक्तं, यस्मात्स दुर्वारः । तथाहि, ख्या प्रकथनइत्यस्मादपि तृचि ख्यातृशब्दस्य मद्भावात्तत्स्यस्य यकारम्य'नादेशत्वादसिद्धत्वाभावात् 'शर्परे खरि विसर्जनीय इत्यस्याप्रसङ्गात् कुप्वोरिति प्राप्तस्य जीह्वामूलीयस्य बाधकाभावात् । नैष दोषः । ख्यातिरप्यार्द्धधातुके ख्शादिः, असिद्धे शस्य यवचन विभाषेत्येतदपि तस्यापि साधारणमिति । अत्र च प्रमाणं सस्यानत्व नमः ख्यात्रइत्यत्र सस्यानत्व न भवतीति भाष्यवार्तिकयोः सस्यानाभावस्य प्रयोजनकत्वेन कथनं, सस्यानमिति जिह्वामूलीयस्य सज्ञा, तथा चाह पदम'ज्जर्या हरदत्तः, ख्या प्रकथने इति वक्ष्यते सोऽपि ख्शादिः । असिद्धे शस्य यव-

१ वुञ् न भवतीति २ । ४ । पु नास्ति ।

२ न शर्परेत्वमिति २ । ४ पु अधिकम् ।

३ नैषमिति ३ पा ।

४ पदमज्जर्यामिति २ । ३ । ४ पु नास्ति ।

चन विभाषेत्यादि तस्यापि माधारण द्रष्टव्यमिति । आत्रेयोपि सर्व-
चाट्टुधातुके चत्तिङ् इवाम्य रूपमिति । एव चत्तिङि च ख्यातिरपि तिष्ठाय
खगादिः । शकारस्य चात्रिङ् शस्य यच्चन विभाषेति वा यत्त्वं तच्च सयो-
गादेरात इति निष्ठानत्वे ऽमिङ्मिति यत्त्वन्वाभावात्त्वस्य नैव प्रसङ्ग
इति । न ध्यायेतिरतिषेध ख्यान्येयापि न कर्तव्यो भवति । अत्रेव
विचार्यते । आचक्ष्णावित्पादौ यत्त्वाभावे चत्वे 'ख'यो द्वितीया गरि
पौष्करमादे रिति खकारो भवति वा नेति, नेत्याह । अस्मिन्कर्त्तव्ये चत्वेस्य
पूर्वचामिङ्त्वाद् द्वितीयभाविनः खयोऽभावात्, खयो द्वितीया इत्येतवा-
दिन्याक्रोशे पुत्रस्येयत्र हि पश्यते । न चैव भ्रमिवच्च क्षादिरप्ययमादेश
इष्यते इति वृत्ता ककारादिरयमादेश उच्यतइति द्वितीयभाविनः
खयः सभवादन्ति खयो द्वितीया इत्यस्य प्राप्तिरिति, यतो वृत्तिकार-
निर्द्देशो भाविचत्वापेक्षः, अन्यथा ऽथ वा ख्यादिर्भविष्यति केनेदानीं
क्ष्णादिर्भविष्यति चत्वेनेत्यादि भाष्यविरोधप्रसङ्गः । ख्याता, ख्यातामे,
ख्याताहे, क्षाता, क्षातामे, ख्याताहे, ख्याता, ख्यातामि, ख्यातास्मि ।
क्ष्णाता क्ष्णातामि क्ष्णातास्मि, चत्तिङः ख्यात्रि न्याट्टुधातुके ख्यात्रा-
देशः, लिङ्गत् क्ष्णादित्वमनुसन्धेय, ख्यास्यते । ख्यास्यसे, ख्याम्ये, ख्याम्य
तीत्यादि कर्गदिपक्ष उदाहार्यः । चटा चत्ताता, चत्तताम् चत्त्वं,
चत्तायाम्, चङ्ङत्, कलेगपादि लङ्गत् । चत्तै, अचष्ट, अचत्ताताम् ।
अचत्तत । अचष्टाः, अचङ्ङुम् । अचत्ति, अचत्त्वहि । चत्तीत, चत्ती-
याता चत्तीरन्, चत्तीयाः, चत्तीयाया चत्तीध्व, चत्तीय । आशिपि, ख्या-
मीष्ट, ख्यापीयास्ता, ख्यामीष्टा, ख्यामीध्व, ख्यामीय ख्येयात् । ख्येया-
स्ता, ख्येयासुः, ख्येयाः, ख्येयास्त, ख्येयामम्, एलिङि 'वान्यस्य सयो-
गादे'रिति वा लिङ्माट्टुधातुके एत्वम्^१ । एत्वाभावे ख्यायात्, ख्यायास्ता

१ त्यपि २ ए पा ।

२ खयो द्वितीया इति वार्तिके खयो द्वितीया इत्येव वक्तुं युक्तं, चद्रुद-पदशब्द-
कल्पनेन साधवादिन्याशयेन साधवाचार्ये, खयो द्वितीया इत्युत्पत्तिरिति प्रतिभाति ।

३ लिङि च क्ष्णादित्वमिति ३ । ४ । १ ए पा ।

४ एत्व वा हनादा कृत्य धधातुके लिङिति २ । ४ । पु पा ।

ख्याया, ख्यायास, क्शासीष्ट, क्शायात् क्शोयादित्यादि चोदाहार्यम्, अख्यत । अख्येताम् । अख्यन्त । अख्ययाः । अख्यध्वम्, अख्ये । अख्या-
 घृहि । अख्यत् । अख्यताम्, अख्यन्, अख्यः, अख्यम्, अख्याव, 'अस्य-
 तिवक्तिख्यातिभ्योऽङि' ति ज्ञेयडादेशः कर्त्तरि, ख्या इति प्रकथनार्थस्य
 चादेशस्य च ग्रहणमिति वृत्तिः । 'आतो लोप इटि चे' त्याल्लोपो
 ऽङि, अख्येतामित्यादावा 'तो ङित' इतीयादेशः । यजादावतो दीर्घः,
 अङ्विधौ ख्यातीति कृतयत्वायाः विकृतेर्निर्द्वंशादकृतयत्वायाः प्रकृतेर्न ग्रह
 इति यदा क्शादित्वं तदा सिजेव, अक्शास्त, अक्शासाताम्, अक्शासत ।
 अक्शास्याः, अक्शासि । अक्शास्वहि । अक्शासीत् । अक्शासिष्टाम्,
 अक्शासिषुः । अक्शासीः । अक्शासिषम् । यमरमनमातामिति सगिटौ ।
 ननु 'निसमुषविभ्यो ह्र' इति कृतात्वस्यानुकरणेन विधीयमानस्तङ्
 निह्रास्यते इत्यादावाकारान्ते एव स्यात् तु प्रकृतेरेदन्तस्य ह्रैदित्यस्य । निह्र-
 यते इत्यादि सिद्ध्यर्थं विकृतिरपि प्रकृतिरग्राह्येव, कथं विज्ञायते यदयं 'न
 व्यो लिटी' त्यात्वभूतस्य घञो निर्देशेनात्वप्रतिषेधः शास्ति ततो ज्ञायत-
 इत्युक्तं न्यासे । तद्वदिहापि विकृत्या प्रकृतेर्यहणादङ् स्यात् । मैवम् ।
 न तत्र विकृत्या प्रकृतिग्रहणात्तङ् किं तु एवन्तैव प्रकृतिरनुक्रियते इत्यनुकर-
 णस्यात्वं तु लक्षणवशात् । 'न व्यो लिटी' त्यत्राप्यनुकार्यमेजन्तमेव लक्षण-
 वशादनुकरणमात्वभूतमिति न विकृत्या प्रकृतिग्रहणस्येदं ज्ञापकं, सर्वमेत-
 त्परिञ्चितं ह्येतौ, अख्यास्यत, अख्यास्यत् । अक्शास्यत । अक्शास्यत् ।
 कर्मणि ख्यायते क्शायते इत्यादि । स्यादिषु वा चिषवदिटि ख्यायि-
 ष्यते, अख्यायिष्यत, अख्यायिषीष्ट, ख्यायितेत्यादि । इदभावे ख्यास्यते ।
 अख्यास्यत, ख्यासीष्ट, ख्यातेत्यादि, क्शादिरप्युदाहार्यः, एव कर्मकर्त्त-
 र्यपि । लुङि तशब्दे कर्मणि नित्यश्चिण्, कर्मकर्त्तरि तु 'अचः कर्मक-
 र्त्तरी' ति पात्तिकः । तदभावे द्विषचनादौ चास्यतिवक्तिख्यातिभ्य इत्यङ्,
 अख्यायि । अख्यत । अख्येतामित्यादि । क्शादित्वे त्वङ् नास्तीत्युक्तं,
 तेनाक्शायीति चिणि तदभावे सिचि चिण्वदिटो भावाभावाभ्याम् अक्शा-
 यिष्ट अक्शास्त । अक्शायिषानाम् अक्शासातामित्यादि, तदेवं क्शादि-

पक्षे तशब्दे त्रैलोक्यम् । सनि चिन्त्यासते, चिन्त्यामति, चिन्त्यासते.
चिन्त्यासति । चाग्यायते । चाक्यायते । यङ्लुकि न लुमता^१ तस्मि-
न्निति लुमता लुप्तप्रत्ययनिमित्ते आङ्गे चानाङ्गे च कार्यं प्रत्ययलक्षणनिषे-
धादङ्परन्वाभावात् ख्यात्रादेशः । नन्वार्धधा^२तुरुदिति विषयमन्तर्माति
प्रागेव तदुत्पत्तेः ख्यात्रादेशेन भाव्य, मैव, लुका^३ तद्विषयत्वमेवापह्नियते
तथा च 'न लुमताङ्गस्ये'त्यत्र कैयटे न लुमता तस्मिन्निति चेद्वृत्तिनि शिडादेः
न सिद्ध्यतीति भाष्यवार्तिकयोक्तुं लुङि चे^४त्यादौ विषयमन्तर्माश्रयणेना-
देशः सेस्यन्तीत्याशङ्क्य लुका लुङौ विषया^५पहारात् विषयमन्तर्माश्रय-
णेष्वसिद्धिरित्युक्तम् एव चाङ्गविधौ ख्यातीति शितपानिर्देशः प्रकथनार्थ-
स्य यङ्लुक्प्रवृत्त्यर्थो भवति, यदुक्तं वर्तमानेन, ख्यातीति शितया नि-
देशाद् यङ्लुकि अचाख्यामीदिति तदपि प्रकथनार्थपरं व्याख्येयं, व्याप-
यति क्शापयति, अचिख्यपत्, अचिक्शापत् आख्येयम् आक्शेपम्, आर्तुधा-
तुके इत्यस्य विषयमन्तर्मात्वात् प्रागेव प्रत्ययोत्पत्तेः ख्यात्रादेश इति अज-
न्तलक्षणो यद्वर्तते 'ईदानी^१तीत्ये गुणः, संचयः । वर्जनीय इत्यर्थः ।
वर्जने प्रतिषेध इति ख्यात्रभावे हलन्तलक्षणो ण्यत्, शोभन प्रचष्टि सुप्रख्यः,
उपसृष्टात्कर्मोपपदा दातश्चोपसर्ग इति कः । उपसृष्टात्कर्मोपपदात्तु
कर्मण्यणि युक्ति गोप्रख्याय इति । गा सचष्टे गोसख्य इत्यत्र तु 'समि-
ख्य' इति कर्मणि समि चोपपदेणोपवादः कः । तथा स्त्रियमाचष्टे स्वाख्य^२
इत्यत्र मूलविभुजादिभ्य इति कोपि भवति । तथानुपसृष्टात् कर्मोपपदा-
'दातोनुपसर्गं क' इति के गोख्यः, अनुपसृष्टादनुपपदात्तु श्यादुधेत्याका-
रान्तलक्षणे णे युक्ति ख्याय इति, गोख्यायो व्रजति गोसख्यायो व्रजति प्रिया
ख्ययो व्रजतीत्यत्रा 'ण् कर्मणि चे'ति कर्मणि क्रियाया^३ चोपपदे विधी-
यमानेण 'आतोनुपसर्गं कः' 'समि ख्यः' 'मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यान'-
मिति च विधीयमानं क परत्वाद् बाधते । तथा च वृत्तिः, कर्मणि सामा-

१ अङ्गस्येत्येवेति २ । ४ पु. पा । २ लुकात्र विषयत्वमिति २ । ४ पु. पा ।

३ त्वेति २ । ४ । पु. अधिकम् । ४ प्रियाख्य इति चेति ३ पु. अधिकम् ।

५ क्रियाधीयामिति २ पु. पा ।

न्यविहितोपि वामरूपविशेषभावाद् एवमुक्ता बाधितः पुनरपि विधीयते सोप-
वादत्वाद् एवमुक्तं बाधते परत्वाच्च कादीन्, तेनापवादविषयेषु भवत्येवेति,
वामरूपाभावश्च कल्प्युत्तुमुत्तुल्लेख्येषु वामरूपविधिप्रतिषेध इति । ईपदा-
ख्यानम् 'अनो युजि' इति युच् इपदादिषु कृच्छ्राकृच्छ्रायेषु उपपदेषु,
आख्या । 'आतञ्चोपसर्ग' इत्यङ्, सर्वेष्वपि कृत्सु कशादिरप्युदाहार्यः ।
अत्रेकारे विप्रतिपद्यन्ते । अयमनुदात्तः, प्रयोजन विचक्षण इत्यत्रानुदा-
त्तेतश्चेति युजिति कैयटपदमञ्जरीकारादयः । अत्रासनयोः प्रतिषेध
इति व्याजभावः । इदितोनुमिति नुमिह न भवति 'अन्तयहणानुवृत्तेर-
न्तेदित एव तद्विधानात्, अय चासनयोश्चेति ख्याज्प्रतिषेधः सञ्ज्ञाया,
यदाह भाष्यकारः, बहुलं तणीति वक्तव्यम् अत्रवधकात्रविचतणा-
जिराद्वयं, किमिदं तणीति संज्ञाच्छन्दसोर्ग्रहणमिति, तेनासञ्ज्ञाया
भावादौ न्युत्थाख्यानमिति भवति, अत्रानुदात्तेत्वादेव तडि मिट्टे डका-
रोन्तेदित्यविधातायेति केचित् । एव हि चत इत्यकारमेवानुदात्तमित-
मानजेत् । तस्मादन्तेदित्वाभावार्थः सन्ननुदात्तेत्वप्रयुक्तमात्मनेपदमनि-
त्यमिति ज्ञापनार्थाय डकारः, तेन तालैः शिञ्जद्वल्यसुभगैः, तृष्णैर्जृम्भसि,
प्रार्थयन्ति शयनोत्थित प्रिया इत्यादयः प्रयोगा उपपद्यन्ते । ननु शिङ्ग-
इति शिञ्जः जृम्भतइति जृम्भः, तद्वदाचरतीति कौ शतरि सिपि च
शिञ्जन् जृम्भसीति सिध्यतः । तथा प्रार्थन प्रार्थः, तत्करोतीति णौ^१
प्रार्थयन्तीति, तत् किमनेन ज्ञापनेन, सत्य, शब्दाः सिध्यन्ति अर्थास्तु
सहृदयहृदयङ्गमा न भवन्ति । अत्रात्रेयः, डित्करणमेकानुबन्धस्यात्मनेप-
दस्यानित्यत्वज्ञापनार्थमिति नेहार्जवं पश्यामः । यस्मादवश्य युजर्यम-
नुदात्तेत्व कर्त्तव्यन्तेनैव च तडि मिट्टे पुनस्तडर्थः क्रियमाणो डकारो
ऽनुदात्तेत्वप्रयुक्तस्य तडो ऽनित्यत्वज्ञापनार्थैव भवति, तथा गणकृत-
मात्मनेपदमनित्यमिति ज्ञापनार्थमिति तरङ्गणीयन्योप्येतेनैव प्रत्युक्तः,

१ तत्रेति अधिक २।४ पु ।

२ निषेध इति पा० २।४। पु ।

३ कृष्णे इति १।३।४ पु पा० ।

४ तपि प्रार्थयतीति २।४ पु० पा ।

५ अनेनेति २।४ पु नास्ति ।

समनाकारम्विकार उच्चारणार्थे इति तन्मते विचक्षण इत्यत्र युज्
न स्यात् । ल्युट्येव व्याजभावेम्विति न शक्यते वक्तुं सूर्या उभा
चन्द्रमामा विचक्षणेत्यन्तोदानावेक्षणान्, ल्युटि हि मध्यादात्तेन भाव्य
न चाववधक्रमगात्रविचक्षणेति निर्देशो युचमपि कल्पयेत्, यस्मादयमाहु-
धातुके व्याजभावमात्रपर इति ल्युट्येव व्याजभावेपि चरितार्थः ।
अववधक्रमेत्यत्र विचक्षण इति ल्युटीति वदन् न्यामकारोपि स्वरविरोधेनैव
प्रत्युक्तः । नृचत्ता रातपः, अमुत्रिन्यमुन्नय्य, अमनयोगेति व्याज-
भावः । चतुः । चत्तेः शिञ्जेत्युम्प्रत्यत्य, तस्य शित्वात्मार्षधातुकत्वात्
व्याजभावः । अचतुः चतुः करोति चतृकरोति । अन्मनइत्यादिना
ज्वा सलोपे 'ज्वा चेति दीर्घः' ॥

शब्दनन्तस्वनन्त्रेण प्रक्रियेय प्रपञ्चिता ।

तस्या निःशेषतो मन्ये^१ बोद्धारो भाष्यपारगाः ॥ ७ ॥

ईर गतौ कम्पने च ॥ इतः एचिपर्यन्ता उदाना अनुदा-
त्तेनः ॥ ईर्ते ईराते, ईरने, । ईर्पे ईराथे । ईरे, ईराचक्रे । इजादेश्च
गुरुमत इत्याम् । अत्र के चिदित्थिभवतिभ्या चेति इत्येः परस्य लिटः
क्रित्वविधानाज् ज्ञापकादामः पाक्षिकत्वं ज्ञापयन्तो रथचरणादिभिरीरिरे
नु^२वीरा इति प्रयोग समर्थयन्ते, न च समीधे दस्यु हन्तममित्यादौ
मन्त्रे^३नदामो निषेधे श्रूयमाणस्य लिटः कित्त्वार्थं सूत्र स्यात्, यस्मा-
दत्र 'छन्दस्युभयये नि मार्श्वधातुकत्वात्^४त्मार्षधातुकमपि'दिति द्वित्वा-
देव कित्कार्यमनिदिनामित्युपधानापः सिद्ध्यति, तस्माज् ज्ञापकमे-
वेति । सत्यमेव शक्यते कल्पयितुं भाष्यकारवार्तिककारये स्तु नेष्टु,
यत्सूत्रमेवैनन्त्रत्याचक्ष्यन्तु । इत्येच्छन्दोविषयत्वाद्बुको नित्यत्वात्ताभ्या
लिटः किदुचनानर्थक्यमिति । ईरिता । ईरितासे । ईरिताहे ।
ईरिष्यते । ईरिष्यसे । ईरिषे । ईर्ताम् । ईर्ष्व । ईर्ष्वम् । ईरै । ईर्ते ।

१ अध्ययनादिति २ पा ।

२ एवेतदित्यधिक २ पु ।

३ तत्त्वमिति ४ पु सन्तु इति २ पुस्तके पाठ ।

४ अथ इति २, ४ पु पा । ५ न्वत्वादिति २, ३ पु पा ।

रेराताम् । ऐरत । ऐर्याः । ऐरि, ऐर्वहि । ईरीत । ईरीयाताम् । ईरीयाः । ईरीय । आशिषि ईरिषीष्ट । ईरिषीष्टाः । ईरिषीध्वम् । ईरिषिड्ढु 'विभाषेष्टः' । ऐरिष्ट । ऐरिषाताम् । ऐरिष्टाः । ऐरिध्वम् । ऐरिड्ढुम्, 'धि चे'ति सलोपे 'विभाषेष्टः,' ऐरिषि । ऐरिष्वहि । कर्मणि ईर्यत-
इत्यादि । ईरिरिपते, ईरयति, माभवानीरिरत्, समीरणः । अनुदात्ते-
त इति युच्, एयन्ताच्चन्द्रादित्वेन ल्युरित्यात्रेयः, निम्नमीर्तइति नीर,
निःशब्दोय वृत्तिविषये^१ निम्नवचनः, तस्मिन्नुपपदे 'कर्मण्यणि'त्यण्,
इगुग्धलक्षणः क इत्यात्रेयः, अकारादनुपपदात् कर्मापपदो विप्रतिषे-
धेनेत्युक्तत्वात्तच्चित्य, स्वेनाभिप्रायेणोरितु शीलमस्येति स्वैरी, ताच्छील्मे
णिनिः, ईरणमीरः, स्वेनाभिप्रायेणोरोऽस्मिन्निति स्वैर, स्वभावादयं क्रिया-
विशेषण, नपुसकलिङ्गश्च, उभयत्र 'स्वादीरेरिणोर्वृट्ठ्वैक्ये'ति वृट्ठिः,
ईर्म, बाहुलकान्मः, दक्षिणमीर्ममस्य दक्षिणेर्मा मृगः, व्याधेन दक्षिणे
पार्श्वे वृणित इत्यर्थः, ईर्मशब्दो वृत्तौ धर्मिणि वर्तते 'दाक्षिणेर्मा
लुब्धयोग' इत्यनिजन्तो बहुव्रीहौ निपात्यते, अन्यत्र लुब्धयोगादृत्ति-
लोर्म शकटमिति भवति । ईर लोपे इत्याधृषीयः ॥ ८ ॥

ईड स्तुतौ ॥ ईट्टे । ट्टुत्वचत्वं । ईडाते । ईडिषे, ईडिध्वे । ईडे,
ईड्वहे, 'ईडजनोर्ध्वं च' अत्र ईश इति वर्तते से इति च, ईशीडिज-
नीभ्यः सेध्वेशब्दयोः सार्वधातुकयोरितीट् । ईडाचक्रे । ईडिता,
ईडितासे । ईडिताहे । ईडिष्यते, ईट्टाम् । ईडाताम् । ईडिष्व ।
ईडिध्वम् । ईडै । 'सवाभ्या वामा' विति वामयोः कृतयोरप्येकदे-
शविकृतस्यानन्यत्वात् सेध्वेशब्दावेवेतीट् । ऐट्ट । ऐडाताम् । ऐट्टाः ।
ऐड्वध्वं, विकृतियहणे प्रकृतियहणाभावाच्चेट् । ऐडि । ऐड्वहि । ईडीत ।
ईडीयाः । ईडिध्वम् ईडिय । आशिषि ईडिषीष्ट । ईडिषीष्टाः ।
ईडिषीध्वम्, ईडिषीय । ऐडिष्ट । ऐडिध्वम् । ऐडिषि, कर्मणि ईड्यते
इत्यादि । ईडिडिपते । ईडयति । माभवानीडिडत् । ईडा । गुरोश्च हल
इत्यकारः । 'ईडाया वे'ति निद्वैशादधस्वः । ईड्यस्तुत्यः, एयत् 'ईड्यन्त-

वृणसदुहा एयत' इत्याद्युदात्तत्वम्, ईडेन्यः औणादिक एन्यप्रत्ययो बाहुलकात् । अय चुरादौ च ॥ ८ ॥

ईश ऐश्वर्यं ॥ धनस्येष्टे, ईशिषे । ईशिध्वे । वरत्वादिना पत्वे ण्युत्थ भलि पदान्ते च, 'आधीगर्थद्वयेशा कर्मणां नि कर्मणि शेषे षष्ठी अगेप- त्वविवक्षाया धनमीष्टे ईशाचक्रे इत्यादि पूर्ववत् । ईशानः, लट शानच् ताच्छीलिकश्चानश्वा । वाचामीशो वागीशः, इगुपधनक्षणः कः, ननु कर्मणि शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठा मिट्टाया पुनस्तद्विधानं समामनिवृत्त्यर्थ- मिति कथमधीगर्थषष्ठाः समासः । सत्य, नायमधीगर्थषष्ठा ° किं तु 'कर्तृकर्मणो कृती'त्यशेषषष्ठाः । तदुक्तं कृद्गोपा च षष्ठी समस्यत- इति, ईश्वरः, स्येशभावेति वरच्, 'नेद्वशि कृती'नीडभावः । ईश्वरा । टाप्, ईश्वरीति औणादिके वरटि टित्त्वान्द्वित्यात्रेयादयः । धनेष्वीश्वरो धनानामीश्वरः । स्वामीश्वरेति षष्ठीसप्तम्यौ शेषे । कथं धनेश्वर इति यावता प्रतिपदविधानां षष्ठी न समस्यतइत्युक्तं, सत्यं, नात्र चकारेण षष्ठी पुनर्विधीयते किन्त्वनया सप्तम्या मा बाधीत्यभ्यनु- ज्ञायते । यद्वा पूर्ववत् 'कर्तृकर्मणो कृतीति' षष्ठाः समासः । औहृष्य चेह साध्य, न ईश्वरः, अनीश्वरः, न विद्यते वा ईश्वरो यस्य सोनीश्वरः । तस्य भावोऽनैश्वर्यमानैश्वर्यं, ब्राह्मणादित्वात् व्यञ्, नञः शुचीश्वरत्वेन इत्यादिनोत्तरपदस्य नित्यं वृद्धिः पूर्वपदस्य तु वा ॥ तत्पुरुषादपि न नञपूर्वादिति निषेधं बधित्वा ब्राह्मणादि"त्वात् व्यञ्, बहुव्रीहेः सामान्येनैव सिद्धत्वात्तत्पुरुषार्थः स पाठः ॥ १० ॥

आस उपवेशने ॥ आस्ते । अत्रा'नचि चे'ति द्वित्वपक्षे द्वौ सकारौ, अन्यथा त्वेकः । न च द्वित्वे स्कोरिति सलोपप्रसङ्गः । द्वित्वस्यास्मिचमि- दृत्वात् । आस्ते इत्यत्र द्वित्वपक्षे त्रयः सकाराः, न च भरो भरीति

१ समास इत्यधिक २ । पुस्तके ।

३ अपूर्वत्वधिक ४ पु

५ पाठादिति २ । ३ । ४ पु ।

२ चेत्यधिकं २ । ३ पु.

४ अशेषेत्यधिक ३ पु.

५ अद्विहाविति २ । ४ पु.

लोपाद् द्वावेवेति मन्तव्य, तस्यपि विकल्पितत्वात् । आध्वे । 'धि चे'ति सलोपे धकारस्य द्वित्वे जश्चम्, आसे, आमाचक्रे 'दयायासश्चे'त्याम् । आसिता । आसितासे । आसिताहे आनिष्यते । आस्ताम् आस्व, आध्वम् । आसै । आस्त । आसानाम् । आस्याः । आध्वम् । आसि । आस्वहि । आसीत् । आसीथाः । आसीय । आशिपि आसिषीष्ट । आमीषिष्ठा । आसीषीय । आसिष्ट, आसिषाताम् । आसिष्ठा, आसिष्ठम् । 'धि चे'ति सिचो लोपे इणः णीध्वमिति मूर्धन्यः, आमिषि^१ । सनि आसिषिपते । आसयति, मा भवानसिस्तु, याममध्यास्ते । 'अधिशीङ्'न्यासा कर्म'ति आधारस्य कर्म'त्वं, मासमास्ते मासमासनेन व्याप्नोतीत्यर्थः । सकर्मकव्यापनरूपधात्वर्थाङ्गकासने धातोर्वृत्या व्यापनापेक्ष मासस्य कर्मत्व, एवमस्य मासादिना सकर्मकत्वेपि तत्र तत्राकर्मकग्रहणेषु कालभावाध्वगन्तव्यदेशव्यतिरिक्तेन कर्मणा ऽकर्मकाणा ग्रहणमिति आसयति मास देवदत्तमिति प्रयोज्यस्य गतिबुद्धीति कर्मत्व भवति । तथा ऽणावकर्मकादिति नित्य परस्मैपदं च, एव लः कर्मणि चेत्यादिना विधीयमाना लादयोप्यस्य वस्तुतो मासादिना सकर्मकत्वाद्^२कर्मकग्रहणेन ग्रहणाच्च भावकर्मणोरुभयोरपि भवन्ति आस्यते मास देवदत्तेन आस्यते मासो देवदत्तेन, मासस्यासितव्य-मासितव्यो मासः, स्वास मासं स्वासो मास इति, ऋखलोर्न लोका-व्ययेति कर्मणि पठ्या निषेधः । अयं च प्रकारो 'ऽकथित च' काला-ध्वनोरित्यादौ भाष्यकैयटपदमञ्जर्यादिषु सहस्रशः प्रपञ्चितः^३ । अस्माभिरपि भवतौ प्रपञ्चितः । ननु कटे आस्ते इत्यादौ मासादिवत्^४ व्याप्यपेक्षया कटादेरपि कर्मकत्वेन भाव्यम्, अत्र कैयटः । नियतत्वाच्च प्रयोगस्य कटआस्तइत्यादौ त्वासनमात्रेणङ्गीकृतक्रियान्तरे आसिर्वर्तत-इत्यतिप्रसङ्गो नोद्भावनीय इति । आसीनः 'ईदास' इति आसेः

१ २ पुस्तके आशिपि तु इट' प्रत्ययभक्तत्वेनाङ्गस्यानिट्त्वादासिपीध्वमित्येवेति पाठो दृश्यते ।

२ कर्मसंज्ञेति २ । ३ । ४ पु ।

३ अकर्मकत्वादित्यधिकं २ पु ।

४ स्फोरित इति २ । ४ पु ।

४ आस्यपेक्षयेति ३ पु ।

परम्यान्म्यदेरि-कार । आसना । 'स्यान्म्यो युजि नि युच् आस्य'
वामरूपविधिना स्यन्, अस्मिन्नास्मिन् निषेध उभयोरपि ल्यधिकार
विहितत्वं बाहुनक्रान् नित्यपि भवति उपास्तिरिति, उप निना गुरुं
गियो वा उपानितो गुरु, शिष्टेण, गत्यर्थकर्मकेत्यादिना कर्तु-
कर्मणोः क्तः । उपमर्गवृत्तान् कानादिव्यतिरेकेनापि सकर्मकत्व, कैलामः,
कैलिः प्रयोजनमस्य कैलः वृद्धादिव्य उपमयानमित्यण्, आस्यतेस्मि-
न् च यापः, 'हलश्चेत्यधिकरणे घञ् । कैलस्वानामासमश्चेति विशेषण
विशेष्येणेति सञ्ज्ञान्त्वोहिवरात्यादिबन् समामो नित्यम् ॥ १९ ॥

आडः शामु इच्छायाम् ॥ आशास्ते । आशामाने । आशाम्से ।
आशाध्वे आशामे । 'शाम इदङ् हने' रिचङि हलादौ च डिति
विधीयमानमुपधाया इत्वमस्य न भवति सयोगस्य विशेषस्मृतिहेतु-
त्वाद् अङ्मन्वन्धिन एव शास्तेस्तत्र ग्रहणाद् अस्य च नास्त्यङ्-
सम्बन्धः सतिशास्तीत्यत्र सन्त्यतिभ्या परस्मैपदिव्या माहवर्षात्तादृश
एव परस्मैपदिनः^१ शामेर्दङ्गमिति । आशशासे । आशशासाते ।
आशशासिरे । आशशामिपे । आशशामिध्वे । आशशामे आशशामि-
वहे । आनिवदन्त्ये लकारः । आशशामिपने । आशशास्यते । आशा-
शासीति । आशाशास्ति । आशाशयति । आशीः । आशामः क्वावि-
तीत्वम्, सकारस्य रुत्वे वारूपधाया इति दीर्घः, त्रियाशीरिति निर्द्वैशा-
द्वेत्व, आशिषाधित्यादौ शमिवनिघर्णान्यादिना पत्व, तत्र हि न
केवलं शामनार्थस्य ग्रहणं किं त्वम्या^२पि, तथा चाशिषि लिङ्लोटा^३विति
निर्द्वैश्यते । आशिषा । आप चैव हलन्तानामित्यात्रेयः । अन्या
आशीः अन्यदाशीः । 'अपठ्ठनृतीयास्यम्यान्त्यस्य दुगाशीराशस्यास्थिनो-
त्सुकोतिकारकरागच्छेपु' । पठ्ठीनृतीयाव्यतिरिक्त्विभक्त्यन्तम्यान्त्यगच्छ-
स्यार्शारादिपूतरपदेषु हे च प्रत्यये दुगिति दुगागमः, पठ्ठीनृतीयान्तत्वे
तु अन्याशीः । अत्रापठ्ठनृतीयास्येति निषेधः कारकच्छव्यतिरिक्त्विषयः ॥
उक्तं च ॥

१ अपति ३ पु एवेति २ पु. पा । २ परस्मैपदिन इति नास्ति २ । ४ पु ।

३ आड शाम इति पा २ पु । ४ अस्य चेति २ । ४ । पु ।

दुगागमो ऽविशेषेण कर्तव्यः कारकच्छयोः ।

पठ्ठीवृत्तीयोर्नष्ट आशीरादिषु सप्तसु ॥

इति । आशिष करोति आशिषयतीत्यत्र सोपसर्गात् मयामय-
तेरेवेति नियमाच्छिपणञ्चादेव णितुत्पत्तौ 'प्रकृत्यैकाजि ति प्रकृतिभा-
वाण्णाविष्टुवदिति टिलोपो न भवति । अत्रात्रेयमैत्रेयस्वामिकाश्यपा
अमुमुदित पठित्वा 'नाग्लोपिशास्त्रुदित'मित्यत्रास्यापि सामान्येन
ग्रहणाद् आशशामदित्युपधाह्रस्वनिषेधो भवतीति । अत्रेयमैत्रेयौ तु
प्रयोजनान्तर^१ चाहतुः ॥ 'त्वापि छन्दसी'ति ल्यपोपवादे त्वादेशे
आशास्त्वा आशासित्वेतीद्विकल्पः, निष्ठाया 'यस्य विभाषे'ति निषेधा-
दिङ् न भवति । अशास्त आशास्तवानिति भवतीति, 'वर्द्धमानमम-
ताकारादयस्त्वनुदित पठित्वा नाग्लोपीत्यत्रोदितेनुशासनार्थस्यैव ग्रह-
णादस्य ह्रस्वनिषेधाभावादशीशसदिति ह्रस्वेन भाव्यमित्याहुः ॥ वर्द्धमा-
नोदितमते निष्ठायामाशासिन इति च भवितव्यम्, अत्र हरदत्तेन

शक्यः शासियहो कर्तुमृदिदे^२वैष पठ्यते ।

अशासु अनुशिष्टा^३वित्येवमेके प्रवृत्तते ॥

इत्यनुशासनार्थस्य शासेर्मतान्तरसिद्धमृदित्पाठमाश्रित्य अदित्त्वा-
देवोपधाह्रस्वनिषेधसिद्धेः शासियहण न कर्तव्यमित्यभिधानात् तन्मते
प्यस्य शासेरुदित्वमनभिप्तेन प्रतीयते । उदित्वे शास्वित्यु^४कारानुबन्ध-
करणमेतदर्थं स्यादिति कथं प्रत्याख्यायेत, एवमृदित्ववादिना शासियहणे
निरर्थके यन्मतान्तरेण फलमुक्तं हरदत्तेनैव

वदन्त्यन्ये तु सूत्रे ऽस्मिन् शासिं निरनुबन्धकम् ।

पठन्तः प्रतिषेधोऽस्य यङ्लुक्पि भवेदिति ॥

इति, तदयुक्तं, प्रकृतौ निरर्थकत्वे^५ विज्ञान्यर्थं शासियहणं स्यात्,
इह त्वाशासेर्मुक्तानुबन्धकस्यानुवादत्वेन प्रकृत्यर्थत्व शक्यते^६ वक्तुम् ।

१ अपीति २।४ पु ।

२ इटप्रतिषेधादिति २।४ पु ।

३ वर्धमानममताकारा दीर्घा स्त्विति ४ पुस्तके पाठ उपलभ्यते परं स न युक्त
इति प्रतिभाति ।

४ देष पठिष्यते इति २।४ पु ।

५ उकारानुबन्धकरणमिति २।४ पु नास्ति

६ विज्ञान्यर्थत्व शासि ग्रहणस्येति २।४। पु । ७ विज्ञातुमिति ४। पु ।

प्रायेणायमाद्गुर्व्व इति नमो वाक् प्रशास्महे इति भवभूतिप्रयोगोपपत्ति-
रित्यात्रेयः । मन्तिस्तुशामाम्ब्रिव्यकीदिनो निद्रंशात्रास्मान् क्यपः प्रमङ्ग
इत्याशास्यमिति एयदेव, येशामन्यायुदित्वेन तत्र ग्रह इष्टस्तेषा
मयाशास्यमित्येव रूप, यस्माच्छाम इदङ् हलो'रितित्वमस्य नास्तीति
प्रागेवोक्तम् । आशामा, 'गुरोश्च हन' इत्यकारः । आशमत-
इतीच्छाया, शमतीति स्तुनौ, शमतीति हिमाया शपि, शास्तीत्य-
नुशासने ॥ १२ ॥

वम आच्छादने ॥ निवामे वसतीति गतं शपि । वस्ते । वस्से ।
वध्ने, वसे । ववमे । ववमिषे ववसिवहे । न शमददवादीत्येत्वाभ्या-
सनेोपनिषेधः । वमितेन्यादासिवदुदाहार्यम् । विवसिपने, वावस्यते ।
वावसीति, वावस्ति । वासयति वस्त्र देवदत्तेन वासयते इति वा ।
यदा तु व्यापारान्तरनिवृत्तिपराया चोदनायामविवर्त्तनकर्मकोयमकर्मक-
मन्दाणावकर्मका'दिति परस्मैपदमेव, गतिबुद्धीत्यादिना प्रयोज्यस्य
कर्मत्व देवदत्तमिति^१, न पादमित्यत्र लुभिकरणत्वात्नाम्य ग्रह इत्युक्तम्,
अत एव प्रे तपमुद्रुनयवदवनेन्यादावपि नास्य ग्रहः । वमित्वा, वसि-
त, वमित इत्यत्र वविस्वपीनि सप्रनारणस्य नात्र प्रमङ्गो ऽयजादि
त्वात्, वस्यते आच्छादनेऽनेनेति वसनम्, करणे ल्युट्, यद्वा वन्ति आच्छा-
दयतीत्यनुदानेति इति कर्तरि युच्, वस्त्रम्, व्रत्, वस्त्रेण समाच्छादयति
सबस्त्रयनि, मुण्डमित्रेन्यादिना णिव् । वस्त्रात्समाच्छादनइति वृत्तिः,
वासः, वामसी वमेर्णिच्चेत्यमुनि णित्वाद् वृद्धिः । कृत्तिर्वामोस्येति कृत्ति
वासाः । अत्वन्तम्येच्यत्वन्तस्यामबुद्धौ सौ दीर्घः । अकारान्तस्तु कृत्ति
वस्तइति कर्मण्यणि चर्मव इत्यादि प्रयोगश्चर्म वस्त इति^२ किप् चेति कि-
पि क्विन्ता धातुत्व न जहतीति अधातेरिति निषेधादत्वसन्तस्येति न
दीर्घः, अयमेवाधातेरिति निषेध क्विन्ता धातुत्व न जहतीत्यस्य मूल,
वसा, शरीरान्तर्गतस्नेहद्रव्य, पचाद्यचि टाप्, तद्धि व्याप्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

१ प्रयोज्य कर्म देवदत्त वासयतीति २ । पु प्रयोज्य, कर्म देवदत्तमिति ३ ।

कमि गतिशासनयोः । कस्ते । कगते । कमते । कसे । कन्ध्वे
 'धि चेति सलोपः', अत्रायोगवाहानामट्सु एत्वमविशेषेण सयोगोप
 धासञ्ज्ञाऽलोन्त्यद्विर्वचनस्यानिवृत्तिरिति चेत् यत्र प्रयोजनं तत्रतत्रा-
 योगवाहानामुपदेशस्य चेदितत्वादनुस्वारस्याच्त्वाश्रयणे धकारस्या न-
 चि चेति वा द्विर्वचने पूर्वस्य जश्च ज्ञेऽनुस्वारस्य च परसवर्णे नकार-
 दकारधकारवकाराः सयुज्यन्ते, द्विर्वचनाभावे तु दकारस्याभावादस्य
 त्रयः । ननु द्वित्वपक्षेपि 'भरो भरि सवर्णे' इति दकारस्य लोपा-
 क्षया^१णामेव सयोगः स्यात् । मैवम् । अस्य विभाषितत्वात् । एव कस्त-
 इत्यादावपि सकारस्य भल्परत्वे पक्षे द्विर्वचनं द्रष्टव्यं, न च स्फोरिति
 सलोपस्य विद्यमानत्वाद् द्विर्वचनमजन्यमिति मन्तव्यं, मस्मिन् द्विर्वचन-
 स्यासिद्धत्वात् । कस्वहीत्यादौ भल्परत्वाभावाच्च न सलोपप्रसङ्गो
 नापि भरो भरीति सलोपेन वैयर्थ्यमाशङ्कनीयं तस्य विकल्पित-
 त्वात् । एवमुदाहरणेषु द्वौ सकारावेको वा मध्यमैकवचने द्वित्वे
 त्रयः सकाराः, अद्वित्वे भरो भरीति यदा लोपस्तदैकः, अन्यदा
 तु द्वौ, चकसे । चकस्ति चकसिवहे कसिता, कसिष्यते । कस्ता,
 कस्व, कन्ध्व, कसै । अकस्त, अकस्या, अकसि । कसीत, कसीयाः ।
 कमीय । आशिपि कसिपीठ । अकसिष्ट, अकमिष्टाः । अकसिषि ।
 चिकसिपते । चाकस्ति, चाकस्यते । चाकसीति । लङि अ^२टि तिप्सि-
 पोर्लङ्गादिलोपे सयोगान्तलोपे अचाकन्, कस्यति । अचकसत, सर्वत्रे
 दित्वाच्चुम् । अत एव 'चाकस्यतइत्यादौ लोपाभावः, अय पाठो
 मैत्रेयादीनाम्' । अन्ये तु व्याख्यान्तरे^३ ऽमुं तालव्यान्तमनिदित
 म^४न्यन्ते । तथा च 'प्रतिष्कशश्च कशेरि'त्यत्र वृत्तिः, कश गतिशास-
 नयोरिति सूत्रे सुधाकरश्च, पारायणिकैरयमिद्विद्वन्त्यान्त्य उदाहारि ।

१ त्रिव्यञ्जन एवेति ३ । ४ । त्रिभिर्व्यञ्जनेरेवेति २ । पु पाठ ।

२ हलिति २ । पु पा । ३ न चेति २ । पु पा ।

४ आशङ्क्यमि २ । पु पा । ५ अटीति २ । ४ । पु नस्ति ।

६ कस्यतइति २ । ४ । पु पा । ७ मैत्रेयादीनामिति २ । पु पा ।

८ व्याख्यान्तरे ऽमुमिति २ । ३ । ४ । पु नास्ति ।

९ अधीयतइति २ । पु पा ।

अन्यैस्तु 'प्रतिष्कशश्च कशेरिति दर्शनात्तान्त्र्यान्त ममान्मायि' घृतस्य
 धरा अभिवाकशीमित्यत्र नृभाकरणे कशेरितिर्नने यदुक्तं रूप
 मिति । तथा नाभ्यन्तमेत्यत्र घृते पय्यगने चाकशनि वावर्मा-
 ना^१त्युदाहृत्य कान्दन इत्यन्व द्रष्टव्यम् पय्यगनइत्यन्वमइत्यन्व
 च, प्रकृत्यन्तराणां वा स्थितिशिखरीनामेवानि रूपाणांत्युक्तम् । अत्र
 हरदनादयः । स्थितिशिखरीनामेवानि रूपाणांत्युक्तम् । अत्र
 लौ वाम्^२प्रदने इत्याद्युक्त्वा प्रकृत्यन्तराणामिति विवृण्वाना आहुः
 कश गतिशामनयोरिति । कैपटे च स्थितिशिखरीनामेवानि रूपाणांत्युक्तम् । अत्र
 भाष्यमुपादाय स्यश्च बाधनमर्थानयोः कश गतिशामनयोरिति के चित्य-
 ठन्ति, अन्ये तु कप गतिशामनयोरिति तन्मने कशि मौत्रो धानुर्द्व-
 एव इत्युक्तम् अत्र धानैः क्षीरस्वामी कसेत्येकद्विदन्त्यान्तमनिदित-
 मपि पपाठ, प्रदेशान्तरे चाह कशि गतिशामनयोरिति कारन्तः^३ शका-
 रान्तश्च पठने इति । कटे, वरश्चादिना पन्व घृत्वम् । कशाने ।
 कते, पन्वकत्वे । कइत्वे इत्ये धनारय इत्ये प्रकारय जश्च हकारः ।
 कशे, कश्चहे चकशे, चकशिपे चकशिवहे । कशिता । कशिप्यने,
 कशाम्, कत्त्व, कशै । अकट अकटुः, कशीन । कशीया, कशीय,
 आशिपि कशिपीठ अकशिष्ट, अकशिष्टाः । अकशिपि । चिकशिपने ।
 चाकश्यते । चाकशीनि, चाकशिष्ट, कागयति, अचीकगत् । कशा । पचा-
 द्यचि टाप् । कशामर्हतीति कश्यम् अश्वाना मध्य, दण्डादित्वाद्यत्,
 प्रतिष्कशः, वार्तापुरुषः सहायः पुरोपायीति वा । 'प्रतिष्कशश्च कशेरिति
 प्रतिपूर्वस्य कशेरचि मुट् मस्य पन्वञ्च निपात्यते । प्रतिष्कश इत्येता-
 वत्येव सूत्रयिनञ्च^४कशेरिति वचन प्रतेः कशिसञ्चिन्धत्वे निपातन
 यथा स्यादिति, तेन कशा प्रति गतः प्रतिकशोश्च इत्यत्र न भवति, अत्र
 हि प्रतिगमिमवन्ध । अनिदिन्त्यान्तपक्षे कस्तइत्यादि द्रष्टव्यम् ॥ १४ ॥

१ समभाष्येति ३ । पुस्तके उपरिनिखित, पाठ । २ आर्तात्यधिक २ । पु ।

३ शब्द इति २ । ३ । ४ । पु । पा । ४ अकारान्त इत्यधिक २ पुस्तके ।

५ सूत्रणीये घन । इति २ । ४ । पु । पा ।

णिंसि चुम्बने ॥ इद्विद्वन्त्यान्तः । निस्ते इत्यादि कसिवत् ।
अत्रात्रेयादयः प्रणिस्ते प्रनिस्तइत्युदाहृत्य वा निसेति णत्ववि-
कल्पमाहुः । अस्माभिस्तु तत्कृतिपर इति निन्दतावुपपादितम् । आ^१-
भरणकारस्तु तालव्यान्त पठित्वा वानिशेति सूत्रमपि स्वपाठानुगुणं
पपाठ तत्तु 'नुम्बिसर्जनीयशर्व्ववायेपी'त्यत्र वृत्तिन्यासपदमञ्जर्याद्य-
पर्यालोचनविजृम्भित, तत्र हि नुमादिभिः प्रत्येक व्यवये पत्वमिष्यते
तेन निस्ते निस्त्वैत्यत्र न भवतीत्युक्तम्, अस्य तालव्यान्तत्वे व्रश्चादि-
पत्वे षठोरिति कृत्वे कवर्गात्परत्वेन पत्व दुर्वारमिति कथं प्रत्युदा-
ह्रियेत ॥ १५ ॥

णिजि शुद्धौ ॥ निङ्क्ते । कुत्वे चत्वे, निञ्जाते । निञ्जते । निङ्क्ते
कुत्वचत्वेयोः पत्वम् । निनिञ्जे । निनिञ्जिषे । निञ्जिता ।
निञ्जिष्यते । निङ्क्ताम् । अनिङ्क्त, निञ्जीत आशिषि । निञ्जिषी
ष्ट । अनिञ्जिष्ट, निनिञ्जिषते । नेनिञ्ज्यते । इदित्वाचुम् सर्व्वत्रात
एव किङ्ति नलोपाभावः । नेनिञ्जीति, नेनिङ्क्ति, । निञ्जयति ।
अनिनिञ्जत् ॥

पश्चि वचिं विचिरिचिरिञ्जिपृच्छतीन् ।

निजि सिचि मुचिभजिभज्जिभृञ्जतीन् ॥

इत्यत्र निरनुपङ्गपाठाद् णिजिर् शौचपोषणयोरिति जौहोत्या-
दिकस्यैव ग्रहणादयं सेडेवोदाहृतः ॥ १६ ॥

शिजि अव्यक्ते शब्दे ॥ शिङ्क्ते इत्यादि पूर्व्ववत् । तालैः शिञ्ज-
द्वित्यात्मनेपदानित्यत्वज्ञापनादिति च^२त्तावुक्तम्, शिञ्जा, पचाद्वाचि टाप्
गुरोश्च हल इत्यकारो वा । शिञ्जिनी । आवश्यक्यन्यन्तान् डीप् ॥ १७ ॥

पिजि घर्णे ॥ सपर्चने इति शाकटायनः । उभयत्रेति समता । अव-
यवे इति काश्यपः । अयं शिञ्जिश्च द्वे अव्यक्ते शब्दइति काश्यप । पिङ्क्ते-

१ कश्चिदिति २ पु पा० ।

२ इत्यत्र कुत्वपत्वचत्वेऽनुस्वारपरसवर्णा इति २ पु पाठः ।

३ ग्रहः, अयं सेडुदाहृत इति २ पु पाठः । ४ चष्टाविति । २ पु पा० ।

इत्यादि पूर्व्वेनत् । पिङ्गः । घञ् । पिञ्जरः, पिङ्गः बाहुलकादराज्ञौ, पुरुषपिङ्गः । पिङ्गलुङ्गः 'कङ्कः । कर्मधारये इति विशेषणस्य वा परनिधानः, कङ्कः रात्रिपाटादेव जङ्गरस्य गङ्गारः । पिङ्गला पिङ्गलिका गौरादिपठान् डीप् पिङ्गलिमा । पैङ्गल्यम् । 'वर्गद्वय'द्विभ्य ष्यञ् चे'तीमनिच्ष्यञ् । पिञ्जः शूल मन्थातश्च, खर्जपिञ्जादिभ्य ऊरोलवा-विन्युलच् । वृज्जी ल्यक्, वृज्जे इति मैत्रेयः । मवमामेयञ्च पिञ्जि भाषार्थः ॥ तुञ्जि पिञ्जि हिवाबल दाननिकेतनेष्विति चुरादौ ॥ १७ ॥

वृज्जी वर्जने । दन्त्योष्मादि ॥ इतिदिन्यात्रेयादयो दौर्गाश्च । वृक्ते । वृज्जते । वृत्ते । वृग्ध्ये । वृज्जे । वृज्जिषे । वृज्जिवहे । वर्जिता । वर्जिष्यते । वृक्ता, वृत्त्व, वर्जं वर्जवहे । आटि गुणः । अवृक्त । अवृक्क्याः । अवृजि । वृज्जीन । वृज्जायाः । वृज्जीय, आशिपि वर्जिणीष्ट, अत्र लिङ्-मिवावित्यत्र भनीत्यनुवर्तनाच्च कित्त्वम् । अवर्जिष्ट, अवर्जिष्टाः । अवर्जिषि, विवर्जिषते वरीवृज्यते रीगभ्यामस्य वर्वर्कि रगागमः । रीयि-कारण्युदाहार्यम् । वर्जयति । अवर्जन् अववर्जत् । 'उर्द्धदिन्यृ'कारो वा गुणापवादः । वर्जित्वा । वृक्म् । निष्ठाया 'स्वीदिता निष्ठाया'-मित्यनिट्त्वत् । वृज्यः, च्छदुरधाञ्चेति क्यप् । वृज्यो जनपदाः । इगुपधात्किञ्चेनीन् प्रत्ययः, कित्वाच्च गुणः । वृजिषु भवो वृजिकः । 'मद्रवृज्यो, कवि'ति कन् शैपिकः । वर्गः । घञि कुत्वम्, वर्गं भवो वर्ग्यः । दिगादित्वाद्भत् । कवर्गीयः । 'वर्गान्ताञ्चे'ति भवार्थे छः, वामुदेववर्गं भवो वामुदेववर्ग्यः । वामुदेववर्गीयः, 'अशब्दे यत्वावन्य-तरस्या'मिति यत्वौ अन्यतरस्यायङ्गान्छश्च, वामुदेववर्गीय इति । वृजिन पाप, वृज्जेः किञ्चेनीन् प्रत्ययः । कित्वाच्च गुणः । वृजनम् । कृपवृजिमन्दिनिधात्रभ्यः क्युनिति क्युन्यनादेशः । अय रधादौ युजा-दौ च अयमिदिदिनि मैत्रेयः । तथा चाधीयते चतुरेव भानृष्यस्य वृङ्क्ते

१ पिङ्गलिङ्गि २ । ४ पु नास्ति । २ शूलसयात इति ३ । ४ पु पा ।

३ प्रत्ययइत्यधिक २ पु । ४ प्रत्यय इत्यधिक २ । ३ । ४ पु ।

५ घट्णान् वृज्जेनेष्वेति १ । ३ । पु पाठा दृश्यते पर तु सूत्रयवान्यतरस्यायङ्

गात्र स युक्त ।

४ प्रत्ययइति २ । ४ पु नास्ति ।

इति । तथा च शाबरभाष्ये प्रवृज्जनमिति प्रयुज्यते । तथा च स्वामी वृज्ज इति दौर्गाः । नेदा वृक्ते वर्जितेति । यदाह पित्रु वृज्जु पृचै सम्पर्चइति, तेन ह्युद्दिदिदित्स्याने क्रियते इदिदीदित् स्याने, तन्मते पूर्वोय वक्ष्यमाण^१श्च सम्पर्चना^२ । वृज्जाते वृज्जते । वृज्जे । वृज्जे, ववृज्जे । वृज्जिना । वृज्जिष्यते । वृज्जाम् । अवृज्ज । वृज्जित । आशिपि वृज्जिपीठ अवृज्जिपु, विवृज्जिपते, वरीवृज्ज-
ज्यते, वरीवृज्जि, वृज्जयति । अववृज्जत् ॥ १९ ॥

पृची सम्पर्चने ॥ ओष्ठादिरीदित्, पृक्ते इत्यादि वृज्जीवत् । इदि-
दिति दुर्गकाश्यपनन्दिधनपालादयः । इदित्त्वीयान्त इति कौशिकः ।
ईदिदित्यपरे । तत्र वृत्तौ सम्पर्चादिमूत्रे पृची सम्पर्कइति रुधादिर्लक्षते
न त्वादादिरित्यभिध नात् प्रथमान्त ईदिदेव युक्तः, उणादिवृत्तौ पर्ज-
न्यशब्दव्युत्पादने अर्जः पर्ज वेत्यन्यप्रत्यये पर्जादेशविधन^३ आ^४पु^५क^६न्ती
यान्तपाठः, पित्रु वृज्जु पृचै सम्पर्चने इति पठन् शाकटायनोप्यत्रैवानु-
कूलः, तेन ह्युद्दिदिदित्स्याने क्रियते । ईदित्स्याने चैदिदित्युक्तम् । अय
रुधादौ, युज्ज पृच सदमनइति दुजादौ । ईरादय उदा^३ ता अनुदात्तेतः ॥ २० ॥

पूङ् प्राणिगर्भविमोचने ॥ सूने । सुवाने, सुवते, । सूपे, सूध्वे ।
सुवे, सूवहे, सूमहे । अजादावुवङ्, एदुवे । सुपुवाते । सुपुविपे ।
सुपुविद्वे । सुपुविध्वे 'विभाषेठः' सुपुविवहे । 'आदेशत्रययवो रित्तीणः
परस्य सस्य^४ पत्वम् ॥

श्युकः किति निषेधो ऽत्र स्वरत्यादिविकल्पनात् ।

पूर्वे निषेधकाण्डस्य प्रारम्भाद्बलवत्तरः ।

तथापि क्तादिसूत्रेण बाध्यते तत्र व्युहात् ॥

तेन इण् नित्यः, एतच्च स्वरतावेवोपपादितम् । सोता । सवि-
ता । सोप्यते । सविष्यते स्वरत्यादिनेद्विकल्पः, सूताम् । सुवाता, सूव,

१ वक्ष्यमाणास्तत्र इति क्वचित्कोपपाठः ।

२ पृचैदिति १ । ३ । ४ पु ।

४ सस्येति ३ । ४ पु नास्ति ।

३ उदात्ता इति २ पु नास्ति ।

५ स चेति २ । ४ । ४ पु पा ।

सुवै, अटि पित्वादिभ्योऽपि 'भृमुवास्तिङी' नि निषेधात् गुणः । अमू
 त । अमुवाताम् । अमुयाः । अमुध्वत् । अमुवि अमुवति । सुवीन ।
 सुवीनाम् सुवीयाः, सुवीय आशिषि सविरीदु, सविरीयास्ताम् ।
 सविपीरत् सविपीयाः, सविरीदुम् सविरीध्वत् । सविरीय मोपीठ,
 मोपीयास्ताम्, मोपीरत्, मोपीठा । मोपीदु मोपीय आश्विनानुक्तत्वा-
 त्पठ्यादिनेद्वयम् । अत एव 'भृमुवास्तिङी' नि गुणनिषेधोऽपि न
 भवति । न हि पार्श्वानुक्तविषयः, इणः पीध्वमिति नित्या मूर्धन्यो
 ऽनित्यपक्षे, इट् पक्षे तु गुणावादेशयोर्विकल्पः । एव लुङ्यपि । अमविष्ट,
 अमविषाताम् । अमविष्टा । अमविध्वत् । अपविष्ट, अपविषि, अपवि-
 ध्वहि । अमोष्ट, अमोष्टानाम् । अमोष्टा । अमोष्टम् । अमोषि मृमृते, ।
 स्तौति रोवेति नियमात् पत्वं 'सनि यत्तुगुहोश्चे'ति चगच्छेना-
 क्तानुर्कषणादिनिषेधः 'श्युकः किति' निषेधोऽपि स्वर-आदिर्विकल्प
 बाधने । उक्तं च न्यामे । 'श्युकः किति' 'सनि यत्तुगुहोश्चे'ति पूर्व
 द्विधे इतिविशेषनामर्थान् तु वनीयान्त्व प्रतिषेधनिषमन्येति । सोप
 यते सोपुर्वानि, सोपुनि, प्रकृतिग्रहणे यदनुगन्तस्यापि यत्तुगुहोश्चेति
 'भृमुवास्तिङी' नि गुणनिषेधः, सावयति । अमृयवत् । एतौ कृतस्य
 स्यानिवद्भावात्मृगश्च द्विर्वचनम् । कर्मणि सूयते, आवावात्यादि
 स्यादिषु तु वा चिखद्वादिटि साविष्यते इत्यादि, अन्यदा कर्तृवदि-
 हुविकल्पे द्वैरूपम् तदेव त्रीणि रूपाणि भवन्ति । लुङ्लिटोर्ध्वमि
 तु शुट्टइटि वा चिखदित्यपि 'विभाषेठ' इति मूर्धन्यविकल्पनात्पञ्च
 रूपाण्युदाहार्याणि, एव कर्मकर्तर्यपि लुङ्येकवचने 'अव कर्मकर्तरि' इति
 त्रिण्मिचौ द्वौ भवनः, भिचख वा चिखदित् तदभावे शुट्टद्विकल्प चेति
 चानृत्पम् । अमावि अमविष्ट, अमाविष्ट अमोटेति । गोपु प्रमृत्, गवा
 प्रमृत् : स्वामीश्वरेत्यादिना शेषे षष्ठीमप्तम्यौ भवनः । तत्र षष्ठी
 सप्तम्या मा बाधीति पक्षे केवलप्रभ्यनुज्ञापतेन पुनर्विधीयतइति प्रतिपद-

१ विभाषेठ इति मूर्धन्येति अधिकम् २ । पु ।

२ भावादिति नास्ति २ । ४ पु ।

विधानाभावाद्गोप्रसूत इति समासोपि भवति । ईश^१तावयमर्थः प्रपञ्चितः ।
 पुत्रसूः प्रसूः । सत्सूद्विषेयादिना कर्मण्युपसर्गोपि उपपदे क्तिप्, तत्र
 यद्यपि सुपीति चानुवर्तते तथापि तस्याकर्मकैरेव सम्बन्ध इति गृहे सूत
 इत्यञ्च क्तिव् न भवति, अयं च क्तिव् विधिर्द्विधा साहचर्यात् लुग्विकरणत्वे
 प्यस्यैव भवति न तु षूङ् प्राणिप्रसवइति द्वैवादिकस्य, नापि षू प्रेरणे
 इति तौदादिकस्य । सूत्वा । 'श्युः कृती' तीयिनषेधः । सूतः,
 सूतवानित्यत्रानेन वा'यस्य विभाषे'ति वा इडभावः । सूतका ।
 सूतिका । स्वार्थे कः । 'केण' इति टापो ह्रस्वः । वा सूतकापुत्रकावृ-
 न्दारकाणामित्यत इत्वविकल्पः । प्रमवः, 'अदोरप्' घञोपवादः । सुपूतिः ।
 निःपूतिः । विपूतिः । दुःपूतिः 'सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमा' इति स्वादि-
 भ्यः परस्य सुप्यादेः सकारस्य पत्वम् । सुपीति कृतसप्रसारणस्य स्वप्नेर्निर्देशः ।
 इतरत्र स्वरूपग्रहणमिति अति^२सूत इत्यत्र 'सात्यदाद्यो' रिति पत्व-
 निषेध एव भवति । सूरि । षूङ् किरिति क्तिः । स्त्रीविवक्षाया
 कृदिकाराद्वा ङीपित्यात्रेय^३ । सूरः । सुसूधाद्यधिभ्यः क्वचित् कृन्, सूनुः,
 सुवः क्तिदिति नुप्रत्ययः, क्तिच्चात्र गुणः, अनुग्विकरणत्वाद्वा व्युत्पाद्यः,
 पुमान्, अस्माद्वातोर्दुमसुन्प्रत्ययः, सकारस्य पकारः । डकाराष्टिलो-
 पार्थः । अकार उच्चारणार्थः, अन्य उकार उगित्कार्यार्थः, नकारः
 स्वरार्थः । 'पुसेऽमुडि'ति सर्वनामस्यानेऽमुडादेशो डित्वादन्त्यस्य, उकार
 उच्चारणार्थः । प्रत्ययस्योदित्वात्सर्वनामस्याने नुम् सिद्धः, 'सान्तमहतः
 सयोगस्ये'ति सयोगात्पर्वस्यासबुद्धौ सर्वनामस्याने दीर्घः, सबुद्धौ तु
 अमुडि नुमि सयोगान्तलोपे हे पुमनिति, पुमासावित्यादौ 'नश्चापदान्तस्य
 कनी'त्यनुस्वारः । अजादावमर्वनामस्याने पुम इत्यादि । हलादौ तु
 पूर्वस्य पदत्वात्सयोगान्तलोपे मो नुच्चारेतस्य च 'वापदान्तस्ये'ति ययि
 वा परपवर्णे पुभ्या पुम्भ्यामित्यादि । पुस्वित्यत्र 'नुम् विसर्जनीयशब्द-
 चायेपी'ति पत्व न भवति । नुमो यानुस्वारस्तस्यैव नुमग्रहणेन तत्र
 ग्रहणात् । अयममुडादेशोद्गाधिकारविहितत्वात्तदन्तस्यापि भवतीति

परमपुमानित्यादावपि भवति । बहवः पुमानो यस्यामिति बहुव्रीहौ
 बहुपुमीत्यत्र अन्तर्वर्तिनः सर्वनामस्यानस्य लुक् लुप्तत्वात्प्रत्ययलत-
 णाभावाच्च सर्वनामस्य नगरनेत्यमुद् न भवति । इममुत्प्रत्ययस्योद्दि-
 त्वात् ङीप् । उर प्रभृतिषु पुमानित्येकवचनान्तपाठानेनैव समासे
 नित्य कप् । अन्यत्र 'शेषादिभाषेति विकल्प इतीह कवभावः',
 यदा कप् तदा प्रातिपदिकस्य कवन्तत्वेनागिदन्तत्वाभावादाव् भवति ।
 बहुपुम्केत्यत्र सकारस्य सयोगान्तलोपे नकारस्य सपुकाणा स इति सः,
 'पुमः खय्यम्पर' इति रुत्वापवादः सकारः । अत्रानुनामिकः पूर्वस्य तु
 वेत्युकारस्य वानुनामिकादेशः । नन्वत्रयहणस्य रुणा सह सनियोगप्रति-
 पत्यर्थत्वात्कथमत्रानुनामिकः । नैष दोषः । रुप्रकरणे यद्विधीयते तदुपल-
 क्षणार्थत्वादत्रयहणस्य, यदा नानुनामिकस्तदा 'ऽनुनामिकात्परोनुस्वारः'
 इत्युकारात्परोनुस्वारः, अत्रान्यशब्दस्याध्याहारिणानुनामिकादन्यो वर्ण-
 स्ततः परोऽनुस्वार इति सूत्रार्थः । एव नपुमकेयन्तवर्तिनः सर्वनामस्यानस्य
 लुप्तत्वादमुद् न भवति, बहुपुमन् नगरमिति, सकारस्य सयोगान्तलोपः ।
 बहुपुमी इत्यत्रान्तवर्तिनी लुप्ता विभक्तिमाश्रित्य प्रत्ययनतणेन तदन्त-
 त्वेन पदत्वात्मकारस्य सयोगान्तलोपे न शङ्क्यः, उत्तरपदत्वे चापदा-
 दिविधावित्युत्तरखण्डस्य प्रत्ययलतणेन पदत्वनिषेधात् । यद्वात्र भ-
 सञ्ज्ञया पदसञ्ज्ञाबाधे नैव मलोपप्रसङ्गः । बहुपुमामीत्यत्र शेः सर्वनामस्या-
 नत्वेनामुद् । तृतीयादिषु पुल्लिङ्गवन् । पौषम् । अपत्यादौ स्त्रीपुमाभ्या-
 मिति खत्र्, पुम्ब्व पुम्ता, नत्र्खत्रौ त्वतलोर्न बाधकाविति स्त्यायता
 युक्तम् । पुत्रदिति निपातनाद्वृत्तिः, स्त्री च पुमाख्व स्त्रीपुमौ ।
 अवनुरादावितरेतरयोगे द्वन्द्वे ऽजन्तो निपातितः, तत्पुरुषे तु स्त्रियाः
 पुमान् स्त्रीपुमानित्येव । न स्त्रीपुमौ नपुमकः, नभाङिन्यादौ निपात-
 नावज्ञः प्रकृतिभावः । स्त्रीपुंसशब्दस्य च पुमकादेशः ॥ २१ ॥

विधानाभावाद्गोप्रमून इति समासोपि भवति । ईशांतावयमर्थः प्रपञ्चितः । पुत्रमूः प्रमूः । सत्सूद्रिषेन्यादिना कर्मण्युपमर्गेऽपि उपपदे क्तिप्, तत्र यद्यपि सुपीति चानुवर्त्तते तथापि तस्याकर्मकैरेव सम्बन्ध इति एहे सूत इत्यत्र क्तिव न भवति, अयं च क्तिवविधिर्द्रिषा साहचर्यात् लुग्विकरणत्वे ण्यस्यैव भवति न तु षूड् प्राणिप्रमवइति दैवादिकस्य, नापि पू प्रेरणे इति तौदादिकस्य । सूत्वा । 'श्युः कृती' तीषिनपेधः । सूतः, सूतवानित्यत्रानेन वा'यस्य विभाषे'ति वा इडभावः । सूतका । सूतिका । स्वार्थे कः । 'केण' इति टापो ह्रस्वः । वा सूतकापुत्रकावृन्दारक ग'मिन्यन् इत्वविकल्पः । प्रमवः, 'चदोरप्' घञोपवादः । सुपूतिः । निःपूतिः । विपूतिः । दुःपूतिः 'सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमा' इति स्वादिभ्यः परस्य सुप्यदेः सकारस्य पत्वम् । सुपीति कृतसप्रसारणस्य स्वर्णेर्निर्देशः । इतरत्र स्वरूपग्रहणमिति अति'सूत इत्यत्र 'सात्पदादयो' रिति पत्वनिषेध एव भवति । सूरि । षूडः क्लिरिति क्लि । स्त्रीविवक्षायां कृदिकाराद्वा डीपित्याच्चेय । सूरः । सुसूधाद्यधिभ्यः क्वचित् कृन्, सूनुः, सुवः क्तिदिति नुप्रत्ययः, क्तित्वाच्च गुणः, अनुग्विकरणत्वाद्वा व्युत्पाद्यः, पुमान्, अस्माद्वातोर्दुमसुन्प्रत्ययः, सकारस्य पकारः । डकारष्टिलोपार्थः । अकार उच्चारणार्थः, अन्त्य उकार उगित्कार्यार्थः, नकारः स्वरार्थः । 'पुनोऽमुडि'ति सर्वनामस्यानेऽमुडादेशो डित्वादन्त्यस्य, उकार उच्चारणार्थः । प्रत्ययस्योदित्वात् सर्वनामस्याने नुम् मिट्टः, 'सान्तमहत' सयोगस्ये'ति सयोगान्त्यस्योत्पत्तौ सर्वनामस्याने दीर्घः, सवुट्टौ तु अमुडि नुमि सयोगान्त्यलोपे हे पुमनिति, पुमामावित्यादौ 'नश्चापदान्तस्य झली'त्यनुस्वारः । अज्ञादावमर्वनामस्याने पुम इत्यादि । हलादौ तु पूर्वस्य षट्त्वात्मयोगान्त्यलोपे मो नुच्चारितस्य च 'वापदान्तस्ये'ति ययि वा परमवर्णं पुभ्या पुम्भ्यामित्यादि । पुस्वित्यत्र 'नुम् विसर्जनीयशर्षवायेपी'ति पत्व न भवति । नुमो यानुस्वारस्तस्यैव नुम्यहणेन तत्र ग्रहणात् । अयममुडादेशोङ्गाधिकारविहितत्वात्तदन्तस्यापि भवतीति

परमपुमानित्यादावपि भवति । ब्रह्म, पुमानो यन्यामिति बहुव्रीहौ
 बहुपुमीत्यत्र अन्तर्वर्तिनः सर्वनामस्यानस्य लुक् लुप्तत्वात्प्रत्ययलस-
 णाभावात् सर्वनामस्य नपरिनेत्यमुद् न भवति । हुममुत्प्रत्ययस्ये दि-
 त्वात् ङीप् । उरप्रभृतिषु पुमानित्येकवचनान्तपाठानेनैव समस-
 नित्य कप् । अन्यत्र 'शेषादिभाषेति विकल्प इतीह कवभावः,
 यदा कप् तदा प्रातिपदिकस्य कवन्तत्वेनोपि दन्तत्वाभावादाव् भवति ।
 बहुपुम्केत्यत्र सकारस्य सयोगान्नलोपे नकारस्य मपुकानां स इति सः,
 'पुमः खय्यम्पर' इति स्त्वापवादः सकार । अत्र नुनामिक, पूर्वस्य तु
 वेत्युकारस्य वानुनामिकादेशः । नन्वत्रयहणस्य हणा मह मनियोगप्रति-
 पत्यर्थत्वात्कथमत्रानुनामिक, नैष दोषः । रुक्कण्ये यदिधीयते तदुपल-
 क्षणार्थत्वादत्रयहणस्य, यदा नानुनामिकस्तदा 'ऽनुनामिकात्परोनुस्वारः'
 इत्युकारान्परोनुस्वारः, अत्रान्यशब्दस्याध्याहारोऽनुनामिकादन्यो वर्ण
 स्ततः परोऽनुस्वार इति सूत्रार्थः । एव नपुनकेत्यन्तर्वर्तिनः सर्वनामस्यानस्य
 लुप्तत्वादमुद् न भवति, बहुपुमन् नगरमिति, सकारस्य सयोगान्नलोपः ।
 बहुपुमी इत्यत्रान्तर्वर्तिनो लुप्ता विभक्तिमाश्रित्य प्रत्ययलक्षणेन तदन्त-
 र्वेन पदत्वात्सकारस्य सयोगान्नलोपे न शङ्क्यः, उत्तरपदत्वे चापदा-
 दिविधावित्युत्तरखण्डस्य प्रत्ययलक्षणेन पदत्वनिर्देशात् । यद्वात्र भ^१-
 सञ्ज्ञया पदमज्ञावाधे नैव मलोपप्रसङ्गः । बहुपुमासीत्यत्र शेः सर्वनामस्या-
 नत्वेनामुद् । तृतीयादिषु पुल्लिङ्गवत् । पौखम् । अपत्यादौ स्त्रीपुंसाभ्या-
 मिति सूत्रं, पुम्व् पुंस्ता, नञ्खञौ त्वतलोर्न बाधकाविनि स्त्यायता
 युक्तम् । पुत्रादिति निपातनादुक्तिः, स्त्री च पुमाश्च स्त्रीपुमौ ।
 अवनुरादावितरेतरभोगे द्वन्द्वे ऽजन्तो निपातिनः, तत्पुरुषे तु स्त्रिया-
 पुमान् स्त्रीपुमानित्येव । न स्त्रीपुमौ नपुंसकः, नभाडित्यादौ निपात-
 नावज्ञः प्रकृतिभावः । स्त्रीपुमशब्दस्य च पुमकादेशः ॥ २१ ॥

१ भसञ्ज्ञया पदमज्ञाप बाधादिति ४ पु भसञ्ज्ञया पठसञ्ज्ञया बाधनादिति
 २ पुं पा ।

शीङ् स्वप्ने ॥ शेते । शयाने । शेरने, शेपे, शेध्वे । शये, शेवहे । शीङ्ः सार्वधातुक इति गुणः, 'शीङो रुडि'ति भादेशस्याच्छब्दस्य रुट् अस्य परादित्वादिगन्तत्त्वमविहितमिति शीङ्ः सार्वधातुक इति गुणः सिद्धः,^१ शिश्ये, शिष्याने, शिष्यपे । शिष्येडु । शिष्यध्वे । शिष्ये, शिष्यवहे । एरनेकाच इति यणादेशः । अत्र यट् कथ्य तदीर गताविचित्रोक्तम् । ध्वमि 'विभाषेठ' । शयिता, शयियते । शेताम् । शयाताम् । शेरेताम् । शेव, शेध्वम् । शये । शयावहे । अशेत । अशयाताम् । अशेरत, अशेयाः । अशयि । अशेवहि । शयीत । शयीयाः । शयीय । आशिषि शयिपीठ । शयिपीठाः शयिपीडम् । शयिपीध्वम् । शयिपीय । अशयिष्ट, अशयिष्ठाः । अशयिध्वम् अशयिडम् । अशयिषि । शिशयिषते, शाशय्यते, 'अयडिङ्ङिती'ति शीङो यकारादौ ङित्ययङ्, स च ङित्वादन्यस्य, परत्वादस्मिन् कृते द्वित्वम् । शेशयीति, शेशेति । शेशीतः, शेशयति । शीङ् इति सानुबन्धनिर्देशाच्च गुणा नापि रुट्, व्यतिशेष्यतइति । पिटुचने तु 'सार्वधातुकार्हुधातुकयो'रिति गुणः । शेशीयते भवतेत्यत्र भावे लकारे यकि शीङ् इति सानुबन्धनिर्देशादयङ् न भवति । शाययति देवदत्तम्, अशीशयत् । अणावकर्मकादिति चित्तवत्कर्तृकत्वे नित्य परस्मैपदम् । अन्यदा तृभयम् । अकर्मकत्वोत्पयोज्यस्य कर्मत्व, शामोधिश्यते । अधिशीङ्स्यासामित्याधारस्य कर्मत्वात्कर्मणि लादयो भवन्ति, यक्रादित्वादयडादेशः, भावे शय्यते देवदत्तेन कालभावाध्वगन्तव्यदेशेषु कर्मस्वासिवद्भावे कर्मणि च लादयो भवन्ति शय्यते मास देवदत्तेन शय्यते मासो देवदत्तेनेत्यादि । अस्योपादानं भवतावनुगन्तव्यं, स्यादिषु चित्त्वदिष्टि शायिष्यतइत्याद्युदाहार्यं, तदभावे कर्तृवदेव रूपं, कर्मकर्तर्यप्येवम् । लुङ्येकवचने 'ऽचः कर्मकर्तरी'ति चित्त्वमिचौ, सिचः पक्षे चित्त्वदिष्टेति त्रैरूपम् । अत्यशायि अत्यशायिष्ट अत्यशयिष्टेति । विशयी देशविशेषः 'विशयी देश' इति ग्रहादि.

१ गुणसिद्धिरिति २ । ३ । ४ । पु पा ।

२ तत्र लकार इति ३ । ४ । पु पा ।

पाठाणिनिः, वृद्धभावरच । खे शयः खशयः । 'अधिकरणे शेते -
रित्यच् । 'शयवानवातिष्वकाला दिव्यकालवाचिनः पूर्वपदान्तरात्तस्या
वाऽलुक् कालवाचित्वे तु पूर्वाहणाय इति लुगेव । पार्श्वोभ्यां शेन-
इति पार्श्वशयः । उरसां शेते उरःशयः, पार्श्वोद्विगुणमन्त्रमनित्यच्,
उत्तानशेने उत्तानशयः । एवम् अशयः । उत्तानादितु कर्तृष्वित्यच् ।
दिग्धेन सह शेते इति दिग्धमहशयः, दिग्धमहपूर्वञ्चित्यच् । दिग्धमह-
शब्दयोर्मयूराव्यमकादित्वादम्मादेव निर्देशाद्वा तत्पुनः । तेन शयशब्द-
स्योपपदममामः । मन्त्रमनिर्देशभावेऽप्युपपदाधिकारे विधानात्सुपीत्य-
न्वर्तनद्वा उपपदत्वं दिग्धमहशब्दस्याविरुद्धम् । न्यामेऽप्युपपदममाम
इति । गिरिश । 'गिरौ इष्टवन्तमीति डे टिलोप', सज्ञागच्छत्वाद्वापा-
यामप्यय प्रयुज्यते तुरापाडिति चेत्यात्रेयः । हरदनस्तु लोमादिनक्षत्रेण
शप्तत्येन भाषायामपि भवति गिरिश इति, भाष्येऽप्येतद्वचन प्रत्या-
ख्याततद्वितो वेति । शयालुः । आलुचि शीडो ग्रहणमित्यालुच् । शयितः ।
मतिबुद्धीत्यत्र चकारस्यानुक्तमनुच्ययात्त्वादुक्तमाने क्तः, अनिशयितो
गुरु शिष्यः अनिशयितो गुरुः शिष्येण । गत्यर्थोऽकर्मकेति कर्तृकर्मणोः
क्त । उपसर्गशान्तरुमकेय, तदर्थ एव हि पाठः, सेठो निष्ठाया निष्ठा-
शीडिति कित्त्वनिषेधाद्गुणः । सानुबन्धकनिर्देशाद्वङ्लुकि कित्त्वमेवेति
शेशियत इत्येनेकाच इति यणैव भवति । तत्र विशायस्तत्रोपशायः,
शयन तत्र प्राप्तावसरमित्यर्थः, 'व्यपयोः शेतेः पर्याय' इति घञ् ।
पर्यायादन्यत्रोपशय इत्यच् । पूर्वमूत्रादनुपात्ययइत्यनुवृत्त्यैव पर्या-
यत्वे सिद्धे पुन पर्यायग्रहणा 'द्विभिविधौ भावइतुणि नीनुण परमपि
बाधित्वा ऽभिधिविधावपि घञेव भवति उपशायो वर्ततइति । अभिवि-
धिरभिव्याप्तिः, पर्यायशयन स वर्तितकमित्यर्थः । शेते ऽस्मिन्नङ्गुलय इति
शयः पुमि सज्ञायामिति घः । शय्या । सज्ञायां समजनिर्देव्यादिना

१ तुरापाडितिवत् इति ३ । पु तुरापाडिवेति ४ । पु. पा. ।

२ इदमिति २ । ४ । पु. पा. ।

३ पर्यायावसरमिति ३ । पु उपरि लिखित पाठः ।

ऽधिकरणे स्त्रिया क्यप् । शयनीयम् । बाहुलकादधिकरणे ऽनीयर् । सुख
 शयन पृच्छति सौखशायनिकः, 'पृच्छते' सुखातादिभ्य' इति ठक् ।
 अतिशये भवमित्यातिशायिकम् । अध्यात्मादित्वाट्ठञ्, अनुशतिकादि-
 त्वादुभयोरुदाहरणयोरुभयपदवृद्धिः । व्याप्तमातिशयिकेन रसेनेति
 माघप्रयोगश्चिन्त्यः । अतिशायन, ल्युट्, अतिशायनइति निपातनाद्रीघः ।
 अबाधकान्यपि निपातनानीत्यतिशयनमित्यपि भवति । सशयमापन्न-
 साशयिकोर्थः । 'सशयमापन्न' इति ठक्, अत्र यद्यपि कर्मवत् कर्तु-
 रपि सशयापन्नत्वमस्ति तथापि सशयादिति पञ्चम्या निर्देष्टव्ये प्रक-
 रणमिदृया अपि द्वितीयायाः सशयमिति शब्देन पुनरुपादान कर्मणो-
 ऽत्र प्राधान्यव्यापनार्थमिति तत्रैवाय प्रत्ययः । पूज्यः प्रतीत्यः साश-
 यिकः सशयापन्नमानस इति वदन्निघण्टुकारस्तु सूत्र साधारण मन्यते,
 एतदत्रेयन्यामकारपदमञ्जरीकारादयो न सहन्ते । शोभनः शयोस्याः
 सुशयिका । कपि ह्रस्वे प्रत्ययस्यात्कादितीत्वम्, उदीचामातः स्यानइति
 निषेधस्तु न भवति, यक्रपूर्वत्वे, धात्वन्तयकोः प्रतिषेध इति । शयुर-
 जगरः । भृमृशीत्युप्रत्ययः । शयानकः । स एव, आनकन् शीङ्भिय
 इत्यानकन् । शेवा निङ्गाकृतिः, शेवायद्धृतिवचन्तो निपात्यते । शेव
 सुखम्, इण्शीभ्यां वचिति वन् । शीधुः । शील शैवाल, शैवल,
 शीङो धुगलवालऽवलज इति धुगलवालऽवलजः प्रत्ययाः । अपरे शीङः
 स्युमिति पठन्तः प्रत्यय द्वितीयादि मन्यन्ते । शीङो धुगित्येव सूत्रम् ।
 अन्ये तूहिताः सह पठन्ते । यदाहुरात्रेयादयः । बाहुलकादालज्वल-
 जाविति । शीलशब्दः शीलतेर्वा । शेवलमिति बाहुलकादालज् । शेष,
 शेषसी, वृज्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुट् चेत्यसुन् पुडागमश्च यथासख्य
 रूपे स्वाङ्गे च । अकारान्तस्तु शेषशब्दः पप्रत्यये । उक्तं च कैयटपदमञ्ज-
 र्यारकारान्तोपि शेषशब्दोस्ति । यथा च वार्तिकमपि पठ्यते शुनः शेष-
 पुच्छलाङ्गुनेष्विति । शिखा । शीङो निद्ध्रस्वश्चेति खप्रत्ययो निद्ध्र

स्वस्व धातोः, शिवावल्लो मयूरः । 'दन्तशिवात्मनाया मिनि मत्व-
र्थायो वलच्' । शिवा 'व्राज्योद्विभ्यश्चे नीति । शिवावल्ल नगर, 'शिवाया
वलजि'ति चानुर्यिको वलच् गिनिः तत्रियविशेषः, निप्रत्ययो ह्रस्व
इति कार्तिकैजप इत्यत्र न्यासे व्युत्पादितम् ॥ २२ ॥ आत्मनेभाषा-
वुदात्तो ॥

यु मिश्रणे ॥ एतदादयस्तौल्यन्ता उदात्ता उदानेन । यैति
युतः, युवन्ति । यैषि । यैमि । 'उतो वृद्धिर्लुकि हनी'ति हलादौ पिनि
मार्वाधातुके वृद्धिः । अजादौ कृडित्युवङ् युयाव । युयुवत् । युय-
विथ । युयुव्यु । युयुव । युयाव । युयव । युयुविथ । 'श्युकः क्रिती'
तीगितपेध क्रादिनियमेन बाध्यतइत्युक् यविता । यविथ्यति । यौतु ।
युतात् । युताम्, युवन्तु । युहि । हेरपित्त्वात्र गुणो नापि वृद्धिः, यवानि ।
यवाव । आटि पित्त्वेयहलादिन्याव वृद्धिः । अयौत् । अयुताम् । अयु-
वन् । अयौ । अयवम् । युयात । युयात् । युयुः । युया । युयात । युयात्,
युया, युयाव । पिदृचनेषु यामुष्टो द्वित्वेन पिञ्चडिव भवतीति पित्त्वा-
भावाच्च वृद्धिर्नोपि गुणः । आशिषि युयात् । युयान्ताम् । अङ्गत्सावधा-
तुकर्योरिति दीर्घः अयावीत् । अयाविष्टम् । अयावी । अयाविष्टम् मिचि
वृद्धिः । यियविपति । मनीवन्तवृत्त्यादिना मनो वेदागम । गुणवदेजैः ।
अनयोद्विर्वचने चीति स्यानिडत्त्वद्गुणशब्दो द्विरुच्यते । ओः पुण्यजीनी-
त्वम् । इङ्भावे युयुपति । 'इको भलि'ति सनः कित्वाच्च गुणः । अङ्गनेति
दीर्घः । योयूयते । योयूयति । योयोनि । उतो वृद्धिरित्यत्र नाभ्यस्तस्येत्य-
नुवृत्तेर्न वृद्धिः । यावयति । अयीयवत् । यौ कृतस्य स्यानिवत्त्वाद्गुण-
शब्दस्य द्विर्वचने ओः पुण्यजीनीन्त्वे दीर्घो लघेः रिति दीर्घः । कर्मणि ।
यूयते, यूयताम् । अयूयत । यूयेन यकि अङ्गन्मार्वाधातुकर्योरिति दीर्घः ।
स्यादिषु चिण्वदिष्टपते याविष्यते । अयाविषाताम् । याविषीष्ट, या-

१ प्रत्यये इति २ । पु पा ।

२ यडिनाविति २ । पु पा ।

३ अदेष्टाविति नास्ति २ । पु ।

४ वद्धावादिति २ पु पा ।

५ वद्धावादिति २ पु पा ।

६ भावति ३ । पु पा ।

विता । अन्यदा यविष्यते । अयविषानाम् । यविषीष्ट । यविषेत्यादि, लु-
 ड्लिङे, ध्वमि मृदुन्यविक्लपाज्जातूरूप्य, लुङ्येकवचने ऽ चः कर्मकर्तरीति
 पक्षे णिच् । तस्य च वा चिह्नदिट् । अयावि । अयाविष्ट । अयविष्टेति
 त्रैहृष्यम् । याव्यम् । आन्यूवपीत्यादिना एयन् । वृद्धौ धातोन्तन्निमि
 त्तस्यैवेत्यावादेणः । यव्यमिति युनातेर्यति । सानुबन्धकत्वादिह नाय
 गृह्यतइति न्यासे, योत्रम्, दासीत्यादिना वृत् । सयावः । 'समि एदुदुव'
 इति घञ् । समोऽन्यत्र प्रयवः । 'चदोरप्' । उद्यावः । उदिश्रयति यौ-
 तीति घञ् । यौतीति निर्देशाद् युनातेरुदाव इति । उद्यावो भव्यवि-
 शेषः । अयायन्यायोद्यावेति सज्ञाया करणाधिकरणयोर्यञि निपात्यते ।
 यूतिः । ऊतियूनीति क्तिनि दीर्घत्वमन्तोदानत्व च निपात्यते । गृह्युति
 रित्येतत्तु युनाते । यूतिरिति निपातन यौतेरेवेति वृत्तिन्यासयोः । यौत्यत्र
 रसादिकमिति यव' । पुंसि सज्ञायामिति घ', यवनः । नद्यादित्वा-
 हत्युः । दुष्टो यवो यवानी । यवनाज्ञा लिपिर्यवनानी । इन्द्रवरुणेत्या-
 दिना डीगानुक्ता । तत्र यवाद्गोपे । यवनाल्लियामित्युक्तम् । यवनी-
 मुखपद्मानामिति प्रयोगः पुयोगलक्षणे डीपि । यवाना भवन क्षेत्र यव्य,
 यवक्य, 'यवयवकपटिकाद्य' इति यत् । यव एव यवकः । यवस्य
 विकारो यावः । स एव यावकः । 'यावादिभ्यः क्वि'ति कन् । रज्ज
 नद्रव्ये यावकमिति सज्ञाया एवलि' । यवमान् । मादुपधायाश्चेति
 वत्वमयवादिभ्य इति निषेधान्न भवति । युत्वा युतः । 'श्युक-
 क्तिती'तीणिनपेधः । युतमित्यत्र 'यस्य विभाषे'ति वा नेट् । यूपः ।
 कुयुभ्या चेति पप्रत्ययो दीर्घश्च । यूका । अजियुधूनीभ्यो
 दीर्घश्चेति कनि दीर्घः, यवसम् । ऋतन्यज्जीत्यादिना सप्रत्यय, यवासः ।
 'अन्येषामपि दृश्यत' इति दीर्घः । युवा । कनिन्युवपीत्यादिना कनिन् ।
 भसज्ञायां 'श्वयुवमघेनामतद्धित' इति सम्प्रसारणे यूनइत्यादि, 'न
 सम्प्रसारणे सम्प्रसारणमिति सम्प्रसारणनिषेधः पूर्वस्य । यूनो भा-
 वकर्मणी यौवन यौवनिका, 'हायनान्तयुवादिभ्योण्' 'दृन्धुमनो-

जादिभ्यश्चेत्यण्वुत्र स्वभावदुर्ज्ञ स्त्रिया, स्वयुवेति सम्प्रसारण-
मनवृत्तिवृत्तिनिषेधाच्च भवति । 'नमस्तद्वृत्त' इति टिनेषोपि न
भवति, 'अत्' प्रकृत्याने राजन्यननुययुवात्' इति चाल्वुत्रो प्रकृति-
भावात् । यद्विष्ट' यदीयत्' मूलद्वारेत्यादिनेष्टेयमुनोपेक्षादिपरनोपे
पूर्वस्य च गुणः । कनिष्ठ' कर्त्तव्यात्, 'युवात्ययो, कनन्यनरस्या मिति
वा कनादेशे 'प्रकृत्यैकाजि नि प्रकृतिभावः । यवप्रति । कनप्रति ।
णाविष्टव' इति यणादिनेपगुणौ, युवात्ययोरिति कनादेशश्च पक्षे,
भायकारप्रयोगद्वयभावः । स्त्रिया युनस्ति रिति निप्रत्यये युवतिः,
सर्वेणो ऽन्वितादिति वा ङीष् युवतीति । युवती' पत्येत्यादौ
लिङ्गविशिष्टपरिभाषया श्वयुवेति सम्प्रसारण न भवति, श्वादीना
प्रसारणे नकारान्तग्रहणमनकारान्तप्रतिषेधार्थमित्युक्तत्वात् । निप्रत्यये
युनः पदत्वाच्चनोप । युवतीना समूहे यौवनम् 'भित्तादिभ्यो-
णि'त्यण् । युवत्या भावकर्मणी यौवन, यौवनिका, । लिङ्गविशिष्ट-
परिभाषया हाप्रत्तान्त्वत् मनोजादिन्वाद् वुत् च । भस्याडे तद्वृ-
त्त' इति पुवद्भावः सर्वत्र, भित्तादिषु युवतिशब्दस्य पाठसामर्थ्यस्य-
वद्भावो नेति वृत्तौ, सामर्थ्यं च यदि स्यात्पुवद्भावः भस्याडे तद्वृत्ते' पुव-
द्भावः सिद्धश्च प्रत्ययविधाविति प्रत्ययेभाविति पूर्वमेव पुवद्भावविधाना-
द्युवशब्दस्य च कनिनन्तत्वेनाद्युदात्तत्वात् 'तस्य समूह' इत्येवाणि सिद्धे
पुनः पाठो ऽनर्थक, पुवत्त्वाभावे तु युवतिशब्दस्य प्रत्ययस्वरणान्तो
दात्तत्वादनुदात्तादेशेरित्यजो बाधनार्थं पाठो युज्यते । यथा तु वार्तिक
तथा पुवद्भाव इत्ये । यदाह । भित्तादिषु युवतिशब्दानर्थक्यं पुवद्भावस्य
सिद्धत्वात्प्रत्ययविधाविति । युवत्विति, युवा त्वतिः, युवति त्वतिः ।
'युवा त्वनिपलिनत्वनिनज्जरीभि' रिति विशेषणममामः । लिङ्गविशिष्ट-
परिभाषया युवतिशब्दस्य ग्रहणं, तस्य पुवत्कर्मधारयेति पुवत्वम्, एवं युव-

१ वृत्तान्तःस्त्रीद्विप्र इति = पु. पा ।

२ इत्येकवृत्त्यधिकं वेति नास्ति = पु ।

३ अनर्थक इति = पु नास्ति ।

आनविष्टाः आनविष्टि । आनूयते । यङ्लुक्प्रत्ययान्तङ् भवति ।
आनूयते । दीर्घान्तोऽयं तुदादौ ॥ २५ ॥

टुत्तु शब्दे ॥ ज्ञौति ॥ चुत्ताव । क्षवितेत्यादि यौतिवत्, वित्तावः ।
'वौ क्षुश्रुव' इति घञ्, क्षवयुः । 'द्वितो ऽयुच्' । तुमा अतसी ।
अर्त्तिस्त्वित्यादिना मनिन् । बाहुलकाच्च गुण । क्षुरम् । कृज्ज-
इत्यादिना रन् ॥ २५ ॥

क्ष्ण तेजने ॥ क्ष्णौति । चुक्ष्णाव । चुक्ष्णवतुः, चुक्ष्णवुः, क्ष्णवि-
तित्यादि यौतिवत् । सक्ष्णते शस्त्र, सचुक्ष्णवे । सक्ष्णविता, सक्ष्णवि-
प्यते, सक्ष्णता, समक्ष्णत, सक्ष्णवीत । सक्ष्णविपीठ । समक्ष्णविष्ट,
सचुक्ष्णवतइति । 'समः क्ष्णव' इति तङ् ॥ २६ ॥

ष्णु प्रस्रवणे ॥ क्षौति । सुष्णाव । क्ष्विष्यति । क्षौतु । अक्षौत् ।
क्षुयात् । क्षूयात् । अक्ष्णावीत् । सुक्षूपति ॥ 'स्तौतिण्योरिवेति न पत्व,
सोष्णयते । सोष्णवीति । सोष्णोति । स्त्रावयति । असुष्णवत् । कर्मणि
क्षूयते । सुष्णवे, सुष्णपे, सुष्णध्वे । सुष्णवहे । क्षौता । क्षौतासे ।
क्षौप्यते । क्षूयताम् । अक्षूपत । क्षूयेत क्षौपीष्ट । अक्ष्णावि । अक्षोपानामित्या-
दि । 'सुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्त' इत्यात्मनेपदेन समानपदस्यस्य सुक्र-
मिभ्या परस्य बलादेराट्धातुकस्येतिनपेधः । प्रक्ष्वितेवाचरति प्रक्ष्वित्रीय-
तइत्यत्रात्मनेपदेन समानपदस्यत्वेपि निषेधात्प्रागेवान्तरङ्गत्वादिङागमः
प्रवर्त्ततइति पदमञ्जर्यादौ 'ज्यवस्यापितम् । अस्माभिरपि क्रामतावेव
प्रतिपादितम् । स्यादिपु पक्षे चिण्वदिटि स्त्राविष्यतइत्याद्युदाहार्यम् ।
कर्मकर्त्तरि तु 'न दुहसुनमा यक्चिणा'विति यक्चिणौ न भवतः ।
प्रक्षुते गौः स्वयमेव । प्रक्षुता गौः स्वयमेव । प्राक्षुत गौः स्वयमेव ।
प्रक्षुवीत गौः स्वयमेव । प्राक्षौष्ट गौः स्वयमेवेति । ननु कर्मवदित्यति-
देशेन प्राप्ते 'चिण्भावकर्मणो रिति चिणि न दुहसुनमामिति प्रतिषिद्धेपि
'अचः कर्मकर्त्तरी'ति वैकल्पिकश्चिण् पक्षे कस्मान्न भवति । न
चैवं मतिं सुग्रहणमनर्थकं स्यादिति वाच्यम् । तस्य यङ्निषेधार्थत्वेना-

पुपपत्तेः । नैष द्रोणः । अमवदित्यनिदेजेन नित्य प्रातस्य चिणः स
विकल्पः । अस्य तु न दुहसुनमामिनि विगोतिदेग एव निपिधने ।
तथा च वृत्तिः प्रातविभागेपमिनि । न चेभयत्रविभागादपत्तेन चिणः
प्रसङ्गः । आशीपमाणेषुमयत्रविभागात्वे यत् परत्वात् दुहसुनमामिति
प्रतिषेध एव भविष्यति । अत्रात्रेषां न दुहसुनमामिनि विषयद्वाव-
स्यापि निषेध इत्याह मृत्रवृत्तौ च यद्विगोतिरेव निषेध इति तस्या-
भिरायो मृयः । सुपा । सुवृत्तिरुत्पिभ्य क्त इति क्तः । युप्रभृतय
उदाता उदात्तेनः । तैत्तिस्वनुदात्तः ॥ २८ ॥

कर्णञ् आच्छादने ॥ उदात्त उभयनोभायः । कर्णने कर्णवाने ।
कर्णपे । कर्णवे । कर्णवहे । कर्णुवे । कर्णुविपे । कर्णुविध्वे, कर्णु-
विद्वे । कर्णुवे । कर्णुविबहे । अस्ये-गान्तिद्विनि लिटः कित्त्वात्
गुणः । 'अजादे'र्द्वितीयस्येति तुगञ्जस्य द्विर्वचनम् रेफस्य तु न द्वा इति
न भवति । नोपधाय णत्व तु साहितिक, तच्च द्विर्वचने ऽसिद्धमिति
कृते द्विर्वचने पूर्वस्य णत्व परस्य तु व्यवधानात् भवति । पूर्वत्रामिद्वी-
यमद्विर्वचनइत्येतद् भौमाभ्यामस्येति लिङ्गात् प्रवर्त्तनइति नौनाबुक्तम् ।
मूर्चिपूर्वात्पुत्र हरदनेनप्ययमर्थः स्मारितः । कर्णोतिरेपोपमथ्यान-
मिन्याम्प्रतिषेध । कर्णविता । कर्णविता । कर्णविष्यते । कर्ण-
विष्यते । 'विभागे णो रिनीडादे' प्रत्ययस्य पत्ते ङित्त्वात् गुणः ।
कर्णनाम् । कर्ण्व । कर्ण्वै । आठि गुणावौ । और्णुत । और्णुयाः ।
और्णुवि । और्णुवहि । कर्णुवीत । कर्णुवीयाताम् । कर्णुवीया, कर्णु
वीय । कर्णुविबहि । आशिषि । कर्णुविपीठ कर्णुविपीठम् । कर्णु
विपीध्वम् । कर्णुविपीय, ङित्त्वपत्ते उवङ् । अन्यदा तु^१ गुणः, कर्णवि-
पीठेत्यादि और्णुविष्ट । और्णुविष्टाः और्णुविषि । ङित्त्वपत्ते उवङु-
दाहार्यः । और्णुविष्टेत्यादि । कर्णैःनि । कर्णाति । कर्णुनः । कर्णुवन्ति ।

१ नत्रे इति २ पु पा । तस्यापीहेति ३ । ४ । पु- अधिकम् ।

२ स्मारित इति ३ । ४-पु पा । ३ तु गुण इति ३-४-पु- नास्ति ।

४ और्णुविष्टा और्णुविषि इति ३ पु पा ।

ऊर्णोपि, ऊर्णोपि ऊर्णोमि । ऊर्णोमि । 'ऊर्णोतेर्विभाषेति' हलादौ
 पिति सार्वधानुके पत्ते वृद्धिः, अन्यदा गुणः । ऊर्णुनाव । ऊर्णुनवतुः ।
 ऊर्णुनविष्य । ऊर्णुनविष्य । ऊर्णुनविष्य । ऊर्णुनविष्य 'विभाषोर्णो'रिति
 डित्त्वविकल्पनात् पत्ते उवङ् । अन्यदा गुणः । अन्यत्रा 'सयोगाल्लिट्
 कि'दिति नित्य कित्त्वादुवङ् । ऊर्णुविता । ऊर्णुविता । ऊर्णुवि-
 ष्यति, उर्णुविष्यति । ऊर्णोनु, ऊर्णोतु । ऊर्णोत् । ऊर्णुताम् ।
 ऊर्णोः । ऊर्णवम् । ऊर्णोतेरित्यधिकृत्य 'गुणोपृक्त'इति वृद्धपवादे
 गुण । ऊर्णुयात् । ऊर्णुयाः । ऊर्णुयाम्, डित्त्वं पित् भवतीति पित्त्वा-
 भावात् वृद्धिर्नापि गुणः । आशिपि ऊर्णुयादित्यादि, ऊर्णोवीत् ।
 ऊर्णोवीः । ऊर्णोविषम् 'ऊर्णोतेर्विभाषे'तीडादौ परस्मैपदपरे सिचि
 वा वृद्धिः, अन्यदा गुणो ऽडित्त्वपत्ते, डित्त्वपत्ते तूवङ् । ऊर्णोवीदौर्णुवीदि-
 त्यादि । ऊर्णुनूयति । ऊर्णुनविषति । ऊर्णुनविषति । सनीवन्तौती-
 डभावपत्ते 'इको भलिति'ति कित्त्वम्, इटि तु पूर्ववद्वा डित्त्वम्,
 ऊर्णोनुयते । सूचिमूत्रीत्यादिना यङ् । ऊर्णोनौति । 'उतो वृद्धिर्लुकि
 हली'ति वृद्धिः, नाभ्यस्तस्येति निषेधो ऽभ्यस्तस्येहानङ्गत्वात् भवति ।
 'ऊर्णोतेर्विभाषे'ति वृद्धिविकल्पस्तु शिष्या निर्देशाच्चाशङ्क्य । अत एव
 'गुणोपृक्त'इति गुणश्चापृक्ते, ऊर्णोनुवन्तीत्यत्रा'दभ्यस्तादि'त्यद्वावो न
 भवति, अभ्यस्तस्यानङ्गत्वात् । पारायणिकास्त्वङ्गस्येत्यनाश्रित्याद्वाव-
 मिच्छन्ति । अङ्गाधिकारः कथं बाध्येतेति तच्चिन्त्यम् । लुङि ऊर्णो-
 तेरिति शिष्या निर्देशाद्वृद्धिविकल्पो नेति नित्या सिचिवृद्धिर्भवति । ऊर्णो-
 नावीदित्यादि । 'विभाषोर्णो'रिति डित्त्वपत्ते उवङ् । ऊर्णोनुवीदि-
 त्यादि । ऊर्णोवयति । ऊर्णुनवत् । अत्र णौ कृतं स्यानिवदिति
 नुशब्दस्य द्विवचने उपधाङ्गत्वत्वे 'दीर्घा लघो'रित्यभ्यासस्य दीर्घा
 न भवति, चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योभ्याम् इति सूत्रार्थव्यवस्थाप-
 नात्, अत्र त्वङ्गावयवस्याभ्यासो न त्वङ्गस्य । ऊर्णुत्वा । श्युकः

१ वृद्धभाषः । अन्यत्राजादावुवङ्, इति २ पुस्तके उपरिलिखितः पाठः ।

२ न भवति यङ्लुकि २ पु उपरि लिखितः पाठः ।

क्रिती न्यनिट्त्वम्. अत्र यद्व्येकं च इत्यनुवर्तते तथापि न दोषोऽप्यनुवद्भावात् । उक्तं च ॥

वाच्यं कर्णानुवद्भावा यद् रमिट्ठिः प्रयोजनम् ।

आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचचिदुपयहात् ॥

इति । ऊरुः कर्णानुवद्भावा इत्युपपत्त्ये नुगच्छनाय । उरुः ।

महति ह्रस्वश्चेति ह्रस्वाच्च धातोः । रम्भेवोरु यस्याः सा रम्भेः । 'ऊरुः नरपदादौपम्य इत्युद्गम्ययः । सहिनोरुः । शफोरुः, वामोरुः । लज्जोरुः, 'महितमरुनज्जगवामादेरु' इत्युर्वन्ताद्गुह्रीहेरु इ प्रत्ययः, शफशब्दः उहितपर्यायः, सहिनोरुः । हितेन महिन महिन, सहोरुः । महशब्दस्य हितवचन । 'महितमहाभ्या च युङ् । अतिशयेनोर्व्वगिष्टः । वरीयान् । उरोर्भावकर्मणी वरिमा, पृथ्वादित्वादिमनिच्, प्रियस्थिरित्यादिना वरादेशः । उरुमाचटे वारयती यच्च णविष्टवदिति वरादेशे वृद्धिः । टिनोपस्तु 'प्रकृत्यैकाजि ति प्रकृतिभावान्न भवति । कर्णो । कर्णानेर्दे इति इप्रत्ययः । कर्णायुः । 'कर्णया युसि'ति मत्वर्थोऽप्युम्, सित्वा न्मिति चेति पदन्वाद्गन्वाभावाद्यस्येति लोपो न भवति । कर्णो नाभौ यस्य स कर्णनाभः । अच्प्रत्ययन्ववेत्यत्राजिति योगविभागात्समासान्तः । इमापोः सत्राच्छन्दसोरिति ह्रस्वः ॥ २८ ॥

द्वु अभिगमने ॥ अनुदात्त उदानेत् । द्यौति, दुद्याव । दुद्युवतुः । दुद्युविथ । दुद्योथ । दुद्युव । दुद्याव । दुद्युव, दुद्युविव, क्वादि-नियमादिट् । थलि भारद्वाजनियमादिकल्पः । द्यौता । द्योष्यति । द्यौतु । द्युतात् । द्युहि, द्यवानि । अद्यौत् । अद्यताम् । अद्यौः । अद्यवम् । द्युयात् । द्युयाताम् । द्युयाः । द्युयाम् । आशिषि द्युयादित्यादि, अद्यौषीत् । अद्यौष्टाम् । अद्यौषीः । अद्योषम् । दुद्युपति । द्योद्युयते । द्योद्योति । द्योद्यवति । द्यावयति । अद्युद्यवत् । द्युत्वा । द्युतः । के चिदस्य सेट्त्वमिच्छन्तीति धातुपरायणे । तत् 'उता च रसुवौ तुवन्तयोर्लोतिमथो युगुल्लुव' इत्युकारान्तसेट्परिगणने पाठभावादित्छामात्रम् ॥ २९ ॥

पु प्रसवैश्वर्ययोः ॥ अनुदात्त उदात्तेत् ॥ प्रसवोऽभ्यनुज्ञानमि-
ति । उँमिति ब्रह्मा प्रसौति । सुपाव । सोतेत्यादि द्युवत् असौषी-
दित्यत्र स्तुमुधूञ्भ्य इतीद्विकृत्यो न भवति यतस्तत्राभ्यतो जितोः
स्तुञ्धूञोः साहचर्यात् जितः सुनोतेरेव ग्रहणं न पुनरस्याजितो लुगि-
करणस्यापि । सुपवी प्रसवशीला पचाद्वाचि सुपामादित्वात्पत्व गौरा-
दित्वान्डीप् । धात्वन्तराद्वा ॥ ३० ॥

कु शब्दे ॥ अयमप्यनुदात्त उदात्तेतः । क्रौति । चुकाव । चुक-
विथ । चुकोथ । चुकुविथ । क्रौतेत्यादि पूर्ववत् । चोक्रयते । चोक्रौति ।
चोक्रवीतीत्यत्र 'न क्वतेर्यङी'त्यभ्यसस्य कुत्वनिषेधः शपा निर्देशाच्च
भवति । क्विः । 'अच इ रितिप्रत्ययः । क्वेः कर्म काव्य, ब्राह्मणा-
दिषु दर्शनात्पञ्च । अयमेते शब्दे क्वते इति गत शपि । अयमनिट् चेति
रौतेरनन्तरं नोक्तः ॥ ३१ ॥

ष्टुञ् स्तुतौ ॥ अनुदात्त उभयतोभाषः । स्तुते । स्तुवाते स्तुवते ।
स्तुपे । स्तुध्वे, स्तुवे स्तुवहे । तुष्टुवे । तुष्टुवाते, तुष्टुविरे, तुष्टुपे । तुष्टुध्वे ।
तुष्टुवहे । अभ्यासे खयः शेषः । ऋदिषु पाठादिङभावः । स्तोता ।
स्तोष्यते । स्तोताम् । स्तुवाताम् । स्तुत्र । स्तुध्वम् । स्तवै । अस्तुत ।
अस्तुवाताम्, अस्तुथाः, अस्तुवि, स्तुवीत । स्तुवीयाताम् । स्तुवीथा ।
स्तुवीय । आशिषि स्तोषीष्टेत्यादि । अस्तोष्ट, अस्तोपाताम् । अस्तो-
ष्ठाः । अस्तोद्वम् । अस्तोपि, हलादौ सार्वधातुके शञ्चिप्रये यदा तुह
स्तुशम्यम इतीट् तदा स्तुवीते । स्तुवीपे स्तुवीध्वे । स्तुवीवहे, स्तुवीताम् ।
स्तुवीष्व । स्तुवीध्वम्, अस्तुवीत । अस्तुवीथाः, अस्तुवीध्वम् । अस्तुवी-
वहीति । लिङि सलोपे ऽहलादित्वान्नेट् प्रसङ्गः । अन्यत्र सार्वधातुके
विकरणेन व्यवधानाच्चैवास्तीट् प्राप्तिः । स्तौति । स्तुवीति । स्तुतः,

१ विकल्प इति २ पु नास्ति ।

२ उभयतोऽङित्साहचर्याद् ङितः सुनोतेरेव ग्रहणं न पुनरस्याङित इति ३ ।

३ । पु- पाठ उपनभ्यते तत्र जित, जित इत्यस्य स्थाने ङित्, ङित इति अजित इत्यस्य
स्थाने ऽङित इति प्रमादपतितमिति प्रतिभाति ।

३ दित्वादिति- २ ए उपरिनिखित. पाठः । ४ एवेति नास्ति २ एन्त ।

स्तुवीतः, स्तौपि । स्तवीपि । स्तौमि । स्तवामि । स्तुव । स्तुवीवः
 तिप्मिपोरिटपत्ते गुणः । अन्यत्रा वृद्धिः । अन्यत्रेति सर्वत्रोवङ् तु-
 ष्ठाव । तुष्टोश्च तुष्टव । यत्नि मरुद्वाजनिर्मम बाधित्वा पुरन्तात्प्रतिपे-
 धारम्भनामर्थ्यान् ऋदिप्रतिपेधे गव भवति । स्तोना । स्तोयति ।
 स्तौतु । स्तवीतु । स्तुनान् । स्तुवीतान् । स्तुता, स्तुवीना स्तुवन्तु ।
 स्तुहि । स्तुवाहि । हेरपित्वात् डित्वात्र गुणो नापि वृद्धिः, स्तवानि ।
 अस्तौत् । अस्तवीत् । अस्तुनाम् । अस्तवीनाम् । अस्तुवन् । अस्तौः ।
 अस्तवी । अस्तवम् । अस्तुज । अस्तुवीव । स्तुयान् । स्तुवीयान् ।
 स्तुयाताम्, स्तुवीयाय स्तुयुः, स्तुवीयु, स्तुयाः । स्तुवीया । स्तुया-
 ताम् । स्तुवीयानाम् । स्तुयाम् । स्तुवीयाम् । अत्र यामुटि पिद्वचने-
 षूँतो वृद्धिर्लुकि हनीति वृद्धिर्ङञ्च पिबेति पित्वनिषेधात् भवति ।
 आशिप्रि स्तूयादित्यादि । अस्तावीत, अस्ताविष्टाम् । अस्तावीः ।
 अस्ताविषम् । 'स्तुमुधुत्रभ्यः परस्मैरदेति तीटि मित्रि वृद्धिः । अभि-
 ष्टौति । अभ्यष्टौत् । उपमर्गान्मुनोतीति प्राक्प्रतितादृश्यायेदी नि पन्थ
 पर्यस्तौत् । पर्यष्टौत् । 'मित्रादीना वाङ्मयायेदी नि परिनिविध्यः पर-
 स्याद्व्यवाये वा पत्वम् । अभिष्टौत् । 'क्विप् चेत्यन्तावुपपदे क्विप् ।
 अभिष्टौमः । ज्योतिष्टौम । आदुष्टौम । अनिन्विन्यादिना मन्त्रय-
 यान्तस्तोमशब्दः, एते यज्ञविशेषा । 'अनेस्तुत् स्तोममोमा.' ज्यो-
 तिरायुषः स्तोम'इति पत्व, परिस्तोम इत्यत्रोपमर्गादित्यादिना पत्वम्
 उणादयोऽप्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानीति न भवति । स्तुत्यः । एतिस्त्वि-
 त्यादिना ऋप् । क्यविति वर्त्तमाने पुन क्यव्यहरणादवश्यस्तुत्य इत्य
 त्राष्ट्यावग्यके एयत् बाधित्वा क्यवेव । मयूरव्यमकादित्वात्ममानः ।
 लुप्येदवग्यम क्यव्यवश्यमो मलोपः । यावस्तुत् । भ्राजभ'मेत्यादिना
 ताच्छीलिकः क्विप् । आयस्तुः । क्विप् वचीत्यादिना क्विप् दीर्घा । स्तोत्रम्, दा-
 म्नीत्यादिना घृन् । प्रस्तावः । प्रे दुस्तुश्रुव' इति घञ् । यज्ञकर्माण कृन्दोगा
 यत्र देशे समेत्य स्तुवन्ति स सस्तावः । यज्ञे समि स्तुव' इति घञ् ।

र्यम् । अपरे पुनराहुः । प्रपूर्वा वचिरशब्दसज्ञायामेव वर्तते प्रवाच्य इति । अन्यविशेषप्रतीतिस्तु प्रकृत्यादिनेत्यत्राप्यशब्दसज्ञायामित्येव कुत्वनिषेधस्य मिट्टस्वान्प्रवचिग्रहण नियमार्थम्, अशब्दसज्ञायामिति निषेधः सोपमर्गन्वे प्रपूर्वस्यैवेति उपसर्गान्तरयोगे विवाक्यमिति कुत्व भवतीति, एतच्च भाष्ये दूषित, यत इदं कुत्वमहर्विशेषेणैवेत्यते, अन्यत्र त्वविवाच्यमित्येव भवितव्यमिति, अहर्विशेषश्च द्वादशाहे अभि-
तो रात्रे मध्ये दशरात्रस्तस्य दशममहः । तथा चाश्वलायनेनास्मिन्नहनि केन चित्कस्य चिद्विवाच्यमविवाक्यमित्या"वत्तनइति । अहर्विशेषे कुत्व तु पृषोदरादित्वात्, न्यङ्कादित्वाद्वा द्रष्टव्य, वाक् । क्तिञ्चिप्रच्छीत्यादिना क्तावपम्यमारण दीर्घत्वं च । वाचा । आपं चैव हलन्तानामिति टाप् । वागस्यास्तीति वाग्मीति, 'वाचो गिमिनि'रिति गिमिनिः । पदत्वात्कुत्वे जश्न्व कुत्सिता वागस्यास्तीति वाचलो वाचाटः । 'आलजाटचौ बहुभाषिणी'त्यालजाटचौ, बहुभाषिग्रहण कुत्सितोपलक्ष-
णार्थम् । मन्दिष्यमानमन्दिष्यमानस्य वाक् वा वाचिकम् । 'वाचो व्याहृतार्थाया'मिति व्याहृतार्थत्वोपाधिकाद्वाचः स्वार्थं ठक्, वाचि-
कञ्च पूर्वमेव दूतमिति स्वामिनोकार्यमिति व्याहृतार्थं भवति, अपर आह, लेख्यादिना ऽवधारितेयं प्रवर्तमाना वाग्वाचिकमिति । तथा च माघे 'निर्द्वारितेयं लेख्येन खनूत्का खलु वाचिक'मिति । स्वार्थिकाः प्रकृ-
तितो लिङ्गवचनान्यनिवर्तन्तइति वाचिकशब्दस्य नपुंसकत्वम् । वाचो-
युक्तिः । 'वाग्दिकूपश्यद्गो युक्तिदण्डहरेष्वि'ति पश्या अनुक् । ब्राह्मणि-
ब्रूवा । 'कुत्सितानि कुत्सनै, रिति कर्मधारयः । चेलादयो वृत्तिविषये कुत्सनवचना इति प्रागेवोक्त, घरूपेति ह्रस्वः । अत्रैव सूत्रे ब्रुवेति निर्देशात्प-
चाव्यचि, 'विदुषिब्रुवा । विदुषीब्रुवा, श्रेयसिब्रुवा श्रेयसीब्रुवा । 'उगित-
श्चे'ति ह्रस्वविकल्पः । अनयोः एवद्गो वोपीष्यते । विदुद्ब्रुवा । श्रेयोब्रु-
वेति । उक्त्वा । उक्तम् । पौनरुक्तम् । नैरुक्तम् । अण्टगयनादिभ्य'इति

१ सतीदति अधिक २ पु ।

२ क्विविति २ । पु पा ।

३ चापीति २ । पु पा ।

४ वच्यादेशगुणयोरभाव इत्यधिक ३ । ४ पु ।

इतीयङ्, यकारस्य विधानसामर्थ्यात् हलादिशेषः । क्रादिनियमादिट् ।
 यलि भाट्टाजिनियमादिकल्पः । एवा । एव्यति, एतु, इतात्, । इताम् ।
 यन्तु । इहि, अय, नि । अवेहि मा किङ्कुरमित्यत्रानेजादित्वादेतेरेत्येधतीत्य-
 स्यात्प्रसङ्गादृष्टिरवद्या, न चाङ् श्लेषेणैकादित्वाद्दृष्टिः, यतस्तामन्तवद्वा-
 वेनौ माडोश्चेति पररूप बाधतइत्युक्तम् । ऐन् । ऐताम् । 'आटश्चे'-
 त्यान्तरत्स्यादैकारो वृद्धिः । आयन् । आन्तरङ्गत्वाल्लादेशे ऽन्तिभावे
 ऽचपरत्वादिणो यणि' त्यस्यामिदृशदन्त्यसिद्धत्वात्पश्चादजादित्वेना-
 डागमः । ऐहि, आयम् । अत्रापि परत्वाद्गुणायादेशयोराल्ताकारो वृद्धिः ।
 इयात् । इयाताम् । इयाः, इयाम् । इयाव । आशिपि ईयात्,
 ईयास्ताम् । अङ्गत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घः । समियात् समियास्ता-
 मित्यादौ 'एतेर्लिङी'त्युपसर्गात्परस्यैनेरावृद्धातुके लिङि ह्रस्वत्वम् ।
 अभीयात् प्रेयादित्यादावेकादेशस्य ह्रस्वो न भवति, उपसर्गाभा-
 वाद्, उपसर्गात्परस्यैतिदीर्घस्याभावात् । अन्तादिवद्भावश्च नास्त्यु-
 भयाश्रितत्वात् । आ ईयात्, एयात् । समेयादित्यत्रादिवद्भावादेकार-
 स्यैतिदीर्घत्वे^१ सम उपसर्गात्परत्वेष्यण इति तत्रानुवर्तनाच्च ह्रस्वः ।
 अग्रेह सामर्थ्यात्पूर्व, समीयादित्यादिप्रयोगस्तु ई गताविति भौवादि-
 कस्य । अगात् । अगाताम् । अगु । अगाः, अगाम् । अगाव । 'इणो
 गा लुङी'ति गादेशः । गातिस्येति सिचो लुक् 'आत'इति भेजुं^२ 'स्यस्यप-
 दान्तादि'ति पररूपत्वम् । अत्रात्रेयः । 'न माड्योग' इत्यत्र डित्तु माडुपा-
 तस्तेनाडित्यपि माशब्दे सार्वकालिको लुङनुमीयतइति मा वालि
 पथमन्वगा इति, मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समा
 इत्यादावागम उपपन्न इत्याह । तदयुक्तम् । 'माडि लुङि'ति सार्वका-
 लिकलुङो विधावपि डित्तो ग्रहणादडिति तस्याभावादनर्थकं स्यात्, तथा
 च तत्र वृत्तिः । मा भवतु मा भविष्यतीत्यडित्तो माशब्दस्य प्रयोग इति

१ सजादित्वेनेति २ । ४ पु० पा० ।

२ व्यपवर्गाभावाडिति २ । ४ पु० पा० ।

३ भावेनेति २ पु० पा० ।

४ सतीत्यधिक ३ पु० ।

४ एतेरिति नास्ति २ पु० ।

६ अडागम इति पा० २ । ४ । पु० ।

क्रिच 'न माङ्गो ग' इति मानुष्यकनिर्देशो भूतमामान्ये लुङि लङ् नृङोश्च
 मागञ्चयोगे ऽडागमार्थः स्यादिति नैव पूर्वस्य लुङः कल्पकः स्यात् ।
 अथ वा न धर्मममुवाधममयमवगान वालिगा इति माघप्रयोगो वृष्टि
 भागुरिन्लोपमवायोरुपमगणोरित्यवगच्छान्त लोपे द्रष्टव्यः । कर्मणि ।
 ईयते । अगायीत्यादि, स्याद्विषु वा चिण्वद्वावे आयिष्यते, आयिषा-
 ताम् । आयिषीष्ट । आयिना । अन्यदा एष्यते, अगामाताम् गर्षीष्ट,
 एता, लुङि चिण्वन्पते चिण्वद्विटा परेण बाधाद् न गादेशः, मङ्ग-
 तपरिभाषया च न पुनः प्रवर्तते इति केचित्, आत्रेयादयस्तु वधभा-
 वात्सीयुष्टि चिण्वद्वावे विप्रतिषेधेनेति वार्तिके तद्भाष्याने भाष्यादौ
 च वधभावमेवाधिकृत्य विप्रतिषेधक्यनाद्गादेशमाहुः । अगायिषातामि-
 त्यादि, स्याद्विषु चिण्वद्वावेन चिणि दृष्टो गादेशो न भवति चिणि
 दृष्टम्याङ्गाधिकारविहितस्यैव सोतिदेश इति, गादेशश्च केवल चिणि
 दृष्टो न त्वङ्गाधिकारविहितः । जिगमिषति, 'सनि चे न्यत्रोधना-
 र्थस्य गम्यादेशः । 'गमेरिट् परस्मैपदेष्वि त्यत्रास्यापि यह इति मनः
 मकारादिप्रत्ययव्यादिङ्गम । अथ चेडागम आत्मनेपदेन मम'नपद'स्य
 नेष्यते, अन्यत्र सर्वत्रेयनइति गच्छतावुक्तं तेन कृत्यामि' परस्मैपदनुक्रि-
 च भवति । जिगमिषिता, जिगमिषाचकार, जिगमिषत्वमिति । भावक-
 र्मणोलिङ्यामि चात्मनेपदाभावाद्विडेव । जिगमिषा वभूवे । जिगमिषा चक्रे
 देवदत्तेनेति । यत्तु पदशेषकारदर्शनं गम्युपलक्षणार्थं परस्मैपदग्रहणम्, तेन
 परस्मैपदेषु दृष्टस्य गमेरभावादात्मनेपदे गमिष्यतइतीद्ववर्तानि तदपि
 गच्छतावेव दूषितमितीडात्र न भवितव्यम् । तथा च 'अञ्जनगमां
 सती'त्यत्र कैपटपदमञ्जयार्गमेरिङादेशस्य ग्रहणमिति वार्तिके इङ्ग्रह-
 णमिणिकोरप्युपलक्षणं, तेनेणिगादेशस्यापि भवकर्मणोरात्मनेपदइङ्भावे
 जिभास्यतइति दीर्घा भवत्येवेति, अन्ये तु तत्रेङ्ग्रहणं नापलक्षणमिति
 दीर्घत्वं नेच्छन्ति, जिगम्यतइति । यदाय गमिरादेशो ऽकर्मकः सपूर्वश्च

१ यदि तु अप्रिणाहवर्षादवस्यदेरेव लेपो विज्ञायते तदा एषातेत्येव पाठः कल्पनीयः
 इदं न तत्तनुत्तरेषु तु अथ तेत्येव पाठो दृश्यते । मन्त्रानाद्यसमतश्चायमेव पाठः ।

२ सङ्गर्हतीति ३ पु पा ॥ ३ स्येति अधिक ३ । ४ पु ॥ ४ अर्पीति ४ पु पा ।

मज्जिगमिरनि वत्सो मात्रेति तदा 'पूर्ववत्सन' इत्यतिदेशेन समो गम्यच्छीत्यात्मनेपद स्यादिति न मन्तव्य, यतः प्रकृतौ वृष्टस्य सनन्ते-
तिदेशः, इह च सनमन्तरेण नैत्रास्य प्रयोगः, जगुस्तदित्यादौ
तु सनमन्तरेण प्रकृतेरप्रयोगेऽप्यत्रयवे कृत लिङ्ग सामर्थ्यात्समुदायस्य
विशेषकमित्यात्मनेपदमिति प्रागेवोक्तम् । गमयति । 'खौ गमिरवो-
धन' इति गमिरादेशः । अमन्तत्वान्मित्वे मिता इव्य' इति इव्यः, बोधने
तु नायमादेन इति प्रत्याययति प्रतीपिपतीति भवतः । अजादित्वाद्
द्वितीयस्यैकाच सनो द्विर्वचने अभ्यासस्येत्वे उभोरपि सकारयोरेण
उत्तरत्वेन पञ्च, प्रतीपिपन्तीत्यत्र सन्शपोरकारयोरेकादेशस्यान्तवद्भा-
वेन पूर्ववत्त्वेन ग्रहणे 'प्यदभ्यन्तादि'ति नादादेशः । अभ्यस्तादङ्गादुत्तरस्य
तद्विधानात् । अत्र हि इकारादिः समुदायो ऽङ्गमिकारवर्ज चाभ्यस्तम् ।
उपेयिवान् । 'उपेयिवाननाश्चाननूचानश्चे'ति लुङ्लङलिङ्विषयस्य
प्राप्तिकस्य लिटो नित्य क्रमुरिट् च निपात्यते । अत्र हि क्रादिनियमात्प्रा-
प्तादिटः पूर्वं नित्यत्वाद् द्विर्वचनमिति हरदत्तादयः । कृतेपीटि द्विर्व-
चनं प्राप्नोत्यकृतेपीति नित्यत्वम् । द्विर्वचने तु नेटः प्राप्तिः वस्वेकाजादिति
कृतद्विर्वचनानामेकाचामेव क्रादिनियमादिट् कसाविति नियमादस्य च
द्विर्वचनोत्तरकालमनेकाचत्वात् । न च सर्वर्णदीर्घत्वेनैकाचत्वं शङ्क्यम् ।
यत इद्वमिति स्थिते सर्वर्णदीर्घात्परत्वाद्विशेषविहितत्वाच्च 'दीर्घ इणः
कृती'त्यभ्यासस्य दीर्घेण भाव्य, तद्विधानसामर्थ्याच्च पुनः सर्वर्ण-
दीर्घा नैव प्रमज्जतीत्यनेन च निपातनेन क्रादिनियमात्प्राप्ते वस्वेका-
जादिति नियमादप्राप्त इट् प्रतिप्रसूयतइति । उपेयुप इत्यादौ भस-
जायां 'वसोः सम्प्रसारण'मिति सम्प्रसारणे वलाद्यभावादिण् न भवति ।
उपेयसर्गग्रहणमनन्त्र, तेन ईयिवान् समीयिवानित्याद्वपि भवतीति
वृत्तिकारादयः, पारायणिक्कास्तूपसर्गग्रहणस्य प्रयोजनमजन्तस्यान्यस्यो-
पसर्गस्य निवृत्तिरित्याहुः । इत्यः । उपेत्यः । एतिस्त्वित्यादिना क्यपि

१ सामर्थ्यादिति नास्ति २ । ४ पु ।

२ द्विर्वचनमिति ३ पु । नास्ति ।

३ वसो सम्प्रसारणमिति नास्ति ३ । ४ । पु ।

तुक् । उपेत्येव्यत्र 'पत्वनुकोर'मिदृ'इत्येकदेशस्य'मिदृत्वाद् ह्रस्वाश्र-
यस्तुग भवति । उपेत्यमिति प्रयोगो भौवादिकस्य द्वैवादिक'स्य वा ऽवो-
यन्त्यथेन । न अभ्याशो अनभ्यासः, स गन्तव्यो यस्य सैन्यभ्यास-
मिन्यः । 'इत्ये वा'नभ्या'रम्ये'ति मुम् । अत्यनीत्यन्यायः । स्व'दृष्टेन्या-
दिना ण् । अन्ययो, जिदृष्टिर्विशोल्यादिनेतिः । इत्वरः । इण्
शी'ति इरण्, इत्वरौ, स्त्रिया णिदृष्टाणजिति ङीप् । न्यायः, परित्यानी-
कोऽनुनाश्रये'रिति घञ् । अश्रेयः पदार्थानामनपवारः, यथाप्राप्तकरण-
पर्यायः । 'परावतुप'त्ययङ्ग इति घञ् । अनुपात्ययः क्रमप्राप्तस्या-
नतिपातः परिघाटा, अन्यत्र कालपर्यायः, परत्, इत्या । सताया
समजेत्य दिना स्त्रिया ऋप् । इति । बहुलकात् किञ्चिन्यात्रेयः, अयनम्,
अन्तर्गणम् । 'अनरदेश इत्यधिकृत्य' अयन चेति णत्वम् अन्तर उप-
सर्गत्वात्कृत्यच' इति णत्वे मिदृ वचनमिदं देशप्रतिषेधार्थम् ।
नीयतेऽनेनेति न्यायः । अध्यायन्यायेति घञ् निपात्यते, पुमि सजाया
घापवादः । न्यायादनपेन न्यायः, धर्मव्ययन्यायादनपेन'इति यन्,
न्याये भवमपि न्यायः, दिगादित्वाद्यन् । न्याये भवन्तस्य व्याख्यान वा
नैयायम् । ऋणयतादिप'टादणिभ्याभ्यामिन्त्यैजागमः । न्यायमधीने वेद
वा नैयायिकः । उक्त्यादित्व'ठुक् न खान्यामिन्त्यैजागमः । आत्ययिकः ।
औपयिकः । अत्ययेपायशब्दाभ्या' 'विनयादिभ्यस्त्वे'ति स्वार्थं ठक् ।
उपायशब्दस्य 'तूपायाद् ध्रस्वत्वं चे'ति ह्रस्वत्वमपि । औपयिकशब्दः
स्वभावाद्दौचित्ये वर्तते, यथाकथञ्चिदिय व्युत्पन्निरित्यात्रेयः । शिवमौ-
पयिक गरीयसीमित्यपायम'त्रेपि प्रयोगो दृश्यते । प्रातरित्वा । 'अन्ये-
भ्योपि दृश्यत'इति कृनिप् । स्त्रिया प्रातरित्वरी वनो र चेति
ङीष्पौ । कान्तारमतीनः कान्तारातीतः । द्वितीयाश्रितेति
तत्पुरुषः । दुःखादपेतः दुःखापेतः । अपेतापोठेति पञ्चमीनत्पुरुषः ।
एवम् । 'इण्शीभ्या ववि'ति वन्त्ययः । चादित्वादसन्त्ववचनत्वाविपा-

१ अपीत्यधिक ३ । ४ । पु ।

२ चेति २ पु वा ।

३ इत्यधिकृत्येति नास्ति २ पु ।

४ परबन्ताभ्यामिति २ पु अधिकम् ।

तोऽव्ययम् । केव भोत्यसे । एवशब्दोऽमभावने, न कापि भोत्यसदित्यर्थः ।
 'एवे चानियोगे पररूपं वक्तव्यम्' इति पररूपम् । नियोगोवधारणम्,
 अनियोगस्ततोऽन्यः । समियोऽग्निः सङ्ग्रामश्च । 'समीण' इति यक् ।
 आयुः, आयुषी । 'एतेर्णिञ्च' इत्युत्तिप्रत्ययः, णित्वावृद्धिः । पुरुषायुषम्,
 द्वायुषम्, त्रायुषम् । 'अवतुरे' त्यादिना आद्यस्य षष्ठीतत्पुरुषे,
 इतरयोः समाहारद्वन्द्वेऽच् निपात्यते । तेन समासान्तरे न भवति ।
 पुरुषश्च आयुश्च पुरुषायुषी, द्वयोरायुः, त्रयाणामायुः, द्वायुस्त्यायुरिति ।
 आगः । 'इण आगोपराधे' इत्यमुन्यागादेगोपराधे । एतशः, चन्द्रादिः,
 एतशा ब्राह्मण । 'इणस्तशन्तशसुनौ' इति तशन्तशसुनौ । इभः ।
 'इणः कित्' इति भन्त्ययः । कित्त्वाच्च गुणः । इभमर्हति इभ्यः ।
 दण्डादित्वाद्यत् । एकः । 'इणभी' इत्यादिना कन् । सङ्ख्यायामेकवच-
 नान्त । मुख्यादौ त्वभिधेयवचनः, अयं सर्वनामा^१ । तत्कार्याणि तसि
 विभाषा वर्जयित्वा पूर्वशब्दवदिहाप्युच्येयानि, न्यञ्ज्वन्त्यदादिकार्याणि
 च । 'भवन्त्यनेके जलधेरिवोर्मय' इत्यत्र तत्पुरुषस्योत्तरपदार्थप्रधानत्वाद्
 उत्तरपदस्य च तत्सङ्ख्यावाचित्वेन एकवचनान्तत्वाद्वहुवचनमनुपपन्नमिति
 'सेव्यतेनेकया सचतापाङ्गया' इतिवदेकवचनेन भाव्यम् । अथैकशब्दस्य
 'द्वेकयो'रित्यादिवद् वृत्तौ भावप्रधानत्वाद् न विद्यते एकत्व येषा-
 मिति बहुव्रीहिणा 'उद्यतैर्निभृतमेकमनेकै रितिवद्वहुवचनोपपत्तिः ।
 सिद्ध्यति बहुवचनम्, 'न बहुव्रीहौ' इति निषेधात्सर्वनामकार्यं शीभावो
 न सिद्ध्यति । अयं वा एव समर्थनीयः, एकशब्दोऽसहायवचनः, अनेके
 सहाया इत्यर्थः । तथा च योगपातञ्जले । 'एक चित्तमनेकेषाम्' इति
 प्रयुज्यते । ऐक्यम् । ब्राह्मणादिपाठात् ष्यञ् । एकतरः, एकतमः,
 सर्वनामनी, 'एकाच्च प्रावाम्' इति द्वयोर्बहूना च एकस्य निर्धारणे
 क्रमेण इतरज्जतमचौ विकल्पेन । नपुंसके स्वमोः 'अद्भुतरादिभ्यः
 पञ्चभ्य' इत्यदडादेशे अमोपवादे डित्वाट्टिलोपे एकतममिति भवति ।

१ पररूपत्वमिति ३ पु. पा. ।

२ सर्वनामत्वादिति ३ पु. पा. ।

३ उद्धते इति ३ पु. पा. ।

‘एकतरशब्दात्त्वददेशो नेष्यते’ इति भाष्यम् । एकाकी, एककः, एकः । ‘एकादाकिनिष्वासाहाये’ इत्युहाययादेकशब्दात् स्वायं कनाकिनिचौ आकिनिचश्च’ पठे लुक् । सङ्गुद्धे । ‘एकस्य सङ्गुच्च’ इति क्रियागणने सङ्गुदादेशः सुप्रत्ययश्च, चकारस्वरार्थः, उकार उच्चारणार्थः, सकारस्य सयोगान्तलोपः । स्वरादित्वादव्ययत्वात्सुपो लुक् । एकधा भुङ्गे । सङ्गुया विधायं धप्रत्ययः । विधा प्रकारः, मामान्यस्य भेदको विशेषः । अनिर्धारितमङ्गुस्य भाजनदेः एकत्वादिलक्षणे प्रकारे वर्तमानादेकादेशशब्दात्स्वार्थं धेति सूत्रार्थः । अनेकमेकधा करोति । ‘अधिकरणविचाले च’ इति धा स्वायं । अधिकरण द्रव्य, तस्य सङ्गुयान्तरापादनमधिकरणविचालः, स चैकस्यानेकीकरणम्, अनेकस्यैकीकरणम् । ऐक्यं भुङ्गे करोति वा । ‘एकाद्वो ध्यमुत्रत्यनरस्याम्’ इति ध्यमुत्रादेशः । एकशो ददाति, एकैक एकैकस्मै वा ददानीत्यर्थः । ‘सङ्गैकवचनाच्च वीष्मायाम्’ इति शस् । अनेकवचनग्रहण नियतपरिमाणाणां प्रस्थादीनां ग्रहणार्थम् । कारकहूपार्याभिधायिनः सङ्गैकवचनाद् वीष्माया गम्यमानायां वा शमिति सूत्रार्थः । कारकग्रहणाद् एकैकस्य स्वमिति विवक्षाया शस् न भवति । ‘नित्यवीक्षयो’ रिति द्विवचनं शसि न भवति, वीष्मायाः शमैवाकत्वादिति ‘सर्वस्य द्वे’ इत्यत्र भाष्यादौ स्यात् । ऐक्यम् । शमन्ताद् ब्राह्मणादित्वात् व्यञ् । ‘अव्ययानां भमात्रे’ इति टिलोपः । ‘एकैकशः पितृसंयुक्तानि’ इत्यत्र शसः प्रायश इत्यादिवद् अव्यन्तस्वार्थिकत्वाद् वीष्माया अनभिधानाद् द्विवचनम् । तथा च ‘सर्वस्य द्वे’ इत्यत्र भाष्यम् । ‘यत्र च तद्विनेनानुक्ता वीष्मा भवति तत्र द्विवचनम्, तद्वया एकैकशो ददाति’ इति । इदमेव भाष्यमव्यन्तस्य स्वार्थिकस्य शसे मूनम् । यत्र द्विवचनं तत्र ‘एकम्बहुव्रीहिवन्’ इति बहुव्रीहिवद्वावात्सुपो लुक् । एकावज्जशतिः । एकेन न विंशतिरिति ‘तृतीये’ति योगविभागात्समासः । ‘एकादिश्चैकस्य चाटुक्’ इत्येकशब्दात्परस्य नञः प्रकृतिभावः, एकस्य

तोऽव्ययम् । केव भोक्ष्यसे । एवशब्दोऽसम्भावने, न कापि भोक्ष्यमव्ययः ।
 'एवे चानियोगे पररूप वक्तव्यम्' इति पररूपम् । नियोगोवधारणम्,
 अनियोगस्तनोत्य । समिथोऽग्निः सङ्ग्रामश्च । 'समीण' इति यक् ।
 आयुः, आयुषी । 'एतेर्णिञ्च' इत्युतिप्रत्ययः, णित्वाट्टिट् । पुरुषायुषम्,
 द्वायुषम्, त्रायुषम् । 'अवतुरे' त्यादिना आद्यस्य षष्ठीतत्पुरुषे,
 इतरयोः समाहारदुन्द्वेऽच् निपात्यते । तेन समासान्तरे न भवति ।
 पुरुषश्च आयुश्च पुरुषायुषी, द्वयोरायुः, त्रयाणामायुः, द्वायुस्त्यायुरिति ।
 आगः । 'इण आगोपराधे' इत्यसुन्यागादेशोपराधे । एतशः, चन्द्रादिः,
 एतशा ब्राह्मण । 'इणस्तशन्तशसुनौ' इति तशन्तशसुनौ । इभः ।
 'इणः कित्' इति भन्प्रत्ययः । कित्वात्र गुणः । इभमर्हति इभ्यः ।
 दण्डादित्वाद्यत् । एकः । 'इणभी' इत्यादिना कन् । सद्वायामेकवच-
 नान्त । मुख्यादौ त्वभिधेयवचनः, अयं सर्वनामा^१ । तत्कार्याणि जसि
 विभाषा धर्जयित्वा पूर्वशब्दवदिहाप्युच्येयानि, त्यच्छब्दवत्पदादिकार्याणि
 च । 'भवन्त्यनेके जलधेरिवोर्मय' इत्यत्र तत्पुरुषस्योत्तरपदार्थप्रधानत्वाद्
 उत्तरपदस्य च तत्सद्वावाचित्वेन एकवचनान्तत्वाद्बहुवचनमनुपपन्नमिति
 'सेव्यतेनेकया सचतापाङ्गया' इतिवदेकवचनेन भाव्यम् । अथैकशब्दस्य
 'द्वेकयो'रित्यादिवद् वृत्तौ भावप्रधानत्वाद् न विद्यते एकत्व येषा-
 मिति बहुव्रीहिणा 'उद्यतैर्निभृतमेकमनेकै'रितिवद्बहुवचनोपपत्तिः ।
 सिद्ध्यति बहुवचनम्, 'न बहुव्रीहौ' इति निषेधात्सर्वनामकार्यं शीभावो
 न सिद्ध्यति । अथ वा एव समर्थनीयः, एकशब्दोऽसहायवचनः, अनेके
 सहाया इत्यर्थः । तथा च योगपातञ्जले । 'एक चित्तमनेकेषाम्' इति
 प्रयुज्यते । ऐक्यम् । ब्राह्मणादिपाठात् ष्यञ् । एकतरः, एकतमः,
 सर्वनामनी, 'एकाञ्च प्रावाम्' इति द्वयोर्बहूना च एकस्य निर्धारणे
 क्रमेण इतरज्जतमचौ विकल्पेन । नपुसके स्वमोः 'अद्भुतरादिभ्यः
 पञ्चभ्य' इत्यदहादेशे अमोपवादे ङित्वाट्टिलोपे एकतममिति भवति ।

१ पररूपत्वमिति ३ पु. पा. ।

२ सर्वनामत्वादिति ३ पु. पा. ।

३ उद्यते इति ३ पु. पा. ।

‘एकतरशब्दात्त्वदडादेशो नेष्यते’ इति भाष्यउक्तम् । एकाकी, एककः
 एकः । ‘एकादाकिनिच्वासहाये’ इत्य-हापार्यादेकशब्दात् स्वार्थे
 कनाकिनिचौ आकिनिचश्च^१ पठे लुक् । सङ्गुद्धे । ‘एकस्य सङ्गुच्च’
 इति क्रियागणने सङ्गदादेशः, मुच्प्रत्ययश्च, चकारस्वरार्थः, उकार
 उच्चारणार्थः, सकारस्य सयोगान्तलोपः । स्वरादित्वादव्ययत्वात्सुपो
 लुक् । एकधा भुङ्के । मङ्गुया विधार्थे धप्रत्ययः । विधा प्रकारः, सामा-
 न्यस्य भेदको विशेषः । अनिधारितमङ्गुस्य भोजनादेः एकत्वादिलक्षणे
 प्रकारे वर्तमानादेकदेशशब्दात्स्वार्थे धेति सूत्रार्थः । अनेकमेकधा
 करोति । ‘अधिकरणविचाले च’ इति धा स्वार्थः । अधिकरण द्वय,
 तस्य मङ्गुान्तरापादनमधिकरणविचालं स चैकस्यानेकीकरणम्, अने-
 कस्यैकीकरणम् । ऐक्यं भुङ्के करोति वा । ‘एकाद्वौ ध्यमुज्जन्यनरस्याम्’
 इति ध्यमुज्जादेशः । एकशो ददाति, एकैक एकैकस्मै वा ददानीत्यर्थः ।
 ‘सङ्घैकवचनाच्च वीष्मायाम्’ इति शस् । अत्रैकवचनग्रहणं नियतपरि-
 माणाणां प्रत्यादीनां ग्रहणार्थम् । कारकहूपार्याभिधायिनः सङ्घैकवच-
 नाद् वीष्माया गम्यमानाया वा शमिति सूत्रार्थः । कारकग्रहणाद् एकै-
 कस्य स्वमिति विवक्षायां शस् न भवति । ‘नित्यवीक्ष्यो’ रिति
 द्विवचनं शसि न भवति, वीष्मायाः शसैवाकृत्वादिति ‘सर्वस्य द्वे’
 इत्यत्र भाष्यादौ स्थितम् । ऐक्यम्^२ । शसन्ताद् ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् ।
 ‘अव्ययानां भमात्रे’ इति टिलोपः । ‘एकैकशः पितृमयुक्तानि’ इत्यत्र
 शसः प्रायश इत्यादिवद् अत्यन्तस्वार्थिकत्वाद् वीष्माया अनभिधानाद्
 द्विवचनम् । तथा च ‘सर्वस्य द्वे’ इत्यत्र भाष्यम् । ‘यत्र च नद्विनेना-
 नुक्ता वीष्मा भवति तत्र द्विवचनम्, तद्वया एकैकशो ददाति’
 इति । इदमेव भष्यमन्यन्तस्य स्वार्थिकस्य शसे मूनम् । यत्र द्विवचनं
 तत्र ‘एकम्बहुव्रीहिवत्’ इति बहुव्रीहिवद्भावात्सुपो लुक् । एकावशि-
 शतिः । एकैक न विंशतिरिति ‘तृतीये’ति योगविभागात्समासः ।
 ‘एकादिश्चैकस्य चादुक्’ इत्येकशब्दात्परस्य नञः प्रकृतिभावः, एकस्य

चादुगागमः । एकस्या भावः एकत्वम्, एकस्याः वीर एकवीरम् । 'एक
तद्वृत्ते च' इति तद्वृत्ते उत्तरपदे च परे ह्रस्वः स्त्रीप्रत्ययस्य ।
'लिङ्गविशिष्टग्रहण एकशब्दस्य ह्रस्वत्व प्रयोजयति' इति वृत्तिः ।
एकैक भोजयति । 'नित्यवीक्षयो'रिति द्विवचने 'एक बहुव्रीहिवत्'
इति बहुव्रीहिवद्भावात्सुपो लुकि चित्रगुरित्यादिवत् पुनस्समानात्सुबु-
त्पत्तिः । 'न बहुव्रीहौ' इति सर्वनामसंज्ञानिषेधस्य न भवति, तत्र
बहुव्रीहाविति वर्तमाने पुनर्बहुव्रीहियहण मुख्यबहुव्रीहिरियहार्यमि-
त्युक्तत्वात्, अयं चानिदेशिको गौणो बहुव्रीहिः । बहुव्रीहिवद्भावाद्
'एकैकामाहुति जुहोति' इत्यत्र 'स्त्रियाः पुंवद्' इत्युत्तरपदनिवन्धनः
पुंवद्भावे भवति । ननु सत्यसति वा पुंवद्भावे को विशेषः, यस्मादुभय-
थापि वृद्धिर्भविष्यति । सत्यम्, अथगृहे त्वस्ति विशेषः । एकदा ।
'सर्वैके'ति दाप्रत्ययः । एकपुरुषः । 'पूर्वकालेति समासः ।
पञ्चाम्नाः, पूर्वगुणामशमी, इत्यादौ 'विशेषण विशेष्येण' इति समासे
सिद्धे 'द्विक्स्तद्धे सज्ञायाम्' इति पुनर्विधानात् सज्ञाया अन्यत्र द्विक्-
ह्रयोः विशेषणसमानाभावाद् एकशब्दस्य समासवचनम् । अत एव
एकवीर इत्यत्र पूर्वकालेत्यस्मात्परत्वात् पूर्वापरप्रथमेत्यनेन समा-
सेन भाव्यम्, ततश्च वीरशब्दस्य प्रथमानिर्दिष्टत्वादुपसर्जनत्वात्पू-
र्वनिपातस्यादिति चोक्तमपि निराकृतम् । तस्य त्ववकाशो वीरपुह
षादिः । एतत् । 'एतेस्तुट् चे'त्यदिप्रत्ययस्तुङागमश्च । एष करो-
तीति, 'त्यदादीनाम' इति विभक्तावत्वे 'तदोस्सस्सौ' इति सौ
तकारस्य सत्वे तस्य च यत्वे सो. 'एतत्तदोस्सु लोपो ऽकेःरनञ्समासे
हलि' इति लोपः । अकोरिति वचनाद् एषकः करोतीति साकच्के सुलोपो
न भवति । अनञ्जितिवचनाद् अनेषः करोतीत्यत्रापि न सुलोपः । अत्र
अनञ्प्रमासे इति प्रतिषेधादेव तदन्तस्यापि यह इति परमैष करो-
तीत्यत्रापि सुलोपः । त्यदाद्यत्वे 'तदोस्सस्सावनन्त्ययो'रिति सत्वे
च, त्यदादिप्राधान्ये तदन्तेपीष्येते, यदा त्वप्राधान्ये तदा न भवतः,
अन्येतद्वेवदत्त इति । नपुसके सोर्लुका लुप्तत्वादपि न भवतः । अमे

लुका नुजन्वादपि नात्वम् । एतेत्यादौ विभक्तिनैरन्वयेण भवदण्यन्व
 'भस्त्रपे त्यादिनिर्देश' न द्वितीयानस्य टापो निमित्त भवति । एषका,
 एयिका । अकृत्पते 'अन्वैराजाज्ञादुस्वानजपूर्वाणामपी'ति कान्पूर्व-
 म्याकारस्य प्रत्ययस्याद् इति प्राप्नोमिन् पते निषिध्यते । यद्यप्यत्र
 नजपूर्वाणामपीत्यपिशब्देन केष्वनामन्यपूर्वाणां चाय निषेध उक्तः ।
 नयायेरादौ समन्ते न प्रेक्षयतः, यनम्ममामाधायाम्' विभक्तौ न
 त्यदाद्यत्वम्, 'अनरङ्गानपि विधीन्वहिरङ्गो लुङ्गाधने' इति । तेन
 समानादिभक्ताधत्वे टापा भाव्यम् । स चान्तर्वर्तिन्या विभक्त्या प्रत्यय-
 लक्षणेन सुव्रन्तान्तर इति प्रत्ययस्य द्वितीयाध्यासुः इति निषे-
 धादप्रमङ्गान् किं तन्निषेधेन । शेषं त्यदादिकार्यं त्यच्छब्दवत् ।
 एतन्परिमाणमस्य एतावान्, 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुष्व' इति परि-
 माणिनि' वतुष् । 'आ सर्वनाम्' इत्यात्वम् । 'अत्वमन्तस्ये'त्यमम्बुद्वौ
 सावुपधादौष्वे नुमि हतव्यादिमयोगान्तलोपौ । अतः, अत्र । 'एत-
 दोश्' इति प्रादिशीघ्रे ऽशादेशः । अत्र एतद इति योगविभागः, तत्र
 'एतेनौ रथो त्यनुवृत्त्या रेफ्यकारादयोः प्रत्यययोः ययामङ्गुमेन इत
 इत्येताशादेशो भवतः' एतर्हि इत्यमिति । तत्र हिन् 'अनद्यतने हिन्-
 न्यतरस्याम्' इति सिद्ध्यादिभूतपसङ्कोचः । अत्र भुङ्त्व, अयोत्रा-
 धीष्व, इत्यादौ अन्वादेशेपि 'एतदोश्' इति नामान्येनैवाश'देशे सिद्धे
 'एतदस्त्रनमोस्त्रनमौ चानुदात्तौ' इति घञ् 'व्रतमोः अनुदानत्वार्थम् ।
 एनम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयोः । 'द्वितीयाटोस्वेन' इतीदमेतदोरन्वा-
 देशविषययोरेतादेशः । नपुमकैश्च वने त्वेनद्वितीयते । एतः घर्णः ।
 'हमिमृषिण्वामि' इति तन्मन्वयः । एती । 'घर्णादनुदानानोपधात्तो
 न' इत्यनुदानान्तलोपध्वर्णवाचित्वात् स्त्रिया ङीप्, तकारस्य च नः ।
 इनः । 'इणमी'त्यादिना नङ् । दूर, 'दुरीणो लोपश्च' इति दुर्युप-
 पदे रङ्, इणश्च लोपे, रोरि'लोपे द्रलोपे इति दीर्घः । दविष्टः, दवी-
 यान्, दवयति, 'स्यूनदूरे'त्यादिना णाविष्टवदिति च यणादि-

परस्य लोपो गुणश्च । 'दूरयत्यवनते विवस्वती'ति प्रयोगस्तु चिन्त्यः ॥ ३५ ॥

इङ् अध्ययने ॥ नित्यमधिपूर्व । अधीते, अधीयाते, अधीयते, अधीषे, अधीये, अधीवहे, क्ङिङ्यजादावियङ् । 'रामादधीतसदेश' इति भट्टिप्रयोगे पञ्चमी चिन्त्या, 'आख्यातापयोगे' इत्याख्यातुः प्रतिपादयितुरपादान्त्य यस्मादुपयोगश्च, उपयोगश्च नियमपूर्वकं विद्वायहणम्, तच्च उपाध्यायादधीते इत्यादावेव सम्भवति । अधिजगे, अधिजगते, अधिजगिषे, अधिजगे, अधिजगिवहे, 'गाङ् लिटि' इति गाङ् देशः । क्रादिनियमादिट् । 'आतो लोप इटि च' इत्याल्लोपः । तस्य स्यानिवद्वादाद् द्विर्वचनम् । गाङ्देशस्य तु न स्यानिवत्त्वम्, 'गाङ् लिटि' इति द्विलकारकनिर्देशाद् लावस्यायामेव तद्विधानाद् द्विर्वचन-निमित्ताज्जिमित्त्वाभावात् । अध्येता । अध्येष्यते । अधीताम्, अधीया-ताम्, अधीष्व, अध्यै, अध्यावहे । आटि गुणाययोरुपसर्गस्य यणादेशः । पूर्व धातोरुपसर्गेण योगेपि गुणात्पूर्वमन्तरङ्गत्वेन सवर्णदीर्घा न भवति, 'वार्णादाङ्ग बलीय' इति गुणस्य बलीयस्त्वान् । अथ वा 'प्रत्ययः' 'गोरध्ययने वृत्तम्' इत्यादिनिर्देशाच्च भविष्यति । अध्येत, अध्येयाताम्, अध्येयत । भस्पादादेशः । अध्येया, अध्येयि, अध्येष्वहि, अजादौ परत्वा-दियङि पश्चादाटि वृद्धौ उपसर्गस्य यणादेशः । ज्ञापितं च 'घुमास्ये'-त्यत्र हलग्रहणेन विप्रतिषेधे प्राप्ते 'असिद्ववदत्रे'त्यसिद्वृत्त्य नेति । अधीयीत, अधीयाताम्, अधीयीयाः, अधीयीध्वम्, अधीयीय, अधीया-वहि, 'धातोरियङ्युपसर्गेण सवर्णदीर्घः । आशिषि अध्येषीष्ट, अध्येषी-यास्ताम्, अध्येषीष्टाः, अध्येषीष्टम्, इणः परत्वान्नूर्धन्यः । अध्येषीय, धातोर्गुणः, उपसर्गस्य यण् । अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्, अध्यगीष्टाः, अध्यगीष्टम्, अध्यगीषि, 'विभाषा लुङलङो'रिति पक्षे गाङादेशः । 'गाङ्कुटादिभ्योञ्णिङित्' इत्यञ्जितः प्रत्ययस्य क्ङित्त्वातिदेशाद् 'घुमास्ये'तीत्वम् । गाङ्भावे, अध्येष्ट, अध्येयाताम्, अध्येष्टाः, अध्येष्टम्, अध्येषि, अध्येष्वहि, आटि वृद्धौ उपसर्गस्य यणादेशः ।

अध्यगीयन् अध्यगीयेनाम्, अध्यगीयन्त अध्यगीयया, अध्यगीयध्वम्
अध्यगीये अध्यगीयावहि । पूर्ववद्भावे विकल्पः । गङ्गाभावे अध्ययन्
इत्यादयः । अधिजिगानते । 'इङश्च' इति सनि गमिरादेशः ।
'अभ्रुतगमा सनि इति दीर्घः । 'पूर्ववत्सम' इति तङ् । नायमादिष्टो
गमिः सनः प्रकृतिः पृथगात्मनेपदी दृष्टु इति कथं 'पूर्ववद्' इत्यति-
देशेन तडिति न भ्रमितव्यम्, यस्मा अन्ययन्निगेषोपदाने 'आधंधानुके'
तीव परनप्तरीयुक्म् । तेनेङ् सनि परे पश्वाङ्गमिरादेश इती-
हेव सनः प्रकृतिः, स च पृथगात्मनेपदी दृष्टुः स एव तङ्निमित्तमिति
तङ्मिहे । 'गमेरिट् प स्मेरडेपु' इतीगितपेधः । अथ च निषेध
आत्मनेपदेन समानपदस्यस्येति कृति चेद्भवत्येव अधिजिगमिपाचक्रे,
अधिजिगमिपिता, अधिजिगमिपा, इति । अध्यापयति । 'क्रीड्जीना
गौ' इत्यात्वे पुक् । 'बुधपुधे न्यादिना क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वेषि
परस्मैपदम् । अथ्यजीगपत् । 'गौ च सश्चडो'रिति सन्यरे चङ्परं गौ
गाडादेशविकल्प । पुकि गौ चङि ह्रस्वे द्वित्वे ऽध्यामस्य सन्वदित्वे
'दीर्घा लघो'रिति दीर्घः, आदेशाभावे, अध्यापिपत् । पूर्ववदात्वपुको-
श्चङि ह्रस्वे णिलोपे 'द्विर्वचनेचि' इति तस्य स्यानिवन्धाद् 'अजा-
देद्वितीयस्य' इति पिशब्दस्य द्विर्वचनम् । एव सन्यरेपि अधिजिगाप-
यिषति, अध्यापिपयिषति । सनस्मेष्ट्वान् न णिलोप इति गुणायौ ।
अध्याप्य इत्यत्र 'विभाषाऽऽपः' इत्याप परस्य योर्न्यपि विधीयमानो
ऽयादेशो न भवति । अस्यानूपस्य लालणिकत्वात् । अधीन्य । सवर्ण-
दीर्घस्य पत्वनुकारमेदृत्वाद् ह्रस्वनिबन्धनस्तुक् । अधीनमनेन अधीती
व्याकरणे, व्याकरणमधीतवानित्यर्थः । 'इटादिभ्यश्च' इति प्रथमाम-
मर्याद् अनेनेति कर्त्तर्ये इति । 'कर्म्यन्विषयस्य कर्मण्युपमङ्गानम्'
इति कर्मणि सप्तमी । रात्रिरधीता अहरधीतमित्यत्र 'कालाध्वनोः
कर्मवृत्ताद्व्यर्थमिति काले कर्मणि निष्ठा' इति 'कालाध्वनो'रित्यत्र
भाष्यम् । अधीयन् पारायणम् । अक्रेषेनाधीयान इत्यर्थः । 'इङ्धायाश्श-
चक्राङ्गि' इति कर्तरि शता । 'न लोकाव्यये'त्यत्र तृन् इति

प्रत्याहारग्रहणात् कर्मणि ऋद्धोगलतया पठ्ठी न भवति । उगित्वात् स्त्रियामधीयती । अधीयान इत्यत्र लट्स्यानिकस्य शानचो ऽऋद्धविषये-
णानेन शत्रा भिन्नविषयत्वान्न बाधः । अध्यायः । 'इडश्च' इत्यकर्तरि
कारके भावे च घञ् । उपेत्याम्मादधीयनइत्युपाध्यायः, 'पूर्ववदृञ् ।
उपाध्याया, उपाध्यायी । अत्र स्त्रिया क्तिनाऽस्य घञो न बाधः, 'अपा-
दाने स्त्रियानुपमद्भान तदन्ताच्च वा डीप्' इति वचनात् । पुयोग-
डीपि तु 'उपाध्यायमातुलाभ्या वा' इति पक्षे आनुगपि भवति, उपा-
ध्यायी उपाध्यायानीति । अधीयते ऽत्रेत्यध्यायः । पुंमि सज्ञाया घ
बाधित्वा 'अध्यायन्याये'ति घञ् निपात्यते । सौवाध्यायिकः ।
'प्रयोजनम्' इति ठक् । 'नखाभ्याम्' इत्यैच्, वृद्धभावश्च । के चिदत्र
ऐजागमार्थं द्वारादौ स्वाध्यायशब्द पठन्ति, तदनर्थकम् । यद्वात्र शोभनो
ऽध्यायः स्वाध्याय इति व्युत्पत्तिस्तदा 'नखाभ्याम्' इत्यैच् सिद्धः,
अथ स्वशब्देन समासः, तदापि द्वारादिषु स्वशब्दस्य पाठात् तदादेरपि
तत्र ग्रहणात् सौवयामिकादिवदैवस्सिद्धिः । कठश्चासावध्यापकश्च
कठाध्यापकः, 'पोटायुवती'त्यादिना समासः ॥

आकृतियहणा जार्तिर्लिङ्गाना च न सर्वभाक् ।

सङ्गदाख्यातनिर्याह्या गोत्र च चरणैस्सह ॥

इति चरणस्य जातित्वम् । चरणशब्दश्च शाखाध्यायिषु कूठः ।
ब्राह्मणस्याध्यापको ब्राह्मणाध्यापकः । एयन्ताद् एषुल, याजका-
दित्वाद् अकेनापि पठ्ठीसमासः । 'एतिस्तु' इति क्यञ्चिधौ नित्यम-
धिपूर्वत्वादस्यैतिग्रहणेन न ग्रहः । तथा च भाष्ये अध्येयं व्याकरणम्
इति यदन्तो निर्दिश्यते ॥ ३६ ॥

इक् स्मरणे ॥ अयमयधिपूर्वः । मातुरध्येति मातरमध्येति, 'अधी-
गर्थे' इति कर्मणश्शेषत्वेन पठ्ठी । धाताः ककारो ऽत्रैवेगिति विशेष
णार्थः । अधीतः, अधीयन्ति, इत्यादि सर्वमिण्वत् । 'इण्वदिक' इति
वचनाद् 'इणो यण्' 'इणो गालुङि' इत्यस्यापि भवति । आत्रेयस्तु

यणमुक्त्वा केचित्तु 'इणो गा नुडि' इत्यनिदेशकार्यं यमेव 'इण्वदि-
क' इत्यनिदेशमिच्छन्ति तन्मन इयद्वि अर्थप्रत्तिनि पक्षान्तरन्याह ।
'इणो यण' इत्यत्र न्यासे च पक्षद्वय दर्शितम् । एकारोच्चरण
इडिक्तेर्नैवत्यर्थम् । ये तु इण्वदिक. इति सामान्येनाविदेशमिच्छन्ति
तेषामिड एव निवृत्त्यर्थम् । इकस्मि भवितव्यमेव यणा' इति । मैत्रेयस्मि
इयडादेशोदाहृत्य, 'केचित्तु यणादेशमिच्छन्ति' इत्याह । हरदत्तस्मि
इयडादेश न महते । 'इण्वदिक.' इत्युपादाय यदाह । 'यद्यप्येवाय
प्रकरणस्य शेषस्स्यात्, 'इणिकोर्गानुडि' इति सूत्रन्यासः कर्तव्य इत्येवा-
वत्यत् । यतश्च यन्तु पृथगिण्वदिक इत्याह, ततो मन्यमहे मर्वगाम्त्रस्य
शेषोयम्' इति । एवं च 'समीनयो राघवयोरधीयन्' इति भट्टिमयो-
गरितन्त्यः । 'णो गमिरवेधने' 'सनि च' इत्यवेधने विधीयमानो
गम्यादेशोऽपि भवति, यतस्तत्र बोधनशब्देनानुभवरूप ज्ञान एह्यते,
न च स्मृतिरनुभवः, अत एव वृत्तौ अधिगमयति, अधिजिगमिरति,
इति गम्यादेश उदाहृतः ॥ ३७ ॥

वी गनिरजनकान्यवनत्वाद्नेषु ॥ जनो जन्म', प्रजनो जन्मन
उपक्रमो गर्भग्रहणम्' । वेति, वीत', वियन्ति, वेपि, वेमि वीव.,
अजादावगुणवृद्धिविषये इयङ् । विवाय, विव्यतुः, विव्युः, विवयियथ,
विवेय, विव्यथुः, विव्य, विवाय, विवय, पिट्टवनेषु वृद्धिगुणायाना स्या
निषत्त्वे वीशब्दस्य द्विवचनम् आययोरेष वा स्यानिषत्त्वे वीशब्दस्य
वैशब्दस्य वा । अपिट्टवनेषु इयङ्ः स्यानिषत्त्वान् विशब्दस्य द्विवचने
पुनरुत्तरखण्डस्य प्रवर्तमानमियङ् बाधित्वा ऽनेकाच्चाद् यणादेशः ।
'कटि गतौ' इत्यत्रायमर्थः प्रपञ्चित' । वेता । वेप्यति । वेतु, वीता,
वियन्तु, वीहि, हेरपित्वात् डित्वात्र गुणः । वयानि, वयाव, इयङ्
बाधित्वा परत्वाद्गुणः । अवेत्, अवीनाम्, अविद्यन् अवे', अवयम्.

१ अधिकारकार्यार्थमिति ३ । ४ पु पा ।

२ जनन जन इति पा ३ । ४ पु ।

३ असन वेप्यमित्यधिक ३ पु ।

अवीव, अडागमात्प्रागपि वर्तमान प्रकृत्यनेकावृत्त्वमाश्रित्य अजादौ
 किंनि 'हरनेकाच' इति यणादेश इत्याज्ञेयः । अन्ये तु परत्वादिय-
 दमेवाहुः । असिद्धवदने 'त्यसिद्धत्व विप्रतिषेधविषये नेति 'घुमा-
 स्ये'त्यत्र हल्ग्रहणेन ज्ञापितम् । वीयात्, वीयाता, वीयुः । आशिषि
 वीयात्, वीयास्ताम् । अवैवीत् । अवैष्टाम्, अवैषीः, अवैषम् ।
 विवीषति । 'इको भल' इति कित्त्वान्न गुणः । वेवीयते, वेवेति, वेव-
 यीति, वेवीतः, वेव्यति । णिचि वाययति, अवीवयत् । प्रजनार्थत्वे तु
 'प्रजने वीयते' इति णौ विभाषया आत्वे पुकि, पुरोवातो गाः प्रवा-
 पयतीति । पुरोवातो गर्भं वाहयतीत्यर्थः । कर्मणि वीयते इत्यादि ।
 वीत्वा । वीतः । वेत्रम् । 'गुधृवी'त्यादिना जप्रत्ययः । वेत्रकीयम् ।
 'नडादीना कुञ्च' इति चातुरर्थिकशब्दः कुगागमश्च । अत्र प्रश्लिष्ट-
 निर्देशाद् 'ई' इत्यपि धातुमाहुः, 'एति ईतः, इयन्ति । ईयात्, ईया-
 ताम् । ऐषिदित्यादिसिद्धयर्थम् ॥ ३८ ॥

या प्रापणे ॥ प्रापणमिह गतिः । याति । प्रणिषाति । 'नेगदे'-
 ति णत्वम् । यातः, यान्ति, यासि, यामि । ययौ, ययतुः, ययुः, ययाथ-
 ययिथ, यय, ययौ, ययिष, क्लादिनियमादिट् । यलि भारद्वाजिनियमा-
 दिट्प्रकल्पः । याता । यास्यति । यातु, यातात्, याता, यान्तु, याहि,
 यानि, 'लङ्शशाकटायनस्यैव' इत्याकारान्ताल्लङः शाकटायनमतेन
 विधीयमानो जुम्भावो लोटो लङ्बद्धावेन न भवति, तच्चानुवर्तमानेन
 कृत इत्यनेनैव आकारान्तात्परस्य लङोन्यस्य भेदसम्भवाद् लङ्विषयत्वे
 सिद्धे पुनर्लङ्ग्रहणस्य मुख्यलङ्ग्रहणार्थत्वात् । अयात्, अयाताम्, अयुः,
 अयान्, अयाः, अयातम्, अयाम्, 'लङ्शशाकटायनस्यैव' इति वा भेजु-
 स्भावः । यायात्, यायातामित्यादि । यायुरित्यस्यानभिधानादप्रयोग
 इति केचिदित्याज्ञेयः । आशिषि, यायात्, यायास्तां, यायासुः । अया-
 सीत्, अयासीः, अयासिषम्, । 'यमरमनमाताम्' इति सगिटौ । यान्ती ।
 याती, शत्रन्तात् शीनद्योः परयोः 'आच्छीनद्योनृम्' इति नुव्विकल्पः ।

यियासति । 'नित्य कौटिल्ये गौ' इति यङ्, यापेति, यायाति, यायीतः, यायति । हलादौ क्तिनि सार्धधातुके ई हल्यघोः रितीत्यम् । अजादौ 'इनाभ्यन्तयोरित्याल्लोप । यापयति । अपीयन् । याया-
वरः । 'यश्च यङ्' इति यङन्ताद्वानेर्वरच् । अत्र चकार पुनर्वरन्विधा-
नार्थ इत्यकौटिल्येपि यङनुर्मायने । एव हि पुनर्विधान्मुपपद्यते । अत्र
वरत्यनो लोपे यलोपे च 'अवः परस्मिन्पूर्वविधौ' इत्यल्लोपस्य स्या-
निषत्वम् 'न पदान्ते'त्यादिना लिपियत इति 'आतो लोप इटि
च' इत्याल्लोपो न भवति । शुभ यतीति शुभया । क्तिप् । शुभयो ।
'नादिचि' 'दीर्घाज्जमि च' इति पूर्ववर्णदीर्घनिषेधाद् 'वृद्धिरेचि'
इति वृद्धिः । शुभयाः । शसादौ भमनायम् 'आतो धातो रित्याल्लोपे
शुभय इत्यादि । नपुमके तु ह्रस्वत्वे शुभयमित्यादि । चतुर्थ्येकव-
चने तु 'हेर्य' इति यकारे 'सुपि च' इति दीर्घं तस्य च धात्वाकार-
त्वाद् 'आतो धातो रित्याल्लोपे 'हलो यमाम्' इति पूर्वयकारस्य वा
लोपे शुभय इति भवति । न चाल्लोपस्य स्यानिषत्वम् पूर्वत्रामिद्वीय-
त्वात्, यलोपविधित्वाद्वा । यदा तु 'हलो यमाम्' इति लोपो न
भवति तदा द्वियकारक उच्चार्यः । शुभयिका । कप्रत्यये 'केऽण' इति
ह्रस्वे 'प्रत्ययस्याद्' इतीत्यम् । 'उदीचामातमस्याने यकपूर्वाया'
इति यकारककारपूर्वस्याकारस्यानिकस्याकारस्य विधीयमानः पाठिक
इत्स्वनिषेधात् न भवति । यकपूर्वाया इति स्त्रीलिङ्गनिर्देशेन स्त्रीप्रत्य-
यस्यातस्तत्र ग्रहणात् । यायातिः । क्तिनि बाहुलकाद् द्विवचनमित्या-
ज्यः । 'ई हल्यघो रितीत्यमपि बहुवचनान्नेति तदभिप्रायः ।
यङ्लुगन्ताद्वा क्तिचि 'सत्रापूर्वको विधिरनित्य' इति 'दीर्घाकित'
इत्यभ्यासस्य दीर्घत्वम् 'ई हल्यघो रित्यभ्यस्तेत्वं च न भवति ।
यात्रा, 'हुय म'शुभमिभसिभ्यस्त्रन्' इति चन् स्वभावाः स्त्रीविषयः ।
'ष्टन्' इति ष्टनैव मिद्वे चन्विधानं ङीत्रिवृत्त्यर्थम् । ययुः । 'यो द्वे च'

इत्युप्रत्ययो द्वित्वं च त्रित्वञ्चात्रान्तरे । मृगयुः व्याधः, देवयुः धार्मिकः, केवलयुः मानी, ययुः ययपतिः, मित्रयुः मित्रवत्सलः, अश्विश्च, मन्त्रयुः मन्त्री, आध्वर्युः, अश्विर्विशेषः । 'मृगव्यादयश्च' इति मृगादि-
 पूषपदेषु कृप्रत्यये निपात्यन्ते । अध्वरशब्दस्य अन्तलोपश्च । आध्वर्या-
 भवकर्मणी आध्वर्यवम् । उद्गात्रादित्यादञ् । यातुः । रत्तः पर्यायः तुनि
 पारायणे व्युत्पादितः । यामः । 'अतिस्तु' इत्यादिना मन् ॥ ३८ ॥

वा गतिगन्धनयोः ॥ वातीत्यादि यातिवत् । वाजयति । 'वा
 विधूनने जुक्' इति यौ जुक् । विधूननं कम्पनम्, अन्यत्र पुगेव, वाप
 यतीति । निर्वोणः । 'निर्वोणोऽवाते' इति धात्वर्थस्य अवाताधिकर-
 णत्वे निष्ठानत्व निपात्यते । वाते तु निर्वोतो वातः, निर्वोतं वातेन
 इति नत्व न भवति । आद्युदात्तो वातशब्दो 'हसिभृण्वामि'ति
 तनि द्रष्टव्यः । वातानां समूहो वात्या । 'पाशादिभ्यो य' इति यः ।
 वातूलः । 'वातात्समूहे च' इत्यूलच् । चशब्दाद् अयं न सहतइत्यर्थेऽपि ।
 वातवान्, वातूलः, सिध्मादिषु 'वातदन्तबलललाटानामूङ् च' इति
 पाठान्तर्वाचि ऊङ् चागमः । 'यस्ये'ति कोपः । वातरोगी, वातकी ।
 'वातातिसाराभ्यां कुक्च' इति मत्वर्थे इनिः, कुगागमश्च । वातस्य
 शमनं कोपनं वा वातिकं, तस्य निमित्तप्रकरणे 'वातपित्तश्लेष्मभ्यश्श-
 मनकोपनयोः सङ्गानम्' इति ठक् । वायुः । 'रूपावाजी'त्युष्णि
 युगागमः । वायुर्देवता ऽस्य वायव्यम् । 'वाय्वृतुपित्रुषसो यत्' इति
 यत् । ओर्गुणे 'वान्तो यी'त्यवादेशः । 'ह्वावामश्च' इत्यत्र
 अकर्मकत्वात् अस्यायह इति न्यासे, तत्पाशादौ 'वाता वान्ति
 दिशो दश' इति भाष्ये सकर्मकस्य दर्शनादयुक्तम् । तथा च भट्टभा-
 स्करोपि 'अमम्भृटो जायसे मातृवो'रित्यत्र मातृवोः मातापितृ-
 भावं वान्त्योरिति सकर्मकत्वमाह । एवं च 'ह्वावामश्च' इत्यत्र
 'ह्वयतिना सानुबन्धकेन साहचर्याद् अकर्मकत्वाच्च वागतिगन्धनयोः

१ असम्भृटो जायसे मात्रोरित्यत्रेति ३ पु पाठ उपलभ्यते । ४ पुस्तके तु अर्धं
 मञ्च इति पाठः ।

मा माने इत्येव योऽयहणम्' इति ह्रस्वनेन अकर्मकत्वस्य हेतोः कथन-
मन्यमनाभिप्राय द्रष्टव्यम् । शेषेण वक्ष्यति । तन्नुमन्ताने वयतीनि
शपि गतम् ॥ ४७ ॥

भा दीनौ ॥ भार्गव्यादि यातिवत् । अतिभाते । त्रिष्वपि वचनेषु
समान रूपम्, भस्यादादेशः । अतिभाते, अतिभौ । इट् पठ्ये वृद्धिः ।
केचित्तु आति लोप इटि च 'इत्यत्रास्यापीडो ग्रहणमिति आन्लोपमि-
च्छन्ति । तत्र, नत्रार्थधातुस्य 'अक' आगमन्येवेडेः ग्रहणमिति स्थितेः ।
आगमश्च इडार्थधातुकमकत्वादार्थधातुकः । भा । 'इत्यत्रापि दृश्यते'
इति डः । भाः । 'सम्पृच' इति इत्यादिना कृप् । भसज्ञायाम् 'अने-
धाति' रित्यान्लोपे भ इत्यादि । 'काक्रमनैः पुनश्चरकभाभि' रिति
प्रयोगः सान्तस्य राशब्दस्य ह्यत्वे 'भोभगो' इति यत्वे 'हनि सर्व-
याम्' इति लोपे द्रष्टव्यः । प्रतिभा, प्रभा । 'आतश्चोपसर्ग' इत्यङ्
स्त्रिया भावे । प्रतिभैव प्रातिभम् । प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेण । निमस्तुन्यः ।
'आतश्चोपसर्ग' इति कर्त्तरि कः । प्रभानम्, प्रभापवम् । 'न भाभू-
कमिगमी' त्यादिना 'एयन्ताना च भादीनामुपसङ्ख्यानम्' इति च
णत्वनिषेधः । अयं च निषेधः 'कृत्यच' इति प्राप्तस्येति लोटि प्रभाणि
प्रभावयाणि इत्यत्र 'आनि लोट्' इति णत्व भवत्येव । भानुः । 'दा-
भाभ्या नु' रिति नुः ॥ ४९ ॥

ष्णा शौचे ॥ स्वाति । सखा, सखाय, सखिण, सखिव । स्वाता ।
स्वास्यति । स्वातु स्वाहि, स्वानि । अस्वातु, अस्वानात् अम्बुः, अस्त्राः ।
स्वायात्, स्वायाताम् । आगिषि, स्वायात्, स्वेयात्, 'वान्यस्य सयोगादे'-
रित्येत्वविकल्पः । अस्वामीत् । सिष्णासति । सास्त्रायने । सास्त्राति ।
स्वापयति, स्वपयति, प्रस्वापयति । 'ग्लस्वावनुवमा च' इत्यनुपमृष्टस्य
वा मित्त्वम् । प्रतिष्णानम् । 'मूत्र प्रतिष्णातम्' इति मूत्रे पत्वम् ।
मूत्रादन्यत्र प्रतिस्वातः । निष्णान, नदीष्णः । 'सुपि स्य' इत्यत्र

सुपीति योगविभागात्कः, 'निनदीभ्या स्नातेः कौशले' इति षत्वम् ।
 कौशलादन्यत्र निस्नात. नदीस्नातः । सुस्नात पृच्छति सौस्नातिकः ।
 'पृच्छतौ सुस्नाताद्विभ्य उपसङ्ख्यानम्' इति ठक् । प्रस्नः । 'घञर्थे
 कविधानम्' इति कः । स्नानीय चूर्णम् । बाहुलकात्करणेऽनीयर् ।
 स्नात्वाकालिकः । मयूरव्यसर्कादित्वात्तत्पुरुषः । 'समासे नऽपूर्वे' इति
 त्वो ल्यप् भवति । अनञ् इत्यस्य पर्युदासत्वाद् नऽसदृशेनाव्ययेन
 त्वान्तस्य समासे स विधिरिति । मयूरव्यसर्कादिषु पाठादेव वाच
 ल्यपो नैव प्रसङ्गः । ब्राह्मणवापकः । एयन्ताण्युत् । याजकादित्वात्
 षष्ठीसमासः । स्नायतीति भौवादिकस्य ॥ ४२ ॥

आ पाके ॥ इह पाके विक्रितिरिति कैयटादौ । आतीत्यादि
 स्नातिवत् । पाके घटादिपाठात् श्रपयति । अन्यत्र आपयति स्वेदयती-
 त्यर्थः । शृत क्षीर हविर्वा । एयन्तस्य चाण्यन्तस्य च क्ते 'शृतं पाके'
 इति शभावो निपातितः । क्षीरहविषोरन्यत्र आणा यवागूः, श्रपिता
 यवागूरिति । 'सयोगदेरात' इति निष्ठानत्वम् । अण्यन्तत्वे पाके
 इति वचनाद् यदा स्वेदनवचनो वा एयन्ताण्युच्चि पाचनवचनो वा
 तदापि न शभावः । सर्वमेतत् 'श्रै पाके' इत्यत्र प्रपञ्चितम् ॥ ४३ ॥

द्रा कुत्साया गतौ ॥ कुत्सितगतिः पलायनं स्वापश्चेति स्वामी ।
 तत्र प्रायो निपूर्वाय स्वापवचनः । द्राति, निद्राति, प्रणिद्राति, इत्यादि
 यातिवत् । निद्रालुः, तन्द्रालुः । 'स्पृहिशृङ्गिपतिद्रयिनिद्रानन्दे'ति
 निपूर्नात्तत्पूर्वाच्चातुच् । अस्मादेव निर्देशात् तदो दकारस्य च नकारः ।
 निद्रः । 'आतश्चोपसर्ग' इति कः । निद्रा । स्त्रियाम् 'आतश्चोप-
 सर्ग' इत्यङ् । तन्द्रा । 'घञर्थे कविधानम्' इति कप्रत्यये टाप् ।
 तन्द्रिः । 'अच इ'रितीप्रत्ययः, बाहुलकात्कित्वादाल्लोपः । तन्द्री ।
 'कृदिकारादन्तिन' इति वा ङीष् । सर्वत्रात्र तदो दकारस्य नकारः,
 'निद्रातन्द्रे'ति निपातनस्य सामान्यापेक्षत्वाद् द्रष्टव्यः । द्राण्यः,
 द्राणवान् । 'सयोगदेरात' इति निष्ठानत्वम् । निद्रित इति निद्रा-
 शब्दात् तारकादित्वादितचि । द्रायतीति स्वप्ने शपि ॥ ४४ ॥

प्मा भञ्जणे ॥ प्माति, प्रणिप्माति इत्यादि स्नातिवत् । द्रवणेन
प्मानीयो द्रव्यः । घञर्थे कः । एतेन्द्रादित्वाद् द्रादेरः । विश्वप्मा ।
'श्ववृत्त' इत्यादिना कर्त्तुम् ॥ ४५ ॥

पा रञ्जणे ॥ पानीत्यादि यातिवत् । पायते अपामीत् । इत्वे सिचो
लुकि च लुङि करणत्वाच्चास्य ग्रहः । पानयति । 'पानेलुङ्गक्य' इति
णिचि लुगागमः । गोपानक । 'नित्य क्रीडार्जाविक्रयो' रिति अक्रेन
समासः । गोपानकस्य स्त्री गोपालिका । 'गोपालिकादीना प्रतिषेध'
इति पुयोगलक्षणस्य डीशोऽभावः । न पातीति नपात्, नप्तेत्यर्थः ।
'नभायणपाद्' इति निपातनाद् नप्त्रः प्रकृतिभावः क्विप् तुक्त्वं ।
शञ्जन्त इति वृत्तिः । तत्र हरदन्तः । 'अपावपातमित्यादावनपुमके नुम-
दर्शनाद् 'उभे वनस्पत्यादिषु' इत्यत्र पानेः क्विप् पाद्' इत्यभि-
धानाच्च अपपाटायम् इति । तन्नूनपाद् अग्निः, इन्धनं विना तन्नूच
पातीति व्युत्पत्तिः । अपोतन्त्रियम् । अपावप्त्रियम् । अपोतन्त्रीयम् ।
अपावन्त्रीयम् । 'अपोतन्त्रपावन्त्र्या घ. 'हृ च इत्यपोतपाटपाव-
पाच्छब्दाभ्या घच्छौ । 'सास्य देवते' त्यस्मिन्विद्यये प्रत्ययसन्निधेयेन अपो-
तन्त्रपावन्त्र्याभावश्च । उभे अपि देवतानामनी । पतिः । 'पातेर्ङिति.'
'पतिस्समासएव' इति घिमजानियमान् पत्येच्यत्र 'आङो नास्त्रियम्'
इति नादेशो न भवति । पत्ये इत्यादौ द्विवचने 'घेर्ङिति' इति गुणश्च
न भवति । पत्युः, डसिङ्मोर्कारस्य 'ख्यत्यात्परस्य' इत्युकारे यणादेशः ।
'ख्यत्ये'ति विशब्दस्वीशब्दयोः कृतयणोर्निर्देशः । तथा पत्यावित्यत्र
'अच्च घे' रित्यत्व न भवति । डेरौकारस्तु 'चैत्' इति भवति । समासे
तु घिसञ्जाया घनस्पतिनेत्यादौ नाभावादीनि घिकायंणि भवन्ति । 'पार-
स्कारप्रभृतीनि च' इति सुट् । बृहस्पतिः । 'तद्बृहताः करपन्थोश्चोरेव-
तयोः सुट् तलोपश्च' इति सुट्तलोपौ । वाचस्पतिः, दिवस्पतिः । एतावपि

१ पाते. क्विप् निपातनार्थस्तु गिति २ पु पा ।

२ तन्वानपादित्यधिकं ३ । ४ पु.

३ उकारादेशे इति ३ । ४ पु पा ।

४ तिश्चब्दनाशब्दयोरित्यधिकं ३ । ४ । पु ।

पारस्करप्रभृती । बृहस्पतेरपत्यादि बार्हस्पत्यम् । 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्य' इति प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु एयः । वनस्पतीना समूहो वानस्पत्यमित्यत्र 'अत्रिनमस्तिग्ने' इत्यचित्तलक्षण प्राग्दीव्यतीय परमपि ठक् 'एयादयोर्ये विशेषलक्षणादपवादात्पूर्वविप्रतिषेधेन' इति बाधित्वा एय एव भवति । अर्थविशेषलक्षणादित्यभिधानाद्, उग्रपतिर्नाम पत्रम् औग्रपनमित्यत्र 'तस्येदम्' इत्यर्थसामान्ये विधीयमान 'पत्राध्वर्युपरिपदश्च' इत्यत्र परत्वाण्य बाधते । पत्र वाहनमुच्यते, अश्वपतेरपत्यादि आश्वपतम् । 'अश्वपत्यादिभ्यश्च' इति गयापत्रादौ प्राग्दीव्यतीयः । एव धनपत्यादयो गणपठिता उदाहाराः । वास्तोष्पतिर्देवतास्य वास्तोष्पत्य वास्तोष्पतीयम् । 'द्वावापृथिवीशुनासीरे' त्यादिना यच्छै । अत्रैव निपातनात् षष्ठा अलुक्षत्वे । एहपतिना सयुक्तोऽग्निगार्हपत्यः । 'एहपतिना सयुक्ते ज्य' इति सज्ञाया ज्यः, निर्देशादेव वृत्तीया समर्थविभक्ति । एहपतेः भावः कर्म वा गार्हपत्यम् । 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' इति यक् । अधिपतिगणपत्यास्तु ब्रह्मणादि'त्वात् ष्यञ् । अधिपत्य, गणपत्यम् । यद्यजोस्वरे विशेषः । स्वपतौ साधुस्वापतेयम् । 'पथ्यतिथी' त्यादिना ठञ् । कौमुदगन्ध्यायाः पतिः कौमुदगन्धीपतिः । 'ष्यङस्सम्प्रसारणम्' इति सम्प्रसारणे परपूर्वत्वे च 'हल' रिति दीर्घः । दुहितुः पतिः दुहितृपतिः । 'विभाषा स्वसृपत्यो' इति विद्यायोऽनिसम्बन्धवाचिन पूर्वपदस्य षष्ठा विभाषा अलुक् । अहर्पतिः । 'अहरादीना पत्यादिपूषसङ्ख्यानम्' इति रेफस्य वा रेफो विसर्जनीयापवादः । विसर्जनीयपत्ते 'कुप्वो' रिति पत्ते उपध्मानीयोपि । उभयत्राप्यादिशब्दः प्रकारे इति हरदत्तः । जाया च पतिश्च जायापती, दम्पती, जम्पती, राजदन्तादित्वाद् ध्यन्तस्यापि परनिपातः । जायाशब्दस्य वा दम्भावज-

१ पाठादित्यधिक ३ । पु० ।

२ तद्भावितापत्ते हलः परं यत्सम्प्रसारणं तदन्ताङ्गस्य दीर्घ इत्यर्थेनोपपत्तौ 'सम्प्रसारणस्य' इति सूत्रं न कार्यम्, वृत्तीय इत्यत्र क्लोप इत्यन्ताङ्गग्रहणानुवृत्त्या दीर्घाभावः सिद्ध इत्याशयेन माधवेन हल इति दीर्घ इत्युक्तम् ।

३ ध्यन्तत्वेपीति ३ पु० पा० ।

नित्य ङीङ्कारौ । अस्मादेव निर्देशात्ममानस्य सभावः । आदिशब्देन
गणपठिनैकादिपूर्वपदादपि । सपत्न्या अपत्य सापनः । 'शिवादिभ्योण'
इत्यण् । सपत्न्या भावः कर्म वा सापत्य, लिङ्गविशिष्टपरिभाषया
'पत्यन्ते' ति यक् । 'भस्याडे तद्विते' इति पुत्रद्वयस्य न भवति,
सपत्नीशब्दस्याभापितपुंस्त्वान् । सपत्नीव सपत्र, । 'अन् सपत्रे' इत्य-
नुवादादिवाच्ये ऽकारः । पतिवत्री । अन्तर्व्यतिवर्तितोक्तं इति जीव-
पत्यां ङीव् नुगागमश्च तत्संबन्धयोगेन मनुषो ब्रूव्य च । अन्यत्र पतिमान्
पतिमतीति । पितापितरौ । 'अप्त्नेष्टृ'-इत्यादिना वृद्धि इत्य गुणा-
भावश्च निपात्यते । अप्त्न् इति सर्वनामस्यानद्वयस्य न भवति,
तृचन्ताना नन्नादीना पुनरुदादानस्य मत्ताशब्दानामैशादिकानामेषा-
मेवेति नियमायत्त्वान् । मौ 'अदुशनम्' इत्यनङि नान्त्वान् 'सर्वना-
मस्याने' इति दीर्घः । माता च पिता च पितरौ । 'पिता मात्रा'
इति पितुर्वा शेषः, अन्यथा मातापितरौ । 'आनङ् अनो दृन्दु' इति
विद्यायोगिनसम्बन्धवाचिनो दृन्दु^१ पूर्वपदस्य आनङ्देशः । अयमनृकारान्ते
पुत्रशब्देऽपि भवतीति वृत्तिः पितापुत्राविति 'मातरपितरावुदीचाम्'
इत्यनङ्निपातनात् मातरपितरावित्यपि भवति । पितरो देवताऽप्य-
पिच्यम् । 'वाय्वृतुपितृपमो यत्' इति यन् । 'रादृत्' इति अदन्त-
स्याङ्गस्य कृत्सावधातुकादन्यस्मिन् यकारादौ च्यौ च रीङ् 'यस्येति च'
इतीकारलोपः । पितृव्यः पितामह । 'पितृव्यमातुलमानामहपिता-
महा' इति पितृभ्रातरि व्यत्ययः, पितुः पितरि मातरि च डामहच्

१ भवत इत्यधिक १, ३, ४ । पु ।

२ नामधेयस्य अन्यविभक्त्येन तत्र हि महता प्रबन्धेन न्यासेः कर्तव्य-
त्वाभावस्य भाष्याभिप्रेतस्यमुपपाद्य 'यव मति समानपतिलक्षणात्मपदशब्द-
'लिङ्गविशिष्टपरिभाषया' पत्यन्तलक्षणे सये सापत्य इति, तथा भवकर्मणारपि
पत्यन्तलक्षणे यकि सापत्यमिति सिद्धन्तितमिति केचित् । तस्य तु विश्वनिबन्ध-
नपतिशब्दमाश्रित्य नित्यस्त्रीलिङ्गो य सपत्नीशब्दस्तद्विषयकोऽयं ग्रन्थः । स्यामि
पर्यापतिशब्देन भाषितस्य सपत्नीशब्दमाश्रित्य नामधातव्यो ग्रन्थ इति न प्रया-
परवृत्तिग्रन्थविरोधनेशोपाति मुपिषो विभावयन्तु ।

३ दृन्दु इति १, ३, ४ । पु पाठः ।

प्रत्ययः । 'मातरि पिञ्चि' ति वा गौरादिपाठाद्वा डीप् पितामही । पितुरागत पिञ्च, पैतृकम् । 'पितुर्यञ्च' इति 'तत आगत' इति विषये यटुञौ । 'इसुसुक्तान्तात्क' इत्युगन्तत्वात् ठस्य कादेशः ॥ ४६ ॥

रा दाने ॥ रातीत्यादि । रातिर्मित्रम् । सञ्जाया क्तिच् । राः, रायौ, 'रातेडै' रिति डैः । 'च्चिरव्ययम्' इति नियमाद् 'कृन्मेज्जन्त' इति नाव्ययत्वम् । 'रायो हलि' इति हलादौ विभक्तावात्वम् । अजादौ विभक्तावायादेशः । इदमात्व तदन्तेपीष्यते, मुरा अतिरा इति । अतिरि ब्राह्मणकुलमित्यत्र सोर्लुका लुप्तत्वाद् हलादिविभक्तिपरत्वाभावाच्चात्वम् । अन्यत्र तु भवत्येव अतिराभ्यामित्यादि । 'सम्बुद्धौ च' इति गुणस्तु विकल्पेन भवतीति त्रपतावुपपादितम् । अजादौ 'इकोचि' इति नुम्, अतिरिणी इत्यादि । तृतीयादावजादौ 'तृतीयादिपु भाषितपुंस्क पुवद्' इति पक्षे पुवद्भावाद् नुमभावो नाशङ्क्यः, दगन्तस्याङ्गस्य भाषितपुंस्कत्वाभावाद् पुवद्भावस्य नैव प्रसङ्ग इति । अस्मि तु 'नुमच्चिरवृज्ज-द्वावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' इति नुट्यात्वे च अतिराणामिति भवति । राका । 'कृदाधारार्चिकलिभ्यः कन्' इति कन् । रात्रिः । 'राशदिभ्या त्रिप्' इति त्रिप् । रात्री । कृदिकारत्वान् डीप् । 'रात्रेश्वाजसौ' इति सञ्जाद्वन्दसोर्डीर्ध्विधानमाद्युदात्तार्थम् । अहोरात्रः, अहोरात्रौ । द्वन्द्वौ । 'अहो हविधौ रूपरात्रिरथन्तरेषूपसङ्ख्यानम्' इति रुः । सर्वरात्रः । 'पूर्वकालैके'ति समासः । रात्रेः पूर्वभागः पूर्वरात्रः । 'पूर्वा-पराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' इति तत्पुरुषः । सङ्ख्यातरात्रः, पुण्य-रात्रः । विशेषणममासौ । अतिरात्रः । प्रादिसमासः । द्विरात्रः । द्विगुः । 'अहस्त्वैकदेशमङ्घ्रातपुण्याच्च रात्रे' रित्यहरादेरव्ययात् सङ्ख्यायाश्च परस्य रात्रिशब्दस्याचसमासान्तस्तत्पुरुषे । अहर्यहण तु द्वन्द्वार्थम् । कतिपयरात्रमिति मुरारिप्रयोगे कतिपयशब्दस्यासङ्ख्यात्वात् समा-सान्तश्चिन्त्यः । उक्तं हि 'षट्कृतिकतिपयचतुरा युक्' इत्यत्र वृत्ताव-स्यामङ्घ्रात्वम् । 'रात्राह्राहाः पुसि' इति कृतसमासान्तस्य रात्रशब्दस्य पुंस्त्वम् । इदं पुस्त्वममङ्घ्रादेरित्यमरसिंहः, यथाह 'रात्रादेः प्राग-

मङ्गुकाद्' इति । श्रुतिकारणस्य मुनिप्रभृतयस्तु पुत्रत्वमेवाहुः । रात्र्या-
मठनि रात्रिमठ^१ । 'रात्रेः कृति विभाषा' इति वा मुमागमः । रात्रि-
दिवम् । अचतुरादिनाचि मान्त्व निरायत्वे । द्वैरात्रिकः द्विरा-
त्रीणः । 'रात्र्यहम्सवत्सराच्च' इति अर्धाष्टादिषु उक्तैः । रात्र्यर्थाति
शपि ॥ ४७ ॥

ला आदाने ॥ लातीत्यादि । विलासयति विलासयति घृणम् । 'ली-
लोर्नुलुकावन्यतरस्या खेः शिविदाने' इति पक्षे लुगागमः । खेहविपात-
नादन्यत्र पुगेव । कृपामादनइति कृपालुः । मितद्रुशदित्वाद्गुरित्या-
त्रेयः । व्यानः । 'आतश्चोपमर्गे' इति कः । बहूनर्थान् लातीति
बहुलम् । 'आतिनुपमर्गे क' इति कः । ब्राह्मणम् । मनोज्ञदित्वाद्
भावकर्मणोर्बुञ् । अतिशयेन बहूना बहिष्टः बहीषान् । बहूनस्य
भावकर्मणी बहिमा । पृथ्वादिन्त्वादिमनिच् । 'प्रियस्यिरे त्यादिना
इष्टमेयस्तु बहुलस्य बह्यादेशः । बहूनमाचष्टे बहयति । णाविष्टवद्
इति बह्यादेशः । रातिनाती द्वावपि दानार्थाविति चान्द्राः ॥ ४८ ॥

दाप् लवने ॥ दानीत्यादि पूर्ववत् । एकारो घुमत्तायाम्'दाविति
निषेधार्थः^२ । तेन प्रणिदाति प्रनिदानीत्यत्र 'शेषे विभाषा' इति
णत्वविकल्पो भवति । तथा दायते अदामीन्, व्यत्यद'म्न, दानम्
दिदामतीत्यादौ ययामङ्गुम् 'घुमाम्ये तात्वम्, 'गातिम्ये' नि
सिचो लुक्, 'स्याध्वोरिच्च' इति प्रकृतेरित्त्व सिचश्च क्तिन्, 'दोद-
हो' इति दद्वाञ्, 'सनिमीमे' तीस्भावो^३ न भवति । दावम् । 'दामी'-
त्यादिना कारणे घृन् । रत्तणे दयने, शोधने दायतीति शपि गतम् ॥ ४९ ॥

ख्या प्रकथने ॥ ख्यातीत्यादि यानिवत् । लुङि 'अम्यनिवक्ती'-
त्यङि अख्यद् इति भवति । तिपा निर्देशाद्गङ्गुकि अडभावान्
सिचि अचाग्यामीद् इति भवति । अस्यापि चतिङ्देशवत् क्यदित्व

१ रात्र्यट इत्यधिक १ । ३ । पु ।

२ विशेषणार्थ इति २ पु उपरि लिखित. पाठः ।

३ स्भावार्थ इति २ । ३ । पु पा ।

द्रष्टव्यम् । इदमार्धधातुकविषयमिति आत्रेयाद^१यः । अन्ये तु सामान्येन मन्यन्ते । सखा । 'समाने ख्यस्स चोदात्त' इति समानशब्दउपपदे इत्यन्त्ययः, समानस्य सभावः, उदात्तश्च । चशब्दादुदात्तार्थलोपः, प्रत्ययस्य डित्वं च । 'अनङ् सौ' इत्यसम्बुद्धौ सौ अनङादेशो डित्वादन्त्यस्य । सम्बुद्धौ तु 'ह्रस्वस्य गुण' इति गुणः । अन्यत्र सर्वनामस्थाने 'सख्युर-सम्बुद्धौ' इति णिट्त्वद्वाद् वृद्धावायादेशः । सखायावित्यादि । सखी-नित्यादि पतिशब्दवत् । घिसञा ऽसखीति पर्युदासाच्च भवति । स्त्रिया सखी । 'सम्यगिष्वीति भाषायाम्' इति निपातनाद् डीप् । सख्या इत्यत्र 'ख्यत्यात्परस्य' इत्युत्वात्परत्वाद् नित्यत्वाच्च डसिङसोर् 'आणनद्या इत्यादि कृते ऽकारस्य खीशब्दानन्तरत्वाभावाद् उत्त्वं न भवति । परमसखः । 'राजाहसखिभ्यष्टच्' इति टच् । बहुव्रीहौ तु बहुसखा बहुसखायाविति । 'बहुव्रीहौ सङ्क्षेपे' इति डञ् न भवति, अनङ्णिट्त्वद्वावौ 'अङ्गाधिकारे तस्य तदुत्तरपदस्य' च' इति सख्यन्त-स्यापि भवतः । असखीति पर्युदासः केवलस्यैवेति तदन्तस्य घिस-ज्ञाया बहुसखिनेत्यादौ नाभावादि भवति । सुसखा अतिसखा किसखा असखा इत्यत्र 'न पूजनात्' 'किमः क्षेपे' 'नञस्तत्पुरुषात्' इति समा-सान्ताभावः । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया सखीशब्दान्तादस्मिन् समासान्ते कृते चाकृते च न विशेषः, यतः कृतेपि 'भस्याडे तद्धिते' इति पुवद्वावे टित्वान्डीपि परमसखीत्येव रूपम् । सख्युभावकर्मणी सख्यम् । 'सख्युर्य' इति यः । लिङ्गविशिष्टः प्रत्ययेरीदमेव रूपम्, यतः पूर्व-वत्पुवद्वावेन भाव्यम् । सम्पूर्वस्य सख्युः प्रयोगो नेति 'समि ख्य' इत्यत्र न्यासादावुक्तम् ॥ ५० ॥

प्रा पूरणे ॥ प्रातीत्यादि । प्राणः प्राणवान् । 'सयोगादेरात्' इति निष्ठानस्त्वम् । प्रायः । 'श्याङ्गधे'ति ण् ॥ ५१ ॥

१ आत्रेय इति १।३।पु पाठः ।

२ तदन्तस्य इति १।३।पु पा ।

मा माने ॥ मानमिहान्तभाविः । अत्रायमकर्मकः । उक्तं च
 'ह्रावामश्च' इत्यत्रेन्दुहरदनन्यामकारादिभिः अकर्मकत्वादस्या-
 ग्रहणम् इति । तेन हि 'आनोनुपसर्गे क' इति क बाधित्वा कर्म-
 ण्युपपदेषु गृह्यते । मुक्त्वमुपमानि अग्निमतमानि, गृह निर्माति, भवान्
 प्रमाति, तण्डुनान् परिमातीत्यादौ मकमेकत्वमुपसर्गवगेनार्थान्तरवृत्त्या ।
 न चैव मकर्मकादस्मादणर्थम् 'ह्रावामश्च' इत्यत्र ग्रहणं स्यादिति
 वाच्यम् । यतस्तत्र 'आनोनुपसर्गे क' इत्यस्यापवादस्याप्रसङ्गात् सामान्यः
 कर्मण्यण् सिद्धः । मातीत्यादि यातिवत् । मीयते, मेमीयते । 'धुमास्ये'-
 तीत्वम् । मिन्मति । 'मनिमीमे तीम्भावे अत्र लोपोभ्यासस्य
 इत्यभ्यासस्य लोपः । 'मस्य' ध्रुवायुके इति तत्त्वम् । 'मितम् । 'अति
 स्यतिमे' तीत्वम् । सर्वेष्वेव माग्रहणेपु मामेड्माङ्ग्रहणम् 'गामा
 दाग्रहणेष्वाविशेद' इति वचनात् । नेर्गदादिमूत्रे तु नास्य ग्रहणम् ।
 तथा च तत्र वृत्तिः, 'मा इति म द्वेडार्थग्रहणम् इति । उक्तं चैतत्सर्व-
 मिदमिन्दुमीरदेवन्यामकारहरदनादिभिरपि । तेन प्रनिमाति प्रणिमा
 तीत्यत्र 'शेषे विभाषा क्वादावयान्त उपदेशे इति णत्वविकल्पो
 भवति । चान्द्रास्तु णत्वविधावपि त्रयाणां यङ्गमिच्छन्तीति वर्ध-
 मानः । स्वामिकाशयौ तु माग्रहणेष्वायुविकरणस्य ग्रहणं णत्ववर्ज्य-
 मिति । उभयमिदं वृत्त्यादिमन्त्रायन्यविरोधादुपेत्यम् । मातीति मायः ।
 'श्याद्ग्रध' इति णे युक् । माया । स्त्रिया टाप् । मायावी । 'अम्माया-
 मेधासृजो विनि रिति मत्वर्थं विनिः । मायी, मायिकः । ग्रीह्यादि-
 त्वादिनिठनौ । प्रमातीति प्रमः । 'आतश्चोपसर्गे' इति क । प्रमा ।
 'आतश्चोपसर्गे' इति स्त्रियामङ् । प्रमितिरिति बाहुलकात् क्तिन् ।
 मयतइति प्रणिदाने शपि गतम् ॥ ५२ ॥

वच परिभाषणे ॥ अत्र पुरुषकारे 'अस्यतिवक्त्री'त्यत्र वृत्तौ परि

१ हान्तर्भव इति १ । ३ । पु पा ।

२ त्रेन्दुति २ । पु उपरिनिखितः पा ।

३ मित, मितयान २ । इति १ । ३ । पु पा ।

भाषणे पठ्यते तदपि परेरनधिकारार्थत्वाद्^१ भाषणमेवार्थ इति । एतच्च क्वचिद्वृत्तावेवं पाठदर्शनादुक्तम् । वक्ति, वक्तुः, वक्ति, वक्त्यः, वक्त्य, वक्ति, वक्त्य, वक्तिः । वचन्तीत्यस्याप्रयोगेनभिधानादिति स्वामिममताकारौ । तथा च भोजः, । 'न वचन्ति प्रयुज्जते' इति । आत्रेयस्तु एकवचना-
न्युदाहृत्य 'अन्यत्रानभिधानमित्येके । किमात्रएवानभिधानमिति केचित्' इति । उवाच, ऊवतुः, ऊवुः उवक्त्य, उवविय, ऊव, उवाच, उवच, ऊचिव, यति भाद्रुः^२ वियमादिद्विरुन्त्य । वक्ता । वक्ष्यति । वक्तु, वक्तात्, वक्ता, वचन्तु, वग्धि । हेर्धित्वे कुत्वजश्त्वे । वचानि । अवक्तु, अवग, अवक्ताम्, अवचन्, अवक्तु, अवचम् । वच्यात्, वच्याता, वच्युः, वच्याः, वच्या, वच्याव । अशिपि उच्यात्, उच्यास्ता, कित्वात् 'वचि-
स्वपी'ति सम्प्रसारणम् । अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन् । 'अस्यति वक्ती'त्यङि 'वच उम्' इत्युम् । उक्त्यम् । यज्ञायज्ञियात्पर साम । 'पातृतुद्विवची'ति थक् । उक्त्यमधीते वेद वा औक्थिकः । 'क्रतू-
क्यादी'ति ठक्, अय च प्रत्ययो न सामवचनादिष्यते, किन्तु तल्ल-
क्षणौक्थिक्यनानि वर्तमानादिति वृत्त्यादौ स्थितम् । वक्तम् । 'गुधु-
विपविचची'ति चः । इन्दुवक्तो नाम देशः, ऐन्दुवक्तकः । 'कच्छाप्रिव-
क्तगतात्तरपदात्' इति शैपिको वुज् । शेषमपि ब्रूजादेशवत् । पारा-
यणिकैरय धातुर्नापाठीत्येतावतानार्पता नाशङ्का, 'अस्यतिवक्ती'त्यत्र
वृत्त्यादौ 'वच परिभाषणे ब्रूजादेशो वा' इत्युक्तत्वात् । तथा वच्या-
दिसूत्रे न्यासपदमज्जयौश्च^३ अस्यास्तिव स्यष्टम् । किञ्चान्तिपरस्यास्य
प्रयोगं प्रतिषेधन्तो भोजात्रेयादयोप्यवैवानुक्रूनाः । अयमाभृयीयश्च ।
इण्प्रभृतयोनुदात्ताः परस्मैपदिनः । इङ् त्वात्मनेपदी ॥ ५३ ॥

विद ज्ञाने ॥ एतदादयो रुदिपर्यन्ता उदात्ता उदात्तेतः । वेत्ति,
वित्तः, विदन्ति, वेत्सि, वित्यः, वित्य, वेद्मि, विदुः । विद्वः । विद्वः, वेद, विदतुः,

१ रनधिकार्यत्वात् ४ । पु अनधिगतार्थत्वादिति १ । ३ । पु पा ।

२ भोजोपीति १ । ३ । पु पा ।

३ रपीति १ । ३ । पु पा ।

ऽण् । विद्वांसोऽप्या सन्तीति विदुष्मती परिधीत् । 'तसौ मत्वर्थे' इति मत्वर्थोऽपि मत्वर्थत्वात्तस्मिन् परे सान्तत्वेन भत्वात् वसोऽस्त्वसारण-परपूर्वत्वयोः षत्वन् । विद्वासमाचष्टे इति णौ णाविष्टवदिति टिलोपे विद्वयतीति दौगा । तदयुक्तम्, इष्टवद्वावादेव भत्वे नित्यत्वा-त्पूर्व प्रसारणे पश्चाट्टिलोपे विद्वयतीति भाव्यमिति । टिलोपस्तु शब्दान्तरप्राप्त्या ऽनित्यः । विदितः । वेदयतीति वेदयः । 'अनुपसर्गा-ल्लिप्ते' त्यादिना ग्यन्ताच्छप्रत्यये शपि गुणायौ । शास्त्रवित्, प्रवित् । 'सत्सूद्विषे'त्यादिना क्तिप् । विदुरः । 'विद्विभिदिच्छिदेः कुरव्' इति कर्तरि कुरच् । वेदनशीलो विन्दुः । 'विन्दुरिच्छु'रित्यु-प्रत्यये नुमि निपात्यते । वेदः । 'हलश्च' इति घञ् । वैदिकः । अध्यात्मादित्वात् शैषिकष्ठञ् । वेदमाचष्टे वेदापर्याति । 'अर्थवेदस-त्यानामापुग्वक्तव्य' इत्यापुक् । आयुर्वेदमधीते वेद वा आयुर्वैदिकः । उक्त्यादित्वात् ठक् । सर्वं वेदास्सर्ववेदाः, पूर्वकलैके' 'त समासः, तान् अधीते वेद वा स सर्ववेदः, प्राग्दीव्यतीयस्याणः 'सर्वसादिर्द्वि-गोश्च ल' इत्युक्त्यादिपाठाल्लुक् । अत्र द्विगुयहण तद्वितार्थमित्यस्यैव स्मरणार्थमिति हरदत्तादयः । सर्ववेद एव सार्ववेदः । 'सर्ववेदादिभ्य-स्स्वार्थेऽपसङ्ख्यानम्' इति स्वार्थे ष्यङ् । चतुरो वेदानधीते वेद वा चतुर्वेदः । तद्वितार्थे द्विगौ प्राग्दीव्यनीयस्याणो 'द्विगोर्लुक्' इति लुक् । चतुर्वेद एव चातुर्वेदः । 'चतुर्वेदस्याभयपदवृद्धिश्च' इति ष्यजुभय-पदवृद्धिः । वित्तिः । 'मन्त्रे वृषे' त्यादिना स्त्रिया क्तिन् । विद्या । 'सज्ञाया समजे' ति क्यप् । चतस्रो विद्याश्चातुर्वेदम् । 'चतुर्वर्णा-दिभ्य उपसङ्ख्यानम्' इति स्वार्थे ष्यङ् । अनुशक्त्यादित्वादुभयपद-वृद्धिः । स्वार्थस्यापि तद्वितार्थत्वात् 'तद्वितार्थे' ति द्विगुः । विद्या-मधीते वेद वा वैदः । प्राग्दीव्यतीयोण् । वायसविद्यामधीते वेद वा वायसविद्विकः । 'विद्यालक्षणकल्पसूत्रान्तात्' इति उक्त्यादिपाठा-ट्ठक् । यदायं विद्यान्तस्सर्वसादिर्द्विगुर्वा तदा 'सर्वसादे द्विगोश्च ल'

इति प्रत्ययस्य लुकि सर्वविद्य इत्यादि भवति । अत्र ह्यदनः । 'चतु-
र्विद्यशब्दस्य ब्राह्मणादिपाठात्स्वार्थे षञ्, मनान्तरेणापि' चानुर्विद्य
इति । उक्त्यादौ 'विद्या च नङ्गुत्तत्रयस्य मनसं त्रिपुरं' इतिपाठ दङ्गादिपू-
र्वपदान् प्राग्दीर्घार्थायोगेन अङ्गुर्विद्य इत्यादि । त्रैविद्य इत्यत्र अवयवा
विद्या त्रिविद्यति' शाकपार्थिवादीनामुपमङ्गानामुत्तरपदानोपगच्छ' इति
तत्पुरुषत्वेन अङ्गुत्तत्वाद्गो लुङ् भवति । यदा तु द्विगुस्तदा त्रिविद्य
इत्येव । विदा । भिदादित्वादङ् । वेदना । 'घट्टिवन्दिविदिभ्यश्च' इति
युच् । ब्राह्मणवेद भोजयति, यय ब्राह्मण वेद तत्र भोजयतीत्यर्थः ।
'कर्मणि दृशि विदो' इति लामुन् । न वेदति न वेदा, । विदेरमुन् ।
'नक्षत्राणां वात्' इत्यादिना तत्र, प्रकृतिभावः । तत्र नवेदा इत्येक
वचनान्तपाठाद्विवचनान्तरे न प्रकृतिभाव इत्यत्रेयादयः । अय मत्ताया
दिवादौ, विचारणे रुदादौ त्रिनन्त्यानिशामेषु चुरादौ । विद्वच्च लाभे
तुदादौ ॥ ५४ ॥

अम भुवि ॥ अस्ति, स्तः, सन्ति, अमि, म्य, स्य अस्मि स्मः,
स्म', 'श्नमोरन्तोप, कृडिति सार्धधातुके इत्यपिटुवनेषु अन्तोपः ।
'नामम्यो'रिति सलोपः सकारादौ । विदामाम आमतुः, आमुः,
आमिथ, आसथु', आम, आमिव । 'अस्तेर्भू' 'आर्धधातुके' इति
भूभावेनप्रयोगे नेत्युक्तम् । अन्यत्र भूभावे, वभूव इत्यादि भवतिवत् ।
चान्द्रेरनुप्रयोगादन्यत्रापि क्वचिद्वृत्तिर्भावे नेत्यनइति 'प्रादुराम बहुलत-
पाच्छवि'रित्यादि समाहितम् । अत्र युक्तिर्न दृश्यते । धातुप्रदीपे तु
'अमतेराम' इत्युक्तम् । विस्तरे तु आमेति वृद्धवार्थे, आहेत्यव-
चार्थे इति विभक्तिप्रतिरूपकत्वेन समाहितम् । भविता । भविष्यति ।
अस्तु, स्तात्, स्तां, सन्तु, णधि, स्तात्, स्त, स्त, अदाति, अमाव ।
हावत्लोपे 'ध्वसोर्द्वौ' इति सकारव्यत्ययः । तस्य 'अमिदुवदत्रामन्

१ गाह इति ४ । ३ । १ । पा । २ समर्गति १ । २ । ४ । पु नास्ति ।

३ रुधादाविति । १ । ३ । ४ । पु पाठ । ४ तथन्तेति ३ पा ।

५ निशतत्वेनेति ५ । ४ । पु निपातः अयोगेनेति ३ पु पा ।

इत्यसिद्धत्वात् 'हुक्लभ्यो हेर्धि' रिति धिभावः । तातड्पक्षे एव न भवति, परेण तेन बाधात् । कृते तु तातडि स्यानिवत्त्वेनापि न भवति 'सकृद्वृत्तौ विप्रतिषेधेन^१' इति । आसीत्, आस्ताम्, आसन्, आसीः, आसम्, आस्व, 'अस्तिसिचोपृक्के' इतीडागमः । शनोरल्लोपस्य 'असिद्धवदत्र' इत्यसिद्धत्वादाडागमो द्विवचनादौ । स्यात्, स्याता, स्युः, स्या, स्या, स्याव, पिद्वचनेष्वपि यासुटो डित्वादल्लोपः । आशिषि भूयाद् इत्यादि । अभूत् । 'गातिस्ये'ति सिचो लुक् । 'आहिभुवोरीट्प्रतिषेधे' इति स्यानिवत्त्वनिषेधाद् अस्त्याश्रय ईणाभवति । प्रत्ययलक्षणसिञ्जाश्रयो न भवति, अत एव स्यानिवत्त्वनिषेधसामर्थ्यात् । यद्वा 'अस्तिसिच' इत्यस्य विद्यमानसिच इत्यर्थस्य भवतौ प्रतिपादितत्वाद् नैव सिञ्जाश्रयस्येष्टः प्रसङ्गः । सिचि वृद्धितुल्ला लुप्तत्वान्न भवति । अभूवन् । 'भुवो वुग्लुङ्लिटो' रिति वुक् । 'आत' इति नियमात् 'जुस्भावो न भवति । अभूः । 'भूसुवोस्तिडि' इति पिति गुणनिषेधः । शेष भवतिवद् आर्थधातुके नेयम् । 'श्रीणीभुवनुपसर्गे' इति घञ् अस्य लुग्विकरणत्वान्न भवति । तेन अपादाने भव इति 'ऋदोरप्' इति रक्षितः । विषन्ति प्रादुष्णन्ति, विव्यात्, प्रादुष्यात् । 'उपसर्गप्रादुर्भ्याम्' इति परस्मैपदपरस्यास्तिसकारस्य यकारपरस्याच्परस्य च ष इति षत्वम् । व्यतिस्ते, व्यतिपाते, व्यतिपते, व्यतिसे, व्यतिषाथे, व्यतिध्वे, व्यतिहे । व्यतिस्वहे । व्यतिस्त इत्येतान्यत्र 'उपसर्गप्रादुर्भ्याम्' इति षत्व द्रष्टव्यम् । व्यतिसे इत्यत्र शनसेरल्लोपे 'तासस्त्यो' रिति सलोपे प्रत्ययसकारस्यानस्तिसकारत्वात् पदादित्वाच्च षत्वाभावः । व्यतिध्वे इत्यत्र पूर्ववदल्लोपे, 'धि च' इति सलोपः । एव च सेध्वेशब्दयोः प्रत्ययमात्रमेवावशिष्यते । लोटि व्यत्यसै इत्यत्र नित्यत्वात् 'एत ऐ' इत्यैकारादेशे 'हृ एति' इत्येत्य निमित्ताभावाच्च भवति । अस्ति क्षीर यस्यास्त्येव ।

दृक् । १ सकृद्वृत्तिपरमाश्रयेति ३ । पु पाठः । विप्रतिषेधे इति १ । ४ । पु पाठः ।

— योमि इति १ । ३ । पु पा ।

१ नैमित्तिकधिक्रम ३ घनके ।

ऽस्मिन्हीराः ब्राह्मणी । नास्ति बाधको येषां ते नास्तिबाधकाः । 'सुब
धिकारे अस्तिजारादिवचनम् इति बहुव्रीहिः । नास्तिबाधका इत्यत्र
उत्तरपदपरत्वाभावात् 'नन्वेते नत्र' इति न भवति । उत्तरपदश-
ब्दश्च ममानवरताप्यवे कृष्टः । परलोकोन्तीति मनिर्यत्र अस्ति
परलोको नास्तीति मनिर्यत्र नास्ति । 'अस्तिनास्ति द्विष्ट मनि-
रिति मनुयाधिकार्येभ्योऽस्यति पदार्थे टक् । वचनममर्थान्नद्वय-
क्याच्चाप्य प्रत्ययो भवति । निपातौ वास्तिनास्ती । अत्र एव अस्तिमा
नित्याद्यपि भवति ॥ ५५ ॥

मृज्जु मृज्जौ ॥ कृडित्वविद्विक्त्यापेम् । मृज्जु-
उक्तं च 'मृज्जि मृज्जि विद्विक्त्यापेम्' इति कारिकाया वृत्तिः । मृजे-
कृडित्वादिटो विरुत्तेन भाव्यम् । अमागमश्च न दृश्यते । नदिनाम्य
पाठे प्रयोजनं चिन्त्यम् । के चित्त्वस्य स्याने विज्जि पठन्ति इति ॥
मार्ष्टि, मृष्टः, मृजन्ति, मार्ति, मार्ति, मृज्ज्वः, ब्रश्वादिना पत्वे तव-
गंस्य षुत्वम् । सकारे तु 'पडोः कस्मि' इति कचे सकारस्य पत्वम् ।
कृडितोन्त्यत्र 'मृजेवृट्' इत्येव वृट् । अजादौ कृडिति 'मृजेरजादौ
सङ्क्रमे विभाषा वृट्' इति रित्या वा वृट् । सङ्क्रमे नाम गुणवृट्-
प्रतिषेधविषयः । अत्र हरदत्तः । 'अचोत्पुच्यमानेपि यस्मिन् विधि-
स्तदादौ' इत्यजादाविति विट् । आदिग्रहणं मुञ्जाजादिपरिग्रहार्थम् ।
तेन व्यपदेशिवद्भावेनाजादौ यूपममृज्ज त्वया ममार्ज इत्यादौ न भवति
इति, आत्रेयस्तु । 'अत्रापि भवति' इति । तस्यादिग्रहणं 'यस्मि-
न्विधि' इति मिदुर्म्यैवानुवाद इति मतम् । यदाह । 'मृजेति भिदा-
दिपाठादह । गणपाठादेव वृट्भावश्च' इति । तथा च इको गुण-
वृट्' इत्यत्र भाष्ये । "मृजेवृट्तिरवस्ततो ऽचि, कृडित्यजादौ कृडिति

१ अयमिति नास्ति । १ । ३ । पु ।

२ अत्र इति नास्ति । १ । अत्र इति पा ३ । पु ।

३ वृज्जिरिष्यते इति २ पु० उपरिनिखित पाठः ।

४ अतीत्यधिकम् ३ । १ । पु ।

मृजे वृद्धिर्भवति, परिमृजन्ति परिमार्जन्ति । किमर्थमिदं, नियमार्थम्, अजादावेव कृडिति नान्यत्र । क्व माभूद् मृष्टः, मृष्टवानिति । ततो वा । वाचि कृडिति मृजेवृद्धिर्भवति इति ॥ ममार्जं, ममार्जतुः, ममृजतुः, ममार्जुः, ममृजुः, ममार्जिष्य, ममार्ष्टु, ममार्जिष्व, ममृजिष्व, ममृज्य । कर्दित्वादिकृत्पः । पूर्ववदजादौ वृद्धिविकल्पः । मार्जिता, मार्ष्टो । मार्जिष्यति, मार्ह्यति अनुदात्तोपदेशत्वस्यानार्पत्वाद् अमागमो नेत्युक्तम् । मार्ष्टु, मृष्टात्, मृष्टा, मृजन्तु, मार्जन्तु, मृष्टि, मार्जानि, मार्जाव, मार्जाम, आहुतमस्य पिब्य इति पित्वात्सङ्गमत्वाभावाद् नित्या वृद्धिः । अमार्ष्टु, अमृष्टां, अमृजन्, अमार्जन्, अमार्ष्टु, अमार्जम्, अमृज्य, तिप्सिपोहंलङ्गादिलोपे षत्वजश्त्ववर्त्वेण च 'रात्सस्य' इति नियमात् न सयोगान्तलोपः । मृज्यात्, मृज्याता, मृज्याः, मृज्या, 'मृजेवृद्धिर्गुणविषये' इति सा न भवति । आशिषि, मृज्यात्, मृज्यास्तामित्यादि । अमार्जिन् । 'इट ईटि' इति सिचो लोपः । अमार्जिष्टां, अमार्जिषुः, अमार्जिः, अमार्जिषम् । अनिट्पक्षे, अमार्जात्, अमार्ष्टां, अमार्जुः, अमार्जाः, अमार्जम् । भलादौ 'भलो भलि' इति सिञ्जलोपः । अन्यत्र प्रकृतेः पूर्ववत् षत्वकत्वयोः, 'आदेशप्रत्यययो' रिति षत्वम् । एव व्यतिमृष्टे, व्यतिमृजाते, व्यतिमृजते इत्यादावात्मनेपदेपि यथायोगे वृद्धिस्तदभावश्चोह्यः । मिमृदति, मिमार्जिषति । मरीमृज्यते । मरीमार्जति मरीमार्ष्टु । ण्वं ण्वीकरोरपि । मार्जयति । अमीमृजत् अममार्जत् । 'उरृत्' । मार्जित्वा, मृष्ट्वा । इट्पक्षे 'न त्वा सेट्' इति कित्त्वनिषेधाच्चित्य वृद्धिः । मृष्टः । मृष्टवान् । 'यस्य विभाषा' इतीरिणषेधः । सिक्तममृष्टम् । राजदन्तादित्वात्पूर्वकालस्य परनिपातः । मृज्यः । 'मृजे विभाषा' इति वा क्वप् । तदभावे ण्यति कुत्वे वृद्धौ च मार्ह्यः । तुन्दपरिमृजः । 'तुन्दशोक्रयोः परिमृजापनुदो' रित्यलसे कः । अन्यत्र तुन्दपरिमार्जं, कर्मण्यण् । मृजा । भिदादिपाठादङ् वृद्धभावश्च । मार्ष्टि-

शब्दश्चुरादौ वक्ष्यते । अपामार्गः । 'हलश्च' इति मजाया घञि 'उपसगस्य घञ्यमनुष्ये बहुलर्' इत्युपसगस्य दीर्घः । कमपरिमृ-
डित्यादौ क्तिवन्तस्य सुबपेक्षया मृजेर्दृष्टिर्न भवति, 'धातोस्वरूपग्रहणे
तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानम्' इति । कमपरिमृजमिच्छतीति विशेष्य 'सुप
आत्मनः क्यच्' इतिकर्मण एपितुरेवात्ममध्यस्थितः सुबन्तादिच्छाया वा
क्यञिति क्यचि मनाश्चान्तत्वेन धातोः कमपरिमृज्यशब्दात्तृचि 'क्यस्य
विभाषा' इत्यार्धधातुके परतः विधीयमाने क्यस्यादेलापे 'अतो
लाप' इत्यल्लापे कमपरिमृजितेत्यत्र मृजेर्दृष्टिर्न भवति, अल्लापस्य
स्यानिवत्त्वात् । 'क्यस्य विभाषा' इति समुदायलोपेपि 'न धातुलोप
इति वृद्धभावः । मार्जः र. । 'कञ्जिमृजिभ्या चित्' इत्यारप्रत्ययः ॥
मार्जालीयः सोमपात्रप्रक्षालनप्रदेशः । 'स्यान्नमृजे' रित्यादिनालीयप्र-
त्ययः । अय शौचालङ्कारयोर्युजादि. । मार्ज शब्दार्थ इति चुरादौ ॥ ५६ ॥

रुदिर अशुविमोचने ॥ रोदिति, रुदितः रुदन्ति रोदिति, रुदियः,
रोदिमि रुदिवः, 'रुदादिभ्यस्मावधातुके' इति वलादावित् । गतदादयः
पञ्च रुदादयः । रुदाद रुदन्तु, रुदादिय रुद, रुदाद रुदिव । रोदिना ।
रोदिष्यति । रोदिनु रुदितात्, रुदिना, रुदन्तु रुदिहि, रोदानि,
हौ परत्वादिति मङ्गलनपरिभाषया धिभावो न भवति । यद्वा तत्र
हन्यहणानुवृत्तेरिति कृते नैव धिभावप्रसङ्गः । अरोदात्, अरोदत्, अरु
दिताम्, अरुदन्, अरोदाः, अरोदः, अरोदम्, अरुदिव, 'रुदश्च पञ्चभ्यः'
'अङ्गाभ्यगानवयो' रिति हलादेः पितस्मावधातुकस्य अणुकस्य पर्याये.
णेडडागमौ । रुद्यात् रुद्याता, रुद्युः, रुद्याः, रुद्याम्, अत्र रुदादि
प्रकृति प्रत्ययविशेष चापेक्षमाणाभ्यामिड्ड्या लिङ्गाच्चापेक्षत्वेनान्तरङ्ग-
त्वात्पूर्वमेव यासुटि अणुकस्याभावाच्च तौ । स्वामी तु ईडेटौ पूर्व-
विप्रतिषेधेन बाधित्वा यासुट्' इति । आशिपि रुद्यात्, रुद्यास्ताम् ।
अरुदत्, अरुदताम्, अरुदन्, अरुदः, अरुदम्, अरुदाव, 'हरिना वा'

इत्यङ् । तदभावे सिच्, अरोदीत्, अरोदिष्टामित्यादि । रुदिषति । रुदित्वा । 'रुदविदे'ति त्वासनो क्त्वम् । रोहयति । रोहदीति, रोरोत्ति, रोहत्तः । 'रुदादिभ्यम्मावधातुके' इतीडागमो गणनिर्देशाच्च भवति । तथा लङि अरोरोत्, अरोरोरिति इडडागमावपि गणनिर्देशाच्च भवतः । अरोरुदीत्, अरोरुदीरिति 'यडो वा' इति पात्रिके ईटि द्रष्टव्यौ । 'रुदविदे'ति क्त्वम् यङ्लुगन्तादपि भवतीति रोहदिषति रोहदित्वा इति भवति । रोदयति । अरुरुदत् । रोदसी । 'असुन्' इत्यसुन्त्ययः । पुण्यवदादिवत् नित्यं द्विवचनान्तः । रोदयतीति रुद्रः । 'रोदोर्णिलुक्च' इति रक्कि णिलुक् । रुद्राणी । 'इन्द्रवरुणे'ति पुण्येणो ङीषानुक्तौ । शतं रुद्रा देवता अस्य शतरुद्रिय, शतरुद्रीयम् । 'शतरुद्रादृश्च' इति घञ्चौ । विधानसामर्थ्यादनयोः 'द्विगोर्लुक्' इति लुङ् भवति । यदि हि स्यादण एवास्तु लुक् । विदादय उदात्ता उदात्तेतः ॥ ५७ ॥

जिष्पृ शये ॥ उदात्तेदनुदात्तः । स्वपिति, स्वपन्ति, स्वपितः, स्वपिपि, स्वपिमि, स्वपिवः । 'रुदादिभ्य' इतीट् । सुप्यते । भावे यकि 'वचिस्वपी'ति सम्प्रसारणम् । सुपुप्यते । 'सुविनिर्दुर्भ्यस्सुपिभूतिसमा' इति कृतसम्प्रसारणस्य सुपेष्त्वम् । एवं व्यादेरप्युदहार्यम् । सुष्वाप, सुषुपतुः, सुपुपुः, सुष्वप्य, सुष्वपिथ, सुपुपथुः, सुषुप, सुष्वाप, सुपुपिव, किति 'वचिस्वपी'ति सम्प्रसारणे द्विवचनम् । अन्यत्र द्विवचने लिटि 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' इत्यभ्यासस्य सम्प्रसारणम् । अत्र ह्यभयेषा-यहणस्य प्रयेजन हलादिशेषात्पूर्वं सम्प्रसारणमित्युक्तम् । सर्वत्र क्तादिनियमादिट् । थलि भारद्वाजनियमाद्विकल्पः । अभ्यासात्परस्य आदेशसकारत्वान् षत्वम् । विसुष्वापेत्यादावकिद्वचनेभ्यासस्य सम्प्रसारणे 'पूर्वत्रासिट्' इति षत्वस्यासिट्त्वात् पूर्वं हलादिशेषे पश्चात्सुपिरुपस्याभावान् 'सुविनिर्दुर्भ्य' इति न षत्वम् । किति तु परत्वात्सम्प्रसारणे षत्वे च पश्चाद् द्विवचनमिति विषुषपत्तुर्पित्यादि भवति ।

न च द्विवचने पत्व्यामिदृश्वम् 'पूर्वत्रामिदृश्वमिद्विवचने' इति तत्रि
 वेधान् । स्वप्ना । स्वम्यनि । स्वपितु, स्वपिहि स्वपानि । अस्वपीन,
 अस्वपन्, अस्वपिताम्, अस्वपी' अस्वपः । अस्वपम्, अस्वपिव रुद्रादि-
 त्वात् पूर्ववदिडौ । स्वप्यात्, स्वप्याताम् । अशिपि मुप्यात्, मुप्याम्ना,
 'किदाशिपि' इति कित्त्वत्सम्प्रसारणम् । अन्वाप्सीत् अन्वाप्नाम्
 आम्बपुः, आम्बाप्की, अम्बाम्, 'वदव्रजे' इति वृद्धिः । मुपुप्सति ।
 'रुद्रविदे'त्यादिना कित्त्वे सम्प्रसारणे द्विवचनम् । मोपुप्सने ।
 'स्वपिष्यमिञ्चिजा यङि' इति प्रसारणे द्विवचनम् । विपुपुप्सनि विपो-
 पुप्सते इत्यादौ लिटौव सम्प्रसारणपत्वयोः द्विवचने हलादिशेष
 इति 'मुविनिर्दुर्भ्य' इति पत्व भवति । मास्वपीनि, मास्वप्नेत्यादौ
 यङ्लुकि इडाग्रभावे रुद्रिवत् । 'स्वपिष्यमी' इति सम्प्रसारण यङो
 लुका लुप्तत्वाद् न भवति । स्वापयति । अमूपुपन्, अत्र 'स्वापेयङि'
 इति सम्प्रसारणे परपूर्वत्वे लघूपधगुणे णौ चङुपधाया ह्रस्वत्वे द्विवचने
 'दीर्घा लघो' रिति दीर्घः । 'स्वापशब्दाद् घञन्ताणौ चङापि
 स्वापशब्दस्याविशिष्टत्वात् 'स्वापे'रिति सम्प्रसारणे अमूपुपदिति
 भवति' इत्यात्रेयः । णावलोपेन अन्तोपित्वात् 'दीर्घा लघो' रिति
 दीर्घा न भवति । मुष्वापयिषति । णौ मनि द्युतिष्वाये'सम्प्रसारणम्
 इत्यभ्यासस्य प्रसारणम् । 'स्तौतिण्योरेव' इत्युनरस्य पत्वम् । मुपु-
 ष्वापयिषति इत्यत्राकिल्लिङ्गत्वं हलादिशेषेणाभ्यासस्य मुपिरूपत्वा-
 भावात् 'मुविनिर्दुर्भ्य' इति न पत्वम् । मुष्वापकीयनी इत्यत्र
 स्वापेर्णुत् स्वापकः, तमिच्छन्तीनि 'मुप आत्मनः क्यच्' इति क्यचि
 'क्यचि च' इतीत्वे स्वापकीयशब्दात्सनि द्विवचने स्वापेरभ्यामस्यापि
 'द्युतिष्वायो' रिति प्रसारण न भवति । तस्याभ्यामनिमित्तप्रत्ययेना-
 नन्तर्येणैव लिङ्गत्वात्, स्वप्नक, स्वप्नज्ञौ । 'स्वपितुयेर्नेजिङ्' इति ताच्छी-
 लिकः कर्तरि नजिङ् । मुप्नो देवदत्तः, मुप्न देवदत्तस्य । 'जितः क्त'
 इति कर्तृभावयोर्वर्तमाने क्तः । 'क्तस्य च वर्तमाने' इत्यनभिहिते

कर्तरि षष्ठी । यत्तु वृत्तौ 'मतिबुद्धी' त्यत्र 'चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् सुप्त' इत्युक्तं तत् ताच्छीलिकेन नजिडा बाधो मा विज्ञायीति । स्वप्नः । 'स्वपो नन्' इति भावे नन् । अनुदात्तोऽप्ययं रुदादिकार्यानुरोधादुदात्तमध्ये पठितः ॥ ५८ ॥

श्वस प्राणने ॥ इतः प्रभृति शास्यन्ता उदात्ता उदात्तेतः । श्वसिति, श्वसितः, श्वसन्ति, श्वसिषि, श्वसिमि, 'रुदादिभ्य' इतीडागमः । शश्वास, शश्वासतुः, शश्वासिथ, शश्वास, शश्वास, शश्वासिब । श्वसिता । श्वसिष्यति । श्वसितु, श्वसिहि, श्वसानि । अश्वसीत्, अश्वसत्, अश्वसिताम्, अश्वसीः, अश्वसः, अश्वसम्, अश्वसिव, 'रुदश्च पञ्चभ्यः' 'अङ्गार्थे' तीडटावृत्तस्य । श्वसेत्, श्वसेना, श्वसेयुः, श्वसेः, श्वसेयम्, अत्र गणकार्यस्यानित्यत्वज्ञापनात् शपो लुङ् भवति । अनित्यत्व च समूहो घटादिपाठात् 'घटादयष्वित' इत्येष पित्वे सिद्धे पुनष्वित्करणात् ज्ञायते, एव च । 'न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्' 'न विश्वसेत्पूर्वविरोधितस्य' 'आश्वसेयुर्नि शाचराः' 'प्रत्ययादाश्वसन्त्य' इत्यादयः प्रयोगा उपपद्यन्ते । अश्वस्यादित्याद्यपि भवति । आशिषि, श्वस्यात् श्वस्यास्तामित्यादि । अश्वसत्, अश्वसिष्टाम्, अश्वसीः, अश्वसिषम्, । 'ह्यन्तत्तणश्वसे' ति 'अतो हलादे' रिति वृद्धिनिषेधः । शिश्वसिषति । शाश्वस्यते । शाश्वसीति, इत्यादि रुदिवत् । श्वासयति । अशिश्वसत् । श्वसनः । नन्द्यादि-त्वान्त्युः । श्वासः । 'श्याद्गुधे' त्यादिना णः कर्तरि । आश्वस्तः । निष्ठायामिष्ट नेच्छन्ति काशकृत्स्ना इति स्वामिकाश्यपौ । 'आदितश्च' इत्यत्र वृत्तिकारश्च 'चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वाद् अनिटत्वम्' इति । आन्नेयमैत्रेयौ तु आश्वसित इतीट चाहतुः ॥ ५९ ॥

अन च ॥ अनिति, अनितः, अनन्ति, अनिषि, अनिमि । प्राणिति । 'अनिते' रित्युपसर्गस्याङ्गिमित्तात्परस्य अनितेर्नकारस्य णत्वम् । अत्र केचित् । 'अन्त' इति वक्ष्यमाणमत्राप्यपकृष्य सम्बद्ध समीपवचनत्वं चाश्रित्य उपसर्गस्य निमित्तसमीपभूतस्य अनितिनकारस्य

णत्वमिति सूत्रार्थं वर्णयन्तो 'येन नाव्यवधानम्' इति न्यायेन प्राणि-
तीत्यादावेव णत्वमिच्छन्ति, न तु पर्यनिति इत्यनेकवर्णव्यवधाने ।
प्राण, प्राणतुः प्राणिय, प्राणिव । प्राणिता । प्राणिष्यति । प्राणितु ।
प्राणितात् प्राणत् । प्राण्यात् । आशिपि, प्राण्यात् प्राण्यास्ता, प्राणीत्
प्राणिष्टाम्, प्राणिः । इडीडडागमाः पूर्ववत् । प्राणिणिषति । प्राणयति ।
प्राणिणत् । 'उभौ साभ्यामस्य' इत्युपसर्गस्याविमिनात्परस्याभ्याम-
सहितस्यानितेर्नकारयोर्णत्वमिभ्युभयत्र णत्वम् । एतच्च सूत्र 'पूर्वचा-
सिद्धीयमद्विर्वचने' इत्यनाश्रित्योक्तम् । आश्रिते हि परन्वाणत्वे
पश्चाद् द्विर्वचन स्यादिति किं सूत्रेण । प्राणः । 'हनश्च' इति कण्ठे
घञ् । प्रा. प्राणौ, प्राणः, प्राणं, प्राणौ, प्राभ्या, कौ पदसंज्ञाया नलोपः ।
हे प्राण इत्यत्र 'न डिसम्बुधो' रिति नलोपे निषिद्धे तस्य 'पदा-
न्तस्य' इति णत्वनिषेध बाधित्वा 'अन्त' इति णत्वम् । उपसर्गस्या-
विमिनात्परस्य अनितेरन्तो नकारो णकारमापद्यतइति सूत्रार्थः ॥ ६० ॥

जत्त भत्तहसनयोः ॥ जत्तिति, जत्तितः, जत्तति, जत्तिपि, जत्तिमि,
'जत्तिन्यादयष्यट्' । इतिरिदमर्थं, जत्तिरिदमादयश्चान्ये यद् धातवो-
भ्यस्ता इत्यभ्यस्तत्वात् 'अदभ्यस्तात्' इति भेदभावः । जजत्त,
जजत्तिथ, जजत्तिव । जजत्तिता । जजत्तिष्यति । जजत्तितु, जजत्तिता, जजत्तु,
जजत्तिहि, जजत्तिणि । अजजत्तीत्, अजजत्तत्, अजजत्तिताम्, अजजत्तुः । 'सिज-
भ्यस्ते' ति भेर्जुस् । जज्यात्, जज्याताम्, अजापि चान्द्राः शपो
लुकमनिच्छन्तो जजेदित्याहुः । आशिपि, जज्यात्, जज्यास्ताम् । अज-
जत्तीत्, अजजत्तिष्टाम्, अजजत्तीः, अजजत्तिथ, रुदिवदिडादयः । जिजत्तिपति ।
जाजत्त्यते । जाजजत्तीति, जाजजत्ति । 'स्कारि' ति कनोप । जजयति ।
अजजजत्तत् । जजत्तत्, जजत्तौ, 'उगिदचाम्' इति नुम् 'नाभ्यस्ता-
च्छत्' रिति निषिध्यते । जजति कुलानि, जजन्ति कुलानीत्यत्र
जशशोः परयोः 'वा नपुंसकस्य' इति नुम् । अत्रात्रेयः । के चिद्वा-

मायणे यत्तशब्दस्य भक्षणार्थत्वेन व्युत्पादनादन्तस्यादिमाहुः, तच्चि-
 'न्यम्' इत्युक्तम् । रामायणोक्तिस्तु यत्त पूजायामित्यस्यानेकार्थत्वाश्रयेण
 निर्वाह्या ॥ रुदादयः पञ्च गताः ॥ ६९ ॥

जाय निद्राक्षये ॥ जागर्ति, जायतः, जायति, जागर्षि, जागर्मि,
 जायवः । जागराञ्चकार । 'उपविदजायभ्योन्यतरस्याम्' इति पक्षे
 आम्प्रत्ययः । आमभावे, जजागार, जजागरतुः, जजागरु, जजागरिष्य,
 जजागरयुः, जजागर, जजागार, जजागरिव । 'जायोऽविचिण्ण-
 ण्डित्सु' इति विचिण्णण्डित्सुभ्योन्यस्मिन् वृद्धिविषये वृद्धिनिषेधविषये च
 गुणः । 'अविचिण्णण्डित्सु' इत्यस्य^१ पर्युदासत्वात् उत्तमे णलि णित्वा-
 भावपक्षे 'सार्वधातुकार्धधातुकयो' रिति गुणो भवत्येव । प्रसज्यप्रतिषेधे-
 पि^२ 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा' इति 'जाय' इति प्राप्तस्य
 गुणस्यैवाय निषेध इत्यदोषः । एव च लङ्पि अजागरु रिति 'जुसि च'
 इति गुणो भवति । लडादीनां तसादेरपित्सार्वधातुकत्वेन ङित्वात् तत्र च
 पर्युदासात् 'जाय' इति गुणो न भवति । जागरिता । जागरिष्यति ।
 जागर्तु, जागरितात्, जायतां, जायतु । जायहि, जागराणि । अजागः,
 अजायताम्, अजागरुः, अजागः, अजागरम्, अजायव, तिम्रिषोगुणरपर-
 त्वयोः हल्ङादिलोपः । जाययात्, जाययातां, जाययुः, जाययाः,
 जाययां, जाययाव । आशिपि जागर्यात्, जागर्यास्तामित्यादि । कित्वा
 द्रुणः । अयं पूर्वविप्रतिषेधेन रिङ् बाधते । एवं जागर्यतइत्यादौ
 यश्चपि रिङ् बाधित्वा गुणो भवति । तथा च कातन्त्रसूत्राणि ।
 'जागर्तैः कारिते । यणाशिषोर्ये । परोक्षायामगुणे' इति, कारिता
 हेतुमणिणच् । यणिति यगुच्यते, आशीरित्याशीर्लिङ्, अनयोर्यकारादौ,
 परोक्षा लिट् । तत्रापिद्रुचने गुण इत्यर्थः । अजागरीत्, अजागरिष्टाम्,
 अजागरिदुः, अजागरी, अजागरिषं, 'ह्यन्तत्तणे'त्यादिना सिचि
 वृद्धेर्निषेधः । जिजागरिषति । 'सनि ग्रहगुहोश्च' इतीरण्यधस्तत्रै-

१ चिन्तनीयमिति १।३।४ पु. पा. ।

३ त्यजेति १।३।४ पु. पा. ।

२ प्रतिषेधेति ३।४ पु. पा. ।

४ तु इति १।३।४। पु. पा. ।

काच इत्यनुवर्तनादिह न भवति । जागरयति । अत्र गुणे कृते 'अत उपधाया' इति वृद्धिः 'अङ्गवृत्ते पुनर्वचनावविधिर्नष्टि नम्य' इति न भवति । यद्वा गुणविधानसामर्थ्यादेव न भविष्यति । एव च चिण्णलोः प्रतिषेधोऽर्थवान् । अन्यथा अजागारि जजागार इत्यत्र गुणे कृते पुनर्वृद्धिर्भविष्यतीति किं गुणनिषेधेन । लौ चडि अजजागरन् । 'सन्वल्लघुनि' इतीत्व येन नाव्यवधानन्यायेन एकवर्णेन व्यवधानएव भवति, न पुनरनेकेनेति इह न भवति । यत्तु अस्मृदृत्वरेनीत्वापवादेनात्ववचनेनानेकव्यवधानेपीत्व भवतीति जापन तत् तुल्यजातीयस्य जापनमिति नीत्यामयुक्तविषयमेवेति अत्रिदृष्टत् इत्यादावेव प्रवर्तने । यत्तु कातन्त्रे मनान्तरेणोक्तम् इत्वदीर्घयोः अजीजागरन् इति भवतीति, तदप्येव प्रत्युक्तम् । वृत्तिकारात्रेयवर्धमानादिभिरप्येनदृग्निम् । जागरूकः । 'जागरूक' इत्युक्तप्रत्ययः । आत्रेयस्तु 'जागरूक' इति सूत्र पठित्वा निपातमाह । जागरिनः । जागरितवान् । जागरित्वा । 'श्युकः किति' इत्यत्र 'एकाच' इत्यनुवृत्तेरिण्यपेधो न भवति जागरः । घञ् । जागर्या, जागरा । 'जागर्तेरकारो वा' इति भावे पक्षे शप्रत्यये यकि गुणः । अन्यथा त्वकारे गुणः । जागृविः । 'जृगृस्तृजागृभ्यः कित्' इति क्तिप्रत्ययः । 'जाय' इति गुणो ऽवीति पर्युदासाच्च भवति । 'जायोवि' इत्यत्र वृत्तौ । "केचिदिकारमुच्चारणार्थं वर्णयन्ति । तेन कृसावपि वकारादौ गुणो न भवति । 'जादवोसो अनुगमन्' इत्युक्तम् । आत्रेयस्तु । 'तथा च सति शसि जजागरु इति स्यात्' इति वृत्त्युक्तमिदं मतं दूषयित्वा "अमंयोगाल्लिङ्गित्" इति कृसाः कित्वे सिद्धे पुनस्तत्करणात् प्रतिषेधविषयारथस्यापि गुणस्य निषेध इति जजागृष इति भवितव्यम्" इत्याह । कैषटेपि कृसा भाषाविषयत्ववादिनां कित्वसामर्थ्यादगुणत्वमुक्तम् । अत्र वर्धमानः 'कृमावगुणत्वमेवाहुः जजागृषानिति' इत्याह । 'जायोवि' इतीकारस्याच्चार-

१ भवतीत्यधिकं १ पु. । २ अङ्गवृत्तेऽन्तु गुणो न भवति जजागृवान् इत्येव दृश्यते । ३ जागृवान् इति २ पु उपरिलिखित पाठः ।

णार्थत्वेपि क्त्वा वकारलोपे वर्णाश्रये प्रत्ययलक्षणाविधेधात् वकारादेरभा-
वाद्वादीति पर्युदासाभावात् 'जाय' इति गुणे जागरिति भवतीत्येके ।
अन्ये तु वर्णस्य प्राधान्याश्रयेण प्रत्ययलक्षणाभावो न तु गुणाभाव
इति, यथा अतृणेडित्यत्र हलादौ पिति सार्वधातुके विधीयमानेमा-
गमः प्रत्ययलक्षणेन भवति तथाऽत्राप्यधीति पर्युदासेन भवितव्यमिति
अगुणत्वे तुकिं जायदिति भवतीत्याहुः ॥ ६२ ॥

दरिद्रा दुर्गतौ ॥ दरिद्राति, दरिद्रितः, दरिद्रति, दरिद्रासि,
दरिद्रिथः, दरिद्रिथ, दरिद्रामि, दरिद्रिवः । 'इदृद्रिद्रस्य' इति
हलादौ क्ति सार्वधातुके इत्त्वम् । अजादौ तु 'श्नाभ्यस्तयोरात्'
इत्याल्लोपः, दरिद्रां चकार । 'कास्यनेकाच् इति वक्तव्यं चुलुम्पा-
द्वर्थम्' इत्याम्प्रत्ययः । अत्र काश्यपः, आमो विकल्पमुक्त्वा ददरिद्रौ
ददरिद्रवान् इत्युदाजहार । एवं तरङ्गिणीकारोपि । अत्र मूलं पाराय-
णिकेनोक्तम् । "आत औ णल' इत्यत्र प्रथमातिक्रमे कारणाभावा-
दोकारवचनेनापि पपावित्यादिसिद्धौ औकारवचनं 'दरिद्रातेरार्धधातुके
लोपो वक्तव्य' इत्याल्लोपे ददरिद्रावित्याद्वर्थमेवार्थवत्" इति ।
'वस्वेकाच्' इत्यत्र वृत्तिकारेण "दरिद्रातेस्तु 'कास्यनेकाज्यहणं चुलु-
म्पाद्वर्थम्' इत्यामा भवितव्य, दरिद्रांचकार इति । अथाप्यान् क्रियते
तथापि 'दरिद्रातेरार्धधातुके लोपस्सिद्धश्च प्रत्ययविधौ' इति प्रागेव
प्रत्ययोत्पत्तेराकारलोपे कृते इडागमस्य निमित्तं विहतमिति नेडागमो
भवति ; ददरिद्रवान् इति भवितव्यम्" इत्यभ्युपगम्यवादेनामभाव उक्तः ।
अभ्युपगमस्य^१ मूलम् 'आत औ णल' इत्यौकारवचनमाह हरदत्तः । आत्रे-
योस्या^२ न्नित्य इत्युक्त्वा वृत्तिकारोक्तमभ्युपगम्यवाद इत्याह । दरि-
द्रिता । दरिद्रिष्यति । दरिद्रात्, दरिद्रितात्, दरिद्रितां, दरिद्रिहि, दरि-
द्राणि । अदरिद्रात्, अदरिद्रिताम्, अदरिद्रुः । 'सिजभ्यस्ते' ति "जुसि

१ भाष्यमिति १।३।४ पु. पाठः । २ तुकीति १।३।४ पु. नास्ति ।

३ चेत्यधिकं १।३।४। पु. ।

४ योप्या मिति १।२।४ पु. ।

५ भेरित्यधिकं १।३ पु. ।

‘इनाभ्यस्तपोरान’ इत्याकारलोपः । ‘लङ्गशाकटायनस्यैव’ इति जुस्विकल्पो भावस्यायामेव । ई हल्यघो’ रिनीत्व च यथा न भवति तथा जहातौ घृत्यते । अदरिद्राः, अदरिद्राम् । दरिद्रियान्, दरिद्रिया-
ताम् । आशिषि, दरिद्रियात् दरिद्र्यास्ताम् । आर्धधातुकत्वादातो
लोपः, अदरिद्रीत्, अदरिद्रिष्टाम्, अदरिद्रिषुः, अदरिद्रीः, अदरि-
षम्, ‘अद्वयतन्यां वा’ इति ‘दरिद्रातेरार्धधातुके’ इत्याल्लोपस्य विक-
ल्पनात्तदभावे सगिटोरदरिद्रासीदित्यादि । चिणि अदरिद्रि । अलो-
पाभावे युक्ति अदरिद्रायि । दिदरिद्रासति दिदरिद्रिषति । ‘तनिपति-
दरिद्राणाम्’ इति इडिकल्पः । इडभावे

न दरिद्रायके लोपो दरिद्राणे च नेष्यते ।

दिदरिद्रासतीत्येके, दिदरिद्रिषतीति वा ॥

इत्युक्तत्वादाल्लोपाभावः । दरिद्रायकः । खल् । दरिद्राणः ।
ल्युट् । निष्ठाया दरिद्रित इति । ‘यस्य विभाषा’ इतीगणपेधस्तु
कृतीप्रभृतीनामीदित्वेन तस्यानित्यत्वज्ञापनाच्च भवति । दरिद्रातीति
दरिद्रः । पचाद्यच् । ‘स्याद्वये’ त्याकारान्तलक्षणस्तु षो न भवति,
‘दरिद्रातेरार्धधातुके’ इत्यस्य विषयमप्तमीत्यात् प्रागेव प्रत्ययोन्य-
सैराल्लोपात् । दद्रूः । दरिद्रायालोपश्च’ इतीकाराकारयोर्लोपः,
ऊकारप्रत्ययश्च । या इति इकाराकारयोर्निर्देशः । दद्रुणः । पामादिषु
‘दद्रुं ह्रस्वत्वं च’ इति पाठाच्चप्रत्ययो ह्रस्वत्वं च ॥ ६३ ॥

चकासु दीप्तौ ॥ चकास्ति, चकास्तः, चकासति, चकास्मि,
चकास्मि, चकास्वः । चकासांचकार । ‘कास्यनेकाव’ इत्याम् । चका-
सिता । चकासिष्यति । चकास्तु, चकास्तां, चकासतु, चकाधि, ‘धि
च’ इति सलोपः । के वितु ‘धि च’ इति सिचो लोपमिच्छन्तः
चकाडि इति सकारस्य दत्वमुदाहरन्ति । तत् ‘यथा तु भाष्यं तथा
चकाधीत्येव भवितव्यम्’ इति वदता इत्तिकारेणैव प्रत्युक्तम् । अच-

१ उणादौ तु ‘दरिद्रातेरालोपश्च’ इत्येव दृश्यते ।

२ अश्वत्थमिति १ । २ । ३ पु पा ।

कात् । 'तिप्यनस्ते' रिति सकारस्य दत्वम् । अचकास्ताम्, अचकासुः । 'सिजभ्यस्ते' ति जुस् । अचकात्, अचकाः । 'सिपि धातो र्वा' इति ह्रस्वदत्त्वे । अचकासम् । चकास्यात्, चकास्याताम् । आशिषि चकास्यात् चकास्यास्ताम् । अचकासीत्, अचकाशिष्टाम्, अचकासीः, अचकासिषम् । चिचकासिपति । चकासयति । अचीचकासत्, अदित्वात् 'णौ चङि' इति न ह्रस्वः ॥ ६४ ॥

शासु अनुशिष्टौ ॥ अनुशिष्टिर्विविच्य ज्ञापनम् । अयं द्विकर्मकः । माणवकं धर्मं शास्तीति । कर्मणि लादिकार्यं सर्वं ब्रवीतिवच्चेयम् । शास्ति, शिष्टः, शासति, शास्ति, शिष्टः, शिष्ट, शास्मि, शिष्वः, शिष्वः, 'शास इदङ् हलो' रित्यङि हलादौ कङिति चेत्वम् । 'शासि-वसी' तीणः^१ परत्वे षत्वे ष्टुत्व तवर्गस्य । शशास, शशासतुः, शशासिथ, शशास, शशासिव । शसिता । शसिष्यति । शास्तु, शिष्टात्, शिष्टां, शासतु, शाधि, शिष्टं, शिष्ट, शासानि, शासाव, है 'शा है' इति शाभावे, तस्य च 'असिद्ववदत्र' इत्यसिद्वत्वात् 'हुभन्त्यो हेधि' रिति धित्वम् । अशात्, अशिष्टाम्, अशासुः, अशा, अशात्, अशिष्टम्, अशासम्, अशिष्व, तिप्सिपोः पूर्ववत् दत्वरुत्वे । शिष्यात्, शिष्याताम् । आशिषि शिष्यात्, शिष्यास्ताम् । अशिषत्, अशिषताम्, अशिषन्, अशिषः, अशिषम्, अशिषाव, 'सर्तिशास्ती' त्यङ् । अत्र 'चकारेण परस्मैपदानुकर्षणमुत्तरार्थम् । अयं तु योगविभागसामर्थ्यादात्मनेपदेषु भवति' इति वृत्तितद्वाख्यानेष्वभिधानाद् व्यत्यशिषत व्यत्यशिषाताम् इत्यङेव भवति । कर्मणि तेशब्द^२ परत्वात् 'चिण्भावकर्मणे' रिति चिण् भवति । अशासीति । शिशसिषति । शेशिष्यते । परत्वाद् द्वित्वे कृते द्विवचनम् । शशासीति, शशास्ति, शाशिष्टः, प्रकृतिग्रहणन्यायेन 'शास' इत्वम् । 'सर्तिशास्ती' ति तिपा निर्देशात् अशाशासीदित्यत्राङ् न भवति । शासयति । अशशासत् । 'नालोपि शासु' इत्युपधाह्रस्वनिषेधः ।

१ शासि वसीति ष, ष्टुत्व तवर्गस्येति १ । २ । ३ पु. पा. ।

२ तशब्द इति १ । ३ पु. नास्ति ।

शिष्यः । 'गन्तुंशामु' इति क्यप् । शास्यन्तु शमु हिमायामिति
 भौवादिकस्य 'हन्त्यर्थोश्च' इति चुरादिपाठान्तर्ये गिर्वान्युक्तमात्रेण ।
 शास्तेर्हन्तुमगणावपि शक्यते व्युत्पादयितुम् । दुग्शामनः । भाषाया
 शामियुधिदृशिगृषिपृषिभ्यो युञ्जन्त्य इति खल्यं युच् । आर्शाः ।
 क्रिपो लोपे प्रत्ययलक्षण्येन हलादिकित्परत्वादित्वे पदत्वेन सकारस्य
 हत्वे 'वोरुपधाया' इति दीर्घः । न चास्ति 'वर्णाश्रये नास्ति प्रत्यय-
 लक्षणम्' इति, यत्र वर्णस्य प्राधान्येनाश्रयणं तत्र तद्व्युत्पन्नत्वात् ।
 शिष्टा शासित्वा । 'उदिनो वा' इनीद्विकल्पः । शिष्टः । 'यस्य
 विभाषा' इत्यनिट्त्वम् । शिष्टिः । 'तिनुत्रे' तीणिण्येधः । शास्ति
 शब्दस्तु अस्माद्वा हिमार्थाद्वा णिचि किनि व्युत्पाद्यः । बाहुनकाद
 युच्चा न बाधः । तथा च 'अचः परस्मिन् इत्यत्र भाष्यम् । 'पाचयतेः
 पाक्तिः याजयतेर्याष्टि' इति । औणादिक इति मैत्रेयः । हिमार्थस्य
 औणादिक इत्यात्रेयः । शास्ता बुट्, प्रशास्ता च्छित्विविशेषः । 'तृन्तृचौ
 शमितदादिभ्यम्मजायां चानिटौ' इति नृच्यनिट्त्वम् । 'अप्तृन्
 इत्यादिना मर्जनमस्यानेऽमम्बुटौ प्रशाम्शब्दस्य उपधाया दीर्घः । अत्र
 'प्रोपसर्गस्यातन्त्रत्वात् शास्तुरण्य दीर्घो भवति इत्यात्रेयः । प्रशा-
 म्नुर्भावकर्मणी प्राशाम्ब्रम्, उद्गात्रादित्वादज् ॥ श्वमादय उदात्ता
 उदात्ततः ॥ ६५ ॥

दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः ॥ दीधीते, दीध्याते, दीध्यते, दीधीषे,
 दीधीष्ये, दीध्ये, दीधीवहे, अजादौ 'एरनेकाच' इति यण् । 'यीवर्ण-
 योर्दीधीवेज्यो' इति यकारादाविकारादौ च विधीयमानयीकारलोप
 इटि न भवति । नित्यत्वेन टेरेस्वइवर्गाभावान् । दीध्याचक्रे, 'दी-
 धीवेव्रीटाम्' इति गुणे निषिद्धे यणादेशः । दीधिता । दीधिष्यते ।
 इटि 'यीवर्णयो' रितीकारलोपः ॥ दीधीता, दीध्याना, दीधीष्व,
 दीध्ये, दीध्यावहै, आटि वा ऽगुणत्वम् । अदीधीत, अदीध्याताम्,

अदीधीयाः, अदीधि, 'यीवर्णयो' रिति^१ लोपः । दीधीत, दीधी-
याता, लिङस्सलोपे 'यीवर्णयो' रिति लोपः । आशिषि, दीधीषीष्ट,
अदीधिष्ट, अदीधिष्ठाः, अदीधिषि, द्विदीधिषते । दीधयति, 'दीधी-
वेज्यो' रिति वृद्धिनिषेधे, 'यीवर्णयो' रिति लोपे शपि णेर्गुणायौ^२ ।
दीधितिः । संज्ञाया क्तिवि 'तितुत्रे' तीणिणषेधो न भवति, 'अपहा-
दीनाम्' इति तत्रोक्तत्वात् ॥ ६६ ॥

वेवीङ् वेतिना तुल्ये ॥ वी गतीत्यनेन तुल्येर्ध्वं वर्ततइत्यर्थः ।
पूर्ववदुदाहरणादीनि । सेटावात्मनेभाषौ इमौ छान्दसौ इति भाष्य-
वार्तिकयोः स्थितम् । वृष्टानुविधिश्छन्दसि । अस्माभिस्तु कालापमता-
नुसारेण उदाहरणप्रदर्शनं कृतम् । जितित्यादयो गताः ॥ ६७ ॥

वस वस्ति स्वप्ने ॥ अयं पाठो मैत्रेयान्नेयादीनाम् । अत्र केचित् ।
वस्तीति न पृथग्धातुः, किन्तु वसरेव शितपा निर्देशार्थभेदात्पुनः कृत
इति । स्वामी तु 'वस वसने' इत्याद्यमेव पपाठ । वसनं च स्वप्नः ।
सस्ति, सस्तः, ससन्ति, सस्सि, सस्मि । ससास, सेसतुः, सेसुः, सेसिष,
सेस, ससास, ससप्, सेसिव, एत्वाभ्यासलोपौ । ससिता । ससिष्यति ।
सस्तु, सधि । 'धि च' इति सलोपः । 'अतो हे' रिति स्यानिबद्धा^३वेन
हेर्लोपो न भवति, सलोपस्य पूर्वत्रासिद्धत्वात् । ससानि । असत्,
असस्ताम्, असः, असत्, 'तिष्यनस्ते' रिति दत्वम् । सिपि तु 'सिपि
धातोर्ह्रा' इति ह्रस्वं च । हल्ङ्यादिलोप उभयत्र । सस्यात्, सस्याताम् ।
आशिषि सलोपाभावो विशेषः । असासीत्, अससीत् । 'अतो हलादे'
रिति वा वृद्धिः । सिससिषति । सासस्यते । सासस्ति । सासयति । असी-
वसत् । सस्यम् । 'माच्छाससिसूभ्यो य' इति यः । सस्यको मणिः ।
'सस्येन परिज्ञात' इति कन् । अत्र सस्यशब्दो गुणवाचीति हरदत्तः ।
गुणैः परिगतो ज्ञात आकारशुद्ध इत्यर्थः । साक्षा, गवां कण्ठकम्बलः ।

१ यीत्यधिकं १ । ३ पु० ।

४ यदिशापति ३ पु० पा० ।

२ यीत्यधिकं १ पु० ।

३ अत्वादिति ३ पु० पा० ।

‘रात्रामात्रास्यूणाञ्जीणा’ इति निपात्यते । सस्ति, सस्तः, संस्तन्ति, ‘स्को’ रिति सलोपोत्र न भवति, बहूना समवाये द्रुयोस्मयोगसंज्ञा-भावादित्यात्रेयमैत्रेयौ । ह्रान्दमत्वावेहास्माभिरयमर्थः प्रपञ्च्यते^१ । तथा च ‘जक्षित्यादयष्यट्’ इत्यत्र हरदत्तः । ‘यसयस्ती ह्रान्दसौ, वशि-रपि । तस्यापि भाषाया न प्रयोगस्माधुः, भाष्यवार्तिककारौ चेत्प्रमा-णम्’ इति । तथा च भाष्यमपि ‘यसिवशी ह्रान्दसौ’ इति । अत्र कैयटः । “‘यसिवशी’ इति । यस यस्ति स्वप्ने इति ये न पठन्ति केवलं ‘यस स्वप्ने’ ‘वश कान्तौ’ इति तन्मतेनैनदुक्तम् । अन्य त्वाहुः । यस्तीति धातुपाठ एव श्रितपा निर्देशः कृतः । अर्थभेदात् द्विः पठितः । अन्ये तु । यस स्वप्ने इति न पठन्ति ” इति । अत्र सुधाकरः । “‘यस यसने’ ‘वश कान्तौ’ ह्रान्दसौ ‘जक्षित्यादयष्यट्’ इत्यत्र भाष्यादेकवधृतौ ‘वष्टि भागुरिरल्लोपम्’ इति दुर्लभः प्रयोग” इति ॥ ६९ ॥

वश कान्तौ ॥ वष्टि, उष्टः, उशन्ति, वक्षि, उष्टः, वश्मि, उश्वः, वश्वादिना भलि पदान्ते च यत्वम् । यहिज्यादिना क्ङितिः प्रसारणम् । उवाश, ऊशतुः, उवशिय, उवशिव, क्ङिति यहिज्यादिना कृते प्रसारणे द्विर्वचनम् । अन्यत्र तु कृते द्विर्वचने ‘नित्यभ्यासस्य’ इति प्रसारणम् । वशिता । वशिष्यति । वष्टु, उष्टात्, उष्टाम्, उष्टु, वशानि, हेर्धित्व-ष्टुत्वजश्त्वानि ॥ अवष्ट, औष्टाम्, औशत्, अवष्ट, औष्टम्, औष्ट, अवशम्, औश्व, क्ङिति प्रसारणे अडागमः । अन्यत्र तु ह्रज्यादिना तिस्यो-र्लोपः । उश्यात्, उश्याताम् । आशिषि उश्यास्ताम् । अवशीत्, अवशीत्, ‘अतो हलादे’ रिति वा वृद्धिः ॥ विशिशिषति । वावश्यते । ‘न वशः’ इति यङि प्रसारणनिषेधः । वावष्टि, वावष्ट इत्यादौ श्रितपा निर्दे-शात् यहिज्यादिना प्रसारणं न भवति । वाशयति । अवशीवशत् । वशित्वा । ‘न त्वा सेट्’ इत्यकित्वम् । वशा, करिण्यादिः । पचा-वचि टाप् ॥ गोवक्षा । ‘पोटायुवती’ त्यादिना समासः । वन्ध्या

गौरित्यर्थः । वशः । 'वशिरण्योरुपसङ्ख्यानम्' इति भावेऽपि ॥ वश
गतौ वश्यः । 'वशं गत' इति द्वितीया^१न्तात् गत इत्यर्थे यत् ।
उशिक्ष् अन्येति । 'वशः क्विञ्च' इतीजिप्रत्ययः । कित्वात्प्रसार-
णम् । उशिगेव औशिजः । प्रज्ञादिः । उशीरम् । 'वशेः कित्' इती-
रन्त्राणादिकः । उशना । 'वशेः कनसि' रिति कनसिः 'ऋदुशनस्फु-
रुदशेनेहसा च' इत्यसम्बुद्धौ सावनडादेशः । सम्बुद्धावपि पक्षे अन-
डिष्यते 'न डिस्सम्बुद्धौ' रिति नलोपनिषेधस्य पाक्षिकत्वं च । तेन
त्रीणि रूपाणि भवन्ति उशनः उशनन् उशन इति । तथा च श्लोक-
वार्तिकम् ।

सम्बोधने तूशनसः त्रिरूपं सान्त तथा नान्तमथाप्यदन्तम् ॥
इति ॥ यसादय उदात्ता उदात्तेतः ॥ ७० ॥

चर्करीतं च ॥ यङ्नुगन्तमयादादिक परस्मैपदि चेत्यर्थः । तत्र
तत्रोदाहरणेषु तथैवोदाहृतम् ॥ ७१ ॥

हुङ् अपनयने ॥ देवदत्ताय निहुते, निहुवाते, निहुवते, निहुषे,
निहुवे । अजादावुवङ् । 'श्लाघहुङ्स्याशपां ज्ञीस्यमान' इति ज्ञीप्स्य-
मानस्य सम्प्रदानत्वम् ॥ निजुहुवे, निजुहुवाते, निजुहुविषे, निजुहुविध्वे,
निजुहुविद्धे, उवङि 'विभाषेष्ट' इति मूर्धन्यविकल्पः । निहोता ।
निहोष्यते । निहुताम्, निहुष्व, निहुवै, आटि गुणः । न्यहुत, न्यहुवा-
ताम्, न्यहुयाः, न्यहुहि, न्यहुवहि । निहुवीत, निहुवीयाताम् ।
आशिपि निहोषीष्ट । आर्धधातुकत्वेनाडित्वाद्गुणः । न्यहोष्ट, न्यहोष्टाः,
न्यहोध्वम्, न्यहोषि । निजुहूषते, 'इको भूत' इति कित्त्वे 'अङ्भन-
गमां सनि' इति दीर्घः । निजोहूयते । निजोहूवीति, निजोहूति ॥
निह्रावयति । न्यजुहूवत् । अनुदात्त आत्मनेभाषः ॥ ७२ ॥

इति श्रीपूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वरकम्पराजसुतसंगममहारा-
जमहामन्त्रिणा मायणसुतेन माधवसहोदरेण श्रीसायणार्येण विरचितायां
माधवीयायां धातुवृत्तौ अदादयः सम्पूर्णाः ॥

अथ जुहोत्यादिः ।

हु दानादनयोः ॥ दानादानयोरित्यन्ये । अत्रियस्तु हु दाने
इति पठित्वा, आदानेऽप्येके इति । गनदादयो द्वीपर्यन्ता अनुदाताः
परस्मैपठिनः । इह दानं चेदित्थनाधारे त्यक्तहविःप्रक्षेप इति । हवि-
षोऽपि जीवत्यादौ प्राणादिवन् धात्वर्थेऽन्तर्भावान् अकर्मकत्वमेके मन्यन्ते ।
वयं तु धात्वर्थः प्रक्षेपमात्रम् स च स्वभावाच्चेदित्थनाधारहविषी निय-
मेनापेक्षत इति । तथा च 'तृतीया च होश्छन्दसि' इत्यत्र भाष्ये
जुहोतिः प्रक्षेपे वर्तन इत्युक्तम् । एव च यत्रागू जुहोतीत्यादयस्सकर्मकाः
प्रयोगा उपपद्यन्ते । उक्तं चात्रैव भाष्ये 'अथ द्वितीया मिट्वा, कर्म-
णीत्येव' इति । एव च 'तृतीया च होश्छन्दसि' इति कर्मणि तृती-
याविधानमप्युपपद्यते । जुहोति, जुहुतः, जुहुति, जुहोषि, जुहोमि,
जुहोत्यादिभ्यश्च' इति शपः श्लौ, 'श्लौ' इति धातोर्द्विर्वचने
'कुहोश्चु' इत्यभ्यासस्य चुत्व भकारः । तस्य 'अभ्यासे चर्च' इति
जश्च जकारः । पिति गुणः । 'उभेभ्यस्तम्' इत्यभ्यस्तत्वात् 'अद-
भ्यस्तात्' इति भ्रम्याद्वाचे 'हुनुवोम्' इति धातुके' इत्यजादौ कृडिति
सार्वधातुके विधीयमानो यण भवति । जुहाव, जुहुवतुः, जुहविथ,
जुहोथ, जुहुवथु, जुहुव, जुहाव, जुहव, जुहुविथ, क्रादिनियमादिट् ।
यलि भारद्वाजनियमादिकल्प । अजादौ कृडित्युवङ् । अन्यत्र गुणवृद्धी ।
सुहवांचकार । 'भीहीभुहुवां श्लुवच्च' इति पक्षे आम्प्रत्ययः श्लुवद्वा-
वाद् द्विर्वचन च । होता । होष्यति । जुहोतु, जुहुता, जुहुतु, जुहुधि,
'हुजल्भ्यो हेर्धि' इति धित्वम् । जुहवानि । आटि पित्वाद्गुणः ।
अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहवुः, 'हुशुवो' इति यण परत्वाद्धाधित्वा
'जुसि च' इति गुणः, अजुहोः, अजुहुतम्, अजुहवम् । जुहुयात्, जुहु-
याताम्, जुहुयुः । आशिषि, हूयात्, हूयास्ताम्, 'अकृत्सार्वधातुकयो'-
रिति दीर्घः । अहौषीत्, अहौषात्, अहौषुः, अहौषीः, अहौषम्,
अहौषम्, अहौष्व, मिचि वृद्धिः । जुहुषति । 'इको भन्' इति

कित्वात्, 'अज्झने' ति दीर्घः । जोहूयते । जोहोति । अत्र विस्तरे
 'हुशुघो' रिति सूत्रं 'जुहोतेस्सार्वधातुके' इति पठित्वा शित्पा
 निर्देशात् जोहुवति इत्यत्र यण् नेत्युक्तम् । तन्मुनित्रयेणानादृतम् ।
 हावयति । अज्जहवत् ॥ जुहुद्वाह्यः । 'नाभ्यस्ताच्छतु' रिति नुभि-
 वेधः । जुह्वति ब्राह्मणकुलानि जुह्वन्ति वा ब्राह्मणकुलानीत्यत्र 'वा
 नपुंसकस्य' इति जश्शसोर्नुभ्विकल्पः । जोहूतः ऋणमृगः, जुहूत्क
 णमृग इति प्रजादिपाठादण् । होता, होतारौ, तृन्विधा 'वृत्त्वितु
 चानुपसर्गस्य' इति तृन् औणादिको वा, 'अप्तृन्' इत्यादिना
 सर्वनामस्थाने दीर्घः । होतुर्भावकर्मणी होत्रम् । उद्गात्रादित्वात् यवा-
 दित्वाच्च अज्जणौ । वीरहोता । याजकादित्वात्समासः । हाव्यम् ।
 'ओरावश्यक' इति ण्यत् । जुहूः । 'जुहोतेर्दीर्घश्च' इति क्तिपि दीर्घौ
 द्वित्व च । जुह्वावित्यादौ 'ओस्सुपि' इति यण् । होमः । 'अर्तिस्तु'
 इत्यादिना मन् । होत्रम् । घृन् ॥ हविः । 'अर्तिशुची' त्यादिना
 हसिः । हविषि हितं हविष्यम् । 'उगवादिभ्य' इति यत् । होत्रा,
 अत्विजां वाचकः । 'हुयामा' इति स्त्रन् । स्वभावतोयं अत्विस्त्वपि
 स्त्रीलिङ्ग इति 'होत्राभ्यश्च' इत्यत्र हरदन्तः । अयं प्रीणनार्थापीति
 भाष्ये । तथा च 'अग्निषु हूयमानेषु' इति प्रयोगो दृश्यते । तर्प्यमाणे
 ध्विति ह्यत्रार्थः ॥ १ ॥

जिभी भये ॥ चोराद्विभेति, बिभितः, बिभीतः, बिभ्यति,
 बिभेपि, बिभीथः, बिभिथः, बिभीथ, बिभेमि, बिभीवः, बिभिवः,
 'भीत्रार्थानां भयहेतु' रिति भयहेतोः कारकस्य अपादानत्वम् । 'भियो-
 न्यतरस्याम्' इति हलादौ कृडिति सार्वधातुके वा इकारः । व्यतिबि-
 भीतइत्यादावात्मनेपदेष्वयमित्त्वविकल्प उदाहार्यः । व्यतिबिभ्यत-
 इत्यत्र 'आत्मनेपदेष्वनत' इत्यद्वावे 'परिहृत्यापवादविषयमुत्सर्गाभि-
 निविशते' इति न्यायेन द्विर्वचनोत्तरकालमनेकादित्वात् 'एरनेकाच'

इत्यपवादस्य यणो भावित्वात् पूर्वमियङ् न प्रवर्तते । यद्वा । अन्तरङ्ग-
त्वात् 'श्लौ' इति द्विर्वचने पश्चादद्वाव इति नैव इयङ् प्रसङ्गः ।
बिभाय, बिभ्यतुः, बिभयिष, बिभेय, बिभ्यिष, क्तादिनियमादिट् ।
यलि भारद्वाजनियमादिकल्पः । बिभयांचकार । 'भीही' त्यादिना
पठे आम्प्रत्ययः श्लुषद्वावश्च । भेता । भेष्यति । बिभेत्, बिभीनान्,
बिभीताम्, बिभ्यत्, बिभीहि, बिभिहि, बिभितान्, बिभीनम्, बिभयानि,
हेरपित्वात् कित्वात् पठे इत्यम् । एव तातद्व्यन्येषु कित्सु चोक्तम् ।
उत्तमआटि गुणायौ । अविभेत्, अविभीताम्, अविभ्युः, यणं बाधित्वा
परत्वात् जुसि गुणः । अविभेः, अविभीतम्, अविभिनम् अविभयम्,
अविभीव, अविभिव । बिभीयात्, बिभेयानाम् बिभियानाम्, बिभीयाः
बिभियाः, बिभीया, पिद्वचनेष्वपि यासुटो कित्वादित्वे बिभियान्
इत्याद्युदाहार्यम् । आशिषि, भीयात्, भीयास्तामित्यादि । आर्धधातु-
कत्वावाचत्वपञ्चः ॥ अभैषीत्, अभैष्टाम्, अभैषीः, अभैष, सिचि
वृद्धिः । बिभीषति, 'इको भल्' इति सनः कित्वात् न गुणः ।
वेभीयते । वेभेति, वेभीतः, वेभितः, प्रकृतियङ्गन्यायेन 'भियो-
न्यतरस्याम्' इति वेत्वम् । भाषयते, अवीभषत । भीषयते,
अभीषयत, अवीभषत मुण्डः । बिभेतेर्हेतुभये' इति णावात्वे पुक् ।
अन्यदा 'भियो हेतुभये पुक्' अत्र हि ई इतीकारप्रश्लेषणेन ईका-
रान्तस्य पुको विधानात् आत्वपठे स न भवति । 'भीम्योर्हेतुभये'
इत्युभयत्र तङ् । हेतुभयार्थः स्मयतावुकः । अहेतुभये तु कुञ्चिकयैर्न
भाषयति अवीभयद् इति वृद्धायौ । बिभ्यन् । भीषणः । नन्द्यादित्वात्
ण्यन्ताल्ल्यु । भीतः । 'जितः क्त' इति वर्तमाने क्तः । भयम् ।
'अज्जिधौ भयाद्रीनामुपसङ्ख्यानं नपुंसके क्तादिनिवृत्त्यर्थम्' इति
क्त्युटौ बाधित्वा अजेव भवति । पारायणे तु घामरूपेण क्तो दर्शितः ।
तदसत्, क्त्युटुमुन्वलयणं घामरूपविधिप्रतिषेधात् । भीः, भियौ ।
सम्प्रदादित्वात्किप् । क्तिवपीष्यते भीतिः । वृकेभ्यो भय वृकभयम् ।

‘पञ्चमी भयेन’ इति तत्पुरुषः । ‘भयभीतभीतिभीभिरिति वक्तव्यम्’ इति भीतादिभिरपि समासो नेयः । भीरुः, भीलुकः । ‘भिजः क्रुक्-कनौ’ इति क्रुक्कनौ । भीरुकः । ‘क्रुकत्रपि वक्तव्यम्’ इति क्रुकन् । भीमः, भीष्मः । ‘भियष्युक्च’ इति मक्प्रत्यये पक्षे षुगागमः । ‘भीमा-दयोपादाने’ इत्युपादाने ऽयं प्रत्ययः । भयानकः । आनकन् । ‘शीङ्-भिय’ इत्यानकन् । अयमपि भीमादिः । भेकः । ‘इणभी’ ति कन् ॥ २ ॥

ह्री लज्जायाम् ॥ जिह्वेतीत्यादि बिभेतिवत् । जिह्वितीत्यादौ अजादौ सयोगपूर्वत्वाद्गणभावात् इयङ्विशेषः । द्वेपयति । अर्तिह्री-त्यादिना पुगागमः ‘पुगन्ते’ ति गुणः । अजिह्विपत् । ह्रीः । सम्पदा-दित्वात्किप् । ह्रीतः, ह्रीणः, ह्रीतवान्, ह्रीणवान् । ‘नुद्विदे’-त्यादिना वा निष्ठानत्वे णत्वम् । ह्रीकः, ह्रीकः । ‘ह्रियः कत्रश्च लो वा’ इति कनि रेफस्य वा लत्वम् । ह्रीणियते रुष्यतीत्यर्थः । ‘ह्रीणीङ्’ इति कण्ठ्वादिपाठात् स्वार्थं यक् ॥ जुहोत्यादयोनुदात्ताः परस्मै पदिनः ॥ ३ ॥

पृ पालनपूरणयोः ॥ उदात्तः परस्मैभाषः । पिपति, पिपूर्तः, पिपुरति, पिपर्षि, पिपर्मि, ‘अर्तिपिपर्त्याश्च’ इति श्लावभ्यासस्येत्वम् । ‘उदोष्मपूर्वस्य’ इत्युत्वं रप^१रनृकारस्यागुणवृद्धिविषये, हलादौ ‘हलि च’ इति दीर्घः । गुणवृद्धोर्विषयेषु तु विप्रतिषेधेन ते भवतः । पपार, पप्रतुः, पप्रुः, पपरिथ, पप्रथुः, पप्र, पपार, पपर, पप्रिव । ‘ञ्च-त्युताम्’ इति किति लिटि गुणापवादे ‘शृदृप्रां ह्रस्वो वा’ इति वा ह्रस्वे यणादेशः । अन्यदा गुणे पपरतुः, पपरुः, पपरिथ, पपर, पपरिव, इति । परिता, परोता । परिष्यति, परीष्यति, ‘वृत्तो वा’ इत्यलिटीटो वा दीर्घः । पिपर्तु, पिपूर्तात्, पिपूर्ता, पिपुरतु, पिपूर्हि । हेरपित्वान् डित्वाच्च गुणः । पिपराणि, पिपराव । आटि गुणः । अपिप, अपिपूर्ताम्, अपि-

परः । अत्रोत्वात्परत्वात् जुमि च ' इति गुणः । अपिपः, अपिपुर्नम्
अपिपरम् अपिपुर्व । गुणे हनद्वादिना निम्यानीप । पिपूर्यात्, पिपू-
र्याता, पिपूर्याः, पिपूर्याम् । आगिपि, पूर्यान्, पूर्यास्ता यामुटः
किञ्चादुणाभावः । उत्त्वम् । अपारीन्, आपारिटां, अपारीः, अपा-
रिप, सिचि वृद्धिः । 'वृत्तो वा इतोऽटो दीर्घस्य 'सिचि परस्मैप-
देषु' इति निषेधः । पिपूर्यति । 'इट् सनि वा' इति पक्षे इडागमः ।
इडभावे 'इको भल्' इति मनः किञ्चे उत्त्वम् । इटि तु तस्य पूर्वव-
दीर्घत्रिकल्पे प्रकृतेरच गुणे पिपरिपति पिपरीयनीनि । पापूर्यते । पाप-
रति, पापरीति, पापुर्न इत्यादि । अभ्यासस्योदन्वहनादिशेषयोः 'दीर्घो-
ऽकितः' इति दीर्घः । रुपियीकामभावस्तरतिवत् । पिपुरन्, पिपुर-
तौ, शता । पारयति । अपीपरन् । निपुर्तः, निपुर्तवान् । 'न ध्या-
ख्यापुर्भूर्द्धिमदाम्' इति निष्ठानत्वनिषेधः । पूर्वा । 'श्युकः किति'
इत्यनित्त्वम् । पूः, पुरौ, पुरः 'भ्राजभासे' नि क्तिप् । 'उद्योऽप्यपूर्वस्य'
इत्युत्वम् । 'वा' रित्यादिना उपधादीर्घः । अत्र वक्तव्यं पूर्वत्राप्युक्तम् ।
पुरुषः । 'पुरः कुपन्' इति कुपन् । पुरुषेयः । वधो विकारस्मृहः
कृते यन्यादिर्वा । 'सर्वपुरुषाभ्या णठञौ' इति ठञ् । तथा च तत्र
वार्तिकम् । 'पुरुषादुधविकारस्मृहनेनकृतेषु' इति कृते तृतीया समर्थ-
विभक्तिः, अन्यत्र तु षष्ठी । पुरुषः प्रमाणमस्य पौरुषम्, पुरुषद्वयसम्
पुरुषद्वयम्, पुरुषमात्रम्, 'पुरुषहस्तिभ्यामणञ्' इत्यण्, द्वयसजादयश्च
चशब्दात् । द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्या द्विपुरुषी द्विपुरुषा । अत्र प्रमाणे
विहितस्य द्वयसजादेः 'प्रमाणे लः' 'द्विगोर्निन्यम्' इति लुक् । 'त-
द्वितार्थ' इति द्विगुः 'पुरुषात्प्रमाणेत्यनरस्याम्' इति प्रमाणञ्चिपुरुष
शब्दान्तात् द्विगोस्तद्वितनुक्ति पक्षे डीनिषेधात् टाप् । राजपुरुषस्य भाव-
कर्मणी राजपौरुष्यम् । राजपुरुषात् प्यञ्, अनुशतिकादित्वादुभयपद-
वृद्धिः । पुरुषान् गच्छति पुरुषेषु वसति वा पुरुषत्रा । 'देवमनुजगुरुपुरुषम-
त्येभ्या द्वितीयामप्योर्वहन्म्' इति द्वितीयान्तात् सप्तम्यन्ताच्च स्वार्थे
त्राप्रत्ययः । पुरुः । 'पृभीधीव्यधिपृधिपृथिभ्यश्च' इति कुप्रत्ययः ।

‘उदोष्यपूर्वस्य’ इत्युत्त्वम् । पुरुषा । पूर्ववत् आप्रत्ययः । पूर्णम् । ‘धा-
 पृञ्शी’ त्यादिना नप्रत्ययः । पुरीषः । ‘शृपृभ्यां क्तिञ्च’ इति वन्म-
 त्ययः । पर्व ग्रन्थिः । ‘स्यामदी’ त्यादिना वनिन् । परुः, परुषी ।
 ‘अर्तिपृत्रपी’ त्यादिना उंसिः । परुषः । ‘नहिकलिहनिपृवस्यर्तिभ्य-
 उषच्’ इत्युषच् । ह्रस्वान्तोऽयं धातुरिति वर्धमानकाश्याभरणपुरुषका-
 राः । स्वामी तु दीर्घान्तं पठित्वा ह्रस्वान्तः केचिदिति^१ । आत्रेयमैत्रेयो
 तु ह्रस्वान्तं पठित्वा दीर्घान्तमेके इति । अत्रोदाहरणानि । पपर्ति,
 पिपृतः, पिप्रति, पिपर्षि, पिपर्मि । पपार, पप्रतुः, पपर्थ, अतो भारद्वा-
 जस्य^२ इति नेट्^३ । पिप्रिव । क्रादिनियमादिट् । पर्ता । परिष्यति ।
 ‘अट्टनोः स्ये’ इतीट् । पिपर्तु, पिपृहि, पिपराणि । अपिपः, अपि-
 पृताम्, अपिपरुः । जुसि गुणः । अपिपः, अपिपरम्, अपिपृव । पिप्रियात्,
 पिप्रियाताम् । आशिषि, प्रियात्, प्रियास्ताम्, ‘रिङ् शयग्लिङ्’ इति
 रिङादेशः । अपार्षीत्, अपार्ष्टीम् इत्यादि ॥ वृत्तिकारस्य तु दीर्घान्त
 एवेष्टः । यदाह । “शृट्प्रां ह्रस्वा वा’ इत्यत्र केचिदेतत्सूत्रं प्रत्या-
 चक्षते । आ पाके, द्रा कुत्साया गतौ, प्रा पूरणे, इत्येषामनेकार्था
 धातव इति शृट्प्रांमर्थे वर्तमानानां विशश्चतुरित्यादीनि रूपाणि
 साधयन्ति । तथा सति विशश्चवान् इति क्सावेतद्रूपं न स्यात्” इति ।
 यदि ह्रस्वान्तस्यात्यतिना प्रत्याख्यानं पिपृवानिति प्रयोजनकथनं चानु-
 पपव स्यात् । तथा वृत्तिन्यासपदमञ्जरीप्रदीपकारादयोऽपि । किञ्च
 अपार्षिणीयश्च ह्रस्वान्तः, यदि हि स्यात् किं ह्रस्वविकल्पनेन, यत्कै-
 व्यादिकादीर्घान्तरूपाणि अस्माच्च ह्रस्वान्तरूपाणि भविष्यन्ति । एवं च
 ‘तं पिपृतं रोदसी’ ‘पाहि माम् पिपृहि’ इत्यादयश्छान्दसा द्रष्टव्याः ।
 अदन्तमृदन्तमिति सेड्ययं दीर्घान्तः परस्मैपदानुरोधेन पठितः । अयं
 ऋषादावपि । एगताविति स्वामी । ‘पृञ् व्यायामे’ तुदादौ । एपूरणे
 इति चुरादौ ॥ ४ ॥

१ ह्रस्वान्त इति नन्दीति १ । २ । पु. पा. ।

२ अनिट्त्वमिति २ । ३ । पु. पा. ।

३ अट्टन्तदन्तामिति १ पु. पा.

डुभृत् धारणपोषणयोः ॥ अनुदात्त उभयतोभाषः । विभर्ति, विभृतः, विभ्रति, विभर्षि, विभर्मि, 'भृजामित्' इति स्नात्रभ्यामस्येत्त्वम् । बभार, बभृतुः, बभुः, बभर्षे, ऋद्रिनियमादितिट्त्वम् । बभृव । विभरांचकार, 'भीहीभृनुवाम्' इत्यात्मन्ययः, श्लुवद्वावाद् द्विर्वचनमित्त्व च । भर्ता, भरिष्यति, विभर्तुः, विभृतात् विभृता, विभ्रतु, विभृहि, विभराणि । अविभः, अविभृताम्, अविभरुः । 'जुसि च' इति गुणः । अविभः, अविभृतम्, अविभरम् । विभृयात्, विभृयाताम् । आशिषि भियात्, भियास्ता, भियासुः । अभार्षीन्, अभार्ष्टाम्, अभार्षीः, अभार्षम्, अभार्ष्व । विभृते, विभ्राते, विभ्रने । विभृषे, विभृध्वे, विभ्रे, विभृवहे । विभरांचक्रे । भर्ता । भरिष्यते । विभृता, विभृष्व, विभरै । अविभृत, अविभ्राताम्, अविभ्रत । अविभृयाः, अविधि, अविभृवहि । विभ्रीन, विभ्रीयाताम्, विभ्रीयाः, विभ्रीय । विभिर्वहि । आशिषि भृषीष्ट, भृषीयास्ताम् । 'उश्च' इत्यात्मनेपदे लिङ्सिचोर्भलादयोः कित्वादगुणत्वम् । अभृत, अभृषाताम्, अभृयाः, अभृद्वम्, अभृषि, 'ह्रस्वादङ्गात्' इति भलि सिचो लोपः । विभ्रत् । विभ्राणः । बुभूर्पति, बुभूर्पते, 'इको भल्' इति सनः कित्वात् 'अभ्रने' ति दीर्घः, 'उद्रोष्ट्रे' त्युत्वम् । 'सनीवन्ते' नीद्विकल्पेस्य न भवति, तत्र भरेति शपा निर्देशात् । भृत्रिमम्, 'द्वितः क्तिः', 'क्तेर्मन्वित्यम्', द्वीविंहास्तु द्वित पठित्वा 'द्वितोऽयुच्' इति अयुचमुदाहरन्ति भरयु रिति । शेष भरतिवत् ॥ ५ ॥

माङ् माने शब्दे च ॥ अनुदात्त आत्मनेपद्री, मिमीति, मिमाते, मिमते, मिमीषे, मिमाये, मिमीध्वे, मिमे, मिमीवहे । भृजदित्वाच्छ्लाघ्यासम्येत्त्वम् । हलादौ कङिति सार्वधानुक्ते 'ई हल्यघो' रित्तीत्यमभ्यस्तस्य । अजादौ तु 'स्नाभ्यस्तयो' रित्याल्लोपः । प्रणिमिमीते 'नेर्गदे' त्यादिना णत्वम् । ममे, ममाते, ममिरे, ममिषे, ममाये, ममिध्वे, ममे, ममिवहे, ऋद्रिनियमादितिट् । 'आतो लोप इटि च' इत्या-

कारलोपः । माता । मास्यते । मिमीताम्, मिमाताम्, मिमताम्, मिमीष्व, मिमै । अमिमीत, अमिमाताम्, अमिमत्, अमिमीथाः, अमिमाथाम्, अमिमीध्वम्, अमिमि, अमिमीवहि । मिमीत, मिमीयाता, मिमीथाः, मिमीय । आशिषि, मासीष्ट, मासीयास्ताम्, अमात्स, अमासाताम् अमासत्, अमास्याः, अमाध्वम्, अमासि, अमास्वहि । मित्सते । 'सनिमीमे' त्यच इस् । 'सस्यार्धधातुक' इति तत्त्वम् । 'अत्र लोप' इत्यभ्यासलोपः । मेमीयते । 'घुमास्ये' तीत्वे द्विवचनेभ्यासस्य गुणः । मामाति, मामेति, मामीतः, मामति । मापयति । अमोमपत् । मित्वा । मितः । मितवान् । मितिः । 'द्व्यतिस्वतिमे-तीत्वम् । प्रमाय । 'न ल्यपि' इति 'घुमास्ये' तीत्वस्य निषेधः । मेयम् । 'अचो यत्,' 'ईद्व्यति' इतीत्वे गुणः । मीयतेनेनेति पाय्यम् । 'पाय्यसान्नाय्ये'त्यादिना मानेभिर्धेये ण्यदादिपत्व च निपात्यते । 'आतो युक्' इति युक् । मिमीतइति मायः । 'श्याद्गुधे' त्यादिना णे युक् । माया टाप् । मायी, मायिकः, मायावी, मातौ मत्वर्थे व्युत्पादिनम् । धान्यमायः । 'ह्वावामश्च' इति 'कर्मण्यण् कस्यापवादः । प्रमिमीतइति प्रमः । 'आतश्चोपसर्ग' इति कः । प्रमा । स्त्रियाम् 'आतश्चोपसर्ग' इत्यङ् । प्रमितिः । बाहुलकात् क्तिन् । वातप्रमीर्वातमृगः । 'वातप्रमी' रिति वातोपपदात्पूर्वादस्मादीकारप्रत्ययआल्लोपे च निपात्यते । अजादौ यणादेशे वातप्रम्यावित्यादि । सप्तम्येकवचने तु यणः परत्वात्सवर्णदीर्घे वातप्रमी इति भवति । अन्ये तु 'अन्येभ्योपि दृश्यते' इति क्तिपि 'घुमास्ये' तीत्वे व्युत्पादयन्ति । 'ईत्वमवकारादौ' इति च भाष्ये न स्थितम् । तन्मते अजादौ 'एरनेकाच' इति यण् । तत्र त्वय विशेषः, सप्तम्येकवचने यण् परत्वात्सवर्णदीर्घे बाधतइति वातप्रम्यीति भवति । उणादिवृत्तौ तु मिनेतिरीकारप्रत्यये व्युत्पाद्यते । मेरु, 'मापोरुरी च' इति रूपप्रत्यये ईकारे चान्तादेशे गुणः ॥ ६ ॥

ओहाड् गतौ ॥ अनुदान आत्मनेभाषः । जिहीति, जिहाते, जिहते, जिहीये, जिहीये, जिहे, जिहिवहे । जहे । हाता । हास्यते । जिहीता, जिहाताम् । अजिहीत, अजिहाताम्, अजिहन । जिहीत, जिहीयाताम् । आशिपि हामीष्ट, हामीयाताम् । अहास्त, अहामाना-मित्यादि माङ्बन् । जिहामते, जाहायते । 'धुमास्येतीत्वे जहातीति' तिपा निर्देशादस्यायहः । अन गघ जहातेश्च तिव' इति हिभाषेऽपि नेन हात्विति भवति । हापयति । अजीहपत् । हानः, हानवान् । 'ओदिनश्च' इति निष्ठानत्वम् । जिहीति भावानिनि हायनः सवत्सरः, 'हश्च ब्रीहिकालयो' रिति ण्युट् । एको हायनोऽस्या गक्रण्यनी जिहायणी, चतुर्हायणी । 'दामहायनान्ताञ्च' इति मद्ग्रादेर्दामहाय नान्ताञ्च वृत्तुर्वाहेः स्त्रिया डीप् । त्रिचतुर्भ्या हायनस्य इति णत्वम् । असज्जात्वाद् न 'पूर्वपदासजायामि' ति णत्वग्राप्तिः । एते च डीष्-णत्वे वयस्येव स्मर्यते । तेनेह न भवतः, गक्रहायना शाला जिहायना चतुर्हायना इति । हानिः । 'स्नात्राज्य' हभ्यो' ति' रिति निप्रत्ययः । भृजादयस्त्रयो गताः ॥ ६ ॥

ओहाक् न्यागे ॥ अनुदानः परस्मैपदी । ककारो 'हश्च ब्रीही'-त्यत्र पूर्वस्यास्य च सामान्यग्रहणार्थः । अन्यथा एकानुबन्धकत्वाद् अस्यैव ग्रहण्यात् । जहाति, जहितः, जहीतः, जहति, जहामि, जहियः, जहीयः जहिय, जहीय, जहामि, जहिवः, जहीवः, जहिमः, जहीम', 'जहानेश्च' इति हलादौ कङिति सार्वधानुके इत्वमीत्वं च । अ'जादौ 'शनाभ्यस्तयो' रित्याल्लोपः । जहौ, जहतुः, जहुः, जहाय, जहिय, जह, जहौ, जहिव, कादिनियमादिट् । यलि भारदुर्जनियमादि कृत्य' । 'आत औणलः' 'आतो लोप इटि च' । हाता । हास्यति, जहातु, जहितात्, जहिताम्, जहीनाम्, जहतु, जहिहि, जहीहि, जहाहि, जहानि, जहाव । पूर्ववदित्वमीत्वं च । अजादावाल्लोपश्च । हौ 'आ च हौ' ।

१ निर्गति नास्ति ३ । ४ पु । २ दामान्ताहायनान्ताञ्चेति ४ पु पा ।

३ स्त्रिया निरिति ३ पु पा । ४ अहलादाविति ४ पु पा ।

इत्यात्व च । अजहात्, अजहिताम्, अजहीताम्, अजहुः, अजहाः, अजहाम् 'सिजभ्यस्ते' ति नित्य भेर्जुस् । 'लङ्शशाकटायनस्य' इत्याकारान्तलक्षणो जुस्विकल्पस्तु न भवति, परत्वात् 'श्नाभ्यस्तथो-
रात्' इत्याल्लोपे आकारान्तत्वस्यैवाभावात्, 'ई हल्यघो' रित्तीत्व^१ तु जुस्भावे कृते हलादित्व पर्यवर्त्तस्यतइति न भवति । एवमदरिद्र-
त्यत्रापि । जह्यात्, जह्याताम्, जह्युः, जह्याः, जह्याम्, जह्यास, 'लोपो यि' इति यकारादौ सार्वधातुके जहातेराल्लोपः । आशीर्लिङ्
हेयात्, हेयास्ताम् । 'एर्लिङि' इत्येकारो घुमास्येतीत्यापवादः । अहा-
सीत्, अहासिष्टाम्, अहासीः, अहासिष्टम्, अहासिष्म्, सगिटौ । जिहा-
सति । जेहीयते । परत्वात् 'घुमास्ये' तीत्वे द्विवचनम् । जाही-
ति, जाहीतः, 'ई हल्यघो' रिति नित्यमीत्वम् । 'जहातेर्' इति श्रित्पा निर्देशाद् इत्वं तु न भवति । अत एव 'आ च है'
इत्यात्वमीत्वम् 'लोपो यि' इत्यालोपश्च न भवन्ति । तेन 'ई
हल्यघो' रित्तीत्वे जाहीहि जाहीयादिति भवतः । आशीर्लिङ्स्तु
आर्धधातुकत्वादपि 'जहातेश्च' इतीत्वमीत्व च न भवति । अत एव
'ई हल्यघो' रिति नित्यमीत्व, 'लोपो यि' इत्यालोपश्च न भवति ।
'घुमास्ये' तीत्वम्, 'एर्लिङि' इत्येवं च श्रित्पा निर्देशात् भवति,
तेन जाहायादिति भवति । अत्र धातोः कित्त्वमाश्रित्य 'दीर्घाकित'
इत्यभ्यासस्य दीर्घनिषेधो न भवति तत्राकित इत्यनेनाभ्यासस्य
विशेषणात् । स्पष्ट चैतद्वृत्तिन्यासपदमञ्जर्यादिषु । हापयति । अजी-
हपत् । हित्वा । 'जहातेश्च त्वि' इति हिभावः । हीनः, हीनवान् ।
ओदित्वन्निष्ठानत्त्वम् । विहाय । 'न ल्यपि' इतीत्वनिषेधः । जहा-
त्युदकमिति कृत्वा हायनाः ब्रीहयः । 'हश्च ब्रीहिकालयो' रिति
ण्युट् । हानिः । 'भ्ला^३स्ते' त्यादिना स्त्रिया पूर्ववच्चिः । शर्धजहा
भाषाः । शर्धापानशब्दः । 'वातशुनीतिलशर्धेष्वजधेटुद^४जहातिभ्य

१ पर्युदस्तमिति ४ पु. पा. ।

२ घुमास्येति नास्ति ४ पु. ।

३ हानिः पूर्ववच्चिरिति ४ पु. पा. । ४ हनित्यधिकं ३ । ४ पु. ।

उपसङ्ख्यानम्' इति वशि शपि श्लौ द्विर्वचने 'रनाभ्यस्तयो' रित्यालोप
उपपदस्य मुमागमः । पूर्वापहणा अ^१परापहणा । पूर्वानपराश्च जहा-
तीत्यर्थः । अजादिपाठाट्ठाप् कर्तरि ल्युट्, णत्व च । सम्प्रहाणेत्यपि
क्वचित्पठन्तीत्यात्रेयः । जहकः । कालपुरुषस्यागी च, 'जहातेद्वे' च' इति
कुनि द्वित्वम् । अहरत्र । 'नजि जहाते' रिति^२ कनित्याकारलोपः,
अहविन्यधिकृत्य 'रोऽमुपि' इति नकारस्य रेफादेशः । अत्र 'स्वमो-
र्नपुमकात्' इति सोर्लोका लुप्तत्वात् प्रत्ययलक्षणो न सुप्परत्वम् ।
अहोभ्यामित्यदौ 'अहन्' इत्यहः परस्य हत्वे तस्य 'हशि च' इत्यु-
त्वम् । रत्वस्य 'अमुपि' इति निषेधात्, 'अहन्' इत्येतदर्थान्मुष्पर-
विषयं भवति । ननु रत्वस्त्वयोः पूर्वत्रासिद्धत्वाद् नलोपस्यान् । न
चानयोरनवकाशत्वम्, कृतेपि नलोपे एकदेशविकृतन्यायेन अवशिष्टस्या-
वकाशत्वात् । किञ्च हे अहरित्यत्र 'वा नपुमकानाम्' इति नलोपा-
भावपक्षे रत्व सावकागम् तथा हत्वमपि हे दीर्घाहो निद्राद्येत्यत्र,
अत्र हि पुल्लिङ्गत्वादृष्ट्यादिना सोर्लोपे प्रत्ययलक्षणेन अस्ति सुप्पर-
त्वम् । 'न डिमम्बुट्टो' रिति नलोपश्च निषेध्यते । सत्यम् । हविधौ
षष्ठ्या निर्देष्टव्ये प्रथमान्तस्य निर्देशाद् अहविन्यावर्तने तत्रैकं नलो-
पाभावात् तदेव रूपमन्वाख्यायते, अपरेण तु हरिति वृत्तौ समाधि-
रुक्तः । अह्ना समूहः क्रतुरहीनः । अत्राहरशब्दोऽहर्मिनकर्मवचनः
'अहः खः क्रतौ' इति खः । 'अहृष्टखरेख' इति टिलोपः । अक्रता-
वाह इति सामान्योऽणोश्च । द्वाभ्यामहोभ्या निर्वृत्तः द्यहीनः, द्वैय-
द्विकः । 'रात्र्यहम्मवन्मराच्च' इति द्विगोर्वा खः, अन्यदा प्राग्दी^३अनी-
यष्टञ् । 'अहृष्टखरेख' इति नियमाट्टिलोपाभावे 'अल्लोपो न' इत्य-
ल्लोपः । अहर्पतिः । 'अहरादीना पत्यादिषु' इति रेफस्य वा रेफः ।
अन्यदा विसर्जनीयोपध्मानीयो । अह्ना रूपमहोरूपम्, अहश्च रात्रिश्च

१ परापहणा इति ४ पुस्तके, उत्तरत्रापि पूर्वान् पराश्चेति पाठः ।

२ नजि उपपदे, इत्यधिकम् ३ । ४ पु ।

३ प्राग्वर्ततेति ४ पु पा ।

अहोरात्रम्, अहोरथन्तरम् । 'अहो हविधौ रूपरात्रिरथन्तरैषूपसङ्ख्यानम्' इति रेफापवादो सः । 'हशि च' इत्युत्वम् । इदं च समासे चासमासे चेति हरदत्तः । एवं हि रात्रीतीकारान्तपाठोर्थवात् । तेन 'गतमहोरूपं पश्य सन्निरागता रथन्तरं गाय' इति वाक्येऽपि रुर्भवति । परमाह, 'सन्महत्' इति समासः । 'राजाह' इति टचि टिलोपः । द्वयोरहोर्भवे द्वहः । 'तद्वितार्थ' इति द्विगुः, 'कालात्' इति विहितस्य ठञो 'द्विगोर्लुगनपत्ये' इति लुक् । द्वे अहो जातस्य द्वहजातः । 'कालाः परिमाणिना' इति समासः । स च त्रिपदस्यापीष्यते । तथा च 'तद्वितार्थ' इत्यत्र वार्तिकम् । 'उत्तरपदेन परिमाणिना द्विगोस्समास-वचनम्' इति । द्विगोर्निष्पत्तयइत्यर्थः । त्रयाणां समासे हि 'तद्वि-तार्थ' इत्युत्तरपदे पूर्वयोस्समासे 'सङ्ख्यापूर्व' इति द्विगुत्वे 'द्विमुच्च' इति तत्पुरुषो भवति । अहो निर्गतः निरहः । प्रादिसमासः, अहः पूर्वभागः पूर्वाहः । 'पूर्वोपरि' त्येकदेशिसमासः । सङ्ख्याताहः । विशेषणसमासः, 'अहोह एतेभ्य' इति टचि परभूतेहोहादेशः । एतेभ्य इति सङ्ख्याव्ययाहरादिसूत्रोपात्ताः परामृश्यन्ते । तत्राहशब्दात्परोह-शब्दो न सम्भवति । एकपुण्याभ्या त्वह 'उत्तमैकाभ्याम्' इत्यहोदे-शनिषेधाद् एकाहः पुण्याहमिति टजेव । उत्तमशब्दोऽहरादिसूत्रो-पात्तान्त्यवचनः । तत्र पुण्यशब्दएवोच्चार्यउत्तमशब्दोच्चारणमुत्तम-स्यापि ग्रहणार्थमिति सङ्ख्यातशब्दात्परस्य अहशब्दस्याहोहादेशो नेति केचिद्वर्णयन्तीति वृत्तावुक्तम् । द्वयोरहोस्समाहारो द्वह इत्यत्र 'न सङ्ख्यादेस्समाहारे' इत्यहोहादेशाभावः । एवं च द्वहो जातस्येति व्युत्पत्त्या द्वहजात इत्यपि भवति । अयमहोहादेशश्च परभूतइति वृत्तावुक्त-त्वाद् यत्र बहुव्रीह्यादौ स नास्ति तत्राहोहादेशोऽपि नास्ति सङ्ख्यात-महोस्य सङ्ख्याताहः पुरुष इति । कथं सायाह इति, यतः पूर्वादिषु सायशब्दस्यापाठाद् एकदेशिसमास एव नास्ति । नैष दोषः 'सङ्ख्या-विसायपूर्वस्याहस्याहन्नन्यतरस्या हौ' इत्येभ्यः परस्याहस्य सप्तम्येक-वचने ऽहनादेशविकल्पविधानात् सर्वेणैकदेशेनाहः समासविज्ञानात् ।

एव च मध्याह्न इत्यपि भवति । इदं च ज्ञापनं रात्रेऽप्युपलक्षणमिति
 व्याख्यातारः । 'अहोदन्तान्' इत्यकारान्तपूर्वपदस्याविमिश्रितपरत्वे
 ऽहो नकारस्य गत्वम् । अहान्ता 'र'त्राह्लाहाः पुमि इति पुल्लिङ्गाः ।
 पुण्याहं मुदिनाहमिच्यत्र तु पुण्यमुदिनाभ्यामह् इति नपुमकत्वम् ।
 मुदिनशब्दः प्रगल्भवचनः । प्राहः । अहः प्रगतत्वम् । 'तिष्ठद्गुप्रभृ-
 तीनि च' इत्यव्ययीभावत्वादव्ययत्वं नपुमकत्वं च । अत्रैव पाठादह्लादे-
 शोपि । दीर्घमहो यस्या शरदि दीर्घं ह्रीं शरन् । 'ब्रह्मादिभ्यश्च' इति
 ङीप् । युवादित्वान् 'प्रातिपदिकान्ते' ति गत्वनिषेधः, यद्यपि
 ब्रह्मादिष्वह्विति पश्यते, तथापि केवलस्य स्मृत्यायोगानदन्तस्य
 ग्रहणम् । ङीपभावे अहो बहुव्रीहेः 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' इति
 डाभर्ङापै नत्वनिषेधश्च भवति । दीर्घाह्ला, दीर्घाह्ली, दीर्घाहा, इति ।
 ङीप्ङीपौस्म्वरे विशेषः । मार्याङ्गीनः । 'अपादाने चाहीयरुहो' रिति
 तमिनिषेधः । हीयेति विक्रिनिर्देशो जहानेर्निवृत्त्यर्थः, न तु हीयेति-
 रूपस्य विवक्षणाः । 'मन्त्रो हीनस्म्वरेतो वर्णनो वा' इत्यत्र तु
 'हीयमानपापयोगाच्च' इति हीयमानेन पापेन च युक्तादकर्तृवृत्तीया-
 न्ताद्वा तमिविधानात्तमिः । अत्र विवक्षितार्थाङ्गीयमानेन मन्त्रेण स्वर-
 वर्णौ हेतुनया युज्येते । कैपटे तु पस्य'शाया 'आद्यादित्वात्तमि' रिति ।
 मार्याङ्गीयते देवदत्तः, हीन इत्यादौ लकारादौ विवदन्ते । तत्र
 'अपादाने चाहीयरुहो' रित्यत्र न्यामे देवदत्तस्य कर्तुरीप्सिततमत्वा-
 भावेपि कर्मसत्ताया कर्तृग्रहणस्य स्वातन्त्र्योपलक्षणार्थत्वाद् हानक्रियायां
 स्वनन्त्रस्य अपादानस्येप्सिततमत्वात् कर्मणि लकारादय इति प्रपञ्चेन
 समर्थितम् । सप्रदानसूत्रे कैपटेऽप्येवमुक्तम् । इन्दुरपि स्वयमेव हीयत-
 इति प्रतीतिः कर्मकर्तरि लकारोऽस्त्वित्याशङ्कः जहातेः कर्तृस्यक्रियत्वात्
 कर्मण्येव लकार इति । हरदत्तस्तु न्यासमनमुक्त्वा 'यद्येव मापेष्वाश्च
 ब्रधातीत्यत्र कर्मणोऽप्यश्वस्य वस्तुतो यद्वृत्तणे स्वातन्त्र्यं तदाश्रया कर्मसत्ता
 प्राप्नोति तस्मात्कर्मकर्तृत्वं लकार' इति । उपपादितं च 'इह जहा-

तिरपगमनार्थः, सा च तुदुपघातादिना देवदत्तस्यापगमे तत्समर्थोचर-
णम् । यदा तु तुधादिना स्वयमेवापगच्छति तदा कर्मकर्तृत्वम् 'इति ।
'पुनः कुतइत्यपेक्षाया पश्चात्सार्थेन सम्बन्ध' इति चोक्तम् ॥ ८ ॥

डुदाञ् दाने ॥ उभयतोभाषेनुदात्तः ॥ प्रणि^१ददाति, दत्तः,
ददति, ददासि, दत्थः, दत्थ, ददामि, ददुः, 'श्नाभ्यस्तयो' रित्या-
ल्लोपः । कृडिति सार्वधातुके 'ई हल्यघो' रित्यभ्यस्ताकारस्य विधी-
यमानमीत्व तत्रैव अघोरिति प्रतिषेधान्न प्रसजति । 'नेर्गदे' ति
णत्वम् । ददौ, ददतुः, ददुः, ददाथ, ददिथ, दद, ददौ, ददिव । क्रादि-
नियमादिट् । यल्लि भाट्टाजनियमादिकल्पः । 'आत औ णलः' ।
'आतो लोप इटि च,' दाता । दास्यति । ददातु, दत्तात्, दत्ता, ददतु,
दोहि, ददानि, दत्तात्वमित्यत्र 'ध्वसोरेट्' इत्यस्मात्परत्वात् तातडि
पुनर्न तस्य प्रवृत्तिः सङ्गतपरिभाषया । अददात्, अदत्ताम् अददुः ।
'सिजभ्यस्ते' ति नित्य जुम् । अददाः, अददाम्, अददु । दद्यात्,
दद्यातां, दद्याः, दद्यां, दद्याव । आशिषि देयात्, देयास्ताम् । घुत्वाद्
'एलिङि' इत्येत्वम् । अदात्, अदाताम्, अदुः 'आत' इति भेजुसि
पररूपम् । अदाः, अदाम्, अदाव । 'गातिस्थे' ति सिचो लुक् । दत्ते,
ददाते, ददते, दत्से, दध्वे, ददे, ददुहे । ददे, ददाते, ददिषे । दाता ।
दास्यते । दत्तां, ददातां, दत्स्व, दध्वम्, ददै, ददावहै । अदत्त,
अददताम्, अददत, अदत्याः, अददि, अददुहि । ददीत, ददीयाता,
ददीयाः, ददीय । आशिषि दासीष्ट । आर्धधातुकत्वेपि अकित्वादेत्वं
न भवति । 'श्नाभ्यस्तयो' रित्याल्लोपस्तु अनभ्यस्तत्वादपि न भवति ।
अदित, अदिषाताम्, अदिथाः, अदिषि 'स्याध्वोरिञ्च' इत्यात्मने-
पदपरस्य सिचः कित्त्व धातोश्चेत्वम् । कृलि 'ह्रस्वादङ्गात्' इति
सिजलोपः । सन्निपातपरिभाषाभावः प्रागेवोक्तः । आदत्ते । 'आङो दो-
नास्यविहरणे' इत्यकर्त्रभिप्रायेपि तङ् । 'आङ' इति निर्देशाद्
अङितो वाक्यस्मरणविषयात्परस्य न तडिति के चित् । 'अनास्यवि-

हरणे' इति पर्युदामः 'स्वाङ्गकर्मकाच्च' इति प्रकृत्यास्वःङ्गकर्मकविषय इति 'व्याददते पिपीनिका' पतङ्गस्य मुखम् इत्यत्रापि तङ्गेच । स्वाङ्गकर्मकत्वे तु स्वमुख व्याददाति व्यादते इत्युभयमपि यथायोगं भवति । सुधाकरस्तु 'आङो द' इति योगविभागादनाम्यविहरण- इत्यनेन व्यवृत्तिनापि प्राप्तिः पराणुद्गते । एवमेव चान्द्राः प्रतिपेदिर- इति डित्त्वनिमित्तमपि तङ्गमत्र नेच्छति । आत्रेयस्तु कर्त्रभिप्राये तङ्गे- वेति । अयं च योगविभागे भाष्ये न दृश्यते । किञ्च 'आङो दोऽनास्य' इत्येवास्ये धातोर्वृत्त्यमम्भवात् तत्समवायिन्या विहरणक्रियाया वर्तमानात्तद्विषये सिद्धे पुनर्विहरणयद्गणं विगादिका' व्याददानीत्यादावाम्य- विहरणममानक्रियादपि प्रतिषेधार्थे इति भाष्यउक्तम् । तत्रैव कैयट- पदमञ्जरीराम्यइत्युच्यमाने तत्समवायिक्रियामात्र लभ्यते न विहर- णमेवेति स्वं मुखमादत्तइत्यत्रापि ग्रहणस्य मुखममवायित्वान् प्रति- षेधस्यादिति दोषमुद्गाह्य 'अनास्य' इत्यास्यपर्युदामत्वादुहणस्य च ग्राह्यहीनृविषयत्वादनाम्यक्रियत्वाच्च दोष इति परिहृतम् । प्रसज्य- प्रतिषेधे ह्यास्यममवायित्वाश्रयेण प्रतिषेधेन भाष्यत्वादु दोष एव स्यादिति भाष्यकृतोपपन्नमभिमतं प्रतीयते । किञ्च स्व मुखमादत्त- इति तङ्गस्यादिति दोषापादानमप्ययुक्तं स्यात् । दित्सनि, दित्सने, 'सनि मीमे' तीस्भावे 'अत्र लोप' इत्यभ्यामनोपः । 'सस्यार्ध- धातुके' इति तत्वम् । देदीयते, ईत्वे द्विर्वचनम् । दादेति, दादाति, दात्तः, कृडिति 'रताभ्यस्तयो' रित्याल्लोपः । दापयति । अदीदपत् । ददः । 'ददातिदधात्यार्विभाषा' इति कर्तरि शे शपः श्लुः । शाभावे 'श्याद्गुधे' ति णे युक्ति दायः । 'तदहम्' इति निर्देशात् क्वचित्क- द्योगे द्वितीया भवतीति 'दायै रामोदमुनमम्' इति भट्टिप्रयोगं निरर्थहन्ति । दीयतइति दायः, घञ्, तमादत्तइति दायादः । मूलविभुजादित्वात् कः । गवा दायादः गोषु दायादः । 'स्वामीश्वरे'-

ति षष्ठीसप्तम्यौ । दायादेनादीयमानं दायादम् । ब्राह्मणादित्वात्
 ष्यञ् । तत्र हि कर्मग्रहणेन साधनकर्मोपि गृह्यते । आदिः । 'उपसर्गे
 घोः क्रि' रिति क्रिः । आदौ भवमादिमम् । 'आदेश्च' इत्युपसङ्खानाद्
 मप्रत्ययः । आद्यः । द्विगादित्वाद्यत् । आदितः । आद्यादिभ्य उप-
 सङ्खानम्' इति सार्वविभक्तिकस्तसिः । दन्निमम् । 'द्वितः क्रिः' ।
 'कर्मन्वित्यम्' । अन्येषु साधारणेषु कृत्सु दाण इव रूपं नेयम् । तथा
 घुसंज्ञाकार्यमपि । दाण् दाने, देङ् रत्तणे, दैप् शोधने, जयं भूवादौ ।
 दाप् लवने इत्यदादौ ॥ ९ ॥

दुधाज्धारणपोषणयोः ॥ अनुदात्त उभयपदी । दानेप्येके । दधाति,
 धत्तः दधति, दधासि, धत्यः, दधामि, दध्वः । 'श्नाभ्यस्तयो' रित्या-
 ल्लोपे 'दधस्तथोश्च' इति तकारथकारसकारेषु ध्वे च परेषु वश-
 स्याने भव्यिधानाद् दकारस्य धकारः । अत एव भवभाववचनसामर्थ्याद्
 आल्लोपस्य न स्यानिवत्त्वम् । परस्य 'खरि च' इति चत्वंम् । अत्रापि
 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने' इति वा 'चत्वंविधिं प्रति' इति वाल्लोपस्य
 न स्यानिवत्त्वम् । 'सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्' इत्यत्र 'प्रति
 षेधे हसादीनाम्' इति कर्मव्यतीहारनिमित्तः तद्धेतुः केचित् । तदयुक्तम् ।
 तत्रादिशब्देन शब्दनक्रियाणामेव ग्रहणात् । इह तु सम्पदो विनिमयो न
 धात्वर्थस्येति तस्य व्यतीहाराभावात्तदो नैव प्रसङ्गः । दधातु, धत्तात्,
 धत्तां, धेहि, दधानि । अदधात्, अधत्ताम्, अदधुः, अदधाः, अदधाप्,
 अदध्व । दध्यात्, दध्याः, दध्याम्, आशिषि धेयात्, धेयास्ताम् ।
 'धाति' इति इत्येत्वम् । अधात्, अधाः, अधां, 'गातिस्ये'ति, सिचो
 लुक् । धत्ते, दधाते, दधते, धत्से, धध्वे, दधे, दध्वहे, । दधे, दधाते,
 दधिरे, धे । धाता । धाप्यते । धत्ता, धत्स्व, दध्वम् । एकदेश-
 विभक्त्या, रमपि ध्वेःशब्दः । दधै, दधावहै, । अधत्त, अधत्त्याः,
 अधत्ति, अध्वहि । दधीत । आशिषि धासीष्ट, अधित, अधिषाताम्,
 अधिषत्, अधिषा, अधिषि, 'स्याध्वोरिच्च' इति सिचः क्तिवमित्वं
 च । धित्सति, धित्सते । देधीयते । दाधेति, दाधाति, धानः, ददा-

तिवत्प्रक्रिया । धापयने, धापयति । प्रणिदधानि, 'नेर्गदे' ति णत्वम् ।
 धीयतइति धाय्या । 'पाय्यसुान्नाय्ये' त्यादिना ण्यति सामिधेन्या
 निपात्यते । अन्यत्र यनीत्वे धेयम् । प्रथः । 'आतश्चोपसर्गे' इति कः ।
 दधानीति दधः । 'दद'तिदधान्योर्विभाषा' इति शेषः । अन्यदा
 'श्याद्वाधे' ति णः, धायः । हित्वा, क्तितः, हित्वात्, हित्त्रिमम्, ।
 'द्विनः क्तिः' क्त्रेर्मन्विन्यम् 'दधातेहि' रिति तकाराद्वा क्ति
 ह्यादेशः । प्रधायेत्यत्र अन्तरङ्गानपि विधीन् वहिरङ्गे ल्यञ्जाधते,
 इति पूर्वमेव ल्यपि पश्चात्तादिकिनाभावाद् न हिरादेशः । 'न ल्यपि'
 इतीत्य निषिध्यते । दधातेरिति तिपा निर्देशाद् दधाधीन्वेत्यत्र ह्यादेशो
 न भवति । यद्वा तकारादिकित्पश्चात्त्वाभावाच्चैव हेः प्रसङ्गः । क्ति
 दधातीति क्तिक्त्विन्या । 'आतोनुपसर्गे क' इति कः, पारस्करादित्वा-
 त्सुट् किमो मलोपऽप्यन्व च । धीयते धायते शिरसीति धात्री आम-
 लकी । 'धः कर्मणि घृन्' । पित्वान्डीप् । भूतधात्रीत्यत्र भूतानि
 धत्तइत्यौणादिकः कर्तरि घृन् । उपधिः, अन्तर्यः, 'उपसर्गे घोः क्ति'
 रिति क्तिः । अन्तर्गच्छस्याङ्गिविधिणन्वेष्टूपसर्गसंज्ञा । उपधिरेव औप-
 धेयम्, 'द्विद्विधिरुपधिवनेष्टञ्' इति स्वार्थे षञ् । सुपन्धिः, दुष्यन्धिः,
 सुपामादित्वात् पत्वमिति धत्तावेव चोच्चाप । विधिः । बाहुलका-
 त्कर्तरि क्तिः । उदकं धीयतेस्मिन्नित्युदधिः । 'कर्मण्यधिकरणे च' इति
 कर्मण्युपपदे ऽधिकरणार्थे क्तिः । 'पेयवासवाहनधिषु च' इत्युदकस्यो-
 दभावः । असंज्ञार्थमिदं वचनम् । संज्ञाया तु 'उदकस्योदस्संज्ञायाम्'
 इत्येव सिद्धम् । शिरो धत्तइति शिरोधिः यीवा । बाहुलकात्कर्तरि
 क्तिः । एव 'विधाना विश्वसृद्धि' रित्यादावपि । यद्वा शिरोधिशब्दे
 शिरो धीयतेत्यामिति 'कर्मण्यधिकरणे च' इति किप्रत्ययेऽस्तु
 व्युत्पत्तिः । अन्तर्धा, श्रुता । अन्तर्गच्छस्याङ्गिविधिणन्वेष्टूपसर्गस-
 न्ज्ञा । अञ्छब्दस्यापि 'अञ्छब्दस्योपसङ्ख्यानम्' इति । श्रुतालुः ।
 'स्पृह्यही' त्यादिना आलुच् । दधि 'भाषाया धाञ्ङ्मृगमिजनिन-

मिथ्य' इति किकिनोरन्यतरस्मिन् लिङ्गद्वावाद् द्विवचनम् । धीवा ।
 'अन्येभ्योपि दृश्यते' इति कनिषि 'धुमास्ये' तीत्वम् । धीवरी ।
 'वनो र च' इति डीब्रिफौ । बहवो धीवानोऽस्यां बहुधीवरी, बहुधीवा ।
 बहुधीवे, बहुधीवानौ । 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' इति पक्षे डीब्रिफौ
 डाच, 'अनो बहुव्रीहे' रिति निषेधाद् डीपोऽभावश्च । धीवरः ।
 'क्षित्वरचत्वरे' त्यादिना स्वरचि निपात्यते । धातुः । 'सितनिगमी'-
 त्यादिना तुत् । धानाः । 'धापृवस्यज्यतिभ्यो न' इति नः । धामा,
 मनिन् । कर्कन्धूः । 'अन्धूटुन्भूकर्कन्धूदिधिषू' रिति निपातनात्
 कर्कशब्दउपपदे कूप्रत्ययः, अल्लोप उपपदस्य मुमागमश्च । दिधिषूः ।
 पूर्वेण सूत्रणैव निपातनात्कूप्रत्यय आकारस्येकारो द्विवचनं षुगागमश्च ।
 निधानम् । 'कृवृजिमन्दिनिधाज्य' इति क्युन्, अयं बाहुलकात्के-
 वलादपीति धनमित्यपि भवति । धनायति धनं यध्यतीत्यर्थः ।
 'अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्धेषु' इति क्यचि धनशब्दस्य यथा-
 सङ्ख्याद्वर्धे आकारः । सर्वधनमस्यास्तीति सर्वधनी । कर्मधारयान्मत्व-
 र्थीयस्सर्वधनाद्वर्थ' इतीनिः 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीय' इत्यस्याप
 वादः । अपिदधाति, पिदधाति । 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपस-
 र्गयो' रिति पक्षे ऽल्लोपः ॥ धयतीति पाने शपि । अत्रानुक्त साधारणं
 तत्र द्रष्टव्यम् ॥ १० ॥

णिजिर् शौचपोषणयोः ॥ एतदादयो विप्लवपर्यन्तास्त्रयोन्द्रात्ता
 स्स्वरितेतः । नेनेक्ति, नेनिक्तः, नेनिजति, नेनेत्ति, नेनेज्मि, नेनिज्वः,
 'निजां त्रयाणां गुणश्लौ' इत्यभ्यासस्य गुणः । भलि पदान्ते च 'चोः
 कु' रिति कुत्वे 'खरि च' इति चत्वंम् । निनेज, निनिजतुः, निने-
 जिथ, निनिज, निनिजिव । क्कादिनियमादिट्, नेक्ता । नेत्यति,
 नेनेक्तु, नेनिक्तात्, नेनिक्ताम्, नेनिग्धि, हेरपित्त्वान्डित्त्वान्न गुणः । नेनि-
 जानि, 'नाभ्यस्तस्य' इति गुणनिषेधः । अनेनेक्, अनेनिक्ताम्, अने-
 निजुः, अनेनेक्, अनेनिजम्, अन्तरङ्गत्वान्मिपोमि 'नाभ्यस्तस्याचि पिति'
 इति गुणनिषेधः । नेनिज्यात्, नेनिज्यातां, नेनिज्याः, नेनिज्याम्, ।

आशिषि निज्यात् । अनिजन्, अनिजनाम्, अनिजन् अनिजः, 'इरितो वा' इति च्नेर्वाङ् परस्मैपदे । अन्यदा अनैत्तोन्, अनैक्ताम्, अनैतुः, अनैत्तोः, अनैतम्, अनैत्व, 'वदव्रजे' ति वृद्धिः । भक्ति मिज्जोपः । नेनित्ते, नेनिजाते, नेनिजते, नेनित्ते, नेनिजे, नेनिज्वहे, निनिजे, निनिजिष्वहे । नेक्ता । नेत्यते । नेनिका । नेनित्व, नेनिजे । अनेनित्, अनेनित्क्याः, अनेनिजि । नेनिजीत, नेनिजीयाताम् । आशिषि निजोष्ट । अनित्क, अनित्तानां निङ्मिवावात्मनेपदेषु' इति लिङ्मिचोः कित्वाद्य गुणः । निनिजति, निनिजते, 'हनन्त्याञ्च' इति सनः कित्त्वम् । नेनिज्यते, नेनिजीति, नेनेक्ति । नेजयति, अनीनिजन् । निक्त्वा, निक्त्वा, निक्त्वा । निजः । इगुपधलक्षणः कः । निर्यञ्जकः । एवुन् । प्रणेनेक्ति । 'उपसर्गादममासेपि' इति णत्वम् 'उभौ साभ्यामस्य' इति लिङ्गात् कृते द्विवचने प्रवर्तते ॥ ११ ॥

विजिर् पृथग्भावे ॥ वेवेकीत्यादि निजिवन् । 'विजि इट्' इति इडादेः प्रत्ययस्य डित्वे 'ओ विजी' इत्यस्यैव ग्रहणं नास्य यदसौ 'सृजिविजि विट्पुनित्स्वरान्' इत्यनिट् । अत्र च कारिकाया इरित्वे-सामर्थ्यात् स न गृह्यते । अनयैव कारिकया विनिरिति-स्वामिनः प्रथमान्तस्य पाठः प्रत्युक्तः ॥ निजिविजी द्वौ रुधादौ च । ओ विजी भयचलनयोरिति तुदादौ ॥ १२ ॥

विन्य व्याप्नौ ॥ वेवेष्टि, वेविष्ट इत्यादि निजिवन् । 'ष्टुना ष्टुः' । वेत्यति 'पठोः कम्मि' । वेविष्टु । ष्टुत्वे जश्च इकारः । अवेवेष्ट । 'भला जशोन्ते' इति जश्च चत्वे । अविषट् इत्यादावतडि लटि-त्वा-वित्पमङ् । तडि तु 'शल इगुपधादनिटः क्तः', अजादौ 'क्तस्याचि' इत्यल्लोपः, अविस्तत, अविस्ताताम् अविस्तत इत्यादि । विष्यन्ते व्याप्यन्तेनेन प्रेक्षकाणां मनामीनि वेपः । 'हलश्च' इति सञ्ज्ञायां घञ् । वेपेण

सम्पाद्री वेष्ठा नटः, वेष्ठा वेश्या । 'कर्मवेपाद्यत्' इति सम्पादिनि यत्^१ । सम्पत्तिश्शोभातिशयः । परिवेषः परिधिः । वेषवद्वृज् । वेवे ष्ठीति विषम्, दृगुपधत्तणः कः, विषमर्हतीति विष्यः । दण्डादि-त्वाद्यत् । विष्णुः । 'विषेः क्तिञ्च' इति णुप्रत्ययः ॥ १३ ॥

वृत् ॥ वृत्ता निजादयः । अत्र वृत्करणं प्रपञ्चार्यं त्रयाणामित्येव तत्फलस्य सिद्धत्वात् ॥ निजादयस्स्वरितितेनुदात्ताः । 'विषिरुदित्येके' इति स्वामी । धनपालोपि^२ 'आर्याणामुदित्, द्विविडानां लृदित्' इति । एवमेव पुषादिसूत्रे सुधाकरोपि ॥

घृ क्षरणदीप्त्योः ॥ गणान्ते क्न्दसीति वक्ष्यते । तदेतदादीनां सर्वेषां शेषः । यदाह न्यासकारः । 'ये निजादिभ्यः परे पठ्यन्ते ते सर्वे क्न्दसाः, तथा हि तान्यठित्वा क्न्दसीत्युक्तम्' इति । स्वामिकाश-पाभ्यामपि क्न्दसत्वमेवोक्तम् । अतर्ज्जु-न्दनत्वादिय-नीत्यादौ 'बहुल क्न्दसि' इतीत्वे सिद्धे पुनः 'अर्तिपिपत्यैश्च' इति इत्वविधानं भाषा-यामप्यस्य प्रयोगोऽस्तीति ज्ञापनार्थमिति वदता भाष्यकारेणाप्ययमर्थः स्फोरितः । अत एव भाष्यविरोधात्कातन्त्रोक्तमेषां भाषाविषयत्वमुपेत्यम् । अत एव पुरुषकारे 'घृप्रभृतयोपि क्न्दसा इति केचिदिति मैत्रेयग्रन्थमु-पादाय केचिच्छब्दोभाष्यानुसारिण इति व्याख्येयमित्युक्तम् । जिघर्ति । 'जिघर्म्यग्निं मनसा घृतेन' इत्यादि भृज्वत् । 'बहुलं क्न्दसि' इती-त्वम् ॥ 'घरतीति सेचने शपि ॥ १४ ॥

हृ प्रसह्यकरणे ॥ 'अय स्त्रुवो अभिजिहर्ति होमान्' इत्यादि । हरतीति शपि ॥ १५ ॥

च सृ गतौ ॥ इर्यर्ति, इर्यृतः, इर्यति, इर्यर्षि, इर्यर्मि, इर्यवः, अर्तिपिपत्यैश्च' इति श्लावभ्यासस्येत्वे 'अभ्यासस्यासवर्णे' इती-

१ प्रत्ययइत्यधिक ३ पु । २ धनपालाद्याचार्याणामिति १ । ४ पु. पा. ।

३ स्मारितइति पा. ३ । ४ । पु । ४ हविषेति पा. ४ पु. ।

५ 'भृजामिदि' त्यधिकम् ४ । पु. ।

६ छपि वराहः 'कृविछपिक्कविस्थविकिविदिवि' रिति क्तिन्प्रत्यये निपात्यते इत्यधिक ४ पुस्तके ।

यडि पिति गुणः । अन्यत्राजः दौ याणादेशः । आर, आरनुः, आरिथ, आरिव, णिति वृट्, रन्थत्र 'चच्छन्वृनाम्' इति गुणः । उभयोः स्यान्ति-
 वन्वान् चशब्दस्य द्विर्यवनोरदत्त्वज्जनादिशेषेषु अत आदे' रियभ्या-
 सस्य दीर्घं सवर्णदीर्घः । थलि 'इड यन्तिअयनीनाम्' इति भारट्टाज्जनियम
 बाधित्वा नित्यमिड्, इयत्तु इयृतात्, इयृनाम्, इयत्तु, इयृहि, इयृनात्
 इयराणि । ऐयः, ऐयृताम्, ऐयरुः, ऐयः ऐयरम्, ऐयृव, पूर्ववदाभ्याम-
 स्येत्वियडोराटि वृट्, इत्युदादिना तिस्योर्लोपः । जुसि गुणः । इय-
 यात्, इयृयाताम्, इयृयुः, इयृयाः, इयृयाम् । आशिपि अर्थात्, अर्था-
 स्ताम्, 'गुणोर्निमयोगाद्भो' रिति गुणः । आरत्, आरनाम्, आरः,
 आरम्, आराव, 'सर्तिशास्यर्तिभ्यश्च' इत्यङ् । अट्टुगोडि' इति
 गुणः । समियृते, समिय्याने, समियृषे, समिये । समारे, समारिये, समा-
 रिवहे । समर्ना । समरिष्यते । समियृता समिय्याता, समियृष्व,
 समियरै, आटि गुणः । समैयृत, समैय्याता, समैयृथाः, समैयि, समैयृ-
 वहि । समिर्यात्, समिर्याता, समिर्याया, समिर्याय । आशिपि
 समृषीष्ट, समृषीयास्ताम् । समारन समारेता, समारन्त, समारयाः
 समारे, समारावहि । 'सर्तिगास्ती' त्यत्र परस्मैपदानुवृत्तिरुत्तरार्ध-
 त्यात्मनेपदेषु वृत्तावहुक्तः । तथा च भट्टिः । 'समारन्तमार्भाष्टा'
 इति । 'समो गमृच्छी' त्यादिना ऽकर्मकत्वमत्र तद् । यस्त्वत्र भाष्ये
 मासमृत माममृषानामिति मिचः प्रयोगः स भौवादिकस्य । अङ्विधौ
 तस्य ग्रहणं नेति तत्रैवोक्तम् । इयतीत्यादौ 'अचः परस्मिन्' इति
 यणः स्यान्तिवन्वान् वनि लोपः । 'यस्येयविधि' प्रणि न स्यान्तिवन्
 इत्येतत्तु लोपाज्जदेशविषयम् । शेष भौवादिकवत् । नमर्तीत्यादि यथा
 दर्शनं हृन्दसि ॥ चच्छति सरतीति शपि ॥ घृषभृतय उदात्तेनानु
 दात्ताः ॥ १६-१७ ॥

भस भर्त्सनदीप्तोः ॥ ३ 'कपिर्बभस्ति ते जनम्' । वथ् । 'घमि-

१ अर्ता, अरिष्यति, अछन्ना' स्ये इतीद्, इत्यधिक ३ । ४ । पु ।

२ लेरित्यधिक । ३ । ४ पु ।

३ उदान उदानेतिन्यधिक ४ पु ।

भसोर्हलि च' इत्युपधालोपे^१ 'भ्रस्तयोर्धा धः' । 'भ्रन्तां जश् भ्रशि'
इति जश्त्वम् । बप्सति । उपधालोपे 'खरि च' इति च्त्वम् । 'न
पदान्ते' त्यादिना जश्त्वचत्वयोरुपधालोपस्य न स्यानिवृत्त्वम् ।
अन्यदपि यथादर्शनम् । भस्म । 'अन्येभ्योपि दृश्यते' इति भाषाया-
मपि मनिन् । भस्त्रा । 'हुयामा' इत्यादिना ञन् । स्वभावात्
स्त्रियाम् । भस्त्रिका, भस्त्रका, अभस्त्रिका, अभस्त्रका, परमभस्त्रिका,
परमभस्त्रा । 'भस्त्रैषा' इत्यादिना केवलस्य नऽपूर्वस्य अन्यपूर्वस्य चास्य
ककारात्पूर्वस्यात्स्यानिकस्याकारस्य वेत्वम् । भस्त्रया हरति भस्त्रिकः,
भस्त्रिकी । 'भस्त्रादिभ्यष्टन्' इति हरत्यर्थे ष्टन् । षित्वान्डीष्
स्त्रियाम् । न बभस्तीति नभः । क्विवित्यात्रेयः ॥ १८ ॥

किं ज्ञाने ॥ अनुदात्तः । चिकेति, चिक्रितः, चिक्यतीत्यादि ।
'हरनेकाच' इति यण् ॥ १९ ॥

तुर त्वरणे ॥ तुतीर्ति, तुतूर्तः, तुतुरतीत्यादि । तसि 'डलि च'
इति दीर्घः । तुरः । इगुपधात्कः ॥ २० ॥

धिष शब्दे ॥ दिधिष्टि, दिधिष्टः, इत्यादि ॥ २१ ॥

धन धान्ये ॥ दधन्ति, दधन्तः, दधन्ति, इत्यादि ॥ २२ ॥

जन जनने ॥ जजन्तीत्यादि । 'व्यादय उदात्ता उदात्तेतः' ॥ २३ ॥

गा स्तुतौ ॥ अनुदात्त उदात्तेत् । देवान् जिगाति, जिगीतः,
जिगीतीत्यादि । हलादौ कृडिति सार्वधातुके 'ई हल्यघो' रितित्वम् ।
अजादौ तु 'श्नाभ्यस्तयो' रित्याल्लोपः । गायति गाते इति द्वयं शपि ।
इह क्वन्दसीति पठ्यते । तच्च घृप्रभृतीनां शेष इति प्रागेवोक्तम् ॥ २४ ॥

वृत् ॥ जुहोत्यादयो वृत्ता इत्यर्थः ॥

इति^२ श्रीमायणान्त्रार्थविरचितायां माधवीयाया

धातुवृत्तौ जुहोत्यादयः^३ ॥

१ भ्रन्तां भ्रलीति स लोपइत्यधिकं ३ । ४ पु० ।

२ चिकेत्यादय इति ३ पु० कित्यादय इति १ । ४ पु० पा० ।

३ पूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वरकम्पराजसुतसङ्गममहाराजनहामन्त्रिणा माय
णसुतेन सन्ध्यासहोदरेण सायणार्थेणेत्यधिकं ३ । ४ पु० श्रीपूर्वत्यादिसायणाचार्ये
खेत्यन्तः १ पु० पा० ।

४ संपूर्णा इत्यधिकं ३ । ४ पु० समाप्तिमगमदित्यधिकं १ पु० ।

अथ दिवादिः ।

दिवु ऋडि विजिगीषाव्यवहारयु नित्युनिमोदमदम्बदन् नित्य-
तिषु ॥ एतदादयो दीद् पर्यन्ता उदात्ता उदात्तेनः । निपिम्बन्तिट् ।
अतैर्दीव्यति, अत न दीव्यति दीव्यन्, दीव्यन्ति । दीव्यमि, दीव्यामि ।
'दिव्यदिभ्यश्च' इति श्यन् शपो ऽपवादः । 'हलि च' इतीका
दीर्घः । 'दिवः कर्म च' इति दिवस्माधकतमस्य करणस्य मनः कर्म-
सत्ताविधानाद् अक्षगज्यात् तृतीयाद्वितीये पर्यायेण भवतः । संज्ञ-
समावेशस्य प्रयोजन मत्प दीव्यति मनमादेवो नाम कश्चिदित्यत्र
मनसः कर्मत्वात् नित्यबुद्धे चल्प्रत्ययः, करणत्वात्तृतीया च । अत्र
तृतीयायाः मनसः सत्तायाम् इत्यनुक् । यथातैर्देवयने देवदत्तेनेत्यत्र
सत्तासमावेशेन करणान मेव नाणा कर्मत्वाद् 'अणावकर्मकात्' इति
परस्मैपदानियमो न भवति । किञ्च 'गतिबुद्धी' ति प्रयोज्यस्य
कर्मत्वमपि न भवति । दिदेव, दिदिवन्, दिदिवु, दिदिविच,
दिदिविव, दिदिविम । देविना । देविष्यति । दीव्यन् दीव्यता
दीव्य, दीव्यानि, अतो हे रिति हेर्लृक् । अदीव्यन्, अदीव्यताम्,
अदीव्यः, अदीव्यम् । दीव्यन्, दीव्यता, दीव्युः, दीव्ये, दीव्येयम् यामुटि
'अतो येयः' । आद्रुण । यतोपो वलि, आशिषि, दीव्यात् दीव्यास्ताम्
अदेवीन् अदेविष्टाम् अदेवीः, अदेविषम्, 'नेटि' इति न वृद्धिः । दीव्यन् ।
दीव्यन्ती कुले । दीव्यन्ती ब्राह्मणी । 'नपुंसकाच्च' इत्याडर्शाभावः ।
ह्रीप् । उभयत्र 'शङ्खनेर्नित्यम्' इति शीन^३ओ परतो नित्यं तुम् ।
दिदेविषति । 'सनीवन्ते' ति वेट्^४ । अन्यदा 'हलन्तञ्च' इति
सनः कित्त्वे^५ 'च्छोःशूठ्' इत्यूठि यणादेशे दुष्पठति । देदीव्यते ।
ऊङ्गाविना वकारान्तानां यङ्लुङ्गास्तीति भूवादौ प्रतिपादितम् । देव-

१ दीडपर्यन्ता इति नास्ति ३ पु० । २ स्त्रीति । ४ । पा ।

३ शीनदोषत्वादिति २ । ४ । पु० पा० ।

४ आगमइत्यधिकृतम् ३ । ४ पु० । ५ कित्त्वादिति ३ । ४ पु० पा० ।

यति । अदीदिवत् । देव, देवी । पचादिषु देवडिति पाठाद् इमुपलध
 चणं क बाधित्वाऽचि टित्वाण्डीप् । देवस्यात्पादि दैव्य, दैव,
 'दित्यदित्यादित्ये' त्यत्र 'देवस्य यज्ञौ' इति प्राग्दीव्यीयेत्यर्थेषु
 यज्ञौ । देवस्येद देवकीयम् । 'गहादिभ्यश्च' इत्यत्र 'देवस्य चेति
 वक्तव्यम्' इति कुगागमश्चप्रत्यश्च शैषिकः । 'नूनमस्य दैवानुग्रह'
 इति भरष्यप्रयोगादत्रापि भवति । देव एव देवता । 'देवात्तल्' इति
 स्वार्थे तल् । स्वभावात्स्त्रीत्वम् । देवतैव दैवतम् । प्रज्ञादित्वाद् अण् ।
 'स्वार्चिकाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते' इति पुनपुनकत्वम् ।
 पितृदेवतायै इदं पितृदेवत्वम् । 'देवतान्तातादर्थे यत्' इति यत् ।
 दैविकम् । अध्यात्मादित्वाट्टञ् । अग्निदैविक, पूर्ववट्टञ् । 'अनुशति
 कादीनां च' इत्युभयपदवृद्धिः । देवेषु वसति देवान् मच्छति देवचा,
 'देवमनुष्ये' त्यादिना चाप्रत्ययः । देविका । देवीशब्दात्सज्ञाया कनि
 'केऽण्' इति ह्रस्वः । देविकाया भक् दैविकम् । देविकाकूले भवा-
 रशालय दैविकाकूलाः । पूर्वदैविका नाम प्रज्ञा कामः । तत्र भवः
 पूर्वदैविकः । 'दैविकाशिशपे' त्यादिना देविकाया अचामादेरच
 अकारः । अयं चाकार अद्योहदाहरणयोः 'तद्धितेष्वचामादे' रिति
 वृद्धिप्रसङ्गे, इतरस्य तु 'प्राचं यामनगराणा' मित्युत्तरपदवृद्धिप्रसङ्गे ।
 सुदैविकायां भवं सौदैविकमित्यत्र देविकाया अनङ्गादित्वात् समुदायस्य-
 प्राग्यामवाचित्वाच्च नास्ति देविकाया वृद्धेः प्राप्तिरिति वृद्धिप्रसङ्गे
 विधीयमानोद्यमाकारोपि नैव प्रसजति । यस्तु एवुलन्तः क्रियशब्दो
 देविकाशब्दो न तस्येह ग्रहः, रुद्धः योगस्यापहारात् । तेन तत्र दैवि-
 कमिति वृद्धिरेव भवति । अत्रात्रेयः । 'देवको नाम क्षत्रियः', सज्ञाया
 एवुल् । तस्यापत्य दैविकः । अत इजि आदिवृद्धिः । 'इतो मनुष्य
 ज्ञते' रिति ङीष्, दैवकीनन्दनः शौरिः । अवृद्धस्त्ययमसाधु" रिति । आदे-
 वकः । 'दैविकुशे' रिति एवन्तात् ताच्छील्यादौ वुञि । देवित्वा, दूत्वा, ।

१ नमुसगत्वमिति ३ । पु पा ।

३ आदीनि नास्ति ४ पु ।

२ देविकादेरिति ३ । पु पा ।

‘उदिनो वा’ इतीदृक्त्वं । इति ‘न त्व’ सेट् इत्यस्मिन् ‘द्रुण’
 अन्यदा ‘क्षुशृष्ट’ इत्युटि यणादेशः । न च वर्णमात्राश्रयत्वेनान्त
 भूताश्रयत्वेन वा ऽन्तरङ्गे ऋणि वाङ्मन्त्रनिरन्यषपेतस्य बहिरङ्गस्योऽः
 ‘अनितृ बहिरङ्गमन्तरङ्गे’ इत्यनितृत्वं । ‘नाजानन्तर्यं बहिरङ्गमृत्पि -
 तिति निषेधात्, अवोरानन्तर्यं यत्रान्तरङ्गे बहिरङ्गे वा विधावाश्रीदने
 न तत्र ‘अनितृ बहिरङ्गमन्तरङ्गे’ इति परिभाषा प्रवर्तनव्यर्थः ।
 आह्वयः । ‘दिवोऽविजिगीषायाम्’ इति निष्ठानन्तर्यं, विजिगीषाया
 तु ह्यनम् । ‘यस्य विभागा इत्यनितृत्वं । अतद्ध्वनेन निर्धनमात्र
 व्यतिक्रमः । ‘तिर्धनेऽतद्ध्वनादिव्य’ इति टक् । शतस्य दीव्यति
 दिवन्तदर्थं य इति कर्मणि षष्ठी । तच्छब्देन व्यवहृषणं परानु-
 स्थाने । नदर्थत्वं च व्युत्पत्तेः कथं विरूपयोरत्वं । शतस्य प्रतिदीव्यति, शतं
 प्रतिदीव्यति । ‘विभाषोपसर्ग’ इति पूर्वण नित्य प्राप्ताया षष्ठा
 तद्विकृत्यः । किकीति दीव्यतीति किकीदिवि, चपः, दीर्घद्वितीयः ।
 तथा च निघाटुः । ‘अय चायः किकीदिवि रिति । ‘कृविष्टृष्टिच्छ-
 विम्यविकिकीदिवि’ रिति किकीष्टृष्टपपठे क्विनि निषान्यते । रत्न-
 कोशानुसारिणस्तु । दीर्घवृत्तीय षष्ठन्ति । जैनेरीपकेपि दृश्यते ।
 श्येनेन किकिर्दीवित्वा ‘हृ’ शब्द कन्मात्रं किकिर्दीवित्म्’ इति दीर्घवृत्ती
 यान्त एव । व्योः । ‘दिवेर्दिवि रिति न्यामकहितमूत्रेण व्युत्पादि-
 तम् ‘दिव औन्’ इति सौ औन् यणादेशः । व्युत्पादित्यादौ ‘दिव
 उत्’ इति दिवः षट्स्येत्वम् । शृद्धिधौ कृद्विद्वन्नामनुवृत्तिवादिनः
 परोष्युट् इहाहर्कमलक्ष्य इत्यत्र सावकाशेनाप्युत्वेन तपरकरणानामर्थ-
 द्वाध्यत इति परिहरन्ति । दिवग्रहणे च धातोस्सानुबन्धकत्वेन न ग्रह
 इति अतद्धू, अतद्धूभ्यमित्यत्र क्तिन्नन्ते औत्वात्त्वयोनैव प्रसङ्गः ।
 दिव्यम् । ‘दुप्राह’ इति यन् शैबिकः, ‘न भक्तुर्दुप्राह’ इति दीर्घ-

१ गच्छत्वमिति ३ पु धा ।

२ वकारस्य धात्वन्त्याभावात् दीर्घ इति ४ पु प । ३ पुल्लिङ्गे विषय इत्यधिकम् ।

निषेधः । द्यावाभूमौ । 'दिवो द्यावा' इत्युत्तरपदे द्यावादेशः ॥
 द्यावापृथिव्यौ, दिवस्पृथिव्यौ । 'दिवसश्च पृथिव्याम्' इत्युत्तरपदे
 दिवस्भावो द्यावादेशश्च । द्यावापृथिव्यौ देवता अस्य द्यावापृथिव्यम्,
 द्यावापृथिवीयम् । 'द्यावापृथिवीशुनासीरे' त्यादिना षत्वौ । एयन्ता
 द्वेषयतेः कौ णिलोपे 'कौ लुप्त न स्यानिवत्' इति स्यानिवत्त्वनिषे
 धाद् ऊर्यादेशे द्यूरिति भवति । दध्वावित्यादौ 'ओस्सुपि' इति
 यणादेशः । द्यौरोक्ता येषां ते दिवौकसः । अत्र विवदन्ते । 'दिव उत'
 इत्यत्र रक्षित । 'उत्वे कृते शब्दपरविप्रतिषेधात्तस्य यणि द्विकेकस
 इत्यवृद्धिरिति । चान्द्रास्तु पूर्ववद्वाणि ओक् रस्य पृषोदरादित्वाद्वृद्धि-
 माहुः । अन्ये तु दीव्यन्त्यस्मिन्निति दिवम् 'घञर्थे कविधानम्'
 इति क', तत्र 'वृद्धिरेचि, इति वृद्धिरिति । अस्य वृद्धिविषय एव
 प्रयोग इति केचित् । अपरे तु सर्वत्रेति । तथा च सुभूति^१ चन्द्राभ्यां
 प्रयोगो दर्शितः । 'महत्त्वता वृत्रवये यथादिवम्' इति । त्रिदश
 दीव्यन्त्यत्रेति त्रिदिव । पृषोदरादित्वाद् दशशब्दस्य लोप, पूर्व-
 वक्तः । यद्वा बह्वविष्णुमहेश्वरास्त्रयो दीव्यन्त्यत्रेति व्युत्पत्तिः ।
 देवते इति देवने शपि गतम् ॥ १ ॥

पिवु तन्तुसन्ताने ॥ परिपीव्यति, निपीव्यति, विपीव्यति,
 'परिनिविध्य' इत्यादिना षत्वम्, 'सात्पदादौ रिति निषेधाप-
 वादः । परिपिषेवेत्यादौ 'स्यादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य' इत्यत्राभ्या-
 सस्येति योगविभागेन स्यादीशमेवाभ्यासस्य 'उपमर्गात्' इत्यादिना
 षत्वमिति क्रियमाणो नियमस्तत्र प्राक्सितादित्यनुवर्तनाद् इहाप्राक्सि-
 तीयेनेत्यभ्यासस्य षत्व भवत्येव । परस्यापि 'इण्कोः' 'आदेशप्रत्य-
 ययो' रिति षत्वम् । उपपादित चैतदेव सहतौ । स्यादिसूत्रार्थः
 सेधतौ व्यक्तमुक्तः । अत्रात्रयोभ्यासस्य षत्वं नेत्याह । तत्सहतावेव
 दूषितम् । सेविता सेविष्यति । सीव्यतु । पर्यपीव्यत्, पर्यसीव्यत्,

१ ओकारे तस्येति ४ पु पाठ ।

२ आत्रेयसुभूतीति ४ पु पा ।

‘मिवादीना वाङ्मयवायेपि’ इति वा पत्वम् । यत्र निविभ्यामपि ।
 मीञ्यत् मीञ्येनाम् । आगिषि मीञ्यात् । पर्यवेवात्, पर्यमेवात् ।
 पर्यवेविष्यत्, पर्यमेविष्यत् । पूर्ववत् पत्वविकृत्य । परिषेविष्यति,
 परिषिष्यति । मनीवन्ते । नदिङ्कल्पः । इहभावे ‘हलन्ताच्च’ इति
 सनः कित्वाङ्कट् । पूर्ववत् स्य दिङ्विति नियमाभावादभ्यासस्य पत्वम् ।
 एव निविभ्या परस्य तु न भवति । लौनिग्ये रेव इति नियमात् ।
 मेरीञ्यते । सेवयति । पर्यवेविष्यदित्यादौ ‘स्मभुनिबुमहां वृद्धिः’
 इत्यभ्यासस्य ‘परिनिविष्य’ इति प्राप्तस्य पत्वस्य विशेषः । सृत्वा,
 सेवित्वा । उदित्वादिङ्कल्पः । सूनः । ‘यस्य विभाषा’ । सृतिः ।
 तितुवे । नदिङ्कल्पे । सेवन, मीवन । एवेदरादित्वाद्वा दीर्घः ।
 तथा च चान्द्राः ‘ष्टितुमिवोदीर्घश्च’ इति । प्रसीदन्ति तमिति
 प्रमेयकः, अकर्मणि च कारके इति घञन्तात्सजाया क्त् । वीणाप्रान्ते
 ‘वृत्काष्टमुच्यते’ । ‘हलन्त’ इति वा घञन्तात्कत् द्रष्टव्यः । सूनः ।
 ‘मिवेट्क च’ इति नप्रत्यये ट्ककारः । दीर्घाच्चारणमसमर्थ्याच्च गुणः ।
 स्योनग्यत्सु बह्वलकाद्यन्ये कटी यणि गुणे । सूत्रम् । निविमुच्यो-
 ट्क च’ इति घृत्, ट्ककारश्च । टित्वात् स्त्रिया सूत्री । यस्यामाद्यं
 ‘तन्तुः ॥ २ ॥

चिबु गतिगोपणयो ॥ स्त्रीयवांस्यादि दीव्यतिवत् । मिसि-
 यति । मुसृष्टति । इवन्तत्वादिङ्कल्पः । इहभावे ‘हलन्ताच्च’ इति
 कित्वा ‘ज्वरत्वे’ त्यादिना वदन्तेपथयोल्लिङ्गं दिव्वनम् । सेली-
 व्यने । सेजेति, सेनतः सेजयति, सेजापि, सेजामि, सेजावः, सेजमः ।
 कनादावनुनामिकादौ को च उपधाप्रकारयोः ‘ज्वरत्वे’ त्यादिना
 ऊट् । सेवित्वा, सृत्वा । उदित्वादिङ्कल्पः । सूनः । ‘यस्य
 विभाषा’ इत्यनित्त्वम् । सृतिः । ‘तितुवे’ त्यनित्त्वम् । सूः,

१ सूनवन्तिप्रक ४ पु ।

२ मीवनः सिगविशेषः । इति ३ । ४ पु पा ।

३ वृत्तेति ३ पु पा । ४ येनरिति ३ । ४ पु पा ।

सुवौ, कौ पूर्ववदू, अज्ञादावुवड् । 'ओस्सुपि' इति यण् सयोगपूर्व-
त्वाच्च भवति ॥ ३ ॥

छिबु निरसने ॥ छीव्यतीत्यादि सौव्यतिवत् ॥ तिष्ठेवेत्यादौ
अभ्यासै खयशेषः । अत्र वक्तव्य भूवादौ छेवतावुक्तम् । 'सुब्धातुष्टि-
वुष्वक्तीनाम्' इति यः सकारनिषेधः । अमुं धातुमात्रेयादयः पठन्ति ।
अन्ये तु न पठन्ति । यदाह 'धात्वादेष्म' इत्यत्र न्यासकारः ।
'छिबुं दिवादिष्वपि' के चिदधीयते' इति ॥ ४ ॥

णुसु अदने ॥ आदानइत्येके । अदर्शनइत्यपरे । 'धात्वा-
देष्मः', सुष्यति । सुष्णोस, सुष्णुसतुः, सुष्णोसिष्, सुष्णुस, सुष्णोप,
सुष्णुसिव, 'आदेशप्रत्यययो' रित्यभ्यासात्परस्य षत्वे छुत्स्व, 'रषा-
भ्याम्' इति णत्व वा । स्त्रोसिता । स्त्रोसिष्यति । सुष्यत् । अस्तुस्यत् ।
अस्तुस्यः । सुष्येत् । आशिषि, सुष्यात् । अस्तौसीत्, अस्तौसिष्ठा, अस्तौषीः,
अस्तौषिष्ठ, 'नेटि' इति सिद्धि वृद्धेरभावः । सुस्तुसिषति, सुस्तौसिषति,
सुसित्वा स्त्रोसित्वा । 'ह्रस्वोपधात्' इति वा कित्त्वम् । 'स्तौतिष्ठ्यो'-
रित्यभ्यासात्परस्य न षत्वम् । सोष्णुस्यते । सोष्णुसीति, सोष्णोस्ति,
सोष्णुस्तः । स्त्रोसयति । असुष्णुसत् । सुषा । इगुपधलक्षण के टाप, सुषा-
मादित्वात् षत्वम् । औणादिक इत्यात्रेयः । णुसु निरसनइत्येके ।
मिच्छेन्यात्रेयमैत्रेयोः उटुपधं चाहनुः । स्वामिकाश्चपौ तु अटुपधममुमेव
पठित्वा णुसु अदर्शनइति द्रमिडा इत्युक्तरोपधं पदान्तरमाहनुः ।
तत्र मित्त्व 'जनीजूषणु' इति पाठाश्रयेण । सुष्यति, सस्त्रास इत्यादि,
योपदेशस्य प्रयोजन यौ सुसयति असिष्णुसत् सिष्णुसयिषति इति ॥ ६ ॥

क्लसु हूरणदीप्तोः ॥ हूरणं कौटिल्यम्, क्लस्यति, चक्रास, क्लसिता,
क्लसिष्यति । क्लस्यत् । अक्लस्यत् । क्लस्येत् । आशिषि, क्लस्यत् । अक्लसीत्,
अक्लासीत्, 'अतो हलादे' रिति वा वृद्धिः । चिक्लसिषति । चाक्लस्यते,

१ पुनरित्यधिकं ३ । ४ पु ।

२ त्वासने, कित्त्वविकल्प इति ३ । ४ । पु ।

३ णुसु इति ३ । ४ । पु फ ।

४ कृष्णेति ४ पु फ ।

वाक्यम् । क्रमयति । अचिक्रमत् । जनीनृपक्रमु^१ इति मित्वम् ।
क्रमित्वा क्रमत्वा 'उदितो वा' इतीदृक्कन्य^२ क्रमः । 'यस्य विभाषा'
इतीगिगपेथ^३ । चक्रमः । घडयं कः । 'कृत्रादीनां के द्वे भवत' इति
द्वित्वम् ॥ ६ ॥

व्युष दाष्टे ॥ दन्त्योऽद्यादिः मूर्धन्यान्तरश्च । तथा च वैश्यने चिक-
टुकपर्याये व्यापगञ्ठ पठ्यते । अयमत्र पुषादौ विभागे पठिष्यते, तत्फल
तत्रैवाडमिट्टिः । क्वचिदुभयत्र विभागार्था दन्त्यान्त आष्टचादिश्च^४
पठ्यते । तत्र पुनः पाठे फलमेकत्रैवार्थं रूपद्वयमिट्टिः । व्युष्यति । व्युषो-
प, व्युषोपिष, व्युषपिव । व्योषिना । व्योषिष्यति । व्युष्यन्तु । अव्युष्यन् ।
व्युष्येत् । आशिषि, व्युष्यात् । अव्योषीत, अव्योषिष्टम् । व्युष्यिष्यति
व्युष्यिष्यति । व्युषित्वा, व्योषित्वा पूर्ववत्किञ्चनिकल्पः । बोध्युष्यते ।
व्योव्युष्यति, बोव्योषि । व्योषयति । अव्युष्यत् । व्युषिनः ॥ ७ ॥

प्लुष च ॥ प्लुषतीत्यादि पूर्ववत् । अयं पुषादावपि पठ्यते । फलम-
डोपि मिट्टिरिति स्वामी ॥ ८ ॥

नृनी गात्रविज्ञेये ॥ नृत्यति । ननर्तं ननृततुः ननर्तय, ननृतिव ।
नर्तिता । नर्तयति, नर्त्यति 'मेऽमिचि' इति मित्रव्यस्य सकृदादे-
रिद्विकल्पः । नृत्यतु । अनृत्यत् । नृत्येत् । आशिषि, नृत्यात् । अनर्तीत्,
अनर्तिष्टाम् । निनर्तिषति, निनृत्सति, 'हलन्ताञ्च' इत्यमिष्टि क्त्विम् ॥
नरीनृत्यते । नृभादिषु 'नृत्यनेर्घडि' इति पाठागणत्वनिषेधः । नर्नर्ति,
नरिनर्ति, नरीनर्तीत्यादि । रुषियीरुः । नर्तयति, नर्तयते । अनीनृतत्
अननर्तत्, उचंढा । अस्य चननार्त्तत्वाद् अणावरुमकत्वाच्च 'निगणच-
लने' त्यादिना योगद्वयेन कर्त्रभिप्रये क्रियाफले यत्र परम्पद प्राप्तं तत्र
'न पादमि' त्यादिना निषिध्यते । नृत्यम् । 'चद्रुपधात्' इति क्यप् ।
नर्नकः, नर्नकी । 'गिन्पिनि प्लुत्' इति प्लुत्, तत्र नृनिचनिरञ्जिभ्यः
परिगणनम् । नृनः, नृनवान्, ईदृक्कारणम् 'यस्य विभाषा' इत्यस्यानि-

१ अनिट्त्वमिति ३ । पु पा ।

२ व्युसइति ४ पाठः ।

३ एनो व्युषधादिति च सनेरिति ३ । ४ । पा ।

त्यत्वज्ञापनार्थम् । तेन धावित इत्यादि सिद्धयतीति आच्यमैत्रेयौ ।
स्वामिकाश्यपौ तु “अवयवेवरितार्थत्वाद् यङ्लुङ्निवृत्त्यर्थम्” इति ।
अत्र ‘यस्य विभाषा’ नास्ति, ‘सेऽसिचि’ इत्यत्र एकाच इत्यनु-
वृत्तेरिद्विन्यम्यैवाभावादिनि तयोरभिप्रायः । नृत् । दीर्घाकृतिः । ‘नृति-
श्रयोः कूरिति कूप्रत्ययः ॥ ८ ॥

अमी उद्वेगे ॥ ब्रस्यति, ब्रसति, ‘वा भ्राश’ इति श्यन्विषये पठे
शप् । तत्रास, तत्रसत्, ब्रसतुः, तत्रसिथ, ‘वा जृभमुत्रमाम्’ इति
क्रिति लिटि थलि च सेटि एत्वाभ्यासलोपविकल्पः । ब्रसिता । ब्रसि-
ष्यति । ब्रस्यतु, ब्रसतु, । अत्रस्यत् अत्रसत् । ब्रस्येत्, ब्रसेत् । आशिषि
ब्रस्यात् । अत्रासीत्, अत्रसीत् । तिब्रसिषति । तात्रस्यते । तात्रसि ।
तात्रसीति । ब्रासयति । अतिब्रसत् । ब्रसुः । ‘ब्रसिगधी’ त्यादिना कृः ।
ब्रस्तः, ब्रस्तवान् । ईदित्वादिनटत्वम् । तरङ्गापब्रस्तः । ‘अपेतापोठे’-
ति पञ्चमीसमासः । ब्रासः । घञ् । खदोषो भयं च । ब्रस धारणे
चुरादौ ॥ १० ॥

कुथ पूतीभावे ॥ पूतीभावो दुर्गन्धः । कुथ्यति । चुकोथ, चुको-
थिथ । कोयिता । कोथिष्यति । कुथ्यतु । अकुथ्यत् । कुथ्येत् । आशिषि,
कुथ्यात् । अकोथीत् । चुकुथिषति, चुकोथिषति, ‘रलो व्युपधात्’ इति
कित्त्वविकल्पः । अयं त्वाया न, ‘नोपधात्यफान्ताद्वा’ इत्यत्र नोपध-
ग्रहणप्रामर्श्यात् । तेन ‘न त्वा सेट्’ इत्यकित्वात् कोथित्वा इति
भवति । तत्र हि नोपधग्रहणस्य खमादिरनोपधः प्रत्युदाहरणम् ।
यद्यत्र ‘रल’ इति विकल्पस्यात्किं नोपधग्रहणेन, न च ऋफ ऋफि
हिंसायामित्यनोपध कान्त ऋकतिः प्रत्युदाहरणम् अर्फित्वा इति । अत्र
हि ‘न त्वा सेट्’ इति नित्यं कित्त्वनिषेधः । नैतदस्ति, त्रैशब्द हि
नस्साध्यम्, अर्फित्वा ऋफित्वा ऋफित्वा इति, तच्च असत्यपि नोपध-
ग्रहणे सामान्येन विकल्पप्रवृत्तावपि भविष्यति । चोकुथ्यते । चोकोति ।
कोथयति । अचूकुथत् । कुथः । इगुपधलक्षणः कः । कुथितमनेन, प्रकु-

धितः । 'उदुपधान्' इति कित्वविकल्पो न भवति तत्र अन्यतरस्या-
ग्रहणस्य अवस्थितविकल्पत्वात् शब्दिकरणानामेव ग्रह इति । तथा च
भाष्ये 'उदुपधाच्छ्रप' इति । कुचनीति हिमाया शपि गतम् ॥ ११ ॥

पुय हिमशाम् पुयर्वात्यादि कुयतिवन् पुयनीति शपि
गतम् ॥ १२ ॥

गुध परिवेष्टने ॥ अय चतुर्थान्त । गुधनीत्यादि । गुधित्वा ।
'मुहमुदे' त्यादिना मेट् । तत्र कित्वम् । गोधा । भिदादिवाटाङ्
अडि गुणः । गो धिमा । मत्ताया कति क्लृप् इति इत्वे 'प्रत्ययस्यात्'
इतीत्वम् । गोधाया अपत्य गौधेः । 'गोधाया द्रक्' इति द्रक् ।
गौधारः । 'आरगुर्दाचाप्' इत्यारक् । उर्दाचावहणान्ते 'स्त्रीभ्या
ठक्' इति टकि गौधेयः । गोधूमः । 'गुधेरुम' इत्युमः । गोधेऽय
क्रयादिः ॥ १३ ॥

तिष प्रेरणे ॥ तिष्यति । चित्तेष त्रिप्ता । तिष्यति । तिष्यन्तु ।
अतिष्यन् । तिष्येत् । आशिषि, तिष्यात् । अतैप्सीन, अतैप्ताम् । चित्ति-
प्पने चेतियने । चेत्येत्ति । तैरयति । अचित्तिपत् । तिष्या । तिष्यतः ।
तिष्यः । इदुपधन्वन् कः । तिषका । अज्ञातादौ कः । 'प्रत्ययस्यात्'
इतीत्वम् । तिषकादीना चोत्सङ्गान् इति निषेधः । तिषु । 'त्रामि-
श्विष्टिपी' त्यादिना कृः । परित्रपी । ममृचादिना घिनुष् । परित्रे-
पकः । 'निन्दहिमे' त्यादिना वुञ् । त्रिपा । भिदादिप'टाङ् ।
तिषम् । 'कजेन्द्रे' त्यादिना रक् । त्रिपिष्ठः । त्रिपीयात् । तिषयति ।
'म्यूनदूरे' त्यादिना 'गाविठुवन्' इति यणादेर्नापः । पूर्वस्य च गुणः ।
ममृचादिमूत्रे वृत्तिकारेण 'तिपिर्दिवादिस्तुदादिग्व' एह्यने' इत्युक्त-
त्वात् । 'द्वुर्दिमरश्मि' तिष्य गने वध्वा महाशिनान्' इति । 'सत्ति-
ष्य सरम्भमसद्विपत्तम्' इति भारते भट्टिकाञ्जे च दर्शनान्, पारायणिकैः
तिषेरेह पाठोऽयुक्त इति भूमूत्रे मुधाकरणे प्रविशति । कृतस्त्रौदा-
दिकस्यापि समानाः । 'स्वरेण नीचैर्न शपि कुपि त्रिप्तिम्' इति पाठा
दयमनिट् । अय चुरादावदन्त इत्यात्रेयः ॥ १४ ॥

पुष्प विकसने ॥ पुष्पयति । पुपुष्प, पुपुष्पिष्य, पुपुष्पिष्यत् । पुष्पित
पुष्पिष्यति । पुष्पयतु । अपुष्पयत् । पुष्पयेत् । पुष्पयात् । अपुष्पीत् । पुष्पा
यति । पोपुष्पते । पोपुष्पित । पुष्पयति । अपुपुष्पत् । पुष्पम् । अ-
पुष्पकम् । सजायां कन् । शणपुष्पी । 'पाककर्णपर्णपुष्पे' त्यादि
डीप् । सत्पुष्पा, प्राक्पुष्पा, प्रत्यक्पुष्पा, काण्डपुष्पा, प्रान्तपुष्पा, श-
पुष्पा, एकपुष्पा । 'सदृक्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्' इत्यजादिपाठ
पुष्पात्तरपदलक्षण डीर्घं बाधित्वा टाप् । अगिति क्तिन्नन्तोर्ज्वातिरुच्चां
पुष्पित्वा । पुष्पितः । निष्ठा, तारकादित्वादितज्ज्ञा ॥ १५ ॥

तिम स्तिम ग्रीम आर्द्राभावे ॥ तिम्यति । तितेम । तेमित
तेमिष्यति । तिम्यतु । अतिम्यत् । तिम्येत् । आशिषि, तिम्यात्
अतेमीत् । तितेमिषति, तितिमिषति । तेतिम्यते । तेतिमि । तेमयति
अतीतिमत् । स्तिम्यति । तिष्ठेम, इत्यादि । अभ्यासे खयश्शेषः । स्त-
म्यतीत्यादि । अत्र केचिदसंयोगादि तीम इति दीर्घान्त चतुर्थमपि धा-
पठन्तीत्यात्रेयः । तिमिः, 'इगुपधात् क्तिञ्च' इतीन्प्रत्ययः । तिमिरम्
'इषिमदो' त्यादिना क्तिञ्च ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

व्रीड चोदने ॥ चोदनं लज्जेति स्वामी । लज्जायामप्यधीय
इति मैत्रेयः । अत्रेयस्तु व्रीड चोदने लज्जायामिति । व्रीडयति । व्री-
डि, विव्रीडिष्य विव्रीडिष्यत् । व्रीडिता । व्रीडिष्यति । व्रीडयतु । अव्रीडयत्
व्रीडयत् । व्रीडयत् । अव्रीडीत् । विव्रीडिषति । वेव्रीडयते । वेव्रीडिष्यति ।
अविव्रीडयत् । व्रीडित्वा । व्रीडितः । व्रीडः । घञ् । व्रीडा
'गुरोश्च' इत्यकारः ॥ १९ ॥

इष गतौ ॥ इष्यति । 'इषगमियमाम्' इत्यत्र 'क्त्वप्याचि
इत्यतोऽर्चीत्यनुवर्तते, 'ष्टिबुक्त्वा' इत्यतः शितीति च, तत्र शिताऽर्चं
विशेषणदित्सञ्जकशकारादावचि कृत्वविधिरितीह न भवति । ये
तौदादिकमुदित पठित्वा कृत्वविधावपि तथा पठन्ति तेषां न कश्चि-
त्क्लेशः । इयेव, ईयतुः, इयेषिष्य, ईषिव, षित्स गणे त्रिवचनम् । 'अ

गुणे 'वृद्धिरेचि' इति वृद्धि बाधित्वा, 'एङि परस्मैपु' । इष्यन् । इष्य ।
 इष्याणि । इष्यन् । इष्यन् । आगिषि, इष्यान् । ऐरीन् । इषिषिषि ।
 इष्यति । मा भवानिषिषत । ओलेदृष्टिकरणाद् द्विवचनस्यै ह्रस्व
 इत्युक्तम् । इषित्वा । इषितः । 'तीक्ष्णमे' ति तादौ विधीयमान
 इङ्गिकल्प 'इषेत्कारे श्यन्प्रत्ययात्प्रतिषेध इत्युक्तत्वादित् न भवति ।
 प्रैषः, प्रैष्यः । घञ् एष्ये । 'प्राङ्गोटाग्रैष्ये' वृद्धिर्नक्तव्या इति एङि
 पररूपापवादो वृद्धिः । अन्वेषणा । 'इषेरनिष्कार्यस्य युञ्जकस्य' इति
 युच् । पर्येषणा, परीष्टि । 'परेशा' इति युचकिञ्चौ । एषणी । एषण
 करणे' इति गौरादिपाठान्दीप् । इषीमा । 'इषे, किञ्च' इतीकम्प्र
 त्ययः । इष्टका । इष्यशिभ्या तक्त इति तक्त । किञ्चिन्नुवर्तनात्
 गुणः । इषीकृतनम्, इष्टकचिनम् । 'इष्टकैर्ष के' ति चित्तुनयोस्त-
 रपदयोर्हृन् । अत एवेष्टकैति निर्देशात् 'प्रययस्यान्' इति इत्वं न
 भवति । तदन्तविधिना पङ्केटकचिनमि यपि भवति । अयं नुराशवरीति
 स्वामी । इयु इच्छाया तुदादिः । इप आभीक्ष्ण्ये ऋदादि ॥ २० ॥

बुह चर्चये ॥ चर्चयेत्पुनरिति स्वामिधनपालशकटापनाः ।
 आत्रेयमैत्रेयदुर्गा ॥ यह बुह इति द्वौ धातू पेटुः । महेरिह पाठो
 न्यामकारहरदनागदेवादीनामयनभिमन, यत्तत्रवन्न महि एहणे भौवा-
 दिक्रमेवाहुः, नापुम्, न चास्याहणे कारणम् । 'दाग्वात्पादुत्' इत्यत्र
 "साह्वानिति 'यह मर्षणे' इत्यस्मात्परमेपदं निपात्यते" इति
 वृत्तिमुपादाय "यहमर्षणे इत्यस्यात्मनेगदित्वात् चैरादिकस्य तु 'आधृ
 पादु' इति णिजभावस्य दीर्घस्वरद्वित्वरनित्त्वं च निपात्यतइत्य-
 न्ये" इति वदता च हृदनेनेह महे-यठ स्फोरितः । "साह्वानिति
 निपातनं आधृपीयाद्विभाषितणिव" इति वदन् कैयटकरोप्यत्रैवानु

१ उणादिविद सूत्र न दृश्यते । यत् इके किञ्च इति सूत्रं ननु दीर्घादीरेप
 धातोरुपत्येन इपुयद्विनियानपरम् । इपीकायदुल्लु ईषेः किञ्चिन्नुच इति
 सूत्रेणैव साध्यते ॥ २ आत्रेयदेर्मैत्रेयदुर्गा इति ३ । पु पा ।

३ रभाव इति ३ । ४ । पु पा ।

कूलः । सहि पठतां सद्यतीत्यामुदाहार्यम् । पत्वादि सहतिवचनम् ।
 अत्र परिषद्यतीत्यामुदाहृत्य 'परिनिविध्य' इति षत्वमिति वदता
 आत्रेयेषु यदुक्तं 'यत्तु तत्र बह्वर्षद्वयस्य ग्रहणं न्यासे प्रतिपादितं
 नैतस्यापीति तदनागममिति नादरणीयम्' इति अस्यैव धातोरभावाद्
 न तस्याय दोषः । स्वयाघातक आत्रेयवचनं यदुच्यते " 'तीषसहे'
 तीड्विकल्प सहेति शबन्तस्य सूत्रे निर्देशात् नास्य' इति । तच्च
 यस्मात् षत्वविधावपि तुल्यम् । सुह्यति । सुषोह । सोहिता । सोहि-
 ष्यति । सुह्यतु । असुह्यत् । सुह्येत् सुह्यात् लिङौ । असौहीत् ।
 मुमुह्विषति । मुसोह्विषति । मुह्वित्वा सोह्वित्वा, सोपुह्वते । सोपुह्वीति
 सोह्वीति । सोह्वयति । असूपुह्वत् । फलानां सुहितः । 'पूरणगुणे' ति
 षष्ठीसमासनिषेधः ॥ २१ ॥

इष्टपरस्मैपदप्रसङ्गात् अजन्तावपि तादृशावाह ।

जृद् भृष् वयोहानौ ॥ जीर्यति, जीर्यतः, 'जृत् इष्टातो' रितित्वे
 रपरत्वे 'हलि च' इति दीर्घः । जज्जार, जजरतुः, जजरुः, जजरिथ,
 जजरथुः, जजर, जज्जार, जजर, जजरिव, 'जृच्छत्यृताम्' इति किति
 गुणः । अकिति तु यथायोगं पूर्वविप्रतिषेधेन गुणवृद्धौ । अस्तु वा तच्चापि
 'जृच्छति' इति गुणः । कृते तस्मिन् वृद्धिस्तु 'अत उपधाया' इति
 भविष्यति । गुणे तु तेन वा सत्यनेन वापि न विशेषः । 'वा जृध्रमुत्र-
 सप्तम्' इत्येत्वाभ्यासलोपपक्षे जेरतुः, जेरुः, जेरिथ, जेरथुः, जेर, जेरिव ॥
 जरिता, जरीता । जरिष्यति, जरिष्यति । 'वृत्तो वा' इत्यलिटो वा
 दीर्घः । जीर्येत् । अजीर्येत् जीर्येत्, जीर्यात् लिङौ । अजारीत्, अजा-
 रिष्टां, 'धृत्' इत्यस्य 'सिद्धि परस्मैपदेषु' इति निषेधः । अजरत्,
 अजरतां, 'जृस्तभ्य' ति षच्चे च्लेर्वाऽङ् । 'जृष्टोऽङि' इति गुणः ।
 जिजीर्यति, जिजरिषति, जिजरीषति, 'इष्ट सनि वा' इति वेट् । तस्य
 'धृत्' इति वा दीर्घः । अनिटि सनः कित्वादित्वदीर्घयोर्द्विवचनम्,
 अन्यथा षड् जिजीर्यत इति न स्यात् । जरयति, अजीजरत्, 'जनिजृष्'
 इति भित्त्वाद् द्वयम् । जीर्यन् । जीर्यन्ती, 'शप्श्यनो रिति नित्यं नुम् ।

जरन् जरती इत्येतन् 'जरीयनेरवृत्' इति 'जरीयनेरवृत्ति' । जरद्भवः । 'पूर्व-
काले' नि ममामः । गारवद्वितनुक्ति' इति टच् युञ्जरती । 'युवा-
खलनी' त्यत्र लिङ्गविशिष्टग्रहणाद् युवतिगच्छेत् ममामे पुवद्भावः ॥
अजर्यम् । 'अजर्यं मङ्गलम्' इति कर्तरि मङ्गले यद् निपात्यते, अम-
ङ्गले तु अजरिना कम्बलः । जरा । पित्वादिङि चट्ठग इति गुणः ।
जरे, जरमौ, 'जराया जरयत्यनरम्यम्' इत्यत्रादौ मुपि वा जरमादेशः ।
जरामतिक्रान्त ब्राह्मणकुलं अनिक्रान्ते कुलैरिति विद्वद्भ्यः 'अन्यादयः
क्रान्तादयः' द्वितीयया इति ममस्य नपुमस्त्वन्वे मोरभावे भिन-
श्चैमि मन्त्रिपानपरिभाषाया अनित्यत्वादिति वाच्यम् । 'अनित्यमनित्यं जर-
मादेशे ऽतिजरममतिजरमैरिति भाव्यम् । तथा टाडम्योरपि जरमादे-
शात्पूर्वं इनादादेशयोः पश्चाज्जरमादेशे ऽतिजरमिना ऽतिजरमादिति
केचित् । तेषामतिजाम ब्राह्मणकुलं पश्येत्तत्र अमे' नुक् बाधित्वा
ऽम्भावे प्राप्ते ततः परत्वाज्जरमादेशे तदाश्रयस्य लुक् न प्रवृत्तिः, मन्त्रि-
पातपरिभाषाया अनित्यत्वादिति वाच्यम् । 'गेनर्दे' यस्तु सर्वत्र परिभा-
षाप्रवृत्तस्मेरमि भिनश्चैमि टाडम्योरिनादादेशे ख जरादेशाभावाद्
अतिजरमतिजरे, अतिजरेण अतिजर इ इत्यह । अतिजरामि इत्यत्र
जरमोर्गोभावे नुमः परत्वाज्जरमादेशे पश्चात्कनन्तादेशाश्रयो नुम
अन्यथा ऽङ्गभक्ते नुम् तदश्रयस्य जराश्रयस्य विभक्तौ आतन्तर्धं व्य-
दध्यात् । अनुजर्गो वृषली देवदत्तः, अनुजर्गो वृषली देवदत्तेन ।
'गन्धर्वाकर्मके' त्यादिना कर्तृकर्मणोः क्तः । 'ग्युक्तः किति' इति
'यस्य विभाषा इति वा ऽनिट्त्वम् । जरयतीति जार । 'दारजारी
कर्तरि णिलुक्' इति कर्तरि घञि णिलुक् । यद्वात्र गोघञि 'गोरनिटि'
इति लोपस्यात् तर्हि तस्य स्यानिवत्त्वाद् अनुपधात्वादकारस्य घञा
श्रया वृट्ठिर्न स्यात् । मित्वाणिश्रपेतायास्तु वृट्ठिर्न व्यस्य्यात् । लुकि तु
लुका लुप्तत्वात् 'लुका लुप्त न स्यानिवत्' इति स्यानिवत्त्वनिषेधः ।

१ भूतइत्यधिकम् ।

२ अत्यादय इत्यादि ममस्येत्यन्तः । ४ पु नास्ति ।

अयमपि क्रयादौ युजादौ चेति मैत्रेयादयः । अत्रात्रेयः किञ्चदाह ।
 ‘नृवृश्चोः त्वि’ इतीद्विधौ सानुबन्धकत्वादस्याग्रहणात् ‘श्युकिः किति’
 इति निषेधे जीर्त्वेति भवितव्यमिति स्वयमेव सानुबन्धकत्वेपि ‘जृस्तम्’
 इत्यङि ग्रहणं चह । एवं नियमे कारणं स प्रष्टव्यः । योसौ निरनुब-
 न्धकस्स वृत्तितद्वाख्यानकृताप्रवभिमतः । यदि हि स्वादडादिविधौ
 निरनुबन्धकमेवोपाददीरन् अग्रहणे कारणं वा ब्रूयुः । किञ्च ‘दार-
 जारौ कर्तरि णितुञ्च’ इति णितुञ्चनं चानर्थक्यं स्यात् । यतः पित्वेना-
 मितोऽस्माणौ कर्तरि घञि णेश्च लोपे प्रत्ययलक्षणं वृद्धिर्भविष्यति ।
 तथा च क्रयादौ मैत्रेयेर वक्ष्यति जृणोति पठित्वा ‘ङ् इत्येके’ इति ।
 जरन्तः । ‘जृविशिभ्यां ऋच्’ इति ऋच् । ‘भोन्तः’ । भीर्यतीत्यादि
 जीर्यतिवत् । स्नेहदेत्वाभ्यासलोपमित्त्वाद्यस्य न भवति । भर्, निर्भर्, ।
 अप्, ऋर्भर् । औखादिक इत्यत्रेयः । वाद्यविशेषः । भर्भर्वादन शिल्प-
 मस्य भर्भर्, भर्भरिकः । ‘महुकभर्भर्दण्यतदस्वाम्’ इत्यष्टकैः ।
 दिवादयः परस्मैभाषा उदात्ताः । क्षिपिर्वर्जम् ॥ २२ ॥ २३ ॥

सूङ् प्राणिप्रसवे ॥ सूयते, सूयेते, सूयसे, सूये, सूयावहे । सुषुवे,
 सुषुविषे, सुषुविवहे । सोता, सविता । सोष्यते, सविष्यते, ‘स्वरत्सू-
 तिसूयती’ ति ऋत्वादाविद्विकल्पः । स्त्रियम् विकल्पं बाधित्वा पुरस्ता-
 त्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यात् ‘श्युक्रः किति’ इति प्रतिषेधे प्राप्ते
 क्रादिनियमवित्त्वमिदं । सूयता, सूयेता, सूयस्व, सूयै । ऋयत, अ-
 सूयताम्, असूययाः, ऋसूके, असूयबहि । सूयेत, सूयेयाता, सूयेयाः सूयेय,
 सूयेवहि । असिषि, सोषीष्ट, सविषीष्ट, सोषीयास्ता, सविषीयास्ताम् ।
 असोष्ट, असोषाताम्, असोष्टाः, असोषि । असविष्ट्यादि, पूर्ववदि-
 द्विकल्पः । सुसूयते । ‘सनि अहगुहोश्च’ इति निषेधे कित्वाद्गुणत्व,
 अयमपि निषेधः पुरस्तादाहभात् स्वरन्यादिविकल्प बाधते । ‘स्ताति-
 योरेव’ इत्यपत्त्यम् । सूत्वा, सूतः, सूतवान् । ‘स्वादय ओदित’ इत्या-
 दित्वाद् ‘ओदितश्च’ इति निष्ठान्तम् । अयमसूयार्थापि । तेन देव-
 दत्ताय सूयत इति ‘क्रुधद्रुह’ इति चतुर्थी भवतीत्यात्रेयः । अत्र प्राणि

यहणमनन्तरम् । तेन प्रमृतामन्तर इति भवति । अन्ये तु सर्वे भावा-
स्मत्तेनता इत्यत्र प्राणित्वमाहुः । तदा च प्रमृत्त कुसुम समम् इत्यत्र
सुभूतिवद् पृष्ठ प्राणिप्रसवे स्रवणक्रमेण वृत्तस्य पि प्राणित्वमि-
ति । अनुक्त मृतिवत् । २४ ॥

द्वृष्ट परिनाशे ॥ परिनाशः विदः । दृष्टवद्व्यादि मृयनिवन् ।
दृष्टत्वस्य नित्यः । काश्चनेभाष वृदात्तौ ॥ २५ ॥

दीङ् लये ॥ एतद्वदये नुदाना आत्मनेपदिन पीडपर्यन्तः
दीङ् तु सेट् । दीयते दीयते । दिदीये, दिदीयानि, दिदीयिरे, दिदी-
यिषे, दिदीयिष्ठवे दिदीये दिदीयिष्ठे । क्रादिनित्यमादिट् । दीहो
युहवि कृडिति इत्यत्रादावायेप्राप्तौ कृडिति युडागमः । म च 'मा
नेकाच' इति यणि कर्त्तव्ये 'अमिद्वदत्र' इति नामिद्वः वृषुटावुव-
इयणोऽस्मिद्वै वक्तव्यौ इत्युक्तत्वादत्र छमि 'विभाषेष्ट' इति मूषेण्य
विकल्पो न भवति । कृते युटि प्रत्ययभक्तेनानेन इगन्तादङ्गात्प्राप्तमिटे
विहन्मिति इगप्राध्वम् इति नित्यमेव भवतीत्येके । अपरो न अङ्गा-
दिति नानुवर्तते इति युट् एव यत् परान्त्त्वं नित्यविकल्पमाहुः । एक
चैतन्यसद्वृत्त वृत्तैः दाता दास्यते । मीनानिमित्तेतिदीया न्यपि
च इति एज्जिषये ल्यदि च कान्त्वम् । दीयता, दीयेता दीयन्
दीये । अदीयत, अदीयेताम् अदीयिषा अदीये । दीयेत, दीयेयाः
दीयेयः अदीये, दामीष्ट इत्यादि । एज्जिषयन्दादात्वम् । अदास्त,
अदामानाम् अदास्या, अदामि अदान्ते कृते दारूपत्वेपि दीहः
प्रतिषेधः स्याद्योरित्वे इति इत्त्वकित्वयोर्युपसंज्ञा निषिध्यते । अत एव
विषयविदेशे घुत्वनिषेधादन्यत्र कृतात्वस्य घनज्ञाया प्रविशनेत्यादि भव-
तीत्येके । अन्ये तु यावत्सुपदेशस्यानाप्तुकाण दाधारूप भवति तेषामेव
घुत्वम् । दोद्वेद्वेष्टामण्यनुकरणं वहेन दात्पमेय दीहस्तु नेति नैवेनम्
कापि घुमज्ञाप्रसङ्ग इति । उक्तमिदं एतद्वृत्त कैयटपदमज्जरीवाक्यमज्जया

१ व्याहृतमिति ३ पु पा ।

२ य लज्जत्यधिकम् ३ ४ पु पा ।

दिष्वपि । उपदिदीपते । 'इको भल्' इति सनः क्त्वादेज्जिप्रयत्वा भावानात्वम् । कातन्त्रे दिदासते इत्यात्वमुक्तम् । अत्र शाकटायनः, आत्वप्रकरणे 'अभ्यपगुरो वा दीडस्सनि' इत्यात्वविकल्पमाह । अमिति णमुलुच्यते । स्वामी तु उपदिदीपते उपदिदासते इत्यपीष्यते इति । काश्यपस्तु आत्वपक्षे दिदासते इत्येकइत्युक्त्वा सग्रहइत्वव्यतिरिक्तस्य घुकार्यस्योक्तत्वाद् इस्भावे उपदिस्सतइत्याह । इदमात्व सूत्रवार्तिक भाष्ये न दृश्यते । देदीयते, देदेति, देदीतः, देअति । दापयति । एज्जिप्रयत्नभावादात्वे पुक् । दीत्वा, दीनः, दीनवान्, 'स्वादय ओ दित' इति निष्ठानत्वम् । उपदाय । मीनातिमिनोतिदीडा ल्यपि च' इत्यात्वम् ॥ २६ ॥

डीङ् विहायसा गतौ ॥ डीयते । डिङ्ये, डिङ्यिषे, एरनेकाच' इति यण् । डयिता । डयिष्यते । डीयताम् । अडीयत । डीयेत, डयि पीष्ट, लिङौ । अडैष्ट । डिङ्यिषते । डेडयते । डेडेति । डापयति । अडी डपत् । डयित्वा, डीनः, डीनवान् । स्वादिषु पाठसामर्थ्यादनित्वम्, निष्ठायां इटि हि व्यवधानम् 'ओदितश्च' इति नत्वस्याप्रसङ्गः । डयितशब्दस्तु भौवादिकस्य । तत्र 'निष्ठाशीङ्' इत्यत्र निष्ठेति योग-विभागादकित्वमिति सीरदेवादयः ॥ २७ ॥

धीङ् आदाने ॥ धीयते । दिङ्ये । धेता । धेय्यते । धीयताम् । अधी-यत । धीयेत । धेपीष्ट । अधेष्ट । दिधीपते । धीत्वा, धीनः, धीनवान् । न धीनः, अधीनः । यस्तु 'अस्मास्वधीन किमु निस्पृहाणाम्' इत्यादा-वधीनशब्दः सोऽव्युत्पन्नः परतन्त्रवचनः । यथाह कैयटः । 'वाक्य वक्तव्य-धीन हि' इत्युपादाय 'अधुनरपदात्पविधानाद् अव्युत्पन्न आयत्तार्थे वृत्तिरधीनशब्द इति ॥ २८ ॥

मीङ् हिंसायाम् । अत्र हिंसाशब्देन हिंसाफलं प्राणविश्लेषोभि-धीयते । मीयतइत्यादि धीङ्वात् । मिमीयतइत्यत्र 'सनिमीमे' इति

पूर्ववदात्वविकल्पः । तत्रात्वपक्षे 'लीलोर्नुगुकावन्यतरस्या स्नेहविपातने' इति वा लुगागमः । तदभावे पुक् । तत्र हि ला इति लात्वणिकमपि गृह्यते । अनात्वे तु नुक् । तदभावे वृद्धायौ । एकदेशविकृतन्यायेन कृतात्वस्य नुक् भवति, ली ई इति ईकारप्रश्लेषेण ईकारान्तस्य तद्विधानात् । स्नेहविपातवादस्य नुलुक् न भवत इत्यात्वे पुक्, अन्यदा वृद्धायौ विलापयति विलापयतीति । स्याद्विपु चिण्वद्विटि आत्वपक्षे णेलीपे विलालिष्यते विलापिष्यते इत्यादि । अनात्वे विलीनिष्यते विलापिष्यते इत्यादीति । शुद्धेष्टि तु विलालयिष्यते विलापयिष्यते विलीनयिष्यते विलापयिष्यते इत्यादि । तदेवमष्ट रूपाणि । लुङ्प्रकवचने तु 'चिणभावकर्मणो' रिति चिण्यात्वे लुक्पुञ्जोरनात्वे नुक् तदभावे च वृद्धौ अलालि अलापि अलीनि अलायि इति चातूरूप्यम् । द्विवचनादौ सिचि पूर्ववदष्ट रूपाणि । कर्मकर्तरि 'णिश्चान्यग्रन्थी' ति चिणो निषेधाच्चाङि द्विवचनादाशत्वपक्षे अलीललत, अलीलपत । अन्यदा अलीलनत, अलीलयत इति चातूरूप्यम् । एव द्विवचनादावपि । जटाभिरालापयते आलापयते इति वा, पूजामधिगच्छतीत्यर्थः । श्येनो घृति-कामुल्लापयते न्यक्करोतीत्यर्थः । 'लियः सम्माननशालिनीकरणयोश्च' इत्यनयोश्चकारात् प्रलम्भने चाकर्त्रभिप्रायेऽपि तङ् । तत्र सम्मानन पूजनम् । तच्च धात्वर्थस्य कर्मतया विषयः । तस्य चात्वनेपदसहितेन धातुनोपात्तत्वाद् अस्मिन्विषये ऽकर्मकोऽप्युच्यते इति चेत् । शालिनीकरणं न्यक्करणम् । प्रलम्भनं निष्ठाफनाख्यानमित्युक्तम् । 'विभाषा लीयते' रित्यात्व व्यवस्थितविभागविज्ञानात्सम्मानने विकल्पितम्, अन्यत्र नित्यम् । विलाय, विलीय, 'विभाषा लीयते' रिति वाऽऽत्वम् । विलयः, अच् । ईषद्विलयः, खल् । 'निमिमीन्या खलचोरात्वप्रतिषेध' इति वा व्यवस्थितविभाषात्वेन वाऽऽत्वाभावः । लीनः । ली श्लेषण-इति श्रयादौ । ली द्रवीकरणे इति चुरादौ ॥ ३१ ॥

घ्रीङ् वृणोत्यर्थः ॥ दन्त्योष्ठादिः । घ्रीयते विघ्रीये । सयोगपूर्व-त्वाद्वा न भवति । व्रतेत्यादि रीघत् । 'स्वादय ओदिवः,' षूङ् प्राणि-

प्रसवद्वयार्थ्य एतदन्ता कोटिलः । तन्मन्त्रम् 'कोटिलश्च' इति
निष्ठानन्वम् ॥ ग्री घगणे इति श्रुत्यादौ ३० ॥

पीड् पाने ॥ पीयते, पिब्ये इत्यादि गीवन् प्रापयति । निग
रणे' ति निव्य परस्मैपदम् । प्रापयते इति पिबते' न पादर्म' ति ।
परस्मैपदनिष्ठानङ् । पीत्वा, पीन, पीनशब् । आरीप आदयेति
विक्रतेः ॥ ३३ ॥

माह् माने ॥ अय कौत्सिदेव यग्रने । यदाह स्वामी । 'माह्
मानहति दुर्ग' इति । तथा घुमास्यादिसूत्रे न्यमेपि "मा इति
कस्येद ग्रहणम् कि मेह् प्रविष्टानइति भौवादिकस्य, उव माह्
माने इति कौहोत्यादिकस्य, आहोस्विह् मा माने इत्यादिकस्य ।
'गामादायहणेष्वाविशेय' इति त्रयाणामपि ग्रहणम्' इति । तथा
'अविम्यन्ता' त्यत्र 'मति मीमे न्यत्राप्युक्तानामेव त्रयाणा ग्रहणमि-
त्युच्यते । यउतार्म'र'र'न्त्ये पाठः यउत'प'र'र'न्त्येयउत'र'र'न्त्ये ।
मायते । ममे । माना । मास्यते । मायतम् । अमायन । मायेन
मासीष्ट लिटौ । अमास्तेत्यादि । अन्यस्मिन् मानिषन् ॥ ३४ ॥

ईड् गतौ ॥ ईयते । अयाचक्रे अपदेशिवद्भावाद् इजादित्वगुह
मन्वयोराम् । एता । एय्यते । ईयताम् । ऐयत । ईयेन हपोष्ट
लिटौ । ऐष्ट । ईयिषते । आययति । आयियत । प्रेय, प्रतीय, ल्यप् ।
उपेयम्, 'अवो यत्' । अयव्विधावेर्नाति निर्देशावाप्त्य ग्रह ॥ अयते
इति शपि । एति अध्येति अधीयतइति लुकि ॥ ३५ ॥

प्रीड् प्रीणौ ॥ अकर्मकः । प्रीयते, प्रिप्रिये, इत्यादि गीवन् । प्राय-
यति । 'धूज्प्रीणोर्नुवक्तव्य' इति नुविधौ त्रित उपादानादस्य स न
भवतीति धातुवृत्तिकार । हरदत्तस्तु 'शनान्तानुकरणे दैव'द्विप्य न
भवति' इति । 'दैवादिकस्य ग्रहणेन च वैरादिकोप्युक्तवयिनम्'
इति पुरुषकारे । कौमाराम्नु व्यक्तमेव धूज् प्रीणान्या'रिति
पठन्ति । प्रियः । 'इगुपधजाप्रोक्तिः क' इत्यात्रेयः । धृतौ तु प्रीणा

तीति प्रिय इति क्लैयादिक एव उदाह्रियते । प्रेष्ठः, प्रेयान्, प्रेमा ।
 'प्रियस्थिरे'त्यादिना प्रादेशः । प्रियमाचष्टे प्रापयति । 'णाविष्ठ-
 घत्' इति प्रादेशे वृद्धिपुञ्जौ । प्रीञ् तर्पणइति ज्ञ्यादौ चुरादौ च ।
 दीङ् दय आत्मनेपदिनो दीङ्वर्जम्नुदात्ताः । स तु 'श्विङीङिङ्गेषु'
 इति वचनात्सेट् ॥ ३६ ॥

अथ अजन्तानिटप्रकरणात्पाठः परस्मैपदिः पठति ॥

शो तनूकरणे ॥ एतदादयो व्यतिपर्यन्ता अनुदात्ता उदात्तेतः ॥
 श्यति, श्यतः, श्यन्ति, श्यसि, श्यामि, 'आतश्यनि' इत्याकारलोपः ।
 शशौ, शशतुः, शशाय, शशिय, शश, शशिव, आत्वे द्विवचनम् । 'आत औ
 णलः' । क्वादिनियमादिट् । भारद्वाजनियमात्यलीङ्गिकल्पः । इडादाव-
 जादावार्धधातुके च क्ङिति 'आतो लोप इटि च' इत्याकारलोपः ।
 शाता । शास्यति । श्यतु, श्यतात्, श्यता, श्यन्तु, श्यानि । अश्यत्,
 अश्यः, अश्यम् । श्येत्, श्येता, श्येः, श्येयम् । आशिपि, शायत्, शया-
 त्ताम् । अशात्, अशाताम्, अशुः, अशाः, 'विभाषा घ्राधेट्शाच्छास'
 इति सिचः परस्मैपदे परे वा लुक् । 'आत' इति भेजुंस् । 'उस्यप-
 दान्तात्' इति पररूपम् । लुगभावे अशासीत्, अशाशिष्टात्,
 इत्यादि । 'यमरमनमाता' मिति रुगिटौ । शिशसति । शाशायते ।
 शाशेति । शाशयति । आत्वे 'शाच्छासे'ति युक् । शात्वा, शीत्वा,
 निशात, निशित, 'राच्छेरन्दन्राज्' इति तादौ किति वेत्वम् ।
 व्यवस्थितविभाषाधिज्ञानाद्गते नित्यमित्वम् । तदा च वार्तिकम् ।
 'श्यतेरित्व व्रते नित्यमिति वक्तव्यम्' इति । सङ्गितव्रतः^१ । शाकः ।
 बहुनकादौणादिकः कन्, मङ्गच्छाकं नानाजातीय शाकसमाहारो वा ।
 शाकी । बौरादित्वान्डीप् । शाकिनः । 'शाकीपलालीदद्रा ह्रस्वत्व
 च' इति मत्वर्थे नप्रत्ययो ह्रस्वत्व च । अत एव वा निर्देशान् डीप् ।
 शादम् । 'शाशपिभ्या दन्'^२ इति दन् । शादुलम् । 'नडशादाहङ्गलच्'
 इति षलच्चातुर्यिकः । द्वित्राट्टिनोः ॥ ३७ ॥

१ अत इति नास्ति कुत्रचित् । २ उणादौतु 'शाशपिभ्यां ददनौ' इत्येव दृश्यते ।

हो हेदने । क्यति । चच्छा चच्छतुः इत्यादि सर्वं श्यतिवत् ।
अत्र 'अभ्याममविकारोऽप्यत्रा नोत्कर्षात् निर्धत्तं वाधने इति
'द्रीधात्' इत्यन्तरङ्गेऽपि तुका ऽभ्यामहमस्य वाधात् कृते नमिन्
'हे च इति तुक् । पूर्व तु तुल्यभ्यामस्यानन्तत्वात् हस्यो न
स्यात् । 'अभ्यामविकारिणु' इति परिभाषा नान्यत्रादयस्तुक् प्रत्यय
च बाधकमात्रस्य बाध्यमात्रस्य बोधनरूपम्, न तु मात्राव्यतिरे
कमात्ररूपितुम् । चिच्छानर्तात्यत्र यथा 'अभ्यामविकारिणु' इत्य-
नेन 'द्रीधात्' इति तुक् ह्रस्वत्वं न बाधने तथा हे च इति
तुगपि 'सन्त्यत्' इतीत्वं न बाधने इति परस्वाङ्गत्वे तत्कित्तुम्
वाच्छायतदस्यपि पूर्ववद्द्रीधन्तत्वात् तुक् पूर्व ह्रस्वत्वे ह्रस्वन्तत्वेऽपि
तुगिस्त्वद्द्रीधत्वं न बाधने इति द्रीधे कृते 'द्रीधान्' इति तुक् ।
ह्याया । 'माच्छामसिमुभयो य इति मः । इतृणा ह्याया इतुक्त' इत्य-
'ह्याया बाहुल्ये' इति ह्यायान्तस्य तत्पुनरस्य अन्तर्दर्मधारयस्य ननुम-
कत्वे ह्रस्वत्वम् । तत्रकर्मधारये तु अच्छाया परमच्छाया इति इह
बाहुल्य पूर्वपदार्थधर्मः । तच्च ह्यायातेतुभूतानामिच्छादीनामनेकत्वम् ।
अन्यथा 'विभाषा सेत'सु'च्छाया'क'निर्वा'त'म् इति ननुमकत्व
विकल्पः, इति ह्याया इतुच्छायम् इतुच्छाया इति ॥ ३८ ॥

यो अन्तर्कर्मणि ॥ स्यति । समौ, इत्यादि सर्वं श्यतिवत् । अभि
ष्यति, अभिष्यता, अभ्यष्यत्, अभ्यषात्, अभ्यषामीत् । 'उपसर्गात्सुनोर्ना
त्यादिना 'प्राक्कितात्' इति च पत्वम् । अभिमसाच्चित्यत्र 'स्यादि-
ष्यभ्यासेन' इति नियमाद् अभ्यामस्य न पत्वम् । अभिमिषामर्तात्यत्र
पूर्ववदभ्यामस्य न पत्वम् । उत्तरस्य तु 'इतृतो रिमि पत्वम् । प्रणि
ष्यति । प्रणय्यद् 'नेर्गदे' त्यादिना णत्वम् । तच्च अङ्गप्रवायेपीयने ।
सेपीयने । 'घुमास्ये तीत्य' हलादौ कृडि यार्थवानुक्ते । आशीर्त्तं
ह्यात्वम् 'एतिङि' इत्येत्वे सेयादिति । अवमाय । न त्यपि इतीत्य
निषेधः । मिस्वा, मितः । 'अतिम्यनी' तीत्वम् । 'परितिविभ्य'
इत्यत्र मित इत्यस्यापि ग्रहणम्, तच्च नियमार्थम् । तेन पर्यादिभ्या

न्यत्र सिनशब्दस्य यत्वाभावात् प्रतिसितमित्यत्र न षत्वमित्येके । अन्ये तु मयमाहचर्याद् अलातृणिकत्वाद् विधिपम्भवे नियमायोगाद् विधिवैषम्यप्रसङ्गाच्च सिनोतिरेव सितशब्दस्य ग्रहणमित्यस्य 'उपसर्गात्' इति षत्व सर्वत्र भवत्येवेत्याहुः । अवस्यतीत्यवसायः । 'श्यादृधे' त्यादिना णे युक्, सायः । घञ् । साये भवः, सायतनः । 'सायचिरम्' इत्यादिना व्युत्पन्नोरन्यतर प्रत्ययः, तुङागमः, मास्त्व च सायशब्दस्य । यस्तु मान्तेष्वय सायशब्दस्तस्याव्ययत्वादेव प्रत्ययस्सिद्धः । सातिः । 'कृतियूती' त्यादौ निपातनात् क्तिनीत्याभावः ॥ ३९ ॥

दो अवखण्डने ॥ द्यति । ददौ इत्यादि श्यतिषम् । प्रणिद्वानि । घृत्वात् । 'नेर्गदे' त्यादिना णत्वम् । देयात् । 'एलिङि' इत्येत्वम्, अदात् । 'गातिस्ये' त्यादिना नित्य सिचो लुक् । देदीयते । 'घुमास्ये' नीत्वम् । दित्सति । 'सनि मीमे' त्यादिना इस् । अभ्यासलोपः, 'सस्सी' ति तत्वम् । दापयति । पुक् । दित्वा, दितः । 'द्यतिस्यती' तीत्वम् । अवदाय । 'न ल्यपि' इतीत्यनिषेधः । इत्वस्य तु नैव प्रसङ्गः । 'अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यब्बाधते' इति पूर्वमेष ल्यप्प्रवृत्तिः तादिक्रित्ताभावद् अवक्तमित्यादौ इत्वात्यरत्वात् 'अच उपसर्गात्' इत्येतद्व्यति । अन्यदपीह घुकार्ये ददातिवच्यम् । श्यतिप्रभृत्योनुदानाः परस्मैभाषाः ॥ ४० ॥

अथ हलन्तानात्मनेपदिनः सेटः परामृशति ॥

जनी प्रादुर्भावे ॥ इतः प्रभृति वाश्यन्ता उदात्ता अनुदात्ततः । प्रादुर्भाव उत्पत्तिरभिव्यक्तिर्वा । अत्रायमकर्मकः । यदा त्वन्तर्भावितगण्यर्थे उत्पादनायामभिव्यञ्जनाया वा वर्तते तदा सकर्मकः । दृश्यते दाशतये 'अज्ञा ह्यग्नेरजनिष्ठ गर्भम्' । तथा 'अचः कर्तुंयकि' इत्यत्र भाष्यमपि 'जायते स्वयमेव' इति । अत्र ह्यन्तर्भावितगण्यर्थत्वेन कर्मस्यभावकत्वात् कर्मकर्तृत्वम् । तथा ऽनुपूर्वाय यदा ऽऽत्मजन्मपूर्वके प्रापणे वर्तते तदापि सकर्मकः, 'असौ कुमारस्तमजोनुजात' इति । जननेन त प्राप्त इत्यर्थः । शङ्गाच्छ्रो जायते 'जाजनोर्जा' इति जादेश

इत्सुप्रकशकारादौ प्रत्यये । 'जनिकृत्' पठति 'रिति जायमानस्य
कारणं यद्गुणम् अत्रादानम् । जने जनानि जनिषे जनिष्वे 'गमकने
त्युपधानोपः । तस्य म्' निवत्त्वाद् द्विवचनम् । 'स्तोमु' रिति श्चु
त्वम् । जनिता । जनिष्यते । जायता, जायस्व, जायै । अज यन् ।
जायेत, जनिषीष्ट, निडौ । अजनि, अजनिष्ट, अजनिषाता दीप-
जने'ति कर्तरि तण्ठे ज्ञेया चिण् । 'जनिष्वधोश्च' इति वृद्धिनि-
षेधः । अन्तर्भावित्वात्प्रादम्भान् कर्मकर्तरि कर्मवद्वाद् नित्यश्चिण्
अजनि स्वयमेवेति । जिजनिषते । 'जनमनवता मनकने' रित्यात्व
मन इति भलादित्वाभावात् भवति । भलादित्वात् मन मनेनेति सम्भ-
वतीति तदर्थमेव मन्पञ्चम् । जाजायते जज्जन्यते, । ये विभाषा
इति जनादीनां वा यकारादौ कृडित्यात्वम् । जज्जनीति जज्जन्ति ।
जनयति, 'बुध्युधनशजने'ति कर्त्रभिप्रायेषि क्रियाकने परस्मैपदम् ।
'जनिजृष्' इति मित्त्वाद् ध्रुत्वम् । एयन्तात्कर्मणि चित्तामुनोदीर्घा-
न्यतरस्याम्' इति वा ह्रस्वत्वे अजनि अजानि इति । जन्यो यट्, जन्य
घटेन, तत्किमपिचनियतिजनीनाम्' इति यत् । स च भव्यगरे-
त्यादिना कर्तृभाष्योः । 'ये विभाषा' इति नात्वमकित्वात् । जनः
पञ्चाशच् । यज्यपि 'जनिष्वधोश्च' इति वृद्धिनिषेधात् जनः । जनानां
समूहो जनता । 'यामजनवन्मुपपाये यमन्' इति नन् । जनस्य
जन्यो जन्यः । 'मतजनहानात् करणजन्यकर्षण' इति जन्ये यत्प्रत्ययः ।
जनेषु साधुः जनजन प्रति वा प्रतिजन, मत्प्रत्यये वीप्साया वा उज्य-
यीभावः । प्रातिजनीनः । प्रतिजनादिभ्यः खञ्' इति तत्र साधु-
रिति विषये खञ् । विश्वजनाय हित विश्वजनीनम् । 'आत्मन्विश्व-
जने'ति खः । पञ्चजनीनम् । 'पञ्चजनादुपमद्भानम्' इति खः ।
सार्वजनिकः, सर्वजनीनः, 'सर्वजनादुज्ज्व' इति टञ्चौ त्रय एते कर्म-
धारयादेवेत्यन्ते । षष्ठीनित्यरूपे बहुव्रीहौ च 'तस्मै हितम्' इति क्ठो
भवति, विश्वजनीयः पञ्चजनीयः सर्वजनीय इति । महाजनाय हित
महाजनिकम्, 'महाजन चित्य टञ्चकञ्य' इति टञ् । अयं तत्पुरुषा

द्वेष्यते । बहुव्रीहौ तु क्त्वा भवति महाजनीय इति । पञ्चजनेषु भय पाञ्च-
जन्यम्, 'बहिर्द्वेषपञ्चजनेभ्यश्च' इति ज्यः । प्रावृषिजः । सप्तम्या
जनेर्ङ' इति ङः । 'प्रावृष्टकृत्कालदिवा जे' इति सप्तम्या अलुक् । एष
शरदिज इत्यादि । वर्षजः, वर्षजः । वरेजः वरजः । शरेजः शरजः । घरेजः
घरजः । 'विभाषा वर्षतरशरवरात्' इति जे परे सप्तम्या वा ऽलुक् । बुद्धे-
र्जातो बुद्धिजः । 'पञ्चम्यामजातौ' इति ङः । अनुजः, प्रजा । 'उपसर्गं च
संज्ञायम्' इति ङः । अप्रजाः, दुष्यजः, सुप्रजाः । 'नित्यमसिचप्रजा-
मेधयो' रिति नऽदुस्सुभ्यः परस्य प्रजाशब्दस्यासिचप्रत्ययो बहुव्रीहौ ।
स्त्रियमनुजातः स्यनुजः, 'अनौ कर्मणि' इति ङः । आत्मनो जनने-
नायजा स्त्रियमवरत्वेन प्राप्त इत्यर्थः । अपरे त्वनुना रुधिराक्षिप्यते,
तदपेक्ष स्त्रियाः कर्मत्वमिति स्त्रियमनुसृध्य जात इत्यर्थ इति विसृ-
ण्वते । न जायतइत्यजः । द्विर्जायतइति द्विजः, । द्वितीयजनन-
मुपनयनम् । ब्राह्मणजो धर्मः । क्षत्रियज युद्धम् । अभिजाः केशाः ।
अन्येष्वपि दृश्यते' इति ङः । बीजम्, पूर्ववत् ङः । बीज करोति
बीजेन सह कर्षतीत्यर्थः । बीजशब्दो बीजावापसहिते विलेखने घर्तत-
इति हरदत्तः । 'कृजो द्वितीयतृतीयशम्बजीजात्कौ' इति कृजो योगे
कृपावभिधेयाया द्वितीयादिभ्यो डाच् । 'ऊर्यादिच्छिडाचश्च' इति
निपातो 'गतिश्च' इत्यव्ययत्व पूर्वप्रयोगश्च । बीजादिति निर्देशात्
दीर्घो बत्व चोपमर्गस्य । प्रजनिष्णुः, 'जल कृज्' इत्यादिना इष्णुच् ।
अनुजातो माणवको माणविकाम्, अनुजाता माणविका माणवकेन ।
'गत्यर्थकर्मके'ति कर्तृकर्मणोः क्तः । जज्ञिः 'भाषाया धाज्' इत्या-
दिना किकिनोरन्यतरः । लिङ्ब्रूवाद् द्वित्व च । जनुः । 'जनेरसि'-
रित्युसिप्रत्ययः । पुसानुजः । जनुषान्धः । 'पुसानुजो जनुषान्ध उपस-
ङ्ख्यानम्' इति तृतीयाया अलुक् । 'सृतीया' इति योगविभागात्स-
मासः । पुंसा जन्मना च हेतुना ऽनुजो ऽन्धश्चेत्यर्थः । जन्म । मग्निः ।
जन्मी ग्रीह्यादित्वादिनिः । जन्तुः । 'कर्मिममी' त्यादिना तुप्र-
त्ययः । जानुः । 'दृसनी' त्यादिना जुण् । अनुबन्धद्वयसामर्थ्यात्

'जनियध्यास्व' इति वृद्धिनिषेधे जाध्यने । प्रजा जातु प्रजुः । सङ्गता
जालुः सजुः । 'प्रमथ्या जानुनोर्त्' इति लुः समाधानो बहुव्रीहौ ।
कर्धजुः, कर्धजानु । 'कर्ध्विभाषा' इति जुधित्वा । उपजानुः ।
सर्मापे ऽव्ययीभाषः । तत्र भयस्य रजानुकम् । 'उजानुप्रकर्ण' पर्वोपेष्टक
इति ठक् । 'इमुमुकान्तात्क' इति कःदेशः । जःपा । जनेप्रक्तु'
इति यक् । 'ये विभाषा' इत्यस्य व्यवस्थितविभाषास्वाद् नित्यमा-
त्वम् । युवजानि । 'जःपा निड' इति बहुव्रीहौ निडःदेशेऽन्यस्य
समामान्तः । 'नोयो व्यःप्रलि' इति यनेप । जनिः । 'जनिरमि-
भ्यामिण्' इतीण् । कृदिकारस्य तु क्वापि जनी । नः वदन्तं नि जन्यः
जामातुर्वयस्याः, 'सजाया जन्या' इति द्वितीयात्मान् जनीगव्याद्
षहतीत्यर्थे यत्प्रत्ययः सजायाम् ॥ ४१ ॥

दीपी दीप्यौ ॥ दीप्यने । दिदीपे दीपितः । दीपियने दीप्यतम्
अदीप्यत । दीप्येन, दीपिदीपिठ निडौ । अदीपि अदीपिठ । 'दीप-
जने ति ते कर्नेरि' चिचिकल् । दिदीपियने । दीदीप्यने । दीदीपि ।
दीपयति । अदीपियन् अदिदीपयन् । आजभासे इत्यःदेशे लौ चङि
ह्रस्वधिक्रम्य । दीपः । इगुपधनचण कः । दीपितः । सूत्रदीपदी-
चश्च' इति अनुशानेत्ततो युत्प्रत्यये प्रणिषिट्, नः ङिचिकम्पन् ।
दीपः । 'नमिकम्पी' त्यादिना रः । दीपिः । 'क्विप' दिभ्य'
इति क्तिन् । 'नितुचे' तीगिनषेधः । दीपिः, दीपितवान् । रंदिस्वाङ्-
निट्त्वम् ॥ ४२ ॥

पूरी आप्यायने ॥ पूर्यतइत्यादि दीपिवत । अपूपुम् । 'पौ-
षङि' इति नित्य ह्रस्वः । पूरः, इगुपधनचण कः । ऊर्ध्वपूर पूर्यते ।
'ऊर्ध्वं शुपिपूरो' इति कर्तुवःचित्युर्ध्व उपपदे गतुम् । ऊर्ध्वदित्वाद्
षाविध्यनुप्रयोगः । ऊर्ध्वम्पन् पूर्यतइत्यर्थः । पूर्णं पूर्णवान् । पूर्तिः ।
आवादित्वान् क्तिन् । पूर्तिरित्याङ् दिक् । पूर्णि मिमीतइति पूर्णिमा ।

मूलविभुजादित्वात् कः । चर्मपूरं स्तृणोति, उदरपूरं भुङ्के । 'चर्मोदरयोः पूरे' रित्यनयोः कर्मणोरुपपदयोः णमुलप्रत्ययः । पूरयतेर्धातुसम्बन्धे विधानाद् धात्वन्तरस्य^१ प्रयोगः । गोष्पदपूरं वृष्टो देवः, गोष्पदपूरं वा । 'वर्षप्रमाणकलोपश्चास्यान्यतरस्याम्' इति कर्षण्युपदे वर्षस्य दश-
सायां गण्यमानाया पूरयतेर्णमुल् ककारलोपश्चास्य विकल्पेन । पूर्णः । 'वा दान्तशान्तपूर्ण' इति के णिनुगिडभावौ पक्षे निपात्यते । अन्यदा 'निष्ठाया सेटि' इति णिलोपे पूरितः । पूरयतीति पूरण । बाहुल-
कात्कर्तरि ल्युट् । पूरः । बहुलवचनादुपत्यय ॥ ४३ ॥

तूरी गतित्वरणहिंसनयोः ॥ तूर्यते । तुतूरे । तूरिमा । तूरिष्यते ।
तूर्यताम् । अनूर्यत । तूर्यत, तूरिषीष्ट । अनूरिष्ट । तुतूरिषते । तेतू-
र्यते । तेतूर्ति । तूरयति । अतूतुत् । तूर्णः । तूर्णवान् । तूर्तिः ।
तूर्णिः । औणादिकः । तूर्ये, यत् ॥ ४४ ॥

धूरी गूरी हिंसागन्धोः ॥ ४५-४६ ॥

घूरी झूरी हिंसावयोहान्योः ॥ ४७-४८ ॥

शूरी हिंसास्तम्भनयोः ॥ ४९ ॥

चूरी दाहे ॥ धूर्यते । दुधूरे । गूर्यते । जुगूरे । घूर्यते । जुधूरे ।
जूर्यते । जुजूर्यते । शूर्यते । शुशूरे । चूर्यते । चुचूरे । गूरी उन्नामे इत्याकु-
स्मीयः । गुरी इति लघूपद्यस्तुदादौ । जन्यादय ईदित्वाविष्टायाम-
निटः ॥ ५० ॥

तप ऐश्वर्यं वा ॥ अथ धातुरैश्वर्यं वा तङ्त्वनौ उत्पादयती-
त्यर्थः । अन्यदा न्यःप्यविकरणः परस्मैपदी च, तपतीति । केचिदिह
वायहणं वस्यमाणस्य वृत्तु वरणइत्यस्य आद्याशमिच्छन्ति 'वावृत्तु
वरणे' इति । तथा च भट्टिः । 'ततो वावृत्यमाना सा रामशाला न्य-
षिन्न' इति । 'तपि तपिम्' इत्यनिट्कारिकान्यासे तु 'तप सन्तापे,
तप ऐश्वर्यं वा' इत्येव पठतोस्यापि वाशब्दः तप्यतेशेषोभिमतः ।

तप्यते । तपे तपिषे, इत्यादि, क्रादितपमदितः । तपन् । तप्यन्ते ।
तप्यताम् । अपत्यन् तप्सीष्ट लिङौ । अपत्यन् अपत्यान् । 'अने
भलि' इति मित्रनेप । निवप्यते । तपयते । तपन्ति । तपयति ।
अनीतपन् । तप्या, तपः । तपन । युक् । तप्यादिव । त्रिचिदास्त
अप्य सेन पनेति पठन्ति, तथा च म्वासी । पनेति त्रिमिडा इति ।
निहक्तेपि 'इत्यति पप्यते तपन् राजनीति चत्वार मेन्द्रकर्मण'
इति । तथा परतुद्वेषि । 'अनुग्रामा निपुनः पप्यमानः' । अस्म क
तु उभयमपि प्रमाणमाचार्योभयया शिष्याणां प्रतिपादनात् । तपनीति
श्रुति गन मन्तापे ॥ ५१ ॥

वृत्तु वराणे ॥ वृत्त्यते । वृत्ते । वृत्तिना । वृत्तिष्यते । वृत्त्यनाम्,
अवृत्त्यन् । वृत्त्येन, वृत्तिषीष्ट लिङौ । अवृत्तिष्ट, अवृत्तिषानाम् । विवृत्तिष्यते ।
वरीवृत्त्यते । वृत्तीनीत्यादि । वृत्तयति । अवृत्तन् अवृत्तन् । 'उरु' ।
इति पठे चकार । वृत्त्वा वृत्तिन्व । 'उदितो वा' इतीद्विकृत्य । वृत्तः ।
'यस्य विभाषा' इतीद्वानिषेधः । वृत्तम् । अधुवधान् इति अप् ।
अनङ्गत् इतीद्वानि वृत्तुनः सादचार्यं वृत्तनार्यं भौवादिकृत्य
यहः ॥ ५२ ॥

क्लिश उपरापे ॥ क्लिष्यते । क्लिषि । क्लिषिना । क्लिष्यन्ते ।
क्लिष्यताम् । अक्लिष्यन् । क्लिष्येन, क्लिषिषीष्ट लिङौ । अक्लिष्ट । चिक्लि
शियते चिक्लिष्यते । 'रत्ने व्युपधात्', इति कित्त्वधिकृत्यः । चिक्लिष्यते ।
चिक्लिष्टि । क्लिषयति । अचिक्लिषन् । क्लिष्टु, क्लिषित्य, क्लिष्टः, क्लिषिनः ।
'क्लिशः तत्त्वानिष्टो' इतीद्विकृत्य । 'रत्ने व्युपधात्' इति मेट न्यः
क्लित्वधिकृत्यो न भवति, 'मृदुमृदे'ति नित्य कित्त्वधिकृत्यम् । क्लिष्ट
विवाधने इति श्रुत्यादौ ॥ ५३ ॥

काष्ठ दीप्तौ ॥ काश्यते । चकाशे । काश्यताम् । अकाश्यन् ।
काश्येनेत्यादि । शेष भौवादिकृत्यम् ॥ ५४ ॥

वायु शब्दे ॥ वाश्यते । वाशे । वाशिना । वाशिष्यते । वाश्य
ताम् । अवाश्यन् । वाश्येन, वाशिषीष्ट । अवाशिष्ट । त्रिवाशिष्यते ।

वाधाश्यते । वावाञ्छि । वाशयति । अत्रवाशत् । ऋदित्वाणौ चङि
ह्रस्वाभावः । वाञ्चः पुरुषः । 'स्कायितञ्चि' त्यादिना रक् ।
वाशिरा । 'मन्दिवाशी' त्यादिना किरच् । ज्ञान्यादय उदात्ता अनु
दात्तेतः । तपिरेकोनिट्, 'तपिं तिगिम्' इत्यनिट्कारिकापाठात् ॥ ५५ ॥
स्वरितेतौ सेटावाह ॥

मृष तित्तितायाम् ॥ तित्तिता जमा । मृष्यते । ममृषे, ममृषिषे ।
मर्षिता । मर्षिष्यते । मृष्यताम् । अमृष्यत । मृष्येत मर्षिणीष्ट । अम
र्षिष्ट । अमर्षिष्यत । मृष्यति । ममर्षे । मर्षिता । मर्षिष्यति । मृष्यतु ।
अमृष्यत् । मृष्येत्, मृष्यात् । अमर्षेत् । अमर्षिष्यत् । परिमृष्यति । 'परि
मृष' इति क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वेऽपि परस्मैपदम् । मिमर्षिषते, मिम
र्षिषति । मरीमृषीति । मर्षीषीति, मर्मर्षि, मरिमर्षि, मरीमर्षि । मर्ष
यति । अममर्षेत् । अमीमृषत्, उद्गृह्ण । मर्षितः, मर्षितवान्, 'मृष
स्तित्तितायान्' इति सेटो निष्ठाया अकित्वम् । तित्तिताया अन्यत्र अपमृ-
षित वाच्यमाह, अत्रिस्पष्टमित्यर्थः । दुर्मर्षेणः । 'भाषाया शासियुधी'-
त्यादिना युच् खलोपवादः । अयमाधृषीयोऽपि ॥ ५६ ॥

ईशुचिर् पूतीभावे ॥ शुच्यते । शुशुचे । शोचिता । शोचिष्यते ।
शुच्यताम् । अशुच्यत । शुच्येत, शोचिणीष्ट, लिङौ । अशोचिष्ट । शुक्-
तीत्यादि पूर्ववत् । इदित्वाल्नुङ्ङ्विकल्पादशुचत् अशोचीद् इति ।
शुशुचिषते, शुशोचिषते । शुशुचिषति, शुशोचिषति । शोशुच्यते । शोशो-
क्षि । शोचयति । अशूशुचत् । शुचिन्वा । 'रलो व्युपधात्' इति त्वा-
सनेः कित्त्वविकल्पः । शुक्तम् । ईदित्वादिनिट्त्वम् । रसान्तरं गतमि-
त्यर्थः । शुक्तिः । 'तितुत्रे' तीणिषेधः । शुक्तिका । संज्ञायां कन् ।
उदात्तौ स्वरितेतौ । शोके शोचतीति शपि गतम् ॥ ५७ ॥

अथानिटस्वरितेत आह ॥

१ उणादौ तु 'मन्दिवाशी' त्यादि सूत्रे उरजेव पठ्यते । वृत्त्यादावपि मन्तुरा
वाशुरा इत्याद्येवादाङ्गियते ।

२ निष्ठायामित्यधिकं ३ पु ।

एष वक्ष्यते । प्रकल्पने । 'उपसर्गान्' इत्यदिना नक्षत्रम् ।
 पितृव्ये अतिनक्षत्रे । षष्ठि भागुरि 'त्यन्ते'प नेरे नक्षत्रम् ।
 'नहो ध' इति भक्ति पदान्ते च हकारस्य धत्वम् । अदन्ते दोध
 इति धत्वे जशत्वम्, नक्षत्रम् । धत्वे तस्य परि च 'इति हत्वम्-
 स् । नक्षत्रम् । अनक्षत्रम् । नक्षत्रम्, नक्षत्रम् निडो । अनक्षत्रम् । भक्ति
 भक्ति' इति मित्रलोपः । नक्षत्रम्, नक्षत्रम् । नक्षत्रम् । नक्षत्रम्
 नेहन्तु, नक्षत्रम् नेहन्तु यति नक्षत्रम्, नक्षत्रम् । 'यति च
 सेठि' इत्येत्वाभ्यामलोपौ । नेहन्तु नक्षत्रम्, नक्षत्रम् । नक्षत्रम् ।
 नक्षत्रम् । अनक्षत्रम् । नक्षत्रम् । अनक्षत्रम् । 'वदन्ते' नि निन्वा
 वृद्धिः । निनक्षत्रम् निनक्षत्रम् । नक्षत्रम् । नक्षत्रम् । अनक्षत्रम् । अनक्षत्रम्
 नक्षत्रम् । नक्षत्रम् । 'दार्ष्ट्या' इत्यादिना करणे कृत् । निन्वात् ईप् । उपा
 नन् । पादुका गिर्यविशेषश्च । क्विपि धत्व 'भक्त' जशन्ते' इति
 जशत्वे 'वाचमाने' इति चर्त्तविकल्पः । नक्षत्रम्, नक्षत्रम् । नक्षत्रम्
 नक्षत्रम् । नक्षत्रम् । नक्षत्रम् । नक्षत्रम् । नक्षत्रम् । नक्षत्रम् । नक्षत्रम्
 मुञ्जः । 'स्वभोगपानवार्ज्य' इति विद्वन्निष्ठाचिन्तनवार्ज्यः । प्रकृतौ
 विवक्षिताया व्यपन्यय । समक्षयि प्रकृतित्वेन विवक्षिते समक्षयि
 इत्यत्र बाधित्वा पूर्वविशेषनिषेधेन व्य एव भवति सौपान्य्य सम इति ।
 नाभिः । 'नहेर्भे च' इतीउपन्ययः, हन् च भः । नाभये हिन नाभ्य
 नैनम्, 'शरीरावपवाद्यन' इति यत् । एष नाभौ भवमपि । यस्तु
 रथावपवाची नाभिश्चक्षुस्तस्य 'उग्रादिभ्य' इत्यत्र 'नाभि नभ
 च' इति पाठादिति नभभावे नभ्यो ऽन्नः नभ्यमञ्जनमिति भवति ।
 पदूनाभः । 'अच्' इति योगविभागात्समासलोपः ॥ ५८ ॥

रञ्ज रागे ॥ रञ्जने रञ्जनीत्यादि । 'अनिदिताम्' इति नन्ते
 पः । ररञ्ज, रङ्गे इत्यादि मधे भौषादिकवत् । रञ्जने च विशेषः ॥ ५९ ॥

शप आक्रोशे ॥ शप्यमपि भौषादिकवत् । शप्यन्तौ विशेषौ ।
 शप्यते, शप्यतीत्यादि । नक्षत्रव्यख्येनानुवृत्त्या प्यरिन्ते, ॥ ६० ॥

अथात्मनेपदिनोनिटः परामृशति ॥

पद गतौ ॥ लिश्यन्ता अनुदात्ता अनुदात्तेत । पद्यते । पेदे, पेदिषे, पत्ता । पत्स्यते । पद्यताम् । अपद्यत । पद्येत, पत्सीष्ट लिङौ । अपादि, अपत्साताम् । 'चिष् ते पद' इति कर्तरि ते चिष् । पित्सते, 'सनि मीमे' त्यादिना अव इति 'स्को' रिति सलोपे दकारस्य चत्वम् । 'अत्र लोपोभ्यासस्य' । पनीपद्यते । पनीपत्ति । 'नीगञ्जु' इत्यादिना नीरू । पदयति । अपीपदत् । उत्पदिष्णुः, 'अल कृञ्' इत्यादिना उत्पूर्वादिष्णुच् । केचित्तु 'उत्पत्' इति पर्तात् पठन्ति । पदनः, 'लुचङ्गम्य' त्यादिना युच् । पादुकः, 'लघपते' त्यादिना उकञ् । पद्यतइति पादः । 'पदरुजे' ति कर्तरि घञ् । पादाभ्या चरति पदिकः । 'पर्पादिभ्यष्टुन्' इत्यत्र 'पादः पच्च' इति पाठात् ष्टुनि पद्मावः । पदिकी । पित्वत्स्त्रिया डीष् । पादार्थमुदकं पादम् । 'पादार्थाभ्या च' इति यत् । पादाय हितम्, तत्र भव वा पदम् । 'शरीरावयवाद्यत्' 'शरीरावयवाच्च' इति योगाभ्या यत् । 'पद्यत्यतदर्थ' इति पादस्य पद्मावः । द्वाभ्या पादाभ्या क्रीत द्विपादम् । 'पणपादमाषशताद्यत्' इति पणाद्यन्ताद् द्विगोः प्राग्वतीष्वर्थेषु यत् । 'पद्यत्यतदर्थ' इत्यत्र शरीरावयववाचिनो ग्रहणाच्चेह पद्मावः । पच्छः । 'सङ्घैकवचनात्' इति वीप्साया शस् । 'अचश्चे' इति अक्सम्बन्धिनः पादशब्दस्य पद्मावः । द्वौ द्वौ पादौ लभते द्विपदिका लभते, 'पादशतस्य सङ्ख्यादेर्वीप्साया वुन् लोपश्च' इति पादशतयोरन्यतरस्यां सङ्ख्यादेस्सङ्गासाद् वीप्साया वुन्, अन्तस्य च लोपः । 'यस्य' इति लोपेनैव सिद्धेन्तलोपवचनमनैमित्तिकत्वार्थम् । तेनाल्लोपस्य स्यानिवत्त्वाभावात् 'पादः पत्' इति भसञ्जानिमित्तः पद्मार्वास्सिद्धाति । 'यस्य' इति लोपे हि तस्य पूर्वविधौ स्यानिवत्त्वात् पाच्छब्दान्तमङ्ग भसञ्ज न स्यात् । प्रकृत्युपाधिरपि वीप्सा तद्वितेन व्यात्यतइति 'तद्वितार्थ' इति समासः । अत एव 'नित्यवीप्स्यो' रिति द्विर्वचन न भवति । द्वौ पादौ दण्डयति ददाति वा द्विपदिकां

दण्डयति ददाति । 'दण्डव्यवमर्गयोगश्च' इति वृत् 'व्यवमर्गो दानम्' अशीमाद्योयमारम्भः । व्याघ्रस्यैव पादावस्य व्याघ्रापात्, श्येनपात्, 'पादस्य लोपोऽहस्य' इति नञ्पाद्व्यतिरिक्तोऽन्तर्पदस्य पादान्तस्यान्तस्य लोपः समामान्तः । व्याघ्रपदेऽप्यवैवग्रपद्मा, गर्गदित्वाद्वा, पूर्ववत्पद्मावः स च 'निर्दिश्यमनस्य' देशा भवन्ति' इति पाच्छब्दस्यैव भवति, न तु तदन्तस्य । 'न ख्याभ्याम्' इत्येजागमो वृद्धिनिषेधश्च । कुम्भपदी, घृणपदी । 'कुम्भपदीषु च' इति पादान्त्यलोपसमामान्तः । कुम्भपद्मादिषु साध्येषु पादान्त्यलोप इत्युत्तरार्थः । अत्र बहुवचननिर्देश आद्यर्थावगतये । अ-अर्थमङ्गुलीनश्च गणपाठएव द्रष्टव्यः । कुम्भादिभ्यः पादस्य लोप इति वक्तव्यं समुदायपाठो विषयनियमार्थः । तत्र ये उपमानपूर्वाः कुम्भपद्मादयो, ये च शतपद्मादयः सङ्ख्यापूर्वास्तेषां यथाक्रमं 'पादस्य लोपः' 'सङ्ख्यासुपूर्वस्य' इति सिद्धे लोपे पुनः पाठात् स्त्रिया नित्य ङीवेव भवति न तु व्याघ्रपात् व्याघ्रपदी द्विपात् द्विपदी इत्यादिवत् 'पादोन्यतरस्याम्' इति पाच्छब्दान्तस्य विधीयमानो ङीविकल्पः । ये त्वनुपमानसङ्ख्यापूर्वा घृणपद्मादयस्तेषामपि स्त्रीत्वचिङितुना पाठात् स्त्रियामेव पद्मावो नित्यश्च ङीप् । अष्टादशीशब्दस्यात्र पाठात् अष्टनमसंज्ञायाम् इति वा पूर्वपदस्य दीर्घः । अत्र सुधाकरः । 'सङ्ख्यासुपूर्वस्ये'ति पादस्यान्त्यलोपे 'पादोन्यतरस्याम्' इति ङीपि सुपदीशब्दे सिद्धे कुम्भपदीषु पाठः स्त्रिया सङ्ख्यावैमानपूर्वपदस्य नित्य ङीवर्यः । तेन सुपाद्विरदनासोऽहिति भट्टिप्रयोगश्चिन्त्य इत्याह । द्विपात् द्विपदी । सुपात्, 'सङ्ख्यासुपूर्वस्य' इति पादान्त्यलोपसमामान्तः । 'पादोन्यतरस्याम्' इति वा ङीपि भस्ते पद्मावः । स्त्रिया ङीवेव सुपाच्छब्दस्येर्नादानामेवोक्तम् । द्विपदा ऋक्, 'टावृचि' पादान्तस्य ऋचभिधेयाया टापि पद्मावः पूर्ववत् । पदानिः, पदाति, पदगः, पदोपहतः, 'पादस्य

१ पादान्तस्य लोप इति ४ पु. पा. पादोन्यलोप इति ३ पु. पा. ।

२ पूर्वपदवदिति ३ । पु. पा. ।

३ स्त्रियामिति २ पु. नास्ति ।

पदाज्यातिगोपहतेषु' इति पादशब्दाद् आज्याद्विषुत्तरपदेषु पदादेशः ।
 पट्टिमम्, पत्कापी, पट्टतिः । 'हिमनापिरिति च' इति हिमाद्विषु
 त्तरपदेषु पद्मावः । चकारादिष्के च, पचिष्कः । पादघोषः, पट्टोयः ।
 पादमिश्रः, पन्मिश्रः । पादशब्दः, पच्छब्दः, 'वा घोषमिश्रशब्देषु' इति
 वा पद्मावः । सम्यत्, सम्पदादित्वात्त्वप् । क्तिन्नपीष्यते, सम्पत्तिरिति ।
 पदम्, 'खनो घ च' इति चकारात्कारणादौ घः । पदान्वधीते वेद वा
 पदकः, 'ह्रमादिभ्यो वुन्' इति वुन् । पद्माः पासवः, 'पदमस्मि
 न्दृश्यम्' इति प्रथमान्ताद् दृश्यत्वोपाधिकादस्मिन्निति सप्त-
 म्यर्थे यत् । 'पदत्यतदर्थे' इति पद्मावः । पूर्वपदिकः । 'इकन् बहुलं
 पदोत्तरपदात्' इत्यध्वेतृवेदित्रोरिकन् । अनुपद धावति आनुपदिकः,
 'माथोत्तरपदपदव्यनुपद धावति' इति द्वितीयासमर्थोऽट् । पूर्वपद गृह्णा
 तीति पौर्वपदिकः, 'पदोत्तरपद गृह्णाति' इति पदोत्तरपदाट् । आप
 पद प्राप्ते^१तीत्याप्रपदीनः पठः, 'आप्रपद प्राप्नोति' इति द्वितीयान्तात्त्वः ।
 शरीरेणासम्बद्धस्यापि पठादेः प्रमाणमाख्यायते पादस्याय प्रपदम् । अत
 एव निर्देशात्समासः, पूर्वनिपातश्च । आप्रपदात्, 'आङ्गुर्यादाभिविध्यो'-
 रित्यव्ययीभावः । अनुपदीना उपानत्, 'अनुपदसर्वान्वे'ति षट्त्वर्थे
 खः । 'यस्य चायाम' इत्यव्ययीभावसमासः । अनुर्यस्यायामवाची
 तेन लक्षणभूतेनानुस्समस्यते इति सूत्रार्थः । इहि च पदायाम उपान
 दायामस्य लक्षणम् । सप्तभिः पदैरवाप्यते साप्तपदीन सख्यम्, 'साप्तपदीन
 सख्यम्' इति निपात्यते । अनुपदमन्वेष्टा अनुपदी गवाम्, 'अनुपद-
 मन्वेष्टा' इतीचन्तो निपात्यते । अनोः पश्चादर्थेव्ययीभावः । गवामिति
 पदापेक्षया षष्ठी । नित्यसापेक्षत्वात्समासः । एण्या इव पादावस्य,
 अजस्येषु पादावस्य, प्रोष्ठो गौः, तस्यैव पादावस्य, एणीपदः अजपदः,
 प्रोष्ठपदः, 'सुब्राते' त्यादिनाच्प्रत्ययः पद्मावश्च निपात्यते । एणीपदा-
 जपदयोः पद्माव इति निपातनफलं वदतो हरदत्तस्य प्रोष्ठपदेति पाठो
 नाभिमतः प्रतीयते । पूर्व प्रोष्ठपदे, पूर्वाः प्रोष्ठपदाः, 'फलानुनीप्रोष्ठपदाना

च नत्त' इति नत्तरे वर्णमानयोः द्विचो वा बहुवचनम् । प्रोष्ठपदाभिर्युक्तः
 कालः । प्रोष्ठपदः, प्रेष्ठपदागच्छस्तत्पहवरे चन्द्रमणि वर्णने । 'तत्र नत्त-
 त्रेण युक्तः काल' इत्यणि तस्य 'लुवविशेष' इति लुप् । 'लुपि युक्त्वद्भुक्ति-
 वचने' इति कालस्य स्त्रीत्वबहुत्वे, तामु जातः प्रोष्ठपादः । 'सन्धि-
 वेले' न्यादिना ऽण् । 'जे प्रोष्ठपदानाम्' इति जातार्थे वृद्धिनि
 मित्ते तद्धिते परत उत्तरपदस्य वृद्धिः । गेहानुप्रपादमास्ते गेहगेहमनु
 प्रपादमास्ते, गेहमनुप्रपादमनुप्रपादमास्ते । 'विशिष्टनिपट्टी' न्यादिना
 णमुल् । 'तृतीयाप्रभृतीनि' इति समासविशेषः । समासे 'नित्यवी-
 ष्मयो' इति द्विवचनं न भवति, नयोस्तेनैवोक्तत्वात् । आभीक्ष्ये नवा-
 पीष्यते, गेहमनुप्रपादमनुप्रपादमास्ते इति । सूत्रार्थो नवादावुपसादिनः ।
 सम्पादी । णिनिः । साम्याद्यम् । ब्राह्मणादित्वाद्भावकर्मणः ष्यञ् । जीवि-
 कामापव, जीविकापवः, आपवो जीविकाम् आपवजीविक, 'द्वितीया-
 श्रिते'ति 'प्राप्तापवे च द्वितीया' इति च तत्पुरुषः । 'प्राप्तापवे च'
 इत्यत्र लिङ्गविशिष्टपरिभाषया ऽऽपत्राशब्दस्य समासेपि आपवजीविक
 इत्येव । तत्र हि प्राप्तापवे अ च इत्यकारः प्रक्षिप्यते, स चान्यत्रदेशः ।
 सौत्रत्वाच्च न प्रकृतिभावः । सम्प्रकृतइति सम्प्रदाः, 'अननद्व वे' इति
 सूत्रे निपातनात् शः । ततश्चयन् । पादूः । 'णिक्कमिपद्वर्णे' रित्युकार-
 प्रत्यये णित्वावृद्धिः । पादुका । संज्ञाया कनि 'केण' इति ह्रस्वः ।
 पद्वम् । 'अर्निस्तु' इत्यादिना मन् । पद्विनी । 'पुष्करादिभ्यो देशे' इति
 मत्वर्थीय इतिः । पद्ववती पद्वी । 'अर्थ आदिभ्योच्' इति मत्वर्थेत्,
 टाप् । अयं कथादावपि ॥ ६१ ॥

खिद दैन्ये ॥ विद्यने । विविदे । वेत्ता । विन्य । विद्यनम् ।
 अविद्यत । विद्येत, वित्सीष्ट । अखित । 'निङ्मिचौ' इति लिङ्मिचौ
 कित्वात्र गुणः । विविक्सते । 'हलन्ताच्च' इति सन्ः कित्त्वम् । चेखि-
 द्यते । खेदयति । अवीपिदत् । खित्वा । खिचः । खिदिरम्, 'इषिमदी' ।

१ अभूततद्वाद्यादीनि २ । ३ पु पा । ४ कित्वात्र गुण इति ३ । पु. पा ।
 ३ चेखिदीति, चेखेतीति ३ । पु. अधिकम् ।

त्यादिना किरच्^१ । खिद्यते इति कर्मकर्तरीति वामन इति स्वामिसुधा-
करौ । तस्यान्तर्भावितव्यर्थत्वेन रौधादिकस्य सकर्मकस्य खिन्दतीति
परिधातार्थस्य स्वतः सकर्मकस्य वा कर्मकर्तरीद रूपमित्यभिप्रायः । एव
वदतोऽस्य श्यनि पाठो नाभिमतः प्रतीयते । धातुपाठकोशेषु व्याख्यानेषु
च अत्रिगीतः पठ्यते ॥ अयं रुधादावपि । परिधाते तुदादिः ॥ ६२ ॥

विद् सत्तायाम् ॥ विद्यतइत्यादि खिदित्रम् ॥ वेत्तीति ज्ञाने
गतम् ॥ ६३ ॥

बुध अङ्गमने ॥ बुध्यते । बुबुधे । बोद्धा । भोत्स्यते । 'एकाच'
इति वशो भष् । बुध्यताम् । अबुध्यत । बुध्यत, भुत्सीष्ठ । अबोधि,
अबुद्ध, अभुत्साताम्, 'दीपजने' ति कर्तरि तण्ड्वे वा चिण् ।
'लिङ्सिचा' विति क्त्विम् । बुगुत्सते । बोबुध्यते । बोबोद्धि । बोध-
यति पठ्म्, 'बुधबुधे' ति द्विषाफलस्य कर्तृनामित्येव परस्मैपदम् ।
अत्र बुधादीनां चतुर्णाम् 'अणावकर्मकात्' इत्येव सिद्धे, वचनमिदमचि
तवत्कर्तृकार्यमिति वृत्तौ । 'तत्त्व बुध्यते' इति धर्मकौर्तिप्रयोगे सकर्म-
कत्वमन्तर्भावितव्यर्थत्वेन नेयम् । 'क्षमादसुं नारद इत्यबोधि सः' इति
प्राये सकर्मकत्वं वृत्तिकारादीनामनभिमतमेव । यद्वा ऽवमर्थभेदेन
सकर्मके कर्मकरश्च । बुद्धा । बुद्धः । बुबुधानः, 'सुच्चिबुधिभ्यां सन्वच्च'
इत्यानचि सन्वद्वावाद् द्वित्वम् । बोद्धुमिच्छुरित्यर्थः । सन्वद्वावाद् 'हल-
न्ताच्च' इति क्त्वाद्गुणत्वम् । बुधान् आचर्यादिः, 'युजिबुधिवृशे'
क्त्वि' इत्यानच् । बोधयतीति ज्वलादौ । बोधति बोधतइति
हि भ्यादौ ॥ ६४ ॥

युध सन्प्रहारे ॥ युध्यतइत्यादि बुधिवत् । ते तु अयुद्ध इति
सिजेव । राजयुध्वा, राजानं योधितवानित्यर्थः । 'राजनि युधि कृज'
इति राजनि कर्णयुग्मपदे भूते कृनिष् । इहान्तर्भावितव्यर्थत्वेन

१ खिद्रम्, इपिमदीत्यादिना क्त् इति २ पु पाठ उपलब्धे, स च वृत्त्यादिवि
रौधादुपेत्य वृत्त्यादियु च इपिरौगिरित्यादिभ्यमुदाह्रियते । खिद्रमित्यादिकन्तु 'स्का
धितज्वि' - इत्यादिभूतेण रक्ता संपादितम् ।

सहस्रकत्वम् । सहस्रध्वा, 'सहे च इति भूते कृतिम् । सहस्रध्वा
ब्राह्मणी, सहस्रध्वा ब्राह्मणी । 'यनो न हस इति डीप्रकयोर्निषेधः ।
योधः, यौधः, प्रजादिपाठात्स्वार्थे वाण् । अत एव पाठाद्विगुपधनज्ञं
क बाधित्वाच् । आशाय युधमेतेनेत्यायुधम्, 'धनर्थे कविधानम्' इति
कः । आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः 'आयुधाट्ट च' इति
जीवनीत्यर्थे ठज्झौ । युयुधान, बहुलकादानचि द्वित्वम् । युयः
आह्वो योद्धा च, 'इपियुधी त्यादिना मरु । दुर्धायनः, मुदे'यनः',
'भाषाया शमितुधी' इति न्यनर्थे युच् । युध्यतीति युहुमिच्छतीति
अथवि ॥ ६५ ॥

अनो ह्य जामे ॥ रुधिरनूतमृगस्य जामे इत्यस्य दिवादित्वान्म-
नेपदित्व च । अरुह्यतइत्यादि पूर्वम् । रुण्टीत्यावरणे स्यादौ ॥ ६६ ॥

अण प्राणने ॥ अण्यते । अणो । अणिता । अणियने । अण्यनाम् ।
अण्यन । अण्यन । अणिर्दाट । अणिट । अणियिपने । अण्यति ।
मा भवान्णिषत् ॥

यमिर्जमन्नेचनिडेक इत्यने रमिरच यच्च श्यनि पञ्चते मनिः ।

नमिश्चतुर्थो हनिरैव पञ्चमो गमिन्नु पष्टः प्रतिशेधवाचिनाम् ॥

इति व्यङ्ग्यभूतिवचनादय सेट् । केचिदनिडा मध्ये पाठस्य
प्रयोजनादर्शनाद् अमु धातु नाधीयते । शाकटायनस्तु 'अन' इत्याह ।
एव च तवर्गोऽयान्त कण्वह्नयमुन्नुन भजतीति ॥ अणतीति शब्दे शपि ।
अनितीति प्राणने कृकि ॥ ६७ ॥

मन जामे ॥ न त्वा नृणाय मन्ये, न त्वा नृण मन्ये, 'मन्य-
मैख्यनादरे विभाषाश्राणिषु' इति कर्मणि वा चतुर्थी । इह चानुवाक्ये
कर्मणि व्यस्यितविभाषाविज्ञानात् चतुर्थी न भवति । अश्राणिष्वित्यपाम्य
अनावादिष्विति वार्तिक पठितम् । तेन न त्वां नाव मन्ये यावत्तार्थं
न नावम्, न त्वमव मन्ये यावच्च भुक्त श्राष्टम् इत्यत्राश्राणित्वेपि
द्वितीयेव भवति । तथा प्राणित्वेपि न त्वा खानं मन्ये, न त्वा शुने

मन्ये इत्यत्र उभयं भवति । मेने । मन्ता । मंस्यते । मन्यताम् । अमन्यत ।
मन्येत, मधीष्ट । अमंस्त, अमंसाताम् । एहि मन्ये ओदनं भोक्त्यसे इति
महि' भोक्त्यसे भुक्तस्सोतिथिभिः, अत्र 'प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेस्तम
एकवच्च' इति प्रहासे परिहासे गम्यमाने मन्योपपदे धातावुत्तमविषये
मध्यमः, मन्यतेश्च मध्यमविषये उत्तमः । एकवच्च इति वचनाद् द्विवचो-
रप्येकवचनमेव । दर्शनीयमानी भार्यायाः, 'मन' इति कर्मण्युपपदे
मन्यतेर्णिनिः । भार्याया इति कर्मणि षष्ठी । तत्सापेक्षस्यापि दर्शनी-
यशब्दस्य गमकत्वात्समासः । 'क्यङ्मानिनोश्च' इति क्यङन्ते मानिन्यब्दे
चात्तरपदे पुंवद्भावः । पण्डितमात्मानं मन्यते देवदत्तः पण्डितमानी
पण्डितम्मन्यः 'आत्ममाने खश्च' इति कर्मण्युपपदे आत्ममाने वर्तमा-
नान्मन्यतेर्णिनिः खश्च । आत्मनो मान आत्ममानः, कर्मणि षष्ठास्स-
मासः । आत्मा च स्वः, स च सन्निधानान्मन्तैव, तस्य चात्मन्वरूपेण
कर्तृत्वम् । पण्डितत्वादिस्वरूपेण कर्मत्वमिषिधेन विरोधः । खशश्चि-
त्त्वात् श्यन्, खित्वान्मुम् । मन्या, पश्चाद्वीवाशिरा 'सञ्जायां समजनि-
पदे' त्यादिना क्यप् । अन्यत्र क्तिनि मतिः, 'मन्त्रे वृषे' इति क्तिनो
वचनमुदात्तमात्रार्थं, न तु भाषायां तत्रिवृत्त्यर्थम् । वैमत्य, विमतिमा ।
साम्मत्य, सम्मतिमा, दृढादिषु 'वेर्यातलाभमतिमनश्शारदानां समो
मतिमनसो' रिति पाठात् व्यजिमनिचौ । 'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्'
इत्यणपि भवति, वैमत, साम्मतमिति । त्वतलौ तु सर्वत्रैवेष्येते इत्युदा-
हार्यौ । राज्ञां मतः, 'मतिबुद्धी' ति वर्तमाने क्तः । 'क्तस्य च वर्तमाने'
इति कर्तरि षष्ठी । मतस्य करण मत्यम्, तच्च भावः, साधन वा
'मतजनहलात्' इति यत् । मनः, असुन् । मन एव मानसम्, प्रज्ञादि-
त्वात् स्वार्थं ऽण् । अगुमनाम्पुत्रना भवति सुमनायते इत्यादौ भृश
दित्वात् क्यङ्प्रलोपौ । तत्र हि सूददुरभिभ्यः परो मनश्शब्दः पठ्यते ।
वैमनस्य विमनसिमा । साम्मनस्य सम्मनसिमा, 'वेर्यातलाभमतिमन-
श्शारदानां समो मतिमनसो' रिति व्यजिमनिचौ । त्वतलौ चोदाहार्यौ ।

विमनीकरोति, 'अरुर्मनश्चतु' रित्यादिना चिः सलोपश्च । मनमादेवो नाम कश्चित्, 'मनमस्सजायाम्' इत्युत्तरपदे तृतीयाया अनुक् । 'दिवः कर्म च' इति करणत्वानृनीया । मज्जाममावेशेन कर्मत्ववर्षानि दीव्यतेः कर्मण्यणभवनीति दीव्यनावुक्तम् । मनमाजायी, 'आजायिनि च' इत्यनुक् । लुकि तु मनमाजायीति स्यात् । बाह्वनमम्, 'अचतुरे' त्यादिना वृद्धे ऽजन्तो निपातिवः । मधुः, 'फनिमटिननी' त्यादिना उप्रत्यये धकारस्वान्त्यादेशः । मधुरः, 'उपमुषो' त्यादिना मत्वर्थे रः । इह मधुशब्दो रमनायाश्च मधुर्याख्यरत्ने वर्तते । तेन मधुर मध्वित्यपि भवति । इह च न भवति, मध्वस्मिन् घटे ऽस्ति मधुगो घट इति । इदं च 'तदस्याख्यस्मिन्' इति विवक्षानियमार्थेन इतिशब्दस्यानुवर्तनाल्लभ्यते । मनुः, 'श्वृणिही' त्यादिना उप्रत्ययः । मनोम्नी मनायी, मनावी, मनु । 'मनोरौ वा' इति दीव्यकार औकारो वान्तादेशः । मनुष्यो मानुषः, 'मनोर्जावाव्यनौ पुक्त्व' इति अव्यनौ पुक्त्वगमः । जातायिति वचनाद् इह अपत्यग्रहण व्युत्पत्तिमात्रार्थम् । तेन मानुषा इत्यत्र यत्रत्रोश्च इत्यपत्यस्यात्रो विर्यपमनो बहुषु लुङ् भवति । मानुषी, गौरादित्वाङ्डीप् । 'स्नस्मट्टिनम्' इति इति परस्मट्टिनयकारस्य लोपः । मानुष्यकम्, 'गोत्रोत्ते' त्यादिना ममून् वुञ् । अपत्ये त्वणि मानवा इति । मनुष्या अपत्यपन्वारोपेण मानवा इत्युच्यन्ते । यदा मानवस्य कुत्सादि विधत्ते तदा ॥

अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः ।

नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन मिट्टयति माणवः ॥

इति नकारस्य णत्वम् । अणु सामान्येनैव मिट्टः । माणव एव माणवकः, संज्ञाया कन् । माणव्यम् 'ब्राह्मणमाणवे'ति समूहे यत् । माणवीनम्, 'माणवचरके'ति हितार्थे खञ् । माणव्यम ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । मुनिः, 'मनेरुज्जोपधाया' इतीत्यप्य, उपधायाश्चोकारः । मौनम्, 'इगन्ताज्' इति भावेऽण् । मनु अवबोधनइति तनादौ ॥ ६८ ॥

युज समाधौ ॥ समाधिश्चित्तनिरोधः, तेनायमकर्मकः । युज्यत-
 सन्त इति प्रयोगस्तु युनक्तेः कर्मणि यकि तडि । युज्यते ब्रह्मचारी
 योगमित्येवमपि 'सृजिभृज्योदश्य स्तु' इति सकर्मकस्य कर्तुः कर्मबद्धाव-
 श्यतोर्विधानाद्युज्यते । युज्यतिसृज्यत्योर तर्मेकत्वस्य वार्तिकेन चोपपद्यते ।
 युज्यतइत्यादि पूर्ववत् । प्रयुक्, 'सत्सूदृषे' त्यादिना सोपपदात्किप् ।
 युजमापदा प्रत्यय इत्यत्र निरुपपदत्वेऽपि सम्प्रदादित्वाद्भावे किप् ।
 'युजेरप्रमात्रे' इति सर्वनामस्याने नुप्रत्य न भवति, इकारवतो रौधा-
 धिकृत्यैव तत्र निर्देशात् । योगी, सम्प्रदादिना धिनुण । 'युग्य च पत्रे'
 इति निपातन नास्य, अर्थस्वभावात् । 'दाम्नीशसयुजे' ति प्रुन्विधावपि
 नास्य ग्रहः, अनभिधानात् ॥ ६९ ॥

सृज विहर्ग ॥ अयमकर्मकः । प्रयुज्यते च 'वृन्तश्लयं हरति पुष्पम-
 नेकहाना, ससृज्यते सरीसृजैरसृण शुभिवै.' इति । कर्मणि प्रयोगे तु प्रक-
 मभङ्गस्यात् । 'स्वाभाविक परगुणेन विभातवायुस्सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुख-
 माहतस्य' । इति च न सङ्गच्छते । पाणिभ्यां सृज्यते पाणिपार्श्वेत्यादयस्तु
 सृजतेः कर्मणि । सृज्यते मालामिति कर्तरि । सृज्यते । ससृजे, ससृजिसे,
 क्रादिनिप्रमात्रित्यमिट् । 'विभाषा सृजिदृशो' रिति विकल्पोऽस्य न
 भवति, यलोऽभावात् । सृष्टा । सृज्यते । सृज्यताम् । असृज्यत । सृज्येत,
 सृजीट्, लिङौ । असृष्ट, असृज्ज्ञानाम् । सिसृजते, भलादौ ब्रश्वादिना
 पत्वे 'पठेः कस्सि' इति कत्वम् । अकिति भलादौ 'सृजिदृशो'-
 रित्यादिना अमागमः । 'हलन्ताच्च' इति 'लिङ्तिचावात्मनेपदेषु'
 इति सनो लिङ्तिचोश्च कित्वात् नानागमो नापि गुणः । सरीसृज्यते ।
 सरीसृष्टि । सर्जयति । असीसृजत् । अससर्जत्, उट्टा ॥ ७० ॥

लिश अल्पीभावे ॥ लिश्यते । लिलिषे । लेष्टा । लेज्यते । ब्रश्वा-
 दिना पत्वे कत्वम् । लिश्यताम् । अलिश्यत । लिश्येत, लिक्षीष्ट ।
 अलिक्षत, अलिक्षताम् । 'शल इगुपधात्' इति श्लः । अजादौ 'क्सत्याचि'
 इत्यशारलोप । लिलिक्षते । लेलिष्यते । लेलेष्टि । लेशयति । अलीलि-

सारणम् । अयात्सीत्, अयाद्दाम् । विव्यत्सति, हलादिशेषे इत्वम् ।
वेविध्यते । वाव्यद्भि । व्याधयति । अविव्यधत् । व्याधः, 'श्याद्भुधेति'
णः । व्यधः, 'व्यधजपो' रित्यप् । मृगावित्, 'क्विप् च' इति क्विप्,
'नहिवृती' त्यादिना पूर्वपदस्य दीर्घः । विधुः, 'पृभिदिव्यधी' ति
कुप्रत्ययः ॥ ७३ ॥

पुष पुष्टौ ॥ पुष्यति । पुषोष, पुषोषिथ, क्रादिनियमाच्चित्यमिट् ।
भारद्वाजनिनयमस्तु उपदेशेजन्तानामत्वता चेतीह न भवति । पोष्टा ।
पोष्टयति । पुष्यतु । अपुष्यत् । पुष्येत्, पुष्यात्, लिङौ । अपुषत् 'पुषादी'
त्यादिनाङ्परस्मैपदे । तङि तु व्यत्यपुनतेति क्सो भवति । कर्मणि तु
अपोषि, अपुषाताम्, अपुषत इति विष्क्सौ भवतः । पुपुषति । पोपुष्यते ।
पोपोष्टि । पोषयति, अपूपुषत् । पुष्पन्त्यस्मिन्चारभ्यानि कार्याणीति
पुष्यः, 'पुष्यसिद्धौ नक्षत्रे' इति क्यप् निपात्यते । पुष्येण युक्तः पौषः,
'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इत्यण् । पौषमहः, 'तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि' इति
यलोपः । स्वपोषं पुष्यतीत्यादि पोषतिवन्नेयम् । 'स्वे पुष' इति णुल् ।
पुंषति, पोषति, इति द्वयं शपि । पुष्यातीति श्र्वादौ । पोषयतीति
चुरादौ ॥ ७४ ॥

शुष शोषणे ॥ शुष्यतीत्यादि पुषिवत् । शुष्क, शुष्कवान्, 'शुषः
क' इति निष्ठातस्य ककारः । शुष्कैव शुष्किका, शुष्का जङ्घा ऽत्याः
शुष्कजङ्घा । कत्वस्य पूर्वत्रासिद्धत्वः इ 'उदीचामातस्याने' इति ककारपूर्-
वत्वेन वैकल्पिक इत्वनिषेधो 'न कोपधाया' इति पुंवद्भावनिषेधश्च
न भवति । आतपशुष्कः, 'सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च' इति सप्तमीसमासः ।
कर्ध्वशोषं शुष्यति, 'कर्ध्वं शुषिपूरो' रित्यूर्ध्वं कर्तरि णमुल् । कषादि-
त्वाद्भयाविध्यनुप्रयोगः ॥ ७५ ॥

तुष प्रीतौ ॥ प्रीतिस्तृप्तिः । तुष्यतीत्यादि ॥ ७६ ॥

दूष वैकृत्ये ॥ वैकृत्यं विकृतिः । दूष्यतीत्यादि । दोषणं दूषण-
मिति शौ 'दोषो शौ' इत्युत्वमुपधायाः । दूषयति वित्त-दोषयति वा,

‘वा चित्तविरागे’ इत्युकारविकृत्य उपधायाः, विरगञ्चिनप्याशीनता ।
दोषी, सम्पृचादिना घिनुण् । दृषीका, ‘कपिदृषिभ्यामीकृन्’ इतीकृन् ८८ ॥

श्लिष आलिङ्गने ॥ श्लियति । श्लिष । श्लेष्टा । श्लेयति ।
श्लियन्तु । अश्लियन् । श्लियेत्, श्लियान्, लिङौ । अश्लियन् कन्यां
देवदत्तः, ‘श्लिष आलिङ्गने’ इति अडपवादः क्तः । आलिङ्गने परि
ष्वङ्गः । अन्यत्र पुषादित्वादङ्, ममश्लिषञ्जन्तु काष्ठम् इति ।
अयात्मनेपदेषु कथं भविष्यम्, ममाश्लेपे कन्या देवदत्तेन ममास्ति-
चातां ममाश्लिषन्त इति । ‘शल इगुपधात्’ इति क्तो भविष्यति ।
एकवचने तु परत्वञ्चिण् । यद्वेवमनान्निङ्गनेपि क्तः प्राप्नोति, इष्यते च
मिच ममश्लिषन्त जन्तुनि काष्ठेरेति । एवं नहि ‘श्लिष, क्त’ इति
योगविभागः । अथ च पुरस्तादपवादस्यायेन अड बाधने, न चिणम् ।
तत ‘आलिङ्गने’ इति द्वितीयः । नियमार्थमिदं वचनम् । अनेन च
योगविभागमामर्श्यात् ‘श्लिष’ इति वा ‘शल इगुपधात्’ इति वा
क्तस्य वा प्राप्तिः सा सर्वा नियम्यते आनिङ्गने एवेति । तेन आलिङ्गने
परस्मैपदान्मनेपदयोः यथायोगमङ्गित्वावेव भवनः । श्लेष्ठा, मनिन् ।
श्लेयतीति, शपि ॥ ८८ ॥

शक विभाषितो मर्षणे ॥ अयं मर्षणे दिवादिः । विभाषित
इत्युभयपदी तन्त्रान्तरमिदृशोच्यते । लीरन्वामी तु महनेर्षे शकिधातु-
विभाषितः, विकल्पितः, पक्षे दिवादिः पक्षे स्वादिरित्यर्थः । शक्यते,
शक्नोतीति । शकटायनश्चामुमेव विभाषितार्थमङ्गीकृत्य अस्य बोधयत्र
पाठमात्रादेव मिदृत्वाद्यैर्यत्रेव नूनं मत्वा, ‘शक मर्षणे’ इत्येव पपाठ ।
अतस्त्रायुक्तमनेनैव प्रत्युक्तम् । शकटायनोक्तमपि विभाषितपदस्य
मैत्रेयादिभिस्तन्त्रान्तरमिदृशैर्यस्याभिधानं सार्यकत्वाद्वाक्किञ्चित् ।
तथा स्वामिशकटायनपञ्चावुन्वोक्तं च पुन्यकारे, ‘तज्ज्वेनदुभयमपि बहु
सम्पत्ते यथोक्तैर्षं सम्भवत्युक्तमेव’ इति । शक्यति । शशाक, शकतुः,
शशक्य, शेक्षिय । भारद्वाजनिघमादिद्विकल्पः । शक्ता । शक्यति । शक्यतुः,

अशक्यत् । शक्येत्, शक्यात् लिङौ । अशकत् । शक्यते । शेके । इत्यादि
तदुदाहार्यम् । शिशक्षति । शिशक्षते । 'खनिमीमे' त्यादिना ऽच इम्,
अभ्यासलोपः । 'स्को' रिति सलोपः । शाशक्यते । शाशक्ति । शाक्यति ।
अशीशकन् । शक्या, शक्तः । शक्तो घटः कर्तुं, शक्तिो घटः कर्तुं, 'सौना
गाः कर्मणि निष्ठाया शकेरिटमि कृन्ति विज्ञत्वेन' इति वृत्तिः ॥ ७९ ॥

जिह्वा गात्रप्रहरणे ॥ गात्रप्रहरणं धर्मवृत्तिः । जिह्वेति मैत्रे-
यादयः । तथा 'निष्ठाशीङ्' इत्यत्र न्यासेष्यं जिह्वोद्धृतः । अस्य
जित्त्वं हरदत्तम्यानभिमतम्, यदाह । 'निष्ठा शीङ्' इत्यत्र "जिह्विदा
खेहनमोचनयो" रिति जितो ग्रहणं न तु जिह्वा गात्रप्रहरणइति
देवादिकल्प्य, जिह्विदाहर्षात्, अस्य चाजित्वात्" इति । इदमेवानुसृत्य
'जित्त्वं तस्यापठ' इति पुरुषकारेषुक्तम् । तथा च अनिट्कारिकावृत्तौ
'स्विञ्जतीति श्यता निर्देशो जिह्वित्यस्य निवृत्त्यर्थः' इति । यद्ययमपि
जित्स्यात्, अनेन किं व्यावर्तितं स्यात् । यद्येव 'निष्ठा शीङ्' इत्यत्र
'जितां ग्रह' इति हरदत्तोक्तिरस्यानिट्त्वदेवाग्रहणसिद्धेरयुक्तं चेत्,
भावादिकर्मणोः प्रखेदितमिन्यादौ सेट्त्वसम्भवात् । स्विञ्जति । सिखेद,
सिखेदिय, सिखेदिव, क्कादिनियमादिट् । स्वेता । स्वेत्स्यति । स्विञ्जतु,
अस्विञ्जन् । स्विञ्जेत्, स्विञ्जात्, लिङौ । अस्विञ्जत् । सिखित्सनि ।
सेखिञ्जते । सेखिति । स्वेदयति । अस्विञ्जत् । निस्वेदयिषति ।
'सस्विदी' त्यादिना ऽभ्यासेणः परस्य सकारस्य 'स्तौनिग्योरेव' इति
नियमापवादस्सकारः । स्विञ्जः । 'जिह्विदा खेहनमोचनयो' रिति
द्वौतादिकाद् 'द्युद्धो लुङि' इति परस्मैपदे अस्विदद् इति सिद्धावपि
पुपादावस्य पाठोऽभेदात् ॥ ८० ॥

क्रोध कोपे ॥ देवदत्ताय क्रुध्यति, 'क्रुधद्रुहे' ति कोपविषये
सम्प्रदानत्वम् । तस्येव 'क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म' इति कर्मत्वे, देवद-
त्तमक्रुध्यतीति । चुक्रोध, चुक्रोधिय, चुक्रुधिव । क्रुधेत्यादि । क्रोधनः,
'क्रुधपण्डार्येभ्यश्च' इति युच् ॥ ८१ ॥

सुध सुभुजायाम् ॥ सुध्यति । सुरोध । सुहृ । इत्यदि । सुत् ।
मस्यदादित्वे निष्प् सुधिय इति नदस्य पञ्च त् इति निष्प् ॥ ८२ ॥
शुध शौचे ॥ शुध्यति । शुरोध । शोहृ । इत्यदि ॥ शुध्यति नि
शपि ॥ ८३ ॥

पिधु मरुद्वौ ॥ केचिद्वृद्धिं पठन्ति । तदन्त आनुशातोपदेश-
वैयर्थ्यात् । सिध्यति । सिपेध । सेहृ । सेत्स्यति । सिध्यतु । अमिध्यत् ।
मिध्येत्, मिध्यात्, निडौ । अपिधत् । मिपित्स्यति । सेपिध्यते ।
सेपेहि । अत्र साधयति, 'मि प्रोराग्नैः क्रि' इति परलोकाप्रयोजन-
अतिरिक्तार्थवृत्ते । मिद्वः लावेचः स्य ने आन्वत् । परतैः सिदे तु तपस्मि-
धयति तारमम् । अत्र मिद्वः परलोकाय ज्ञानविशेषे वर्तते । तारम-
स्मिध्यति ज्ञानविशेषमामादयति, त तपः प्रयुङ्गे, स च ज्ञानविशेष
उत्पन्नः परलोके जन्मान्तरे फलमभ्युपगमनमुपमहारत् परने क्रयैः ज्ञानो
भवति । अत्र साधयति, ब्राह्मणेभ्यो दास्यामी यत्र तु पिधेर्निष्पत्तिरर्थः ।
तस्याः प्रयोजनमत्रापि, तस्य यद्वान् तन्प्राप्तैः क्रियम् न पुनर्निष्पत्तिरे-
वेति मातृत्वरगेकरोजरे सिद्धये चरित्येवम् निषेधस्येन प्रवृत्तिः ।
मिद्वः । साङ्कायनिद्वः, 'सिद्धिगुणैः सि मन्त्रावमन्त्र' । 'तस्युपे
हति बहुलम्' इत्यनुको 'नेत्सिद्धयः' इति च । इतीदृशे मिद्वगच्छे
ब्रह्मतौ च निषेधः । सिधित्वा, सेधित्वा, सिद्धा, उदित्वा, उद्विक्तम्,
इति 'रलो व्यपधात्' इति कित्वविकल्पः । राधादयेऽनुदाना उदानेन ॥

अतः पर विभाषेतः परस्मैपदितो रधः दीनष्टाह ॥ ८४ ॥

रध रिनामराजो ॥ मराद्विः पाकः । रध्यति । ररन्ध्र ररन्ध्रः,
ररन्ध्रः, ररन्ध्र, ररन्ध्रध, ररन्ध्रतु, ररन्ध्र, ररन्ध्रव, ररन्ध्रम, ररन्ध्र, ररन्ध्र
'रधादि यञ्' इतीद्विकृत्योऽन्त आधधत्तुके । तत्रानिष्टि यति 'भय-
स्तयो' रिति यकारस्य धतरे पूर्वस्य जगन्व इकारः । वसन्तोरेवा-
भ्यामलोपौ । इडादौ लिट्यस्य लिट्वाजादौ 'रधित्तोरिति' इति नुत् ।
ररन्ध्रव ररन्ध्रमेत्यत्र रध-व रध-म इति स्थिते 'असंयोगान्तिद्वित्'

इति कित्वात्पूर्वं परत्वादिट्, तत्रापि कित्वाचित्यत्वाच्चुमि सतीदानौ सयोगान्तत्वेन वस्मसोः कित्वाभावात् 'अनिदिताम्' इति नलोपाभावः । हरदत्तस्तु इट् परत्वमाश्रित्य 'नेट्यलिटि' इत्यत्राह । इटि सत्यजादि-त्वाद् नुमा भवितव्यम्, प्रागेव कित्त्व प्राप्नोति । न चालिटीत्यस्य वैयर्थ्यं, यत्पर्यवत्त्वात् । एव तर्हि धातोरित्यनुवृत्तेरुपदेश एव नुम्भवति, अचीत्येषा विषयसप्तमीत्याह । रधिता रट्वा, अनिट्पक्षे यत्नीव धत्वजश्वत्वे 'नेट्यलिटि रधे' रिति लिङ्गजितेडादौ नुमो निषेधः । रधिष्यति, रत्स्यति । रध्यतु । अरधत् । रध्येत् रध्यात् लिङ्गौ । अरधत् अङि 'रधिजभो' रिति नुमि 'अनिदिता' मिति नलोपः । रिरधिषति । रिरत्सति । रारध्यते । रारन्धीति, रारट् । रधयति, नित्यत्वात्पूर्वञ्चुमि सति अनुपधात्वाच्च वृद्धिः । अररन्ध्यत्, 'अनिदिता' मिति नलोपो णिलोपस्य स्यानिवत्त्वात् चङो व्यवधानाच्च भवति । रन्धन, रन्धकः । 'रधिजभोरचि' इति नुम् । कसौ तु द्विर्वचनैत्वाभ्यासलोपेषु 'वस्वेका-चात्' इतीटि नुमि, तस्य सयोगान्तत्वेन 'असयोगाल्लिट्' इत्यादि-देशिककित्वाभावोपदेशिककित्वाश्रयणे नलोपे रधिषानिति ॥ ८५ ॥

णश अदर्शने ॥ नश्यति । ननाश, नेशतु, नेशिय, ननष्ट, नेशतुः नेशिव, नेश्व, नेशिम, नेशम् । एत्वाभ्यासलोपौ, पूर्वञ्चद्विकल्पः । अनिट् पक्षे 'मस्मिन्नशोर्भलि' इति थलि नुमि । एवमन्यस्मिन्नपि भलादौ । नशिता, नष्टा । नश्यति नङ्यति । नश्यतु । अनश्यत् । नश्येत्, नश्यात्, लिङ्गौ । अनशत्, अनशः, अनशम् । 'अत एकहल्' इत्यत्र भाष्यम् ॥

नशिमन्योरलित्येत्वं कृन्दस्यमिपचोरपि ।

अनेश मेनकेत्येतद् व्येमानं लिङि पेचिरन् ॥

इति । अत्र कैयटः । "अनेशमिति मिपोम्भावः । पुषादित्वाद-हादेशः । 'कृन्दसि' इति पूर्वेणापि सम्बन्धाद् भाषायामेत्वाभावः । एवं तु मेनकेत्यपि भाषायां न प्राप्नोति । यदि त्विष्यते पृषोदरादित्वा द्वविष्यति" इति । हरदत्तोपि । "अलिटि" इति पादपूर्णायांनुवादः । अनेशन्निति भेरन्तादेशः । 'अनेशन्नस्येवः' । अनेशमिति तु प्रायेण

वृद्धिनिषेधः । अनिट्पक्षे त्वमागमे अवासीत् । अयदा अवाप्सीत् ।
 उभयत्र 'अदृष्टे'ति वृद्धिः । तितर्पिषति, तितृप्ति, 'हलन्ताच्च'
 इति सनः कित्वात् नामागमो नापि गुणः । तरीतृप्यते । तरीतृपीति,
 तरीतर्प्तीत्यादि ह्यिकोरपि नेयम् । तर्पयति । अततर्पत् । अतीतृपत्
 उरृट् । तर्पित्वा, तृप्त्वा । फलाना तृप्तः । 'पूरणगुणलुहितार्थे'ति
 षष्ठीसमासनिषेधः । सुहितागोस्तृप्त्यर्थः । तृप्तः पुरोडाशः । 'स्फायितञ्ची'
 त्यादिना रक् । त्रपिठः, त्रपीयात् । तृप्तमाचष्टे त्रापयति । 'प्रियस्थिरे'
 त्यादिना 'णाडिल्लवत्' इति च त्रपादेशः । पृथ्वादिष्वपाठाद् इम-
 निजस्य नास्तीति वृत्तालुक् । तृपला लता । 'कल तृपश्च' इति कल-
 प्रत्ययः । अमुं स्वादावपि मैत्रेयात्रेयादयः पठन्ति । तद्वृत्तिन्यासपदम-
 ञ्जय्यादिक्रानामनभिमतम् । न तत्रैयोपपादयिष्ये । अय युजादौ तुदादौ
 च । तत्र तुदादौ द्वितीयान्त इत्येके ॥ ८७ ॥

दृप हर्षणमोहनयोः ॥ मोहनं गर्व इति स्वामी । हर्षविमोचन-
 योरित्येके । दृष्यीत्यादि पूर्ववत् । दर्पणः । नन्द्यादिः । अयमुत्कंशे
 तुदादिः । वृषिदृष्योरनुदात्तेऽन्वमर्थम् । इट् तु रधादित्वाद्विज्ञापित इति
 न तत्रित्यर्थम् ॥ ८८ ॥

द्रुह जिघालायाम् ॥ देवदत्ताय द्रुहति । 'क्रुधद्रुहे'ति कोप-
 विषयस्सम्भ्रानम् । देवदत्तमभिद्रुहति । 'क्रुधद्रुहोरुपलुठयोः कर्म'
 इत्युपलुठत्वे कर्मत्वम् । दुरोह, दुरुहतुः, दुरोहिय, अनिट्पक्षे 'वा
 द्रुहमुहणुहण्णिहाम्' इति भलि पदान्ते च हकारस्य वा घत्वे 'भ्र-
 स्तथो'रिति थकारस्य घत्वे 'भ्रना जश् भशि' इति घकारस्य गत्वे,
 दुरोथ । घत्वाभावे 'हो ठ' इति ठत्वे धकारस्य धन्वटुत्वयोः ठो
 ठे लोपे, द्रुलोपदीर्घात्परत्वाद्गुणे, दुरोठ, दुरुहथुः, दुरुहिव, दुरुह ।
 द्रोहिता, द्रोधा, घत्वादि पूर्ववत् । द्रोठा ठत्वादि । द्रोहियति ध्रोह्यति
 कृते घत्वे सकारारत्वेन 'एकाच' इति भ्रभावे 'खरि च' इति चत्वे
 ककारः । ठत्वपक्षेपि कृते ठत्वे भ्रभावे च 'यठोः कस्सि' इति कत्वम् ;
 इदमेव रूपम् । द्रुह्यत् । अद्रुह्यत् । द्रुह्येत्, द्रुह्यात् । अद्रुह्यत् ।

दुहोहिषति, दुहुहिषति, 'मनो ज्ञाधान्' इति कित्त्वित्कन्त्यः । अनिति
दुधुतति, 'प्रपञ्चशेभ्यः' इति पूर्ववत् । द्वे दुधुते । दोहोधि दो-
धोति, दोहोति । दोहयति । अदुधुहत्, दोही । सम्प्रदादिना धिनुण् ।
दुहित्वा, दोहित्वा, दुग्धा, दुद्धा । दुग्धः, दुग्धपात्रः । दूढः, दूढपात्रः ।
घत्वादि पूर्ववत् । टच्चे धन्वत्पुत्रलोपदीर्घः । मित्रदुह् मित्रधुह ।
'सम्प्रुपुपुह' इति द्विपि पदान्तत्वे 'वा दुहे' नि वा घन्वत् । अन्यत्रा
ठत्वम् । भपभावाद्युभयत्रापि भवति । ५९ ॥

मुह वैचित्र्ये ॥ वैचित्र्यप्रविशेकः । मुयति । मुमोह, मुमुहनुः,
मुमुहिय, मुमोध्य, मुमोट, मुमुहिव, मुमुहु । मोहिता, मोग्धा, मोठा ।
मोहियति मोहयति । मुहानु, अमुहन् । मुह्येत् । मुह्यान् । अमुहत् ।
मुमुहियति, मुमोहियति, मुमुतति । मोहयन्ते । मोमोधि मोमोति ।
मोहयति । चित्रपञ्चमृत्तत्वे 'अणापञ्चमृतात्' इति परस्मैपदमेव ।
परिपूर्वत्वे तु 'न पादमी' त्यादिना रिध्यान् 'णिचरन्' इत्यादिना
उभय भवति । परिमोहयति परिमोहयते इति । परिमोही । सम्प्रदा-
दिना धिनुण् । मुहित्वा, मोहित्वा, मुग्धा, मुद्धा । मुग्धः, मूढः ।
उमुह, उमुह । दुहियन्मिदा । भपभावस्तु यत्पादाव भवति । मूर्धः ।
'मुहेः सो मूर्ध' इति स्वप्रत्ययो, मूर्धादेशत्वः ॥ ६० ॥

पुह टद्विजे ॥ खुहति । मुष्णोह, मुष्णुहनु, मुष्णोहिय, मुष्णोध्य,
मुष्णोट, मुष्णुहिव । मुष्णुहु । खोहिता, खोग्धा, खोठा । खोहियति,
खोहयति । खुहन्तु । अखुहन्तु । खुह्येत्, खुह्यान्, निडौ । अखुहत् ।
मुखुहियति मुखोहियति । 'स्त्रौणिण्योरप' इति नियमाच्च पञ्चम् ।
मुखुतति । से ण्युह्यते । सेऽण्योधि, सेऽण्योति । खोहयति । अमुष्णुहन् ।
खोहित्वा, खुहित्वा, खुग्धा, खुद्धा । खुग्धः, खूढः । मूर्ध्नात्यापञ्चम्य
'आदेशपञ्चम्ये' इति पञ्चम्येन 'रेषाभ्याम्' इति वा लङ् । ६१ ॥

खिउ प्रतौ ॥ खिउति । मिष्णोह, मिष्णोहिय, मिष्णोध्य, मिष्णोहिव,
मिष्णुहिव, मिष्णुहु । खेहिता, खेग्धा, खेठा । खेहियति, खेहयति ।
खिह्यन्तु । अखिह्यन्तु । खिह्येत्, खिह्यान् । अखिहत् । मिखिहियति

सिखेहिपति, सिखिलति । सेष्णिह्यते । सेष्णेधि, सेखेडि । खेहयति । असिष्णिहत् । खिहित्वा, खेहित्वा, खिग्ध्वा, खीद्वा । खिग्धः, खीडः, उष्णिक् । 'अत्विक्' इत्यादिना उत्पूर्वात्खिह्यतेः क्तिन् । उदोऽन्त-
लोपः सस्य च पत्व निपात्यते । 'क्लिन्नत्ययय' इति हकारस्य घत्वे
जश्च चत्वंम् । उष्णिहा । अजादिपाठात् टाप् ॥ ९२ ॥

वृत् ॥ विभाषे^१टः परस्मैपदिनो रधादयो वृत्ता इत्यर्थः । अत्र
वृत्करण रधादिपरिसमाप्त्यर्थम्, पुषादयस्त्वा गणान्तात् । यदुक्तं
तरङ्गिण्यां, रधादीन् परिसमाप्य 'एतदन्तः पुषादिरित्येके । अतोऽप्ये
शमादी' ति, तद्वाप्यवार्तिकविरोधादुपेत्यम् । तथाहि । 'अस्यति-
वक्तिख्यातिभ्योङ्' इत्यत्र 'अस्यतिग्रहणमात्मनेपदार्थं द्रष्टव्यम् ।
किमुच्यते आत्मनेपदार्थमिति न पुनः परस्मैपदार्थमपि स्यात्, पुषादि-
त्वात्, पुषादिपाठात्परस्मैपदेषु अङ् भविष्यती' ति । अत्र कैयटः ।
'पुषादय आ गणान्तात्, अन्तरा तु वृत्करण रधादिपरिसमाप्त्यर्थम्, न
तु पुषादिपरिसमाप्त्यर्थमिति प्रतिपादनाय सुहृद्भूत आचार्य आह, अस्य-
तिग्रहणमिति' । पुषादिसूत्रे न्यासपदमज्जर्यारप्येवमुक्तम् । अत्र 'वा
द्रुहादीनाम्' इति लाघवेन घत्वे विधातव्ये प्रतिपदपाठो यद्भुगर्थः ।
गणनिर्देशे हि 'निर्दिष्ट यद्गुणेन च' इति वचनाद्भुत्व न स्यात् ॥

अथ पुषादीनेव नित्ये^२टः परस्मैपदिन आह ॥

शमु उपशमने ॥ शाम्यति । शशाम, शेमतुः, शेमिथ, शेमिव ।
शमिता । शमिष्यति । शाम्यतु । अशाम्यत्, शाम्येत् । अशिषि, शम्यात् ।
अशमत् । 'शमामष्टाना दीर्घरश्यनि' इति दीर्घः । शिशमिषति । शंश-
म्यते । शंशमीति, शशन्ति, शशान्तः । निशमयति वचः, अमन्तत्वान्मि-
त्वम् । अशामि, अशमि । 'चिण्णमुलोर्दीर्घान्यतरस्याम्' इति षेचिणि
पक्षे दीर्घः । निशामयति रूपम्, 'शमोऽदर्शने' इति दर्शने मित्त्वनिषेधः ।
शमी । 'शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्' इति घिनुण् । 'नोदात्तोपदेशस्य
मान्तस्य' इति वृद्धिनिषेधः । शमयतीति शमनः । बाहुलकात्कर्तरि

ल्युः । शमित्या, शान्त्वा । 'उदिनो वा इनीद्विकन्धः । शान्तः ।
 'यस्य विभाषा' इनीरिणपेधः । प्रशाम्यर्नानि प्रशान् । 'अनुनामिकम्प
 क्किभनोः कृदिति' इति कृषिर्दायः । 'मो नो धानो रिति नकारः
 पदान्ते । म्वरादित्वाद्दस्यव्ययम् । शान्तिः । 'तिन्त्रे' नीगिण-
 पेधः । शान्तः । ग्यन्तान् 'वा दान्तशान्ते' नि गिनुगनिट्त्व च पते
 निपात्यने । अन्यद्वा शमितः । 'निष्ठाया मेडि' इति गिनेप ।
 शमलम् । 'शकिशम्योर्निन्' इति कनप्रत्ययः । शम्बुः । 'शमेर्वन्'
 इति वन्प्रत्ययः । शम्भः करोति । 'ऊजो द्वितीयवृत्तीपगम्वे' ति डाच् ।
 अनुलोमकृष्टं प्रतिशाम इवनीत्यर्थः । शम्बुश्चन्द्रम्यत्र प्रानिनाम्ये
 वृत्तिः । 'ऊजश्च करोणे' इति हरदनः । शम्बुः । 'शमेर्वन्' इति तुन्
 प्रत्ययः । शाम्बुव्यम् । गतोदित्वाद्दञ् । शमी । शमश्चन्द्रम्यन्या-
 दित्वाङ्डीप् । शम्या विकारोऽवयवे वा शमीलम् 'शम्याट्ठन्'
 टित्त्वात् स्त्रिया शमीली ॥ ८३ ॥

तमु काङ्क्षायाम् ॥ ताम्यतीत्यादि शमिवन् । ताम्बुनम, ताम्बु-
 रम् । 'तमेर्वुक्त्वं' इत्यरोल्लवौ प्रत्ययौ । णिट्ठ्वावाट्ठिट्ठिः, वुगगमश्च ।
 ताम्रम् । 'अमितम्योर्द' इत्ये' इति रकिर्दायः । तमसा नदी । 'अन्य-
 मिचमितमी' त्यसच् । तमः, अमुन् । अवनममम्, सन्नममम्, अन्य-
 तमसम् । 'अवनमन्ध्येभ्यममम' इत्यच् समासन्तः । तमिस्रा ।
 'ज्यात्वातमिस्रे' नि संज्ञाया मत्वर्थीया रः, उपधायाश्चेकारः ।
 स्त्रीत्वमतन्त्रम् अन्यत्रापि दृश्यते तमिस्त्र नभ इति वृत्तौ ।
 तमसाकृतम् । 'ऊजम्नोमभस्तममन्वृत्तीयाया' इत्यनुक् । तमी ।
 इवन्तात् डीप् ॥ ८४ ॥

दमु उपशमने ॥ दाम्यतीत्यादि । दमयतीति दमनः । नन्द्यादिः ।
 अरिन्दमः । 'सज्ञाया भृवृज्जी' त्यादिना खच् । दमयति, दमयते ।
 'अणावकर्मकात्' इति प्रस्मैपदस्य 'न पादमि' ति निषेधः । दान्तः,

दमितः, 'वा दान्ते'ति श्यन्ताविष्टायामनिट्त्वम्, णिलुक्च पक्षे ।
 दमुनाः । 'दमेरुनसिः' । दण्डः । 'जमन्ताडुः' । द्विदण्डि प्रहरति ।
 द्विदण्डादिभ्यश्च' इति बहुव्रीहाविधप्रत्ययान्तो निपात्यते । द्वौ
 दण्डावस्मिन्महरणइति विग्रहः । समुदायनिपातनस्य रूढार्थत्वाद्
 द्विदण्डा शालेत्यत्र न भवति । तिष्ठद्गुप्रभृतिषु इज् इति पाठाद्
 इजन्तस्याव्ययीभावाद् अव्ययत्वम् । दण्डिनोपत्य दण्डिनाययनः । इच
 न्तात् 'नडादिभ्यः फक्' इति फकि 'दाण्डिनायने'ति निपातना-
 टिलोपाभाव । शमिना सहास्यापाठः सकर्मकत्वात् । उपशमन इति
 श्यन्ते द्रष्टव्यः ॥ ८५ ॥

श्रमु तपसि खेदे च ॥ श्राम्यतीत्यादि । अत्र वर्धमानो 'नोदा-
 त्तोपदेशे'ति वृद्धिनिषेधे प्रप्ते प्रयोगदर्शनाद् वा श्रमेवृद्धिमाह । तत्
 'आचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम्' इति चम्यादीनामेव भाष्यवार्तिकयोः
 वृद्धङ्गीकारात्, "कथ 'सूर्यविश्रामभू' रिति, एवमादिकं प्रयोगं
 अन्यायमेव मन्यन्ते" इति वृत्तावुक्तत्वाज्वायुक्तम्, कुमारी चासौ
 श्रमणा च कुमारश्रमणा, 'कुमारः श्रमणादिभि'रिति कर्मधारयः ।
 श्रमणाशब्देन कुमारशब्दस्य सामानाधिकरण्याभावत् लिङ्गविशिष्ट-
 परिभाषया कुमारीशब्दस्य समासे 'पुंवत्कर्मधारये'ति पूंवद्भावः, अत
 एव निर्देशाल्ल्युः, युज्वा ॥ ८६ ॥

भ्रमु अनवस्थाने ॥ भ्राम्यतीत्यादि । 'वा भ्राशे'ति श्यनो विक-
 ल्पनाद् यदा शप् तदा भ्रमतीत्यादि । शेष भौवादिकवत् । 'शमाम-
 ष्टानाम्' इति श्यनि दीर्घः, ल्युग्रङ् च विशेषः । भ्रमी । शमादित्वा-
 द्तिनुण् । अत्रात्रेयः । अभिधानवशाद् अकर्मकादेव अयमिष्यते । तेन
 भ्रमिता वनमिति वृत्तेवेति । एव चाय सकर्मकोकर्मरुश्चेत्यनेना-
 सूचि ॥ ८७ ॥

क्षमू सहने ॥ क्षाम्यति । क्षताम्, क्षतमतुः, क्षतमिथ, क्षतन्य, क्षत-
 मित्र, क्षतख, 'म्विश्व' इति नत्वे णत्वम् । क्षमिता, क्षता । क्षमिष्यति
 क्षंस्यति । क्षाम्यतु । अक्षाम्यत् । क्षाम्येत्, क्षम्यात् । अक्षमत् । क्षिप्तमि-

पति, चित्तमति । चङ्गयते । चङ्गन्ति । तमयति । अचित्तमन् । तमी ।
तन्वा, तमित्वा, ऊर्द्ध्यादिङ्गिकृत्यो बलादौ । तान्तिः, तान्तिः,
'यस्य शिभाया' 'तिनुत्रे' ति वेणिषेधः । तमेति पितो भौवादि-
कस्य । अमुमपि केचित् पित पठन्ति, तदसन् । तथा च स्वामी ।
'केचिदत्रापि तमूषिति पित पठन्ति, तदसत् । तमू सहनइति
सभ्या' इति । अर्धम'नोपि । तमेदैवादिक्स्याननुबन्धस्य तान्तिस्स्या-
देव' इति । 'अपिनः ताम्यतेः तान्तिः, तमूयः तमते, तमा' । इति
देवपुस्यकारयेरपि ॥ ८८ ॥

क्लमु ग्लानौ ॥ क्लम्यति, क्लामति । चक्लाम । क्लमिना, इत्यादि ।
'वा भागे' न्यादिना श्यन्विक्लम्यः । शपि 'ष्टिबुक्लमु' - इत्येव श्यन्पि
दीर्घे सिद्धे शमादिपाठो घिनुरर्थः ॥ ८९ ॥

मद्री हर्षे ॥ माद्रीनीत्यादि । धर्मात्प्रमाद्रीति । 'जुगुप्साविराम-
प्रमादार्थानामुपपन्नम्' इति धर्मापादानम् । मदयति मद्री हर्षणे-
पनयो' इति घटादिपाठान्तिवम् । अन्यत्र मादयति । माद्रीत्यनेन
मन इति मद्रम् । 'गदमदे'त्यनुपमर्गं यत् । 'कन्यत्युठो बहुनम्'
इति करणेपि भवति । मदयतीति मदनः । नन्द्यादिन्वाणपन्तान्त्यु-
स्सज्ञायाम् । इरा जलम्, तेन माद्रीतीति इरम्मदः । 'उयम्परम्पदे'
ति खशि श्यनभावो निपात्यते । उन्मदिष्णुः । 'अनदुङ्' इत्यादिना
इष्णुव्' उन्माद्री । शमादित्वाट्टिनुण् । मदः । 'मदोऽनुपमर्गं' इत्यप् ।
'अधजरोऽनुपमर्गं' इत्यत्रैव मदियहणेपि कर्तव्ये पृथक्पुत्रारम्भाद्
उन्माद इति घञ्प्राप्ति न्यासः । प्रमदः, सम्मदः 'प्रमदनम्मदौ हर्षे'
इत्यन्विपात्यते । मदित्वा, मतः, मतवात् ईदित्वादनितृत्वम् । 'न
ध्याव्ये' न्यादिना नत्वनिषेधः । मदिरा । 'इषिमद्री' न्यादिना किरच् ।
शमादये'ष्टौ वृत्ताः ॥ मन्दते मदनि इति म्नुन्यादौ शपि । मद वृप्ति-
योगइति चुरादावाधृषीयः ॥ १०० ॥

असु क्षेपणे ॥ अस्यति । आस आसिथ । असिता । असिष्यति ।
 अस्यतु । आस्यत् । अस्येत् अस्यात् । आस्यत्, आस्यताम् 'अस्यतिवक्ति-
 ख्यातिभ्य' इति कर्तरि लुङ्प्रतिङ् 'अस्यतेस्युक्' इति युगागमः ।
 पुषादित्वादङि निङ् ५स्यतिग्रहणमात्मनेपदार्थम् । तच्च कर्मकर्तरि
 'उपसर्गादस्यतूहोर्वा वचनम्' इति शुद्धेऽपि कर्तरि सोपसर्गत्वे पक्षे
 तङो विधानादस्ति । निरस्यते । निरासे । निरासिषे । निरासिता, निर-
 सिष्यते । निरस्यताम् । निरास्यत । निरस्येत । निरसिषीष्ट । निरास्यत ।
 निरास्येताम् । 'अस्यती' त्यङ् । इदमेव कर्मकर्तर्यपि रूपम् । कर्मणि
 चिश्चिञ्चावेव, निरासि, निरासिषाताम् । असिसिषति । निरसिसिषते
 निरसिसिषति । 'पूर्ववत्सन' इति वा तङ् । आसयति । आसिसत् ।
 समस्यम्, सन्यस्यम् । समस्या । 'चहलो ण्यत्,' 'सज्ञापूर्वको विधिर-
 नित्य' इति वृद्धभावा इत्यात्रेयः । प्रास्यन्त्येतमिति प्रासः । 'अकर्तरि
 च कारके' इति घञ् इति वृत्तौ । आत्रेयस्तु 'हलश्च' इति करणे
 घञ्माह । प्रासनम् । करणे ल्युट् । दृहात्यास गाः पयः पाययति,
 दृहमत्यासमिति वा । 'अस्यतिवृषोः क्रियान्तरे कालेषु' इति काले
 कर्मण्युपपदे क्रियान्तरे क्रियाया व्यवधायक्ये वर्तमानयोरस्यतिवृषोः
 णामुल् । अद्य पाययित्वा दृहमत्यस्य पाययतीत्यर्थः । अन्यसनक्रियया
 पानक्रिया व्यवधीयते । 'वृणीयाप्रभृतीनि' इति समासविकल्पः ।
 असित्वा, अस्त्वा । उदित्वादिद्विकल्पः । अस्तः, अस्तवान् 'यस्य
 विभाषा' इतीक्षणपेधः । अक्रमनेनासितमनेन । "सौनागाः कर्मणि
 निष्ठायां अकिरिटमिच्छन्ति विकल्पेन, अस्यतेर्भावे" इति 'विभाषा
 भाषादिकर्मणोरि' त्यत्र वृत्तौ । अस्तगत्य, 'अस्त च' इति क्रियायोगे
 गतित्वाद् अस्तशब्दस्य समासः । अत एव निर्देशादस्तशब्दस्य मान्त-
 त्वमित्यात्रेयः । अव्युत्पन्नोऽयमिति वृत्तिन्यासपदमञ्जर्यादौ । तरङ्गा-
 त्यस्तः, 'द्वितीयाश्रिते'ति समासः । असुरः, 'असेहन्' इत्युर्न् ।
 प्रज्ञादित्वादासुरः । स्वसा । 'सावसेर्च्च्न्' इति सावुपपदे च्च्न्, अन-

डादि । 'न पट्स्वसादिभ्य' इति 'कृत्रेभ्य' इति डापो निषेधः ।
 स्वसुरपत्य स्वत्रायः । 'म्यमुन्ड' इति छः । पितृत्वमुपपत्य पितृष्व-
 म्नायः, पितृष्वमेयः । 'पितृष्वमुगङ्गा' टकि तु 'टकि नाप' इत्यन्त-
 लोपः । अत गजानुवाद-ट्ठु । मातृष्वस्त्रीय, मातृष्वमेयः । 'मातृष्व-
 मुग्व' इति कृण्, टकि लोपः । 'मातृपितृभ्या स्वमा' इति यत्वम् ।
 मातृस्वसा, मातृष्वसा । 'विभाषा स्वसुपत्यो' रिति पत्ते ऽनुक् ।
 'मातृपितृभ्यामन्यतरस्याम्' इत्यनुकि यञ्चिकल्पः, स्वसुपत्रारस्य वि-
 सर्जनीयस्य सत्वे ष्टुत्वेन यत्वम् । अत्र पितृस्वसा, पितृष्वसा इति ।
 असुः । 'शृम्' -इत्यादिना उपत्ययः । अत्र केचित् 'नेगदे' त्यादौ
 तन्त्रेणाकारप्रत्ययेण अयमपि निर्दिष्ट इति । प्रत्ययस्य नीत्यादौ सत्व-
 मिच्छन्ति । अस्तीति लुकि । अमने असतीति शपि ॥ १८१ ॥

यमु प्रयत्ने ॥ यस्यति । यमति । ययास । येसतुः । यसिना । यमि-
 यति, यस्यन्, यमतु । अयस्यत्, अयमत् । यम्यत्, लिङौ । अयमत् ।
 'यमोनुपमगात्' इति श्यनो विकल्पनात्तदभावे शपि । उपसृष्टानु
 प्रयस्यतीति श्यनेव । सम्पूर्वत्वे तु 'सयसश्च' इति विकल्पः, सयस्यति
 सयमतीत्यदि । यियसिपति । यायस्यने । यायस्मिन् । आयामयने
 'अणावर्कर्मकाच्चित्तवन्कर्वृकात्' इति परम्पदस्य 'न पादमी' त्या-
 दिना निषेधः । आयामी, सम्पूर्वादिना घितुण् । यस्त्वा, यसित्वा ।
 उदित्यादिविकल्पः । यस्तः, यस्तवान् ॥ १८२ ॥

जमु मोक्षणे ॥ जस्यतीत्यादि यम्यतिवत् । अजसम्, 'नमिक-
 म्यस्यजम्' इति नऽपूर्वाज्जसेरप्रत्ययः । स्वभावादय क्रियापतत्ये ।
 'जासिनिग्रहण' इति कर्मणि षष्ठीविधौ हिंमार्यग्रहणान् अस्य ब्रह्मा^१त्-
 जासयतीति द्वितीयैव । जसि रक्षणे, जसु हिमायाम्, जसु ताडने, इति
 त्रय चुरादौ ॥ १८३ ॥

तसु उपतये ॥ दसु च ॥ तस्यति । दस्यति । इत्यादि ॥ दासितः ।
 दस्तः, 'वा दान्ते' त्यादिना पत्ते णिजुगिडभावश्च । दस्रौ । 'स्फायित-

ञ्चीत्यादिना रक् । पुष्पवदादिवदय नित्य द्विवचनान्तः । दाने दासति दासतइति शपि गतम् ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

वसु स्तम्भे ॥ वस्यति, ववास, ववसतुः, 'न शसददवादी' त्ये-
त्वाभ्यासलोपनिषेधः । वसितेत्यादि । अयं दन्तोष्ठादिरित्यात्रे-
यादयः । तथैव दैवपुरुषकारयोः । वस्यति स्तम्भे, वस्ते आच्छादने,
वसतेर्वसेत्, इति । अपरे बकारादिमाहुः । 'घसिञ्च सान्तेषु वसिः
प्रसारणी' इत्यनिट्कारिकाव्याख्याने वृत्तौ प्रसारणीतिवचनात् वस
आच्छादन इत्यस्य इड्भ्रतीति वस्तेरेव प्रत्युदाहरणात् वृत्तिभ्रतोपि बशा-
दित्वमभिमतं प्रतीयते । एवं हि वस्तशब्देऽपि सिद्ध्यति । शमादय
एतदन्ता उदितः, क्षाम्यतिमाद्यती वर्जयित्वा ॥ १०६ ॥

व्युष विभागे ॥ अयं दाहे पूर्वं पठितः, उदाहृतश्च, इह तु
विभागे ऽव्युषदित्यडर्थः पाठः । केचिदमुमोष्ठादि दन्त्यान्तमिच्छन्ति
व्युसेति । अपरे त्वयकारं वुसेति ॥ १०७ ॥

प्लुष दाहे ॥ प्लुष्यतीत्यादि । इह पाठोऽप्लुषद् इत्यडर्थः । पूर्वत्र
पाठस्तु अप्लोषीद् इति सिजर्थः ॥ १०८ ॥

बिस प्रेरणे ॥ ओष्ठादिः । बिस्यतीत्यादि । बिसम् । इगुपधल-
क्षणः कः । बिस्तः । बाहुलकादौणादिकस्तन्, अगुणत्व च । 'तितुत्रे'-
तीणिषेधः । द्वाभ्यां बिस्ताभ्यां क्रीता द्विबिस्ता, द्वैबिस्तिकी ।
'बिस्ताच्च' 'बहुपूर्वाच्च वक्तव्यम्' इति द्वित्रिबहुपूर्वाद्विस्तान्ताद् द्विगोः
परस्यार्हायस्य ठजो धिभाषा लुक् । 'द्विगो' रिति ङीप् । 'अपरिमाण-
बिस्ते' ति निषेधः । अत एव बिस्तेति निर्देशाद्वा निष्ठायामनि-
ट्त्वम् । लुगभावे तु 'परिमाणान्तस्य' इत्युत्तरपदवृद्धिः । 'टिड्ढाणञ्'
इत्यादिना ङीप् । एवं त्रिबहुपूर्वादपि द्रष्टव्यम् ॥ १०९ ॥

कुस श्लेषणे ॥ कुस्यतीत्यादि । कुसितायी । 'वृषाकप्यानी'-
त्यादिना क्तप्रत्ययान्तत्वात् ङीबुदात्तः, ऐकारोन्तादेशः । दुर्ग-

१ अयं चोष्ठादीति २ पु. उपरिलिलितः पाठः ।

३ वसयेद्वसेदिति । ३ । पु. वसने वसेत् इति ४ । पु. पा. ।

स्तान्ध्यान्त पपाठ, कुगशब्दस्य दर्शनान् । स तु भैवादिकादपि
मिटुः ॥ ११० ॥

बुम उत्सर्ग ॥ बुम्यतीत्यादि । बुमम् । इगुपधनत् कः ।
यस्मिन्काले बुम खले वर्तने स कालः खलेबुमम् । 'निष्टद्रुमभृतीनि च'
इत्यव्ययीभावममामः । अय प्रथमान् एव, विभक्त्यन्तरेण न सम्बध्यत
इति वृत्तौ । बुमम् । पूर्ववचनीडभावः, अर्धर्वादिषु पाठाद्वा निष्ठाया
मनिट्वम् ॥ १११ ॥

मुम खण्डने ॥ मुम्यतीत्यादि । दन्त्यान्त इति सर्वे । आत्रेयस्तु
कातन्त्रे मूर्धन्यान्तोऽयम् । तथा च राघवस्यानुस, कालम् इति भट्टि
कात्रे प्रयोगश्चेति पाठान्तरमप्याह । मुम्लमिनि, अस्मादेव कैलादिकः
कलप्रत्यय इति वदन्तैरात्रेयमैत्रेययोरन्येऽप्यमप्यमुं मान् पठन्ता भ्रमि-
मस्योऽस्त्वोपधाया' इति ममेर्मुपलब्ध्यान्तर्पेति मतम् । र्मुनी
एहोऽधिका । गौरादिः । मुमनेन वधमर्हति मुमन्यः । दण्डादित्वा-
द्यात् । मुन्ता । बाहुनकादौपादिके तनि 'तितुत्रे' नि इति लषेधः ।
मुस्तकम् । सज्ञाया क्त, अर्धर्वादिः ॥ ११२ ॥

मभी परिमाणे ॥ मस्यति । ममाम, मेमत्तुः । ममिता । ममिष्यति ।
मस्यतु । अमस्यत् । मस्येत्, मस्यात् । अममत् । मिममिष्यति । माम-
स्यते । मामस्ति । मासयति । अमीममत् । मस्तः, मस्तवान् । ईदित्वा-
दनिट्वम् । मस्तकम् । सज्ञाया क्त । मस्तु । 'मितनी' नि तुन् ।
'तितुत्रे' तीणिनपेधः । अस्यादयो ममिष्यन्ता दन्त्यान्ताः । अत्र क्वचित्
'आद्यन्तव्यत्यासेन समीति पाठः' ॥ ११३ ॥

लुट विलोडने ॥ लुट्यति । अनुटन् इत्यादि । भूवादपाटात्
अलोटीत् इति निजप्यस्ति । प्रनिधाने तु युनादिपाठदृश्यस्ति,
अनुटत्, अनेऽटिष्ट इति । लोच्यनीनि ऋद्धादियगन्तः ॥ ११४ ॥

उच समवाये ॥ उच्यति । उवाच, ऊचतुः, उवाचिय, पिद्वचनेषु परत्वद्रुणे, पश्चाद् द्विर्वचने 'अभ्यासस्यासवर्णे' इत्युवङ् । यत्रापि द्विर्वचने गुणस्य स्यानिवत्त्वम्, तथाप्युत्तरखण्डस्य 'वार्णादाङ्ग वलीय' इति सवर्णदीर्घात्पूर्वं गुणे ऽभ्यासस्योवङ् । औचिता । औचिष्यति । उच्यतु । औच्यत्, उच्येत्, उच्यात्, लिङौ । मा भवानुचिवत् । औचिचिपति इत्यादावपि द्विर्वचनात्पूर्वं गुणः । अत्र च ज्ञापक 'रलो व्युपधात्' इत्यत्र हलादिग्रहणेन अजादेर्गुणार्थः कित्त्वपर्युदासः । यदि च पूर्वं द्विर्वचन स्याद् अकित्वेऽनुपधात्प्राद्व गुणो न भविष्यतीति किं तेन । औचित्वा । 'न त्वा सेट्' इत्यकित्वम् । उचितः । औचित्यम् । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । औचित्ती । ष्यजन्तात् प्रित्त्वान्डीषि 'हलस्त द्वितस्य' इति यलोपः । नियमेनोच्यतीति न्योक्रः शकुन्तः । इगुपधलक्षणः कः । नियमेनास्मिन् शकुन्ताः समवयन्तीति न्योक्रो वृत्तः, घञर्थे कः । ओक्रः । अच् । 'ओक्र उचः के' इति निपातनात्कुत्वम्, गुणश्च । ओक्रः, ओक्रसी । एहम् । असुनि बाहुलकात्कुत्वम् । उल्बम् । 'उल्बा दयश्च' इति बप्रत्ययः । चकारस्य च लकारो गुणाभावश्च निपात्यते ॥ ११५ ॥

भृशु भृशु अधः पतने ॥ भृश्यति । बभर्श, बभृशतुः, बभृशुः, बभर्शिय, बभृश, बभृशिव । भर्शिता । भर्शिष्यति । भृश्यतु । अभृश्यत् । भृश्येत्, भृश्यात् । अभृशत् । बिभर्शिषति । बरीभृश्यते । बरीभर्षि । इत्यादि । भर्शयति । अब्रीभृशत्, अबभर्शत्, उरृढा । भृशम् । इगुपधलक्षणः कः । अभृशो भृशो भवति भृशायते । 'भृशादिभ्यो भुवि' इति क्यङ् । भार्श्यम्, भृशिमा । दृढादित्वात् ष्यजिमनिचौ । भर्शिष्टः, भर्शीयात्, 'र च्छिता हलादे' रितीष्टेमेयस्सु चकारस्य रशब्दः । भृशयति, 'णाविष्टवत्' इति रत्वम् । भर्शित्वा, भृश्या । उदित्वादिविक्लप्यः भृष्ट, भृष्टवान्, भृश्यति, 'अनिदिताम्' इति नलोपः । बभर्श, बभृशतुः, बभर्शिय, बभृशिव । भर्शिता । भर्शिष्यति । भृश्यतु ।

अभ्रयन् । भ्रयन् भ्रयान् । अभ्रगन् । अभ्रगिषन्ति । वाभ्रयन्ते ।
 येषि भ्रगि भ्रवादावपि तालव्याम्बान् पठित्वा, नीकुत्रेति तथा
 पठन्ति, तेषि ध्वमन्यदिमाहवर्षाद्भौवादिभ्यश्च नीक कुर्वन्त, न
 त्वस्य । येषां तु भ्रवाद्भौ नीकुत्रे च दन्त्यान्पाठ, तेषामप्यस्य नीका
 नैव प्रसङ्गः । वाभ्रगि । भ्रगयन्ति । भ्रगित्वा भ्रग्या, भ्रष्टः । व्रश्वादिना
 पत्वेऽनिट्त्व, सर्वत्र कित्यनुनासिकेनाद ॥ ११६-११७ ॥

वृश वरणे ॥ वृश्यनीत्यादि, भृश्यतिवत् । अनुदिच्च विगेषः ।
 वृशिष्टः, वृशीयान् ॥ वृशयनीत्यत्र 'र चन इति रत्वं न
 भवति ॥

पृथु मृदुं भृगु चैव कृश च वृद्धमेव च ।

परिपूर्वं वृद्ध चैव पठेनान् रविधौ स्मरेत् ॥

इति परिगणनान् ॥ ११८ ॥

कृश तनूकरणे ॥ कृश्यनीत्यादि भृशिवत् । अप्याप्यनुदिच्च
 विगेषः ॥ कृशः । 'अनुपमर्गात्फुल्लतीवकृशोन्नाश' इति तिष्ठाया
 निपातिनः । सोपसर्गत्वे तु प्रकृशिनः परिकृशित । प्रादिसमाम ।
 कृशिमा कृशिष्टः । कृशीयान् । कृशयति । भृशिवद् रत्वं इमनिच्च ।
 कृशित्वा, कर्शित्वा । 'तृपिमृषिकृशे काश्यपस्य' इति वा कित्त्वम् ।
 कृशानुः । 'चनन्यजिज्'—इत्यादिना तुक् ॥ ११९ ॥

जिह्व पिरासायाम् ॥ तृष्यनीत्यादि । तृषित्वा, तर्षित्वा ।
 'तृषिमृषि'—इत्यादिना वा कित्त्वम्, तृष्णक् । 'स्वपितृषोर्नजिङ्' इति
 नजिङ् । द्रुहतर्ये गाः पाययति द्रुहंनर्यमिति वा । अत्र पाय-
 यित्वा, द्रुहमतिक्रम्य पाययनीत्यर्थः । 'अस्यतिवृषो' रिति णमुल् ।
 'तृतायाप्रभृतीनि' इति ममामविकल्पः । वृट्, वृष्णा । 'तृषिशुषिर-
 सिभ्यः क्तिन्' इति नप्रत्ययः । जित्त्व वर्तमाने कार्यम् । तृषितमस्य
 सञ्जात तृषितः, अर्श आदिः ॥ १२० ॥

हृष तुष्टौ ॥ हृष्यतीत्यादि । श्यनडौ वर्जयित्वा भौवादिकवत् ।
अयमुदितिति नन्दीति स्वामी । तदृत्त्यादिविरोधादुपेत्यम् । यदाह
'हृषेल्लामसु' इत्यत्र 'हृषु अलीकइत्यय निष्ठायामनिट्, हृष तुष्टा-
वित्ययं सेट्, अनयोरुभयोरिदं ग्रहणमित्युभयत्र विभाषेयम्' इति ।
अत्रैव न्याये 'हृषु अलीकइत्ययमनिडिति । 'उदितो वा' इति
त्वाप्रत्यय इद्विकल्पविधानात् 'यस्य विभाषा' इति निष्ठायामनिट्,
हृष तुष्टावित्ययं सेट्" इति । वर्धमानोप्येवमाह ॥ १२१ ॥

रुष रोषे ॥ देवदत्ताय रुष्यति । 'ऋधद्रुहे'ति कोपविषयस्य-
प्रदानम् ॥ रुषा, रुषिष्य, रुषिष्व । रोषा, रोषिता । रोषिष्यति ।
रुष्यतु । अरुष्यत् । रुष्येत्, रुष्यात् । अरुषत् । रुषिषति । रुषिषति ।
रुषित्वा, रोषित्वा, रुषा, 'रलो व्युपधात्' इति सेट्, त्वासनोः क्त्वि-
विकल्पः । 'तीपसहे'ति तादात्रिद्विकल्पः । रुषितः, रुष्टः, 'रुष्यम-
त्वरे'ति निष्ठायामिद्विकल्पः । भावादिकर्मणोर्निष्ठायास्सेट्, 'उदु-
पधात्' इति क्त्विक्विकल्पो भौवादिकानामेवेति प्रागेवोक्तत्वादस्य न
भवति । इह के चित् रिष हिंसायां चेति पठन्ति । 'न रिष्यति न
व्यथते' इत्यादयश्च प्रयोगा दृश्यन्ते । आत्रेयमैत्रेयादयस्तु न पेटुः ॥ १२२ ॥

डिप क्षेपे ॥ डिप्यति । डिडेप, डिडेपिष, डिडिपिष्व । डिपिता ।
डिपिष्यति । डिप्यतु । अडिप्यत् । डिप्येत् डिप्यात् । अडिपत् । डिडे-
पिषति । डिडिपिषति । डिपित्वा, डिपित्वा । डिडिप्यते । डिडेपि ।
डिपयति । अडिडिपत् । अयं तुदादौ । चुरादौ तु सङ्घाते च । इह
क्वचित् 'ष्टूप समुच्छ्राये' इति पठ्यते, तदनार्थम् । 'स्त्यः प्रसारणमुच्च'
इति स्त्यायतेः पप्रत्यये पकारस्य उकारे सम्प्रसारणे दीर्घं स्तूपशब्द-
व्युत्पातनात् । अत एवात्रेयमैत्रेयादयोपि न पठन्ति ॥ १२३ ॥

कुप क्रोधे ॥ कुप्यतीत्यादि रुष्यतिवत् । इट् तु सर्वत्र नित्यः ।
देवदत्ताय कुप्यति । 'ऋधद्रुहे'ति कोपविषयस्य सम्प्रदानत्वम् ।
कुपमरणम् । 'अजेन्द्रे'त्यादौ निपातितः ॥ अयं भाषार्थश्च-
रादौ ॥ १२४ ॥

गुप व्याकुलन्वे ॥ गुप्यतीत्यादि । गोपयति । गुपयन्वति
शपि । गोपयतीति चुरादौ ॥ १२५ ॥

युप रूप लुप' विमोहने ॥ युप्यति । रुप्यति । लुप्यति, अनिद्रा-
रिकाया तौद्रादिकेन लिपिना माह्वयः नैदादिरुप्य लुप्यते इत्य-
स्यैव यज्ञादयः सेहेव ॥ १२६ ॥

लुभ गार्थ्य ॥ गार्थ्यमाकाङ्क्षा । लुभ्यति । लुलोभ, लुलोभिष्य । लोभिना,
लोब्धा । लोभिष्यति । लुभ्यतु । अनुभ्यत । लुभ्येन, लुभ्यात् । अनुभन् ।
लुनुभिषति । लुलोभिषति । लोलुभ्यते । लुलोब्धि । लोभयति । अनुनुभन् ।
लुभित्वा, लोभित्वा, लुब्धा । लुब्धः । तादौ 'लोपमहे' नैर्द्वन्द्वम् ।
सेटोः क्त्वामनेः 'रनेत्युपधात्' इति क्तिन्त्विकृत्यः । यस्य विभ'या
इति निष्ठाया नेट् । 'लुभो विमे हने' इति क्त्वानिष्ठयोर्नित्य सेट्-
त्व विमोहनार्थस्य तौद्रादिकस्यैव । भूवादेरवृत्तत्वात् लोभन इति भव-
तीत्यात्रेयः ॥ १२८ ॥

लुभ सञ्चलने ॥ लुभ्यति । लुलोभ । लोभनेत्यादि । श्यन्भा-
विभकारान्तानुरोधोपादस्येह पाठः । अहं तु द्युतादित्वादपि मिट्टः । न
चातोर्भादिति मिज्जनिवृत्त्यर्थ उपपद्यते, क्लेपादिरेनादयः तस्य रूपस्य
भाषित्वात् ॥ १३० ॥

णभ लुभ हिमायाम् ॥ नभ्यति, प्रणभ्यति । ननाभ, नेभतुः,
नेभिष्य, नेभिष्व । नभिता । तुभ्यति । तुलोभ । अनयोर्पीह पाठः तुभं-
रिव । इमावपि द्युतादौ क्त्वादौ च पठ्यते ॥ १३१-१३२ ॥

क्लिद्र आर्द्राभावे ॥ क्लिप्यति, चिक्रेद, चिक्रेदिय, चिक्रेन्य, चिक्लि-
दिव, चिक्लिद्रु । क्लेदिता, क्लेता । क्लेदियति, क्लेप्यति । क्लिप्यतु ।
अक्लिप्यत् । क्लिप्यत् । क्लिप्यात् । अक्लिपन् । विक्लिपति । चिक्लि-
त्सति । क्लेदित्वा, क्लिदित्वा । क्लिचः । चेक्लिप्यते । चेक्लेनि । क्लेद-
यति । अचिक्लिपत् । चिक्लिपम् । इगुपधनत्वे के, 'कृत्रादीना के द्वे

१ कौमुद्रासुटित मते पठ्यन्ते ।

२ श्यन्भात्रःनुरोधोपादिति ३ । पु पा ।

अथ स्वादयः ॥

षुञ् अभिषवे ॥ आ^१वृज एतदादयो ऽनुदात्ता उभयतोभावाः ॥
 अभिषव, सुपनपीडनस्नानसुरासधानादिः । तत्र स्नानेयमकर्मकः । सुनोति ।
 सुनुतः । सुन्वन्ति । सुनोषि । सुनोमि । सुन्वः । सुनुवः । 'स्वादिभ्यः शुः' ।
 शपोपवादः । 'ह्रशुवेः स्मार्वधातुक' इत्यजः दावगुणविषये श्नोस्कारस्य
 यण् । 'लोपश्चास्यान्यतरस्या भ्वोरि'ति वकारमकारादावसयोगपूर्वत्वा-
 त्पक्षे उकारलोपः । सुनोमीत्यत्र परत्वाद्गुणे उकाराभावाच्चाय लोपः ।
 अभिषुणोति, 'उपसर्गात्सुनोती'ति षत्व, सुषाव । सुषवतुः । सुषोथ । सुष-
 विथ । सुषवयुः । सुषव । सुषाव । सुषव । सुषुविव । क्तादिनियमादिट् ।
 यलि तु भारद्वाजनियमादिकल्पः । उवङ् अगुणवृद्धिविषये । अभिसुषाव ।
 'स्यादिष्वभ्यासेने'ति नियमादभ्यासस्य न षत्व, प्रकृतेस्त्वादेशप्रत्यय-
 यो'रिति षत्व, सोता । सोष्यति । अभिसोष्यतीत्यत्र 'सुनोतेः स्यस
 नो'रित्युपसर्गादि'ति षत्व निषिध्यते । सुनोतु । सुनुतात् । तातडो
 ङित्त्वाच्च गुणः । सुनुतां, सुन्वन्तु । सुनु । 'उतश्च प्रत्ययादसयोगपूर्वा-
 दि'ति हेर्लुक् । सुनुताम्, सुनुत । सुनवानि । आटि यणं बाधित्वा
 गुणः । असुनोत् । असुनुताम् । असुन्वन् । असुनोः । असुनवम् । असु-
 न्व । असुनुव । पूर्ववदुकारलोपः, पक्षे अभ्यषुणोत् । 'प्राक्सितादङ्व्यवा-
 येपी'ति षत्वम् । सुनुयात् । सुनुयाताम् । सुनुयुः । 'जुसि चे'ति गुणः
 'सार्वधातुकमपिङि'ति ङित्त्वाश्च प्रतिषेधेन नाप्राप्तिन्यायेन बाधते, न
 तु यासुटो ङित्त्वाश्चमपीति नात्र गुणः । सुनुयाः । सुनुयाम् ।
 आषिषि । सूयात् । सूयास्ताम् । 'अङ्गत्सार्वधातुकयो'रिति दीर्घः ।
 असावीत् । असाविष्टाम् । असावीः । असाविषम् । 'स्तुसुधूचि'ति
 परस्मैपदेषु सिच इट् । सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुनुषे । सुन्वे ।
 सुन्वहे । सुनुवहे । पूर्ववदगुणकारलोपौ । सुनुवे । सुषविषे । सुषुविद्धे ।
 सुषुविध्वे । 'विभाषेः' । सुनुवे । सुषुविषहे । सुषुविमहे । सोता ।

सोष्यने । सुनुताम् । सुन्वानाम् । सुन्वता, सुनुष्व । सुनवै । सुनवावहै ।
 असुनुत । असुन्वानाम् । असुन्वत । असुनुयः । असुन्वि । असुन्वहि ।
 असुनुवहि । सुन्वीन । सुन्वीयानाम् । आशिपि । सोषीष्ट । सोषी-
 यास्ताम् । सोषीदुम् । 'इणः षीध्वमि'ति मूर्धन्यः । असोष्ट । असो-
 पाताम् । असोष्टाः । असोषि । समृपति, समृपते । 'स्त्रौतिण्योरेवे'ति
 नियमाच्च पत्वम्, अभिसमृपनीत्य ओपमर्गादि त्यभ्यामस्य पत्व 'स्या-
 दि' नियमेन बाध्यते । एव तर्ह मुनेनेः स्यमनोरिति सनि पत्वनिषेधस्य
 किमुदाहरणम् । इदं समृपनेरन्त्यय, अतो लोपः, समूरिति । अत्र हि
 मनः पत्वस्यानिवृत्त्यात्मस्य सत्वे विमर्जनीये कृतत्वस्य मनोभावात्
 'स्त्रौतिण्योरेवे'ति न प्रवर्तते । एरुदेगविभक्त्ययेनास्ति सन्पण्वमिति
 'मुनेनेः स्यमनोरिति निषेधस्तु प्रवर्तते । सोष्यने । सोषुवीति ।
 सोषीति । सोषुतः । 'उपमर्गादि नि पत्वम् । 'मुनेनेः स्यमनोरिति निषे-
 धस्तु शितपा निर्दृशाच्च प्रवर्तते । अभिसोषीति, सोषुवीति । य'इनुगन्ता-
 त्सनीति गुणादादेशयोरभाविप्रत्यये अतोनापे पूर्ववत् पत्वस्यापि कृत्वाद्गु-
 त्वे वंरूपधाया दीर्घ इति दीर्घ । मावयति । असृपुवन् । मुगवपिपति ।
 ऐयन्तात्मनि स्त्रौती 'ति पत्व, सुन्वन् सुन्वान् । लटः शृशानचै । राज-
 मूयः । कर्मण्यधिकरणे वा 'राजमूये'ति क्यपि निषान्यते । आमात्रम् ।
 'आसृपुवपी'ति ण्यति धृष्टौ धातोस्तविमिनम्यैव त्यावदेशः । सोम सुन-
 वान्सोममुत् । 'सोमे मुज' इति भूने क्तिप् । सुत्वा । सत्वानौ 'सुयज्ञा-
 इर्वनिमि'ति भूते इवनिप् । स्त्रिया सुत्वरी, 'वनो र चे'ति डीवरेफौ ।
 सुन्वन्, सुन्वन्तौ । 'सुजो यज्ञसयेग' इति शता । अयमनडादेशः, यज्ञमान
 उच्यते । सुन्या । 'सज्जाया समजे'त्यादिना स्त्रिया वरप् । आसुतीदलो
 यज्ञा । शौण्डिकश्च । निवन्ता दृज क्रयामुपी नि मन्वरीये वनदि वन'
 इति दीर्घः । मुरा । 'सुसृधाष्ट'भ्यः ऋचि'नि ऋत् । मुरको ऽहि'वगेयः ।
 म्यूनादिषु मुराया अहावि'ति पाठात्कनि 'केण' इति द्वन्द्वः ॥ १ ॥
 पिञ् वन्थने ॥ सिनोति । सिनोषि । सिनोमि । मित्वः । मितुवः ।

सिषाय । सिष्यतुः । सिषयिथ । सिषेश । सिष्य । सिषाय । सिषय ।
 सिष्यिव । अत्रागुणवृद्धिविषये अजादावेरनेकाच इति यण् । सेता ।
 सेष्यति । सिनेतु । सिनु । सिनवानि । असिनेतु । सिनुयात् । आशिषि
 सीयात् । असैषीत् । असैष्टाम् । सिनुते । सिनुषे । सिन्वे । सिन्वहे ।
 सिनुवहे, सिष्ये । सिष्यिषे । सिष्यिवहे । सेता । सेष्यते । सिनुताम्, सिनुष्व,
 सिनवै । असिनुत । असिनुथाः । असिन्वि । असिन्वहि । असिनुवहि ।
 सिन्वीत । सेपीष्ट । असेष्ट । असेषाताम् । सिषीषति । सिषीषते ।
 सेपीयते । सेषयीति । सेषेति । साययति । असीषयत् । सितः ।
 सितवान् । सिनो यासः स्वयमेव । 'सिनोतेयासकर्मकर्तृकस्ये'ति वक्तव्येन
 निष्ठानत्वम् । यदा बध्यमानः पिण्डीक्रियमाणो यासो दध्यादिवशेन
 तत्रानुकूल्य प्रतिपद्यते तदा कर्मणः कर्तृत्वविपदायामय प्रयोग इति
 न्यासपदमञ्जर्यादौ । अनेकार्थत्वाद्वातोर्भक्षणमर्थ इत्यात्रेयः । केशेषु
 प्रसितः केशैरिति वा, 'प्रसितोत्सुकाभ्या वृतीया चे'ति वृतीयासप्तम्यौ ।
 सयः । अच् । परिषितः । परिषयः । 'परिनिविध्य' इत्यादिना सितस-
 यशब्दयोः बत्वम् । एवं निविध्यामपि । सेरुः । 'दाधेऽसी'ति रुः ।
 सेत्रं, 'दाम्नी'त्यादिना वृन् । सितो वर्णः । 'अज्जिष्टसिभ्यः क्त' इति
 सजाया क्तः । सितिमा, सैत्य, 'वर्णः दृढादिभ्यः ष्यञ्च'ति ष्यञिमतनिकौ
 भावकर्मणोः । सिता शर्करा । न सिता । असिता । असितेत्यत्र 'वर्णा-
 दनुदात्तादि'ति डीब्रनकारयो 'रसितपलिनयोः प्रतिषेध' इति निषेधः ।
 'हृन्दसि क्रमेके' भाषायामपीष्यतइत्यसिक्तीति क्लादेशङीपावपि पक्षे
 भवतः । सेतुः । 'सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्जुशिभ्यस्तुवि'ति तुन् ।
 सीरो लाङ्गलम् । 'शुपिचिमि दीर्घश्चे'ति क्रानि दीर्घः । सीरस्यदं
 तद्वहतीति वा सैरिकः । 'हलसीराट्ठगि'ति तस्येद विषये तद्वहति
 विषये च ठक् ॥ अयं व्यादावपि सिनाति सिनीतइति ॥ २ ॥

शिञ् निशाने ॥ तालव्यादिरयम् ॥ निशानं तीर्ण्यकरणम् ।
 शिनेति । शिनुते । शिशाय । शिश्ये । शेता । शेप्यतीत्यादि पूर्ववत् ॥ ३ ॥

दुमिञ् प्रत्यये ॥ मिनोति । मिनुते । ममौ । मिम्युः । मिम्युः ।
 ममाय । ममिय । मिम्युः । मिम्य । ममौ । मिम्यिष । मिम्यिम ।
 मीनातिमिनोतिदीडा ल्यपि च ल्येञ्चये ल्यपि च प्रागेव प्रत्ययान्ते-
 रात्वं तस्य चानैमित्तकत्वाच्च 'द्विर्वचनेर्च्' ति स्य 'न्विच' अन्टपत्ते
 'आतो लोप इटि चेत्याल्लोपः । मिम्ये । मिम्यिषे । मिम्यिवरे । माता ।
 मास्यति । मास्यते । मिनोतु । मिनु । मिनवानि । मिनुताम् । मिनुष्व ।
 मिनवै । अमिनोत् । अमिनुनम् । मिनुयात् । मिन्वीत । आशिषि
 मीयात् । मामीष्ट । यामुष्टि क्त्वावात्वम् । 'अङ्गस्माद्धातुरूपाः'
 रिति दीर्घः । अमामीत् । अमामिष्टाम् । आत्वे 'यममनमन्मि' ति
 सगिटौ परस्मैपदे । अन्यत्र अमास्त । अमामानाम् । मिन्मति । मिन्मने ।
 'इको भ्रलि' ति सन् क्रित्वा 'दञ्जनगमा मनी' ति दीर्घः 'मनिमिमेता'-
 सादेशे 'सम्यार्द्धधातुके' इति सम्य तत्वे 'अत्र लोपोभ्यामस्ये' त्यभ्यास-
 लोपः । मेमीयते । मेमेति । मेमयीति । मिनोनीति शिन्पा निर्वृशावात्व-
 म् । माययति । अमीमयत् । आत्वे पुक् । प्रमाय । 'न्यपि चेत्यात्वम् ।
 प्रमयः । इषत्प्रमयः । 'निमिमीनिया खनयोः प्रविषेध' इत्यन्वप्रवि-
 षेधः । मित्रिमम् । द्वितः क्रिः । 'क्रमश्च नित्य' मीरः शुषिचिमित्रा
 दीर्घश्चे' ति ऋन्दीर्घौ । मयने इति शपि प्रणिदाने । मानोति लुकि
 माने । मिमीते इति च श्लौ माने शब्दे च । मीयतइति श्यनि ॥ ४ ॥

चिञ् चयने ॥ चिनोति । चिनुते । चिकाय । चिक्यतुः । चिकेथ ।
 चिक्रियथ । चिक्रियथ । 'त्रिभाषा चेरि' ति मन्निटोः परयेभ्यासा-
 त्यस्य वा कुत्वम् । अन्यदा चिचायेत्यादि । चिक्ये । चिक्ये इत्यादि ।
 चेय्यति चेय्यते । चिनोतु । चिनुताम् । अचिनोत् । अचिनुत । चिनुयात् ।
 चिन्वीत । आशिषि चीयात् । चेपीष्ट । अचेपीत् । अचेष्ट । चिचीरति ।
 चिकीरति । लिटि च कुत्वविकल्पः । चेयेति । चाययति । चापयति ।
 'चिम्फुरोर्णाञ्चि' त्यात्वपत्ते पुक् । प्रणिचिनोति । 'नेर्गदे' ति णत्वम् ।
 निक्कायः । 'पाय्यमावाये' त्यादिना निवासि एयदायादेशावादिक्त्व
 च निपात्यते । संचायः क्रतुः । परिचाय्योभिः, उपचाय्यश्च । 'क्रतौ

कुण्डपायसचाय्यौ 'अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसूत्रा' इति एयदाया-
 देशयोर्निपात्यते । निवासादिभ्योन्यत्र यति चेषमित्यादि । चित्योगिनः ।
 अग्निचित्या वर्तते । 'चित्याग्निचित्ये चे'ति कर्मणि भावे च यथाक्रम
 निपात्यते । तत्राद्यस्य यति तुक्, अन्यस्य ये तुक्, तेनाजोदात्तत्वं
 भवति । अयं स्वभावात्तर्जनीलिङ् । अग्निचित् । 'अग्नौचेरि'ति कर्म
 एयुपपदे भूते क्तिप् । श्येनश्चीयते श्येनचित् । श्येनशब्दस्तत्सदृशेषुका-
 चये उपचारेण वर्तते । 'कर्मण्यनाख्यायामि'ति कर्मण्युपपदे तस्मिन्ने-
 वार्ये ऽन्याख्याया त्रैकालिकः क्तिप् । आख्यायहण रुड्यर्थ, श्येनाभ्यर्थ
 इष्टकाचयः श्येनचिच्छब्दोच्यते । निश्चयः । 'ग्रहवृद्धिनिश्चिगमश्चे'-
 ति निश्चेरप् । अचोपवादः । एकस्तन्दुलनिचाय इत्यत्र 'परिमाणा-
 ख्याया सर्वभ्य' इति घञ् । कयमेकोपि तय निश्चय इति, पदसंस्का-
 रेणेति भागवृत्तिः । पुष्यश्चाय । 'हस्तादाने चेरस्तेय' इति घञ् ।
 हस्तादानग्रहणेन प्रत्यासत्तिर्लभ्यते । अन्यत्र वृत्तशब्दरे फलप्रचय करो
 तीति अजेव । अस्तेयइति इच्छात्त्रौरे प्रत्यासत्तावप्येरेव चौर्येण
 पुष्यप्रचय इति । निचीयन्तेऽस्मिन्निति निकायः । ग्रामग्रहादिः । आचीय-
 न्तेस्मिन्निष्टका इति आकायेगिनः । चीयन्तेस्मिन्नस्यादीनीति कायः
 शरीरम् । गोमयानामेकत्र राशीकरणं गोमयनिकायः । 'निवासचिति-
 शरीरोपसमाधानेष्वेव क' इति घञादिकत्व च । निवसन्त्यस्मिन्निति
 निवासः । चीयते ऽसौ चितिः शरीर, पाण्यादिसमुदायः । उपसमा-
 धानं राशीकरणम्, असौ धात्वर्थः, अन्यानि प्रत्ययार्थस्य कारकस्यो
 पाधिभूतानि । इष्टकनिचय इत्यत्र च ग्रहणमात्रं विवक्षितं नोपसमाधानमि-
 त्यजेव भवति । भिद्युनिकायः, 'सघे चानौत्तराधर्ये' इति घञ्, आदिकत्व
 च, प्राणिना समूहः सघः, स च द्वेधा भवति एकधर्मसमावेशेन औत्त-
 राधर्येण च, तत्रानौत्तराधर्यइति पर्युदासादितरो गृह्यतइत्यौत्तराधर्ये
 ऽजेव, सूकरनिचय इति सघस्य प्राणिसमुदायलक्षणत्वात् । प्रमाणा-
 प्रमाणसमुच्चय इत्यत्राप्यजेव । चितिः । क्तिप् । द्विचितीकः । 'शेषादि-

भाये' नि कप् । 'चिनेः कपी' नि पूर्वपदस्य द्योषः, आचिन सभवत्यवह-
रति पवति वा आचिर्नाम । अ'चिनेक । 'आटकाचिनपात्रात्' गोन्य-
तरस्या' मिति खट्त्रो । अ'चिनेक आचिनः, अ'चिर्नाम । 'द्विगो-
पृश्चे'ति सभवत्यादिषु षट् चकारान् नयः । दकारे' दीपयः । अत्य-
तरस्यादकानुत्वा च 'अप्रवृप्'द्विगोरि'त्यस्य नुक्त । 'द्विगो'रिति
ङीषो'परिमाणचिन्ने नि निषेधः । 'एत्वयोदिभानम'मयाव नुक्त ।
शाकटो भार आचिनः । चित्रम् । श्रौणादिकः कः । चित्रायते । 'नमो-
वरिश्चित्रे' इति चित्रम् । चित्रम् आरम्भे' इति वृत्तिः । इत्त्वा-
त्तद् ॥ ५ ॥

स्मृञ् आच्छादने ॥ स्मृणोति । स्मृणुतः । स्मृन्वन्ति । स्मृणोषि ।
स्मृणोमि । स्मृन्वः । स्मृणुवः । स्मृणुते । स्मृणुरे । स्मृन्वः । तस्मार ।
तस्मरतुः । तस्मरः । तस्मर्थः । तस्मर । तस्मार । तस्मरिव । तस्मरे ।
तस्मरानि । तस्मरिरे । तस्मरिद्वे । तस्मरिध्वे । तस्मरे । तस्मरिवहे ।
स्मृदितियमादि । य 'त्यच'ताम्यदि'ति निषेधः अकारान्तत्वाच्चित्यम् ।
'अनश्च मयोगादेरि' इति लिटि गुणः । वृद्धिर्वये नु पूर्वविप्रतिषेधेन
वृद्धेव । कृते वा गुणे 'अन उपधाया' इति वृद्धिः । स्मर्ता । स्मरियति ।
स्मरिष्यते । 'अट्टोः स्वे' इतीट्, स्मृणोतु । स्मृणु । स्मृणवानि । स्मृणु-
ताम् । स्मृणुष्व । स्मृणुवै । अस्मृणोत् । अस्मृणुत । स्मृणुयात् । स्मृणुवीत ।
आशिषि स्मर्यात् । मयोगाद्भकारान्तधानुत्वा द्वुगोतिमयोगाद्भोरि'ति
शयक्तेर्यकारादावमार्ध'नुक्ते लिङि च गुणः । शस्त्वस्य न सभवति ।
स्मृषीष्ट । स्मरिषीष्ट । 'निङ्मिचे'रात्मनेपदे'ष्व 'त्यधिकृत्य' अतश्च
मयोगादेरि'तीद्विकल्पः । तत्रेडभावे 'इश्चे'ति निङ्मिचोः कित्वाच्च
गुणः । अस्तार्पात् । अस्तार्ताम् । अस्तृन । अस्तृयताम् । अस्तरिष्ट ।
अस्तरिषाताम् । निङ्मिचे'रात्मनेपदे'ष्व 'त्यधिकृत्य' अतश्च
'इको भलि'ति मनः कित्वा' दृक्कने ति दीर्घः । 'अन इट्ठातो'रिति त्वे
रपरत्वे 'हलि'चे तीक उपधाया दीर्घः । तास्तर्पते । 'यङि'चे'ति
संयोगाद्भकारान्तत्वेन गुणः । तस्मर्ति । तस्मरीति । रिपीकारप्युदाहार्यः ।

प्रोपसृष्टादृजपौ, घञि 'उपसर्गस्ये'ति दीर्घः । आच्छादनादन्यत्रावेव ।
 अत्रापि बाहुलकात् क्तिन्विषये ऽवेव भवतीति हरदत्तः । प्रवरा गौ-
 रिति । 'अवदपस्ये'त्यादौ वर्येति निपातन क्रियादिकस्येति स्थित-
 मिति इह नोदाहृतम् । वर्म । मनिन् । वर्मी । व्रीह्यादिः । वर्मिणा
 ऽपत्य वार्मिन्कायणिः । वाकिनादिषु 'नर्मिन्गर्मिणेर्नने'परत्वे ।
 ति पाठात्किञ् कुगागमो नलोपश्च, वर्मणा सनह्यति सवर्मयति । 'सत्या-
 पपाशे'त्यादिना णिच् । अभिधानशक्तिस्वाभाव्यादय सनह्यतीत्यर्थे ।
 अपहारवर्मणोपत्यमापहारवर्मणः । 'न मपूर्वा ऽपत्ये ऽवर्मण' इति
 प्रकृतिभावनियेधस्तत्रैवावर्मण इति पर्युदासाच्च भवतीति 'अवि'ति
 प्रकृतिभाव एव भवति । वरूथो रथगुप्तिः । 'जृवृञ्भ्यामूय'चित्पूयन् ।
 वर्षम् । 'वृवृदिहनिक्मिकपिभ्यः स' इति सः । वर्णः । 'चउये-
 न्दे'ति सूत्रे वर्णशब्दस्य पाठोनार्थः, 'कृवृजृसिदृपन्यमिस्वपिभ्यो
 निदि'ति नप्रत्ययेन सिद्धत्वादित्युज्ज्वलदत्तः । 'खुरभद्रोप्रभैरभैलशुक्ल-
 शुक्लतीव्रवर्णैरामाला'इति रन्प्रत्यये तद्वेकस्य णत्व निपात्यते ।
 वर्णी ब्रह्मचारी । 'वर्णादृह्यवारिणी'ति मत्वर्थीय इनिः । ब्राह्म-
 णवर्णी । 'धर्मशीलवर्णान्ताच्चे'ति मत्वर्थीय इनिः, सिद्धे प्रत्यये
 पुनर्विधानं ठनादिनिवृत्त्यर्थम् । वरुणः । 'कृवृदारिभ्य उनन्' ।
 वरुणानी । 'इन्द्रवरुणे'ति डीपानुकौ पुंयोगे । मित्रावरुणौ देवते
 अस्य मैत्रावरुणः । 'देवताद्वुद्धे चे'त्यानङ् । पूर्वपदस्य 'सास्य देव-
 ते'त्यण् । 'देवताद्वुद्धे चे'त्युभयपदवृद्धिर्दीर्घाच्च वरुणस्येति निषि-
 ध्यते । वरुणदत्तो नाम कश्चित् । अनुकम्पिनोसौ वरुणिकः । वरु-
 णिलः, वरुणदत्तकः । 'बहुचो मनुष्यनामष्टज्वा' 'घनिलचौ चे'त्य-
 नुकम्पाया ठच्घनिलकनो विधीयन्ते । 'शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमा-
 दीनां तृतीयादि'ति ठजादौ प्रत्यये तृतीयादच ऊर्ध्व लुप्यते । वर्णुर्नदः ।
 'अजित्वरीभ्यो निदि'ति नुप्रत्ययो नित् । वरत्री । 'वृजश्चिदि'ति अचन्
 प्रत्ययश्चित् । वृङ् संभक्ताविति ऋयादौ । तथा दीर्घान्तो जिदजिच्च वर-
 णार्थस्तत्र । वृञ् आवरणइति चुरादौ ॥ ८ ॥

धुञ् कल्पने ॥ अनुदान् । धुनोति । धुनुते । दुधाव । दुधाय ।
 दुधविष । दुधुवे । दुधुविषे । धोतानि । धोतानि । धोप्यति । धोप्यते ।
 धुनोति । धुनुताम् । अधुनोत् । अधुनुताम् । धुनुयात् । धुन्वीत् ।
 आशिषि धूमात् । धोपीष्ट । अधोपीत् । अधोष्ट । दुधुपति । दुधु-
 पते । दोधुपते । दोधोति । धावयति । अधुधवत् । धुन्वा । धुनः ।
 धुनवान् । धुनिः । वञ्चनकादिप्रत्यये निन् क्रिञ् । तथा च भोजो ऽम्-
 सूत्रम् । धु'नञ्प्रतिष्ठाञ्चरिस्वरिभ्यः क्रि दिनि । अत्र स्वामी तु
 ह्रस्वान्तममु पठित्वा प्रयोगेन 'दु'र्लभ्यन्तमाह । शिवस्वामिकाश्यसौ तु
 दीर्धान्तमाह । उभयनरोति चान्द्रा इति सुधाकरः । दीर्धान्तस्य तेनैव
 प्रयोगो दर्शितः । कथं धुनोति दादुर्गवन्निर्गिरि कोतिमुञ्जे-
 प्विति । तत्र दीर्धान्तपाठे स्वर यद्विदुर्वेनेद्विकल्पः । न्कारान्तोस्तु पुर-
 स्तात्प्रतिषेधकाण्डाभ्यन्तमर्थादुत्वा धुनः । दुधुपनीत्यादौ 'श्युकः-
 किति' 'मनि यहगुहोश्चे'त'ण्प्रतिषेधो भवति । निटि त्वमुं प्रतिषेध
 बाधित्वा क्कटिनिघनम् त्रय्यनिट् । न च क्कटिनिघनस्य स्वरव्यादि-
 विकल्पः परत्वाद्वाधक इति मन्तव्यम्, तस्य 'श्युकः किति' त्यनेन
 पुनरपि बाधयमङ्गात् । धुनोति । धुनुते । दुधुवे इत्यादि ह्रस्वान्तवत् ।
 धोता । धविता । धोप्यति । धविप्यति । धोप्यते । धविप्यते ।
 धुनोति । धुनुताम् । अधुनोत् । धुन्वीत् । धूमात् । धोपीष्ट । धवि-
 पीष्ट । अधोपीत् । अधोविष्टाम् । अधविष्ट, अधोष्ट । 'स्तुमुधुञ्भ्य'
 इति परस्मैपदे सिचो निन्यमिष्ट । अन्यत्र सर्वत्र स्वाव्यादिनेद्विकल्पः ।
 धूनयति । 'धुञ्प्रोत्रोर्नुभक्त्य' इति णौ नृक् । दीर्धान्तः श्यादौ युजादौ
 च । धू विधूननइत्यञिन् तुदादौ ॥ स्वादय उभयतो भाषाः वृञ्वर्जम-
 नुदात्ताः ॥ तस्यानुदात्तमध्ये पाठः चकारान्तोभयतोभाषानुरोधेन ॥ ६ ॥

उभयतोभाषानिट्प्रकरणादृत्रमुत्का तदनुरोधेनोकारान्तमनिटं पर-
 स्मैपदिनमाह ॥

दुदु उपतापे ॥ दुनोतीत्यादि धुनोतिवत् । दावः । 'दुन्योरनु-
 पसर्ग' इति कर्त्तरि णः । दव इति भौवादिकादपि । तस्य नात्र यह

इति तत्रैवोक्तम् । 'समि युद्रुदुव' इति घञ्विधौ दुसाहचर्यान्निरनुबन्ध कत्वाच्च दवतेरेव ग्रह इत्यस्याबेव भवति सन्देह इति । दवयुः । 'द्वितोयुच्' । दुत्वा । दुतः । दुतवान् । ल्वादौ 'दुग्धोर्दीर्घश्चे' त्यत्र यदुक्त न्यासे टुदु उपतापे इति । तदसत्, यदाह हरदत्तः । दु दु गतावित्यस्य दीर्घहण न टुदु उपतापइत्यस्य सानुश्रव्यकत्वात् । तथा च माघः । मृदुतया दुतयेतीति ॥ १० ॥

हि गतौ वृद्धौ च ॥ ग्रहिणोति । 'हिनुमिने' ति उपसर्गस्यान्वि-
मितादुत्तरस्य हिनुनकारस्यादृश्यवायेपि णत्व, तच्च ग्रहिणु इत्यादौ हिनु-
शब्दे सावकाशमपि एकदेशविज्ञतस्यानन्यत्वः द्विजनेपीह भवति ।
जिघाय । जिघ्यतुः । जिघ्युः । जिघयिष्य । जिघेय । जिघ्य । जिघिष्य ।
'कुहोश्चुरि' त्यभ्यासस्य कुत्व भ्रकारः, तस्याभ्यासे चर्च' ति ज
कारः । परस्य 'हेरचडी' ति कुत्व घ्रकारः । हेता । हेय्यति । ग्रहि-
णोतु । प्राहिणोत् । ग्रहिणुयात् । हीयात् । अहीणीत् । जिघीयति ।
जेघीयते । जेघेति । हाययति । अजीहयत् । अचडीति वचनाच्च
कुत्वम् । इदमेवाचडीति वचन चडेऽन्यत्र एयधिकस्यापि कुत्वज्ञापकम् ।
तेन प्रजिघाययिषतीत्यत्रापि कुत्व भवति । सहित, सहितम् 'समो वा हि
ततयोर्' ति मलोपविकल्पः । व्यञ्जन्तस्य नित्य मलोपस्येयमाणत्वात्सा-
हित्यमित्येव भवतीत्यात्रेयः । देवदत्ताय हित भूयाद् देवदत्तस्येति व ।
'चतुर्थी चाशिष्यायुष्ये' त्यादिना षष्ठीचतुर्थ्या । 'चतुर्थी तदर्थार्थव-
लिहिते' ति समासविधौ कैयटे 'चतुर्थी चाशिषी' ति हितयोगे या
चतुर्थी तदन्तस्य समासो न भवति, समासाद्वाशिषोऽनवगमादिति
के चिदाहुरिति । अरोचकिने हितमरोचकिहितमिति हितयोगे
चतुर्थी वक्तव्येति चतुर्थी, 'चतुर्थी तदर्धे' ति पक्षे समासः । सुधाकरस्तु
चान्द्रानुसारेणानाशिष्यपि षष्ठीचतुर्थ्या द्वे भवत इत्याह । तद्वृत्तिका-
रस्य नेष्टम् । यदाह 'हित भक्षा' इत्यत्र, 'ननु हितयोगे चतुर्थ्या
भविष्य, तत्र कथं षष्ठ्यर्थे प्रत्ययो विधीयते, एव तर्हि सामर्थ्याद्विभ-
क्तिविपरिणामो भविष्यतीति । भाष्यमपि 'हितं भक्षा' इति चतुर्थ्या-

निर्देशः कर्तव्यः, इतरथा अनिर्देशो भवति, हिनगच्छये मे चतुर्थी
विधीयते सा प्राप्नोति, तर्हि चतुर्थीनिर्देशः कर्तव्यो न कर्तव्यः, गव
वक्ष्यामि हिन भक्ष्यस्तदस्मै ननो दीयते त्रियुक् तदस्मै इतीति । कैय-
टोपीतरथा हीति, यदि चतुर्थी न निर्दिश्यते तदा प्रकृताया अस्म्येति
पश्याः सबन्धायोगादिहानुपम्यानाम्प्रात्ययार्थाः निर्दिष्ट स्यादित्यर्थ
इति । सहितोक्तः । 'सहितमफलजगवामादेश्वे' त्युत्तररदत्तसहित-
ताद्यादेश्वप्रत्ययः स्त्रियाम् । सहितोक्तः । 'सहितमहाभ्याज्वेति वक्त-
व्य' मित्युद्ध । एकदेशविज्ञानस्यानन्यत्वात्पुर्वगतौ मिद्रे वचनमिदं हितेन
मह वर्त्तने सहितमिति । सहितशब्दव्युत्पत्तादुद्धृत्य, प्रागप्येनन्मवमुक्तम् ।
हयः । पचाद्यच् । हयो । गौरादित्वान्डीप् । इतिः । 'उत्तिष्ठन्ती' त्या
दिना क्तिनि निपात्यते । हेतुः । 'कमिमनी त्यादिना तुः । अत्रेन
हेतुना वसति, अत्राय हेतवे, अत्राट्टेताः, अत्रस्य हेताः, अत्रे हेता-
विति वा । 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वाना प्रायदर्शन मिति सर्वा
विभक्तयः । प्रायदर्शनादमर्चनाम्, प्रथमाद्विर्नाये न स्तः । सर्वनाम्बन्तु
सर्वं इत्युद्धृष्टि' त्यत्र कैयटे स्थितम् । ११ ॥

पृ प्रीतिः ॥ पृणोति । पपार । पप्रत् । पप्रथ । पप्र । पप्रिव ।
पता । परियति । पृणोतु । अपृणोत् । पृणुयात् । प्रियात् । अप्रार्थोत् ।
पुपूर्यति । पेप्रीयते । पारयति । अपर्षापरन् । प्रियतइति श्यनि गतम् ।
पिपतीति श्लै ॥ १२ ॥

स्पृ प्रीतिपालनयोः ॥ प्रीतिचलनयोरित्यन्ये । चलनं जीवन-
मिति स्वामी । स्पृणोति । पस्पार । पस्पथ । स्पयः शेष । 'अनश्च
सयोगादे' रिति किति लिटि गुणः । स्पृतेत्यादि ॥ स्पृ इत्येके । स्पृणो-
तीत्यादि । 'आत्स्पृदृत्वरे' त्यत्र वृत्तौ स्पृ चिन्तायामित्युपपादनादस्ये-
त्वमेव न भवति, असिम्हरदिति । स्पृणानिस्पृणानी इमौ ह्रान्दसा-
विति पारायणे । इमैः पृणोतिश्च त्रयश्छान्दसा इति स्वामिस्मृत्यपै ॥ १३ ॥

आप् प्रीत्याप्तौ ॥ आप्नोति । आप्रुतः । आप्रुवन्ति । आप्नोषि ।
आप्नोमि । आप्रुवः । 'लोपश्चास्ये' त्युकारलोपः मयोगपूर्वत्वाव भवति ।

‘हुश्नुवोः सार्वधातुक’ इति यण्य न्योगपूर्वस्य यजादा ‘वचि श्नुधात्व’-
 त्युवङ् । आप । आपतुः । आपिथ । आपिव । क्रादिनियमादिट् । ‘उप-
 देशेऽत्वत’ इत्यत्रात्वत इति तपरकरणाच्च यलीणिनषेधः । यचाय
 निषेधस्तत्र भारद्वाजनियम इति विकल्पोपि न भवति । आप्ता ।
 आप्स्यति । आप्रुहि । ‘उतश्च प्रत्ययादि’ ति हेर्लुक् सयोगपूर्वत्वाच्च
 भवति । आप्रवानि । आप्रोत् । आप्रयात् । आशिषि आप्यात् । आपत् ।
 लटित्वात् ह्लेरङ् । ईप्सति । ‘आप्ञ्जष्टृध’मीदि’ तीत्वम्, अभ्यासलोपः ।
 आपयति । माभवानापिपत् । कृते णौ चङि ह्रस्वत्वे पश्चाद् द्वितीयस्यै-
 काचः पिरव्वस्य द्विर्वचनम् । प्रापय्य । प्राप्यः । एयन्तात् त्कि ङ्को
 ल्यपि ‘विभाषा’ इति पञ्जे ह्येयादेशः, अन्यदा लोपः । आप्यम् ।
 एयत् । ‘पोरदुपधादि’ त्यत्र तपरकरणाच्च यत् । आप्तिः । ‘क्तित्रा-
 वादिभ्य’ इति क्तिन् । जीविका प्राप्तः प्राप्तजीविकः, जीविकाराप्त
 इति वा । ‘द्वितीयाश्रिते’ त्यादिना ‘प्राप्तापन्ने च द्वितीयये’ति च
 समासः । प्राप्तापन्नेत्यत्र लिङ्गविशिष्टपरिभाषया प्राप्ताशब्दस्य समा-
 सेपि प्राप्तजीविक इति । तत्र ह्यकारः प्रश्लिष्यते । प्राप्तापन्ने अ चेति,
 सौत्रत्वाच्च प्रकृतिभावः । एतत्पदगतावप्युक्तम् । आपः, ‘आप्तेर्ह्र-
 स्वश्चेति क्तिप्, ह्रस्वः । ‘अप्तृत्रि’ त्यादिना सर्वनामस्थाने दीर्घः,
 अद्विः ‘अपो भी’ ति भकारादौ तकारे जरत्वम्, ‘अङ्गाधिकारे तस्य
 च तदन्तस्य चे’ ति दीर्घतत्वे तदन्तेपि भवतः, स्वापः, स्वाद्विरिति ।
 द्विधा गताः परितो गता अन्तर्गता आपो यस्मिन्द्वीपम्, परीपम्,
 अन्तरीपम् । ‘द्व्यन्तरूपसर्गेभ्यो ऽप ईदि’ त्यादेरीकारादेशः । अक्षूर-
 व्यूरि’ त्यकारः समासान्तः । ईत्वमनवर्णान्तादित्युक्तत्वात्प्रापमित्यादौ
 न भवति । समापो नाम देवयजनमित्यत्र ‘समाप इत्वप्रतिषेध’ इती-
 त्वाभावः । अत एव निर्द्वैशा ‘दन्येयामपि दृश्यत’ इति वा दीर्घः । ‘अव्य-
 यं विभक्तिसमीपे’ति निर्द्वैशात्समीपमित्यपि भवति । यद्वा समापशब्दः
 समा आपो यस्मिन्निति समशब्देन व्युत्पाद्यः । अनूपम् । ‘ऊदनोर्देशे’

इत्यप आदेनकार अदेगेऽन्वीय मण्ड्रे यद् द्वीप तत्र भवति द्वैष्यम् ।
 'द्वीपादनुममुद्र यज्ञि ति शैशिको यज्ञः । अनुममुद्रमिति मज्जमयेयपी
 भावः । 'यत्रजोति व्यत्रापन्ययत्रे' यज्ञणादस्य बहुषु नुगभावः द्वैष्या
 इति भवति । अनुममुद्रमित्युक्तत्वादयत्राणि द्वैष इति भवति । द्वैषा-
 यनो व्यामः । नडादित्वात्फक् । द्वीपरश्चेन द्वीपस्यो दृष्टिर्भवति ।
 अनन्तरापत्येष्यस्मिन् गोत्रत्वमारेयान् । त्रिषु द्वे आप्यमन्त्रमित्यत्रा-
 प्यशब्दो मयदर्थे दृश्यते । तथाऽपा करणेष्वाप्या परमाणव इति,
 अत्र प्रत्ययो न दृश्यते । तथा च स्वामी । आप्य तु लस्यादिति ।
 परिपूर्वायं रत्तगेपि । तथा च भवभूति । पर्याप्तोऽनु मुद्रन महभाग
 इति ॥ अय युजादौ च ॥ १४ ॥

शक् शक्तौ ॥ शरोति । शक्नुवन्ति । शक्नुहि । अशक्तोऽन् । शक्नु
 यात् । शेषं शक्यतिवत् । लुङि लट्दिन्वाद्दङ्, अशक्दिति । विद्यासु
 शिवते । 'शिक्षेर्ज्ञासायामिति तङ्, विद्यादिभ्ये ज्ञाने शक्तौ भवि-
 तुमिच्छतीत्यर्थः । शक्तौ घटः, कर्तुं शक्तिर इति वा । मौनायाः कर्मणि
 निष्ठाया शक्तिरितिच्छन्ति विकल्पेनेर्नाद्विकल्पः । 'विभादा भावादिक-
 र्मणोरित्यत्र हरदत्तः । यद्यपि शक्तिः देवलोऽकर्मकस्तथापि तुमुवन्त-
 षाव्यक्रियाविषयत्वे सकर्मको भवति, तथा च कर्मणि लाटयोपि दृश्य-
 न्ते । अयं योगः शक्योवक्तुमिनीति । शक्यम् । 'शक्तिमहोश्चेति यत ।
 शकलम् । 'शक्तिशम्योर्निदि'ति कलप्रत्ययः । शक्तः । 'स्फायितज्वी'ति
 टः । शक्तः प्रियवदः ॥ शक्यादिभ्यः क्त इत्युज्जितः क्तः ॥ १५ ॥

राध साध ससिद्धौ ॥ राधोति । राधुवन्ति । राधुवः ।
 राधोतु । राधुहि । अराधोत् । राधुयात् । शेषं राध्यतिवत् । हिमार्दन्ते
 तु 'राधो हिमायामिति किति लिटि थलि च सेच्चेत्वाभ्यामलोपौ ।
 अपरेधतुः । अपरेधुः । अपरेधियेयादि । तथा मन्यपि राधो हिमायां
 मन्यच्च इत्थल्लय इति चत्त इम्भावेभ्यामलोपे स्तोर्नि सलोपे च प्रति-
 रित्सनीति । साधोति । समाध । समाधतुः । समाधिय । समाधिव ।
 क्रादिनिधमादिद्विकल्पो न भवति, तस्य त्वत्रन्तविषयत्वात्, साद्धा ।

साध्नात् । असाध्नात् । साध्नुयात् । साध्यात् । असात्सीत् । असाद्वाम् ।
 सिपात्सति । 'आदेशप्रत्ययघोरिति' पत्वम् । सासाध्यते । सासाद्वि ।
 साधयति । असीषधत् । कालापास्त्वषोपदेशं पठन्ति । तत् षोपदेशलक्ष-
 णविरुद्धम् । साधनः । अयन्ताबन्धादित्वात् ल्युः । साधुः । 'कृपावाजी'त्यु-
 ण् । मातरि साधुः । 'साध्वसाधुप्रयोगे सप्तमी वक्तव्ये'ति सप्तमी, अनर्चा-
 र्थमिदं वार्तिकमर्च्चायां तु 'साधुनिपुणाभ्यामर्च्चायामि'त्येव सिद्धं, तस्मा-
 देवाचार्च्चाग्रहणं निपुणार्थं सपद्यते । साधुर्भृत्यो राज इत्यत्र भृत्यापेक्षया
 षष्ठी न साध्वपेक्षयेति वाक्यार्थज्ञा आहुरिति कैयटादौ प्रतिपादिनम् ।
 अप्रतिरिति वचनात्साधुर्देवदत्तो मातरं प्रतीत्यत्र न भवति । 'अप्र-
 त्यादिभिरिति वक्तव्य'मिति वार्तिकम्, तत्रादिग्रहणेन लक्षणेभ्यंभूतेत्यत्र
 प्रतिना सहोपात्तयोः पर्यन्वैर्यहः । दुनोऽग्निप्रभृन्ने, नुदानाः परस्मै-
 भाषाः ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ सेट आह ॥

अशू व्याप्तौ सघाते च ॥ अशुते । अशुवाते ॥ अशुवते ।
 अशुपे । अशुध्वे । अशुवे । अशुवहे । 'शादि'ति तवर्गस्य शुचत्वनि-
 षेधः । आनशे । आनशाते । आनशिषे । आनत्ते । आनशिध्वे । आन-
 क्ष्ण । आनशिवहे । आनश्वहे । आनशिमहे । आनश्महे । ऊदित्वादि-
 द्विकल्पः । भलि'ग्रश्चा'दिना पत्व, 'पठोः क सि', 'ष्टुना ष्टुरि'ति
 कत्वपत्वे यथायोगम् । 'अत आदेरि'त्यभ्यासस्य दीर्घत्वे ततः परस्या'श्नो-
 तेश्वे'ति नुडागमः । अष्टा । अशिता । अक्ष्यते । अशिष्यते । अशुताम् ।
 अशुष्व । अशुत । अशुथाः । आशुवि । अशुवीत । अशुवीथाः ।
 अशुवीयात् । आशिषि अशिषीष्ट । अक्षीष्ट । आशिष्ट । आष्ट ।
 आशिषाताम् । आक्षाताम् । 'भलो भली'ति सिजलोपे षत्वष्टुत्वे ।
 अन्यत्र पत्वे कत्वम् । आशिषिपते । 'स्मिपूङ्ग्वञ्जशां सनी'ति नित्य-
 मिट् । आशाशयते । 'सूचिसूची'त्यादिना यङ् । तत्र ह्यश्नोतेरश्ना-
 तेश्च ग्रहणमुक्तं पदमञ्जर्यादौ । एवं पारायणादौ आत्रेयादावपि ।

यङ्नुक्ति आटीत्यादि, अटतिवन प्रक्रिया । अट्टा । अटित्वा । अट्टः ।
 अट्टवत् । 'यस्य विभाषे'त्यनिट्त्वम् । रगता । 'अगे रग चे'ति पुञि रशा-
 देशः । आशुः । व्रीहिविशेषः । कृवापार्जा'त्यादिनेत्यान्वयः । शीघ्र-
 पर्यायस्त्वयमन्वयम् । श्वगुरः । 'शावगोराजा'विति शुगलउत्तरपदे
 उरत् प्रत्ययः । आगुरयायः शुगलः । श्वगुर्यः । 'राजश्वनु'अदिति
 अपत्ये यत् । श्वगुरः । 'श्वगुरस्ये'काराकारयोर्लोपश्चे'त्युक्तराकारयो-
 र्लोप ऊङ्प्रत्ययश्च । श्वशृश्च श्वगुरश्च श्वगुरौ । 'श्वगुर' श्वन्वेति पक्षे
 श्वगुरस्य शेषः । अत्तरत् । 'अगेः सरत्वि'ति सरत् प्रत्ययः । अटन् ।
 सण्यशूल्या तुट् चेति कर्त्तिन्, तस्य तुडागमः । अटो, अट्टाभिः । अट्टाभ्यः ।
 अट्टानाम् । अट्टामु । 'अट्टन आ विभक्तावि'ति पक्षे आकारः ।
 'अट्टाभ्य औशि'ति जग्गमोरौभावः । अत्र नन्वर्थमट्टन इति वक्त-
 व्ये अट्टाभ्य इति निर्द्वेष्टदृष्टन आत्वपक्षे एवौशभावः । अयमेव निर्द्वेष्ट
 आत्वविक्रम्ये लिङ्, तेनाभावे जग्गमोः 'पङ्क्त्यो लुगि'ति तुक्कट्टेति
 भवति । 'अङ्गाधिकारे'तस्य तदुत्तरपदस्य चेति परमाट्टेति भवति ।
 आत्वमण्याङ्गमिति तत्रापि पूर्ववन्नटन्विधिर्दृष्टव्यः । अट्टावक्रः ।
 'अट्टनः सत्तायामि'त्युत्तरपदे दीर्घः । अट्टाभिर्गाभिर्युक् शकृत्प्रकारम् ।
 'गवि च युक्ते'भाषायामट्टनो दीर्घ इति दीर्घः । अट्टाविशतिः । द्यु-
 ट्टनः संख्यायावबहुव्रीह्यगीत्ये'रि'त्यगीतिवर्जिते संख्यायामुत्तरपदे दीर्घः ।
 अबहुव्रीहीतिवचनादट्टनवा इत्यत्र न भवति । 'प्राक् शतादि'ति वच-
 नादट्टनमित्यादावपि न भवति । अट्टमो भागः आट्टमः, अट्टमः ।
 'यष्टाष्टमाभ्या अ चे'ति भागे विवक्षिते अप्रत्ययश्चक्रादग्न । अश्वः ।
 'अश्वप्रूषी'ति कृत् । अश्वाना समूहो ऽश्वीपम् । 'केशाश्वाभ्या यङ्कृ-
 वन्त्यतरस्यामि'ति छः । अन्यतरस्यायहणान्यत्वे ऽण् । आश्वम् । अश्व-
 स्य निमित्त सयोग उत्पातो वा आश्विकः । 'आर्हादि'ति ठक् । गोद्वय-
 लक्षणो यत्तत्रैव संख्यापरिमाणाश्वादीना पर्युदासाच्च भवति । अश्वेनैका-
 हेन गम्यते आश्वीनः । 'अश्वस्यैकाहगम इति खञ् । अश्वस्यापत्यमाश्वा-
 यनः । 'अश्वादिभ्यः फञि'ति फच् । गवाश्वम् । 'गवाश्वप्रभृतीनि चे'ति

नित्यमेकवद्भावाः, पूर्वपदस्यावङ् च । अश्वस्यति वडवा । मैथुनमिच्छती-
त्यर्थः । अथच परतोऽश्वक्षीरे'त्यसुक् । अत्र 'ह्यश्ववृषयोर्मैथुने ङायामि'ति
पठ्यते । अन्यत्राश्वीयति । अश्वतरः । गर्दभादशवायामुत्पन्न उच्यते । 'व-
त्सोक्षाद्वर्षेभ्यश्च तनुत्व' इति ष्टच् । अश्वशब्दार्थस्य व्यक्तेस्तनुत्व प्रवृ-
त्तिनिमित्तजगतिद्वारक, प्रवृत्तिनिमित्त वेहाश्वादित्यस्मिन्स्तत्सदृशे जात्यन्त-
रयोगिनि आरोप्यतइति गौणत्व तनुत्वम् । ष्टचः पित्त्वात्स्त्रियामश्व-
तरी । अत्रः । 'अशेर्द्ववन'इति सप्रत्ययः । अक्षपरि । अक्षेण न तथा
पतित यथा जय इत्यर्थः । 'अक्षशलाकासख्याः परिणे'ति तृतीयान्त-
स्याव्ययीभावः । 'कितव्यव्यवहारे चाय समाप इष्यते' । अक्षि । अक्षिणी ।
'अशेर्निदि'ति क्तिप्रत्ययः । अयमक्षतौ च व्युत्पादितः । वक्तव्य चान्य-
त्तत्रैवोक्तम् ॥ १८ ॥

टिघ आत्कन्दने ॥ कवर्गचतुर्थान्तः । स्तिघ्रुते । तिष्ठिघे ।
स्तेघिता । स्तेघिष्यति । स्तिघताम् । अस्तिघत । स्तिघेत । आशिपि
स्तिघिषीष्ट । अस्तेघिष्ट । तिष्ठिघिपते । तिष्ठिघिपते । स्तिघित्वा ।
स्तेघित्वा । 'रलो व्युधादि'ति क्तिविकल्पः । तेष्टिघीति । तेष्टे-
ग्धि । स्तेघयति । अतिष्टिघत् । खयः शेषः । स्तिघितः । स्तिघित-
वान् । उदात्तावनुदात्तौ ॥ १९ ॥

तिक तिग च ॥ चकारादात्कन्दने इत्यनुषज्यते । तिक्रोति । तिते-
क । तितेकिथ । तितिक्रिव । तेक्रिता । तेकिष्यति । तिक्रोतु । अति-
क्रोत् । तिक्नुयात् । अशिपि तिक्र्यात् । अतेकीत् । तितेकिषति । तेक्य-
ते । तेतिक्रीति । तेतेक्ति । तेकयति । अतीतिकत् । तिक्रः । इगुपधल-
क्षणः क्रः । तैक्रायनिः । 'तिक्रादिभ्यः फिजि' त्यपत्ये फिज् । तैक्राय-
नयश्च कैतवायनयश्च तिक्रकितवाः । 'तिक्रक्रिनवादिभ्यो द्वन्द्वे' इति
बहुषु लुक् । तिग्नाति । तितेग । तेगितेत्यादि तिक्रोतिवत् ॥ २० । २१ ॥

पघ हिंसायाम् ॥ सघ्नोति । ससाघ । सेघतुः । सेघिथ । सेघि-
व । सघिता । सघिष्यति । सघ्नोतु । असघ्नोत् । सघ्नयात् । आशिपि
सघ्यात् । असघीत् । असाघीत् । 'अतो हलादेरि'ति वा वृद्धिः ।

मिनिद्रिनि । 'स्तौतिग्योरेवे' नि नियमात् पत्वन् । सामध्यने । साम-
धीनि । सामधि । साध्यनि । अमीपयन् ॥ २२ ॥

त्रिधृषा प्रागन्त्ये । धृष्णीन् । दधर्षे । दधृषतुः । दधर्षिष । दधृ-
षिष । धर्षिषा । धर्षिष्यति । धृष्णीन् । अधृष्णीन् । धृष्णुयान् ।
आगिषि धृष्यान् । अधर्षीन् । द्विधर्षिष्यति । दधिधृष्यते । दरीधृष्यति
दधिधृष्टि इत्यादि । धर्षयति । अदीधृषन् । अदधर्षन् । उरुद्धा । धृष्यः ।
'अदुपधादि' नि क्यप् । दधृक । दधृमौ । 'अत्विनि' त्यादौ निषान-
नात् क्तिनि द्वित्वम् । पदान्ते च कुचम । धृष्णुः । 'न-एधा' त्यादिना
धृषेः क्तु । धृष्णन् । धृष्णैः । 'ए' णिन् वक्तव्यमिति नञ्जड । दधर्ष-
णः । भाषया नानिधुर्धृषिष्यति इति । धर्षिष्या । 'न क्त्वा मे' ड
त्यक्रियादुणः । धृष्टो धृषल । धृषणर्षा वैषाज्य इत्यनिट्त्वम् । 'आ-
दितस्वे' त्यनिट्त्वे तिष्ठे वचनमिदं नियमाय, तेन वैषाज्यादयत्र धर्षित
इतीड् भवति । भाषादिकर्मणे न वैषाज्ये धृषिरर्त्तानि तत्र नित्यतिपे
धार्थं न भवति । वैषाज्यादयत्र भाषादिकर्मणोर्धेन न भवति । धृष्ट,
धर्षिषन् । प्रधृष्टः । दधर्षित इति, तत्रेदपले 'निष्ठा शीङि' त्यादिना क्तिन्
भाषादुणः । ग्रीत्वा वर्तमाने कार्यम् । धृष प्रमत्तनदति युज्जदौ २३ ।

दम्भु दम्भने ॥ दम्भो लोकान्नेवाऽन्नेव कर्मादुणम् । दम्भो
ति । अनिदिनामिति नलोपः । ददम्भ । देभतुः । ददम्भिष । देभिष ।
'अन्यिअन्यिदम्भिवज्जीनामिति वक्तव्य' मिति अपिनो लिट् क्तिन्वाद्
नुनासिकलोपे 'दम्भश्चेति वक्तव्य' मित्येत्वाध्यानलोपौ । 'अत गक्कह-
लमध्य' इति तु न मिध्यति, 'अमिदुवदत्राभादि' त्यनुनासिकलोपम्यामि
दृत्वात् । इदं च क्तिन्व श्रन्ध्यादीनामपिदर्थे पिदर्थे चेति सुधाकरः ।
आत्रेयादयस्त्वपिदर्थमिति । न्यामकारस्याप्ययमेव पतः । यदाह अन्य-
प्रभृतीना सयोगान्तानामपितो लिटः क्तिन्वमिति । अपिदुचनान्नाना
मेवोदाहरणादुक्तिकारस्याप्ययमेव पतोभिमतः प्रतीयते । हरदत्तस्तु कि-
मिदं पिदर्थमपिदर्थं चेति संदिचार्यमदनत्य देवा एनज्जातुमर्हन्तीत्या-
ह । केचित् अन्यिअन्यिदम्भिवज्जीना वेति पठन्तः क्तिन्व विकल्प-

मुधाकरस्तदपाणिनीयम् मत्तायामर्धमेघनिदाघ'वदाघा इति न्यङ्कादौ
पठित्वा द्रहनेर्घञि व्युत्पादनात् । तथा च तत्र वृत्तिः, अपूर्वस्य निपूर्वस्य
च दहेरिति ॥ २७ ॥

चमु भतणे ॥ चम्बोतीत्यादि ॥ २८ ॥

रि ति चिरि जिरि द्राग दृ हिमायाम् ॥ रिणोति । तिणोतीत्या-
दि । अयं भाषायामपीन्यात्रेयमैत्रेशदयः । प्रयुज्यते च । इमां हृदि
व्यायनपातमत्तिगोत् । न तद्वशः शस्त्रभृता तिणोति । पञ्चत्राणः तिणो-
तीति । शाकटायनादयस्तु ह्यान्दमन्वमेवाहुः । केचित्सु दुङ्मपि पठ-
न्ति, दुनुने इति । यदाह दुर्गः । तिक तिग पघ रि ति चिरि जिरि द्राग्
दृ दुङ् हिमाया, ह्यान्दमाश्वामी परस्मैभाषा उदात्ता इति ॥ ३४ ॥

वृत् ॥ स्वादयो वृत्ता इत्यर्थः ॥

इति पूर्वदक्षिणरश्मिचमममुद्राधीश्वरश्रीकम्पराजमुनमङ्गममहारा-
जमहामन्त्रिणा मायणमुनेन माधवमहेदरेण सायणाचार्येण त्रिरचि-
तायां माधवीयाया धानुवृत्तौ स्वादयः सपूर्णः ॥



१ पञ्चत्राणेरिति ४ पु. पाठस्तत्र समासश्चिन्त्यः ।

२ परस्मैभाषा उदात्ता इति ४ पु. नास्ति ।

अथ तुदादयः ॥

तुद व्यथने ॥ तुदति । तुदतः । तुदन्ति । तुदसि । तुदयः ।
तुदथ । तुदामि । तुदावः । तुदामः । 'तुदादिभ्यः श' इति शब्धि-
पये श । तुदती, तुदन्ती स्त्री । तुदती कुले । तुदन्ती कुले 'आच्छीनद्यो-
र्नुमि'ति शत्रन्तस्य शीनद्योर्नुम्विकल्पः । तुदते । तुदन्ते । तुदहे । तुदथे ।
तुदध्वे । तुदे । तुदावहे । तुदामहे । तुतोद । तुतुदतुः । तुतोदथि ।
तुतुद । तुतोद । तुतुदिव । तुतुदे । तुतुदाते । तुतुदिरि । तुतुदाथे ।
तुतुदिध्वे । तुतुदे । तुतुदिवहे । क्रादिनियमादिष्ट । तोत्ता ।
तोत्स्यति । तोत्स्यते । तुदतु । तुदतात् । तुदताम् । तुदन्तु । तुद ।
तुदतात् । तुदतं, तुदत । तुदानि । तुदाव । तुदता, तुदेताम् ।
तुदन्ताम् । तुदस्व । तुदेथा, तुदध्व, तुदै । तुदावहै । अतुदत् ।
अतुदः । अतुदम् । अतुदत । अतुदथाः । अतुदे । तुदेत् । तुदेतां,
तुदेयुः । तुदे । तुदेय, तुदेत । तुदेयाता, तुदेन् । तुदेथाः । तुदेय ।
तुदेवहि । आशिषि तुद्यात्, तुद्यास्ताम् । तुत्सीष्टु । तुत्सीयास्तां, 'लिङ्सि-
चावात्मनेपदेष्वि'ति क्त्वाच गुणः । अतौत्सीत् । अतौत्ताम् । अतौ-
त्सीः । अतौत्सम् । 'वदव्रजे'ति वृद्धिः । 'भलो भली'ति सिचो
लोपः । अतुत्त । अतुत्सातां, तुतुत्सति । तुतुत्सते । 'हलन्ताव्ये'ति
सनः क्त्वाच । तोतुदते । तोतुदीति । 'नाभ्यस्तस्ये'ति गुणनिषेधः ।
तोतोत्ति । लघूपधगुणः । तोदयति । अतूतुदत् । तिलंतुदः । 'वात-
शुनी'त्यादिना खश् । विधुंतुदः । अरंतुदः । 'विध्वरूपोस्तुद' इति
खश् । 'अरुद्विपदजन्तस्ये'ति मुम् । 'सयोगान्तस्ये'त्यरुणः सकारस्य
लोपः । तोत्रम् 'दाम्नी'त्यादिना करणे घृन् । प्रतोदः । 'हलश्चे'ति
संज्ञाया करणे घञ् । तुत्वा । तुत्रः, तुत्रवान् । 'रदाभ्यामि'ति निष्ठा-
नत्वम् । तुत्थम् । 'पातुतुदिवचिसिचिभ्यस्यणि'ति थक् ॥ १ ॥

गुद प्रेरणे ॥ प्रणुदते । प्रणुदति इत्यादि तुदिवत् । 'उपसर्गा-
दसमासेर्षी'ति णत्वम् । नुत्वा । नुत्तः । नुत्रः । नुत्तवान् । नुत्रवान् ।
'नुदविदे'ति नत्वविकल्पः । कार्कुर्जिह्वा सास्मिन्नुद्यते इति कार्कुदं

तालु । 'घञर्थे कविधानमि' ति कः । एषे'दरा'दित्वा'नुग'दनेप. पर-
रूप च । शोकापनुदः । 'नुन्दशोक्रये' परिभृजापनुदो'रि'त्यनयोः कर्मणो
रूपपदयोः परिभृजापनुदोः रूपव्ययः । कर्मण्यनोपपदादः । अथ च शोकम-
पनुदम् सुखस्याहर्तरि, 'आनन्दसुखं हरण्ये'रिति वक्तव्यमि'ति अत्र
नान् । यन्तु दुःखमेकमपनुदमि सुखं नाहर्तानि तत्राणि शोकापनोद इति
भवति । अथ परस्मैपदित्वेपि पठ्यते । तेनायं भाषायां परस्मैपदोवेति
वदुमानः । स्वाम्यपि तथा परस्मैपदित्वेगामु पठ्यते । उभयमत्रैयसैत्रेया-
द्वयेकव्याख्यातविरुद्धम्, यदाहुस्मप्रपदियु पठितव्याम्य पुनः परस्मैपदियु
पाठः कर्त्रभिप्रायेपि परस्मैपदार्थ इति ॥ २ ॥

दिश अनि-जने ॥ दिशनि । दिशने । दिदेश । दिदेशिय । दि-
दिशिव । दिदिशे । दिदिशरे । दिदिशिषे । दिदिशिषने । दिशु । दिश्य-
ति । दिश्यते । 'ब्रश्वा'दिना पत्वे 'पठोः कर्म्म' ति कत्वं, दिशतु ।
दिशताम् । अदिशन । अदिशन । दिगेन् । दिगेन । आशिषि दि-
श्यान्, दितीष्ट । अदितन् । अदितताम् । अदितन् । अदित । अदितन ।
अदितताम् । अदितयाः । अदिति । अदितावहि । 'गन् इगुपधा-
दि'ति क्तः, 'कल्प्यवी'त्यन्तोपः । दिदितनि । दिदितने ।
'हलन्ताच्चे'ति कित्त्वम् । देदिश्यने । देदिशीनि । देदेष्टि । देश-
यति । अदीदिशत् । दिक् । दिशौ । दिशः । 'ह्रस्विगि'त्यादिना
क्तिनि 'क्लिप्तप्रत्ययस्य कुरि'ति कुत्वं द्वितीयः, पदान्ते तस्य जश्च
गकारः, 'वावमान' इति चत्वं ककारः । न च कुत्वं जश्च पूर्ववासिदु,
'दिगादिभ्यो यदि'ति निर्देशात् । नापि कुत्वं ब्रश्वादिपत्वे ऽसिद्धम् ।
पत्वापवादत्वात्तस्य । प्रतिदिशम् । वीक्षायामव्ययीभावः । 'अव्ययीभावे
शस्त्रभृतिभ्य' इति टच् समासान्तः । दिशा । आप चापि हलन्ताना-
मिति भागुरिषचनाद् टाप् । दिशि भवं दिश्यम् । 'दिगादिभ्यो
यदि'ति यत्, नामादेशं युध्यते । 'नाम्यादिशिषहो'रि'ति द्वितीयान्ते
नाम्युपपदे आदिशेधातुसञ्चये णमुल् । वाक्यं समासो वा स्तु, 'तृती
याप्रभृतीनी'ति समासो विकल्प्यते । नामादिश्य युध्यन्इति त्वापि

ओविजि भयचलनयोः ॥ प्रायेणायमुत्पूर्वः । उद्विजते । उद्विजिषे ।
उद्विजिष्ये । उद्विजिता । उद्विजिष्यते । 'विज इडि' ति इडादेरजितः
प्रत्ययस्य द्वित्वात् गुणः । उद्विजताम् । उद्विजत । उद्विजेत । उद्वि-
जिषीष्ट । उद्विजिष्ट । उद्विजिषते । उद्विजित्वा क्त्वसनो 'रलो
व्युपधादि' ति क्त्वस्य पान्निकत्वेऽप्यस्य 'विज इडि' ति द्वित्वमिति न
गुणः । उद्वेज्यते । उद्वेजितीति । उद्वेजि । उद्वेजयति । उद्वेजि-
जन् । उद्विजन् । उद्विज्वान् । ईदित्त्वादनित्त्वम् । चोः क्त्वम् ।
ओदित्त्वाविष्टानत्वम् । वेगितमिति घञन्ताद्वेगशब्दादितच्च । उद्वेजि-
तमिति ण्यन्तस्य निष्ठायां मिटि । वेवेक्ति वेविक्ते इति जुहोत्यादौ
पृथग्भावे ॥ ८ ॥

ओलजी ओलस्जी व्रीडा^१याम् ॥ लजते । लजे । लजिषे । लजिता ।
लजिष्यते । लजताम् । अलजत । लजेत । लजिषीष्ट । लिङ्गौ । अल-
जिष्ट । लिलजिषते । लालज्यते । लालजीति । लालक्ति । लालयति ।
अलीलजत् । लजित्वा । लग्नः । लग्नवान् । ईदित्त्वादनित्त्वम् ।
ओदित्त्वाविष्टानत्वम् । अयं तवर्गपञ्चमादिरिति चान्द्राः । तन्मतेन
नननग्निकाशब्दव्युत्पत्तौ तवर्गादिरयं स्वामिना पठितो न तु स्वम-
तेन, यदाह । ओलजी ओलस्जी व्रीडा^१ इति चान्द्रा इति । आत्रेयमैत्रे-
यस्वामिसमताकारशाकटायनादयः सर्वे यणादिमेवाहुः । नग्नशब्दस्तु
वृषोदरादित्वाद्युत्पत्त्येनेति मैत्रेयः । लज्जते । ललज्जे । लज्जिता ।
लज्जिष्यते । लज्जताम् । अलज्जत । लज्जेत । लज्जिषीष्ट । अल-
ज्जिष्ट । अलज्जिषताम् । अलज्जिषत । लिलज्जिषते । लश्त्वश्चुत्वे ।
लालज्ज्यते । लालज्जीति । लालक्ति । 'स्कोरि' ति सलोपः । लज्ज-
यति । अललज्जत् । लज्जित्वा । लग्नः । लग्नवान् । निष्ठानत्वस्य
सिद्धत्वात् 'स्कोरि' ति सलोपः । लज्जा । 'गुरोश्च हल' इत्यकारः ।
लज्जित इतीति च । शय्यनयोरपाठः स्वरार्थः । शयि हि 'तास्यनुदा-

तेन्दिदि' स्यादिना लसार्धधानुक्रानुदासत्वे शपश्च पित्वादनुदासत्वे
धातुस्वरेणाद्युदास स्यात् । शेतु प्रत्ययस्वरेण मयोदास भवति । लज्जति
लाजति लज्जति लाज्जनीनि चत्वारः शपि भत्सने । जुषादय उदात्ता
अनुदासितः ॥ १०-११ ॥

शो'दिदुदासतोऽपधप्रसङ्गानाद्गमपि परस्मैपदिनमाह ॥

शोत्रशू छेदने ॥ वृश्चति । 'बहिज्या' दिना सप्रसारणे पूर्व-
रूपत्वे 'स्तोः श्चुना श्चुरि'ति सकारस्य शकारः । वत्रश्च । वत्रश्चतुः ।
वत्रश्चिथ । वत्रश्च । वत्रश्चिव । मये गान्तव्येन लिटः कित्वाभावाद्बहि-
ज्या' दिना सप्रसारणाय भवति । अभ्यासस्य 'निद्राभ्यसे' नि संप्रसारणे
'स्तोः श्चुना श्चुरि'ति सकारस्य शकारः । 'न सप्रसारणे सप्रसारण-
मि'ति पूर्वस्य निषेधाद्रेफस्येव सम्प्रसारणप्रसङ्गः, उरदन्वम्याङ्गत्वादङ्गा-
क्षिप्तप्रत्ययेन परनिमित्तत्वा 'द्वचःपरस्मिन्नि'ति स्यानिवन्त्वेन सप्रसार-
णपरत्वान् । ऊदित्वात्मवन्नेद्विकल्पः । ऋद्विनियमः प्रनिपिटुत्रिषय
इति यत्पि विकल्प एव भवति । तत्रेडभावे अन्यरत्वा 'त्स्कोरि'ति
सलोपे व्रश्चादिना पत्वे ष्टुत्वम् । व्रष्टा, व्रश्चिता । व्रथति । व्रश्चि-
प्यति । अनिटि सलोपपत्त्वयोः 'षठोः कः सी'ति कत्व, वृश्चतु ।
अवृश्चत् । वृश्चेत् । आशिपि वृश्च्यात् । अव्रश्चीत् । अव्रश्चिष्टाम् । अव्र-
श्चिषुः । अव्रश्चीः । अव्रश्चिष्टम् । अव्रश्चिष्ट । अव्रश्चिषम् । 'ने-
टी'ति न वृद्धिः । अनिटि त्वब्रावीत् । पूर्ववत्सलोपपत्त्वयोः कुत्वम् ।
अब्राष्टाम् । 'भने भली'ति सिचो लोपे प्रत्ययलक्षणेन 'षठोः कः
सी'ति न भवति । तस्य वर्णाश्रयत्वादुर्णाश्रये च प्रत्ययलक्षणाभा-
वात् । विव्रश्चपति । विव्रश्चति । वरीवृश्चते । 'रीष्ट्वत्' इति रीक् ।
वाव्रष्टि । वाव्रष्टः । व्रश्चतीति श्रित्पा निट्शब्द द्विवचनेषु न सम्प्रसार-
णम् । व्रश्चयति । अव्रश्चत् । व्रश्चत्वा । 'त्रिव्रश्च्योः ल्क्वी'ति
नित्यमिट् । 'न ल्क्वा सेडि'त्यकित्वाच्च सम्प्रसारणम् । वृक्काः । वृक्का-
वान् । 'यस्य विभावे'त्यनित्त्वम् । ओदित्वाविष्टानन्व तस्य पूर्ववा-

सिद्धत्वात् भक्ष्यत्वेन 'स्कोरि'ति सलोपः । 'चोः कुरि'ति कुत्व च ।
 'निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेद्विधिषु सिद्धो वक्तव्य' इति व्रश्चादिषत्वे
 निष्ठादेशस्य सिद्धत्वात् भक्ष्यत्वाभावात् षत्वम् । व्रस्वयः । व्रस्कः ।
 ण्यद्वौ । 'चजोः कुघि ण्यतो'रिति कुत्वम् । अभक्ष्यत्वात्सलोपो
 न भवति । व्रश्चेत्यादौ वकारोपदेशनामर्याद्विधौ वलि परतो लोपो
 न भवति । न च वृश्चतीत्यादौ सप्रसारणे भक्ष्यत्वाभावाद्भवणमुपदे-
 शस्य प्रयोजनं, तत्रापि सप्रसारणस्य कृत्प्रत्ययापेक्षत्वेन बहिरङ्गत्वे
 नासिद्धत्वादस्ति वलोपप्रसंग इति । वृत्तः । 'सुवृश्चिक्कन्यप्रिभ्यः कि-
 दि'ति सप्रत्यये षत्वे कुत्व, 'स्कोरि'ति सलोपश्च ॥ १२ ॥

अथ व्याजीकरणे ॥ विचति । 'ग्रहिज्यादिना' किति संप्रसा-
 रणं, विव्याच । विविचतुः । विव्यचिथ । विविचयुः । विविच । वि-
 व्याच । विविचिथ । अपितो लिटः कित्वात्संप्रसारणे द्विवचनं, पिति
 तु 'लित्यभ्यासस्योभयेपामि'त्यभ्यासस्य । 'व्यचेः कुटादित्वमनसी'-
 त्यङिणत्प्रत्यये विधीयमान इत्त्वमनसीतिपर्युदासेन तत्सदृशे कृतीति
 हरदत्तादयः । तेन थल्युत्तमे णलि च णित्वाभावपक्षे नास्ति इत्त्व
 नापि कित्त्व, पिल्लिट्त्वादिति न संप्रसारणम् । अन्ये तु प्रमज्यप्रतिषे-
 धमाश्रयन्ते, तेनात्रापि इत्त्वमस्तीति संप्रसारणं मन्यन्ते । प्रसज्यप्रति-
 षेधाश्रयणे प्रमाणं मृग्यं, वाक्यभेदप्रसङ्गात् । व्यचिता । व्यचिष्यति ।
 विचतु । अविचत् । विचेत् । आशिषि विच्यात् । अव्याचीत् । अव्या-
 चिष्टाम् । अव्याचीत् । अव्याचिष्टाम् । 'अतो हलादेरि'ति वा
 वृद्धिः । विव्यचिषति । तासिस्सिचा सनश्चाकृत्वात् इत्त्वमिति न
 संप्रसारणं, प्रमज्यप्रतिषेधवादिनामत्रापि इत्त्वात्संप्रसारणेन भाव्यम् ।
 वेविच्यते । वाव्यवीति । वाव्यक्ति । शितपा निर्द्वैशात्र संप्रसारणम् ।
 व्याचयति । अविव्यचत् । विचित्वा । 'न त्क्वा सेडि'त्यक्त्वेषि
 त्कः कृत्वाकृत्वे. कुटादित्वमिति इत्त्वेन संप्रसारणं गुणाभावश्च ।
 विचितः । उह्यचाः । गतिकारकपूर्वस्यापीत्यसुन् । अनसीतिपर्युदासात्
 इत्त्वम् ॥ १३ ॥

उच्छि उच्छे ॥ उच्छी विवासे ॥ उच्छनि । उच्छनीत्यादि ।
भूवादौ व्याख्यातौ ॥ १४-१५ ॥

उच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु ॥ उच्छति । 'छे च नि तुक्' ।
तुकि यदुक्त्य तत्सर्वं भूवादाच्छेनौ द्रष्टव्यम् । आनच्छ । आनच्छन्तु ।
आनच्छुः । आनच्छिय । आनच्छिव । 'उच्छन्त्यन्मि' ति लिटि गुणः ।
'तस्माच्चुड् विहन' इत्यत्र विहन्द्वागमनेऽन्ननुपनञ्जमिति नृडागम
इति ऋदनादयः । उच्छिता । उच्छिष्यति । उच्छतु । उच्छन्तु । उ-
च्छेत् । आशिषि उच्छ्यात् । मा भवान्च्छीत् । उच्छिष्टाम् । आ-
च्छिपम् । उच्छिष्यति । अभ्यासे खयः शेषः । उच्छयति । मा भवा-
नुचिच्छत् । 'समो गम्यच्छी' ति सम्प्रसारणद्वयमन्तर्गतम् । समुच्छने ।
समानच्छे । समुच्छिता । समुच्छिष्यते । समुच्छनाम् । समुच्छन्तु । समु-
च्छेत् । आशिषि समुच्छिषीष्ट । समुच्छिष्ट । उच्छित्वा । उच्छितः ।
उच्छितवान् । उच्छा चकारे । प्रयोगे 'गुरोश्च हल' इत्यकारप्रत्यया-
न्नादृच्छशब्दात्कर्मणि द्वितीयाया न त्वामि । यतो ऽनृच्छ इत्याशि-
षिध्यते ॥ १६ ॥

मिच्छ उत्कृष्टे ॥ उत्कृष्टः पीडा । मिच्छति । मिमिच्छ । मि-
मिच्छतुः । मिच्छिता । मिच्छिष्यति । मिच्छतु । अमिच्छत् । मिच्छेत् ।
आशिषि मिच्छात् । अन्तरङ्गत्वात्पूर्वं तुमिति न लघूपधगुणः । वृद्धि-
स्तु 'नेटीति' निषिध्यते । मिमिच्छिषति, मेमिच्छते । मेमिच्छीति ।
मेमेष्टि । मिच्छयति । अमिमिच्छत् ॥ १७ ॥

जर्ज चर्च भर्भ परिभाषणभन्मनयोः ॥ जर्जति । जजर्ज । चर्चति ।
चर्चका । सजाया कुन्, ण्वल्वा । भर्भति । जभर्भ । जर्जरः । भर्भरः ।
बाहुलकाद् रचन्तौ । आद्यन्तावपि चान्तावित्के । चर्चतिभर्भन्त्याः
अपि पाठः स्वरार्थ इत्युक्तम् ॥ १८-१९-२० ॥

त्वच सवरणे ॥ त्वचति । तत्त्वाच्च । त्वचिना, त्वचिष्यति । त्व-
चतु । अत्वचत् । त्वचेत् । त्वच्यात् । अत्वाचीत् । अत्वचीत् । 'अतो

लोभयति । अलूलुभत् । विलुभिताः केशाः । 'लुभो विमोहन' इति त्वा-
निष्ठयोर्नित्यमिष्ट । गार्ध्यं तु लुभ्यतीति गतम् ॥ २५ ॥

रिफ कथनयुट्टुनिन्दाहिंसादानेषु ॥ रिफति । रिरेफेत्यादि लुभि-
षत् । त्वायां 'रलो व्युपधादि'ति न कित्त्वविकल्पः । 'नोपधात्यफा-
न्ते'त्यत्र नोपधग्रहणसामर्थ्यात् । यदि हि स्यात्किं नोपधग्रहणेन । न
च ऋफ तृफ हिंसायामित्युकारोपधो व्यावर्त्यः । चैशब्दो हि नः सा-
ध्यम्, रिफित्वा रिम्फित्वा अर्फित्वेति । एतच्च सत्यसति नोपधग्रहणे
भवत्येव । सति च' नोपधस्य 'न त्वा सेडि'ति प्रतिषेधे सति अर्फित्वेति
भवति । नोपधस्य त्वस्मिन्विकल्पे रिफित्वा रिम्फित्वेति । असत्यपि
नोपधस्य ग्रहणे सर्वत्रास्मिन्विकल्पे प्रवृत्तेऽपीदमेव रूपत्रय भवति ।
रिहीति द्रमिडा इति स्वामी । अनिट्कारिकासु वामनश्च रिहितुही
धातुषु न पठ्यते कैश्चिदभ्युपगम्यते इति । अत्र न्यासे कैश्चिदित्यापिश-
लिप्रभृतिभिरिति । तस्मात्तावपि स्त एव । प्रयुज्यते च शिशुं न विशा
मतिभी रिहन्तीति ॥ २६ ॥

तृप तृप्फ तृप्तौ ॥ आद्यः प्रथमान्त इति वामनः । यदाह
तृप्यतिदृप्यती सृपमित्यनिट्कारिकायां श्यना निर्द्वैशस्य व्यावर्त्यं दर्शयन्
तुदादिषु यौ तृपिदृपी तावुदातावेवेति । आत्रेयमैत्रेयादयस्तु द्विती-
यान्त पठित्वा प्रथमान्त वामनः पठतीत्याहुः । तृपति । ततर्पे । तर्पि-
ता । तर्पिष्यति । तृपतु । अतृपत् । तृपेत् । तृप्यात् । अतर्पात् ।
'स्पृशमृशकृपे'ति सिचो विकल्पनमङ्गपवाद इति पौषादिकस्यैव ।
तितर्पिषति । तरीतृप्यते । तर्तर्पि । तर्पयति । अतीतृपत् । अततर्पत् ।
उर्चष्टा । तर्पित्वा । तृपितः । तृप्त्वा तृप्त इति तृप्यते । तृप्फति ।
शस्य ङित्त्वा 'दनिदितामि'ति नलोपे 'शे तृप्तादीनामि'ति नुमागमः ।
येन सानुषङ्गाः पठन्ते तृप्फादय इति, प्रकारवाच्यादिशब्दः, प्रकारश्च
सादृश्यं, तच्च नकारानुषङ्गतयेति हरदत्तः । ततृप्फ । तृप्फिता ।
तृप्फिष्यति । तृप्फतु । अतृप्फत् । तृप्फेत् । आशिषि तृप्यात् । यासु-

टः क्तिन्वाचम्य लोपः । अतृप्फीन् । निवृप्फिन् । तृप्फिन् । 'रीर-
त्वन् इति रीक् । तृप्फिन् । तृप्फयति । अतृप्फन् । तृप्फिन्वा ।
तृप्फिन्वा । तृप्फिनः । तृप्फायां 'नेपथा यदान्' इति क्तिन्वाचक-
त्पनात्पक्षे नलोपः ॥ २०-२२ ॥

तुप तुप्प तुफ तुप्फ हिमायम् ॥ तुपति । तुप्पति । तुफति ।
तुप्फतीत्यादि पूर्ववत् ॥ एषा भूवादौ पाठः स्वरार्थ इति तत्रैवे कम ॥ २६-
३०-३१-३२ ॥

टृफ टृप्फ डक्कुगे ॥ प्रथमं प्रथमान्त इति वामतस्तृयतावुप-
दितम् । अन्ये द्वितीयान्त इति । टृफति । टृप्फतीत्यादि ॥ ३३-३४ ॥

चफ चम्फ हिवायाम् ॥ चरुति । आनर्क । आनुफनुः । चम्फ-
ति । चम्फाञ्चकार । अर्पिफरति । मनि गुणे 'न न्द्रा' इति रेफवर्जि-
तस्य द्विवचनम् । चम्फिफरतीत्याद्यनुस्वारपरवर्णये रन्निट्त्वाचकार-
वर्जितस्य द्विवचनम् । अर्फित्वा । चम्फित्वादि पूर्ववत् ॥ ३५-३६ ॥

गुफ गुम्फ गन्धे ॥ गुफति । जुगोफ । गुम्फति । जुगुम्फे-
त्यादि ॥ ३७-३८ ॥

उभ उम्भ पूरणे ॥ उभति । उवोभ । उभनुः । 'अभ्यामप्याम-
वर्णे' इति गुणविषये उवङ् । अन्यत्र मवर्णदीर्घे । उम्भति । उम्भाञ्च-
कारेत्यादि । उभौ । इगुपधात्क । नित्य द्विवचनान्तः । सर्वदित्वा-
त्सर्वनामत्वं, तत्कार्वाणि 'सर्वनाम्बन्तुनीये' त्यादीनि ययामभव नेया-
नि । उभाववयवावप्य उभयो मणिरित्यत्र 'मन्वाया अवयवे तयवि' ति
तयपित 'स्थोभादुदानो नित्यमि' न्ययजादेग उदानः । उभाञ्जलि । उभ-
याञ्जलि । उभाहस्ति । उभायाहस्ति । उभावाहु । उभयावाहु ।
'द्विदण्डादिभ्यश्चे' ति बहुव्रीहाविचप्रत्ययान्तना निराच्यन्ते । उभा-
बाहु उभयावाहु इत्यत्रैव निर्वृशादिवो लोप, प्रत्ययनङ्गनेजन्त-
त्वादध्ययीभावत्वादध्ययन्त्वमिति न्यासे । द्विदण्डादिगणपाठादेवैषां
साधुत्वे सिद्धे 'द्विदण्डादिभ्यश्चे' ति सूत्रमिजन्तत्वविज्ञानार्थमिति,

तस्य च प्रयोजनमव्ययीभावसंज्ञेति हरदत्तादयः । तिष्ठदुप्रभृतिषु इजिति पठ्यते, एवं समुद्रायनिपातनाच्चार्थविशेषे एवावतिष्ठन्ते, तथा च वृत्तिः । द्विदण्डि प्रहरति । द्विमुसलि प्रहरति । एवमुभाञ्जलीत्यादीनामपि प्रहारो ऽन्यपदार्थः । केनोभ्यते इति कुम्भः । कर्मणि घञ् । अयस्कुम्भः 'अतः कृकमिकमकुम्भेति' विसर्जनीयस्य सः । अत एव कुम्भेतिनि द्वैशात्कशब्दाकारस्य लोपः पररूपता वा । कुम्भी । गौरादित्वा 'ज्जातेरस्त्री'ति वा डीष् । अयस्कुम्भी । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया सत्वम् । कुम्भीव नासिका ऽस्य कुम्भीनसः । 'अञ् नामिकायाः संज्ञायामि'त्यादिना नासिकाया नसादेशोच् प्रत्ययश्च ॥ ३९-४० ॥

शुभ शुम्भ शोभार्थं ॥ शुभति । शुम्भतीत्यादि ॥ ४१-४२ ॥

दृभी गन्धे ॥ दृभतीत्यादि । ईदित्वाचिष्टायामनिट्त्वंम् । दृब्धः ॥ अयमनिटि चुरादौ ॥ ४३ ॥

चृती हिंसायन्यनयोः ॥ चृतति । चर्चर्त । चर्चततुः । चर्चर्त्त-य । चर्चर्त्ता । चर्चर्ष्यति । चर्त्स्यति । चृततु । अचर्त्तत् । चरीचृत्यते । चरीचर्त्त । चरीचृतः । चर्त्तयति । अचीचृतत् । अचचर्त्तत् । उर्चद्वा । चृतः । चृतवान् । 'यस्य विभाषे'त्यनिट्त्वे सिद्धे ऽस्येदित्वेन तस्यानित्यत्वज्ञापनाद्वाचित इति सिद्धमिति मैत्रेयः । स्वामिकाश्यपौ तु ईदित्त्व चरीचृतः, चरीचृतवानिति यङ्लुगन्ताचिष्टायामनिट्त्वार्थमिति ॥ ४४ ॥

विध विधाने ॥ विधति । विवेध । वेधिता । वेधिष्यति । विध-तु । अविधत् । विधेत् । विध्यात् । अवेधीत् । विविधिषति । विवेधि-षति । विधित्वा । वेधित्वा । वेविध्यते । वेवेद्वि । वेधयति । अवीवि-धत् । 'रनो व्युपधादि'ति त्वासनोः क्त्विक्कल्पः । विधिशब्दमस्मान्मैत्रेय आह । समर्थसूत्रे भाष्यं विधिरिति कोयं शब्दः, विपूर्वाद्वाजः कर्मसाधन इकार इति । अत्र कैयटे विध विधानइत्यस्यौणादि-केन्प्रत्ययान्तस्य निवृत्त्यर्थे विपूर्वाद्वैज इत्युक्तं, स्वरे चानयोर्भेदः, इत्य-त्ययान्तस्याद्भुत्तत्वात्, किप्रत्ययान्तस्यान्तोदात्तत्वात्, तस्यैव प्रयोगार्थ-मेवमुक्तमिति ॥ ४५ ॥

कुड गनौ ॥ तत्पर्ययज्जमन्ममेने पठन्ति । कुड्यने च कुडिषां
त्रिष्वि मरुतो मुनर्त्तानि । कुडति । कुजेड । जोडिना । ने-डियति ।
कुडत् । अकुडत् । कुडेत् । कुटान् । कुजेडीन् । कुकुडिषति । कुजा-
डिषति । जोडित्व । कुडित्वा । ने-कुड्यने । जोकुडीनि । जोजोडि । जोड-
यति । अजकुडन । कुडिन । अथ वन्धने डित्वाद्यं कुटादौ पठिष्यने ।
प्रेरणे चुरादौ ॥ ४३ ॥

मृड मुदने । मृडति । ममडं । मडिना । मडिष्यति । मृडत् ।
अमृडत् । मृडेत् । मृडान् । ममडीन् । मिमडिषति । मरीमुदने । मरी-
मडि । मडयति । मरीमुडन । अममडन । उचंद्वा । मृडित्वा । मृडि-
तः । 'मृडमृडे' ति त्रयासः कित्त्वम् । मृड । इगुप्रधल- . क. 'मृडानी ।
'इन्द्रयस्तेति' डीपातुको । मृडीक सुव, मृडेः कीकृत् । अथ ज्ञ्यादौ
च ॥ ४० ॥

पृड च ॥ पृडनीत्यादि मृडिवत् ॥ ४८ ॥

पृण प्रीणने । पृणति । पपणेत्यादि । नेकपृणः । मुनविभुजा-
दित्वात्कः । 'नेकस्य पृण इति मुम । पृण इति वन्धे'त्यादिरप्यत्र
पठितव्यः । तथा च भाष्य धात्वन्तरे पृणिवृणी इति । धात्वन्तरे इति
तौदादिमाधिव्यर्थ इति कैयटे ॥ ४६ ॥

मृण हिायाम् ॥ मृणनीत्यादि । मृणालम् । बाहुनकादालम्,
गुणाभावश्च ॥ ५० ॥

तृण कौटिल्ये ॥ तृणति । तुतेण । तोगिनेत्यादि । तृण पूरण
इति दीर्घापथ आनुस्मिकः ॥ ५१ ॥

पुण कर्मणि शुभे ॥ पुणनीत्यादि । मातरि निपुणः । इगुप्रधल-
क्षणः कः । पितरि निपुणः । 'माधुनिपुणाभ्या'मिति तद्व्युत्पत्त्यस्य ।
अप्रनेरित्यपत्तीय अप्रत्यादियोगेति वक्तव्यमित्युक्तम् । प्रत्यादयश्च प्रति-
पर्यन्तव इति पाणिनिनोक्ताः । तेन तैर्योगे द्वितीयैश्च पितर प्रति निपुण
इत्यादि । आचारनिपुणः । 'पूर्वमदृशे' त्यादिना तृतीयाममासः

नैपुण्यम् । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । पितृत्वात् डीप् । नैपुणी । 'हलस्तद्धितस्ये'ति यलोपः । नैपुणम् । युवादित्वाद्दण् । अनैपुणः । तत्पुरुषो बहु-
व्रीहिर्वा । तस्येदमनैपुणम् । अनैपुणम् । 'नञः शुची'त्यादिना पूर्व-
पदस्य वा वृद्धिरुत्तरपदस्य तु नित्यम् ॥ ५२ ॥

मूण प्रतिजने ॥ ५३ ॥

कुण शब्दोपकरणयोः ॥ दीर्घोपधः सकोचने आकुस्मीयः ॥ ५४ ॥

शुन गतौ ॥ शुनतीत्यादि । शुनकः । औणादिकः कुन् ॥ ५५ ॥

द्रुण हितगतिकौटिल्येपु ॥ द्रुणति । द्रुणः खजुरः । इगुपधात्
कः । द्रुणी कच्छपी । गौरादित्वात् डीप् । द्रोणः । पचाद्यच् । द्रोणी ।
पूर्ववत् डीप् । द्रोणस्य गोत्रमपत्य द्रौणिः । द्रौणायनः । 'द्रोणपर्वत-
जीवन्तादन्यतरस्यामि'ति फगिजौ । द्रोणं पचतीति द्रौणी, द्रौणकी ।
'तत्पचतीति च द्रोणादण् चे'त्यण्ठजौ । द्विद्रोणेन धान्य क्रीणाति ।
'प्रकृत्यादिभ्य उपसख्यानमि'ति तृतीया । अत्रापि द्वितीया प्राप्नो-
तीति कैयटे । द्वयोर्द्रौणयोः समाहारो द्विद्रोणम् । पात्रादित्वात्
स्त्रीत्वाभावः ॥ ५६ ॥

घुण घुर्ण भ्रमणे ॥ घुणति । घूर्णतीत्यादि ॥ घोणते, घूर्णते इति
शपि ॥ ५७-५८ ॥

पुर ऐश्वर्यदीप्त्योः ॥ सुरति । सुषोर । सुपुरतुः । 'आदेशप्रत्यययो-
रि'ति प्रकृतेः षत्वम् । सोरिता । सोपूर्यते । सोषोर्ति । सोरयति ।
असूपुरत् । सुरन्तीति सुराः । इगुपधलक्षणः कः ॥ ५९ ॥

कुर शब्दे ॥ कुरतीत्यादि । अत्र 'हलिचे'ति दीर्घस्य 'न भवकुं
रामि'ति न निषेधः । करोतेस्तत्र बहणमिति व्याख्यातृभिरभिधा-
नात् ॥ ६० ॥

खुरच्छेदने ॥ खण्डने चेति मैत्रेयः । खुरति । खुरः । इगुपधल-
क्षणः कः । कल्प्याणपुरा । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादि'ति डीषो 'न क्रोडा
दिबहूच'इति निषेधः । खुरणः । 'खुरखराभ्या नस् वक्तव्य'इति ना-

विकाया नम्भावः । 'अञ् नाप्तिकायाः मलायामि' न्येव मिदु वार्ति-
कमचो निवृत्त्यर्थे पक्षे ऽच् प्रत्ययोर्दीप्तिरिति वृत्तिः । तेन गुरास इत्य-
पि भवति ॥ ६१ ॥

गुर मवेष्टने ॥ गुरति । गुर । पूर्ववत्क् ॥ ६२ ॥

गुर विनेष्टने । गुरति । गुरम् । पूर्ववत्क् ॥ ६३ ॥

गुर भीमार्थशब्दयोः ॥ गुरति । गुराः । पचाद्यच्, 'अकर्मरि-
च कारक' इति घञ् वा । गुर्युः । पूर्ववत्क् ॥ 'कृत्रादीनां के द्वे भव-
त' इति द्वित्वम् । 'प्रेषादिरादिन्वाव हलादिः शेषः' ॥ ६४ ॥

गुर अशमने ॥ गुरति । गुरम् । पूर्ववत्क् । गुरी । गौरादित्वात्
ढीष् ॥ ६५ ॥

वृह उद्यमने ॥ वृह्योऽगृहिरयम् । तथा हि 'मूलमप्या-
वर्हि' सकृद्या वृहन्मा मे बल विवृहन् इति प्रयुज्यते । अत्ये तु वका-
रादि पठन्ति । वृहति । ववर्ह । ववृहन् । ववर्ह्यति । ववर्ह । कदि-
त्वादि द्विकल्पः । भलि 'रोठ' । 'भयस्तयोर्ध' ध । 'पुना पुः' ।
'ठो ठे नापः' । वर्हिना । वट् । वर्हिष्यति । वर्ह्यति । 'पठोः
कम्पी'ति कत्वम् । वृहन् । अवृहन् । वृह्यन् । अवर्ह्यन् । अवर्हिष्यन् ।
अनिट्पक्षे 'शल इगुपधादि' ति क्तः । अवृहन् । अवृहन्नाम् ।
विशर्हिषति । विवृहति । 'हलन्ताच्चे'ति कित्वाच्च गुणः । वरीवृहने ।
वरीवर्हि, इत्यादि । वर्ह्यति । अवीवृहन् । अववर्हन् । उर्वृहन् ।
वर्हिष्यति । वृह् । 'न त्का मेडि'त्यस्मिन्मिडि । वृहः । वृहवान् ।
'यस्य विभाषे'त्यनिट् । 'द्रुनाप' इति दीर्घे पूर्वाण्य इत्यच न भवति ।
वर्हति । वृहतीति वृहौ शपि । वर्हतइति तत्रैव प्राधान्ये । जय एते
आद्यादयः ॥ ६६ ॥

वृह स्तूह वृह हिंमार्याः ॥ वृहति । ततर्ह । स्तूहति । तस्तर्ह ।
'शूर्पवीः खयः' । तर्हिता । तर्ह । स्तर्हिता । स्तर्हत्यादि वृह-

तिवत् । तरीष्टृह्यते । तरीष्टृर्धि । 'आदेशप्रत्यययोरि' ति प्रकृतेः षत्वम् ।
 तित्स्तिर्हिपति तित्स्त्वृत्ततीत्यत्र तु 'स्त्वृत्तित्थोरेवे' ति नियमान्न षत्वम् ।
 वृहति, शस्य ङित्त्वा 'दनिदित्तामि' ति नलोपः । तवृह । तवृहत्तुः । तवृ-
 ह्यि । तवृण्ठ । धत्वठत्वष्टुत्वठलोपेषु नकारस्य 'नश्चापदान्तस्ये'-
 त्यनुस्वारे परसवर्णो णकारः । वृण्ठा । वृहियति । वृङ् स्यति । वृहत्तु ।
 अवृहत् । वृहेत् । वृह्यात् । यासुठ् । क्त्विवाचलोपः । अवृहीत् । अवृहि-
 ष्टाम् । अनिट्पक्षेयनिगुपधत्वात् क्सो नास्तीति सिचि ठत्वकृत्वयोः मिचः
 षत्व, नकारस्यानुस्वारपसवर्णो, वृद्धिः, अताङ्गीत् । अताङ्गामित्यादि ।
 तित्वृहियति । तित्वृहति । अनिट्पक्षे 'हलन्तादि' त्यत्र हल्गणस्य
 जातिवाचकत्वात् सनः क्त्विवाचलोपः । तरीवृहीति । तरीवृण्ठी-
 त्यादि । वृहयति । अवृहत् । वृहित्वा । वृह्वा । इटि 'न त्का से-
 डि' त्यक्त्वम् । वृठः । वृठवान् । अत्र सानुपङ्ग मूर्धन्यादि चतुर्थमपि
 वृह इति धातु के चित्पठन्ति । आत्रेयमैत्रेयादिभिरय न पठन्ते । वृह
 हिंसार्थो रूधादौ ॥ ६०-६८-६९ ॥

इष इच्छायाम् ॥ के चिदुदितं पठन्ति । तस्य च प्रयोजनमिद्वि-
 कल्पे क्वविधौ चादितोनुवाद इति, तद्विधानेपि तथा पठतो दैवादिकक-
 यादिकयोस्तौ न भवत इत्याहुः । न च त्वायामिद्विकल्पः प्रयोजन, 'तीष-
 सहे' ति तादाविद्विकल्पनात् । ये त्वनुदित पठन्ति ते 'तीषसहे' त्यत्रा-
 कारमात्रविकरणेन सहिना साहचर्यात्तादृशस्तौदादिक एव गृहीयत-
 इतीतरयोरग्रगणमाहुः । तथा 'इषुगमियमा छ' इत्यत्रापि 'क्सस्या-
 ची' त्यतो ऽचीत्यनुवर्तते, तच्च 'ष्टिबुल्कमि' त्यतोनुवृत्तेन शितीत्यनेन
 विशेष्यतइति शिति विधीयमान कृत्वमपि तौदादिकस्यैव सम्भवति नेत-
 रयोरित्याहुः । इच्छति, इच्छेत् । 'इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमान' इति
 लिङ्लटौ । इयेष, ईपतुः, पिति तु परत्वाद् गुणे कृते 'अभ्यासस्यास-
 वर्णे' इतीयङ् । अन्यत्र सवर्णदीर्घः । एषिता । एष्टा । एषियति
 इच्छत्तु । इच्छेत्, ऐषीत् । इच्छा । 'इच्छे' ति शप्रत्ययो यगभावश्च
 नपात्यते । इष्टिरिति बाहुलकात् क्तिच् । 'तितुत्रे' तीङ्निषेधः ।

गपणा । करणी लुट् । इच्छुः । चिन्दुरिच्छुरि लुप्रत्ययान्तौ लिपाग्रने ।
गपित्वा इत् । 'त'पमरे न द्विकन् न क्वा मेडि लृजिन्त्यम् ।
इष्टः । इष्टवान् । 'यस्य विभाषे'त्यतिङ्त्वम् । इष्यतीति श्यनि
गतम् ॥ ८० ॥

मिप स्पृष्टायाम् ॥ मिपति । मिपेप । मिपिना । मिपिष्यति मिपन् ।
अमिपन् । मिपेन । मिप्यान । अमिपिष्टाम् । मिमिपिषति । मिमिपि-
पति । मिपित्वा । मेपित्वा । क्व'मनो । कित्त्विकित्त्वः । मेमिप्यते ।
मेमेष्टि । मेपयति । अर्मामिपन् । मेपः । पचाद्यच् । मेपी । ज्ञाति-
लज्जलो डीप् । निमिपः । यञ् ॥ ८१ ॥

क्रिल श्यैत्ये ॥ ऋत्येऽङ् इनदेरिति मैत्रेयः । क्रिनति । चिक्नेत्यादि
मिपतिवत् । कित्त्वपन् । 'क्रिनेर्बुक्त्वे'ति टिप् च् बुक्त्वागम ॥ ८२ ॥

तिल खेहने ॥ तिलति । तिलेत्यादि । तेनतीति शपि ॥ ८३ ॥

चिल वमने ॥ चिलतीत्यादि । चेनतीति शपि ॥ ८४ ॥

चल विलमने ॥ चलतीत्यादि । चलतीति कम्पने घटादि-
त्वात् । जनादिपठितस्यादीह पाठे प्रयोजनमुच्छ्वसीत्यादिवन्त्या । तत्र
पाठः कर्तरि लङि कृत्यार्थः । चलखाल इति । आत्रेयस्तु निनाद्वित्रय
मिह न पठति ॥ ८५ ॥

इल स्वप्नोपगयोः ॥ इलति । इयेल । इलतुः । गुणत्रये 'ऽभ्या-
सम्यामवर्ण' इतीयङ् । इलिता । इलिष्यति । इलतु । ऐलत् । इलेत् ।
इल्यात् । ऐलीत् । ऐलिष्टाम् । ऐलिष्यन् । ऐलितिषति । गुणे कृते द्विती-
यस्यैकाचो द्विवचनम् । इला पृथिवी । इगुपथलवणः क', टाप् । इल
प्रेरणे चुरादौ ॥ ८६ ॥

विल संवरेणे 'दन्त्येऽष्टादि । विनति । आविलम् । वेनतीति
वेनेः शपि गतम् । कल विल सेपदति चुरादौ ॥ ८७ ॥

विन भेदने ॥ विलतीति विलम् । वेनतीति शपि । अयं चुरादौ
चेत्यात्रेयः । मैत्रेयस्त्वत्रैव पपाठ नान्यत्र । आष्टादिरयम् ॥ ८८ ॥

णिल गहने ॥ प्रणिलति । 'उपसर्गादसमासिपी'ति णत्वम् ।
निनेल । नेलितेत्यादि ॥ ७९ ॥

हिल भावकरणे ॥ भावकरणमभिप्रयमूचयम् । हिलति । जिहे-
लेत्यादि ॥ ८० ॥

शिल षिल उञ्छे ॥ आद्यस्तालव्यादिरितरो मूर्धन्यादिः । शिल-
ति । सिलति । सिषेल । 'आदेशप्रत्यययोरि'ति प्रकृतेः षत्वम् । सेल
तीति शपीत्यात्रेयः ॥ ८१ ॥

मिल श्लेषणे ॥ मिलतीत्यादि । मिल इति स्वरितेत्त्वये भवि-
ष्यति । तस्येह पाठे प्रयोजनं कर्त्रभिप्रायेणि क्रियाफले परस्मैपदम् ॥ ८२ ॥

लिख अक्षरविन्यासे ॥ लिखति । लिलेख । लेखिता । लेखि-
ष्यति । लिखतु । अलिखत् । लिखेत् । आशिषि लिख्यात् । अलेखीत् ।
लिलिखिषति । लिलेखिषति । लिखित्वा । लेखित्वा । लिखितः । लिखि-
तवान् । लेखनः । लेखनी । टित्त्वान् डीप् । रेखा लेखा । भिदादिपाठा-
दङि गुणो लकारस्य वा रेफादेशः । हृल्लेखः । कर्मण्यण् । 'हृदयस्य
हृल्लेखे'ति हृद्भावः, लेख इत्यणन्तस्य ग्रहणादृजन्ते लेखशब्दे उत्तरपदे
हृदयलेख इति भवति । अत्राण्यग्रहणादेवाणन्ते लेखशब्दे उत्तरपदे हृद-
यस्य हृद्भावे सिट् पुनर्लेखोपादानमुत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणपरिभाषा
न व्याप्रियतइति ज्ञापनार्थं न तु घञन्तस्यापि ग्रहणार्थमिति प्रागप्यु-
क्तम् । दन्तलेखकः । 'नित्य क्रीड, जीविकयो'रिति समासः । अत्र
के चित्, कुटादिभ्य इत्यत्र कुटस्यादिः, कुटआदिर्येषामित्येकशेषवृत्त्या
बहुव्रीहितत्पुरुषयोर्द्वयोरप्याश्रयणात् लिखितुं विश्वसृजोपि शक्तिहानिः,
स्वयमेव लिखिष्यतइति समर्थयन्ते, तेषां लेखितेत्यादौ सर्वत्राञ्णित्
प्रत्यये गुणाभावात् लिखितेत्यादि स्यात् । तच्च 'रलो व्युपधादी'-
'श्वरेतो मुनि'त्यत्र वृत्तौ लेखित्वा लिखित्वा लिलेखिषति विलेखितुमिति

दर्शनादा^१ निचने इति निर्देशाच्च नार्हम् । वर्तमानोपानेचनइति निर्देशा-
नचुत्तरेण^२ दृष्ट इत्यान । अन एव दृष्ट्यादिविरोधा^३ 'स्मर'पूर्वको विधि-
रनित्य इति निमित्तेत्यादे^४ सर्वत्र कैश्चिदुपाभावात् अत्रतममुक्तम् ।
किञ्च निमित्तं स्वयमेव निमित्तानि द्वावेव प्रयोगौ प्रस्तुत्य यद्यप्य-
यमुपपादनीय 'मत्तापूर्वको विधिरनित्य' इति ह्यदनेनाभिधानाच्च ।
अत्रात्रेयः । 'अपेक्षेदमन्य'नामापुगि नि दीक्षाञ्चारणादत्यत्रापि भव-
तीति केचिदिति । तेन निचमात्रेण निच ययनीति भवति ॥ ८३ ॥

कुट कैटिल्ये ॥ कुटति । कुकेट । कुकुटतुः । कुकुटिष ।
कुकेट । कुकुट । कुकुटिष । 'गङ्गकुटिभ्योङिन्दि' इति अत्रणि-
त्प्रत्ययस्य डित्वाच्च गुणः । उन्मेषेण निचविकल्पनात्पते डित्वाच्च-
गुणत्वम् । कुटिना कुटयति । कुटन् । अकुटन् । कुटेन् । अत्रापि
कुट्यात् । अकुटीत् । अकुटिष्टाम् । कुकुटिरति । कुटित्वा । 'रनो व्यु-
पधादि' इति किञ्चविकल्पनात्पूर्वविप्रतिषेधेन कुटादिडित्वमिष्यते । तस्य
ज्ञापकं सर्वत्र मनन्तादात्मनेपदप्रतिषेध इति वार्तिकम् । सर्वेषु पक्षेषु
मनन्तादात्मनेपद प्राप्नोति कुकुटिपति डित्वात्मानेपद प्राप्नोति तस्य
प्रतिषेधो वक्तव्य इति । भाष्यञ्च यदि हि किञ्च म्यात निचनेना-
त्मनेपदप्रतिषेधश्चनेनेति । तथा 'उनुद'नटिन' इत्यत्रोपदेशानुवर्त्तनं च
डित्वस्य पूर्वविप्रतिषेधे प्रमाणम् । तस्य ह्यानिदेशिक डित्वं कुटादिभ्यो
व्यवर्त्यम् । किञ्च डित्वं कुटादिमञ्जिणं चापेतने, किञ्च तु रल
न्तादुपपादनादे पर मेठ मनमपेतनइति बहुपेतम्, तस्मादन्पापेन
डित्वमन्तरङ्गं च । चोक्त्यते । चोक्तुर्ति । चोक्तुः । गणेन निर्देशा-
न्डित्वं न यदुल्लिखितं । कोटयति । अचूकुटन् । णिचो णित्वाच्च डित्वम् ।
कोट्यः । कोटः । एयधञोर्णिन्त्वादडित्वम् । कुटपः परिमाणम् ।
'उपिकुटिर्दालरुचिर्गजिभ्यः कपन्ति' इति कपन् । कुटुरुः । वर्तुकी पत्नी
च । कुटेः किञ्चेत्युक्तं । कुटादिन्वन्दिन्वादेव किञ्चफले मिद्वे किद्वे-

१ अपाञ्चतन्त्राच्छकृन्निच्य सेवने इति ४ पु. पा ।

२ अयुक्तमिति ४ पु. पा ।

चनं तस्यानित्यत्वज्ञापनार्थत्वेन ध्रुवतेरित्रप्रत्यये ध्वित्रमिति गुणो
भवतीत्याहुः । कुट्टलम् । 'कुटिकुपिभ्या क्ललनि' ति क्ललन् । कुटरो मन्य-
विष्कुम्भः । बाहुलकादरः । कोटरः । कोटरावणम् । 'वनगिर्या सञ्ज्ञाया
कोटरे' ति दीर्घः । 'वन पुरगे'त्यादिना णत्वम् । अत्रैव च कोटरेति
निर्द्वंशादरे^१ गुणः । कुटिलम् । बाहुलकादिलच् । कुटिलिका । कर्षाराणा
सन्दशिनी । सञ्ज्ञायां कन् । कुटिलिकया अगारान् हरतीति कौटि-
लिकः कर्मारः । 'अण् कुटिलिकाया इत्यण् । कुटी । इक्षन्ता 'त्क्षदि-
कारादक्षित' इति ङीष् । अल्पा कुटी, कुटीरः । 'कुटीशमीशुण्डाभ्यो
र' इति रः । कुट प्रतापने इत्याकुस्मीयः । कूट परितापे इति कथादिः ।
दीर्घापधो, ऽयमपि ह्रस्वोपध इत्यात्रेयः । उभावपि दीर्घापधादिति मैत्रे
यः ॥ ८४ ॥

पुट संश्लेषणे ॥ पुटतीत्यादि कुटिवत् ॥ पुटः, पुटिका । अल्पा-
पुटः पुटिका । महास्तु पुटः । पुटकृतादीनामुपपन्नानामिति समा-
नाधिकरणसमासः । 'अन्येषामपि दृश्यत' इति दीर्घः । प्रतिपन्नाद्यपे-
क्षमेकस्याल्पत्वमहत्वे । अय भाषार्थश्चुरादौ दण्डके । ससर्गार्थस्तु
कथादौ ॥ ८५ ॥

कुच सकोचने ॥ अत एव निर्द्वंशात् ल्युटि गुण इति काश्यपः ।
कुचति । निकुचितेत्यादि । सकोचः । 'न क्वादे' रित्यकुत्वम् । कोच-
तीति शपि ॥ ८६ ॥

गुज शब्दे ॥ अव्यक्ते शब्दे इत्यात्रेयः । गुजतीत्यादि । गोजः ।
घञि 'न क्वादेरि' ति न कुत्वम् । गुञ्जतीति शपि ॥ ८७ ॥

गुड रक्षायाम् ॥ गुडतीत्यादि । गुड इत्तुविकारः सन्नाहश्च ।
इगुपधलक्षणः कप्रत्ययो 'घञर्थे कविधानमि' ति कर्मणि वा । गुडितो
हस्ती, सजातसन्नाह इत्यर्थः । तारकादित्वादितच् । गुडा खुही^३ ।
टाप्, तत्प्राया केशा अस्य गुडाकेशः ॥ ८८ ॥

१ प्रत्ययइत्यधिकम् ।

२ सञ्ज्ञा, जातेति ४ पु. पा. ।

३ वृक्षविशेषः ।

डिप क्षेपे ॥ डिपति । डिपेय । डिपित्व्यादि । डिप्यतीति श्यति ॥ ८२ ॥

डुर छेदने ॥ डुरति । डुर्येत् । डुरित्व्यादि । डुर्यात् । डुर्या-
स्तमित्व्यादि । अत्र 'रुति चे' ति दायेत्य नभकुर्त्तरामि' ति तिरोधः ।
डुरिका । 'कुन गित्तिमयो'र'ति डुरन । आच्छुरितकम् । मोन-
प्राप्ते नामः । निष्ठात्मात्मज्ञया कृत् ॥ ८३ ॥

स्फुट विरूपणे । स्फुटति । स्फुटोऽट । 'स्फुटोऽः खय' इति
खय, शेषः । स्फुटनइति शब्दात्मनेपदी । स्फुटनीति विशरणार्थः
परस्मैपदी तत्रैव । भेदनायैवुरादौ ॥ ८४ ॥

मुट आक्षेपप्रमर्दनयोः । मुटति । मुटोऽट । मुटित्व्यादि ।
मोटतीति प्रमर्दने शपि ॥ ८५ ॥

जुट छेदने ॥ जुटति । जुटोऽट । जुटित्व्यादि । 'वा भाशे' ति
शत्रियथे वा श्यन् । जुटयति । जुटयन् । जुटयेत् । अजुटयन् । जोटिः ।
एयन्ताद् 'च इति' त्यौगदिक इत्यर्थः ॥ ८६ ॥

तुट क्लृप्कर्मणि ॥ तुटति । तुटोऽट । तुटित्व्यादि । तुटिः ।
'इक्कृत्यादिभ्य' इत्यात्रेयः ॥ ८७ ॥

चुट कुट छेदने ॥ चुटति । चुटनीत्यादि । चोटनीति शपि ८६-८७ ॥

जुड वन्धने ॥ जुरेण चुरादिः जुडति । जुजोड । जुडिते-
त्यादि ॥ ८८ ॥

कड मदे ॥ कडति । कडाड । कडित्व्यादि । अस्य हिक्कार्या-
भावादिव पाठो इकारान्तमात्रानुशेषेन । कुटादिव्योऽन्यत्रापि शक्यते
पठितुम् । अयं भ्यादौ च । पुनः पाठकलमुच्छ्वितवन् ॥ कण्डते इति च
शपि ॥ ८९ ॥

लुट सश्लेषणे ॥ लुटति । लुटोऽट । लुण्ठनीत्यान्त्यप्रतिघातयोः
शपि । लोटति । लुटयतीति श्लोडने शपि श्यति च । लोटनीत्युप-
घाते शपि । प्रतिघाते लोटने इति द्युतादौ । लुण्ठनीति स्तेये शपि ।
गतावपि लुण्ठनीति शपि । लुड इत्येक । अयमपि शपि गतौ ॥ ९० ॥

कुड घनत्वे ॥ घनत्व सान्द्रता । घसनइत्येके । कुडति । चकडं ।
कुडितेत्यादि ॥ १०० ॥

कुड बाल्ये ॥ कुडति । कुकोड । कुडितेत्यादि ॥ १०१ ॥

पुड उत्सर्गे ॥ पुडतीत्यादि । मुड इत्यात्रेयः ॥ १०२ ॥

घुट प्रतीघाते ॥ अयं प्रथमान्तः । घुटति । लुघोट । घुटिते-
त्यादि । घोटकः । श्वुल् । घोटः । घञ् । अयं द्युतादावात्मनेपदी
गतः । १०३ ॥

तुड तोडने ॥ अयं तृतीयान्तः । प्रथमान्तः कलहकर्मार्थः पूर्वत्र
पठितः । तोडन भेदः । तुडति । तुतोड । तुडितेत्यादि । तोडने तो-
डतीति शपि ॥ १०४ ॥

युड स्फुड सवरणे ॥ युडति । तुथोड । युडितेत्यादि । स्फुडति ।
पुस्फोड । 'शूर्पूवाः खय' इति खयः शेषः । स्फुडितेत्यादि । खुड कुड
इत्येके । अत्र कुड सघातइत्यात्रेयः, बाल्ये पठितस्येह पाठोऽर्थभेदादिति
तस्याभिप्रायो द्रष्टव्यः । अत्रापठतां मैत्रेयादीनां धातूनामनेकार्थत्वाद्-
चापि वृत्तिर्भविष्यतीत्यभिप्रायः १०५-१०६ ॥

स्फुर स्फुल सचलने ॥ स्फुरतिस्फुलत्योरित्यत्र न्यासे स्फुर स्फुल
चलने इत्यनुपसृष्ट पठ्यते, अत्र केवलं शब्दो भिन्नोऽर्थस्त्वेक एव । आत्रे
यस्तु स्फुर स्फुरणे, स्फुल सचलने इति पपाठ । 'स्फुरतिस्फुलन्योर्निर्निवि-
भ्य' इति वा षत्वम् । निर्निषोः साधारणमुक्तमुदाहरणम् । पुस्फोर । स्फु-
रिता । स्फुरिष्यति । स्फुरतु । अस्फुरत् । स्फुरेत्, स्फूर्यात् । 'हलि चे' ति
दीर्घः । स्फुरिता, स्फुरिष्यति, सेट्त्वा 'हलि चे' ति न दीर्घः । कुटा
दित्वा 'द्रलो व्युपधादि'त्यत्र न भवति । पोस्फूर्यने । पोस्फोर्ति । दीर्घस्या-
सिद्धत्वाद्गुणः । पोस्फूर्तः । स्फारयति । स्फोरयति 'चिस्फुरोर्णावि' ति
वा ऽऽत्वम् । अपुस्फुरत्, आत्वपक्षेणो कृतमभ्यासे स्थानिवदित्यभ्या-
सस्योकारान्तत्वे ह्रस्व इत्युकारः । 'क्रोः पुयण्जी' ति इत्थं न भवति,

१ तुड इति ४ पु- पाठः । धातुपाठे तु युड स्युड इति दृश्यते । अयमेव
पठो युक्तः, उत्तरवास्मिन्नेवायं स्फुडतेर्वच्यमाणत्वात् ।

सकारेण प्रत्ययस्य व्यवधानात् । एवं त्यन्त्यस्यपि पुष्पोरयिषनि
पुष्परयिषिणि भवतः मैत्रेयस्तु स्फुर स्फुरणे इति पृथक् पठित्वा स्फुर
इत्येके अदुर्धः, स्फुरति । पम्फारेत्याह । प्फुनर्नान्यादि स्फुरतिवत् ।
णावत्वस्य न भवति । तथा 'हलि च' इति टादित्वमपि न भवति,
अरेकान्तत्वान् ॥ १०८-१०९ ॥

स्फुड चुड ब्रुड सवरणे । मैत्रेयैते न पठन्ते । अत्रेवाद्यस्तु
पठन्ति । स्फुडति । पुम्फोड । खः शेषः । चुडति । चुवोड । ब्रुडति ।
बुवोडेत्यादि । अत्र क्रुड भृड निमज्जनइत्येके इत्यत्रेयः । मैत्रेयस्तु
क्रुडं पठित्वा भृड इत्यप्येके इत्याह । क्रुडति । क्रोड । घञ् । क्रोडा ।
अरदातामुर, टावन्तोऽयं स्वभावतो विशेषविषयः । कन्याणां क्रोडा
यस्याः सा कन्याणक्रोडा । बहुव्रीह्यावुदमर्जनइत्यत्र 'न क्रोडादिव-
हृव' इति स्वाङ्गनतृणा डीष् निषिध्यते । क्रोडादिषु टावन्नस्य पाठाद्
भुजान्तरमात्रवचनस्य क्रोडशब्दस्य बहुव्रीहौ स्वाङ्गनतृणा डीष्पिकल्प
एव भवति । कन्याणक्रोडी कन्याणक्रोडा मयूरीति । भृडर्नान्यादि ।
ब्रवाद्य उदात्ता उदानेतः ॥ १०९-११०-१११ ॥

अथ सेटमात्मनेपदिनमाह ॥

गुरी उद्यमने ॥ गुरने । जुगुरे । जुगुरिषे । गुरिता । गुरिष्यते ।
गुरताम् । अगुरत । गुरेत । गुरिषीष्ट । अगुरिष्ट । अगुरियातम् ।
जुगुरिषते । जोगूर्यते । जोगोर्ति । गोरयति । अजुगुरत् । खट्वापगारं
युध्यन्ते खट्वापगोरमिति वा, त्वरथा खट्मुद्राम्य युध्यन्तइत्यर्थः ।
'द्वितीयाया चे'ति परीप्ताया णमुन्, 'अपगुरोर्णमुनी'ति वात्वम् ॥
गूर्यः । गूर्यवान् । ईदित्वादिनित्त्व गूर्निः । 'तितुत्रे' तीणिनयेधः ।
दीर्घापधाय चुरादौ, हिमागचोर्दिवादौ, ईदित्वादानुदात्तेत् ॥ ११२ ॥

निटायामनिटत्वनाम्नान् पुनः परस्मैपदप्रस्तावः ।

गू स्तवने । हस्तान्तमात्रे यादयः पठन्ति । यथा तु भाष्य तथा
दीर्घान्तः । यदाह कुटादिभूत्रे तस्माच्चूत्वा धूत्वेत्येव भवितव्यमिति ।

विधिरस्तु सूत्रं किं डित्वेन तत्क्रियते 'नास्यनुदात्तेऽङिदुपदेशादि' इति विशेषणार्थं, तेन माहिमृतेत्यत्र लसार्वाधातुकानुदात्तत्वे धातोरन्त इति धातोरुदात्तत्वं भवति । अत एव डित्वसामर्थ्यात्सिञ्जलोपस्य पूर्वञासि-
द्वत्त्वं नेति लसार्वाधातुकस्य डितः परत्वं भवति । अन्यथा प्रत्ययाद्भुदात्तत्वे धातुरनुदात्तः स्यात् । न च 'तिङ्ङितिङ्' इति सर्वनिघातप्रसङ्गः । 'हि चे' इति निषेधात् । मुमूर्षति । सनः कित्वे दीर्घ-त्वरपरत्वदीर्घा । 'पूर्व-
वत्सन' इति तङञ्च न भवति, नहि श्रियतिमात्रमात्मनेपदस्य निमित्तं, किन्तु शिञ्जुङ्लिङोपि । न चात्र ते श्रियतेरनन्तराः सभवन्ति । मरीची-
यते, 'रीङ् चत' इति रीङ् । मर्मरीति । मर्मर्त्तीत्यादि । मारयति । अमी-
मरत्, मृत्वा । मृतः । मृतवान् । न श्रियते इति अमृतम् । 'मतिबु-
द्धिपूजार्थेभ्यश्चे'त्यत्र चकारस्यानुस्समुच्चयार्थत्वाद्बुद्धेर्माने क्तः । नञ्स-
मास । अमरः । पचाद्यच् पूर्ववत्समासः । मृत्युः । 'भुजिमृद्भ्या युक्-
त्युक्तावि' इति त्यक्, अनुदात्तावात्मनेभाषौ ॥ ११९ ॥

रेफत्रदनिट्प्रकरणादाह ॥

रि पि गतौ ॥ रियति । लघूपधगुणादन्तरङ्गत्वादियङादेशः । रिराय ।
रिर्यतुः । रिर्युः । 'एरनेकाच' इति यण् । रिरयिथ । रिरियिथ । रिरिथ । रि-
र्यिम । क्तादिनियमादिट् । य 'ल्यचस्तास्वदि' तीणिनपेधः । भारद्वाजनिय-
माच्च विकल्पः । रिर्येतुर्गित्यादौ यणो वन्तिरङ्गलक्षणस्यामिदृत्वाङ्गे-
फस्य हल् परत्वाभावा 'दुपधाया चे' इति न दीर्घः । रेता, रेथति ।
रियतु । अरियत् । रियेत् । आशिषि । रीयात् । अङ्गत्सार्वाधातुकयो-
रिति दीर्घः । अरैषीत् । अरैष्टाम् । अरैषुः । रिरिषति । सनः कित्वे-
'ऽञ्जनगमामि' इति दीर्घः । रेरीयते । रेरीयति । रेरेति । राययति ।
अरीरयत् । पियतीत्यादि रियतिवत् ॥ १२० ॥ १२१ ॥

धि धारणे ॥ धियति । दिधाय । दिध्यतुः । दिध्युः । दिध-
यिथ । दिधेथ । धेतित्यादि ॥ १२२ ॥

क्षि निवासगत्योः ॥ क्षियति । क्षिप्ताय । क्षिप्तिर्यतुः । क्षिप्तिर्युः ।
क्षिप्तिर्यिथ । क्षिप्तेथ । संयोगपूर्वत्वान्न यणादेश इतीयङ् । क्षेतित्यादि

रियनिवत् । प्रतीय । 'त्रिय इति त्यपि दीय । त्रीणि देवदत्तः । अक-
र्मत्वाद्गुण्यत्वाद्वा कनरि कः । 'निष्ट'प'न'त्यदर्थे इति दीयः ।
एयदर्थो भावकर्मणो त्रियो दीयादि नि निष्टानत्वम् । इदमेया
त्तीण 'कोधिराणे च' ति श्रियाद्येत्याद्गुण्यत्वाद्वाधिकरणे कः ।
दीयत्वान्त्ये पृथ्वत् । भावे तु त्रिन एयदर्थत्वेन दीयाभावान्न निष्ठा-
नत्व, त्रीणापुर्व्वपन । त्रिनापुर्व्वपन । त्रीणकः त्रिनकः । कान्ता-
दनुकम्पाया कन्, 'वाक्त्रोगदैन्ययोरि' ति दीयविकल्पः, पूर्व्ववर्द्धयनन्त्ये ।
तयो । 'त्रिटृतीत्यादि'नेति । रियन्यादयोनुदाना उदानेनः ॥ त्रय-
तीति गत अपि ॥ १=३ ॥

प्रकारवन्त्यस्मैपटिप्रमङ्गानादृश मेट्माह ॥

पू प्रेरणे ॥ सुवति । सुवतः । सुवन्ति । सुवमि । सुवामि । सुषु-
वति, 'उपमर्गात्सुनेतिमुवती' ति षत्वम् । सुषाव । सुषुवतुः । सुषुविष ।
सुषुषिव । अभ्यासान्तरत्या 'देशप्रत्यययोरि' ति षत्वम् । सुसुषाव ।
विमुषाव 'उपमर्गादि' ति षत्वमभ्यासस्य 'स्याद्विष्वभ्यासेन चाभ्या-
सस्य' ति नियमाच्च भवति । मविना । मविष्यति । सुवतु । असुवत ।
अभ्यपुवत् । 'प्राक्तिनाद्व्यवायेपी' ति षत्वम् । सुवेत् । सूयान । अमाश्रित् ।
असाविष्टाम् । अभ्यषावीत् । नङ्बन्त्य, मुमुषति । 'स्तौ'नियेयोरि' ति न
षत्वम् । अभिसुमुषति । पूर्व्ववत्स्यादित्यन्यादभ्यासस्य न षत्वम्, प्रकृ-
तेश्च 'स्तौ'नियेयोरि' ति नियमात् 'सनि यद्गुहोश्च' त्यसिट्त्वा-
'दिको भलि' ति सनः क्तिन्त्वम् । सोषूयते । सोषोति । मावयति ।
अमूषवत् । सूत्वा । सूतः । सूर्यः । 'राजसूर्येत्यादिना क्यपि रुडागमः ।
सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । 'सूर्याद्वेवनाया वावृत्तक्य' इति वाप् ।
पुयोगडीपोपवादः । अदेवताया तु डीषेव सूरी मानुषीति । 'सूर्यति-
ष्ये' ति तट्टिते इति च भसज्जानिमित्ते यलोपः । सूर्यस्येदं सौर्यमि-
त्यत्र सूर्यस्य हे च ह्या चेति नियमाच्च लोपः । यद्यप्यत्र 'यस्येति
चेत्यल्लोपस्य यलोपविधिन्मति न स्थानिवदिति स्थानिवत्त्वनिषेधा-
च्चाकारो नोपधस्तथा 'प्यसिट्त्वदन्नाभादि' त्यसिट्त्वादुपधात्वादस्ति

लोपप्रसङ्गः, सौरी बलाकेत्यत्र तु 'तेनैकदिगि' त्यणि डीप्यणो
'यस्येती' तिलोपस्य पूर्ववदसिद्धत्वादुपधायकार इति तस्य लोपः ।
इकारपरत्वात्, न चाणि यो यस्येतिलोपस्तस्यासिद्धत्वादनुपधात्व-
मिति शङ्कम् । अण्यल्लोपो यलोपस्त्वतीति व्याश्रयत्वेनासिद्धत्वा-
प्रसङ्गात् । न च स्थानिवद्भावेनोपधात्वभङ्गः । यलोपविधौ तस्य निषे-
धात् । नत्वेषमपि यकारः सूर्यस्योपधा न भवति किन्त्वणन्तस्येति
लोपो न स्यात् । नैष दोषः । नात्र सूर्यादिभिरुपधा विशेषयिष्यामः
किन्तु भसङ्केन, भस्योपधा यो यकारो वस्तुनः सूर्यादिसम्बन्धीति । एष
च सौरीयमित्यत्रापि अण्ताच्छे पूर्ववद् यलोपः सिध्यति । सौर्यं हिम-
वतः शङ्के इत्यत्र पूर्ववदणि । 'नपुंसकाच्चे' ति शीभावे पूर्ववदीति प्राप्ता
यलोपो ड्यामितीकारस्य विशेषणान्न भवति । सौरो मन्त्र इति प्रयोगस्तु
सूरशब्दादणि द्रष्टव्यः । प्रसवी । 'जिटृक्षिवी' त्यादिनेनिः । सवित्रम् ।
'अर्त्तिलू' इति इत्रः । सूरः । 'सूसूधाष्टविभ्य क्रनि' ति क्रन् ।
सूरिस्तु सूडः किरिति, पूड उक्त, सूते सूयतइति लुक्श्रयनोः ॥ १२४ ॥

कृ विक्षेपे ॥ किरति । किरतः । 'चत इट्ठातोः' तीत्वम् ।

चकार । चकरतुः । चकारिथ । चकार । चकर । चकारिव, 'चच्छत्यृता'
मिति लिटि गुण, णिति पूर्वविप्रतिषेधे 'नाचो जिणी' ति वृद्धिः, कृते वा
गुणे 'अत उपधाया' इति वृद्धिः । करिता, करीता, करिष्यति । करी-
ष्यति । 'वृतावे' तीटो वा दीर्घः । किरतु । अकिरत् । किरत् । कीर्यत् ।
इत्वे 'हलिचे' ति दीर्घः । अकारीत् । अकारिष्टाम् । सिचि वृद्धिः ।
'वृता वे' तीटो दीर्घस्य 'सिचि च परस्मैपदेष्वि' ति निषेधः । चिक-
रिपति । 'सनि यहगुहोश्चेति' चण्डादुगन्तलक्षणनिषेधे प्राप्ते तदप-
वाद 'इट् सनि वे' ति विकल्पे च प्राप्ते 'किरश्च पञ्चभ्य' इति
नित्यमिट् 'अस्य दीर्घत्व नेच्छन्तीति वामनः, हरदत्तो दीप्तिरेवेयमिति ।
भागवृत्तौ त्वत्रापि दीर्घविकल्पो दृश्यते । चेकीर्यते । परत्वादित्वादौ
द्विवचनम् । चाकरीति । चार्कत् । अभ्यासस्य ह्रस्वारदत्वहलादिशेषेषु ।
'दीर्घोक्ति' इति दीर्घः । 'चतश्चे' ति अभ्यासस्य रुगादिविधौ

नपरस्करात्समर्थादुकारान्तस्याह्वय योभ्य'न इति सूत्रार्थव्यवस्थापना-
 दत्राभ्यामस्य ह्रस्वत्वेन चकारान्तत्वेपि तत्राश्रयो न्यादिर्न भवति
 अह्वस्य दीर्घान्तत्वात् । तत्रान्तस्यावावपि प्रतियुज्यते । कारयति ।
 अचीकरत् । अवकिरते हस्ती स्वयमेव, अवकीर्ये हस्ती स्वयमेव, 'भृषा-
 कर्मकिरादिमना बोधमायानमि'ति यस्त्वित्वा, प्रतियेध' । हस्तिन
 कश्चित्पाखादिना अवकिरति तत्र सौकर्यानिगपाटुस्ती कर्तृत्वेन विव-
 द्यतइति कैपटे । अत्र मितो 'निड्'मिते र'न्मनेपदेष्टि'ती द्विरुक्तः ।
 इटपते मितः कित्वाभावाद्गुणः । अवकिरिष्टेत्यादि, 'वृत्' इतीटो
 दीर्घपते अवकिरीष्टेत्यादि वक्ष्ये लिङि 'न लिङी'ति दीर्घनिषेधा-
 'ल्लिङ्मिते र'न्मनेपदेष्टि'तीटो उभाव'भाव'भ्या द्विरुक्तम्, अवकीरीष्ट
 अवकिरीष्टेति । अनिटपते लिङ्मितो 'रुक्'ति कित्वाद्गुणाभावे
 'चन' इतीत्वम् । अपस्किरते इषो वृट् । अपस्किरते कुकुटो भवार्थी ।
 अपस्किरते श्वा आश्रयार्थी । 'किरनेर्हर्षजाविक'कुन'यकरणेष्टि'ति
 तङ् । 'अपाञ्चनुष्पाञ्च'कुनिष्पाने'पते इति अपात्किरतौ परे काल्पर्वः
 मुट्, अत्रापि 'किरनेर्हर्षजाविक'कुन'यकरणेष्टि'ति पञ्चने । तत्र
 किरन्त्यर्थस्य हर्षो हेतुत्वेन विषय, इतरे कनत्वेनेति व्याख्याकारा ।
 तत्र वृट्त्वाद्गुणभो विलिख्य विलिपनीत्यर्थः । इतरोपि कुकुट श्वा च
 जीविकायै कुलायकरणाय च विलिख्य विलिपनीत्यर्थः । अपचस्करे ।
 अपास्किरत । 'अहभ्यामव्यवायेषा'ति मुट् । लुङि तु कर्मकर्तरि चेह-
 दीर्घयोर्विकल्पनाच्चेष्टम् । अपास्कीष्टं अपास्किरिष्ट, अपास्किरीष्टेति ।
 आशिषि लिङ्यपि 'लिङ्मिते र'तीटो विकल्पे न लिङी'ति दीर्घनिषेधे
 च कर्मकर्तृवद् द्वैरुक्तम् । अपस्कीरीष्टं अपस्किरीष्टेति । अनिटपते
 पूर्ववद् 'रुक्'ति लिङ्मितो, कित्वादि । अपस्किरता । अपस्किरीने-
 त्यादि । अपचिस्किरिपते । 'किरश्चे'ती 'ट् सनि वे'ति विकल्प बाधते ।
 अस्येष्टो दीर्घो नेत्युक्तम् । अपचेस्कीर्यते । अपचाकर्ति । किरतावि-
 कृतिपा निट्प्रशादत्र मुण् न भवति । अपस्कारयति अपाचिस्किरत् ।
 अहभ्यासाभ्यामुभाभ्या व्यवधानेपि मुह् भवति । उपस्किरति श्वापदः ।

रुजतीति । रुरोज । रुरुजतुः । रुरोजिथ । रुरुजिव । रोरुक्ता । रोरुज्यति ।
 रुजतु । अरुजत् । रुजेत् । रुज्यात् । अरौक्तीत् । अरौक्ताम् । अरौतुः ।
 भलि सिचो लोपः । 'चोः कुः' । रुरुवति । रोरुज्यते । रोरुक्ति ।
 रोजयति । अरुजत् । निष्पूर्वाय व्याधिप्रशमने । नीरुजति मिताशीति ।
 कूलमुदुजः । 'उदि कूले रुजिवहो' रिति खश् । रोगः । 'पदरुजे' ति
 कर्तरि घञ् । हृद्रोगः । हृदयरोगः । 'वा शोकष्यज्जोरोगेष्वि' ति हृद्वा-
 वधिकल्पः । रुक्त्वा । रुग्णः । रुग्णवान् । आदित्वाचत्वम् । लुभं
 जीर्णवस्त्र, 'कपिलिकादीना सजाह्वन्दसो' रिति लत्वम् । रुजा । भिदा-
 देराकृतिगणत्वादङ् ॥ हिसार्थाय चुरादौ ॥ १३२ ॥

भुजो कौटिल्ये ॥ भुजतीत्यादि रुजिवत् । मूलविभुजो रथः ।
 'मूलविभुजादीनामुपसंख्यानमि' त्यलोपवादः कः । 'भुजानवन' इत्यत्र
 संयोगवद्विप्रयोगस्यापि विशेषस्मृतिहेतुत्वादवत्सा धेनुरानीयतामिति-
 वदनदनप्रतिषेधेन सभवनवनसवन्यो रौधादिक एव एह्यते । उक्तञ्च
 तत्र भाष्ये, अनवनकौटिल्ययोरिति वक्तव्यमिति । तस्मादस्मान्न
 तङ् ॥ १३३ ॥

कुप स्पर्श ॥ द्वितीयादिरयम् । केचित्प्रथमादिस्पृष्टान्ति ते भाष्य-
 विरोधादुपेत्याः । तथा च 'दीर्घाकित' इत्यत्र चेच्छ्रुयते चोच्छ्रुयते
 इत्यत्र 'के चे' ति तुकि गुणो न प्राप्नोतीत्याशङ्क्य परत्वाद्गुणे पश्चात्तु-
 गिति समर्थितम्, हरदत्तोपि परत्वाद्गुणे कृते पश्चात्तुगित्याह । कुपति ।
 चुच्छोप । चुच्छुपतुः । चुच्छुपिथ । चुच्छुपिव । कोप्ता । कोप्स्यति ।
 कुपतु । अकुपत् । कुपेत् । कुप्यात् । लुडि अच्छौप्सीत् । अच्छौ-
 प्ताम् । चुच्छुप्सति । चोच्छ्रुयते । चोच्छ्रौप्ति । कोपयति । अचुच्छु-
 पत् । कुप्त्वा । कुप्तः ॥ १३४ ॥

रुश रिश हिसायाम् ॥ रुशति । रुरोश । रुरोशिथ । रुरुशिव । रुरो-
 ष्टा । रुरुज्यति । रुशतु । अरुशत्, रुशेत् । रुश्यात् । अरुशत् । 'शल
 इगुपधादनिट' इति क्तः । रुशति । रुरुशयते । रुरोष्टि । रुरोशयति ।

अरुशन् । रिशति । रिरेश । रेश्यति । रिशन् । अरिशन्, रिशेत् ।
अरित्तन् । रिरित्तति । रेरिश्यते । रेरेष्टि । रेशयति । अरीरिशन् ॥
१३५-१३६ ॥

लिश गनौ ॥ लिशतीत्यादि रिशतिवत् । लिश्यते इति द्वैषा-
दिकस्य ॥ १३७ ॥

स्पृश सम्पर्शने ॥ स्पृशति । पस्पृश । पस्पृशन्तुः । पस्पृशिय । पस्पृ-
शिव । श्वयः शेषः । स्पृश । स्पृशन्तु । अस्पृशन् । स्पृशेत् । स्पृशयान् ।
अस्पृशन् । अस्पृश्याम् । अस्पृश्यान् । अस्पृशतीन् । अस्पृश्याम् । अस्पृश-
तुः । 'स्पृशमृशे'ति पक्षे सिचि पूर्ववदभ्यङ्ग्यः । अन्यदा क्तः । अस्पृ-
तदित्यादि । पिस्पृशति । उरदत्वे 'मन्यन्' इत् नन्वम् । परिस्पृश्यते ।
परीस्पृष्टि । हयिकोरप्युदाहार्यम् । अपरिस्पृशित्यत्र 'क्विप्रत्ययस्य कु-
रि'ति पदान्ते कृत्व, रात्मस्ये'ति नियमात् सयोगान्तरात् ।
इह किञ्चिद्दृष्टो धातुः क्विप्रत्यय उच्यते । अन्त्येवास्य किञ्चो विधान
'स्पृशानुदक्ते क्विचि'ति । मन्त्रेण स्पृशतीति मन्त्रस्पृक् । स्पृशानुदक्ते
मुबन्तमात्रे उपपदे क्विन् । उदक् स्पृशतीत्यत्र क्रमेण्यण उदकस्पृश
इति । हृदिस्पृक् द्विविस्पृशित्यत्र 'हृद्यभ्या डेरुमयानमि'त्यनुक् ।
स्पृशो रोगः । 'पदरुज्विगस्पृशो घञि नि घञ् । तत्र वार्तिक स्पृश उप-
ताप इति, स्पर्शवान् आद्यविस्पर्श उच्यते ॥ १३८ ॥

विच्छ गनौ ॥ उदानेत् । विच्छायति । 'छे चे'ति तुक् । 'गु-
पूथूपविच्छी'त्यायः । सार्धधातुके नित्यम् । विच्छायाञ्चकार । विविच्छ ।
विविच्छतुः । विविच्छिथ । विविच्छिव 'आयादय आट्टधातुके वे'-
त्याट्टधातुके भाविन्यापोत्यन्तिविकल्पः । निवृत्तिविकल्पे प्रत्ययलक्षणना-
यान्तत्वादात्म्ययः स्यात्, विच्छाञ्चकारेति । विच्छिता विच्छायिता ।
विच्छिष्यति । विच्छायिष्यति । विच्छायतु । अविच्छिष्टाम् । विविच्छि-
पति । वेविच्छते । यङनुको विवृतायान्त्वार्धधातुकविषयन्त्वस्यैवापहारा-
दायोत्यन्तिविकल्पो नैति प्रागेवोपपादितत्वाद्भङ्गानुज्ञास्ति । विच्छयति ।
अविच्छिन्न । अविच्छिन्नायत । विरतः । 'यजयाचे'ति नङ्, 'च्छो गृहि'

ति शः, 'नेद्विशि कृती' तीक्ष्णघेधः, विच्छित्त्वा । विच्छायित्वा ।
विच्छितः । विच्छायितः । अय भासार्थं चुरादौ ॥ १३९ ॥

विश प्रवेशने ॥ विशति । इत्यादि रिषतिवत् । निविशते ।
'नेविश' इति तङ् । उत्तरसूत्रोपात्तैः पर्यादिभिः साहचर्यादिहोपसर्गो
गृह्यते न तु तत्प्रतिरूपक इत्यङ्के निविशति भयादित्यत्र तङ्भावाः प्रति-
रूपकापेक्षो द्रष्टव्यः । निविशिरे । निविशिशिरे । निवेष्टा । निवेत्यते ।
निविशताम् । न्यविशत । निविशेत । निविक्षीष्ट । न्यविक्षत । निविशि
क्षते । निवेविश्यते । निवेविशीति । निवेवेष्टि । विष्टः, विष्टवान् ।
विष्ट । विशौ । विशः । क्षिप् । देवविशा । अजादिपाठादुलन्तादपि टाप् ।
वेशः । 'पदरुजविशे' ति कर्तरि घञ्, वेश्या जनसमाश्रये तु 'हलश्चे' ति
अधिकरणे घञ् । गेहानुप्रवेशमास्ते गेहगेहमनुप्रवेशमास्ते । 'विशिपदी'-
त्यादिना णमुल् । तृतीयाप्रभृतित्वात्समासविकल्पः । असमासे व्या-
प्यमानताया द्व्यवचनस्य द्विर्वचनम् । आसेव्यमानतायान्तु क्रियावचनस्य
णमुलन्तस्य, समासे तु व्याप्यासेवयोस्तेनैवाक्तत्वाच्च द्विर्वचन, त्वाप्यत्र वा-
सरूपेण भवति । गेहमनुप्रविश्यानुप्रविश्यास्ते गेहगेहमनुप्रविश्यास्तइति ।
समासस्त्वस्य न भवत्यनुपपदे विधानादित्येतत्सर्वं स्कन्दन्यादावुक्तम् ।
याममभिनिविशते । 'अभिनिविशश्चे' त्याधारः कर्म । अत्र मण्डूकपुत्या
'परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्यामि' त्यतोऽन्यतरस्याग्रहणानुवृत्तेस्तस्य च
व्यवस्थितविभाषात्वात्कल्याणेऽभिनिवेशः, पापेऽभिनिवेशः, याया संज्ञा
यस्मिन्नभिनिविशते इत्यादौ कर्मत्वाभावः । वेशन्तः । 'दृविशिभ्या भक्षि'-
ति भक्ष् । 'भोन्तः' । वेश्म । मनिन् ॥ १४० ॥

मृश आमर्शने ॥ आमर्शनं स्पर्शः ॥ मृशतीत्यादि सर्वं स्पृशति-
वत् ॥ १४१ ॥

गुद प्रेरणे ॥ कर्त्रभिप्रायेपि क्रियाफले परस्मैपदार्थः पुनः पाठः,
नुदतीत्यादि रूपं पूर्ववत् ॥ १४२ ॥

षट्त्व विशरणगत्यवसादनेषु ॥ एवं धनपीलः । विसरणइत्या-
त्रेयमैत्रेयौ दुर्गश्च, शिति 'पाप्मेन्यादिना सीदादेशः । सीदतीत्यादि,

अन्यत्र समादेत्यादि सर्वे भौवादिकवत् । इह पाठे प्रयोजन मादन्ती
मीदन्तीनि नुम्विकल्पः । अथ तर्ह्येतेनैव रूपद्वये मिद्रे तत्राम्य पाठेऽन
र्थक इति केचित् । ज्वलितिरूपस्यो गार्थः माद इति । स्वरस्य भि-
द्यते, शपि मीदन्तीत्यत्र शक्तिरेः निम्ब'दनुदानत्व धातुदानः । शे
तु प्रत्ययस्वरलोदात्ते म'योदानस्यम् ॥ १४३ ॥

शदन्त शानते ॥ 'पाठे' त्यादिना गिति शीयादेशः । शीयनइ
त्यादि । अन्यत्र शगाद । शनेत्यादि सर्वे भौवादिकवत् । 'शदेः शित'
इति शिद्वि'ये नइ'वि'यान'वा'य शता ऽर्त्ताति नुम्विकल्पस्य प्रयोजन-
म्याभावात्पुनः पाठे प्रयोजन पूर्वस्वरभेदः । पृच्छत्यादयोनुदाना उदा-
त्तेनः । विच्छिरेकः सेट् ॥ १४४ ॥

अथोभयपदिनमाह ।

मिल मङ्गमने ॥ मिल संश्लेषणइति पट्टिनस्येच पुनः पाठः कर्त्रभि-
प्राये तड्य इत्यात्रेयः । अथ ह्युदानप्यवित्, मिलनीत्यादि पूर्ववत् ।
मिलते । मिमिले । मिलित । मिलयते । मिलनाम् । अमिलन ।
मिलेन । मिलिपीठ । अमिलिष्ट । मिमिलिते । मिमिलिते ॥ १४५ ॥

मृत् मोक्षणे ॥ मुञ्चति । 'गे मुचा'नामि ति शे नुम । मुमो-
च । मुमुचतुः । मुमोचिथ । मुमुचिथ । मोका मोक्षति । मुञ्चतु ।
अमुञ्चन । मुञ्चेत् । मुच्यात् । अमुचन् । अमोक्षत । मुञ्चते । मुमुचे ।
मोका । मोक्षते । मुञ्चनाम् । अमुञ्चन । मुञ्चत । मुक्षीष्ट । अमुक ।
अमुक्षानाम् । अलि सिचो लोपः । 'लोः कुः', मुमुक्षति । मुमुक्षते वत्स,
कर्मकर्तारि मोक्षते धन्मः स्वयमेवेत्यपि भवति 'मुचो ऽकर्मकस्य गुणो वे'-
ति मनन्तस्य पते गुणे 'अत्र लोपोऽप्यायस्य' न्य'ध्यामलोप यक्चिणो
'भूदाकर्त्र'करादिमनामि'ति निषेधः । मोमुक्षते । मोमोक्षि । मोच-
यति । अमूमुचत् । मोक्षः । मनन्तान् घञि पूर्ववद्गुण'ध्यासलोप' । नि-
मुञ्चत इति निर्मोकः । घञि चजोः कुघिणायनोरि'ति कुन्वम् । अमो-
क्षमश्च यदि मन्यमे इत्यत्रावश्यक एयः । 'एय आवश्यक' इति कुत्व-
निषेधः । नखमुचानि धनूषि, मूलविभुजादित्वात्कर्तारि कः । मुष्टेर्व

हिर्भूतानीत्यर्थः । जलमुक् । जलमुचौ । क्तिप् । मुक्ता, क्तिच्त्तौ च संज्ञा-
यामिति सज्ञाया क्तः । मुक्तैव मौक्तिकम् । 'विनयादिभ्यश्चे'ति स्वार्थे
ठक् । नमुचिः । 'इगुपधात्किञ्चे'ति इन् । 'नश्वाङि'त्यादिना नञः
प्रकृतिभावः । चञ्च मुक्तः । 'ऋपेवाणेऽमुक्ते'ति पञ्चमीसमासः । प्रमोच-
नेयं चुरादिः । मुञ्चते मुञ्चतीति कल्कने शपि गतम् ॥ १४६ ॥

लुपृ छेदने ॥ लुप्यति । लुप्यते इत्यादि मुञ्चतिवत् । लोलुप्यते ।
'लुपसदे'त्यादिना भावगर्हायामेव यङ् । लुप्तनिर्दिष्ट इत्यत्रापूर्वकाल-
स्यापि लुप्तशब्दस्य भाष्यकारप्रयोगान्पूर्वनिपान. । लोपयति । अलूलुपत् ।
अलूलोपत् । काण्यादित्वान् ह्रस्वविकल्पः ॥ १४७ ॥

विदन्त लाभे ॥ अयं सेडपि मुदादिकार्यानुरोधार्थमिह पठिनः ।
विन्दति । विन्दतः 'विदो लटो वे'त्यत्र लादेशैः सम्भवदानन्तर्यस्या-
दादिकस्यैव ग्रह इति विकरणेन व्यवहितानन्तर्यादस्मात्परेशा तिबादीना
णलादयो न भवन्ति । अत एव हेतोः 'विदेः शतुर्वसुरि'त्यत्रापि पूर्व-
वत्सम्भवदानन्तर्य आदादिक एव गृह्यते इति विदञ्चित्यत्र वस्वादशेन न
भवति । विवेद, विविदतुः । विवेदिथ, विन्दतु, अविन्दत् । 'सिजभ्यस्त-
विविदिभ्य' इत्यत्रापि पूर्ववत्सम्भवदानन्तर्यस्यादादिकस्यैव ग्रह इत्यविन्द-
चित्यत्र जुञ्ज भवति । विन्देत् । आशिषि विद्यात् । 'समो गम्य-
च्छी'त्यत्र गम्यादिभिः साहचर्यात्परस्मैपदिन एव विदेर्ग्रह इत्यस्य
तङ्निनयमाभावात्कर्माविवक्षायामपि सविन्दति सविन्दत इत्युभय भवति ।
अविदत् । अविदताम् । लुदित्वादङ् । विन्दते । विविदे ।
वेदिता । वेदिष्यते । विन्दताम् । अविन्दत । विन्देत । वेदिषीष्ट ।
अवेदिष्ट । 'उषविदे'त्यत्र उषजाश्रम्याम्परस्मैपदिभ्यामादादिकेन जाग-
र्तिना साहचर्यात्परस्मैपदिन आदादिकस्य ज्ञानार्थकस्यैव ग्रह इत्यात्म-
नेपदिनस्तौदादिकस्य सत्ताविचारणार्थयोर्भयपदिनश्चास्माच्च भवति ।
विविदिषति । विवेदिषति । विदित्वा । वेदित्वा 'रलो व्युपधादि'ति
वा क्तिव, 'रुदविदे'त्यत्राकारस्य विवक्षितत्वादस्य न ग्रहः । अत एव
तत्र न्यासे विद ज्ञाने इत्युपात्तः, तथा च 'सत्सुद्विषे'त्यत्र वृत्तिः । विद

ज्ञाने विद्व मत्ताया विद्व विचारण इति त्रयाणां यत्नानां भाष्यकारस्य
 विवक्षितत्वादिति । वेष्टिग्रन्थे । वेष्टेति । वेष्टयति अर्थविद्वन् । विन्द-
 तीति विन्दः । अनुपनगोऽन्विम्यविन्दे'ति शः, प्रिकणम्यस्य वैकादेशः ।
 गोविन्दः कुविन्द इत्यादौ 'गवादिषु विन्देः मत्तायामि'ति शः ब्राह्म-
 णवेद भोजयति । 'कर्मणि दृशि विदो माकन्य' इति माकन्यविगृहे
 कर्मण्युपपदे णमुल्, यय ब्राह्मण ज्ञानात् तत् भोजयतीत्यर्थः । अत्र मत्ता-
 र्थस्यैकस्य न यदेकमकत्वम् । यावद्वेद भोजयति यावन्नभने तावद्वैज-
 यतीत्यर्थः । 'यावतिविन्दर्जावोरि'ति णमुल् 'विदिभिर्विन्देः कुरजि'-
 त्यत्र ज्ञानार्थ एव न्यासे एहीन स्वभावादिति वृत्तिः, 'विन्दुरिन्दु'रित्य-
 त्रापि स्वभावात् ज्ञानार्थस्य यद् इति न्यासे । 'मत्ताया ममजे'त्यत्रापि ज्ञा-
 नार्थ एव न्यासे एहीतः । वित्त धनम् । वित्तः प्रमिटुः । 'वित्तो भोगप्रत्य-
 ययोरि'ति निष्ठानन्वनिषेधः । भुज्यत इति भोगो धनं प्रतीयत इति
 प्रत्ययः प्रमिटुः, अन्यत्र वित्तः । 'विभाषा गमजनविद्विगमि'ति क्रमा-
 विद्विकल्पना 'द्वस्य विभाषे'त्यनिट्त्वम् । कानन्वे त्वयमनिटुक् ।
 तन्मते वेत्ता वेत्त्यर्तात्यादि । इदं च व्याप्रभुनेर्न भिन्नम् । तथाहि
 विद्वतिविन्दइत्यर्पाति श्यना शनमा च निट्प्रभुत्वादिकस्य रै 'श'दिकस्य
 चानिट्त्वं तेनोक्तं नान्यस्य । तथा वृत्तिकारोऽपि विद्वति विन्दइति
 निर्देशात् ज्ञानार्थलाभार्थयोरितिमाह । वेदिना विद्याना वेदिता
 धनस्येति । परिवेदुश्चस्तु विद्वतिविन्द्योरन्यतरस्य परिपूर्वस्याश्चान्तरे
 वृत्तस्य द्रष्टव्यः, वृजन्तोऽप्यय स्वभावादनुष्ठेपजे पूर्वमृष्टेवरजे वर्तते । 'अप्
 वृत्ति'त्यादौ नप्चादीनां यत्नमौणादिकवृत्तानां सज्जगच्चमात्रस्यैव
 त्युद्गाताराविन्द्यदिवत्परिवेनाराविन्द्यादौ दर्शो भवति ॥ १४८ ॥

लिप उपदेशे ॥ लिप्यति । लिपे । लिपेयि । लिलिपि ।
 लेप्ता । लेप्सति । लिप्यतु । अलिप्यन् । लिप्येत् । लिप्यात् । अलि-
 पत् । 'लिपि मिच्छि वृश्चे'त्यङ् परस्मैपदे अ यत्रा 'त्मनेपदेष्वन्यतर-
 स्थामि'ति पञ्चे सिच् । अलिपत । अलिपेताम् । अलिपन्त । अलिप्त ।
 अलिप्ताताम् । अलिप्सन्तेत्युभय भवति, लिप्यते । लिलिप्सति ।

लिलिप्सते । लेलिप्यते । लेलेप्ति । लेपयति । अलीलिपत् । लिम्पः । 'अनु-
पसर्गाल्लिम्पे'ति शः । निलिम्पा देवाः । 'नौ लिम्पेरि'ति शः । लिप्-
वासितमिन्त्यत्र राजदन्तादिपाठात्पूर्वकालस्यापि परनिपातः । लिपिः ।
लिभिः 'द्विगुपधात्किञ्चे'ति इत्प्रत्ययः । 'द्विबाविभे'त्यादौ लिपिलि-
बीति निर्द्वैशान्यकारस्य पञ्चे बकारः ॥ १४८ ॥

पिच क्षरणे ॥ सिञ्चति । सिषेच । सिपिचतुः । सिषेचिथ ।
क्रादिनियमादिट् । 'आदेशप्रत्यययोरि'ति प्रकृतेः पत्वम् । सेक्ता ।
सेच्यति । सिञ्चतु । असिञ्चत् । सिच्यात् । असिचत् । 'लिपिसिचि-
ह्रस्वे'ति परस्मैपदेङ् । अन्यत्रा 'त्मनेऽदेष्वन्यनरयामि'ति विकल्पः ।
असिक्त । असिक्ताताम् । असिचत । असिचेतामिन्यादि । सिञ्चते ।
सिपिचे इत्यादि, सिसिचति । सिसिचते । 'स्तौतिण्योरेवे'ति निय-
माच्च पत्वम् । सेसिच्यते । 'सिचो यङी'ति न पत्वम् । सेसेक्ति । सेच-
यति । असीपिचत् । अत्र स्वामी पत्व नेच्छति । अभिपिचति 'स्तौति-
ण्योरेवे'ति नियमस्याधित्वा 'स्यादिष्वभासेन चाभ्यासस्ये'ति पत्वम् ।
अभिसेसिच्यते इत्यत्र 'उपसर्गादि'ति प्राप्तेरपि परत्वा 'त्सिचो यङी'
ति निषेधो भवति, उपसर्गादिति प्राप्तिस्तु पुरस्तादपवादस्यायेन 'सात्य-
दाद्योरि'ति निषेधेन बाधेत । सेकम् । 'दान्नीशसे'त्यादिना घृन् । सि-
क्थम् । पातृतुदिवचरिचिसिचिभ्यस्यगिति थक् । सिचयशब्दस्तु बाहुल-
कात्क्षयनन्तः । मुचादयोनुदाताः स्वरितेतः । विदतिस्तु सेङेरुः ॥१५०॥

कृती छेदने ॥ उदात्त उदात्तेत् । कृन्तति । चकर्त्त । चकृ-
ततुः । चकर्त्तिय । चकृत । चकृतिव । कर्तिता । कर्त्स्यति । कर्त्तिष्यति ।
'सेसिची'त्यादिना सकारादाविद्विकल्पः । कृन्ततु । अकृन्तत् । कृन्तेत् ।
कृत्यात् । लिङौ । अकर्तात् । अकर्तिष्टाम् । विकृत्सति चिकर्त्तिषति ।
चरीकृत्यते । चरिकर्त्तीत्यादि । कर्तयति । अचकर्तत् । उर्चद्वा । विकर्तनः ।
नन्दादिः । कृतः । कृतवान् । कृतिः । कृत् । कृत्समुदाकम् । सुव्रश्चिक्-

तृपिभ्यः किति नि मप्रत्ययः स किति । 'निनुवे नापिनवेधे क्त्वम् ।
 'क्त्वमुभ्य क्वत् इति क्वम् । बाहुल्यकारिहभावान्न ॥ १५१ ॥

खिद परिधाने ॥ अनुदान उदानेन् । पिन्दति विखेद । विगि-
दनुः । विरेदिय । खेना । खेन्यति । पिन्दन् । अखिन्दन । वि-
न्देत् । विद्यान् । लुडि अयैर्मान् । अयैनाम् । वदन्ने नि वृत्ति ।
भलि मिचो नापः । विपिन्मति । वेविद्यन् । वेवेमि । वेविदति ।
खेदयति । अर्चयिदन् । खिन्दा । खिवः । खिद्रिम् । 'इदिमदिमुदि
विदिक्किदिभिदिमन्दिवन्दितेभिदिहृदिजिन्दिविदिबन्धिगुरिभ्यः ।
किस् इति किस् । विद्यतइति दैन्य दिवादिपाठान् । अय कर्मकर्मणि
वदन् वामनो दिवादावस्य पाठ नेच्छति । खिद दैन्यइति कथाद्वौ
गतः ॥ ५५० ॥

पिश अवयवे ॥ उदात्त उदात्तेन । पिशनि । पिपेशिथ । पिपि-
शिव । पेशिना पेशिष्यनि । पिशतु । अपिशत् । पिशेत् । पिश्यात् । अपे-
शिष्टात् । पिपिशिष्यनि । पेपिष्यत् । पेपिशिनि । पेपेष्ट । पेशयनि ।
अपपिशत् । पिशित्वा, पेशित्वा । पिशितम् । पिशितान् पिशान् । प्रो-
दरादित्वात्पिष्टिः । पिशद् । बहुलम्बद्बुध । पिशद् । पिग-
ङ्गाद्रुपसव्यानमिति डीप् । पेशी गर्भशोशः । पश-अजन्त-तृतीयादित्वा-
न्डीप् । अय दीपनायामपि वर्तते । तथा च त्वष्टा रुपाणि पिशत्वि-
त्यत्र हरदत्तः, पिशतिर्द्वीप्तिक्रमा । नन्वेभिः पितरो आम्पिशविति
दर्शनादिति । पिशगत्तौ चरादौ ॥ १५३ ॥

वृत् ॥ तुदादयो मुदादयश्च वृत्ता इत्यर्थः ॥

इति श्रीनृसिंहदत्तिलगण्डिनमस्तुत्रार्थप्रकाशकम्पराजमुनेराममहाम-
निषिणा मायणमुनेन माधवमहेन्द्रेण मायणाचार्येण विरचिताया माध-
वीयाया धानवृतौ तद्वादिवर्णः सम्पूर्णः ॥

१ विशितपुत्रादशुभानांश्च हतशब्दस्य लोपः, शकारस्य चकारशकारस्य ज्ञत्याभिव्यञ्जक इत्यादौ द्वित्वम् । विशितमभिवर्तति विशदः ।

अथ रुधादयः ॥

रुधिर आवरणे ॥ अयं द्विकर्मकः । व्रज गा रुणद्धि । रुन्द्ः ।
 रुन्थन्ति । रुणत्सि । रुन्थः । रुन्थ । रुणध्मि । रुन्थ्वः । रुन्ध्वः । 'रुधा-
 दिभ्यः शनमि'ति शपोपवादः शनम् । नित्यत्वादयं गुणात्पूर्वम्-
 वाति । मित्त्वादचोन्त्यात्परः, शकारः शनाचलोप इति विशेषणार्थः ।
 'भ्रपस्तथो' रितिभ्रशेनन्तरयोस्तयोर्धत्वे 'भ्रलां जश् भ्रशी'ति धातो-
 र्देत्व, रुन्थ इत्यादौ कृडिति सार्वधातुके 'शनसोरल्लोप'इत्य-
 कारस्य लोपः । 'नश्चापदान्ते'त्यनुस्वारः परसवर्णः । अल्लो-
 पस्यानयोर्नस्यानिवत्त्व, 'नपदान्ते'त्यादिना निषेधात् । णत्वे तु
 कर्तव्ये परसवर्णस्य पूर्वत्रासिद्धत्वाच्च तद्वति । न चानुस्वारात्पूर्वं
 णत्वप्रसङ्गः । तस्यासिद्धत्वात् । रुणत्सीत्यत्र 'खरि चे'ति चत्वं,
 रुरोध । रुहधत्तुः । रुह्युः । रुरोधिथ । रुहधिव । क्रादिनियमादिट् । रोढु ।
 रोत्स्यति । रुणद्धु, रुन्धात् । रुन्धाम् । रुन्धन्तु । रुणद्धि, हेर्धित्वे जश्त्वम् ।
 रुन्धम् । रुन्थ । रुणधानि । रुणधाव । रुणधाम । अरुणत् । अरुणद् ।
 अरुन्धाम् । अरुन्धन् । अरुणत् । अरुणद् । अरुणः । अरुन्धम् । अरुणधम् ।
 अरुन्ध्व । अरुन्ध्व । 'हल्ङ्गा'दिना तिस्योर्लोपः । जश्त्वं वा
 चत्वंञ्व । सिपि 'दश्वे'ति वा हत्वमपि । रुन्धात् । रुन्धाताम् ।
 रुन्ध्युः । रुन्ध्या । रुन्ध्याम् । रुन्ध्याव । आशिपि रुध्यात् । रुध्यास्ता,
 लुङि 'इरितो वे'ति अङ्पठे । अरुधत् । अरुधताम् । अन्यदा
 अरौत्सीत् । अरौढ्याम् । अरौत्सुः । अरौत्सीः । अरौढ्म् । अरौढ् ।
 अरौत्सम् । अरौत्स्व । अरौत्सम् । रुन्धे । रुन्धाते । रुन्धते । 'आत्म-
 नेपदेष्ट्वि'त्यद्वावः । रुन्से । रुन्धाथे । रुन्ध्व । रुन्ध्वहे । रुधे । रुधाते ।
 रुहधरे । रुहधरे । रुहधिवहे । रोढु । रोत्स्यते । रुन्धाम् । रुन्धा-
 ताम् । रुन्धताम् । रुन्त्स्व । रुणधै । रुणधावहै । अरुन्धाताम् ।
 अरुन्धत । अरुन्धाः । अरुन्धि । अरुन्ध्वहि । रुन्धीत । रुन्धीयाताम् ।
 रुन्धीयाः । रुन्धीय । रुन्धीवहि । आशिपि । रुत्सीष्ट । रुत्सीयास्ताम् ।

‘लिङ्सिवात्रि’ति कित्त्वम् । अरुत्मानाम् । अरुत्स्यन् । अरुट्टाः । अरुत्सि । अरुत्स्वहि । कर्मकर्तरि अरुट् गौः स्वयमेवेत्यत्र ‘न रुध’ इति विशेषा निषेधः । शुद्धे तु कर्मण्यरोर्धनि भवति । रुत्स्यन्ते । हलन्ताच्चेति सनः कित्त्वम् । रोरुयन्ते । रोरोट्टि । रोधयति । अरुहयन् । अस्याप्रधाने कर्मणि लाट्प्रत्ययः । अरुहरोधी । यद्वा द्रव्याणिगतिः, अनुरोधी । ‘मपृचा’दिना घिनुण् प्रतिरोधी । ‘भविष्यति गम्यादय’ इति इच्चन्तो भविष्यदर्थे, व्रजट्प्रत्ययः, व्रजेन उपरोधः, ‘सप्तम्या चोपपीडहथे’ति सप्तम्यन्ते तृतीयान्ते चोपपदे णुन्, । ‘वृत्तीनामवृत्तीनी’ति समासविकल्पः । केचित्तु गच्छस्य पीडयतिनैव सवन्धम’ट् । भट्टिकारस्य तूपोपसर्गश्चरगमनन्त्वमिति प्रागेवोक्तम् । रोधः । अमुत् । रुधिरम् । ‘इषिमदी’त्यादिना किरच् । अनुरुध्यतइति श्यति गतम् ॥ १ ॥

भिदिरु विदारणे ॥ भिनत्ति । भिन्तः, भिन्दन्ति । भिनत्सि । भिन्यः । भिन्य, भिनद्भि, भिन्दुः । भिन्दुः । विभेदः । विभिदन्तु । विभिदुः । विभेदिय । विभेदिव । भेना । भेत्स्यति । भिनन्तु । भिन्तात् । भिन्ताम् । भिन्दन्तु । भिन्यि । भिनदाति । अभिनन् । अभिन्ताम् । अभिन्दन् । अभिनः । अभिन्तम् । अभिन्त । अभिनदम् । अभिन्दु । भिन्द्यात् । भिन्द्यानाम् । भिन्द्याः । भिन्द्याम् । आगिपि । भिन्द्यात् । भिन्द्यास्ताम् । लुङि अभिदन् । अभिदनाम् । अभैत्सीत् । अभैत्ताम् । भिन्ते । भिन्मे । भिन्दे । विभिदे । विभिदिये । भेना । भेत्स्यते । भिन्ताम् । भिन्दाताम् । भिन्त्स्व, भिनदै । अभिन्त । अभिन्दाताम् । अभिन्दत । अभिन्या, अभिन्दि । भिन्दीत । आशिपि भित्सीष्ट । अभित्त । अभित्साताम् । विभित्सति । विभित्सते । वेभिद्यते । वेभिदीनि । वेभेत्ति । वेदयति । अर्धाभिदन् । सर्वत्र रुधिरस्य क्रिया । भिदेलिमानि काष्ठानि । ‘केलिमर उपसंख्यातमि’ति केलिम् । अयं कर्मकर्तरि, भिद्यो नदः । ‘भिद्योध्यौ नद’ इति कर्तरि क्यपि निपात्यते । कर्तरि काष्ठभित् । प्रभित् ‘सत्सूद्विषे’त्यादिना क्तिप् । भिदुरा काष्ठम् । ‘विदिभिदिच्छिदेः कुरजि’ति कुरच् । स्वभाषादय

कर्मकर्तरि । भिदा । भिदादित्वादङ् । तत्र भिदा विदारणे इति-
पाठादन्यत्र भित्तिरिति भवति । भित्तम् । 'भित्त शकल' मिति शकले
निष्ठानत्वाभावादप्यत्र भित्तमिति भवति । भिदिर वज्रम् । 'इषिम-
दी' त्यादिना किरच् । उद्वित् क्तिप् । उद्विदः । इगुपधलक्षणः कः ॥ २ ॥

क्षिदिर द्वैधीकरणे ॥ क्षिनत्तीत्यादि भिनत्तिवत् । क्षिदुरम् । 'वि-
दिभिदिच्छिदेः कुरजि' ति कुरच् । अय कर्मकर्तरीति वृत्तिः । करीन्द्र-
र्षेच्छिदुर मृगेन्द्र, रसज्ञाया इत्य विदुरशशिधामभ्रमकरानित्यादिप्रयोगद-
र्शनात् कर्मकर्तरीति वृत्तिकारोक्त प्रायिकमित्यात्रेयः । रञ्जुच्छित् । 'सत्-
सूद्विषे' त्यादिना क्तिप् । क्षिदा । क्षिदा द्वैधीकरण इति भिदादिपाठादङ् ।
अन्यत्र क्षितिः, घञ् छेदः, छेदिकं 'छेदादिभ्यो नित्यमि' ति तदर्हती-
त्यस्मिन्वर्थे ठक् । शीर्षेच्छेदः शीर्षेच्छेदिकः । 'शीर्षेच्छेदाद्यञ्चे' ति ।
तदर्हतीत्यर्थे यत्ठक्, अत्रैव निर्देशात् प्रत्ययसन्धियोगेन शिरसः शीर्ष-
भावः । क्षिदिरम् । 'इषिमदी' त्यादिना किरच् । क्षिद्रम् । 'स्फायि-
तञ्चीत्यादिना रक्, छेद द्वैधीकरणे चुरादौ ॥ ३ ॥

रिचिर् विरेचने ॥ रिणक्ति । रिङ्क्ते । रिणक्ति । रिङ्क्थ्यः रिङ्क्थ्य ।
रिणक्ति । रिञ्च्यः रिरेच । रिचिचतुः, रिरेचथ । रिचिचि । रेक्ता ।
रेक्ष्यति । रिणक्तु । रिङ्क्तात् । रिङ्क्तात् । रिञ्चन्तु । रिङ्ग्धि । रिङ्-
क्तात् । रिणचानि । अरिणक् । रिञ्च्यात् । रिञ्च्याताम् । आशिपि, रि-
च्यात् । लुङ् । अरिचत् । अरिच्यीत्, रिङ्क्ते । रिचिचे । रेक्ता । रेक्ष्यते ।
रिङ्क्ताम् । रिङ्क्थ्य । रिणचै । अरिङ्क्ता । अरिङ्क्थ्याः । अरिञ्चि । रिञ्च्यीत् ।
रिच्यीष्ट । अरिक्ता । अरिच्यताम् । रिचिचति । रिचिचते । रेच्यते । रेचि-
चीति । रेरेक्ता । रेचयति । अरीरिचत् । रेकः । घञि 'चञोः कुघिण्यतो-
रि' ति कुत्वम् । रिक्थ्य, 'पातृत्वादिविचिरिचिसिचिभ्यस्तक् विरिञ्चः
विरिञ्चिः विरिचिन, एते पृषोदरादयः । रिच विरेचनसम्पर्चनयोरिति
चुरादौ ॥ ४ ॥

विजिर् पृथग्भावे ॥ विनक्ति विङ्कः, विङ्के इत्यादि रिचिवत् ।
विवेकी । मपृचादिना विनुण् । विवेकः, यत्र 'चक्रो रिति कुन्व
मुभयत्र ॥ ५ ॥

तुदिर् सपेयणे ॥ तुणति । तुन्तः । तुन्दन्ति । तुणत्सि तुणद्भि ।
तुन्दः, तुन्तः । तुन्दाते । तुन्त्से तुन्ध्वे । तुन्दुरे, तुन्दोद तुन्दुदतुः । तुन्दो-
दिथ । तुन्दुदिव । तुन्दुदे । तुन्दुदिषे । तुन्दुदिवहे । तोना । तोन्स्यति
तोन्स्यते । तुणत्तु । तुन्तात् । तुन्ताम् । तुन्दन्तु । तुन्धि । तुणदानि ।
तुन्ताम् । तुन्दानाम् । तुन्दताम् । तुन्त्स्व । तुणदै । तुणदावहे ।
अतुणत् । अतुन्ताम् । अतुन्दन् । अतुणत् । अतुणद् । अतुणः ।
अतुणदम् । अतुन्दु । अतुन्त । अतुन्दातम् । अतुन्दन् । अतुन्त्याः ।
अतुन्दि । अतुन्दुहि । तुन्द्यात् । तुन्द्यानाम् । तुन्दीत । तुन्दीयाताम् ।
आशिषि तुद्र्यात् । तुद्र्याम्नाम् । तुन्मीष्ट, तुन्मीयास्ताम् । अतुदन् ।
अतुदताम् । अतुदन् । अतोन्मीत् । अतोन्तम् अतुन्त । अतुन्माताम् ।
तुत्तुत्सि । तुत्तुत्सते । चोत्तुत्सने । चोत्तोति । तोदयति । अतुत्तुदन् ।
तुद्रः । 'स्फापिनञ्जी' त्यादिना रङ्, तुद्राभिः क्तन तौद्र मधु । 'तुद्रा-
धमरे'ति तेन क्तनमिति विनयेत् । तोद्विष्टः, तोदीयात् तोदिमा,
'स्यूलदूरे'त्यादिना यणादेर्ले षड्दृष्टेमेयम्, विस्य च गुणः, पृथ्वादिन्वा-
दिमनिच्, तोदयति । णाविष्टवदिति यणादेर्लेपो गुणश्च ॥ ६ ॥

युजिर् योगे । युनक्ति । युङ्कः । युञ्जन्ति । युनक्ति । युनक्ति ।
युङ्के । युञ्जाने । युङ्क्ते । युञ्जे । युञ्जहे । युयोञ्ज । युयोञ्जिथ । युयोञ्ज ।
युयुञ्जिव । युयुञ्जे । योक्ता । योत्थति । योत्थने । युनक्तु । युङ्कात् ।
युङ्काम् । युञ्जन्तु । युङ्ग्धि । युङ्गात् । युङ्कम् । युनजानि । युनजाव । युन-
जाम् । युङ्काम् । अयुनक्त । अयुनक्त । अयुङ्कम् । अयुङ्क । अयुञ्जि । अ-
युञ्जहि । युञ्ज्यात् । युञ्ज्याताम् । युञ्जीत । आशिषि युञ्ज्यात् ।
युत्तीष्ट । 'प्रोपाभ्या युजेरयत्तपात्रेखि' त्यर्कत्रमिप्रायेपि तङ् । यञ्ज-
पात्रे तु पात्राणि प्रयुनक्तीति । अत्र प्रयहणं स्वरान्तस्योरमर्गम्योपलक्ष-
णम् । उपग्रहणमपि स्वरादेः, । तथा च वार्तिकं स्वराद्यन्तोपसृष्टा-

न्यासकारादयः । केचि 'दिन्धिभवतिभ्या च' इति इन्धेः परस्य लिटः क्त्विविधानसामर्थ्यादामो विकल्पमिच्छन्ति तदिन्धेश्छन्दो विषयत्वाद्बुवो बुको नित्यत्वादित्यादि भाष्यवार्तिकविरोधादुपेत्यम् । इन्धिता । इन्धिष्यते । इन्ध्याम् । इन्ध्याताम् । इन्धताम् । इन्त्स्व । इन्धै । ऐन्ध । ऐन्ध्याताम् । ऐन्धत । ऐन्धाः । ऐन्धि । इन्धीत । इन्धीयाताम् । आशिषि इन्धिषीष्टु । इन्धिषीयास्ताम् । ऐन्धिष्टु । ऐन्धिपाताम् । इन्दिधिषते । 'नन्द्रा' इति नकारवर्जितस्य द्विर्वचनम् । इन्ध्यति । ऐन्दिधत् । इद्दुः । जित्वाद्वर्तमाने क्तः । ईदित्त्वादनिटत्वम् । एधः । 'अवोदैधौद्वे' ति निपातनाद्वृजि नलोपः । सान्तस्त्वेधश्शब्द और्णादिकेऽसुनि बाहुल-काच्चलोपे । अग्निमिन्धे इति अग्निमिन्धः । 'भाष्ठाग्न्यारिन्धे' इति मुम् । समिन् । समिद् । समिधौ । 'संपदादित्वात् कृप् । सामिधेय्यो मन्त्रः । 'समिधामाधाने वेण्यणिति वेण्यण् । सामिधेनी चक्र । षित्वा-न्डीप् । 'हलस्तद्धितस्ये' ति यलोपः, अग्निमिन्धे इत्यग्नीत् । ऋत्वि-विशेषः, कृप् चेति कृप् । आग्नीध्र । अग्नीध्रः शरणे रण् भं चेति रण्प्र-त्ययः, भं चेति भत्वात्पदत्वाभावाज्जश्त्व न भवति । शरणे गृहम् । जित्वा-द्वृद्धिः । 'आग्नीध्रः साधारणादञ्चे' ति स्वार्थेज्यद्वयोपदेशमेव रूपम् । प्रयो-जनन्तु स्त्रियामाग्नीन्धी शालेति 'टिट्टेति' डीप् । विविधमिन्धे इति वीधः । अग्निर्विमलश्च । 'वाविन्धेरि' ति वावुपसर्गे उपपदइन्धेः क्त, कित्त्वादनुनासिकलोपः ॥ ११ ॥

खिद दैन्ये ॥ खिन्ते । खिन्दान्ते । खिन्त्से । खिन्दे । खिन्ताम् । खिन्दाताम् । खिन्त्स्व खिनदै । अखिन्त । अखिन्दाताम् । अखिन्दि । खिन्दीत । चिखिदे । खेत्तेत्यादि खिद्यतिवत् । खिन्दीतीति शे गतम् ॥ १२ ॥

विद् विचारणे ॥ विन्ते इत्यादि खिनत्तिवत् ॥ वित्तः, विन्नः । 'नुदविदोन्द्रे' ति निष्ठानत्वविकल्पः ॥ उन्दिना साहचर्यादस्यैव तत्र ग्रहः । खिदिविदी अनुदात्तावनुदात्तौ ॥ १३ ॥

शिप्न्व विशेषे ॥ इतो भुनस्यन्ता अनुदाना उदानेनः । शिन-
 ष्टि । शिष्टः । शिपन्ति । गिनति । गिनष्मि । शिष्वः । प्लुत्व तव-
 र्गस्य, सवारादौ षस्य वत्वम् । शिशेष । शिशिपत्तु । शिशिपिथ ।
 शिशिपिव । शेष्टा, शैत्यति, गिनष्टु, शिष्टान् । शिष्टाम् । शिष्टि ।
 हेर्धित्व, पत्वजःत्वानुस्वारपरमवर्णं यथायोग्यम् । शिनपालि । अशि-
 नट् । अशिनट् । पकारस्य भक्ता जशान्त इति जश्च चत्वंविकल्पः ।
 अशिष्टाम् । अशिनट् । अशिन्यम् । अशिष्व । शियात् । शिष्यानाम् ।
 आशिषि । शियात्, लुङि अशिपन् । लुङित्वात्परस्मैपदे ऽङ् । तङि
 तु क्तः, व्यन्त्यश्चित्तेत्यादि । शिशित्ति । गिशित्ते । शिशिष्यते । शशि-
 पीति । शिशेष्टि । शेषयति । अशीशिपत् । शिटुः, शिष्टवान् । विशेषः ।
 वैशेषिक, 'विनयादिव्यग्रे'ति स्वार्थे ठक् । मङ्ग्या विगिष्टः
 महाविगिष्टः 'महदात्वे घामकरविशिष्टेषुपमव्याप्तमि'ति पुवद्भाव
 आत्व च । शेषतीति दण्डके हिमाया शपि । शेषयतीति युजादिपा-
 ठादमर्वापयोगे ॥ १४ ॥

पिप्न्व सवृत्ते ॥ पिनष्टीत्यादि शिषिवत् । शुष्कपेप पिनष्टि ।
 चूर्णपेप पिनष्टि । रुतपेप पिनष्टि । 'शुष्कवृत्तेषु पिप इति शुष्कादौ
 कर्मण्युपपदे णमुल् । शुष्क पिनष्टीत्यर्थः । उद्रपेप पिनष्टि । 'स्नेहने
 पिप' इति स्नेहवाचिनि करणे उपपदे णमुल्, उद्रकेन पिनष्टीत्यर्थवद्गणम् ।
 'पेप वामवाहनधिपु चे'ति उद्भावः । सर्वत्र कर्पादित्व द्रव्याविध्यनु
 प्रयोगः । पिष्टमयम् । 'पिष्टाच्च'ति विकारे मयट् । विष्टकर्म । 'कर्णे
 लक्षणस्येति कर्णे उत्तरपदे लक्षणवाचिना विधीयमाने दीर्घान्तवैध
 विष्टादिपर्युदासात् भवति । चारस्य पिनष्टि । 'जामिनि ग्रहणे न्यादिना
 कर्मणि शेषे हिमाया प्ली, अशेषे च हिमायाञ्च चार पिनष्टि, धानाः
 पिनष्टीति द्वितीयैव भवति ॥ १५ ॥

भञ्जो आमर्दने ॥ भनक्ति । भङ्क्तः । भञ्जन्ति । भनति । भनन्ति
 भञ्ज्यः । 'श्नाच्चलोप' इति प्रकृतिकारस्य लोपः । नकारे परानोकारस्य
 'अतो दीर्घा यञी'ति दीर्घा न भवति । अकारान्तम्यानङ्गत्वात् । किन्तु

त्यात्व वा भवति । सन्यादित्यत्र तु 'ये विभाषे' त्यात्व ये इत्यत्वतो-
निर्देशाच्च भवतीति धातुपारायणे । सातिः, सतिः । सन्तिः 'सनः क्तिचि
लोपश्चास्यान्यतरस्या' मित्याकारः, पक्षे तदभावे वा नलोपश्च ।
सातिः । 'ऊतियूनी' त्यादिना क्तिनि निपात्यते ॥ २ ॥

क्षुण्ण हिंसायाम् ॥ क्षुण्णाति । क्षुण्णे । क्षुण्ण । क्षुण्णे । क्षुणिता ।
क्षुणितासे । क्षुणिष्यति । क्षुणिष्यते । क्षुणोतु । क्षुणोतात् । क्षुणोतम् ।
क्षुण्वाताम् । अक्षुणोत् । अक्षुणुत । क्षुणुयात् । क्षुण्वीत् । क्षुण्व्या-
त् । क्षुणिषीष्ट । अक्षणीत् । अक्षणिष्टात् । 'झन्ते' त्यादिना
'अतो हलादे' रिति वृद्धिनिषेधः । अक्षत । अक्षणिष्ट । अक्षथाः ।
अक्षणिष्टाः । 'तनादिभ्य' इति वा सिचो लुक्, तदा तनोत्यादित्वा-
दनुनासिकलोपः । चिक्षणिषति । चिक्षण्यते । क्षाण्यति । अचिक्षणत् ।
'सन्वल्लघुनी' ति त्वनेकहल्अवधानेपि भवति, 'अस्मृट्त्वरे' त्यादि-
ना इत्वापवादादत्वविधानाज्ज्ञापकात् । अयमप्युपदेशे तवर्गीयान्तः ।
क्षण्ववशात् णत्व, तेन चक्षन्तीत्यत्रानुस्वारपरसवर्णौ भवतः । णत्व
त्वनुस्वारीभूतो णत्वमतिक्रामतीति तत्र तत्रोक्तत्वाच्च भवति । क्षत्वा ।
क्षित्वा 'उदितो वे' त्युदित्वादिविकल्पः । क्षतः । 'यस्य विभाषे'-
त्यनिरूप्यम् । क्षन्तिरित्यत्र 'न क्तिचि दीर्घश्चे'ति दीर्घानुनासिकलोप-
निषेधः ॥ ३ ॥

क्षिण्ण च ॥ हिंसायामित्यर्थः । क्षिण्णाति । क्षिण्णते । क्षिण्णे ।
क्षिणि । क्षिणितासे । क्षिणिष्यति । क्षिणिष्यते । क्षिणोतु । क्षिणोताम् ।
अक्षिणोत् । अक्षिणुत । क्षिणुयात् । क्षिण्वीत् । क्षिण्व्यात् । क्षिणिषीष्ट ।
अक्षणीत् । अक्षित । अक्षणिष्ट । अक्षणिष्टाः । पूर्ववत्पात्तिके सिञ्जलुक्पुनना-
सिकलोपः, चिक्षिणिषति । क्षिण्यति । क्षिणित्वा । क्षिणित्वा, 'रलो व्युप-
धादि' ति कत्वविकल्पः । क्षायामुदित्वादिवभावे तु क्षित्वा । तनोत्या-
दित्वादनुनासिकलोपः । चिक्षिण्यते । चिक्षिण्ति । अयमपि तवर्गीयोपदेशः ॥

१ सञ्ज्ञापूर्वके विधिरनित्य इति न गुणः ।

२ क्षिणिषीष्टेति ३ गु. पा. ।

णत्वन्तु नाक्षणिकमिनीह क्षणवदनुप्यारोपेण गत्वमस्तिमानिति क्षितिः ।
 'यस्य विभागे' त्यनिट्त्वम् । क्षितिः । 'क्षितुत्रे' त्यनिट्त्वम्, अत्र सर्वत्र
 पिटृचनेषु विकरणापेक्षो गुणः सज्ञापूर्वको विश्वरसित्व इति न भवतीत्या-
 त्रयेयमैत्रेया । तथा चापिशलिः । शब्दिकरणेषु धातुगुणमभिधाय करो-
 तेष्व मिदेश्चेत्यमृचयन, 'पुगलनघृदधम्य चे' त्यत्र रक्षितेन दौक्तम् ।
 एवञ्च पञ्चवाणः क्षिणोर्नाति मिद्व्यति । शब्दिकाभरणे तु गुण एवो-
 दाहृतः । शाकटायनक्षीरस्वामिभ्यामय धातुर्न पठ्यते । अत एवात्रिय-
 मैत्रेयाभ्यामपि स्वादेश्चान्दमेपु पठितस्य त्रयोभिर्भाज्यमानसि प्रयोगाङ्गी-
 कारेण क्षिणोर्नाति मीधितम् । शाकटायनः पुनस्तत्र द्वाभ्यामन्वितः ।
 इहापि क्षिणु न पपाठेति । तन्मते क्षिणोर्नातिः भाषायाममा-
 धुरेव ॥ ४ ॥

अणु गतौ ॥ अयमपि नवर्गीयान्तोपदेशः । लाक्षणिक णत्वम् ।
 अर्णाति । अर्णुते, अर्णन्ति । अर्णापि । अर्णोमि । अर्णुते । अर्ण्वते ।
 अर्ण्वते । अर्ण्वे । आनर्ण । आनर्णतुः । आनर्णय । आनर्ण ।
 आनर्णिव । आनर्णे । आनर्णिषे । आनर्णिवहे । क्षिणोर्नातिवक्षित्प्रत्यया ।
 अर्ण्वता । अर्ण्वयति । अर्ण्वयते । अर्णोत् । अर्ण्वि । गुणे कृते सप्तम-
 पूर्वत्वादुकारस्यो 'तश्च प्रत्यया' इति हेतुन भवति । आर्णोत् । आर्णु-
 ताम् । अर्ण्यात्, अर्णुयात् । सर्वत्र विकरणापेक्षो गुणः । आशिषि अर्णि-
 षीष्ट । आर्णोत् । आर्णिष्टाम् । आर्त, आर्णिष्ट । आर्णिष्टः । आर्ण्याः ।
 तनादि च्वात्सिञ्जुयनुनासिकलोपः । अर्णिनिषमि । गुणे कृते 'नन्दा' इति
 रेफवर्जितस्य द्विवचनम् अत्रात्रेयो नान्तोपदेशत्वपि द्विवचने कर्त्तव्ये णत्व-
 स्य नामिदृत्वम्, पूर्वत्रामिर्नाममद्विवचनइति न्यायान् । तेन प्रकृत्यभ्यामयो-
 र्व्येयोरपि णकारावित्याह । पारायणे तु णत्वम्यामिदृत्वं दृणत्वम्य द्विव-
 चने परस्य व्यञ्जानात् णत्वाभावो दर्शितः । प्रत्येकदिक्कादन्तिने-
 साभ्यामस्य णत्वविधानाद् लिङ्पूर्वत्रामिदृमद्विवचने इत्यन्तानि यत्त्व-
 ज्ञापनाण्यत्वत्रिये तस्याप्यनेरुक्तौनूपने इत्यादिवण्यत्वम्यामिदृवैव भवि-
 तव्यमिति पारायणिकपक्षो व्यापान् । अत एव पारायणिकपक्षविरोधा-

ण्योपदेशस्य पक्षो दूष्य एव । अर्णयति । आर्णयत्, माभवानर्णनत्
 माभवानृणनत् । उर्द्ध्वा, माभवानृणनेताम् । माभवानृणनयाः ।
 पूर्ववत्परस्य णत्वं न भवति । कृत्वा । आर्णत्वा । उदित्वादिद्विकल्पः ।
 अनिट्पक्षे 'ऽनुदात्तोपदेशे' त्यनुनासिकलोपः । कृतः । कृतवान् । कृतिः ।
 स्वर्णः । पचाद्यचि गुणः । उपसर्गस्य यण् । 'तनादीनां छन्दस्युप-
 सख्यानमि' त्युपसर्गस्योर्वाङ् सुवर्णं, संज्ञाशब्दत्वाद्वाषायामयस्य प्रयोगः
 साधुरित्यात्रेयमैत्रेयौ । शोभनो वर्णोऽस्येत्यपि शक्यते व्युत्पादयितुम् ।
 द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्लीतं द्विसुवर्णम्, द्विसौवर्णिकम् । 'सुवर्णशतमान-
 योरूपसंख्यानमि' त्यार्हीयस्य ठकः पक्षे लुक् । लुगभावे 'परिमाणा-
 न्तस्ये' त्युत्तरपदवृद्धिः । अर्णः । असुन् । अर्णवः । 'अर्णसो लोप-
 श्चे'ति मत्वर्थीये वप्रत्यये सलोपः । अत्रात्रेयमैत्रेयादिभिः शब्दिकरणे
 गुणः, करोतिश्च मिदेशेन्यापिगनिष्मरणाद्विकरणापेक्षो गुणोऽन्यस्य
 धातोर्न भवतीति क्षिणो^१तीत्यादि दर्शितम्, तथा च क्षीरस्वा^२म्यपि
 क्षिणिप्रभृतीन्प्रस्तुत्य इमे सार्वधातुके संदिग्धगुणा इत्याह । सार्वधातुके परे
 उप्रत्यये इत्यर्थः । चन्द्रस्तु गुणाभाव न सहते । यदाह । अर्णोतीत्या-
 द्युदाहृत्य क्षिणोर्धातोर्लघोरूपान्त्यस्य गुणो नेष्यतइत्येतस्यान्योभिप्रायो
 मृग्य इति । अतः काश्यपादयः 'करोतिश्च मिदेशे'ति सूत्रमन्यथा
 व्याख्यन् । करोतेः सम्बन्धिनि विकरणे धातोर्गुणो भवतीति । अत्र
 वर्तमानः । करोतेः सम्बन्धिनि गुण इति व्याख्यान न्याय्यमिति, मुनि-
 त्रयाविरोधादस्य न्याय्यत्वम् ॥ ५ ॥

तृण् अदने ॥ तर्णोति । तर्णुते । ततर्णेत्यादि पूर्ववत् । तृणम् ।
 घञर्थे कः । तृण्या । 'पाशादिभ्यो य' इति समूहे यः । कतृणं तृण-
 जातिविशेषः, 'तृणे च जातावि'ति कोः कद्भावस्तत्पुरुषे । स्वाभाविक-
 मस्य धातोर्णत्वमिति केचित्, तेषा यङ्नुक्तिं तरोतृणीति भाव्यम् ।
 अन्येषा तु अनुस्वारीभूतो णच्वमतिक्लामतीति तरोतृणीति ॥ ६ ॥

१ ऋणोतीत्यादीति ४ पु. पा. ।

२ शिवस्वामीति ३ । ४ । पु. पाठ. ।

घृणु दीप्तौ ॥ घर्णाति । घर्णुते । जंघर्णान्यादि पूर्ववत् । घृणा ।
भिदादेराकृतिगणत्वादङ्, शिवस्वामी वक्रारोपध पपाठ । तनादय
उदात्ताः स्वरितेः ॥ ७ ॥

वनु यावने ॥ वन्त्योश्चादिः । वनुते । वनुषे, वन्वे, वनुवहे ।
ववने । ववनिषे । वादित्वादेत्वाभ्यामलोपनिषेधः । वनिना, वनिष्यते ।
वनुताम्, अवनुत । वन्वीत । आशिषि वनिषीष्ट । अवनिष्ट । अवत । अव-
निष्ठाः । अवथाः । विवनिषते । ववन्यते । ववन्ति । 'नास्त्रावनुवन्ना चे'त्यनु-
पसृष्टानां मिन्त्रविकल्पे वनु च नोच्यतइति घटादिकस्याग्रह इत्येके । अन्ये
ऽनन्तरस्य विधिरिति न्यायेन घटादिकस्य वनतेरेवेति । तेन वानयनि ।
प्रवानयतीत्येव भवति । वनित्वा । वत्वा । उदित्त्वादिङभावपत्ते तनो-
त्यादित्वादानुनासिकलोपः । वतः । वतवान् । 'यस्य विभ.षे त्यनिट्-
त्वम् । वन्ति । 'न किञ्चि दीर्घस्वे'त्यनुनासिकलोपस्य दीर्घस्य च नि-
षेधः । वनी, वा'ञ्छा, तामिच्छतीति क्यञन्तान् एबुल्, वनीयकः । अर्थि-
पर्यायः । अन्ये तु वनीयेत्यकारान्त पठन्ति । तेषा वनीयनीनि
वनीय, ततः सञ्ज्ञाया क्त् । चान्द्रास्त्वम परस्मैपदिनमाहुः । तन्मते
वनीति । ववानेत्यादि ॥ ८ ॥

मनु अवबोधे ॥ मनुते । मेने इत्यादि वनुवन् । उदात्तावनुदा-
त्तौ ॥ ९ ॥

हुक्त्र् करणे ॥ करोति । कुह्वः । कुर्वन्ति । करोषि । करोमि ।
कुर्व । कुर्मः । कुह्वे । कुर्वते । कुह्वे । कुर्वे । कुर्वहे । 'अन उत्सार्व-
धातुक' इति^१ सार्वधातुकपरस्योपेययान्तस्य करोतेरकारस्योकारः । तप-
रकरणात्लघूपधगुणो न भवति । 'नित्य करोते'रिति वकारमकारादौ
नित्यमुकारस्य लोपः । कृतेऽस्मिन् 'हलि चे'ति दीर्घो 'न भकुर्ह्रा-
मि'ति निषिध्यते । न चेदिति तपरत्वेनैव विकारनिरूप्यधेन गुणवद्दी-

१ यावज्जेति २ । पु पा ।

२ अर्थिपर्याय इति ४ पु नास्ति ।

३ किदित्यधिक ४ पु ।

घाऽपि न भविष्यतीति मन्तव्यम् । तस्मिन् विकारनिवृत्त्यर्थं प्रमत्ते दीर्घस्य पूर्वत्रासिद्धत्वात् । न चोक्कारलोपस्य स्यानिवद्भावेनेह हल्यर-
त्वाभावः, दीर्घविधि प्रति न स्यानिवदिति वा 'पूर्वत्रासिद्धे न स्यानिव-
दि'ति वा स्यानिवत्वस्य निषेधात् । चकार । चक्रतुः । चकर्थ । चक्रव ।
ज्ञादिव्यतिरेकाभावाल्लिटीङभ्रः । चक्रे । चक्राते । चक्रपे । चक्रवहे । न
चाजादावन्तरङ्गत्वात्पूर्व यण्यनच्क्रत्वाद् द्विवचनाप्रसङ्गः शङ्क्यः । 'द्वि-
र्वचनेची'ति यणः स्यानिवत्त्वात् । कर्ता । करिष्यति । 'चट्टनोः
स्य' इतीट् । करोतु । कुरुतात् । कुरुताम् । कुरु । करवाणि । कुरु-
ताम् । कुरुष्व । करवै । 'अत उत्सार्वधातुक' इत्यस्मिन्कर्तव्ये 'उतश्च
प्रत्ययादि'त्यस्य हिलुक्को 'ऽसिद्धवदने'त्यसिद्धत्वात्सार्वधातुकप्रत्य-
वेत्तत्वं भवति । अकरोत् । अकरोः । अकरवम् । अकुरुत । अकुर्याः ।
कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्याः । 'ये चेति' यकारादौ करोतेरुप्रत्य-
यस्य नित्य लोपः । कुर्वीत । कुर्वीयाताम् । कुर्वीय । यणादेशः ।
आशिषि । क्रियात् । क्रियास्ताम् । 'रिङ् शयग्लिङ्त्वि'ति रिङादे-
शस्य रीङि प्रकृते रिङ्विधाना 'दङ्गत्सार्वधानुक्रयो' रिति दीर्घा न भवति ।
कृषीष्ट, कृषीयास्ताम् । रिङादेशो यकारादाविति सीयुटि न भवति ।
'उश्चे'ति लिङ्सिचोरात्मनेपदे क्त्वाच्च गुणः । अकार्षीत् । अका-
ष्टाम् । सिचि वृद्धिः । अकृत । अकृषाताम् । 'ह्रस्वादङ्गा'दिति सिचो
लोपः । 'तनादिभ्यस्तयासोरि'ति विकल्पितो लुङ् भवति । तनादित्वा-
देवास्योप्रत्यये सिद्धे पृथग्विधानादन्यत्तनादिकार्यं न भवतीति ज्ञापनात् ।
यद्वास्तु विकल्पः, तथापि 'ह्रस्वादङ्गादि'ति लुगभावे लोपो भवि-
ष्यति । न च विकल्पेनास्य बाधोऽसिद्धत्वाल्लोपस्य । न च विकल्पविधान-
सामर्थ्यादसिद्धत्वेपि बाधः । तस्यान्यत्र अतत अतनिष्ठेत्यादौ चरितार्थ-
त्वात् । एवं च विकरणविधौ कृञ उपादानं प्रपञ्चार्थं भवति । कर्मणि
क्रियते । अकारि । 'रिङ् शयग्लिङ्त्वि'ति रिङादेशो यकि । अत्राच्येयः ।
कथं क्रियतीति पुरुषकारइत्युपादाय 'व्यत्ययो बहुलमि'ति कर्मण्यपि

परस्मैपदसिद्धेः । तथा च गुणटीकाया कृताः पुरोडाशाः, करिष्यन्ति निर्वा-
या इति, अत्र कर्मण्येव नृदि प्रयोगो दृश्यते । प्रयोगमुखे तु निवृत्तप्रति-
रूपको निपात इत्युक्तमित्याहुः । कर्मकर्तृरिति क्रियते कटः स्वयमेव, अकारि
अजन कटः स्वयमेव । 'अवः कर्मकर्तरी' इति तत्राच्चे ज्ञेया चिण । चिर्त्तयेति ।
'इको भलि' इति कित्वाच्च गुणः । अजनगमामि' इति दीर्घे च न इडा-
तो' इति त्वे रपरत्वे 'हलि चे' इति दीर्घः । चेक्रियते, रिड् । चर्त्तनीत्यादि,
कारयति कट देवदत्त यत्तदतः, देवदत्तेनेति वा, 'दृक्कोरन्यतरस्या' मिति
वा प्रयोज्यः कर्म । सस्क्रोति । अनक्रोतीत्यर्थः । तत्र संस्क्रुवन्ति
समवयन्तीत्यर्थः । समस्क्रोत् । सञ्चस्कार । सञ्चस्कात् । सञ्चस्क-
रिथ । सञ्चस्करिच । 'मुट् कात्पूर्वः' । अड्भ्यामड्वादेशे' इति अधि-
कारे 'संपर्युपेभ्यः करोती भूषणे' 'समवाये चे' इति कात्पूर्वः मुट्
समवायः समुदायः । 'समः मुटी' इति समो मकारस्य रुः । तस्य स्वरवमान-
यो' इति विसर्जनीये 'विसर्जनीयस्य म' इति सन्धम् । 'वा शरी' इति विस-
र्जनीयो न भवति, व्यन्त्यित्विभाषाविज्ञानान् वानिके तु मपुजाना सो
वक्तव्य इति रोरपवादः स एव विहितः । भाष्ये तु 'समः मुटी' इति द्विम-
कारकनिर्देशान्पूर्वैरेव सविधिः, सिट् इत्युक्तम् । 'अत्रानुनामिकः पूर्वस्य
तु वे' इति पक्षे मात्पूर्वस्य 'अनुनामिकः' अत्रयहण रप्रकरणोपलक्षणम्, अनुना-
सिकाभावे 'अनुनामिकात्परोऽनुस्वार' इत्यनुस्वार आगमः । क्रादिमूत्रे
कृजोमुडिति दत्तव्यमिति वचनात्समुट्क. क्राद्व्यो भवन्तीति लिटीडागमः ।
भारद्वाजनिघण्टुमुट् एवेत्यनइति वृत्त्यादौ स्थितमिति नेद्विकृत्यः, मुटि
कात्पूर्वयहणं मुटी ऽभकत्वज्ञापनार्थमिति व्यवस्थितत्वात्समिक्कयनइत्या-
दावृकारान्तत्वेपि सयोगादित्वाभावात् 'गुरोर्तिमयोगाद्गोरि' इति गुणो न
भवति । तथा संस्कृपीटु ममस्कृपानामित्यादौ 'निड्' मन्त्रेऽस्मिन्नेरदेगु' इति
'अतश्च मयोगादे' इति नीग्न भवति । अतश्च मयोगादेर्गुण' इत्यत्र नु मयो-
गोपधयहणं कर्तव्यं कृत्रोर्थमिति उक्तत्वात्सयोगादवयवत्वाभावेन स्वरस्य

१ ४ पुस्तके करिष्यन्ता निर्वाया इति कर्मण्येव नृदि प्रत्यये दृश्यते इति पाठ
वृत्तमर्थे स तु प्रयोगमुखे तु निवृत्तप्रतिरूपको निपात इत्यनर्थस्य सान्ध्या सगतः ।

२ स्थितत्वात्पर्याप्तं ४ पु पा ।

सञ्चस्करतुरित्यादौ किति लिटि गुणो भवति । एवमुपस्करोतीत्यादि, परिपूर्वत्वे तु 'परिनिविभ्य' इत्यादिना सुटः षत्वं भवति परिष्करोतीत्यादि । अङ्वायाये तु 'सिवादिना वाङ्वायायेपी' ति विकल्पो भवति पर्यष्करोत्यर्षस्करोद् इत्यादि । परिचस्कारेत्यादौ 'स्यादिष्वभ्यासेन' ति न षत्वं, तत्र यतः प्राक् सितादित्यनुवर्तते, संपूर्वस्य कचिदभूषणपि सुडिष्यते । तद्वृषिः समस्कुहतेति, सूत्रे च दृश्यते 'सस्क्रतं भक्षा' इति । उपात्क्रजः 'उपात्प्रतियन्वैकृतवाक्याध्याहारे' ष्वित्येतेष्वपि कात्पूर्वः सुड् भवति । प्रतियन्वस्सतो गुणान्तराधानहेतुरिहा, ऽसावाधिक्याय वृद्धस्य वा तादवस्थाय, विकृतमेव वैकृतं प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेण, गम्यमानार्थस्य वाक्यैकदेशस्य स्वरूपेणोपादानं वाक्याध्याहारः । एधो दक्तस्योपस्क्रुते । 'क्रजः प्रतियन्व' इति कर्मणि शेषे षष्ठी, 'गन्धनादि' सूत्रेण प्रतियन्वे तडपि, उपस्करोत्यर्चं विकरोतीत्यर्थः । उपस्करोति, वाक्यैकदेशमध्याहरतीत्यर्थः । उपस्क्रुतं भुङ्क्ते उपस्क्रुतं जल्पतीत्युदाहरणे हरदत्तेन क्रियाविशेषणं व्याख्यातम् । उत्क्रुते दोषं, श्येनो वर्तिकापक्रुते, राजानं प्रक्रुते, परदारान्मक्रुते । एधो दक्तस्योपस्क्रुते । गाथाः प्रक्रुते । शत प्रक्रुते । सूचयति, भर्त्सयति, सेवयते, सहसा प्रवर्तते, गुणान्तराधानाय ईहते, प्रकर्षेण कथयति, विनियुङ्गति क्रमेणार्थाः, 'गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियन्वप्रकथनापयोगेषु क्रज' इत्येतेष्वर्थेषु वर्तमानात्क्रजो ऽकर्त्रभिप्रायेपि तड् । तमधिक्रुते । 'अधेः प्रसहन' इति तड्, प्रसहनमभिभवः, अपराजयो वा, पराजयः शक्तस्य क्षमयैव यस्तदभावः सः, तथा च भारविः, भवादृशाश्चेदधिकुर्वते परानिति । क्षमया न पराजयन्ते क्षमन्ते इत्यर्थः । क्राष्टा विक्रुते स्वरान् । 'वेः शब्दकर्मण' इति तड् । अत्र कर्मेति कारकं गृह्यते न क्रिया । अत्र सुधाकरः । 'वेः शब्दकर्मण' इति चेदनुवाकं श्लोकं वा विकरोतीत्यत्रातिप्रसङ्गः । नेह शब्दविषयो व्यापारो यस्य शब्दो निर्वर्त्यः ।

१ अद्यतनपुस्तकेषु रतिमिति पाठः, तत्र यद्यपि प्रसहनस्यासंगतेरधिपूर्वात्क्रोते 'रधेः प्रसहने' इत्यात्मनेपदं न प्राप्नोति तथापि कर्त्रभिप्रायविवक्षायां स्वरितञित इत्यात्मनेपदम् ।

अत्र हि करोतिर्विनाशनीत्यर्थो न निर्वर्तयतीति, विकुरुते सैन्यवः, साधु दान्तः, साधु वलातीत्यर्थः । 'अकर्मकाच्चे'ति पूर्ववत् । यदाय वलाना-
यां कृज् तदा सौकार्यानिगयादुल्लानावचनस्तदा कर्तुः कर्मवद्वापि 'यक्-
चिणोः प्रतिषेध' इत्यात्मनेपदाकर्मकत्वाच्च यक्चिणाविति विकुरुते
सैन्यवः स्वयमेव व्यकृत सैन्यवः स्वयमेवेति भवतः । अत्रात्मनेपदाकर्मकस्य
नेनात्मनेपदविधायार्थान्तरवनादकर्मणामन्तर्भावित्वेनार्थानां सकर्मकाणां
सौकर्यातिशयविवक्षया पुनरकर्मकाणां कर्मकर्तृविषयाणां विग्रह इति
येषां दर्शनं तेषां 'विकारहेतौ सति विक्रियन्त' इत्यत्र न यक्निषेधप्र-
सङ्गः । यतोत्र स्वतः एव सकर्मकस्य कर्माविवक्षया ऽर्मकत्वम्, येषां त्वा
त्मनेपदाकर्मकेति धातृपक्षेण, तेषां विकरोतिरपि अर्थान्तर्गत्या क्वचिदा-
त्मनेपदनिमित्तं दृष्टमिति विकारहेतौ सति विक्रियन्त इत्यत्रापि कर्म-
कर्तारि यक्निषेधेन भाव्यम् । सस्करुते कन्या स्वयमेव, ममस्कृत कन्या
स्वयमेवेत्यत्रापि भूषाकर्मकत्वाच्च यक्चिणौ । पदं मिथ्या कारयते स्वरा-
दि दुष्टममङ्गदुच्चारयतीत्यर्थः । 'मिथ्योपपदान्कृजोभ्याम्' इति एयन्ता-
त्तङ् । 'गन्धनादि' सूत्रचतुष्कमेव चाकर्त्रभिप्रायार्थम् । अनुकरोति ।
'अनुपराभ्या कृज' इति परस्मैपदम् । इदं च कर्त्रभिप्राये गन्धनादौ च
प्राप्तस्य तडोपवादः । अनेन च कृजन्तुर्निमित्तत्वमेव निषिध्यत इत्य-
नुचिकीर्षतीत्यादौ 'पूर्ववत्सन' इति तङ् न भवति । अत्रात्रेयः । 'सज्ञा-
पूर्वको विधिरनित्य' इति मा नः सर्वान्पराकृत्या इति परस्मैपदाभावमाह ।
कृत्यम् । कार्यं, 'विभाषा कृजोरि'ति व्यङ्ग्यतौ । वामरूपेण
तद्यादयोपि, कर्तव्य करणीयम् । विद्या यशस्करी । आदृकर आस्तिकः,
प्रेषकरो भृत्यः । 'कृजो हेतुताच्छील्यानुनोम्येष्वि'ति कर्मण्युपपदे टप्र-
त्ययः । हेतुरैकान्तिक कारण, ताच्छील्य तत्त्वभावता, आनुलोम्यमनु-
कूलता । टित्वात्स्त्रिया ङीप् । शङ्करा नाम परिव्राजिका तच्छीला
चेत्यत्र ताच्छीलिकं परमार्थं प्रत्ययं 'शमिधातोः सज्ञाया'मित्युच्यते-
स्तत्र धात्वधिकारेपि पुनर्धातुग्रहणादुपाधने । तथा च वार्तिकं शमिसज्ञा-

या धातुग्रहण कृजो हेत्वादित्प्रतिषेधार्थमिति । अयं च टप्रत्ययो 'न शब्द-
श्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेष्वि'ति निषेधाच्छब्दादिषूपपदेषु न
भवतीत्यण्येव, शब्दकार इत्यादि । दिवा हि प्राणिनश्चेष्टायुक्तां करोतीति
दिवाकरः । 'दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दीकिलि-
पिलिविलिभक्तिकर्तृचित्रनेत्रसख्याजङ्घावाहृहर्यन्तृनुरूप्यति' दिवा-
दिषूपपदेषु कृजवृत्तः । अहेत्वादर्थ आरम्भः । तत्र दिवाशब्दस्याधिकरणप्रधा-
नत्वात्कर्मत्व न भवतीति तत्र सुपीति सबध्यते । अन्येषु कर्मणीति, विभां
करोतीति विभाकरः प्रभाकर इत्यादीनि उदाहार्याणि । भास्कर इत्यत्रात्रैव
भास्कर इति करोतीति परे सकारस्य निर्देशात्मत्वम् । 'अतः कृकमी'ति
सत्त्वं तपरिनिर्देशाच्च प्राप्नोति । कर एव कार इति प्रज्ञा^१दिः । अत्रानन्त-
करस्य नञ्समासेनैव सिद्धे ऽनन्तग्रहण कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरार्थम् ।
अन्यथा 'तत्पुरुषे तुल्ये'त्याद्युदात्तत्वं स्यात् । बहुशब्दो वैपुल्यवचनः,
अन्यस्य सख्यात्वादेव ग्रहः । अत्रेष्टिः । कियत्तद्बहुषु कृजोऽन्विधानमिति ।
प्रयोजनं किकरेत्यादौ स्त्रिया टाप् । किकरीति तु पुयोगे ङीष् । हेत्वादौ
वा पूर्वसूत्रेण टप्रत्यये तस्कर इत्यत्र 'तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट्
तलोपश्चे'ति सुट्त्तलोपौ, धनुष्करः, अरुष्करः । 'नित्य समासेनुत्तरपदस्थ-
स्ये'ति विसर्जनीयस्य नित्य पत्व, कर्मकरः । 'कर्मणि भृतावि'ति
कर्मशब्द उपपदे भृतौ गम्यमानायां टप्रत्ययः, भृतिर्वतनम् । अन्यत्र कर्म-
कारः । स्तम्बकरिर्ग्रीहिः । शकृत्करिर्वत्सः । 'स्तम्बशकृतो'रितीन् । 'व्री-
हिवत्सयोरिति वक्तव्यमि'त्युक्तत्वादित्यत्र स्तम्बकारः शकृत्कार इति,
मेघंकरः । अतिकरः । भयंकरः । 'मेघार्तिभयेषु कृज' इति मेघादिषु कर्म-
सूपपदेषु खच् । खित्त्वान्मुम् । उपपदविधौ भयादशब्देषूपपदे तदन्तविधि
प्रयोजयतीत्युक्तत्वादभयादिशब्देषूपपदे खज् भवति अभयंकर इति ।
क्षेमंकरः । क्षेमकारः । 'क्षेमप्रियमद्रेण चे'ति खजणौ । खचो विकल्प-
नेनैव कर्मण्यणि सिद्धे ऽण्यग्रहण हेत्वादेषु टप्रतिषेधार्थम्, एवं प्रियमद्रेयो-
रप्युदाहार्यम् । अनाद्य आद्यः क्रियते येन तदाद्यंकरणम् । 'आद्यसु-

भगस्यूलपलिननगान्धप्रियेषु च्छब्देष्वच्चौ कृञः करणे ग्युनि 'ति आ-
 आदिष्वभूततद्वावविषयेषु अन्वयन्तेषु कर्मसृपपदेषु करणकारके ग्युन् ।
 स्त्रियामाद्यकरणी । 'टिट्टाणत्रि' न्यादिना ङाप् । एव सुभगकरणमित्या-
 दि, खित्त्वान्मुम् । उपपदविधौ भयाद्यादियहणं तदन्तविधि प्रयोजय
 तीत्युक्तत्वादनाद्यादिष्वप्युपपदेषु ग्युन् भवति । अनाद्यकरणमि-
 त्यादि । सुकृन् । शोभन कृतवानित्यर्थः । 'सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञ
 इति स्वादिषु कर्मसृपपदेषु भूते कृञः कृप्, एव कर्मकृतित्यादि । राजानं
 कृतवान् राजकृत्वा । 'राजनि युधि कृञ' इति राजनि कर्मण्युपपदे
 भूते कृनिप्, तुगागमः, स्त्रिया वनो र चे 'नि डीविकै', राजकृन्वरी । सह-
 कृत्वा । 'सहे चे' ति भूने कृनिप् । अनकरिप् । अलकृञ् निराकृञ् 'ति
 ताच्छीलिक इष्णुच्, चक्रिः, 'भाषाया धाञ्कृञ्' ति क्रिकिनोरन्यतरः
 लिङ्गद्वावाद् द्विवचन, चक्र, घञर्थे कः । 'कृजादीना के द्वे भवत' इति द्वि-
 र्वचनं, चक्रीवाचाम राजा, 'कामन्दीवदष्टीवन्वर्णावदि' ति मनुषि
 चक्रीभावो निपातनान् । क्रिया । कृति । 'कृञः श चे' ति शक्तिनो ।
 कृञ इति योगविभागान्क्यप् तुगागमः, कृत्येति, शस्य भावविषयत्वात्मा-
 र्वधानुस्त्वाच्च यकि विरुणे 'रिड् शयग्लिङ्गत्वि' ति रिङ् देशः । ईप्-
 दाद्यकरो देवदनः, दुराद्यकर 'कर्तृकर्मणोऽन्व भृङ्करोर' ति करोनेः
 कर्तृकर्मवाचिनि चकारादीपदादिषु चोपरदेषु खन् प्रत्ययः । 'कर्तृकर्म-
 णोऽन्वयर्थयो' रिति वचनादभूततद्वावविषयोय प्रत्ययः । तदयमर्थः ।
 अनाद्योनायासेन दुःखेन सुखेन वा आद्यः क्रियते इति । चोरकारमा-
 क्रोशति, 'कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ्' ति कर्मण्युपपदे आक्रोशे गम्य-
 माने खमुञ् । अत्र करोति, स्वभावादुच्चारणक्रिय इति चोरशब्दोपि स्वह-
 पपरः, तदयमर्थः, चोरशब्दमुच्चार्याक्रोशनीति । अस्य धातुमन्त्रमन्त्रे
 विधानेपि णमुलन्तार्थः नुरोधायाक्रोशार्थस्यैव अनुप्रयोगः । स्वादुकार भुङ्के ।
 'स्वादुमि णमुलि' ति णमुल् । स्वादुमिन्यर्थग्रहणान् सपवकार भुङ्के
 लवणकारं भुङ्के इत्यत्रापि णमुल् भवति । अत एव स्व'दुमीनिनिर्द्देशा
 दुपपदस्य मान्तत्वम् । ननु प्रकृतः खमुञ् विधीयता खित्त्वान्मा'न्तत्व

भविष्यति किं निपातनेन, एवं तर्हि लिङ्गविशिष्टपरिभाषया 'वोतो गुण-
वचनादि' ति ङीषन्तस्य स्वाद्वीशब्दस्योपपदत्व माभूदिति निपातन,
भावप्रत्ययविषये हि मान्तत्वनिपातने उकारान्तत्वाभावावास्ति ङीषः
प्रसङ्गः । किं च ह्येतस्य स्वाद्वीशब्दोन्ततार्थ, तस्य ह्यव्ययत्वात् खित्व-
निबन्धनो मुन्नास्ति । अत्र णमुल्विषये वा सरूपविधिना त्कापि भवति
स्वादुंकृत्वा भुङ्क्ते । इत्यादि । अन्यथाकार भुङ्क्ते । 'अन्यथैवंकथमित्यसु सिद्धा-
प्रयोगश्चे' दित्यन्यथादिषु उपपदेषु णमुल्, सिद्धशब्दः प्राप्तवचनः, प्राप्त-
प्रयोगश्चेत्करोतिरित्यर्थः, प्राप्तप्रयोगत्वं च निरर्थकत्वात्, तेनान्यथेति या-
वानर्थस्तावानेवान्यथाकारमिति । एवमेवंकारमित्यादि । अत्रापि वासरू-
पेण त्कापि भवति । तेनान्य^१था कृत्वा परिहरतीत्यादि भवति । यथा^२कार-
महं भोक्ष्ये तथाकारमहं भोक्ष्ये किन्तवानेन । 'यथातथयोरसूयाप्रतिवचन'-
इति कृजः सिद्धाप्रयोगादयथातथयोरुपपदयोरसूयाप्रतिवचने गम्यमाने
णमुल्, यत्र प्रश्ने प्रतिवचनमसूयायां भवति तदसूयाप्रतिवचनम् । अकृतकार
करोति, अकृत करोतीत्यर्थः । 'समूलाकृतजीवेषु हन्कृज्यह' इति णमुल् ।
कषादित्वाद्यथाविध्यनुप्रयोगः । ब्राह्मण पुत्रस्ते जातः । किं तर्हि नीचैः
कारमाचक्षे, नीचैःकृत्य नीचैःकृत्वेति वा । 'अथयेयथाभिप्रेताख्याने कृजः
त्वाणमुलावि' ति त्वाणमुलौ । यथाभिप्रेतं न भवति तथा ऽऽख्याने
गम्यमाने, अत्र हि पुत्रजन्मनि प्रियमुच्चैराख्येय गोपनीयवत्केन
चिन्नीचैराख्यायते, 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्यां' 'त्वा चे' ति समास-
विकल्पः, तिर्यक्कृत्य गतः तिर्यक्कृत्वा गतः, तिर्यक्कारमिति वा । समास्य
गत इत्यर्थः । 'तिर्यच्यपवर्ग' इति त्वाणमुलौ, अपवर्गः समाप्तिः,
पूर्ववत्समासविकल्पः, मुखतःकृत्य, मुखतःकृत्वा, मुखतःकारं गच्छति ।
'स्वाङ्गे तत्प्रत्यये कृभ्वोरि' ति त्काणमुलौ, पूर्ववदत्रापि समासविकल्पः ।
नानाकृत्य, नानाकृत्वा नानाकार, विनाकृत्य विनाकृत्वा विनाकारम् ।
द्विधाकृत्य, द्विधाकृत्वा, द्विधाकारम् । द्विधाकृत्य, द्विधाकृत्वा, द्विधाका-

१ तेनान्यथा चोदितमन्यथा कृत्वा परिहार इत्यादि भवतीति ४ पु. पा. ।

२ यथाकारमहं भाष्ये किं भवानिति ४ पु. पा. ।

रम्, एवं द्वैधंकृत्येत्यादि । 'नाधार्यप्रत्ययै व्यर्थ' इति त्काणमुनौ ।
 पूर्ववत्समायः । सूत्रार्थो भवनावुक्तः । कृतः । कृतवान् । कृतं गृह्णाति
 कृतयति । 'मुण्डमिश्रे' त्यादिना णिच्, स्वभावाद्गृह्णात्यर्थे प्रत्ययः, कृत-
 मनेन कृती । 'इष्टादिभ्यश्चे' तीनिः, कृतञ्च तदपकृतं च कृतापकृतं,
 'कृतापकृतानामुपमव्यान' मिति समासः । कृत्त्रिमम् 'द्वितः क्तिः,
 'कर्मन्वित्य' मिति । कडति मादृतीति कडः । अच् । कड करोतीति कडं-
 करो मापमुद्गादिकाष्ठ, तदर्हतीति कडकयः, कडं करीयः, 'कडकरदत्ति-
 णाच्छ' चे'ति अर्हतीत्यर्थे यच्छे । अत्रैव निर्देशादचि मुमागमः ।
 कर्म । मनिन् । कर्म शीलाऽस्य कर्मः 'छत्रादिभ्यो ण' इति णः ।
 'कर्मस्ताच्छील्ये' इति निपातनाट्टिनायः । 'नस्तद्वित' इति टिनाये
 सिद्धे निपातनं णेपि क्वचिदणकृतं कार्यं भवतीति ज्ञापनार्थं ।
 तेन तापसी चोरीत्यत्र णेप्यणकृतो डीष् भवतीति पूर्वोक्तम् ।
 कर्मणे प्रभवति कार्मुकम् । 'कर्मण उक्त्रि'ति 'तस्मै प्रभवती'-
 त्यर्थे उक्त्र, सर्वकर्म व्याप्नोति सर्वकर्मणः । 'तत्सर्वादे' रित्यादिना खः ।
 कर्मणि घटते कर्मठः । 'कर्मणि घटो ऽटत्रि'ति अटच् । कर्मो, व्रीच्या-
 दित्वादिनिः । कर्मणम्, 'तद्व्युक्तात्कर्मणो' रिति व्यावृत्तार्थवाग्युक्तात्क-
 र्मणः स्वार्थेण । 'अचि'ति प्रकृतिभावः । कारः । 'कृवापाजी' त्युण् ।
 क्रतुः । 'कृजः क्रतु' रिति क्रतुप्रत्ययः । कार्पासः । 'कृजः पासणि'ति
 पासण, कृकः । 'कृदाधारार्चिकलिभ्यः क' इति कः, बाहुलकात्कलोपगु-
 णयोरभावः । उरी'कृत्य, पटपटाकृत्य । 'ऊर्यादिच्चिडाचश्चे'ति कृभ्य-
 स्तियोगे ऊर्यादीनां गतिसञ्ज्ञा । तथा च वृत्तिः । चिडाचोः कृभ्यस्तियोगे
 विधानादूर्यादीनामपि तैरेव योगे गतिमञ्जेति, वानिकमपि कृभ्यस्तियोग-
 इति वक्तव्यमिति । सञ्ज्ञाप्रयोजनं समासादि । ऊर्यादीनां प्रयोगोपि कृभ्य-
 स्तियोगएवेति कैयटपदमञ्जरीः । कथं तर्हि भवति आविश्वत्तुपोभव-
 दसाविव राग इति । अभवद्गुणपट्टिजालजिह्वा युगनीडोभयमृक्कभागमावि-
 रिति च । स्वतन्त्राः कत्रय इति हरदत्तः । तत्राप्याविः प्रादुःशब्दो मुक्त्वा

अन्येषामूर्धादीनामर्थस्वभावात्करोतियोगएव प्रयोगः । अत एव वृत्ति-
कृता गणवृत्तिकृता अन्यैश्च शाकटायनादिभिः करोतियोगएवादाहरण
दर्शितम् । अञ्छब्दस्य दधातिनैव योग इत्यन्ये, श्राण्ट वषट् स्वाहा
स्वधेत्येतेषां पञ्चानां चादिषु पाठादक्रियायोगेऽपि प्रयोगः । अन्येषां दय
उदाहार्याः । कारिकाकृत्य । क्रियां कृत्वेत्यर्थः । कारिकाशब्दस्योप-
सख्यानमिति गतित्वं, 'धात्वर्थनिर्द्देशे एवुल' इति एवुलन्तः कारिका-
शब्द इति न्यासे, खाट्कृत्य 'अनुकरणं चानितिपर' मिति गतिसंज्ञा,
अनुकरणस्य इतिपरत्वे तु खाडिति कृत्वा । सत्कृत्य । 'आदरानादरयोः
सदसती' इति गतित्वं, प्रीतिपूर्वकप्रत्युत्थानादिविषयत्वर आदरः, अव-
ज्ञया कर्तव्य प्रत्युत्थानादिक प्रत्युपेक्षा उनादरः । अन्यत्र सत्कृत्वा,
असत्कृत्वा । शोभनमशोभनञ्च कृत्वेत्यर्थः । अलकृत्य । 'भूषणे ऽल' मिति
गतित्वं, भूषणादन्यत्रालं कृत्वा, करणेनालमित्यर्थः । अनुकरणमित्या-
दयस्त्रयो योगाः स्वभावात् कृञ्विषयाः, पुरस्कृत्य पूर्वदेशे कृत्वेत्यर्थः ।
'पुरोऽव्यय' मिति गतिसंज्ञा, 'पूर्वाधरावराणामसिपुरधवश्चैषा' मिति
सप्तम्यन्तात् स्वार्थे ऽसिप्रत्ययः पुरादेशश्च, 'तद्वितश्वासर्वविभक्ति'-
रित्यव्ययत्व, 'नमस्युरसोर्गत्यो' रिति विसर्जनीयस्य सत्वम् । अव्यया-
दन्यत्र, पुरः कृत्वा गतः । अस्तंकृत्य । 'अस्तञ्चे' ति गतिसंज्ञा,
चकारोव्ययमित्यनुकर्षणार्थः, तेनात्रैव निर्द्देशादस्तशब्दो मकारान्तो ऽव्य-
यमस्तीति ज्ञायते । अस्य त्वदर्शनमर्थः । अन्यत्रान्तंगतः क्षिप्त कृत्वे-
त्यर्थः । द्वाविमौ योगौ करोत्यविषयावपि दृश्येते, यथा 'तुरासाह पुरो-
धाय । 'अस्तगत्य सविता पुनरुदेति' । अदःकृत्य । 'अदोऽनुपदेश' इति
गतित्वम् । उपदेशः परार्थो वाक्यप्रयोगः । ततोऽन्योपदेशः, स्वय-
मेव बुद्ध्या परामर्श इति यावत्, परस्य कथने त्वदः कृत्वा गत इति,
सूचे ऽद इति द्वितीयान्तानुकरणेनामुना कृत्वेत्यर्थदः कृत्वेत्येव भवतीत्या-
त्रयः । तिरस्कृत्य 'विभाषा कृजी' ति तिरसो वा मतित्वं, मन्तद्वौ
'तिरसोन्यतरस्या' मिति विसर्जनीयस्य वा सत्वम्, अन्यदा तु 'कुण्डो-
कक्षौ चे' ति जिह्वामूलीयविसर्जनीयौ द्रष्टव्यौ, अगतित्वे 'तिरसोन्यत-

रस्या'मिति सत्त्व गतेरितीह न भवतीत्यात्रियः । केचित्तु तत्र गति-
ग्रहणं नानुवर्तयन्ति, तेन तिरस्कृत्येवत्रापि सत्त्वम् । अत एव परामर्शेपि
तिरस्कार इति, अयं पक्षो भाष्यवृत्तित्यामपदमञ्जरीदौ न दृश्यते ।
उपाजेकृत्य उपाजे कृत्वा । अन्वाजेकृत्य । अन्वाजे कृत्वा इति, 'उपाजे-
न्वाजे' इति वा कृञ् गतित्वम् । उपाजेन्वाजेगव्यौ विभक्तिप्रतिरूपकौ
निपातौ दुर्बलस्य सामर्थ्याधाने वर्तते । साक्षात्कृत्य । साक्षात् कृत्वा ।
'साक्षात्प्रभृतीनि चे'ति कृञ् वा गतित्वम्, अत्र वार्तिकं साक्षात्प्र-
भृतिषु च्यवर्त्यग्रहणं, तत्र च्छिप्रत्ययप्रतिषेध इति । तेन च्यवन्त्ये-
दित्वाद् इति गतित्वम् । अस्य च प्रयोजनमकारान्तेषु लङ्गणान्ये-
त्यादौ । अत्र लवणमुष्णमुदकं गीतमाहमिति पञ्च पठ्यन्ते, एता-
मत्रैव निपातनादृतित्वमनियोगेन मान्तव्यम् । अत्रानौबरे भूयः
केचिदेजन्ताः पठ्यन्ते, ते विभक्तिप्रतिरूपका निपाताः, प्रादुसवादिम्
शब्दाविह पठ्यन्ते, तयोक्त्यादित्वाच्चित्ये प्राप्ते विकल्पार्थः पाठः, उपादि-
पाठस्तु कृध्वस्त्रियोगे नित्यार्थः । अत्र नमःशब्दः पठ्यते, स यदा गति-
सञ्जस्तदोपमगवद्वृत्त्या कृञ् प्रणामवचनत्वं व्योतयतीति प्रणामा-
लया कर्मणि देवादौ 'नम स्वर्त्मान्ये' तदुधित्वोपपत्तिभेदे कारक-
विभक्तिर्लीयमीति नमस्यति देवानिति वचनमस्फुरति देवानिति द्विती-
यैव भवति । अगतित्वे तु करोतिक्रियाकर्ममवापन्न विशेषभूतं
प्रणाममाचष्टइति देवादावकर्मणि 'नम, स्वर्त्मान्ये'ति चतुर्थी । तथा च
भट्टिः । नमस्कार देवेभ्यो, रात्रणाय नमस्कृत्य इति, स्वयं भू- प्रकृ-
त्येत्यत्र तु नमसो गतित्वे कृञो विशेषकत्वात्प्राप्ता कारकत्वेन द्वि-
तीयां क्रियायां पदस्येति चतुर्थी बाधते, तदत्रायमयो वाच्यः, अयमुव-
ग्रीणयितुं प्रणम्येति, वर्तमानस्तु आद्याय निरुहते इति वात्क्रियायकत्वं कर्त-
व्यमिति चतुर्थीमाह । उरसिकृत्य । उरसि कृत्वा मनमिकृत्य मनसि कृ-
त्वा । बुद्धौ कृत्येत्यर्थः । 'अनन्याधानउरसिमनसो' इति उरसिमनसो-
त्यनयोर्गो गतित्वम् । अन्याधानमुपश्लेषस्तदभावो उनन्याधानम् । अन्या-
धाने तु उरसि कृत्वा पाणि शतइति । मत्तम्यन्तप्रतिरूपकावेनौ मध्ये

कृत्वा मध्येकृत्य । पदे कृत्वा पदेकृत्य । निवचने कृत्वा निवचनेकृत्य
 'मध्येपदेनिवचने चे'ति वा गतित्वम् । अनत्याधाने मध्येपदेशब्दे विभ
 क्तिप्रतिरूपकौ, निवचन वचनाभावः । सन्तृणमिनिवदव्ययीभावः । उच्चा
 रणसामर्थ्यान्सप्तम्या लुङ् न भवतीति न्यासे । हरदत्तस्तु निपातनादेका-
 रान्तत्वं न पुनरेषा सप्तमी । वाचनियम्येति व्याख्यानात् । निपातनं
 चाविशेषेण न तु सज्ञासंज्ञियुक्तं, निवचने कृत्वेत्युदाहृतत्वादित्याहुरिति ।
 अत्याधाने पदे कृत्वा शिरः शेते, हस्तेकृत्य । पाणौकृत्य । 'नित्यं हस्तेपा-
 णावुपयमने' इति नित्यं गतित्वं, निपातनादलुगिति न्यासे, सप्रम्यन्तप्रति-
 रूपकाविति हरदत्तादयः । उपयमनं दारकर्मति वृत्तौ, अन्ये तु स्वीकरण-
 मात्रमिच्छन्ति । हस्तेकृत्य महास्त्राणीति । आत्रेयस्तूपयमनमपरित्याग-
 लक्षणं स्वीकरणं, तथा च भट्टिः । हस्तेकृत्य त्वमाश्वामीरिति, प्राध्वंकृत्य
 शकटं गतः, बन्धनेनाकूलं कृत्वा गत इत्यर्थः । 'प्राध्वं बन्धन' इति गतित्वम् ।
 प्राध्वंशब्दस्य मान्तस्याव्ययस्यानुकूल्यार्थत्वाद्वन्धनइत्यर्थद्वारेण बन्धने
 सति यदानुकूल्यमिति, अबन्धने तु प्राध्वं कृत्वा कटं गतः । विनापि बन्धने-
 नानुकूलं कृत्वेत्यर्थः, जीविकामिव कृत्वा जीविकाकृत्य, उपनिषदमिव कृत्वा
 उपनिषत्कृत्य, 'जीविकोपनिषदावौपम्य' इति गतित्वम् । इवशब्दप्रयोगे
 जीविकोपनिषदौ स्वार्थं वर्त्तते नौपम्यइत्यगतित्वाच्च समासः । मामधिकृत्वा
 ईश्वरो भवेति, मां विनियुज्येत्यर्थः । यथा स्वरितेनाधिकारः, यामे ऽधिकृत
 इत्यनयोः प्रयोगयोर्विनियोगो ह्यर्थः । 'विभाषा कृजो'त्यधेरैश्वर्यं गम्यमाने
 कर्मप्रवचनीयसज्ञा । अस्याः फलमाकङ्क्षादिति गतिसंज्ञाबाधः । द्वितीया
 त्वधिकृजो विनियोगार्थत्वात्कर्मणीत्येव सिद्धा । अगतित्वे तु प्रादिसमासस्य
 कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेध इति निषेधाद्वाक्यमेव भवति । कर्मप्रवचनीयत्वा-
 भावे तु गतित्वात्समासे मामधिकृत्येति । अनुदात्त उभयतोभाषः ॥ ८ ॥

इति श्रीपूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वरकम्पराजसुतसंगममहारा-
 जमहामन्त्रिणा मायणपुत्रेण माधवसहोदरेण सायणाचार्येण विरचि-
 तायां माधवीयायां धातुवृत्तौ उविकरणास्तनादयः संपूर्णाः ।

अथ क्र्यादयः^१ ।

डुक्लीज् द्रव्यविनिमये ॥ क्रीणानि । क्रीणीतः । क्रीणन्ति ।
 क्रीणासि । क्रीणामि । क्रीणीवः । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते ।
 क्रीणीषे । क्रीणे । क्रीणीवहे । इत्यादि । 'क्र्यादिभ्यः स्ने' नि शपोपवादः
 शना, 'शनाभ्यस्तयोरात्' इति किति सार्वधानुक्तशालोपः । हलादौ
 'त्वीहल्यघोरि' तीत्वम् । भिक्तयोः परत्वाच्चित्त्वादन्तरङ्गत्वादीन्वा-
 त्पूर्वमन्तादेशाद्भावयोराल्लोपः । चिक्राय । चिक्रियतुः । चिक्रियथ ।
 चिक्रेथ । चिक्रियथुः । चिक्रिय । चिक्राय । चिक्रय । चिक्रिये । चिक्रि-
 याते । चिक्रियिषे । चिक्रियिष्वे । चिक्रिये । चिक्रियिवहे, क्रादिनिय-
 मादिट्, यलि तु भारद्वाजनियमादिट्ठिकल्पः । अगुणवृद्धिष्ये
 इयङ् । 'एरनेकाच' इति यण् तु सयोगपूर्वत्वाच्च भवति । क्रीता ।
 क्रीयति । क्रीयते । क्रीणानु । क्रीणीतात् । क्रीणानाम् । क्रीणान्तु ।
 क्रीणीहि । क्रीणानि । क्रीणाव । क्रीणीनाम् । क्रीणानाम् । क्रीणानाम् ।
 क्रीणीष्व । क्रीणावहे । तातडः स्वतो ङित्त्वाट्टेश्वापित्वेन ङित्त्वा-
 दीत्वम् । उत्तमे त्वाटोपित्वेन ङित्त्वाभावादीन्वाभावः । अक्रीणान् ।
 अक्रीणीनाम् । अक्रीणाः । अक्रीणीतम् । अक्रीणीत । अक्रीणाम् । अक्री-
 णीव, अक्रीणीत, अक्रीणीथाः । अक्रीणायाम् । अक्रीणीध्वम् । अक्रीणि,
 अक्रीणीवहि । क्रीणीयात् । क्रीणीयाताम् । क्रीणीयाः । क्रीणीयाम् ।
 क्रीणीयाव । यासुटो ङित्त्वात्पिदुचनेष्वपीत्वम् । क्रीणीत । क्रीणीयाताम् ।
 क्रीणीथाः । क्रीणीय । क्रीणीवहि । क्रीणीमहि । सीयुटि 'शालोपः ।
 आशिषि क्रीयात् । क्रीयास्ताम् । क्रीयीट् । क्रीयीयास्तामिन्यादि । अक्रीयात् ।
 अक्रीयाम् । अक्रीयम् । सिचि वृद्धिः । अक्रीय । अक्रीयानाम् । अक्रीयाः ।
 अक्रीयि । चिक्रीयति । चिक्रीयते । चेक्रीयते । चेक्रीति । क्रापयति ।
 अचिक्रपत् । 'क्रीड्जीना णावि' त्यात्वे पुक् । शतेन शताय वा परिक्रीणीते ।
 'परित्यजेभ्य' इत्यकर्त्रभिप्रायेपि तङ् । एव व्यवाभ्यामपि । इह पर्या-

दय उपसर्गा गृह्यन्ते इति बहु विक्रीणाति वनमिन्यादौ न भवति ।
 'परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्यामि'ति परिपूर्वस्य क्रीणातेः साधकतमस्य
 पक्षे संप्रदानत्वम् । परिक्रयण वेतनादिना नियतकालं स्वीकरणम् ।
 क्रीत्रिमं । 'द्वितःक्रिः' । 'कर्मम् नित्यम्' क्रीतः । क्रीतवान् । अश्वेन
 क्रीता अश्वक्रीती । धनेन क्रीता धनक्रीती । 'कर्तृकरणे कृता बहुल-
 मि'ति तृतीयासमासः । स च 'गतिकारकोपपदाना कृद्धिः सह
 समासवचनं प्राक्तुबुत्पत्तेरिति' क्रीतशब्देनेति 'क्रीतात्करणगृह्यादि'-
 त्यदन्तात् क्रीतान्तात्प्रातिपदिकाद्विधीयमानो ङीष् भवति । सा हि तस्य
 धनक्रीता प्राणेभ्योपि गरीयसीत्यत्र तु बहुलयरङ्गादाबन्तेन समास
 इति अनदन्तत्वान्ङीष्भावो वाच्यः । अन्तवद्भावेन टाबन्तोपि कृदन्त
 एवेति कृदन्तलक्षणसमासलाभः । क्रयः । एरच् । अवक्रियते व्यवह्रियते-
 नेनेति अवक्रयः । आयस्यानेषु वणिगदिभिर्दीयमन्नः स्वामिग्राह्यो
 भागः, यस्य पिण्डक इति प्रसिद्धिः । 'पुंसि सज्ञायामि'ति घः ।
 क्रयार्थं प्रसारित क्रय्यम् । अचो यति, 'क्रय्यस्तदर्थ' इत्ययादेशः । अत्र
 तच्छब्देन क्रयः परामृश्यते । अन्यत्र गुणे क्रयः । क्रायकः, एबुल्, क्रियि-
 कः । 'क्रिय इकचि'ति इकन् ॥ १ ॥

प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च ॥ कान्तिः कामनेति दुरुषकारे । प्री-
 णाति । प्रीणीते इत्यादि क्रीणातिवत् । प्रीणयति । अपिप्रीणत् । 'धूञ्-
 प्रीजोर्नुबुक्तव्य' इति नुक् । प्रीणातीति प्रियः । 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः
 क' इति कः । प्रेष्ठ इत्यादि दिवादाबुक्तम् ॥ २ ॥

श्रीञ् पाके ॥ श्रीणाति । श्रीणाते इत्यादि क्रीणातिवत् । श्राय-
 यति । अशिश्यत् । वृद्धायौ ॥ ३ ॥

मीञ् हिसायाम् ॥ मीनाति । मीनीतः । मीनासि । मीनामि ।
 मीनीवः । मीनीते । मीनाते । मीनीषे । मीने । मीनीवहे । ममौ,
 मिम्यतुः । मिमिथ । ममाथ । मिम्यथुः । मिम्य । ममौ । मिम्यिव । 'मी-
 नातिमिनोती'त्येज्विषये आत्व ल्यपि च । अन्यत्र 'एरनेकाच' इति
 यण् । मिम्ये । मिम्यिषे । मिम्ये । मिम्यिवहे । माता । मास्यति । मा

स्यते । मीनात् । मीनीतम् । अमीनात् । अमीनीत । मीनीयात् ।
मीनीत । आगिषि । मीयात् । यामुट् । श्रियादनेत्विप्रपत्तावाच्यम् ।
मामीट्, अमामीत । अम'मिष्टम् । अमान् । अम'माताम् । आत्वे
यमरमनमानामि'ति मगिटौ । मनि मित्मनि । मित्मते । मनिर्मा
मे'त्यच इम् । 'मः स्य'दृथ'नुक्' इति नन्वम् । 'अत्र लोप इयस्याम-
लोपः । मेमीयते । मेमेनि । 'मीत'र्त्त'नि' स्त्रिया निर्देशावाच्यम् । मा
पयति । आत्वे पुक् । अमीप्रदन् । प्रमीणानि । 'हितुर्माने' लुपमर्ग-
स्याचिमित्तात्परस्य मीनागज्जन्तास्य गन्त्य प्रमीणानः, प्रमीणर्त्तः
त्यादौ परनिमित्तकस्यैव स्यात्कौटस्य च पूर्व'वधौ स्यात्तिवत्यादेवदेशवि-
कृतस्यानन्यत्वाद्वाणत्वम् । मीत्या । मीनः । मीनवात् । प्रमाय । 'मीना-
ती'ति न्ययाच्यम् । ईदम्प्रनय । मयः । 'निमिम'लिया' पल्लवः
प्रतिषेध' इत्यात्वनिषेधः ॥ ४ ॥

पिञ् बन्धने ॥ मिनाति । मिनीति । इत्यादि जीवन् । मिपाय ।
मेप्यनीत्यादि । 'आदेशप्रपञ्चयोरि'ति यत्त्व, मिप्यनुरित्यादा वीरने
काच' इति यण् । मिमीपतीपत्र 'स्ते'मिप्योरि'त्यप्रत्ययम् । अस्म-
नगमे'ति दीर्घः । मिनः । मिनवात् ॥ ५ ॥

स्कुत्र आप्रवणे ॥ मै'वीर'म'पादा'र' इति । 'स्कुम्बुस्कुम्बु-
स्कुम्बुस्कुत्र'भ्यः शुभ्र'त्यत्र वृत्तिभार' एते मौत्रा धातवः, स्कुत्र आप्रवणे
श्रयादिरिति । स्कुनाति । स्कुनीतः । स्कुनन्ति । स्कुनामि । स्कुनानि ।
स्कुर्नानि । स्कुर्नापि । चुम्काव । चुम्कुवनुः । चुम्कुपिच । चुम्कुपि ।
चुम्कुव । चुम्कुपिच । चुम्कुवे चुम्कुपिचि । चुम्कुपिचि । चुम्कुपिचि ।
वयः शेषः, स्कुना । स्कुप्यनि । स्कुप्यन्ते । स्कुनात् । स्कुनीनाम् ।
स्कुनीहि । स्कुनानि । स्कुताव । स्कुर्नागम् । स्कुनागम् । स्कुर्नाय ।
स्कुनै । स्कुनावहै । स्कुनात् । स्कुनाम । स्कुन्यन्तु । स्कुन् । स्कु-
वानि । स्कुनुनाम् । स्कुन्वानाम् । स्कुन्वानाम् । स्कुनीष्व । स्कुनवै ।
अस्कुतात् । अस्कुनीनाम् । अस्कुनाः । अस्कुनाम् । अस्कुनीन । अस्कु-
नाताम् । अस्कुनीया । अस्कुनि । अस्कुनीवजि । स्कुनीयात् । स्कु-

नीथाः । स्कुनीयाम् । स्कुनीत । स्कुनीयाताम् । स्कुनीथाः । स्कुनीय ।
स्कुनुयात् । स्कुन्वीत । स्कुन्वीथाः । स्कुन्वीय । आशिषि । स्कूयात् ।
स्कूयास्ताम् । स्कोषीष्ट । स्कोषीय । अस्कौषीत् । अस्कौष्टाम् । अस्कौ-
ष्ट । अस्कौषाताम् । चुस्कूषति । चुस्कूषते । चोस्कूयते । चोस्कोति ।
स्कावयति । अचुस्कवत् । स्कुत्वा । स्कुतः, स्कुतवान् ॥ ६ ॥

युञ् बन्धने ॥ युनाति । युनीते, योता, इत्यादि स्कुनातिवत् ।
युयूषतीत्यत्र 'सनीवन्तर्दु' त्यादौ युग्रहणेन ऊर्णूञ्साहचर्याच्चिरनुबन्ध-
कत्वाच्च मिश्रणार्थस्यादादिकस्य ग्रहणाद्विकल्पो न भवति । श्याद-
योनुदाता उभयतो भाषाः ॥ ७ ॥

अथ सेट आह ॥

कूञ् शब्दे ॥ एतदादयो धूजन्ता उदाता उभयतो भाषाः । कू-
नाति । कूनीते, इत्यादि स्कुनातिवत् । चुक्ताव । चुक्वतुः । चुक्वे ।
चुक्वाते । आर्तुधातुके त्विङ्गवति । क्विता । क्विष्यति । क्विषीष्ट ।
अक्तावीत् । अक्विष्टाः, सनि तूगन्तत्वा 'त्सनि ग्रहगुहोश्चे' तीक्ष्णबोधः ।
चुक्कषति । चुक्कषते, इत्यादि ॥ ८ ॥

द्रूञ् हिंसायाम् ॥ द्रूणाति, द्रूणीते, इत्यादि कूञ्वात् ॥ ९ ॥

पूञ् पवने ॥ पवनं पूतीकरणं, सकर्मकोयम् । तथा च पुनात्यग्निं,
पुनीते आत्मानं कर्षकेण, वलजं पुपूषतइत्यादौ सकर्मकत्वं दृश्यते ।
पुनाति । पुनासि । पुनामि । पुनीते । पुनीषे । पुने । 'ष्वादीनां ह्रस्व'
इति शिति परे ह्रस्वः । पुपाव । पुपुवतुः । पुपुविष्य । पुपुविष्यते । पुपुवे,
पुपुविरे । पुपुविषे । पुपुवे । पविता । पविष्यति । पविष्यते । पुनातु ।
पुनीताम् । पुनीष्व । पुनै । अपुनात् । अपुनीताम् । अपुनाः । अपु-
नाम् । अपुनीव । अपुनीत । अपुनाताम् । अपुनीथाः । अपुनि । अपु-
नीवहि । पुनीयात् । पुनीथाः । पुनीयाम् । पुनीत । पुनीयाताम् ।
पुनीयाः । पुनीय । आशिषि । पूयात् । पूयास्ताम् । पविषीष्ट । अपा-

१ कूनातिवदिति ४ पु. पा. ।

२ शालजान् इति ४ पु. पा. ।

धीन् । अश्रुविष्टाम् । अश्रुविष्टः । अश्रुविष्टः । पुपुषन्ति । पुपुषन्ते ।
उगन्तत्वादनितृत्वम् । पोपुषन्ते । पोपोति । पोपुषन्ति । अर्षापवन् । 'श्रोः
पुयण्जी'त्यभ्यामस्येचम् । 'दीर्घा' लघो गिति दीर्घः । पृत्वा ।
पूतः । पूना यथाः । विनष्टा इत्यर्थः । 'पूत्रो विनाश इति निष्ठान-
त्वम् । शेषाः कृन्ः पवतिवन् ॥ १० ॥

'लूत्र' छेदने ॥ लुनाति । लुनीने, इत्यादि पुनानिवन । लघि
त्रम् । 'अर्तिलु'—इति इत्रः । लृत्वा । लून । 'लृत्वादिभ्यः' इति निष्ठा
नत्वम् । लूनिः । 'अलृत्वादिभ्यः क्विप्ठि' इति नत्वम् । लवक्रः ।
'पुस्तृत्वः समभिहारे वुचि' इति वुत् । अभिनाशः । 'निरभ्योः पुन्वो
रि'ति घञ् । अशोपवाद् । लोत्र करणे वृत् । लोतः । 'रमिमुदिण
वामिदमिलुधूर्विभ्यस्तृति' तत् । उभयत्र 'नितुत्रे' नितुत्रे ॥ ११ ॥

स्तृञ् आच्छादने ॥ स्तृणाति । स्तृणामि । स्तृणामि । स्तृणीने ।
स्तृणीषे । स्तृणे, तस्तर । तस्तरनुः । तस्तरिय । तस्तरिव । तस्तरि ।
तस्तरिषे । तस्तरिवरे । 'अच्छत्युतामि'ति गुणः । इटि विषये तु
पूर्वविप्रतिषेधेन इटि । कृन्ते वा गुणे इटिरित्युक्तम् । स्तरिता ।
स्तरिता । स्तरिष्यति । स्तरीयने । स्तरीयति । स्तरिष्यते । 'वृत्ता वे-
त्यनिटीटो दीर्घविकल्पः । स्तृणातु । स्तृणाहि । स्तृणानि । स्तृणाव ।
स्तृणीताम् । स्तृणीष्व । स्तृणै । अस्तृणात् । अस्तृणीताम् । अस्तृणाः ।
अस्तृणाम् । अस्तृणीव । अस्तृणीयाना स्तृणीत । स्तृणीत । स्तृणीत । स्तृणीत ।
स्तरिणीट । 'लिङ्मिचोरात्मनेपदेष्वि तीद्विकल्पः । उश्चे'ति क्तिन् ।
इटपक्षे 'वृत्' इति दीर्घस्य 'न लिङो'ति निषेधः । अस्तरीतु । अस्त-
रिष्टाम् । 'मिचि च परस्मैपदेष्वि तीटो न दीर्घः । अस्तरीट ।
अस्तरीष्ट । अस्तरिष्ट । 'लिङ्मिचोरि तीद्विकल्प इटि 'वृत्'
इति वा दीर्घः । अनिटि 'उश्चे'ति क्तिन् । तिस्तीर्यति । तिस्तरि-
रिषति । तिस्तरिषति । 'इट् सनि वे'ति वेट् । इटि पूर्ववद्दीर्घः ।
स्तारयति । अस्तारत् । 'अस्तृदृत्वरे'त्यभ्यामस्यात्वम् । मणिप्रस्ता-
रः । 'मे स्तोऽयञ्' इति घञ् । यञ्चविषये त्वपि प्रस्तरः । विस्तरः ।

‘प्रथने वावशब्दे’ इति धञ् । शब्दविषये तु विस्तरः । विष्टारः । पङ्क्तिच्छन्दः । ‘हृन्दोनामि चे’ति योगाभ्यां घञ्पत्वे । अव-
स्तारः । ‘अवे तृस्तोर्घञि’ति करणाधिकरणयोर्घञ् । स्तीर्णः । स्तीर्णः ।
‘चत्वादिभ्यः क्तिञ्छिष्ट’वदि’ति नत्वम् ॥ १२ ॥

कृञ् हिसायाम् ॥ कृणाति । कृणीते । चकार । चकारतु, चकरः ।
इत्यादि स्तृणातिवत् ॥ १३ ॥

वृञ् वरणे ॥ वृणाति । वृणीते । ववार । ववरे । वरिता । वरीता ।
वरिष्यति । वरीष्यति । वरिष्यते । वरीष्यते । वृणातु । वृणीताम् । अव-
खात् । अवृणीत । वृणीयात् । वृणीत । आशिषि वूर्यात् । ‘उदोष्पू-
र्वस्य’त्यगुणवृट्प्रविषये उत्वे रपरत्वे च ‘हलि च’ति दीर्घः । वरिषीष्ट ।
वूर्षीष्ट । ‘लिङ्सिचोरात्मनेपदेष्वि’तीडभावपक्षे ‘उश्चे’ति क्त्वादुत्वादि ।
वट्पक्षे पूर्ववच्च ‘लिङी’ति अदीर्घत्वम् । अवारीत् । अवारिष्टाम् । पूर्वव-
‘वृत’ इति दीर्घस्य ‘सि चि च परस्मैपदेष्वि’ति निषेधः । अवरीष्ट । अव-
रीष्ट । अवूर्य । ‘लिङ्सिचो’रितीद्विकल्पे ‘वृत’ इति दीर्घः । अनिटि
‘उश्चे’ति क्त्वादुत्वादि । ववूर्यति । ववरीषति । ववरीषति ।
‘इट् सनि वे’तीद्विकल्पे ‘वृत’ इति दीर्घविकल्पः । अनिटि ‘इको
भलि’ति सनः क्त्वे उत्वादि । ववूर्यते । ववरीति । ‘चतश्चे’ति
तपरनिर्देशाच्च रगादीत्युक्तम् । वारयति । अवोवरत् । वूर्यः, वूर्यवान् ।
वूर्यः ॥ १४ ॥

धूञ् कम्पने ॥ धुनाति । धुनीते । दुधाव । दुधुवतुः । दुधुविष, दुधु-
विव । दुधुविम । दुधुवे । दुधुविषे । दुधुविद्वे । दुधुविद्वे । दुधुविवहे ।
‘स्वरत्या’दिसूत्रेण प्राप्तमावृधातुकनिबन्धनमिद्विकल्पं पुरस्तात्प्रतिषे-
धकाण्डारम्भसामर्थ्यात् ‘श्युकः कित्ती’ति निषेधो बाधते, तमपि क्त्वादि-
नियमो बाधत इति नित्यमिदित्यादि तत्र^१ तत्रोक्तम् । धोता । धविता ।
धोष्यति । धविष्यति । धोष्यते । धविष्यते । ‘स्वरत्यादि’नेद्विकल्पः ।

धुनात् । धुनीनाम् । अधुनात् । अधुनीनाम् । धुनीयात् । धुनीत ।
आशिषि धुयात् । धीर्याष्ट । धिर्विशीष्ट । अध्यावात । अ२ पिष्टात् । अधो
ष्ट । अधविष्ट । 'स्तुमुनाम्' परस्मैपदेषु नि निव्य निव इष्ट ।
दुधूपति । दुधूपते । मनि यङ्गुणोच्चे तर्गितपेधः पूर्ववत् । 'मनि' नि
पेधकाण्डारम्भसामानान् 'स्वरन्वादि' प्रिहन्त्यन् धने दे० भूते । दे०
धोति । धूनयति । अदुधुनत् । 'पृ० भू० भू०' नि निनुज धून्वा । पूर्ववत्
'श्युकः' क्तिनी तर्गितपेधः, धूयम् । यस्य विभाषे 'त्यन्तिह्य' धुनोनि
धूनोतीति स्वादौ । धुवर्ताति कुटादौ । कृजद्वय उदात्ता उभययो
भाषाः ॥ १५ ॥

शृ निम्नयाम् ॥ इतो एतान्यन्ता उदात्ता उदात्तेनः सन्तानि ।
शृणीतः । शृणामि । शृणामि । शृणार । शृणतुः । शृणतुः । शृणुः ।
शशरुः । शशरिष्य । शश्र । शृणार । शशिर । शश्रिव । शशरिव । अम
योगान्निदि 'त्यपिनो' निष्टः क्तिन्वे शृष्ट्वा इह्यो वे' नि इह्यपते
यणादेशः । अन्यटा 'चञ्चन्तुना' मिति कृतः । अपिनो निष्टः क्तिन्वेन
'श्युकः' क्तिनी ति प्राप्तस्तेगितपेधस्य प्रा० निधनेन बाधः । शरीना ।
शरीता । शरिष्यति । शरीष्यति । शरीतुः । शरीताम् । शरीति अय-
णात् । अशृणीताम् । अशृणाः । अशृणाम् । अशृणीव । शृणायात् ।
शृणीयाताम् । आशिषि शीर्यात् । शीर्यान्ताम् । शृण इष्टातोर्-
तीत्वे रपरत्वादि । अशारीत् । अशारिष्टात् । इतो दीर्घस्य निवि च
परस्मैपदेषु नि निवेधः । शिशरिषति । शिशरिषति । शिशरिषति ।
'इष्ट सनि वे' ति पातिरुप्येष्टो 'वृत् इति दीर्घः । अनि ङो को भक्ति-
ति सनः क्तिन्वादिन्वम्, शीर्याये, शारति । शारयति अशारयन् । शारो
वायुर्वणञ्च । नीशारः । अशारावरा, ने 'रूपरगन्ध घञी' नि दीर्घः ।
'शृवायुवर्णनिवृत्तेष्विति' घञ् । निविषतइति निवृत्तं प्रावारः ।
शारुकः । 'नरपनपदे' न्यादिनोक्तञ् । शारुकः । 'शृवन्त्योर्' नरि' न्यासः ।
किंशारः सम्यशुक, 'किञ्जरयोः श्रिण' इति किञ्जद्वयपदे उण् ।
शरः, आयुधं, 'शृवृष्टिहिचयसिचमिहनिक्लिद्वन्धिमनिधयत्वे' ल्यु-

प्रत्ययः । शरीरं 'कृशृपृकृटिपटिशौटिभ्य ईरन्' इति ईरन् प्रत्ययः । शरत् । 'शृदृभसोदिर' त्यदिप्रत्ययः । शरदिजः । 'प्रावृट्शरत्काल-
दिवां ज' इत्यलुक् । शरदि भव आदृ शारदिकं, 'आदृ शरद' इति
ठञ् । ऋत्वणोपवादः । शारदो रोगः । शारदिको रोगः । 'विभाषा
रोगातपयो' रिति वा ठञ् । अन्यदा ऋत्वण् । एवमातपेपि । शारदका
मुद्गाः । शारदका दर्भाः । 'संज्ञाया शरदो वुजि' ति तत्र जात इत्य-
स्मिन्विषये वुज् । दर्भविशेषस्य मुद्गविशेषस्य चयं सज्ञा । परा शृणा-
तीति परशुः । 'आङ्परयोः खनिशृभ्या डिञ्चे' त्युप्रत्ययः । डित्वाट्टि-
लोपः । बाहुलकात्परोपसर्गस्य ह्रस्वः, परशवे हित परशव्यम् । 'उगवा
दिभ्यो यदि' ति यत् । परशव्यस्य विकारः पारशवम् । 'कसीयपरशव्य-
योर्यजजौ लुक् चे'त्यज्प्रत्ययः, यत्प्रत्ययस्य लुक्,^१ पराशृणाति पापा-
नीति पराशरः, अच् । पाराशर्यः, गर्गादित्वादपत्ये यञ् । पाराशर्येण
प्राक्तं भित्तुसूत्रमधीयानाः पाराशरिणः । 'पाराशर्यशिलालिभ्या भित्तुन-
टसूत्रयोरि' ति प्राक्ते णिनौ तदन्ता 'च्छन्दोब्राह्मणानी' त्यधेतृवेदित्रो-
रणः 'प्राक्ताल्लुगि' ति लुक् । सूत्रस्यापि छन्दस्त्व तत्रेष्यते, णिनाव-
ल्लोपयलोपौ ॥ १६ ॥

पृ पालनपूरणयोः ॥ पृणाति । पपार । पपरतु । पप्रतुः । परिता ।
परीता । परिष्यति । परीष्यति । पृणातु । अपृणात् । पृणीयात् ।
आशिषि पूर्यात् । 'उदोष्पपूर्वस्ये' त्युत्वम् । अपारीत् । अपारिष्टाम् ।
पिपरिषति । पिपरीषति । पुपूर्षति । 'इट् सनि वे'तीडभावे 'इको
भलि' ति कित्वादुन्वादि । पोपूर्यते । पापर्ति । पारयति । अपीपरत् ।
पूतः, पूतवान् । 'न ध्याख्यापृमुर्द्धिमदामि' ति नत्वनिषेधः, 'उदोष्पपू-
र्वस्ये' त्युत्वम् । निष्ठानत्ववर्जं प्रक्रिया शृणातिवत् ॥ १७ ॥

वृ वरणे ॥ वृणातीत्यादि वृञ्चत् । तेनैव वृणातीत्यादिसिद्धा-
वपि पुनरस्योपादाने न प्रयोजनम् । नैतदुक्तम् । वृजो जित्वात्सिद्धे
ऽपि पदद्वये यदजितो वचस्तत्कर्त्रभिप्राये क्रियाफले परस्मैपदसिद्धय-

इति । आद्य पवर्गवृत्तीयादि ब्रह्मः पठन्तीति मृकप्रकारेणोक्तम् । तत्राद्य-
शब्देन जित् वृणानिबन्धने स्वामिश्राकटापनाद्यप्यव पठित्वा भरणमर्थ-
माहृतुः ॥ १८ ॥

भृ भर्त्सने ॥ भरणेप्येके । भृणाति । बभारेत्यादि वृञ्चन् ।
भरः । 'भृदोरप्' । भरणे न निर्वृत्त भस्मि, 'भावप्रत्ययान्तादिमञ्चकथ्य'
इतीमप् ॥ १९ ॥

मृ हिमायाम् ॥ मृणाति । मभारेत्यादि वृञ्चन् । म्रियनर्हति
तुदादौ ॥ २० ॥

दृ विदारणे ॥ दृणाति । ददार । ददरानुः । दद्वानुः । ददरुः ।
दद्वुरित्यादि शृणातिवन् । विशेषस्तु 'अन्-दृद्वृत्वे'त्यभ्यासस्य णौ
चङ्गत्वमददरदिति । अय घटादिपाठान्मिन् । भये ददरयति । अन्यत्र
दारयति । दारः । अप्, दरी । गौरादित्वान्डीप् । पुरदरः । 'पु मर्चयो-
दोरिसहोरि'ति खच् । भगदरः । 'भगे च दारेरिति वक्तव्या त्वन्' । 'खचि
ह्रस्व' इति उक्तप्रत्यय ह्रस्वः । दारः । 'दारजारी ऊर्नेरि णिनुक् च'ति
घञि णिनुक् । दरन् जनपदः । 'शृदृभस्मोऽदि'रित्यदिप्रत्ययः । दृपत् ।
'दृणातेः पुक् ह्रस्वश्चे'ति युगागमो धानोर्ह्रस्वाऽदिश्च प्रत्ययः । द्वियने
इति तुदादौ ॥ २१ ॥

नृ वयोहानौ ॥ शनाविषये नृणानीत्यादि । अन्यत्र ज्ञार्यतिवन् ।
यथा तु भाष्यवार्तिकवृत्तिन्यामपदमञ्जरीयादि तद्यायं धानुर्नाम्नीति
प्रतीयतइति जीर्यतायुपपादितम् । आत्रेयमैत्रेयद्वैवपुरुषकारादिषु दर्श-
नादिहास्माभिर्लिखितः ॥ २२ ॥

धृ इति त्वेके इति मैत्रेयः । धृणानीत्यादि ॥ २३ ॥

नृ नये ॥ नृणाति । नीर्णम् । नीर्णवान् । नरः । पवाञ्च ।
ना । 'नयनेर्ङिञ्च'ति नयनेर्चन्प्रत्ययः स च ङित् । नारी । 'नृन-
रयोर्ङिट्श्चे'ति शाङ्गैरादिपाठान्डीन् वृद्धिश्च ॥ २४ ॥

कृ हिंसायाम् ॥ कृणानीत्यादि कृञ्चन् । तेनैव मित्रे पुनः पाठः
कर्त्रभिप्राये क्रियाफनेपि वृणानिवत्परस्मैपदार्थः ॥ मृ हिंसायामित्येक इति
मैत्रेयः, एव वदता ऽस्य पूर्वं मृणातेः पाठोऽनभिमत इति प्रतीयते ॥ २५ ॥

चृ गतौ ॥ चृणाति^१ । चृणीतः । चृणासि । चृणामि । अराञ्च-
कारेत्यादि, 'इजादेश्च गुरुमत' इत्याम् । अरिता । अरीता । अरिष्यति ।
अरीष्यति । चृणातु । चृणीताम् । चृणीहि । चृणानि । आर्णात् । आर्णी-
ताम् । आर्णाः । आर्णाम् । आर्णिव । चृणीयात् । चृणीयाताम् ।
आशिषि ईर्यात् । ईर्यास्ताम् । इत्वरपरत्वादि । आरीत् । आरि-
ष्टाम् । 'सिचि च परस्मैपदेष्वि'तीटो न दीर्घः । अरिरिषति ।
आरिरीषति । ईरिषति । 'इट् सनि वे' तीद्विकल्पः, इटि गुणः, पूर्ववद्वा
दीर्घश्च, अलिटि सनः कित्वादित्वादित्वादि, 'नन्दा' इति रेफवर्जितस्य द्विवे-
नम् । आरयति, माभवानरिरत्, ईत्वा, समीर्णः, समीर्णवान् । 'उदोष्मपू-
र्वस्ये'त्यत्र प्रत्यासत्त्याऽङ्गावयव एवाश्रो गृह्यतइत्युत्त्वमत्र न भवति ।
चच्छतीति शपि । इयतीति श्लौ ॥ २६ ॥

गृ शब्दे ॥ गृणाति । जगारेत्यादि पूर्ववत् । 'अवाद्' इति
तङस्य न भवति । तथा च भाष्यम् । न चावपूर्वस्य गृणातिः प्रयोगोऽस्तीति ।
'समः प्रतिज्ञान' इत्यत्र पूर्वसुत्रगृहीतस्यानुवृत्तिरिति सङ्गृह्यातीत्यत्र
तङ् न भवति । होत्रेऽनुगृणाति, प्रतिगृणाति । 'अनुप्रतिगृणाश्चे'त्यनु-
पूर्वस्य प्रतिपूर्वस्य च गृणातिः कारकं पूर्वस्याः क्रियायाः कर्तृभूत सम्प्रदान-
मिति होतुः सम्प्रदानत्वम् । होता चात्र पूर्वक्रियायां शंसने कर्ता भवति ।
अनुगरः प्रतिगर इति हि शसितुः प्रोत्साहनमुच्यते । तदय वाक्यार्थः ।
प्रथम शसति होता तमन्यः^२ प्रोत्साहयतीति । जगिष्यते । जागर्ति ।
जागीर्तः । 'लुपसदे'त्यादावकारविकरणौ, साहचर्या नौदादिकस्यैव गृह-
णमिति क्रियासमभिहारइवायं यङ् । इत्वरपरत्वयोः 'पूर्वत्रासिद्'मिति
पूर्व 'यो यङी'ति लत्वे रेफाभावान्न 'हलि चे'ति दीर्घः । लत्वे हि
गिरति गृणात्योर्द्वयोर्ग्रहणमुक्तम् । गृणातिप्रभृतय उदात्ता उदात्तेतः ॥ २७ ॥

ज्या वयोहानौ ॥ एतदादयो बध्नात्यन्ता अनुदात्ता उदात्तेतः । जि-
नाति । जिनीतः । जिनासि । जिनामि । जिनीवः । 'सहिज्या'दिना सम्प्र-

१ दीर्घेत्यधिकं ३ पु ।

२ संज्ञकमिति ३ पु. पा. ।

३ अथर्व्युतिरिति ४ पु. पा. ।

मारणे पूर्वस्त्वन्वे 'हल' इति द्विर्ध्वं व्यादित्वं दृश्यः । जिज्ञो । जिज्ञ्यनुः ।
जिज्ञ्यथ । जिज्ञ्याथ । जिज्ञ्यथ । आदित्विप्रमादिड । यत्नि भारद्वा-
जनिप्रमादिकृत्य । किति पाल्वात् पूर्व मन्प्रमारणे द्विर्ध्ववत् ।
अकिति 'लित्वध्यामस्योभयेऽम' मित्वध्यामस्य मस्यनरात् । ज्याना
ज्यास्यति । जिज्ञानु । जिज्ञानाम् । जिज्ञीहि । जिज्ञानि । जिज्ञाय ।
अजिज्ञानु । अजिज्ञानाम् । अजिज्ञाः । अजिज्ञाम् । अजिज्ञिथ । जिज्ञीषाव ।
जिज्ञीषानाम् । जिज्ञीषाः । जिज्ञीषाम् । अजिषि । जीषानु । जीषास्नाम् ।
अज्यामीन् । अज्यामिष्टाम् । 'यप्रामनम' नः मिने मगिडौ । जिज्ञ्या-
सपि । जेजीयते । ज्ञाज्याति । ज्ञापयति । अजित्ययन । जीव्या ।
जीनः । 'ल्यदिभ्य' इति निष्ठात्त्वम् । 'हल' इति द्विर्ध्वः । प्रत्ययः ।
'ज्यश्चे'ति ल्यपि मन्प्रमारणनिषेधः । ज्यानिः । 'लानाज्याहाभ्यो
नि'रिति निः ॥ २८ ॥

री गतिरेरणयोः ॥ रेण वृक्काज्यः । रिणानि । रिणीतः ।
रिणानि । रिणामि । रिराय । रिरियनुः । रिरियथ । रिरिय । रिपिथ ।
आदित्विप्रमादिड । यत्नि तु भारद्वाजनिप्रमादिकृत्य । अजादावे 'स्ने-
काच्च' इति योऽमिष्टत्वात् 'दृलि च' इत्यप्यप्येति द्विर्ध्ववत्
भवति । रिणानु । रिणीहि । रिणानि । अरिणानु । अरिणीनाम् ।
अरिणाः । अरिणान् । रिणीषानाम् । आरिगपि रीषानु । रीषास्नाम् ।
अरैमीन् । अरैष्टाम् । रीरीयति । रीरीयते । रेपयति । अरीरयत् । 'अतिं
ह्रीन्वा'दिना पुरु । शेष रीयनिवत् ॥ २९ ॥

ली श्लेखणे ॥ लितानि । लिदानु । अनिज्ञान । निर्नायात् ।
ललैः । लिनाय । लिन्यनुः । लनाय । लिनेय । लिनेयिथ ।
लिलियथ । 'विभाषा लीयते'रित्येज्जविषये ल्यपि याऽऽत्त्वप्रिकृत्यः ।
किति लिटि गज्जियत्वाभावात्त्वम् । लाना । लिनेत्यादि सर्व लीय-
तिवच्यम् ॥ ३० ॥

१ 'विज्याज्वरिभ्यो निः', यद्विज्ययद्वाभावात्त्वप्रिभ्यो निन' इत्येताभ्या ज्यानि,
'लानिरिति संसाध्य बाहुलकात् स्तानिर्गत्युक्तमण्डित्वाद्यर्थान्ने भट्टोजीदीक्षितः ।

ह्री वरणे ॥ ह्रीनाति । ह्रीनीतः । ह्रीनासि । ह्रीनामि । बिह्राय ।
बिह्रियतुः । बिह्रेथ । बिह्रियिथ । बिह्रियिष । ह्रेता । ह्रेष्यति । ह्रीनातु ।
ह्रीनीहि । ह्रीनानि । अह्रीनात् । ह्रीनीयात् । अह्रीषीत् । अह्रीष्टाम् ।
बिह्रीषति । बेह्रीयते । ह्रेपयति । अभिह्रीपत् । 'अर्तिह्री' त्यादिना पुक् ।
ह्रीत्वा, ह्रीनः । त्वादित्वाविष्टानत्वम् । प्रहीणं ह्रीनाति, नैनं दक्षिणा
ह्रीनाति, इत्यादौ दीर्घश्छान्दसः ॥ ३१ ॥

ह्री गतौ ॥ ओष्ठादिः । ह्रीनातीत्यादि ह्रीनातिवत् । के चिदमुं
दन्त्योष्ठादि पठन्तो ह्री वरणइत्यमु न पेटुः, मैत्रेयस्तु वरणार्थं पठित्वा
ऽमुं न पपाठ ॥ ३२ ॥

वृत् ॥ त्वादिपरिसमाप्पर्थायम् । अन्ये तु प्वादीनामपि परिसमा-
प्पर्थमिति, तत्रानन्तर्यात् 'जाजनोर्जा' इति दीर्घनिर्देशाच्च त्वादिपरि-
समाप्पर्थत्वमेव युक्तं, केति ह्रस्वान्तादेशेपि जायते जानातीत्यादा' वनो
दीर्घा यजीति' दीर्घेण सिद्धे प्वादिस्वाज्जानानीत्यत्र ह्रस्वो माभूदिति
हि दीर्घत्वम्, उक्तं चैव हरदत्तादिभिरपि ॥

व्री वरणे ॥ व्रीणाति । व्रीणीतः । व्रीणासि । व्रीणामि । विव्रा-
य । विव्रियतुः । विव्रेथ । विव्रियिष । व्रेता । व्रेष्यति । व्रीणातु । व्री-
णीतात् । व्रीणीहि । व्रीणानि । अव्रीणात् । अव्रीणीताम् । अव्री-
णाः । अव्रीणाम् । व्रीणीयात् । आशिषि व्रीयात् । अव्रीषीत् । अव्री-
ष्टाम् । विव्रीषति । वेव्रीयते । वेव्रेति । व्राययति । अविव्रयत् । स्वा-
मिकाश्यपादयोऽर्तिह्रीव्रीतिपठन्तो व्रेपयतीति पुक् प्रतिपत्ताः ॥ ३३ ॥

भ्री भये ॥ भरणइत्येके । भ्रीणातीत्यादि व्रीवत् ॥ ३४ ॥

क्षी हिंसायाम् ॥ क्षीणाति । क्षिप्तायेत्यादि व्रीवत् । षित्वा-
दङ्क्षीयः । क्षीत्वा । क्षीतवान् । 'क्षियो दीर्घा' इति निष्ठानत्व
ह्रस्वान्तस्य क्षियो 'निष्ठायामण्यदर्थ' इति कृतदीर्घस्य । क्षये क्षय-
तीति शपि । क्षियतीति निवासगत्याः । क्षिणातीति तनोत्यादौ हिंसा-
याम् ॥ ३५ ॥

ज्ञा अवबोधने ॥ जानानि । जानीवः । जानन्ति । जानामि ।
 जानामि । जानीवः । 'ज्ञा जनोर्ज्ञे'ति शिन्धन्त्ये जादेशः । दीर्घनि-
 देशमार्थ्यान् 'ष्वादीना' मिति ह्रस्वो नेति न्यी गनाविव्यञ्जेकम् । जज्ञौ ।
 जज्ञतुः । जज्ञिय । जज्ञाय । जज्ञिव । क्वादिनियमादित् । यन्नि भार-
 द्वाजनियमादिक्रयः । ज्ञाता । ज्ञाम्यति । जानातु । जानीहि । ज्ञाना-
 नि । अज्ञानान्, अज्ञानीनाम् । अज्ञानाम् । जानीयान् । आशिषि ज्ञाया-
 त् । ज्ञायास्ताम् । ज्ञेयान्, ज्ञेयास्ताम् । 'वाऽन्यस्यमर्थेगादे' रित्येत्ववि-
 कल्पः । अज्ञामीन् । अज्ञामिश्राम् । शनमपजानीने । अपनपनीत्यर्थः । 'अप-
 हुवेज' इति तङ् । मात्सर्यमपहुवे वर्त्तने । सर्पिषो ज्ञानीने । सर्पिषो
 पाये'न प्रवर्त्तनइत्यर्थः । 'अकर्मकाच्चे'ति तङ् । 'ज्ञोऽविदर्थेन्यर' -
 इति शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी । मात्रा मज्जानीने । म'न' मज्जानीने, शन
 प्रतिज्ञानीने, 'मम्यतिभ्यामनाध्यान' इति तङ् । मम्यवत्त्वे 'मज्ञोऽन्य-
 तरस्या' कर्मणी'ति पठे तुनीया । आध्य नदन्कगटाऽयंक स्मरण,
 ततोऽन्यदनाध्यानम् । आध्याने तु मातुः मज्जानानि । 'अधीगर्थे'ति
 कर्मणि शेषे षष्ठी । अशेषे तु 'मज्ज' इति द्वितीयातुनीये भवनः ।
 मातरं सज्जानानि । मात्रा मज्जानानि । कृत्येगे तु मातुः मज्जानम् ।
 कृत्योगलतणा षष्ठी परत्वाद्भवति धर्मेज्जानीने । 'अनुपमगोज्ञ'
 इति कर्त्रभिप्राये तङ् । स्वयं जानानि जानातइति वा, 'विभाषोपप-
 देन प्रतीयमाने' इति कर्त्रभिप्रायत्वे उपपदेन अन्यमाने तद्विक्रयः ।
 धर्मेज्जिज्ञागते । 'ज्ञाशुस्मृदृशां मन' इति तङ् । सकर्मकार्यमिदमकर्म-
 कात्तु 'पूर्ववत्सन' तङ् मिट्टः । अनुजिज्ञामति पुत्र, 'नाने ज्ञे' इति तङ्-
 निषेधः । अथ च मध्येपवादव्यायेन 'ज्ञाशुस्मृदृशामि' न्यस्यापवादः ।
 तेनौषधस्यानुजिज्ञामते इत्यत्र 'पूर्ववत्सन' इत्यकर्मकत्वनिबन्धनमङ्
 भवति । औषधेन प्रवर्त्तितुमिच्छनीत्यर्थः । ज्ञाज्ञायने ज्ञाज्ञाति । ज्ञापयति ।
 अजिज्ञपत् । मारणादौ ज्ञपयति घटादित्वान्मित्त्व प्रपञ्चोघटादावेवाङ्ग-
 न्तव्यः । जानातीति ज्ञा, 'इगुपधे'ति 'श्यादुधे'ति णापवादे के आन्तो

न्यथ । अथयुः । अथ । शश्रन्य । अथिव । अथिम । 'अन्यन्यद
भी' त्यादिना लिटः क्त्वा 'दनिदितामि'ति नलोपः कृङिति
अत्र हरदत्तः । 'एत्वाभ्यासलोपावत्र वक्तव्यावि'ति । अन्यथा 'असि
दुवदत्रे'ति नलोपस्यासिदृत्वादत एकहल्मध्यस्यत्वाभावाच्च तौ स्य
ताम् । ये तु श्रन्यादीनां क्त्वाविकल्पमिच्छन्ति तेषां शश्रन्यतुरित्य
दपि । इदं च क्त्वा पिदृचनेष्वपीति सुधाकरः । तन्मते । शश्राथ
अथिव । शश्रथ । शश्राथेति । श्रन्यता । श्रन्यप्यति । श्रयातु
श्रयीताम्, श्रयान । 'हलः श्नःशानजि'ति शानचि हेर्लुक् । श्रयानि
अश्रयात् । अश्रयीताम् । अश्रयाः । अश्रयीव । श्रयीयात् । श्रय
याताम् । आशिषि श्रयात् । श्रयास्ताम् । क्त्वादनानासिकलोप
अश्रन्यीत् । अश्रन्यष्टाम्, अश्रन्यषुः, शिश्रन्यपति । शाश्रयते । शाश्र
न्यीति । शाश्रन्ति 'भरो भरी'ति यलोपो विकल्पेन, लोपाभावे 'खां
चे'ति चत्वेन यकारस्य तकारः । श्रन्ययति । अशश्रन्यत् । कर्मकर्ता
'शिअन्यो' त्यादिना यक्त्वोर्निषेधात् श्रयीते मेखला स्वयमेव, अ
न्यष्ट मेखला स्वयमेवेति भवति । श्रन्यना । 'एयासश्रन्यो युजि'ति
युच्प्रत्ययः । प्रश्रयः हिमश्रयः । 'अवोदैधौप्रश्रयार्हमश्रया' इति ति
पातनाद् यजि नलोपो वृद्धभावश्च । श्रन्यत्वा, श्रयित्वा, 'नोपधात
फान्ताद्वे'ति क्त्वाविकल्पः । श्रन्यतइति शैथिल्ये शपि ॥ ३९ ॥

मन्य विलोडने ॥ अयं द्विकर्मकः । मय्याति । ममन्य । ममन्य
रित्यादि श्रयातिवत् । अस्य लिटः क्त्वा नास्ति । कर्मकर्तरि यक्त्वा
स्तः । मय्यते, अमन्यीति । ममन्यीति, विलोडने मन्यति, हिंसासक्ते
नयोः शपि ॥ ४० ॥

यन्य सन्दर्भे ॥ ययानि । इत्यादि सर्वं श्रन्यवत् । अत्रापि केचि
श्रन्य पठन्ति । पुनः पाठार्थभेदात् । तथा च शिश्रन्यीत्यत्र न्य
यन्य सन्दर्भेइति चुरादावित्युक्त्वा क्र्यादावपीत्युक्तम् । 'अवोदैधौद्
प्रश्रये'त्यत्र तु श्रन्य विमोचनप्रतिहर्षयोरिति । एवमुभयत्र पदमञ्जर्यं
मपि । पुरुषकारेपि श्रन्य विमोचनप्रतिहर्षयोः, अन्ये तु श्रन्य यन्य सन्द

इति क्र्यादौ पठन्ति । तथा च संदर्भे यन्त्रनक्रियाया श्रान्त्यन्त्यधातु
वर्तते इति तीरम्यामीत्युक्तम् । श्रान्त्यः, इत्यन्त्ययः ॥ ४१ ॥

कुन्य सश्लेषणे ॥ सक्रमे इत्येके । तथा च देवः । कुन्य सक्रमे
इति । कुन्याति । चुक्रुन्धेत्यादि मन्थिवत् । कुयेति दुर्गः । तन्मते कुन्या-
ति । चुक्रोथ । कोशितेन्यादि । कुन्यतीति शपि । कुन्यतीति पुनी-
भावे श्यनि ॥ ४२ ॥

मृद बोद्धे ॥ मृद्वानि, मृद्वीतः, मृद्वामि । मृद्वामि । ममदं ।
ममृदतुः । ममृदुः । ममर्दिय । ममृदयुः । ममृद । ममृदिव । ममृदिम ।
मर्दिता । मर्दिष्यति । मृद्वानु । मृद्वान । 'हनःशन' इति शनः
शानच् । मृद्वानि । अमृद्वान् । अमृद्वः । अमृद्वाम् । अमृद्वीव । मृद्वीयान् ।
आशिषि मृद्वान् । अमर्दन् । मिमर्दियति । मरीमृद्वाने । मर्मनीत्यदि ।
मर्दयति । अममर्दन् । अमीमृदन् 'उर्ध्व' । मृन् । कृप् । मृत्तिका । 'मृद-
स्तिकचि' ति स्वार्थे तिक्त् । मृत्सा । मृत्वा । 'मसौ प्रशमायामि' ति
सहौ प्रत्ययौ । मर्दनम्, मृद्वः । 'उदुपधादि' ति क्यप् । मृदित्वा ।
'मृदमृदे' ति मेटः क्तवः क्तिवन् ॥ ४३ ॥

मृड च ॥ मृड मुवे चेति केचित् । मृड मुवनइत्यपरे । मृडि
त्वेन्यादि मृदिवत् । 'ष्टुना ष्टुरि' ति ष्टुन्व णकारः । मृडनीति
शे ॥ ४४ ॥

गुध रोषे ॥ गुधानि । जुगोध । गुधित्वेन्यादि मृदिवत् । गुधितः,
गुधिनवान् । 'उदुपधादि' ति निष्ठायाः क्तिवत्क्रियो व्यवस्थितवि-
भाषया शब्दविकरणानामेवेत्युक्तम् । गुधनीति परिवेष्टने दिवाद् ॥ ४५ ॥

कुष निष्कर्षे ॥ निष्कर्षो वृत्तिर्निःसारणम् । कुषानि कुषामि ।
कुषामि । कुषीवः । 'ष्टुना ष्टुरि' ति ष्टुन्व, 'रयाभ्यामि' ति णत्वं,
चुक्रोथ । चुक्रुपतुः । चुक्रोषिथ । चुक्रुपिव । निष्कोषिना । निष्कोष्टा ।
निष्कोषिष्यति । निष्कोट्यति, कुषातु । कुषाण । अकुष्यात् । कुषीयान् ।
आशिषि कुष्यात् । निरुकोषीत् । निरुक्तत् । 'निरः कुष' इति वलाञ्छा-
धंधातुके दङ्गिक्त्यः । अनिष्कर्षत्वे तु नित्यमिडेव, लुङ्निट्पठे 'शल

इगुपधा'दिति क्तः । निप्चुकोषिषति । निप्चुकुक्षति । पूर्ववद्वि-
कल्पः । इटि 'रलो व्युपधा'दिति कित्त्वविकल्पः । कुष्यति पादः
स्वयमेव । कुष्यते वा । अकुष्यत् पादः स्वयमेव । कुष्यतु कुष्यता वा पादः
स्वयमेव । 'कुषिरञ्जोः प्राचा श्यन् परस्मैपद चे'ति श्यन् परस्मैपदे सार्व-
धतुके । अन्यत्र कोषिष्यते पादः स्वयमेव । अकोपि पादः स्वयमेवेत्यादि ।
निष्कुपितम् । 'इण निष्ठाया' मिति नित्यमिट् । कुष्ठः । 'ह्निकुषी' त्या-
दिना क्यन् । कुक्षिः । 'प्लषिकुषिशुषिभ्यः क्ति' रिति क्तिप्रत्ययः । सर्वत्र
'तितुन्नेती' यिनपेधः । 'कौक्षेयक' । 'कुलकुक्षिरीवाभ्यः श्वास्पलङ्कारे-
ष्वि'ति असावभिधेये शैषिकष्ठक् । अन्यत्र कौक्षः कौक्षेयः । 'दृति-
कुक्षी' त्यादिना भवार्थे ठञ् ॥ ४६ ॥

क्षुभ सवलने ॥ क्षुभ्राति । क्षुभीतः । क्षुभोभ, क्षुभुभतुः, क्षुभोभिथ ।
क्षुभुभिव । क्षोभता । क्षोभिष्यति । क्षुभ्रातु । क्षुभाण । क्षुभ्रानि ।
अनुभ्रात् । क्षुभीयात् । आशिषि क्षुभ्यात्, अक्षोभीत् । अक्षोभिष्ठाम् ।
क्षुभुभिषतीत्यादि । क्षुभ्यतिवत् । क्षोभतइति भूवादौ । अनुभ्रदिति
क्षुभ्यतेः पुपादिपाठात् । 'क्षुभ्रादिषु चे'ति शत्वनिषेधो यत्रैतद्रूपं
तत्रैवेति क्षोभणमित्यत्र रूपान्तरे न भवति । क्षुभीतः, क्षुभ्रन्तीत्यादौ
त्वेकदेशविभक्तस्यानन्तत्वात्स्यानिबद्धावाद्भवत्येव ॥ ४७ ॥

णभ तुभ हिंसायाम् ॥ नभ्राति । तुभ्रातीत्यादि पूर्ववत् । लुङ्
नभीत् । अनाभीत् । 'अतो हलादे' रिति वृद्धिविकल्पः । प्रणिनभ्राति ।
प्रनिनभ्राति । 'शेषे विभावे'ति शत्वविकल्पः । नभ्यति तुभ्यतीति
दिवादौ । नभते तोभतइति शपि ॥ ४८-४९ ॥

क्लिशू विवाधने ॥ क्लिशनाति । क्लिशनीतः । क्लिशनासि । क्लिशनामि ।
'शादि'ति वृत्त्वनिषेधः । चिक्लेश, चिक्लिशतुः चिक्लिशिथ । चिक्लेष्ठ ।
चिक्लिशिथ । चिक्लिश्व । ऊदित्वा 'त्स्वरती' त्यादिना वलाद्वार्ध-
धातुकद्विकल्पः, क्लेष्टा । क्लेशिता । क्लेशिष्यति । क्लेश्यति । अनिटि
'व्रश्चादि'ना पत्वे यथायोगं ष्टुत्वकत्वे । क्लिशनातु । क्लिशान । क्लि-
शनानि । अक्लिशनात् । क्लिशनीयात् । आशिषि क्लिश्यात् । अक्लिशीत् ।

अक्रिंशितम् । अनिट्पठे 'शत इगुदधादि' नि क्तः, अक्रितम् । चिक्ले-
शिपनि । चिक्लिशिपति । चिक्लिशति । चिक्लिशति । चिक्लिशति । चिक्लि-
शत् । क्रिगिन्वा । क्रिट्, क्रिष्टः । क्रिशिनः । 'क्रिगः क्वानिष्टयो रितो-
द्विकल्पः । त्वायामृदत्वाद्वा सेट्, क्वो 'रनो व्युपधा'दिति विकल्पः'
बाधित्वा 'मृडमुदे'त्यादिना नित्य क्रित्, क्रिष्ट च तदक्रिशिनं च
क्रिट्क्रिशिनं, 'केन नञ्विशिष्टेने नि कर्मधारयः, क्रिग्यने इति
दिवादौ ॥ ५० ॥

अश भोजने ॥ अशनाति । अशनीतः । अशनामि । अशनामि ।
आश । आशिय । आशिव । आशिता । आशिष्यति । अशनातु । अशान ।
अशनानि । अशनात्, अशनाम् । अशनाः । अशनीयात् । आशिषि अश्यात् ।
आशीत् । आशिष्टम् । आशिगिपति । अशायने । आष्टि । 'मृचिमृत्री'
त्यादिना यङ्, आशयति । 'निराशे'ति नित्य पाप्मपद, माभवा'न-
शिपत् । अनाश्वान् । 'उपेयिवाननाश्वानि नि नञ्पूर्वादेशानेर्भाषाया
भूतमामान्ये लिट्, क्मुनिट् निपात्यते । इदमेव-देशवचनं भूतमामान्ये
लिटः कल्पक, स चादेशविषयः । इदं च निशानतमुनरात्रानुत्तेनङ्'लिङ्-
विषयं भवति, अस्य चोपादनं सदादौ कृतमिति तत्र गवावगन्तव्यम्' ।
अशनायति, बुभुक्षनीत्यर्थः, अशनायोदव्य'शनाये'त्यादिना बुभुक्षाया-
मीत्त्वापवाद आत्वम्, अशनीतं पिबतेति यस्या क्रियाया सातत्येनोच्यते
सा ऽशनीतपिबता । मयूरव्यसकादा 'वाग्यातमात्यातेन क्रियामातत्य'
इति पाठात्समासे टाप्, अशुनइति स्वादौ ॥ ५१ ॥

उधम उच्छे ॥ ध्रुवाति । ध्रुवाम । ध्रुमिय । ध्रमिता । ध्रमि-
ष्यति, ध्रुवातु । ध्रमान । अध्रुवात् । ध्रुवीयात् । आशिषि ध्रम्यात् ।

१ निवेधमिति ४ पु. पा. ।

२ पुस्तकट्टयेःष्यष्टीति पाठ उपलभ्यते स त न पुस्तकः ।

३ माभवानशिशित्वस्याये न तु क्तपुनरित्यधिक ४ पुस्तके ।

४ तत्र हि सदादौ भूतमामान्ये सावकाशस्यास्य लिट् पराभ्या विशेषादि
साभ्यां लङ्लिङ्भा आधमाशङ्क्य तद्विधाने यस्यानुवर्तनादित्युत्तरितम् ।

अध्रासीत् । अध्रसीत् । दिध्रसिषति । दाध्रस्यते । दाध्रस्ति । ध्रासयति ।
अदिध्रसत् । ध्रसित्त्वा, ध्रस्त्वा । उदित्त्वादिद्विकल्पः, ध्रस्त्, 'यस्य विभा-
षे' ति अनिट्त्वम् । अयं चुरादौ । अत्र दीरस्वाम्युकारं धात्ववयवमाह ।
तन्मते उध्रसातीत्यादि, उध्रसाचकार, औध्रसादित्याद्युदाहार्यम् । अन-
वयवत्वे स्वादिवद् ध्रसु इति ब्रूयादिति तस्याभिप्रायः । स एव
भूवादौ यदाह

दरिद्राजाष्टदेधीङोनेकाचश्च चिरिर्जिरिः ।

च^१कास्त्यूर्णातिवेधीङुः स्मर्यन्ते णौ तथौलङिः ॥

इति, तदुदाहरणप्रदर्शनं न तु परिगणनम् ॥ ५२ ॥

इष आभीक्ष्ण्ये ॥ पौनःपुन्य भृशार्थो वा ऽऽभीक्ष्ण्य, तद्विषयाया
क्रियायामित्यर्थः । सा च यथायोग्य तथा च श्रूयते 'पुर इष्णाति
पुरुहूत' इति, अत्र भाष्यम् । आसुरीणां पुरो हननादिरर्था गम्यते इति ।
इष्णाति । इष्णीतः, इयेष । ईषतुः । ईषुः । इयेषिथ । ईयेष । ईषिव ।
गुणविषये 'ऽभ्यासस्यासवर्ण' इतीयङ् । अन्यत्र सवर्णदीर्घः, एषिता ।
एषिष्यति । इष्णातु । इषाण । इष्णानि, ऐष्णात् । ऐष्णीताम् । ऐष्णाः ।
इष्णीयात् । आशिषि इष्यात् । ऐषीत् । ऐषिष्यत् । ऐषिषिषति । परत्वाद्गुणे
द्वितीयस्यैकाचो द्विर्वचनम् । एषयति । माभवानिषिषत्, अदित्करणा-
त्कृतह्रस्वे द्विर्वचनमिति तत्रैवोक्तम् । एषित्त्वा, इषितः । 'तीषसहे' ती-
द्विकल्पस्तौदादिकस्यैव न दैवादिक्रैयादिकयोरेतदर्थमेव तौदादिकमु-
दितं पठित्वा सूत्रे तमुदितं पठन्तीति वृत्तौ स्थितम्, अनुदित्पाठिना तौदा-
दिकस्यैव ग्रहणे हेतुर्हरदत्तेनाकारमात्रविकरणेन सहिना साहचर्यमुक्तम्,
एवं धनपालसंमताक्षीरतरङ्गिणीकारादयश्च तौदादिकस्यैव तीषसहे
त्यत्र ग्रहणमाहुः । काश्यपस्तु 'इषेस्तकारे श्यन्प्रत्ययात् प्रतिषेध' इति
वार्तिकप्रामाण्यादश्यन्विकरणयोस्तौदादिकक्रैयादिकयोर्द्वयोरपि द्वि-
कल्पमाह, हरदत्तोपि, 'यथा तु वार्तिकं तथा क्रैयादिकस्याप्यत्र ग्रहणमि-

१ अदन्तोर्णातीति ४ पु. पाठः ।

२ कुर्वन्तीति ३ । ४ । पु. पा. ।

प्यतइति, एवञ्च तौदादित्त्व वार्तिकविमृष्टम्, उक्तं च तत्र कैयटे पाठ-
द्वयं प्रस्तुत्य 'तत्र वार्तिककारस्य मने त्रयोमीययोः निरनुबन्धता', इह
च तीपमहेति पाठस्तदाह, इपेरितीति ॥ ५३ ॥

विष विप्रयोने ॥ अनिट्कारिकाया विगियहणेन जौहोत्यादिकोऽयं
च एह्यते इति न्यामे, विष्णानि । विवेश, विवेशिय । विविशिव । क्रादि-
नियमादिट् । विष्णानु । विषाण । विष्णानि । अविष्णान् । वेष्टेन्यादि
वेष्टिवन् ॥ ५४ ॥

पुष पुष सेवननेवननरणेनु ॥ पुष्णाति । पुषेप्य । पुषोपिथ्य । पुषु-
पिथ । प्रोपिष्यति । पुष्णात् । पुषाण । पुष्णानि । अपुष्णात् । पुष्णीयात् ।
आशिपि पुष्यः, अपुषात् । पुषुपिपति । पुषोपिपति । पोपुष्यते ।
पोपेष्टि । प्रोपयति । अपुपुपत् । प्रोपित्वा पुपित्वा । पुपितः । एव
पुष्णानीत्यादि पुष्ठा, पुष्टः, पुष्टा, पुष्टः, इति भौवादिकयोर्दाहार्थ-
यामदितोः, पुषिस्तु दिवाद्यौ पुषाद्यौ ॥ ५५-५६ ॥

पुष पुष्टौ ॥ पुष्णानि पुष्णीनः । पुषाण । अपुष्णात् । पुष्णी-
यात् । पुषेप्य । पुषोपिथ्य । पोपितेन्यादि पोपनिवन् । पुष्यनीन्यनिट्
पूवा पुषनीनि पुष वृष्टावित्यस्य शपि ॥ ५८ ॥

मुष स्तेये ॥ मुष्णाति इत्यादि पूर्ववत् अथ द्विकर्मक इत्युक्त,
तच्चिबन्धनानि च कार्याणि तत्रनत्रोक्तानीति नेह प्रतायन्ते ।
मुपित्वा । मुमुपिपति । 'हृदविदमुषेति' तत्रासनेर्नित्यं क्त्वि 'रलो
अपधादि'ति विकल्पापवादः ॥ ५९ ॥

खच भूतप्रादुर्भावे ॥ भूतप्रादुर्भावोऽतिक्रान्तीन्यनिः । खज्जाति ।
खुत्स्नेन प्रकारः, चखाच । खखचिथ । खखचिष । खविता । खविष्यति ।
खज्जात् । खखान । खज्जानि । अखज्जात् । खज्जीयात् । खख्यात् ।
अखचीत् । अखाचीत् । 'अतो हलादे'रिति वा वृद्धिः । खखचिपति ।
खाखच्यते । खाखकि । खाचयति । अचीखवत् । खचित्वा । खचितः ।

१ पोपतीति पाठो युक्तः । पुषतीति पाठे संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति
गुणाभावः ।

खव इत्येकइति मैत्रेयः । स्वाम्यपि खञ्जातीत्युक्त्वा खौनातिरिति सभ्या इति । खौनाति । खौनातु । खौनाहि । अनुनासिकादावूट्, हौ च शनः शानचः पूर्वं परत्वादूटि पश्चादुलन्तत्वाभावाच्च शानच्, अखौनात् । खौनीयात् । आशिषि खव्यात् । शेष खचिवत्, अत्र क्वचिद्वृत् चेति पठ्यते, तत्र हेठतीत्यादि, हेठ विबाधायामिति शपि, अन्यादय उदात्ता पिपि-वर्जम् । क्लिशिस्तु विभाषितेड् । इषिरपि तकारादौ वार्तिकमतेन, सर्वं परस्मैपदिनः ॥ ५९ ॥

यह उपादाने ॥ उदात्तः स्वरितेत् । एह्यति । एह्यीतः । एह्यसि । एह्यामि । 'यहियज्या'दिना सप्रसारणं कृडितोः । एह्यीति । एह्यीषे । एह्ये । एह्यीवहे । जयाह । जयहतुः । जयहुः । जयहिय । जयह्युः । जयाह । जयह । जयहिव । जयहे । जयहाते । जयह्ये । जयह्ये । जयह्ये । जयह्ये । यहीता । यहीष्यति । यहीष्यते । 'यहोऽलिटी दीर्घ' इत्यलिटीटो दीर्घः । एह्यातु । एहाण । एह्यानि । एह्यीताम् । एहा-ताम् । एह्यीष्व । एह्ये । अएह्यात् । अएह्यीताम्, अएह्यीत, अएह्याताम्, । एह्यीयात्, । एह्यीयाताम् । एह्यीयाः । एह्यीत, एह्यीयाताम्, । एह्यीरन्, । आशिषि एह्यात् । एह्यास्ताम् । यहीपीष्ट । यहीषीयास्ताम् । अयहीत । अय-हीष्टाम् । 'ह्यन्ते'ति न वृद्धिः । अयहीष्ट । अयहीषाताम् । जिघृक्षति । जिघृक्षते । 'सनि यहगुहोश्च'तीर्णनिषेधः । 'रुदविदमुषयहीति' सनः क्तिवात्सप्रसारणम् । 'हो ठः' भष्भावः । 'षटो'रिति क्त्वे षत्वम् । ज-रीयह्यते, यडि सप्रसारणे द्विर्वचनम् । 'रीयद्वत्'इत्यभ्यासस्य रीक् । जायाडि, यडो लुका लुप्तत्वाच्च संप्रसारण, ठत्वघत्वष्टत्वठलोपदीर्घाः । जागृठः । ठत्वादि दीर्घवर्जं, तत्र हि पूर्वाणो यहणम् । प्रसारण त्वपित्सार्वधातु-कापेक्षम् । जायहीति । भन्परत्वाभावाच्च ठत्वम् । जाग्रति । ठत्व-भष्भावकत्वषत्वादि । जाग्रहि । जाग्रहुः । जाग्रहांचकार । जाग्रही-ता । जाग्रहीष्यति । 'यहोऽलिटी'त्यत्र एहेर्यद्विहितमार्धधातुकं तस्य य

१ तस्य बहिरङ्गत्वेनासिद्धत्वाच्च रीगादयः ।

२ अभलपरत्वादिति ४ पु. पा ।

इदिति विहितविशेषणत्वेऽपि द्वि प्रयोगरूपत्वाद् द्विर्वचनस्य द्विकोऽपि
 स एव यद्विरिति दीर्घा भवति । प्रहितविशेषणार्थं रूपस्य च प्रयो-
 जनं जरिण्यशब्दादुनामार्थधातुके इत्यन्तेऽप्यनेपयं जरिण्येति न्यः
 दीर्घनिवृत्तिः । अत्र च न यद्विरितिमातृधातुके किं नहि यद्वन्तात् ।
 जायातु । जायताम् । जायति । अत्र हेरिण्यः स्वभावः न्यः इत्यादि-
 अजायतु । अजायताम् । अजायते । अजायतुम् । अजायतु ।
 निमित्तोर्हन्तृदिनेऽपि यदात्तत्वाद् इत्यभ्यन्तरेण न्यः । जायता-
 त् । जायताम् । जायताम् । अजायते । म्यमिन्मीपुडि न्या-
 दिना चित्वादिटि न्याह्रियत इत्यादि । 'यद्विरिति दीर्घः' प्रकृतस्येदं
 इतीह न भवति । प्रत्यय पद, यस्य प्रत्ययमना विधीयते । प्रत्ययः
 शकुनयः, अन्वतन्त्रा इत्यर्थः, यामप्रत्या वाङ्मनवाटिका । यामप्रतिभूते-
 त्यर्थः । अर्जुनप्रत्ययः, अर्जुनपत्रः । 'पदास्वरिवाह्यापत्तेषु चेति प्रत्ये-
 क्यपु, बाह्येति म्रग्नित्वादिर्गो लिङ्गान्तरे माभूदिति । तेन यामप्रा-
 य्वाह्याल इत्यत्र एवमेव भवति । प्रत्यय इत्यत्रानुसम्भवा कन् ।
 पाणिप्रतीतिः, 'पाणिप्रतीति' इति डीप् । यः, यः । 'विभाषा यः'
 इति कर्तरि वा णः । अन्यथा च व्यस्यन्विभाषाविज्ञानं जनवरे
 यः । ज्योतिषि यः । गृह्यानुपादने धात्यादिकमिति यः गेहम् । 'गेहे
 क' इति यहेर्गेहे कर्तरि कः, मप्रमाणम् । यदाय नन्म्य'नदुवचनमन्दा
 स्वभावान्पुल्लिङ्गा बहुवचनान्तश्च । शक्तिः गृह्यातीति शक्तिप्रहः । अत्र-
 करणे 'शक्तिः' नलोमय'लघट'पटी'यत्तु यहेरुपमायान'मित्यच् ।
 अगोपवादः । एव लाङ्गनप्रह इत्यादि । मूत्र धारयतीति मूत्रप्रहः ।
 'मूत्रे च धारयति' इति धारयत्यर्थाद् यहेरच् । फलेयतिः । अत्रप्रत्यय-
 रिति नैघण्टुकाः । 'फलेयतिरात्मभरिष्वेति इन् प्रत्यय उपपदस्य चैकारा-
 न्तत्वं निषायने । भट्टिकाये तु फलयाहिमात्रे प्रयुज्यते । फलेयतीन् हसि
 वनस्पतीनामिति । उद्वाहः । 'उद्दि यः' इति घञ् । 'यहृदृतिग्वी' न्यपोप-
 वादः । संवाहो मल्लस्य, अङ्गुलिसनिवेश य दाअप्रित्यर्थः । 'मामि मुष्टा'-
 विति घञ्, अपोषादः पूर्ववत् । मुष्टाविति मुष्टिविषयश्चेद्वात्वर्थः

इत्यर्थः । अवयाहो हन्त ते वृषलरूपात् । एवं निग्राहः । 'आक्रोशेवन्यो-
र्यह' इति घञ् । पूर्ववद् अपोपवादः । आक्रोशः शपनम् । अन्यत्रावग्रहः
पदस्य निग्रहश्चोरस्य । 'ग्रहवृट्निश्चिगमश्चे'त्यप् । पात्रप्रयाहेण
वरति भिक्षुः, लिप्सुः पात्रं ग्रहित्वा चरतीत्यर्थः । 'प्रे लिप्साया' मिति
घञ् लिप्साया गम्यायाम् । परिग्रहो वेद्याः । 'परौ यज' इति ग्रहेर्घञ्,
अन्यत्र परिग्रहो धनस्य, पूर्ववदप् । अवग्रहो देवस्य अवग्रह इति
वा । 'अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे' इति घञपौ । वर्षस्य प्रतिबन्ध इत्यर्थः । तुला-
प्रयाहस्तुलाग्रग्रहः । तुलासूत्रमित्यर्थः । 'प्रे वणिजामि'ति वा घञ् । वणिजा-
मित्यनेन तुलासूत्रं लक्ष्यते, तेषां तेन सबन्धात्, य तु वणिजस्तन्त्र
मिति वृत्त्यादौ स्थितम् । प्रयाहोश्वादेः प्रग्रह इति वा । 'रश्मौ चे'ति
वा घञ् । अश्वानां नियमनार्थं रज्जुरिह रश्मिशब्देनोच्यते । जीवग्राहं
गृह्णाति । 'समूलाकृतजीवेषु हन्तृज्यग्रह' इति जीवशब्दे कर्मण्युपपदे
ग्रहेणमुल् । कषादित्वाद्यथाविध्यनुप्रयोगः, जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः ।
हस्तग्राहं गृह्णाति । पाणिग्राहं गृह्णाति । हस्तेन गृह्णातीत्यर्थः । 'हस्ते
वर्तिग्रहारि'ति करणवाचिनि हस्तार्थं उपपदे णमुल् । पूर्ववदनुप्रयो-
गः । नामग्राहमाह्वयति । नामं गृहीत्वा ऽऽह्वयतीत्यर्थः । 'नामन्यादि-
शियहो'रिति नामन्युपपदे णमुल् । तृतीयाप्रभृतित्वान्समासविकल्पः ।
धातुसंबन्धाधिकारादनुप्रयोगः । वासरूपेण त्क्वाप्यनुज्ञायतइति नाम
गृहीत्विति भवति । गर्हतइति ग्रहेर्यहणे शपि । कुत्साया गल्हतइति
शपि, एवं गर्हते इति ॥ ६० ॥

इति श्रीपूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वरकम्पराजसुतसङ्गममहाराज-
माहमन्त्रिणा मायणसूतेन माधवसहोदरेण सायणाचार्येण विरचितायां
माधवीयायां धातुवृत्तौ ब्रह्मादयः ।



अथ चुरादयः॥

चुर स्तेये ॥ अकार उच्चारणार्थः प्रयोजनान्तराभावान् । न च तद्धर्तुनुदात्तेत्वं स्यात् । 'मन्यापपाशे' त्यादिना चुरादिभ्यः स्वार्थं लिखे विधानादणिवः प्रयोगाभावात् । तथा च काश्यपः । कार्याभावादिकश्चन्या पठ्यते इति । अत्राभरणे घुपिरविशब्दनइति ज्ञापकादक्रियमाणेपि वायहणे चुरादिभ्यो लिखेत्युक्त्वा 'ऽन एकहनि' त्यत्र वृत्तौ जगणतुः जगणुरिति प्रत्युदाहरणममर्थनयमतिव्ययन्ताश्चुरादय इति न्यासकारणाभिधानद् इदं ज्ञापक सामान्यपेतयेत्युक्त्वा ऽऽधुषादुति गणकारवचन चानुवाद इत्युक्तम् । ज्ञापकस्य स्वरूपमस्माभिर्घोषितौ लिखितमिति नेह प्रदर्शितं, तस्य ज्ञापकस्य मन्मन्त्यादेतन्वं कैयटविरुद्धम् । यदाह 'शेरणा' वित्यत्र गणयति गणमिति भाष्यव्याख्याने नित्यत्वाणिवः केवलानां चुरादीनां प्रयोगाभावादिनि । भाष्यविरुद्धं च । तथाहि । किमर्थमविशब्दनइत्युच्यते न विशब्दने घुपेरिति वा भवितव्यम् । एव तर्हि मिदं मति यदविशब्दनग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्यावायां विशब्दने घुपेरिभाषा लिख भवतीति । किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनं, महीपानवाव दुत्वा जुधुयुः उत्तमानवा इत्येष प्रयोग उपपत्तौ भवतीति विशिष्टविषयत्वेनाभिधानात् 'चदुपधाव्याहृतिवृत्ते' रित्यत्रानित्यण्यन्ताश्चुरादय इति सामान्येन यदुक्तं पदमऽज्ज्ञया तदपि मतान्तरापेक्ष न तु स्वमतेन, यदुच्यते । घुपिरविशब्दनइत्यत्र घुपिर्विषयमेव ज्ञापकमुक्त्वा, अन्ये त्वाहुः । अनित्यण्यन्ताश्चुरादय इति सामान्येन ज्ञायते इति । यापि चदुपधाव्येत्यादावनित्यण्यन्ताश्चुरादय इति न्यामकृतः सामान्योक्तिः सापि येषां लिङ्गेन वचनेन वा लिङ्गिकल्पस्तन्मात्रविषयैव । तथा च 'शेरणावि' त्यत्र तेनैवाक्तं, चौरादिकानामप्यनित्यण्यन्तत्वाद्विभाषितेषां केषां चिद्विद्यमानत्वादिनि, यस्मात् शोः प्राक्कर्म कर्ता वा विद्यते न चैतस्मादण्यः प्राक्कर्म कर्ता वा विद्यते इति गणनित्यण्यन्तत्वाभिधानं

विरुध्येत । तथा जगण्णुरिति प्रत्युदाहरणे पदमञ्जर्यामपि चुरादि-
 त्वादत्र णिच् प्राप्नोति, यदि नेष्यते ऽनित्यण्यन्ताश्चुरादय इति । यदिना
 ह्यपरितोषः सूच्यते । अपरितोषश्च पूर्वोक्तो भाष्यविरोधः । तदेव नित्ये
 णिचि स्वरितेत्वात् यहिः ऋयादौ लक्षिश्चैकश्चुरादिष्विति वचनाल्लक्ष्यः
 स्वरितेत्वाल्लिङ्गादन्येभ्यश्चुरादिभ्यो 'णिचश्चे'ति कर्त्रभिप्राये तद् नेत्यु-
 त्का चन्द्रस्त्वत्राप्युभयपदिन्वमास्थित । णिज्विकल्पमाह स्वामी । एव देवो
 नन्दी चाहतुः । मैत्रेयस्तु स्वरितेत्वमस्य नेच्छति, यदाह स्वरितेत्वमस्य
 कश्चित्प्रतिपद्यतइति । 'णिचश्चे'त्यत्र हरदत्तोपि लक्ष्यः स्वरितेत्वं
 प्रस्तुत्याह । नात्रान्तभाषितमस्ति, पारायणेपि चुरादिणिच आत्मनेपद-
 मुदाहृतमिति । एवं च लक्षजिति पठित्वा जिन्करणादन्येभ्यश्चुरादिभ्यो
 'णिचश्चे'ति तद् भवतीति च श्रीभट्टवचनमपि प्रत्युक्तम् । प्रक्रियारत्ने
 च चितोरदित्वात् ज्ञापकाच्चुरादिणिचो ऽनित्यन्वाञ्छट स्फुट भेदनइत्या-
 दौ चटतीत्याद्यपि यथादृष्ट दृष्टव्यमित्येकीयमतमुक्त्वा तद्वाच्योक्तज्ञाप-
 कविरुद्धम् । एवं हि घुपिरविशब्दनइत्यस्याप्यण्यन्तस्य सभवात्तद्वा-
 च्यर्थो ऽविशब्दलोक्तिः कथं ज्ञापिका स्यादिति तन्मतं दूषितम् ।
 तस्माद्वचनं लिङ्गं वचनं चास्ति तत्र विकल्प इति सिद्धमिति । वचन-
 स्पष्टं, लिङ्गमपि तत्रतत्र धातावुपदर्शयिष्यते । यत्तु जगण्णुः, जगणु-
 रिति लिङ्गवचनयोरभावेऽप्यण्यन्तस्य प्रत्युदाहरणं 'मत एकहलि'त्यत्र
 वृत्तौ तदनित्यण्यन्ता इति सामान्यवादिमतापेक्षया न तु सिद्धान्त-
 बुद्ध्या । चोरयति । चोरयतः । चोरयन्ति । चोरयसि । चोरयथः ।
 चोरयथ । चोरयामि । चोरयावः । चोरयामः । चोरयते । चोरयेते ।
 चोरयन्ते । चोरयसे, चोरयेथे । चोरयध्वे । चोरये । चोरयावहे । चोरया-
 महे, चोरयां चकार । चोरया चक्रे । चोरयामास । चोरयां बभूव । प्रत्यया-
 न्तत्वादान्प्रत्ययः । 'अयामन्ते'ति णेरयादेशः । चोरयिता । चोरयि-
 ष्यति । चोरयिष्यते । चोरयतु । चोरयताम् । अचोरयत् । अचोरयत ।
 चोरयेत् । चोरयेत । चोर्यात् । 'णेरनिटी'ति णिलोपः । चोरयिषीष्ट ।
 अचूचुरत् । अचूचुरत, 'णिश्री'त्यादिना चङ्, शत्रादिकार्यं भूवत् ज्ञेयम् ।

चुचोरयिषति । चुचोरयिषते । चित्त्वद्रिष्टि तस्यामिदृश्वगिल्लोपे चोरि-
ष्यते । अचोरिषानाम् । एकवचने विणिगिनि मिचेभञ्च, चोरिशीष्ट ।
चोरितेति भवति । चोरः । पवाद्यद् । चौरः । प्रलादिस्थास्वार्येण ।
चोरणा । 'एयामथन्ये'ति युच्, चुरेति कृत्रादिपठ्यादक रप्रत्ययो गुणा-
भावश्च । चुरा शीलमस्याग्वौरा । 'कृत्रादिभ्यो ण' इति णेपि क्वचिदण-
कृतमिति डीप् । एतच्च करोतावुपपादितम् ॥ १ ॥

चित्ति स्मृत्याम् ॥ इदित्त्वावुप्, चिन्तयनीत्यादि । चिन्ता, 'चि-
न्तिपूजो'त्यादिना ऽङ्प्रत्ययः । अत्र मैत्रेयः । अकारे निधानञ्च ऽङो विधान
गुणाभावाद्ये, तन्मात्रार्थान्कदा चित्तिगलोपो नास्तीति तत्र चिन्तिषेती-
यदुदाहर्तव्यः । चिन्त स्मृत्यामिति मानुषङ्ग एव पठितञ्च इदित्त्वात्ताव
लोपाभावाद्येदस्य णिच् पातितः । नित्ये हि णिचि तस्य स्यान्निवृद्धा-
वाद्युपधानाच्च क्वापि कित्प्रत्ययमिति चिन्त इत्यादौ नन्वापात्रमङ्ग । तेन
चिन्तति । चिचिन्त । चिन्तिनेत्याद्यपि भवति । एवमयत्रापिदित्त्व णिञ्चि-
कल्पार्थे द्रष्टव्यम् । चेतर्ताति शपि संज्ञाने । चेतयनइत्याकुस्मीय । ॥ २ ॥

यच्च सकोचने ॥ यन्त्रयति । यन्त्रणा । यन्त्रिनः । अत्रापि पूर्वव-
दिदित्त्वरणादन्तर्तान्याद्यपि भवति । अत्राभरणे यवृ इति पठित्त्वा च-
कारो 'नालोपी' नि विशेषणार्थे इत्युक्तम् । अयं ष ट्ठिचरन्त्य-
नेषु न दृश्यते, प्रत्युत यन्त्रणादिगञ्प्रत्ययादेव मैत्रेयादयो द्युदपदयन्,
अनेकविकरणविवारणे दैवे तद्व्याख्याने पुन्यकारे वा प्रयत्नार्थनिकारार्थवत्स-
ङ्कोचार्थो नोपादीयनइति तस्य मूलं श्रूयम् ॥ ३ ॥

स्फुडि परिहासे ॥ स्फुगदयति । स्फुगदनीत्यादि ॥ ४ ॥

लत दर्शनाङ्गनयो ॥ लतदर्शन्यादि । लत्मा । 'लतमुंठ'चे'नीका-
रप्रत्ययो मुडागमश्च । लत्मीवान् । लत्मणः । 'लत्म्या अच्चे'ति मत्व-
र्थीयो नकारप्रत्यय इकारस्य चाकारः । लत्यं लतणम् । अचो यति ल्युटि
च णेलोपः । लत्यमधीते वेद वा लात्यिकः । लात्यिकोप्येवम् । उच्छादौ लत्य
लतयो इति पाठादृक् । शम लत आलोचनइत्याकुस्मीयो भविष्यति ॥ ५ ॥

१ स्फुडानि प्रथमान्तं केचित्पठन्ति, तस्यार्थः परिहास इति दुर्गे इत्यधिक
४ पुस्तके ।

कुट्टि अनुतभाषणे ॥ कुन्दयति । अकुन्दत् । कुन्दतीत्यादि । अत्र स्वामी अदिदित्येकइति । तत्र कोदयतीत्यादि । अदिदित्यं तु अकु-
कोददित्यत्र ह्रस्वनिवृत्तिः ॥ ६ ॥

लड उपसेवायाम् ॥ लाडयतीत्यादि । लडतीति विलासे शपि ॥ ७ ॥

मिदि खेहने ॥ मिन्दयति । मिन्दतीत्यादि । अत्र क्षीरस्वाम्य-
निदितं पठित्वा कैश्चिदिदित् पठ्यतइत्याह । तथा कैश्चिकोप्यनिदितं
पपाठ । खेहने मेदते मेदयतीति शृश्यनोः । अदितोपि शपि मेधा-
हिसनयो, मेदते ॥ ८ ॥

ओलडि उत्तेरणे ॥ ओलण्डयति । ओलण्डति । ओलिलण्डयिषति ।
अजादित्वाद् द्वितीयस्यैकाचो द्विर्वचनम् । अत्र स्वा'मि'म'ग्यपममता-
काराः केचिदेदित पठन्ति तेषां मते लण्डयति । लण्डनीति । अपरे
तूकारादि पठन्ति, तदोकारन्धात्ववयवमुदाहरता मैत्रेयादीनामित्सञ्जक-
त्वमभिदधातामन्येषां च सर्वेषामनभिमतम् ॥ ९ ॥

जल अपवारणे ॥ जालयतीत्यादि । नन्दिसमन्ताकारावाद्यन्तौ वि-
पर्यस्य पठतो लज इति, तन्माभूदिति मैत्रेयो जालमित्युदाजहार ॥ १० ॥

पीड अवगाहने ॥ पीडयति । अपीपिडत् । 'अपिपीडत् । भाज-
भासे' त्यादिना णौ चङुपधाह्रस्वविकल्पः । पीडा । भिदादिपाठादह् ।
पाणानुपपीडं धारयति, पाशुपपीडं धारयति । पाणिनोपपीडमिति वा ।
'सप्तम्या चोपपीडे' ति सप्तमीवृतीयान्तयोर्णमुल् । तृतीयाप्रभृतित्वात्
समासविकल्पः । धनुररिभिरसह मुष्टिपीडं दधान इति वदन् भट्टिकार
उपोपसर्गग्रहणमतन्त्रं मन्यते ॥ ११ ॥

नट अवस्यन्दने ॥ अवस्यन्दन नाट्यम् । नाट्यइत्येव चन्द्रः ।
नौरस्योज्जासनम् । 'जासिनिग्रहणे' ति कर्मणि शेषे षष्ठी । अनेकार्थ-
त्वाङ्गिसार्थत्वमुत्पूर्वस्य, जास्यादीनां विभ्रतनिर्द्वंशाण्यौ चडि ह्रस्वे नायं
विधिरित्युक्तं न्यासे । तत्फलं चोरमनीनटादित्यत्र षष्ठ्यभावः । अयं पक्षो
भवादौ दूषितः ॥ १२ ॥

अथ प्रथमे ॥ प्रस्थानइति मैत्रेयः । अतिहर्षइति बहवः । आ-
चयति । ऋषिमपि केचिदत्र पठन्ति । स मैत्रेयादौ न दृश्यते । तथा
ऋषयश्चैव हिंसायां, ऋषयेन्, ऋषते, ऋषेतेति घटादौ च पठना देवेनापि
न पठितः ॥ १३ ॥

बध संयमने ॥ बाधयति । बन्धेति चान्द्रः । ब्रह्मानीति बन्ध बन्ध-
नइति क्रैयादिकस्य । बीभत्सते इति भौवादिकस्य निव्यमनन्तस्य बधे
वेङ्क्ये ॥ १४ ॥

पृ पूरणे ॥ पारयति । अत्र श्रीभद्रादयो दीर्घाच्चारणमामर्ष्यान्ते
णिञ् नेति । तथाहि । दीर्घाच्चारण परिनेत्यादावदन्मृदन्मिति इट्
सिद्धये, तणिणवो विकल्पस्य कल्पकं भवति । ननु परिनेत्यादि पूर्णाति
पिपत्त्यारन्त्यतरणादि सिद्धति किं विकल्पकल्पनया । मन्यम् । परिने
त्यादि सिध्यति, परनीत्यादिसिद्धिस्तु प्रयोजन भविष्यति ॥ १५ ॥

ऊर्ज बलप्राप्तयेः ॥ प्राणन जीवनम् । ऊर्जयति । ऊर्जिञ्जन् ।
ऊर्जिञ्जयिषति । 'न न्द्रा' इति रेफऊर्जस्य द्वितीयस्यैकावो द्विपञ्चनम् ।
ऊर्ज् । 'आजभासे' त्यादिना क्तिप् । 'चोः कुरि' नि कुत्वं, णिलोपस्य 'पूर्व-
चासिद्धये' न स्यानिवदिति स्यानिवन्निषेधात्पदान्तरा सदेः पालना
पस्तु 'रात्सस्ये' ति नियमाव भवति ॥ १६ ॥

पत्त परियहे ॥ पतयति । अपपत्तत् ॥ १७ ॥

वर्णं वूर्णं प्रेरणे ॥ एवं मैत्रेयः । अन्ये तु वर्णं वर्णने । वूर्णं प्रेरण-
इति वर्णयन्ति । वूर्णयति । वर्णे गृह्णाति वर्णयति । वूर्णत्वध्वमयववूर्ण-
यति । 'सत्यापपाशे' त्यादिना वर्णवूर्णाभ्या प्रातिपदिकाभ्या गृह्याव-
ध्वसनयोर्णिच् ॥ १८-१९ ॥

प्रथ प्रस्थाने ॥ प्राथयति । अपप्राथत् । 'अन्स्मृदृत्वरप्रथे' त्यभ्यास-
स्याकारः, 'नान्ये मितो हेतावि' ति सभउद्वेतुमण्णिवा चुरादिणिचि
मित्वाभावात्प्रथ प्रस्थानइति घटादिकं मिन्वमस्य न भवति ॥ २० ॥

पृथ प्रक्षेपे ॥ पार्ययति । अपपर्यत् । अपीपृथत् । उर्चद्वा । पथ इत्येक
इति स्वामी, पाथयति । अपीपथत् ॥ २१ ॥

षम्व सम्बन्धने ॥ सम्बयति । अससम्बत् । शम्ब चेति मैत्रेयः ।
शम्बेत्येक इति स्वामी । शम्बयति । अशशम्बत् । शम्बरम् । बाहुलका-
दरः । साम्ब इति केचिद्वन्त्यादि दीर्घवन्त च पठन्ति ॥ २२ ॥

भक्ष अदने ॥ भक्षयति पिण्डो देवदत्तः । अतो हेतुमणिचि
भक्षयति पिण्डो देवदत्तेनेति 'गतिबुद्धिप्रत्यवनानार्ये'ति प्रयोज्यस्य कर्मत्वं
'भक्षेरहिंसार्थस्ये'ति वार्तिकेन निषिध्यते । अत्र 'धादिखाद्योः प्रति-
षेध' इत्यतः प्रतिषेधयहोनुवर्तते । 'गतिबुद्धी'त्यादौ चाणिग्रहणेन
हेतुमणिचो निषेधः । हिंसायां तु भक्षयति यवान् बलीवर्द्धानिति
भवति । अत्र भक्षयतिहिंसाङ्गे भक्षणे वर्तते, हिंसा च सर्वे भावाः सचे-
तना इति दर्शनेन यवानां सचेतनत्वादस्ति । दर्शनान्तरे यवानां भक्षणे
स्वामिनो हिंसा भवतीति तदपेक्षं भक्षणस्य हिंसाङ्गत्वम् ॥ २३ ॥

कुट्ट छेदनभर्त्सनयोः ॥ एवं बहवः । छेदनपूरणयोरिति स्वामी,
छेदनइत्येवं जिनेन्द्रदुर्गा । कुट्टयति । अचुकुट्टत् । कुट्टाकः । 'जल्पभि-
क्षकुट्टेति षाकन् । पित्त्वात् स्त्रिया कुट्टाकी, कुट्टन कुट्टः । 'एरच्' । कुट्टेन
निर्वृत्त कुट्टिम, भावप्रत्ययान्तादिमव्यक्तव्य इति 'तेन निर्वृत्त'मिति
विषये इमप् ॥ २४ ॥

पुट्ट चुट्ट अल्पोभावे ॥ पुट्टयति । अपुपुट्टत् । चुट्टयति । अचुचु-
ट्टत् ॥ २५-२६ ॥

अट्ट षुट्ट अनादरे ॥ अट्टयति, आट्टिटत् । अयन्दोपधो लक्षणवशेन
ठकार इति 'नन्द्रा' इति दकारवर्जस्य द्वितीयस्यैकाचो द्विवचने पश्चात्
ष्टुत्वम् । सुट्टयति । असुषुट्टत् ॥ २७-२८ ॥

लुण्ठ स्तेये ॥ लुण्ठयति । अलुलुण्ठत् । लुण्ठतीति लुठि स्तेये
इत्यस्य शपि । ननु लुण्ठतेरिदित्याठेनापि लुण्ठयति लुण्ठतीति रूप-
द्वयं भविष्यति, किं भ्वादीदित्याठेन । सत्यम् । सिध्यतीदं रूपद्वयं,

लुण्ठितेति ताक्षीनिकम्पुत्रं स्यात् । अन्यभित्तकुट्टलुण्ठेति पाकना
त्राधात् । लुठि पाठे तु प्रतिपदोक्तत्वात्स्यैव तत्र प्रहणमिति भाषादि-
कात्तृनि लुण्ठितेति भवतीत्युभयत्र पाठः कर्तव्यः । अत एव न्यासे कुट्ट
छेदे, लुण्ठ स्तये चौरादिकावेनावित्युक्तम् । लुण्ठाकः । अन्यभित्ते न्या-
दिना पाकन्, पिन्वान्डीप् लुण्ठाका ॥ २६ ॥

शठ श्वठ असम्कारगत्योः ॥ शाठयति । श्वठयति अशीश-
ठत् । अशीश्वठत् । इदिद् द्विर्नाय इति दुर्गः । मैत्रेयापि श्वटीत्येक-
इति । श्वण्ठयति । अशश्वण्ठत् श्लवाया शाठयतइत्याकुर्मीयः ।
शठयति श्वठयतीति कयादी, कैत्रे शठनीति शपि गवम् ॥ ३०-३१ ॥

तुञ्जि पिञ्जि हिमावनादाननिकेतनेषु ॥ तुञ्जयति । अनुतुञ्जन् ।
पिञ्जयति । अपिपिञ्जन् । इदिन्करणं तुञ्जनि पिञ्जनाभ्यापि भवतः ।
तुञ्जि हिमाया तुञ्जि पालने चेति भूवादिवटादेव हिमाया तुञ्जनी-
ति मिट्टादिदित्वेन णिञ्जनिन्यत्व बनावाननिकेतनयोपि तुञ्जनीति
रूपसिद्धये, एव तदर्थेनैव मिट्टे भूवादिवटाः क्रियन्ते इति चेन् पालने
तुञ्जनीत्यर्थः । तुञ्जयति पिञ्जयतीति भाषार्यावये भविष्यतः । शाक
टायनस्तुञ्ज पिञ्जेति पपाठ । पिञ्ज वर्णइत्यदादौ । इह नञि नुञ्जि
इत्यपि क्वचिद् दृश्यते । तौ मैत्रेयादिभिर्न पठ्यते ॥ ३२-३३ ॥

पिम गतौ ॥ पेययति । अपीपिमन् । पेयनीति शपि ॥ ३४ ॥

शान्त्य सामप्रयोगे ॥ शान्तयति । असमान्त्यन् । मिशान्त्यपि-
यति ॥ ३५ ॥

श्वल्क वल्क परिभाषणे ॥ श्वल्कयति । वल्कयति । अशश्वल्कन् ।
अश्ववल्कत् ॥ ३६-३७ ॥

शिंह स्नेहने ॥ शोषदेशः । सिहयति । अमिशिहन् । सिह्य-
तीति प्रीतौ दिवादिः । अत्र म्फिट स्नेहनइति क्विन्कोशे दृश्यते । तट्ट-
नपालशाकटायनमैत्रेयदेवादिभिरिवरन्तनैर्वाख्यातुभिर्न लिख्यते ॥ ३८ ॥

१ लुण्ठितेति ताक्षीनिको णिनिर्न स्यादिति ४ पुस्तके पाठः ।

२ णिनि लुण्ठितेति ४ पु. पा ।

३ सिह्येति ४ पु. पा ।

स्मिष्ट अनादरे ॥ स्मेष्टयति । अस्मिष्टत्, स्मिङ् इत्येकद्वि-
मैत्रेयः । स्माययते । अययवे कृतं लिङ्गमिति न्यायेन एयन्तस्य ङित्वा-
दात्मनेपदम् । आत्व स्मयतेरिति निर्द्वंशाद्भेदमणौ विधानाच्च नास्य
भवति । शाकटायनस्त्वष्ट स्मिष्ट गताविति ढान्तप्रकरणे पपाठ । स्मयत-
इतीषट्ठासे शपि ॥ ३९ ॥

श्लिष श्लेषणे ॥ श्लेषयति । अश्लिषत् । श्लेषतीति दाहे
शपि । श्लिष्यतीत्यलिङ्गने श्यनि ॥ ४० ॥

पथि गतौ ॥ पन्थयति । अपपन्थत्, पन्थति । अपन्थात्, इदि-
त्वाणिज्जिकल्पः । पथतीति पथे गतावित्यस्य शपि ॥ ४१ ॥

पिच्छ कुट्टने ॥ पिच्छयति । अपिपिच्छत् ॥ ४२ ॥

कुट्टि सवरणे ॥ कुन्दयति । अचकुन्दत् । कुन्दति । शाकटाय-
नस्त्वात्मनेपद्विष्यमुं पपाठ । स्वाम्यादयश्च देवनिर्दिष्ट पठित्वा ह्वा-
यतीत्युदाजहुः । तथा ह्वादयतीति रूपस्य कृद अपवारण इत्याधृषीयेत्येव
सिद्धत्वादिह पाठो व्यर्थः स्यात् । इदित्वाभावे कुन्दः शब्दोपि न स्यादिति
मैत्रेयाद्युक्त इदित्पाठ एव न्याय्यः । अत एव न्यासपदमञ्जरीदौ ह्वादेय-
मित्यत्रोश्चदादि कृद अपवारण इत्यस्मादेव व्युत्पादितम् ॥ ४३ ॥

अणु दाने ॥ प्रायेणाय विपूर्वः । विश्राणयति । व्यशिश्रणत् ।
घटादिपाठात् श्रणयति ॥ ४४ ॥

तड आघाते ॥ ताडयति । अतीतडत् ॥ ४५ ॥

खड खडि कडि भेदने ॥ खाडयति । अचीखडत् । खण्डयति ।
अचखण्डत् । खण्डति । अखण्डीत् । कण्डयति । अचकण्डत् । कण्ड-
ति । अकण्डीत् । खण्डतीति मन्यने शपि । तथा कण्डतइति भेदे ।
क्षीरस्वामी तु भूवादौ परस्मैभाषं कडतिमनिर्दिष्टमपि कडीतीदितं पठि-
त्वा कडोति दुर्ग इत्याह । अस्य निर्णयस्तत्र कृतः ॥ ४६-४७-४८ ॥

कुडि रक्षणे ॥ कुण्डयति । कुण्डति । कुण्डतइति वैकल्यदा-
हयोः शपि गतं, वैकल्यार्थेष्टान्त इति शाकटायनः । ढान्तमेकद्वि-
स्वामी । इमावपि पाठभेदौ तत्रापि दर्शितौ ॥ ४९ ॥

गुडि वेष्टने ॥ गुण्डयति । गुण्डति • । रत्नगङ्ग्येके । प्रथमादि
द्वितीयान्तमेके पठन्ति । अक्कुण्डयति । अक्कुण्डति ॥ ५० ॥

खुडि खण्डने ॥ खुण्डयति । खुण्डति ॥ ५१ ॥

• वटि विभाजने ॥ वटति शाकटायनः । वण्डयति । अत्र मैत्रेयो
भौवाटिकस्य विभाजनार्थस्य वटं नुमन्तौ वण्डयतीति मिट्टे चुरादौ
पाठः कर्त्रभिप्रायेऽपि परस्मैपदार्थ इति अमौ 'णिञ्चि'ति नङ् चुरा
द्विण्यन्तस्य नेति मन्यते । अन्ये तु 'णिञ्चश्चे'ति नञापीयनइति
नेदं प्रयोजनं किन्तु चिन्ता-यद्विद्विद्विच्यन्तानिगदे विकल्पो नेति
विभाजने तु तेनैव वण्डनीति मिट्टमिति । ये तु भूवाडावपि विभाजन-
इति पठन्ति तेषां तु नैवास्य चेद्व्यावहारः ॥ ५२ ॥

मडि भूषाया हर्षे च ॥ मण्डयति । मण्डनइति वेष्टने शपि ।
मडि भूषायामिति भूवाडौ पाठादेव मण्डनीति मिट्टेरन्येद्विच्य नुम्मा-
त्रार्थं न तु णिञ्चिकल्पार्थमपि, तेन हर्षे मण्डनीति न भवति ॥ ५३ ॥

भडि कल्याणे ॥ भण्डयति । भण्डति । परिभाषणे भण्डनइति
शपि । परिश्रामइत्येके नञ् ॥ ५४ ॥

कृदं वमने ॥ कृदयति । अक्कुदति ॥ ५५ ॥

पुस्तं पुस्तं आदरानादरयोः ॥ पुस्तयति पुस्तकम् । पुस्त
यति पुस्तम् ॥ ५६-५७ ॥

चूड सचेदने ॥ सचेदनं प्रश्नः, प्रेरणा च । तत्र प्रश्ने द्विक-
र्मकत्व, देवदत्तमर्थं चोदयति । चूडा । भिद्रादिपाठादङ् । उत्वं
दीर्घत्वं च । चूडालः । 'प्राणिम्यादानो लज्जन्यनरस्यामि'ति मत्वर्थं
नञ् । चूडा नाम काचित्, तस्या अपत्यं चोडिः 'वाह्यादिभ्यश्चे'तीञ्
'ठ्ठव' इति ठकोपवादः ॥ ५८ ॥

नक्क धक्क नाशने ॥ अयं तवर्गीयादिः । गोपदेशपर्युदासे
मृत्तिनन्दीत्यादावुपादानात् । नक्कयति ॥ ५९-६० ॥

चक्क चुक्क व्यथने ॥ चक्कयति । चुक्कयति । चिक्कत्यपि
क्वचित्पठ्यते ॥ ६१-६२ ॥

क्षल शौचकर्मणि ॥ क्षालयति । अक्षिलत् ॥ ६३ ॥

तल प्रतिष्ठायाम् ॥ तालयति । अतीतलत् । तालं, तलम् । अच् ।
'सज्ञापूर्वको विधिरनिन्य' इति वृध्यभावः । मैत्रेयस्तु 'घुषिरविशब्दने,
इति ज्ञापक सामान्यमित्युक्त्वा णिजभावे तलशब्दमाह ॥ ६४ ॥

तुल उन्माने ॥ तोलयति । अतूतुलत् । तुलेति णिचोनिन्यत्वा-
दिति मैत्रेयः । अन्ये तु णिजभावे प्रमाणाभावा 'तुल्यार्थैरि' त्यादौ
तुलेति निपातनादङि णिलुकि तुलेति । तुलयति 'अतूतुलदिति तुला-
शब्दा 'त्यादिपदिकाद्वात्वर्थे बहुलमिष्ठञ्जे' ति णिचि, 'दीर्घा लघो-
रि' ति णौ चङ्प्रभ्यासस्य दीर्घत्वमलोपित्वान्न भवति । तुला कृष्णस्य
नास्ति । 'तुल्यार्थैरि' ति विधीयमाना तृतीया तत्रैवातुलोपमाभ्यामि-
तिवचनाच्च भवति, तुलया समित तुल्यम् । 'नौवयोधर्म' ति यत् ।
तुलया संमितमिति व्युत्पत्तिमात्रं रूढशब्दस्त्वयं सदृशपर्यायः । तुल्य-
श्वेतः । 'कृत्यतुल्याख्या अजात्ये' ति समानाधिकरणसमासः । अयं च
पूर्वनिपातनियमबाधनार्थः । तथा तुल्यमहानित्यत्र 'सन्महदि' ति
महच्छब्दस्य प्राप्तपूर्वनिपातबाधार्थः । कृष्णस्य तुल्यः, कृष्णेन वा ।
'तुल्यार्थैरि' ति षष्ठीवृत्तीये ॥ ६५ ॥

दुल उत्क्षेपे ॥ दोलयति । अदूदुलत् । दोला । भिदादेराकृतिग-
णत्वादङ् । दुलिः कर्मष्ठः । 'अच इरि' तीप्रत्ययः । 'बहुलमन्यत्रापि
संज्ञाच्छन्दसोरि' ति णिलुक् ॥ ६६ ॥

पुल महत्वे ॥ पोलयति । पोलतीति शपी^१ति भूवादौ स्वामी ॥ ६७ ॥

चुल समुच्छ्राये ॥ चोलयति । चोलः । चोलस्यापत्यमपि चोलः ।
'कृष्णगधेत्यङ्' । तस्य 'कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनञ्चोलाद्वार्धमि' ति
लुक् ॥ ६८ ॥

मूल रोहणे ॥ मूलयति । मूलतीति प्रतिष्ठायां शपि ॥ ६९ ॥

कल विल क्षेपे ॥ कलयति । कलप्रति । कला । कलयतीति
गतिमंग्यानयोः कथादौ भविष्यति । कलनइति शब्दमंग्यानयोः शपि ।
वेलते इति वेलेरपि चलने, विलनीति मञ्जरणे शे । कुचिन क्रिनेत्यप्यत्र
पठ्यते, मैत्रेयादिभिस्तु न पठ्यते, श्वेत्यस्त्रीडनयोः क्लिननीति शे ॥ ८०-८१ ॥

विल भेदने ॥ वेलयति । वेलतीति शपीन्यात्रेय इत्युक्तम् ॥ ८२ ॥

तिल स्नेहने ॥ तिलयति । तिलतीति शे । तिलतीति गतौ
शपि ॥ ८३ ॥

चल भृतौ ॥ चालयति । चलनीति विनमनकम्पनयोः शश-
पोः ॥ ८४ ॥

पाल रक्षणे ॥ पालयति । अपीपलन् । पालेरपि हेतुमार्गो पा-
तेर्लुब्धत्तय इति लुगागमे पालयति ॥ ८५ ॥

लूष हिंसायाम् ॥ लूषयति । अलूनुपन् ॥ ८६ ॥

शुन्व माने ॥ शुन्वयति । अशुशुन्वन् । शूर्प मानइति श्राभद्र-
मैत्रेयादयः । शूर्पयति । शूर्पा, गरुचि पञ्चाश्वि वा णिलोप । शूर्पेण
क्रीतं शूर्पं, शार्पिकं, 'शूर्पादजन्यतरम्यामि त्याहीयेष्वर्थेष्वञ्ठञौ ।
द्वाभ्या शूर्पाभ्या क्रीतं द्विशूर्पमित्य' आध्यधंपूर्वे' ति टञञौवा लुक् ॥ ८७ ॥

चुट छेदने ॥ चोटयति । चुटतीति शे गतम् ॥ ८८ ॥

मुट सचूर्णे ॥ मोटयति । मोटतीति मर्दने शपि । मुटनीति
प्रमर्दनाक्षेपयोः शे ॥ ८९ ॥

पडि पमि नाशने ॥ पण्डयति । पण्डति । पंमयति । पंमति ।
पांसुः । 'अर्जिदृशी' त्यादिनोप्रत्ययो दीर्घश्च । पण्डतइति गतौ
शपि ॥ ९०-९१ ॥

व्रज मार्ग संस्कारगत्याः । व्राजयति । व्रजि मार्गमस्कारयोगतौ
चेति मैत्रेयादयः । अत्र धनपालो मार्गं चेति पठति । स्वामी तु व्रज-
स्थाने व्रज पठित्वा मार्गंति द्वितीयं धातुमाह । तन्वान्तरे तु व्रजिव्रजौ
द्वौ पठित्वा मार्गमस्कारगती अर्थो उक्तौ । व्राजयति । मार्गयति ।

व्रजति व्रजतीति शपि । वाजयतीति वातेरौ 'वो विधूनेने जुगि' ति
जुगागमे । मृग अन्वेषणे कथादौ । मार्ग अन्वेषणे इति युजादौ ॥ ८२-८३ ॥

शुक्ल अतिस्पर्शने ॥ शुक्लयति ॥ ८४ ॥

क्षपि गत्याम् ॥ क्षम्यति । क्षम्यति ॥ ८५ ॥

क्षपि क्षान्त्याम् ॥ क्षम्यति । क्षम्यति । क्षपयतीति प्रेरणार्थस्य
कथादित्वेन ॥ ८६ ॥

क्षजि कृच्छ्रजीवने ॥ क्षजयति । क्षजति । क्षजतइति गति-
दानयोर्घटादौ ॥ ८७ ॥

श्वर्त्त गत्याम् ॥ श्वर्त्तयति ॥ ८८ ॥

श्वभ्र च ॥ श्वभ्रयति ॥ ८९ ॥

ज्ञप मिच्च ॥ ज्ञापने मरणादिषु चाभिधानमस्यैवेति मैत्रेयादयः ।
अन्ये तु शाकटायनानुनारिको ज्ञप मारणनोपणनिशामनेषु मिच्छेति पठन्ति,
तथे 'को भलि' त्यत्र न्यासे ज्ञप मिच्छेति पठित्वा अन्ये तु ज्ञप मारण-
नोपणनिशामनेष्विति पठन्तीति । घटादिवदत्रापि केचिन्निशामनस्याने
निशानशब्द पठन्ति । घटादिषु मारणादिसूत्रस्य पाठादेव मिच्चे सिद्धे
पुनर्मारणादिषु मिच्चवचनं ज्ञपयमादिवर्जमन्ये स्वार्थेण्यन्ता न मित
इति ज्ञापनार्थमिति पुनःपाठफलं चाहुः काश्यपादयः । ज्ञपादीननुक्रम्य
'नान्ये मितोहेता'विति ज्ञपादिव्यतिरिक्तानामेवाहेतुमणौ मिच्चाभा-
वस्य वक्ष्यमाणत्वाच्चेदं फलम् । किं चार्थविशेषपरिगणनमप्ययुक्तं,
प्रच्छ ज्ञीप्सायां, ज्ञप्तिः, 'श्लाघद्भुङ्स्याशपां ज्ञीप्स्यमान' इत्यत्र ज्ञीप्स्य-
मानो ज्ञपयतुमिष्यमाणो बोधयितुमभिप्रेत इत्यादौ ज्ञानमात्रे ज्ञापने च
प्रयोगदर्शनान् । न चैवं शक्यते वक्तु निशामनं ज्ञानमात्रं तदर्थोदस्मा-
दहेतुमणौ क्षुरादित्वेन प्रच्छ ज्ञीप्सायां ज्ञप्तिरिति भविष्यति, स्याशपां
ज्ञीप्स्यमान इत्यादिस्तु हेतुमणौ घटादित्वेनेति । एवं तर्हि घटादिज्ञा-
पनविषयो ऽयं तु ज्ञानविषय इत्यर्थभेदस्य विद्यमानत्वात्

घटादित्वादेव मित्वे सिद्धे पुनर्मारणादिषु मित्ववचनं ज्ञापनार्थमिति
 स्वात्मेन विरोधः स्यात् । अथ मतं घटादित्वादेव मित्वे सिद्धे पुनर्मारणा-
 दिषु मित्ववचनं ज्ञापनार्थं, निशामनस्य ग्रहणं विग्रहार्थमिति नरोत्तम-
 नियमार्थमिति । एवमपि मारणादिष्विति वचनमयुक्तं मारणतोषण-
 योरिति तु वक्तव्यम् । किं चास्य ज्ञानमात्रार्थत्वे श्लाघाहृदित्यत्र न्यास-
 कारहरदत्तादिभिश्चौरादिकाद् व्युत्पादनं विकृत्येत । सर्वथा न ज्ञापय-
 त्याचार्यः, विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति ज्ञापकं स्यान्नदन्तत्वं इत्यादिषु न
 सिध्यति । अथ मारणतोषणनिशामनेष्विति घटादाविह च पाटाज्ज्ञाप-
 यन्त्यादि सिध्यति, जीप्स्यमानो ज्ञप्तिरिति न सिध्यति । यदि तु मतं
 घटादौ निशामनमिति पाठः, इह तु निशानमिति घटदेजापयति
 अस्माज्ज्ञपयतीति भविष्यतीति, एवमपि 'स्याशया जीप्स्यमान' इ-
 त्यादि न सङ्गच्छते । अत्र हि बोधनार्थं धातुस्तत्र तु बोधनं निशाम-
 नशब्दाद्यैः न तु बोधनेति । अथ तत्रापि बोधनार्थं, प्रच्छ जीप्सायां, जीप्स्य-
 मानः ज्ञप्तिर्न सिध्यति । तस्माज्ज्ञप मित्वेत्येव युक्तः पाठः । अत एव-
 'को भलि' त्यादौ 'ज्ञप मिच्छे'ति न्यासकारहरदत्तादयः पठन्ति ।
 तेनास्य यथाप्रयोगमर्थे इति ज्ञापने ज्ञानमात्रे च श्रुतिरिति प्रच्छ जीप्सायां
 जीप्स्यमानः, ज्ञपयितुमिष्यमाणः, इत्यादि सर्वमुपपद्यते । ज्ञापयन्त्यादि-
 प्रयोगस्तु ज्ञानमात्रवचनाज्ज्ञानाते । घटादिमित्वं तु चातुषज्ञानार्थकं
 निशामनार्थस्य चेतीह न भवति, निशामनं चातुषज्ञानमित्यथोक्तम् ।
 पुरुषवाच्यस्मदुक्तरीत्या 'ज्ञप मिच्छे'त्येव पाठो युक्त इति मिट्टान्तितम् ।
 एव च चुरादिणिचो 'णिचस्वे'ति कर्त्रभिप्राये तद् नास्तीति दर्शना-
 श्रयणेनोक्तस्योक्तिः, 'णिचस्वे'त्युदितं विहितं यदिति कर्त्रभिप्रायेपि मार-
 णादौ परस्मैपदसिद्धिः पुनः पाठफलमिति यद्वेवेनोक्तं तदपि मतं, ज्ञाना-
 तीति ज्ञ मित्वेन ज्ञपयति तु पुनर्मारणादौ घटादेश्च मित्वेपीदमेव ज्ञप-
 मिदितिपदं ज्ञापने मारणादौ, तेनार्थात् ज्ञापनार्थं ज्ञपयतिपदवन् ज्ञाप-
 येदित्यपि स्यादिति स्वेनैव ज्ञपमिदित्यर्थविशेषोपादानरहितं पाठमङ्गी-
 कृत्य तस्य च प्रयोजनं मारणादिव्यतिरिक्ते ज्ञपयत्यर्थं ज्ञपयतीति सिद्धि-

रित्युक्तत्वादुक्तस्योक्त्यसमावाविराकृतम् । ज्ञपयति । संज्ञपयति । निज्ञपयति, प्रज्ञपयति । स्वभावान्मारणादावप्यस्य वृत्तिरित्युक्त, तत्र कौमारमतेन सोपसर्गः प्रदर्शितः । जिज्ञपयिष्यति । जीप्सति । 'सनीवन्तरि' त्यादिना पक्षे इडभावः । 'आप्ज्ञप्यधामि'ति भलादौ सन्यच ईकारः । 'अत्र लोप' इत्यभ्यासलोपः । 'णेरनिटी'ति णिलोपः । 'वा दान्ते'त्यत्र जप्त् इति निपातन जप्तेरिति 'निष्ठाया सेटी'त्यत्र कैटपदमञ्जरीस्कृत्वादिवह जप्त्ः जपित इति मैत्रेयेणोदाहरणस्य प्रदर्शनमयुक्तम् ॥ ८० ॥

यम च परिवेषणे ॥ चकारेण मिदित्यपेक्ष्यतइति मैत्रेयादयः । इह परिवेषणं परिवेष्टनं, न तु भोजना, नापि वेष्टना । तत्र हि घटादित्वात्सिद्धम् । न च वेष्टनेपि घटादित्वेन मित्त्वसिद्धिः । हेतुमद्ध्यस्तस्य तद्विधानात्, तस्य च वेष्टना ऽर्था न तु वेष्टनमिति । यमयति चन्द्र, परिवेष्टतइत्यर्थः । अन्यत्र नियामयति । क्वचिदयमो ऽपरिवेषणइति पठ्यते । तदनार्थम् । चकारेण मिदित्यपेक्ष्यतइति मैत्रेयादिविरोधात् । किं च घटादौ यमो ऽपरिवेषणइति परिवेषणादन्यत्र मित्त्व निषिध्यते, अनेन तु तत्र च विधीयतइति विधिनिषेधयोर्विषयविभागो न प्रकल्पेत । येषां तु दर्शनं घटादावपरिवेषणे मित्त्व विधीयतइति तेषान्तु तत्रैवानेनापि मित्त्व विधीयतइति वैयर्थ्यमेव प्रसज्येत । इदं च घटादावपरिवेषणे मित्त्वविधानदर्शनं च तत्रैव दूषितम् ॥ ८१ ॥

चह परिकल्कने ॥ चहयति । मैत्रेयस्तु चपेति पठित्वा चपयतीत्युदाहरणम् । चहेत्युष्मान्तमेव चन्द्रोपि । अयं कथादावपि पठिष्यते, तस्य फलमग्लोपित्वा 'त्सन्वल्लघुनी'ति इत्वस्य 'दीर्घो लघोरि'ति दीर्घस्य चाभावः । तेनाचचहइति भवति । इह पाठादचीचहइतीत्वदीर्घो भवतः । तथास्य मित्त्वादचहि । अचाहि । चहंचह, चाहंचहमिति 'त्रिणमुलो' रिति दीर्घविकल्पो भवति । चहतीति भूवादः ॥ ८२ ॥

रह त्यागे ॥ इतीह केचित्पठन्ति । 'रहयति । कथादात्रयं पठि-
ष्यते, तत एव सिद्धेरिह पाठो व्यर्थ इति स्वामी । तत्र, चहिवत्क-
थादेरलोपित्वादित्वदीर्घयोरभावादरहदिति भवति । इह पाठोदरीरह-
दिति, तथा अरहि अराहि, रहरह, राहराहमिति मित्वा 'व्विण्णमु-
लोर' ति दीर्घविकल्पोऽस्य भवतीति प्रयोजनमद्वावात् । रहतीति शपि ।
रंहतीति तत्रैव रहि गनाविन्यस्य ॥ ८३ ॥

बल प्राणने ॥ ओष्ठ्यादिः । बलयति ॥ ८४ ॥

चिञ् चयने ॥ त्रिन्करणात्कर्त्रभिप्राये नृविध्यर्थाणिजस्य वि-
कल्पेन भवति, णिचि 'चिस्फुरोर्णावि' न्यात्व पते भवति । तत्र पुकि
मित्वात्तस्य ह्रस्व इति । चपयति । चययति । अणिचि चयनि, चयने
इति भवति । अत्र काश्यप इकारोच्चारणसामर्थ्यादात्वं नेति तच्चि-
न्यम्, आत्वस्य वैकल्पिकत्वात्तदभावे वृद्ध्याह्रस्वेण चययतीति
रूपमिध्यर्थत्वात्तस्य तथा गिजभावे गुणयोरन्ययनानि रूपार्थत्वा-
च्च । रहत्यादयो यद्व्यप्यत्र मैत्रेयादिभिर्न पठितान्मयापि काश्यपादि
प्रामाण्यादस्माभिः पठिताः । चिनोतीति स्वादेः । 'नान्ये मितोहेनौ'
जपादिव्यतिरिक्ता अहेतुमण्णौ मितो न भवन्ति । तेन जपादिव्यतिरि-
क्तानां चौरादिकानां शमादीना 'जनीजूयक्रमुरज्जोमन्नाश्च' न्यादिना
सामान्यलक्षणेन प्राप्त मित्त्वं न भवति ॥ ८५ ॥

घट्ट चलने ॥ घट्टयति । घट्टते इति शपि ॥ ८६ ॥

अस्त संघाते ॥ अस्तयति । क्वचिदयं वक्ष्यमाणस्य पुंमेरनन्तरं
पठ्यते ॥ ८७ ॥

सट्ट सवरणे ॥ सट्टयति ॥ ८८ ॥

सट्ट स्फिट्ट चुच्चि हिमायाम् ॥ सट्टयति । स्फिट्टयति । चुम्बयति ।
चुम्बतीति वक्रमयोगे शपि । केचिद् द्वितीयं पुट्टेत्युक्तावन्तमनोभ्यं च
पठन्ति । अस्माभिस्तु मैत्रेयादीनामनुसारेण पूर्वमेव पुट्टिः पठित इतीह न
लिखितः, तदनुगोधादेवेह स्फिट्टिश्च पठितः । इह व्यय त्रय इति नन्दी
पठति । व्ययेत्यपरे, मैत्रेयदेवाद्वयमूतभयमपि न पठन्ति ॥ ८९-१००-१०१ ॥

पूल सघाते ॥ पूलयति । पूलतीति शपि । पुरुषकारे तु पुर्ण्येति
क्षीरस्वामी, पुणेति शाकटायन इत्युक्त्वा कोशशुद्धिस्त्वीदृशेर्ध्वं कीटशीति
न विद्म इत्युपहसितम् ॥ १०२ ॥

पुंस अभिवर्द्धने ॥ पुंसयति ॥ १०३ ॥

टकि बन्धने ॥ टक्कयति । टक्कति । टक्का, विटक्कः ॥ १०४ ॥

धूस कान्तिकरणे ॥ दन्त्योष्ठान्त इति श्रीभद्रमैत्रेयादयः ।
मूर्धन्योष्ठान्त इति स्वामी । तथा च मैत्रेयोपि धूष इत्येकइति । का-
श्यपस्तु तालव्योष्ठान्तमाह । धूसयति । धूसरः । बाहुलकादप्र-
त्ययः ॥ १०५ ॥

कीट वर्णे । कीटयति ॥ १०६ ॥

चूर्ण संकोचने ॥ चूर्णयति । पुनः पाठोर्थभेदकृतः ॥ १०७ ॥

पूज पूजायाम् ॥ पूजयति । पूजा । चिन्तिपूजित्यङ्ग्यासेति युचो-
पवादः । पूजितो राज्ञां, 'मतिषुद्धिपूजार्थभ्यश्चेति' वर्तमाने क्तः । सनि-
'क्तस्य च वर्तमान' इति कर्तरि षष्ठी । 'क्तेन च पूजाया' मिति समा-
सनिषेधः । पूजितो यः सुरासुरैरित्यार्थः प्रयोग इत्याहुः ॥ १०८ ॥

अर्क स्तवने ॥ अर्कयति, तपनइत्येके । अर्चयत्यर्कमर्किण इति
'दर्शनात् स्तवनपाठो युक्तः ॥ १०९ ॥

शुठ आलस्ये ॥ शोठयति । शोठतीति गतिप्रतिघाते शपि ॥ ११० ॥

शुठि शोषणे ॥ शुण्ठयति । शुण्ठति । अत्र क्षीरस्वामी । केचिदे
नमकारान्तं पठन्ति, लक्ष्यतस्तदपि प्रमाणमिति, एवं तु आलस्ये इति पूर्व-
ज्ञेय शोषणमपि निर्दिशेत् । शोषणे शोठयतीति प्रयोगो दृष्टश्चेत् शोठ-
यतेरनेकार्थत्वेन निर्वाह्यः, तस्माच्छुठि शोषणइति युक्तः पाठः । अस्य-
द्वित्वादेव शुण्ठतीति सिद्धे भ्वादौ शुण्ठेः पाठः प्रपञ्चार्थः ॥ १११ ॥

जुड प्रेरणे ॥ जोडयति । बन्धने जुडतीति शे ॥ ११२ ॥

गज मार्ज शब्दार्थौ ॥ गाजयति । गाजयते । गज्जतीति शपि,
गर्जति गज्जतीति च । मार्जयति । शौचालङ्कारयोः, मार्जतीति युजादौ

भविष्यति । मृज्जुषु शुद्धाविव्यस्य मार्गान्यदादौ । अत्र मर्चिमपि केचित्प-
ठन्ति । मर्चयति । शपि मर्चति ॥ ११३-११४ ॥

घृ संप्रसवणे ॥ धारयति । अत्र क्षीरस्वामी सावणइति पठित्वा
ऽभिधारयतीत्युदाजहार, धरतीति शपि । जघतीति श्लौ । ह्यान्दमौ
चैतावित्युक्तम् ॥ ११५ ॥

पचि विस्तारवचने ॥ पञ्चयति । पञ्चति, पञ्चतइति व्यक्तार्थस्य
शपि ॥ ११६ ॥

तिज् निशामने ॥ तेजयति । तितितने इति भौवादिकस्य तिज्-
नित्यसनन्तस्य तर्मायाम् । तेजनीति शपि पालनार्थस्य ॥ ११७ ॥

कृत सशब्दे ॥ कीर्तयति । 'उपधायाखे' नीन्वरपरन्वयो 'हंलि
चे' ति दीर्घः । अचिर्कीर्तत् । अचीकृतत् । उर्चद्वा । अन्यद्वा लौ कृत
स्यानिवृत्तितीत्वस्य स्यानिवृत्त्वं न भवति । यत्र द्विरुक्ता परभागस्याङ्गो-
जवर्णस्तत्रैवेयं परिभाषेत्येवं 'द्विर्वचनेऽची' त्यादौ भाष्यकैपटयोः स्मि-
तम् । एवमेवोर्चदित्यादौ पटमञ्जर्यादिष्वपि । यत् 'स्ते'तिण्योरेवे-
त्यत्रास्य सिषेवयिषत्यादौ सिचेर्हेनुमण्णौ गुणे मनीठि गुणायादेगयोक्त-
रखण्डस्यात्राभावेऽप्यनया परिभाषया गुणस्य स्यानिवृत्त्वेन सिचशब्दस्य
द्विरुक्तेर्वचनं तदस्याः परिभाषायाः सामान्यताश्रयणेन स्यानिवृत्त्वेपि रूप-
सिद्धौ विशेषो नास्तीत्येतावता न तु सिद्धान्तस्मिन्या । कथन्तर्हि 'लोपः
पिबते' रित्यत्र वृत्तावपीष्यदित्यत्र पिबतेर्णो युक्ति चङि 'लोपः पिबतेरीच्चा-
भ्यासस्ये' त्युपधालोपे तस्यानया परिभाषया स्यानिवृत्त्वमाश्रित्य पायश-
ब्दस्य द्विरुक्तिरुक्ता, नह्यत्रोत्तरखण्डस्याद्वयमवमवर्णं पश्यामः । यद्यपि
प्रयोगे न पश्यामः स्यानिवृत्त्वेन पायशब्दे द्विरुक्ते प्रक्रियायामुत्तरखण्डेवर्णं
पश्याम इति न दोषः । तस्य च 'लोपः पिबते' रित्यस्य पुनः प्रवृत्त्या प्रयोगे
दर्शनम् । एवमौजठदित्यत्राप्युठशब्दाणिच टिलोपे तस्य स्यानिवृत्त्वे
ठन्वादीनामसिद्धत्वे हतशब्दस्य द्विरुक्तिः, प्रक्रियावाक्ये उत्तरखण्डस्याजवर्ण
इति न क्व चिद्दोषः । एवं चोच्चिठदपीष्यदित्यादिमिद्वर्थमस्याः परिभा-
षायाः सामान्यत्वमाश्रित्यात्र 'लोपः पिबते' रित्यत्र वृत्तिकारवचनं

‘स्तौतिण्योरेवे’ त्यत्र न्यासकारवचनं च सवादयन्नचिकीर्तदिति सिद्ध्यर्थमनित्यत्वं चास्या वदन् सीरदेवोऽपि प्रत्युक्तः । प्रकृतमनुसरामः । कीर्तिः । ‘ऊतियूती’ त्यादिना युजपवादः क्तिन् । कालापास्तु युचमपीच्छन्ति कीर्तनेति । ‘ऋदुपधाच्चाकृपिचृते’ रित्यत्र तपरकरणाद् ऋकारोपधकीर्तयतिव्यावृत्त्यर्थादस्माणिचो ऽनित्यत्वं ज्ञायते । नित्ये णिच्यनुपधात्त्वादेव ऋकारस्यात्र क्यञ्च न भविष्यतीति किं तपरकरणेनैतद्व्यावृत्त्यर्थेन, तेन कीर्तनीत्यादि च भवति ॥ ११८ ॥

वर्धं छेदनपूरणयोः ॥ वर्धयति, अववर्धन् ॥ ११९ ॥

कुबि ह्वादेन ॥ कुम्बयति कुम्बति । कुम्बा । ‘चिन्तिपूजी’ त्यादिना युचोपवादोऽकारः । एवं स्वामिकाश्यपमैत्रेयादयोऽवशन्त पठन्ति । अपरे तु भकारान्त पठन्ति, कुम्भयतीत्यादि ॥ १२० ॥

लुबि तुबि अदर्शने ॥ अर्दनइति मैत्रेयः । लुम्बयति । तुम्बयति । अनयोरिदित्त्वादेव लुम्बति तुम्बतीति सिद्धेरर्दनेर्थे भ्वादौ पाठो व्यर्थः स्यात् । इहादर्शनेऽर्थे त्वर्थभेदात्सोऽपि सार्थकः ॥ १२१-१२२ ॥

हूप व्यक्तायां वाचि ॥ ह्वापयति । क्लपेत्येके । क्लापयति ॥ १२३ ॥

चुटि छेदने ॥ चुण्टयति । चुण्टति । अत्र क्वचिन्मृडि तुडीति तृतीयान्तौ पठ्यते तावाद्येषु व्याख्यानेषु न दृश्येते, अतो ऽप्रामाणिकः पाठो ऽनयोः ॥ १२४ ॥

इल प्रेरणे ॥ एलयति । ऐलिलत् । इलतीति तुदादौ ॥ १२५ ॥

म्रत्त स्नेच्छने ॥ स्नेच्छनमपशब्दनम् । स्नेच्छो हवा एष यदपशब्द इति श्रुतेः । म्रत्तयति । म्रत्ततीति सघाते शपि । म्रत्त म्रत्त अर्दनइत्यपि क्वचित्पठ्यते ॥ १२६ ॥

स्नेच्छ अव्यक्तायां वाचि ॥ इहाव्यक्तवागपशब्दनम् । स्नेच्छयति । स्नेच्छतीति भूवादौ ॥ १२७ ॥

ब्रूस बर्हं हिंसायाम् ॥ ब्रूसयति । बर्हयति । बर्हतीति बृह बृह्वावित्यस्य शपि । बर्हतइति च प्राधान्ये, बृदुये बर्हयेदिति, भाषार्थादे भविष्यति । अत्र गर्ज गर्दं शब्दे, गर्धं अभिकाङ्क्षायामिति क्व चित्पठ्यते ।

गर्जयति । गर्दयति । गर्द्वयति । शय्यपि गतावाद्गौ । गृध्यतीति श्य-
नि गृधेः ॥ १२८-१२९ ॥

गुर्दं पूर्वं निक्तेतने ॥ अत्र क्षीरम्बामी । पूर्वनिक्तेनमामाद्याभ्यव-
हारः । पारायणे द्वौ धातु इति । पुरुषकारे तु पूर्वनिक्तेनइति पठित्वा
तच्च निवासपूर्वक्रमित्युक्त्वा पूर्वयनीत्यत्रोपधाया चेति दीर्घउक्तः । गुर्दं
यति । पूर्वयति । पूर्वतिस्तु शपि । गुर्दंस्तु कुर्दंस्तुर्दंन्यत्र प्रयञ्जितः । पूर्वय-
तीति कथादिरित्युक्तं देवे, तच्च भूवादौ पूर्वतौ दृषितम् ॥ १३०-१३१ ॥

जसि रत्तणे ॥ मोक्षणेइति देवः । जंयति । जंमनि । जस्य-
तीति श्यनि मोक्षणे । इहैव हिंसाया जामयतीति भविष्यति । तथा
ताडने ऽपि ॥ १३२ ॥

ईड स्तुतौ ॥ ईडयति । ऐडिडत् ॥ ईट्ट इत्यदादौ ॥ १३३ ॥

जसु हिंसायाम् ॥ जामयति चोरस्य चोरमिति वा । 'जामिनि-
प्रहणे'ति कर्मणि शेषे षष्ठी । जार्सीनि निर्देशाच्चोरमर्जीजमदित्यत्र न
षष्ठीति न्यासे । इदमपि दूषितं प्रागेव । क्वायामिद्विकृत्य यादृदि
त्करणादस्य णिजनिन्य इति जमनीति भवति । जमिन्वा । जमन्वा ।
जस्तम् ॥ १३४ ॥

पिडि संघाते ॥ पिण्डयति, पिण्डति ॥ १३५ ॥

रुष रोषे ॥ रोषयति । शपि रोपति । हिंसाया श्यनि रुषति ।
रोषे रुड् इत्येकइति मैत्रेये रक्षित ॥ १३६ ॥

डिप ज्ञेपे ॥ डेपयति । डप डिप संघान्नइत्याकुम्भीयः । ज्ञेपे डेप-
यति, डिपयतीति गतौ ॥ १३७ ॥

ष्टूप समुच्छ्राये ष्टूपयति ॥ १३८ ॥

आ कुस्मादात्मनेपदिनः ॥ कुस्मनाश्वो वेति वक्ष्यति । आ एतस्मा
दात्मनेपदिनो ऽर्कभिरायेपि । आङ्भिविधौ, मर्यादायामसदेहाये प्राणि-
न्येव ब्रूयात् ॥

चित सचेतने ॥ सचेतनं संज्ञानम् । चेतयते । अचीद्विनत् ।
चिन्तयति । चिन्तनीनि स्मृत्यामिह गतम् । शपि चेतति संज्ञाने ॥ १३९ ॥

दशि दशने ॥ दंशयते । आकुस्मीयमात्मनेपदं णिच्सञ्चियोगेनेति
व्याख्यातारः । तेनेद्रित्करणसामर्थ्याणिजभावे दंशतीति शपि ॥ १४० ॥

दसि दर्शनदंशनयोः ॥ दंशनदर्शनयोरिति प्रायेण दृश्यतइति पु-
रुषकारे । दसयते, दंसति । पूर्ववदण्णिचि परस्मैपदं, देसतीति रत्तणे गतमे-
कीयमतेन । दस्यतीत्युपत्तये श्यनि, दासतइति दाने शपि । दासः, दासी ।
'दंसेष्टनौ न आ चे'ति टटनौ नकारस्य चाकारः । टित्त्वात् स्त्रिया
डोष्, टटनोः स्वरे विशेषः । अत्र दसेत्यनिदितमपि केचित्पठन्ति । यदाह,
षितेव पुत्रं दसये वचो भिरित्यत्र भट्टभास्करः । दसये सष्टुहामि । दंशनद-
र्शनयोः चौरादिक उदात्तेत्, व्यत्ययेन वृद्धाभाव इति । दासीदासम् ।
गवाश्चप्रभृतित्वादेकवद्भाव एकशेषाभावश्च ॥ १४१ ॥

डप डिप संघाते ॥ डापयते । डेपयते । डेपयतीति द्वेपे
गतः ॥ १४२-१४३ ॥

तत्रि कुटुम्बधारणे ॥ तन्त्रयते । तन्त्रति । तन्त्रम् ॥ चान्द्राः
कुटुम्बेति पृथग्धातु पठित्वा कुटुम्बयतइत्याहुः ॥ १४४ ॥

मत्रि गुप्तभाषणे ॥ मन्त्रयते ॥ मन्त्रयति ॥ १४५ ॥

स्पश यहसंश्लेषणयोः ॥ स्पाशयते । अपस्पशत । 'अत् स्पृष्ट-
त्त्वरे'त्यादिना ऽभ्यासस्याकार इत्त्वापवादः । स्पशति । स्पशतइति
स्पश बाधनस्पर्शयोरित्यस्य हि भ्वादेः ॥ १४६ ॥

तर्ज भर्त्स सतर्जने ॥ तर्जयते । भर्त्सयते । तर्जयन्नैव केतुभिरिति
भौवादिकस्य तर्जयतेर्णिचि ॥ १४७-१४८ ॥

वस्त गन्ध अर्दने ॥ वस्तयते, गन्धयते ॥ १४९-१५० ॥

विष्क हिंसायाम् ॥ क्वचित्कोशे हिष्केति पठ्यते । हिष्कयते ॥ १५१ ॥

निष्क परिमाणे ॥ निष्कयते । निष्कः, अच् । निष्केण क्रीतं
नैष्किकम् 'असमासे निष्कादिभ्य' इति क्रीतादर्थे ठक्, द्वाभ्या निष्काभ्या
क्रीतं द्विनैष्किकः द्विनिष्कम् । 'द्वित्रिपूर्वाविष्का'दिति पक्षे प्राग्वती-
यस्य ठको लुक् । एवं त्रिपूर्वस्यापि । 'परिमाणान्तस्य' त्युत्तरपदवृद्धिर्लु-
गभावे ॥ १५२ ॥

लल ईप्सायाम् ॥ लालयते । अलीललत् । कुं नालयतइति कु-
लालः । कर्मण्यण् । कुलालेन कृता कौलालिका । 'कुलालादिभ्यो वु-
जि' ति वुज् ॥ १५३ ॥

कूण सकोचने ॥ कूणयते । कूणिः । अन्ये तु कुणितिह्रस्वोपधं
पठन्ति । वयन्तु कूणितादिदर्शनान्मैत्रेयाद्भुक्त दीर्घोपधत्त्वमेव बहु मन्या-
महे । ह्रस्वोपधस्तु कथादौ भविष्यति । शब्दोपकरणयोः कुणनी-
ति शे ॥ १५४ ॥

तूण पूरणे ॥ तूणयते । तूणः, तूणीरः । बाहुलकादौगन् ॥ १५५ ॥

भूण आशायाम् ॥ भूणयते । भूणः ॥ १५६ ॥

शठ श्लाघायाम् ॥ शाठयते ॥ १५७ ॥

यत्न पूजायाम् ॥ यत्नयते ॥ १५८ ॥

स्यम वितर्के ॥ स्यामयते । स्यमनीति शब्दार्थः शपि ॥ १५९ ॥

गूर उद्यमने ॥ गूरयते । क्वचिदयं लघूपध ईदिव्येह पठ्यते । तदा
त्रेयमैत्रेयविरोधादुपेत्यम् । चुरादौ दीर्घोपध इति भिदादावात्रेयः, दि-
वादौ च तेनायमर्थः स्फोरितः । मैत्रेयस्तु चुरादौ दीर्घोपधमनीदिन
पठित्वा गूरयतइत्येवोदाजहार । तथा च दैवपुरुषकारयोरयमनीदि-
दीर्घोपधः ॥ १६० ॥

शम लल अलोचने ॥ शामयते, लक्षयते, दर्शनाङ्कनयोल्लक्षयनि,
लक्षयते इति गतम् ॥ १६१-१६२ ॥

कुत्स अवक्षेपणे ॥ कुत्सयते । कुत्सेति णिदि कुत्सायामिति
निर्देशादङि ॥ १६३ ॥

क्रुट छेदने ॥ क्रुटयते । अयं तुदादौ च । क्रुट्येकइति स्वामी
॥ १६४ ॥

गल अवक्षेपणे ॥ गालयते । गलतीति शपि ॥ १६५ ॥

भल आभण्डने ॥ भालयते ॥ १६६ ॥

धातोरेवाभावात् कुतो नामायमनूद्येतेत्याह । कुस्ममिति दृष्टमिति । कु-
 शब्दपूर्वात्स्मयते 'रन्येष्वपि दृश्यते' इति डप्रत्यये 'कुगतिप्रादय' इति
 समासे समा^१सत्त्वाच्चात्र प्रातिपदिकमिति लक्षणो निर्णीतमित्यर्थः । ननु
 किमनेन प्रातिपदिकात्कारितात्, यतः कुपूर्वात्स्मयतेः कुस्मयत-
 इति सिद्धमित्याह । कुस्मयतिरकारितमिति चेत् । कोर्नि यसमासत्त्वा-
 दुपसर्गस्य च बाह्यत्वात् कारितमेवेति । कुपूर्वःस्मयतिरेव कुस्मयतइ-
 त्यत्र भविष्यति प्रकृतिः, तेनाकारित कारिताभावोस्त्विति चेत्तत्र । कोत्र
 नित्यसमासत्वात्, यदि तिङन्तेन कोरन्वयः स्यात्, 'कुगतिप्रादय' इत्य-
 त्प्रातिपदिकेति सम्बन्धात् समासो न स्यात्, ततश्च वाक्यत्वाद्वैकपदं न
 स्यात्, पूर्वप्रयोगवन्परप्रयोगश्च स्यात्, तथा तदुपसर्गस्य बाह्यत्वात् प्रकु-
 स्मयतइति स्मयतेः प्राक् प्रयोगः स्यात्, क्रियमाणे च कुस्मनाइति कुश-
 ब्दादप्युपसर्गस्य बाह्यत्वस्येष्ट्यमाणात्त्वात् न तिङन्तेन कोरन्वयः । यदि हि
 स्यात् 'ते प्राधातो' रिति कुप्रस्मयतइति स्मयतेः प्राक् प्रयोगः स्यात् ।
 क्रियमाणे च कुस्मनान्ने वेत्यस्मिन्नेतत्करणसमार्थान्न कुपदस्य स्मयतेर्नापि
 व्यवहितस्य प्रयोगः । उपसर्गस्य चेति चकारेणान्येऽपि दोषाः सूच्यन्ते, तत्र
 तावत्कुस्मयांच^२कुरिति आम् न स्यात्, चुकुस्मयिषतीत्यत्र कोर्द्वित्वं
 न स्यात् । अचुकुस्मयत इत्यत्र चङ् न स्यात्, अट् च कोःपरः स्यात् ।
 कुस्मनेति युज्यस्यात् । कुस्मतिरिति च स्यात्, कुस्मयितेत्यादाविङ् न
 स्यात् । कुस्मयित्वेत्यत्र ल्यप् स्यात्, क्विपि च णिसंयोगान्तलोपयोः सका-
 रस्य च रुत्वे 'बो' रिति दीर्घं कूरिति सिध्यति । तथा खल्लि णिलोपे
 कुस्मक इति सिध्यति, अन्यदा कुस्मायक इति स्यात् । किं च कुस्मतीति न
 स्यात्, कुस्मायतइत्यादौ क्यङादयोऽपि न स्युः । एषां प्रातिपदिकादाचारे
 विधानादतो धात्वन्तरं प्रातिपदिकं वा ऽश्रयणीयमिति । निगमयति ।
 कारितमेवेति । ननु धातुपक्षे कथमाचारे क्तिवादयः स्युः, सत्यम् । कारि-
 तान्ताद् णिचि णिलोपः, कुस्मप्रातिपदिकात् क्तिवादयो भविष्यन्तीति
 न दोषः ॥ १९७ ॥

१ समासभूत नाम प्रतिपादिकं, नाम घटेतेति चेद् घटेतेत्याह इत्यधिकं ४ पु ।

२ चक्रे इति ३ पु. पा. ।

चर्च अध्ययने ॥ चर्चयति । चर्चनीनि हिमादौ गतम् । चर्चा ।
'चिन्तिपूजी' त्यादिना युचोपवादे ऽङ् । चिन्त्यादयः सर्वे चौरादिका
एह्यन्ते ॥ १७८ ॥

बुक्क भाषणे ॥ बुक्कयति । बुक्कतीति शपि । अत्र स्वामी । शब्द
उपसर्गादाविष्कारे चेति पठित्वा उपसर्गपूर्वाच्छब्द इत्यस्मादाविष्कारे चका-
राद्भाषणे च णिचमुत्त्वा प्रतिशब्दयतीत्युदाहृत्य प्रतिश्रुतमाविष्करोतीत्यर्थ
इत्याह । पुनश्चानुपसर्गाच्चेति पठित्वा आविष्कारे शब्दयतीत्याह । मैत्रे-
यस्तु द्विवेवात्रापठत् । शब्द शब्दक्रियायामिति पठित्वा शब्दयती-
त्याह । अत्र पाठे प्रातिपदिकाट्टात्त्वेर्यङिति शौ प्रतिशब्दयति शब्दयतीति
वाविष्कारे सिद्धे, स्वामिपाठे तु शब्दकरणे शब्दयतीति न सिद्ध्यति,
'शब्दवैरेति क्यडा 'तत् करोती'ति णिचो बाधान् । तस्मान्मैत्रयपाठो
ज्यायान् । येषां तु क्यडा न णिचो बाधस्तेषां न विशेषः । शब्दतीति
शपि ॥ १७९ ॥

कण निमीलने ॥ काणयति । अचीकणत् । अवकाणत् । 'का-
ण्यादीनां वे'ति ह्रस्वविकल्पो शौ चङुपधायाः । काणः । स्वभावादय-
मेकनेत्रनिमीलनवचनः । कणतीति शब्दे ॥ १८० ॥

'जभि नाशने ॥ जम्भयति । इदित्वाज्जम्भति । चन्द्रस्तु जम्भेति
पठित्वा जम्भयतीत्युदाजहार । 'रधिजभोरची'ति नुमं मन्यते । अत्र
मते नाशने न जम्भतीत्यस्ति । अयं चानिदित्पाठो न्यासकाररक्षणा
दीनामनभिमतः । अन्यथा रधिजभोर्चीत्यत्र जम्भजृभीतिवदमुमप्युपाददी-
रन् । जम्भतइति शपि जृम्भणे ॥ १८१ ॥

मूद चरणे ॥ के चिदाश्रयणइति पठन्ति । मूदयति । अमूयु-
दत् । मूदतइति शपि ॥ १८२ ॥

जमु ताडने ॥ जामयति चोरस्य । 'जामिनिप्रचणै'ति कर्मणि
शेषे षष्ठी । हिंसायां पठितस्यास्य पुनः पाठो ऽर्थभेदान् । नहि ताडन
हिंसा, तज्जन्यत्वात्तस्याः । उदित्वादस्यापि णिज्विकल्पितः । तेन
जसतीति भवति ॥ १८३ ॥

पश बन्धने ॥ पाशयसि ॥ १८४ ॥

अम रोगे ॥ चोरस्यामयति । आमयतः । 'रुजापानामि' ति कर्मणि शेषे षष्ठी । 'नान्ये मितो ऽहेता' विति मित्वनिषेधः । आमः । घञि अचि वा णिलोपः । आमय^१* शब्दार्थाद्वेतस्मादनन्तरा निष्ठा नेति किं प्रतिषेधेन । इदञ्च घोषतावित्युक्तम् । मन्दबुद्ध्यनुपहायेह स्मारितम् । एवं चेरित्त्वमघुपदघोषीदित्यत्र पक्षे ऽङ्गर्थत्वेनावयवे चरितार्थमिति अजुघुपदित्यत्र 'णिश्री' ति चङ् न बाध्यते । घोषयति । घोषति । अव-
घुषितमिति, इट्प्रतिषेधो भौवादिकस्येत्युक्तम् ॥ १८१ ॥

आङः क्रन्द सातत्ये ॥ अत्र काश्यपमैत्रेयौ, आङः परः क्रन्दः सातत्ये णिचमुत्पादयतीति । इदञ्च सातत्य कुस्मयतेरनन्तरं मैत्रेयेणा गणान्तरात् धातूनूद्य पुनर्द्वितीयं परस्मैपदप्रकरणमधुनोच्यतइत्युक्तत्वा-
दयमपि भौवादिकस्यानुवाद इति । तच्च क्रन्देर्यार्थे आह्वानादिस्तदपे-
क्षमिति बोद्धव्यम् । आक्रन्दयति । आक्रन्दतीत्याहुनादौ शपि गतम् ।
वैक्लव्ये घटादौ । स्वामी तु आङ्पूर्वा घुषिः क्रन्द सातत्ये चुरादिः,
आघोषयतीत्युत्वा मैत्रेयादुक्तमपरमाहुरित्याह ॥ १८२ ॥

लस शिल्पयोगे ॥ अत्र स्वामी शिल्पोपयोगइति पठित्वा केचिन्नूर्ध-
न्यान्तं पठन्तीत्याह । लासयति । श्लेषगङ्गीजनयोनमतीति शपि ॥ १८३ ॥

तसि भूष अलङ्कारे ॥ अव्रतसयति । भूषयति । भूषतीति शपि ।
तसेरिदित्वाणिचो विकल्पे वतंसति । 'वष्टि भागुरिरल्लोपमित्यल्लोपः ।

१ * एवमेव पाठः पुस्तकद्वयेऽप्युपलभ्यते परन्तु आमयेत्यस्याग्रे शब्दस्त्वामपूर्वा-
न्माधातोर्धञश्च के मीधातोर्धञि वा ॥ १८५ ॥ चट फुट भेदने ॥ चाटयति । स्फोट
यति । विकाशे स्फोटते इति शपि । स्फुटतीति श्रे ॥ १८६-१८७ ॥ घट सचाते ॥ घाट
यति ॥ १८८ ॥ हन्त्यर्थश्च ॥ नवगणयामुक्ता अपि हन्त्यर्थं स्वार्थे णिच लभन्तइ
त्यर्थः । घातयति । 'हनस्त' इति तः ॥ दिवु मर्दने ॥ देवयति । उदित्वाद्ये-
वतीत्यपि ॥ १८९ ॥ अर्ज प्रतिपत्ने ॥ अर्जयति । द्रव्यमर्जयतीत्यादिप्रयोगदर्शनादय
मर्थान्तरेऽपि ॥ १९० ॥ घुषिर् विशब्दने ॥ विशब्दन प्रतिज्ञा । 'घुषिर्विशब्दने' इति
सूत्रे विशब्दनइति निषेधाल्लिङ्गादनित्योऽस्य णिच् । 'घुषिर्विशब्दने' इत्यनेना
विशब्दने निष्ठाया इण्यपिध्यते । इति ग्रन्थोऽपेक्षितः । शब्दार्थादित्यत्र च विशब्द
नार्थादित्यपेक्षितमिति प्रतिभाति ।

दौर्गास्तु शर्षापि पेटुः, तसि भूय अलङ्कारदति । पुरुषकारे तूक्तमुभयत्रापि भूषैवेत्येव बहव इति ॥ १८४ ॥

मोक्ष असने ॥ मोक्षयति शरान् ॥ १८५ ॥

अर्ह पूजायाम् ॥ अर्हयति अर्हान् ॥ १८६ ॥

ज्ञा नियोगे ॥ अत्र नियोगः प्रेरणम् । स्वभावाद्यमाङ्पूर्वः । आज्ञापयति । मारणादौ ज्ञपयति इति गतम् । बोधने तु ज्ञपयति विज्ञापयतात्युभयम् । इदं च घटादौ 'ज्ञपमिञ्चे' त्यत्र चापपादितम् । शिन जानातीति ॥ १८७ ॥

भज विश्राणने ॥ भाजयति । भाज एवकर्मणीति वक्ष्यमाणस्य भाजयति । भञ्जयतीति भायार्थे ऽयम् । भजनि, भजनदति शपि सेवायाम्, भनक्तीत्यामर्दने शनमि ॥ १८८ ॥

श्रु प्रसहने ॥ शर्धयति । अशशर्धन् । अशश्रुधन् । उदित्त्वा-च्छर्धतीत्यत्रापि भवति । श्रधित्त्वा । श्रुता । शर्धनदति शपि, शब्द-कुत्साया तुदादिः, उन्दने हि शपि शर्धनीति च ॥ १८९ ॥

यत् निरकारोपस्कारयोरिति मैत्रेयः ॥ क्रियानिघण्टौ तु 'यत्रै प्रै निराकारे पातयेदप्युपमृत्तौ' इति । तीरस्वीमी तु निराकारोपसंस्कार-योरिति तु पाठो दृश्यते निराकार परिभव इति चाह । यातयति । निसश्च धान्यधनयोः प्रतिस्तदर्थत्वे सतीत्यर्थेदृयमाह । एव च भुवो विकल्कमदति पाठस्य मवादत्वेनोक्तमवकल्पयतीति धनपालोदाहरणं भुवो ऽवकल्पनदति पाठेषुपपन्नम् ॥ २०० ॥

रक् लग आस्वादने ॥ राकयति । लागयति । रक्ष लग इत्येक इति मैत्रेयः । राघयति । लागयति । अपरे त्वाद्यमपि रगेति तृतीयान्त पठन्ति । रागयति । लगयतीति शङ्काया सङ्गे च घटादिः ॥ २०१-२०२ ॥

१ प्रतिदाने इति क्रियानिघण्टौ पाठो दृश्यते तस्यार्थः । यत्राद्यर्थेषु चतुर्षु यत्पातुं पातयेत् प्रयुज्जान्त, निस परभागे सेत् प्रयुज्जने तदायं धान्यधनयोः प्रति-दाने वर्ततइति, श्रु निर्दिशति । प्रतिददातीत्यर्थः ।

अञ्चु विशेषणे ॥ विशेषणं व्यावर्तनम् । उदित्त्वाट्टिभाषितो
णिच् । अञ्चयति । अञ्चति । गतिपूजनयोरञ्चतीति भ्वाद्वा, गति
याचनयोरञ्चतइत्यपि ॥ २०३ ॥

लिङि चित्रीकरणे ॥ लिङ्गयति । लिङ्गति । गतौ च शपि लि-
ङ्गति ॥ २०४ ॥

मुद ससर्गे ॥ मोदयति सक्तून् घृतेन । मोदते शपि हर्षणे ॥ २०५ ॥

त्रस धारणे ॥ ग्रहणइति नन्दी । अत्र धारणं वारणमिति मैत्रेयः ।
वारणइत्येव शाकटायनः । त्रासयति मृगान् । त्रसयतीति भाषणे भवि-
ष्यति । त्रस्यति त्रसतीति दिव'दावुद्वेगे ॥ २०६ ॥

उध्रस उञ्छे ॥ क्रैयादिकस्याकार इत् । अस्य तु धातोरावयव इति
काश्यपादिः । मैत्रेयस्तु पूर्वं एवाय धातुरिह पठ्यते, तेनायमुदित्ति ।
अन्ये तूभयत्रापि धात्ववयव उकार इति । ध्रासयतीति मैत्रेयमते । अन्ये-
षामुध्रासयतीति ॥ २०७ ॥

मुच प्रमोचने मोदने च ॥ ऋणं निर्मोचयति । प्रतिददातीत्यर्थः ।
मुञ्चतीति कल्कने शपि, शे तु मुञ्चतीति मोक्षणे ॥ २०८ ॥

वस स्नेहनच्छेदापहरणेषु ॥ ह्योदोपहरणयोरित्येके । वासयति ।
अयं निवासे कथादिर्भूवादिश्च, वस्तइत्याच्छादने । वस्यतीति स्तम्भने ।
वास उपसेवायामिति दीर्घोपधश्च कथादौ ॥ २०९ ॥

चर सशये ॥ चारयति । चरतीति गतौ शपि ॥ २१० ॥

च्यु हसने ॥ सहने चेत्येके, च्यावयति । च्यवते इति गतौ शपि,
च्युसेत्येकइति स्वामो । च्यासयति ॥ २११ ॥

भुवो ऽवकल्कने ॥ अवकल्कनं मिश्रीकरणमिति 'स्वामी । पुरुष-
कारे अवकल्कनं चिन्तनमिति काश्यपः । क्वचित्स्वामियन्ये ऽनुकल्कन-
मिति पठित्वा ऽनुकल्कनं मिश्रीकरणमिति दृश्यते, नन्दी तु भुवो
बिकल्कनइति, विकल्कन विपाचनम् । तथा च प्रयुज्यते । तपोभावित-
मात्मानमिति, अवकल्कनइत्यपरे । तथा च धनपालः, कृपेस्तादर्थ-

इति पठित्वा ऽवकल्पयतीत्युदाजहार । तादर्थ्यं इति भुव इति पूर्वधा-
तोर्योऽर्थस्तदर्थत्वे सतीत्यर्थः । भावयति । भावयतइति प्राप्तौ युजादिः ।
भवतीति शपि ॥ २९२ ॥

कृपेश्च ॥ कल्पयति । सामर्थ्यं शपि कल्पते । क्षीरस्वामी तु
कृपेस्तादर्थ्यं इति पठित्वा तादर्थ्यं प्रस्तुतस्य भुवोऽर्थं मिश्रीकरणे । अथ
वा तच्छब्देन कृपिः परामृश्यते तस्य योऽर्थः सामर्थ्यलक्षण ॥ २९३ ॥

आ स्वदः सकर्मकात् ॥ अत्रान्ये स्वाद इति दीर्घोपध पठन्तो
वक्ष्यमाण स्वद आम्वादने इति धातुमपि दीर्घोपध पठन्ति । आ कु-
स्मादिति वदभिविधायमाकारः । तेन शमिप्रभृतीभ्यः खद आस्वादने-
इति वक्ष्यमाणपर्यन्तेभ्यः सकर्मकेभ्य एव णिञ् भवति । इदं च सक-
र्मकत्ववचन कर्मसापेक्षक्रियामात्रवाचित्वेनाप्रयुज्यमाने ऽपि कर्मण्यय
विधिर्भवति । अत एव हि मैत्रेयः । सभिविकर्मकाणि णिञित्याह ।
उक्तं च पुष्पकारे सभिविकर्मकत्वकथनेन सत्यसति वा कर्मणः प्रयोगे
तत्सभिवमात्रेण णिञ् भवति न तु भवति । कर्मसभवः पुनरनेकार्थ-
त्वेनार्थान्तरवाचिताया ययाप्रयोग दृष्टव्य इति च । कर्मकर्तृवि-
षयेष्वर्थान्तरवृत्तित्वं समानमिति न तस्येह पृथग्विषयत्वेनेहोपादा-
नम् । अत्र केचित्पञ्चमीप्रकरणाभ्यां सन्निहितेन णिच्चा ऽर्थप्राप्तमेव-
कार संवन्धयन्तः सकर्मकाणि जेव भवति अकर्मकात्तु यथायोगमित्याहुः ।
तदसत् । एवकारस्य सकर्मकादिति श्रुतेनान्वयलाभे ऽश्रुतेनान्वयायो-
गात् । अनेन खत्वभिप्रायेण मैत्रेयादयः सकर्मकादेवेत्येव व्याख्यन् ।
अत्र मतान्तरमप्याह मैत्रेयः । आ स्वाद एव सकर्मकादित्येकइति । तथा
च क्षीरस्वामी । आङ्पूर्वात्स्वदेः सकर्मकाणि णिञ् भवतीति । अयं पतः
पुष्पकारे दूषितः । तत्र चाभिविधिपत एव युक्तः प्रत्यवभासते । इहा-
प्याहुः पूर्वापरैष्विवाभिविध्यर्थताया एवौचित्याद्वा कुस्मादिनि हि पूर्वत्रा-
भिविधावाङ् दृष्टः, आ धृषाद्वेत्या गर्वादिति च समनन्तरमेवैव द्रव्ये
तत्रायमपि तन्मध्यपातीतच्छायश्वाङ् तदर्थ एव व्यक्रमवभामते ॥ तदत्र
पदान्तरं व्याचक्षाणानामाशयश्चिन्त्य इति ॥

रुज हिंसायाम् ॥ रोजयति रुजतीति शे भङ्गे ॥ २६४ ॥

ष्वद आस्वादने ॥ स्वा^१द इत्येके । सवरणइति क्षीरस्वामिधन-
पालशाकटायनाः । स्वादयति । असिष्वदत् । 'सः स्विदी'ति सत्त्व
ण्यन्तात्सनि । स्वादते स्वदते इति शपि ॥ आस्वदीयाः ॥ २६५ ॥

आ धृषादृ ॥ धृष प्रसहनइति वक्ष्यमाणसहिता विभाषितणिचो
वेदितव्याः । आकुस्मादितिवदभिविधावाङ् ॥

युज पृच संयमने ॥ योजयति । पर्वयति । अन्यत्र योजति । पर्व-
ति, योक्ता, अयौक्षीत्, त्यजियुजिरुजीत्यनिट्कारिकापाठादनिट्कः । पर्वि-
ता । अपर्वीत् । युनक्ति युङ्क्ते योगार्थे श्रमि, श्यनि युज्यतइति समाधौ,
पृणक्ति संपर्के श्रमि, पृक्ते इति लुकि ॥ २६७ ॥

अर्च पूजायाम् ॥ अर्चयति । अर्चतीति भौवादिकेन स्वरितेता ऽर्चि-
नैव सिद्धे णिञ्चिकल्पनं कर्तृगामिफले अर्चतीति यथा स्यादिति । शाक-
टायनस्त्वयमात्मनेपदीति तन्मते णिञ्चिकल्पस्य फलमकर्त्रभिप्राये ऽपि
तड्सिद्धिरिति बोद्धव्यम् ॥ २६८ ॥

ग्रह मर्षणे ॥ साहयति । सहति सहतइति शण्यनुदात्तेत् । अस्येह
पाठो वृत्तिकारादीनामनभिमत इति दिवादावेवावोचाम् ॥ २६९ ॥

ईर क्षेपे ॥ ईरयति, ईरति, लुकीर्ते गतिकम्पनयोः ॥ २७० ॥

ली द्रवीकरणे ॥ लाययति लयति । लेता । श्विडीडिबर्णेण्य
शीड्श्रिजावशीत्येते एवेवर्णान्तेषु सेट इति नियमाच्चेट । 'विभाषा लीय-
ते'रित्यात्वविकल्पमस्यापीच्छन्मन्त्रेयो 'लीलीनुंलुका'वित्यात्वपक्षे लुको
विकल्पनान्नुक्तं चोदाजहार, अनात्वे तु लुक्, तदभावे वृद्धायौ च । तदयु-
क्तम् । आत्वे लीनातिलीयत्योर्यका निर्देश इति भाष्ये उक्तत्वादस्या-
त्वाभावात् । पुरुषकारेषु देवेनास्यात्वे लुगादि प्रदर्शनं मैत्रेयविसृम्भा-

१ ह्रस्वोपधपाठेऽप्युपधावृत्त्या स्वादयतीति रूपाणां 'सः स्विदिस्वदी'ति स्यन्ता
त्सनि सत्वमिति वक्ष्यमाणत्वान्सन्नन्तेऽपि सिस्वादयिषतीति रूपस्य च तुल्यत्वेऽपि
असिस्वदइति रूपसिद्धिः प्रयोजनं दोषोपधस्यापेक्षेयत्वाद्भाष्येणः परस्य सत्व
षत्व नेति ।

दयुक्तं चेदं भाष्यविरोधित्वादिति । श्लेषणे ग्यनि लीयते । लिनानीनि
रिन ॥ २९१ ॥

वृज्जी वर्जने ॥ वर्जयति । वर्जिता । वर्जित्व निष्ठायामनिङ्ये,
वृक्तइति वृक्ते वृणक्तीति लुक्शनमोः ॥ २९२ ॥

वृञ् आवरणे ॥ वारयति । वरनि, वरने । वरिता, वरीता, इटो
दीर्घविकल्पः । आत्मनेपदेषु लिङ्मिचोः सनि च 'लिङ्मिचोरात्मने-
पदेषु' 'इट् सनि च' तीद्विकल्पः । लिङि परस्मैपदपरे मिचि च 'न लिङि'
'सिचि च परस्मैपदेष्वि' तीटो दीर्घाभावश्च वृञ्चक्षयः । त्रित्वाद्बुभ
यपदित्वम् । वृणोति वृणुतइति श्नौ । वृणीते इति मभक्तौ रिन ॥ २९३ ॥

जृ वयोहानौ ॥ जारयति । जरति । जरिता । जरीता । 'वृनो
वे'त्यादि । जीर्यते जृणानिवन् । जि इति नन्दी । जाययति जयति ।
जैयादिकोष्येति सः, जिजाति ॥ २९४ ॥

रिच वियोजनमपर्चनयोः ॥ रेचयति । रेचति । रेका । अनिट्का-
रिकापाठादनिट्त्वम् । विरेचने रिङ्के, रिणक्तीति श्नमि ॥ २९५ ॥

शिष असर्वापयोगे ॥ शेषयति । शेषति । शेषा । शिषिष्मिषिमिच्य-
निट्कारिकामु पाठादनिट्त्वम् । अन एव लुङ्प्रशितइति क्तो भवति ।
लुङ्प्रहोभावाद्रशैपीति द्वेन यदुक्तं तदप्यानिट्त्वादपुनर्मिति पुरुषका-
रणेन दूषितम् । शिनट्तीति विशेषणे श्नमि । विपूर्वातिगये । विशेषयति ।
विशेषति ॥ २९६ ॥

तप दाहे ॥ तापयति । तप्ता । तपि तिषिमितिषचनादनिट्त्वम् ।
तपतीति शपि सन्तापे । तपते तपनीत्यैश्वर्ये ॥ २९७ ॥

तृप तृप्तौ ॥ सदीपनइति दीगस्वामी । तपयति । तर्पति ।
तर्पिता । अनिट्कारिकायां तृप्यतीति ग्यना निर्देशात्ताम्यानिट्त्वम् ।
तृपति तृप्यतीति शे । तृप्यतीति ग्यनि । अस्य स्यादौ पाठो रुनिक्कारा-
दीनामनभिमत इत्यवोचाम ॥ २९८ ॥

कृदी सदीपने ॥ कर्दयति ॥ कर्दति । कर्दिता । कर्दिष्यति । मे
सिचिती 'इविकल्पः' कृनादिमाहवर्षाद्वाधादिकल्प्य अन एवायं निष्ठा-

यामनिड्यमीदित्पठति । कृण्वः, कृण्वानिति । कृन्ते कृण्वतीति दीप्ति
देवनयोः शनमि । धनपालशाकटायनौ तु कृदेत्यनिदित पठतुः । तत्र
निष्ठायां कृदितमिति फले भेदः । क्षीरस्वामिनस्तु पान्तो ऽय, यदाहुः,
चृप कृप तृप दृप सदीपने । संदीपनक्रियाया चृपादयश्चत्वारो वर्त-
न्तइति । वर्पयति । कर्पयति । तर्पयति । दर्पयति ॥ २७९ ॥

दृभी भये ॥ दर्भयति । दर्भिता । दृब्धः । ईदित्त्वादिनिट्-
त्वम् ॥ २८० ॥

दृभ सन्दर्भे ॥ अस्यानीदित्त्वाचिष्टायामपि सेट्त्वं विशेषः ।
अमुं बहवो न पठन्तीति पुरुषकारे । अस्माभिस्तु देवमैत्रेयानुमारेण
पठितः । तुदादेरीदितो ग्रन्थेन दृभतीति ॥ २८१ ॥

अथ मोक्षणे ॥ हिंसायामित्यपरइति पुरुषकारे । आशयति अश-
ति । आशयतीति प्रयत्ने ऽपि गतः । अशयतीति कयादौ दौर्बल्ये ॥ २८२ ॥

मी गतौ ॥ माययति । मयति । मेता । श्विडीङिउर्णेष्वय शीङ्-
श्रिजावपीति नियमाच्चेडागमः । 'सनि मीमे' त्यत्राचौरादिकैः साहचर्या-
त्तादृश एव गृह्यतइति मिमीषतीत्यत्राशमिस्भावो न भवति । मीओ
मिनाति मीनीते हिंसायाम् । मीयते ङितः, मिनाति मिनुते स्वादौ
ह्रस्वान्तस्य ॥ २८३ ॥

ग्रन्थ बन्धने ॥ ग्रन्थयति । ग्रन्थति । अत्र देवमैत्रेयौ क्रथ हिंसा-
यामिति स्वरितेन पठित्वा क्राथयति । क्रथति । क्रथतइत्याहुः । शाक-
टायनस्तु परस्मैपदीति, जासिनीत्यत्र क्राथेति निपातनादृष्टिरित्युक्तत्वा-
दृत्तिकारादीनामनभिमतश्चुरादौ पाठ इति घटादौ क्रथतीत्यत्रावो
चाम ॥ २८४ ॥

शीक मर्षणे ॥ शीकयति । शीकति, शीकिता । सेचने शपि
शीकते ॥ २८५ ॥

चीक च ॥ चीकयति । चीकति । चीकिता ॥ २८६ ॥

अर्द्ध हिंसायाम् ॥ अर्द्धयति । अर्द्धति । अर्द्धते । अयं स्वरितेदिति देव-
मैत्रेयौ । आत्मनेपदीति शाकटायनः । गतिपाचनयोरर्द्धतीति शपि ॥ २८७ ॥

हिंसि हिमायाम् ॥ हिंसयति । हिंसति । इति ल्यादेव लिङ्गि-
कल्पः सिट् इति युञ्जादिपाठे प्रयोजनं चिन्त्यम् । हिंसन्तीति शनमि ॥ २८८ ॥

आङ्ः षट्ः पञ्चर्थे ॥ पञ्चर्थो गतिः । आमादयति । आमादनीति
शपि मीदादेशः । आसना । आमात्मीत् । 'गटि मटि म्विद्वानि-
पञ्चतिम्विद्वतीन्' इत्यनिट्कारिकायां पाठादनिट्त्वं, विमरणार्थकस्य
ज्वलादिकस्य तौदादिकस्य च न्दिन्वद्द् । आमादद् इति ॥ २८९ ॥

गुन्थ शौचकर्मणि ॥ गुन्थयति । गुन्थति, गुन्थता । गुन्थनीति
शपि शुद्धावकर्मकः ॥ २९० ॥

'हृद अपवारणे ॥ स्वरिनेदिति मैत्रेयदेवौ ॥ दाम्प्यपीति
शाकटायनः । हृदयति । हृदति । हृदने । हृदयनीत्युत्तने घटादौ ।
हृन्दयतीतीहैव संवरणे गतः ॥ २९१ ॥

जुष परिर्कणे ॥ परिर्कणमूले हिमा दा, परिर्पणे परिर्तुति
क्रियायामिति दीरस्वामी । ज्ञापयति । ज्ञापति । प्रीतिमेव न योज्यते-
इति तुदादौ ॥ २९२ ॥

धृञ् कम्पने ॥ धृनयति । ध्रुयति ध्रुयते । 'धृञ् प्रीतिर्नुव-
क्तव्य' इति नुक् । धृञ् प्रीणारिति हरदत्तकौमारादीनां पाठः । तन्मते
प्रीणातिसाहचर्यात् धृञो ऽपि क्रियादिकस्यैव नुका भाव्यम् । अतः
एवात्र मैत्रेयो धावयतीत्युदाहरणम् । एवञ्च स्वदेवौ प्रीतिवर्दीनामपि
धावतीति भवति । धुनानि धुनीति इति श्रुत्यादौ । धुनानि धुनुनर्त्तनं
स्यादौ । धुनीति धुनुने इति च तत्रैव विधुनने, धुनन्तीति कुटादिः ॥ २९३ ॥

प्रीञ् तर्पणे ॥ अत्र केचन धानुश्निकान् धृञ् प्रीतिर्नुवक्तव्य
इति पठन्तः प्रीणयतीत्युदाहरन्ति । हरदत्तस्तु धृञ् प्रीणारिति शनानु-
रणाद्वैधादिकस्य नेत्याह । द्वैधादिकस्य न्तेनात्र चैरादिकोऽप्युपलक्ष्यते
इति पुरुषकारे । तन्मते प्राययतीति भाव्यम् । मैत्रेयोऽनेनैवाभिप्रायेण
प्राययतीत्युदाहरणम् ॥ २९४ ॥

अन्य अन्य संदर्भे ॥ अन्ययति । अन्ययति । अन्यति अन्यति ।

‘शिञ्चिन्न्यग्रन्थीति’वचनात् अन्ययते स्वयमेवेति भवति । अग्राति यद्वातीति शिञ्, अन्यते अन्यतइति शैथिल्यकौटिल्ययोः शपि ॥ २९६ ॥

आप्तु लम्भने ॥ आपयति । लुदित्वाद्वापत् । आप्ता । ‘तपिंतिपि’ मिति कारिकापाठादनिट्त्वम् । मैत्रेयेणापयनइत्यात्मनेपदमपि दर्शितम् । अन्ये तु नैतन्मृष्यन्ति ॥ २९७ ॥

तनु श्रुटोपकरणयोः ॥ उपसर्गाच्च दैर्घ्यं । तानयति । वितानयति । तनति, वितनति, तनुतइति विस्तारे । अत्र क्वचित् चन श्रुटोपहंसनयोरिति पठ्यते । चानयति । चनति, चनयतीति घटादौ ॥ २९८ ॥

वद सन्देशवचने ॥ स्वरितेत्, शाकटायनस्य त्वात्मनेपदी । वादयति, वदति, वदते । व्यक्तवाचि शपि वदति ॥ २९९ ॥

वच परिभाषणे ॥ वाचयति । वचति । वक्ता । अवाक्षीत् । अङ्गविधौ वक्तीति लुभिकरणस्य निर्देशान्नास्य ग्रहः । ‘पचिं वचि’मिति पाठादनिट्त्वम् । पारायणे ऽयं नाधीयते ॥ ३०० ॥

मान पूजायाम् ॥ मानयति । मानति । मानिता । ‘मान्वधेत्यत्र नह्येतेभ्यः प्राक् सन आत्मनेपदं नापि परस्मैपदं पश्याम इति भाष्यभौवादिकस्य विचारणार्थस्यैव नित्यसनन्तत्वं प्रतिपादयतीत्यस्माल्लङाद्युत्पत्तिः । स्तम्भे मानयतइत्याकुस्मीयः । मन्यते मनुते इति दिवादौ तनादौ च ॥ ३०१ ॥

भू प्राप्तौ आत्मनेपदी वा ॥ अय प्राप्तौ वा शिञ्मुत्पादयति आत्मनेपदि चेत्यर्थः । अत्र केविदात्मनेपद शिञ्सन्निधौ नैव तेना न्यदा नेति । मैत्रेयस्त्वाकुस्मीयप्रकरणे भूप्राप्तौ वेति लघुनैव न्यासेन शिञ्चात्मनेपदे वाग्रहणाणिचो विकल्पे च सिद्धे पुनरिह पठित्त्वात्मने-

१ गुणतिज्जितमाना अनुदात्ततः । गुणादिष्वनुबन्धकरणं किमर्थम् । गुणादिष्वनुबन्धकरणमात्मनेपदार्थम् । गुणादिष्वनुबन्धा क्रियन्ते आत्मनेपद यथा स्यात् । अथ क्रियमाणेष्वनुबन्धेषु आत्मनेपदं न प्राप्नोति किं कारणम् । सना व्यवहितत्वात् । ‘पूर्ववत्सन’ इत्येव भविष्यति । ‘पूर्ववत्सन’, इत्युच्यते, न चैतेभ्यः प्राक् सन आत्मनेपदं नापि परस्मैपदं पश्याम इति ‘गुणतिज्जितद्वय’ इति सूत्रे भाष्ये न तु मान्वधेत्यत्र भाष्ये उपलभ्यते ।

पदीति वचनाण्यजभावे आत्मनेपदमित्याह । इदम्यस्यकारे दृष्टिनम् ।
 आकुस्मीयकाण्डे भू प्राप्नौ वेति पठ्यमाने अनन्तरप्रकृतस्यात्मनेपदीनिव-
 चनस्य विकल्पः स्याच्च पुनरप्रकृतस्य णिव इति एवभावे परस्मैपदमुदाह-
 रन्तौ धनपालशाकटायनावप्यत्रैवानुकूलमिति चेन्नम् । तथा भूमृजे
 सुधाकरोऽपि भवत इति प्रस्तुत्य आत्मनेपद मैत्रेयान्तेन कारणेन समर्थं
 नाण्यन्तस्त्रियोगेनात्मनेपदित्वादमाधनम्, अन एव सुराग्रमभवदित्यादि
 प्रयुज्यतइत्याह । अन्ये तु पुराणव्याकरणेषु भुवो णिङिति सूत्रस्य णिङो
 ङकारः प्रत्ययान्तादात्मनेपदार्थः, प्रकृते तु केवनादिति श्रीभट्टादिभि-
 र्व्याख्यानात्तन्त्रान्तरवचनान्तेधेन सचियोगन्यायो बाध्यमिति, तथा च
 'वर्षाभ्यश्चे'त्यत्र कैयटेन वर्षामु भवति वर्षामु भवतइत्यात्मनेपद दर्शि-
 तम्, भावयते, । भवते । भविता ॥ ३०२ ॥

गर्ह निन्दायाम् ॥ गर्हयति । गर्हति । गर्हनइति शपि ॥ ३०३ ॥

मार्ग अन्वेषणे ॥ मार्गयति । मार्गिता मार्गाण इति चानशि ।

मृगयतइति कथादौ ॥ ३०४ ॥

कटि शोके ॥ कण्टयति । कण्टति । कण्टिना । कण्टनइति
 शपि । वठतीति तु कृच्छ्रजीवने । कटिः प्रायेण नृर्व उन्कण्टा-
 याम् ॥ ३०५ ॥

मृजु शौचालङ्कारयोः ॥ मार्जयति । मार्जति । मार्जिता । मार्जुः ।
 ऊदित्वादिद्विकल्पः । निष्ठाया, मृष्टः । इत्यादि मार्ष्टुवत् । मार्जय-
 ति शब्दे गतः ॥ ३०६ ॥

मृष तितित्तायाम् ॥ पुरुषकारेण्ये स्वरितेदित्युक्त्वा शाकटायनो
 यमात्मनेपदीन्युक्तम् मर्षयति मर्षति । मर्षते । मृष्यति मृष्यतइति
 दिवादौ सेचने । शपि मर्षति ॥ ३०८ ॥

धृष प्रसक्तने ॥ आदित् शाकटायनस्य, धर्षयति, धर्षिना, धृषिता ।
 शाकटायनस्य तु धृष्टः । धृष्णानीनि शनौ आधृषायः । पपु पश

बन्धनइति केचित्पठन्ति, तदुक्तं मैत्रेयेण, पञ्च बन्धनइति युजादा-
विति ॥ ३०८ ॥

कथं वाक्यप्रबन्धे ॥ कथयति । एतदादयो ऽदन्ताः । तत्फलञ्च
कथयतीत्यादौ अल्लोपस्य स्यानिवद्ववाद्यथायोग वृद्धिगुणयोरभावः ।
तथाऽचकथदित्यत्र 'सन्वल्लधुनी' त्यस्य 'दीर्घा लघो' रिति दीर्घस्य
चानल्लोपइति निषेधः । अन्यदपि प्रयोजनं तत्रतत्र वक्ष्यते ॥ ३०९ ॥

वर ईप्सायाम् ॥ वरयति । वारयतीति वृतः ॥ ३१० ॥

गण सख्याने ॥ गणयति । अजीगणत्, अजगणत् । 'ई च गण' इति
शौ चडि ईत्वात्वे । इह सख्याने नाम सख्यानिमित्तं ज्ञानविशेषो भागशो
वस्थापनं च, तत्राद्योर्थः कर्तृस्थो भाव इति न कर्मकर्ता ऽस्ति, तत्र
इतरत्र कर्मस्यभावकत्वाद्गणयते गणः स्वयमेवेति भवति, भागशोऽवस्था-
प्यमानो गणस्तत्रानूक्तत्वात्स्वयमेव भागशो ऽवतिष्ठतइत्यर्थः । अव-
स्थानं हि कर्मस्थो भावः । यक्चिणौ तु णिश्चान्ययन्धीति न भवतः । एवं
च 'हेरणा' वित्यत्र गणयति गणः स्वयमेवेति वृत्तिस्थस्य गणयते गणः
स्वयमेवेति भाष्यस्थस्य चोदाहरणस्य विरोधोपि न भवति । गणिका ।
एबुलि' प्रत्ययस्यादि'तीत्वम् । गणिकानां समूहो गाणिक्यम् । 'गणिका
याश्चेति वक्तव्य' मिति यञ् ॥ ३११ ॥

शठ श्वठ सम्यगवभाषणे ॥ अभ्राषणइति केचित् । शठयति
श्वठयति । शाठयति श्वाठयतीति गत्यादौ गत, शाठयतइति श्ला-
घायामाकुस्सीयः । शठतीति कैतवादौ शपि ॥ ३१३ ॥

पठ वट ग्रन्थे ॥ वट वेष्टनइति क्षीरस्वामी । पठयति । पाठ-
यतीति भाषार्थं गतः । पठतीति गतौ शपि । वेष्टने शपि वटति,
तस्य कारिते वाटयति । वटयतीति परिभाषणे घटादि, औष्ठ्यादिं बहवः
पठन्तीति तत्रैवोक्तम् ॥ ३१५ ॥

रह त्यागे ॥ रहयति । अररहत् । रहतीति शपि । गतौ तु
रंहति ॥ ३१६ ॥

रच प्रतियत्ने ॥ रचयति ॥ ३२२ ॥

कल गतौ संख्याने च ॥ कलयति । कालयतीति क्षेपे गतम् ।
कलतीति शपि ॥ ३२३ ॥

चह परिकल्कने ॥ परिकल्कन दम्भः । चहयति । मित्प्रकरणे
इह च पाठस्य तत्रैव प्रयोजनमुक्तम् । चहतीति शपि ॥ ३२४ ॥

मह पूजायाम् ॥ महयति । महतीति शपि महि वृद्धावित्य-
स्य । महतइति क्षीरस्वामी, तन्मतेन महि भाषितार्था ऽत्रैव दण्डके
गतः ॥ ३२५ ॥

सार कृप अथ दौर्बल्ये ॥ सारयति । कृपयति । कल्पयतीति
कृपेस्तादर्थ्यइत्यस्य गतम्, कल्पतइति कृपेः शपि । अथयति । आथय-
तीति प्रयत्ने गतः, मोक्षणे आथयति, अथतीत्याधृषीयः ॥ ३२८ ॥

स्पृह ईप्सायाम् ॥ पुष्पेभ्यः स्पृहयति । 'स्पृहेरीप्सित' इति ईप्सि-
तस्य संप्रदानत्त्वम् । स्पृहयालुः । 'स्पृहिशृही' त्यादिनालुच् ॥ ३२९ ॥

भाम क्लेशे ॥ भामयति । भामतइति शपि ॥ ३३० ॥

सूच पैगुन्यै ॥ सूचयति । अजन्तलक्षणस्यैकाज्जिषयत्त्वादपोपदे-
शत्त्वात् सोमूच्यतइत्यादौ न षत्व, 'सूचिसूत्री' त्यादिना यङ् ॥ ३३१ ॥

खेट भक्षण्ये ॥ वृतीयान्त इति दुर्गः । खेटयति ॥ आखेटुना ।
खोट इत्येके । खोटयतीति मैत्रेयः । खेटतीत्यपि शपि ॥ ३३२ ॥

क्षोट क्षेपे ॥ क्षोटयति ॥ ३३३ ॥

गोम उपलेपने ॥ गोमयति ॥ ३३४ ॥

कुमार क्रीडायाम् ॥ कुमारयति ॥ ३३५ ॥

शील उपधारणे ॥ उपधारणमभ्यासः । शीलयति । शीलितः ।
'मतिबुद्धी' त्यत्र चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् वर्तमाने क्तः । समाधौ
शीलतीति शपि ॥ ३३६ ॥

साम सान्त्वप्रयोगे ॥ सामयति । साम सान्त्वनइति यठितस्येह
पाठो ऽभ्योपित्त्वादससामदिति सिद्धये ॥ ३३७ ॥

वेन कानोपयेते ॥ वेनयति । वेना । कान इत्यपि धातुरिति
आत्रेयः । कानयति । वेनयतीति शपि वनने ॥ ३३८ ॥

पत्न्यल लघनपत्रयो ॥ पत्न्यनयति । पत्न्यनन गे'धनद्रव्यमिति
नास्य पत्न्यनवामः, पत्न्यनयेदुरित्यत्र भाष्ये ॥ ३३९ ॥

घात मुग्धमेवने' ॥ गतिमुग्धमेवने'खित्येके । घातयति ॥ ३४० ॥

गत्रेय मार्गणे ॥ गत्रेययति ॥ ३४१ ॥

वाम उपमेवयाम् ॥ वामयति । वामना । युत् मेवनादौ वाम
यतीति गतम् । वामतीति वम निवामइत्यस्य शपि । अथ कथ'दावयतीति
द्वैवपुरुषकारयोः । 'धस्त'न्या'च्छादने शब्दनुक्ति वन्यतीति स्तम्भने
शयति ॥ ३४२ ॥

निवाम आच्छादने ॥ निवामयति । अत्र केचित्पितृव पुत्रं दमये
ववोभिरित्यत्र तुरे पिनेव पु दमये निवामयामि स्तुतिभिरिति आ-
ख्यातादृम निवमानइति पठन्ति । भट्टभास्करेण त्व'कुर्म'येषु दस
दसि दमनदर्शनयोरिति पठित्वा धातुनामनेकार्थेन्येन ववोभिः स्तुतिभिः
सहूहामि, यथा पिता दुग्धल पुत्र स्तुतिपदैरिति आख्यातम् । तस्मा
त्तुरेण्याकुर्मीय एव निवमानार्थः कथित इति वक्तुं शक्यन्त्य'वैनावन'
कथादौ धात्वन्तरत्वं शक्यते कल्पयितुम् ॥ ३४३ ॥

भाज पृथक्कर्मणि ॥ विभाजयति ॥ ३४४ ॥

सभाज प्रीतिदर्शनयोः । प्रीतिमेवनेयोरित्यन्ये । सभाजयति ॥ ३४५ ॥

ऊन परिहाणे ॥ ऊनयति । माभवानुनिनन् । माषेणानः माषोनः ।

'पूर्वमदृशमोनार्थे'ति तृतीयासमासः ॥ ३४६ ॥

ध्वन शब्दे ॥ ध्वनयति । ध्वनतीति शपि ॥ ३४७ ॥

कूट परीतापे ॥ परिदाहइत्यन्ये । कूटयति । कूटयतीत्यप्रसादे
आकुर्मीयः । अर्थभेदाः पाठभेदाश्च तत्रैव दर्शिताः ॥ ३४८ ॥

सङ्केत वाम कुण गुण वामन्त्रणे । वजारेण कूट इत्यपेक्षनइति मैत्रे-
यः । कूटयति । सङ्केतयति । वामयति । कुणतीति शब्दोपकरणप्रशने । गुण-

यति । अपरे तु पठन्ति ।-केत आवणे निमन्त्रणे च । केतयति निकेत
यति । कुण गुण चामन्त्रणे । चकारात्केत चेति, कूण सकोचनइति वा तत्र
पठन्ति ॥ ३५२ ॥

स्तेन चौर्ये ॥ अनेकाच्त्वादपोपदेशत्वम् । स्तेनयति अतिस्तेनत् ।
स्तेनः, स्तेयम् । 'स्तेनाद्यचलोपश्चे'ति भावकर्मणोर्यचलोपौ । स्तेन्यम्,
स्तेनादिति योगविभागात् ष्यञ् ॥ ३५३ ॥

आ गर्वादात्मनेपदिनः ॥ इतः परे गर्व माने इति वक्ष्यमाण-
र्यन्ता आत्मनेपदिनः ॥

पद गतौ ॥ पदयते । अपपदत । पदयतइति श्यनि ॥ ३५४ ॥

गृह ग्रहणे ॥ गृहयते । गृहयातुः । 'स्पृहिशृही'त्यादिना आनु-
च् । गर्हतइति गृहेर्गर्हश्च शपि, तत्रान्त्यः कुत्सार्थः । गृह्णाति
गृहीतइत्युपादानार्थस्य प्रसारिणः ऋयादेः । गर्हतीति गर्हणार्थस्य
निन्दार्थस्य ॥ ३५५ ॥

मृग अन्वेषणे ॥ मृगयते । मृगयतीति कण्ठ्यादिपाठादिति मैत्रेयः ।
मार्गयति मार्गतीति मार्गणार्थस्य ॥ ३५६ ॥

कुह विस्मापने ॥ कुहयते । कुहना । कुहः । बाहुलकादूकारप्र-
त्यये कुहूशब्दमाह मैत्रेयः ॥ ३५७ ॥

शूर वीर विक्रान्तौ ॥ शूरयते । वीरयते । शूरयतइतिहिंसास्तम्भ-
नयोः श्यनि ॥ ३५८ ॥

स्यूल परिवृहणे ॥ स्यूलयते । अस्यूलयत । स्यूलः । स्पृष्टः, स्पृ-
यान् । 'स्यूलदूरे'त्यादिना यणादि लुप्यते पूर्वस्य च गुणः । पृष्ठादिष्व
पाठादिमनिजस्य नास्तीति नोदाहृतम् । स्यावयति । याविष्टवदिति
यणादिलोपो गुणश्च ॥ ३५९ ॥

अर्थ उपयाज्यायाम् ॥ अर्थयते । अर्थयिता । अर्थयिष्यते । प्रार्थयन्ति
शयनेत्यतः प्रिया इत्यादि कृदन्तात्करोतीति णिच् नेयम् ॥ ३६० ॥

सन्न सन्तानक्रियायाम् ॥ सन्नयते ॥ ३६० ॥

गर्व माने ॥ गर्वयते । आगर्वायाः । गर्वतीति शपि ॥ ३६१ ॥

मूत्र वेष्टने ॥ अन्ये तु विमोचनदनि पटन्तो विमोचन मोचनाभाव
इति, यन्यनमित्यपरे । मूत्रयति । मोमूत्र्यने । 'मूत्रिमूर्त्रा'ति यद् ॥ ३६२ ॥

मूत्र प्रश्रवणे ॥ मूत्रयति । मोमूत्र्यने, प्रश्रवयद् ॥ ३६३ ॥

रुद्ध पारुष्ये ॥ रुद्धयति । रुद्धनीति शपि ॥ ३६४ ॥

पार तीर कर्मसमाप्तौ ॥ पारयति । तीरयति ॥ ३६६ ॥

पुट संसर्गे ॥ पुटयति । पे'टयनीति भाषायां दण्डके गनः ।
पुटतीति संश्लेषे तुदादिः ॥ ३६७ ॥

कत्र शैथिल्ये ॥ कत्रयति । कत्रिः । इन्प्रत्ययः, कात्रेयकम् । 'कत्र्या-
दिभ्यो ठकाज'ति शैथिको ठकज् । कुस्मिताख्यः कचय इति वा कत्रि-
शब्दव्युत्पत्तिः । 'कद्वावे त्रावुपमय्यान'मिति कुशब्दस्य कद्वावः । अत्र
दुर्गः कर्तृत्यपि पठति । कर्तयति ॥ ३६८ ॥

“प्रातिपदिकाट्टात्वर्थे बहुलमिष्टवच्च” ॥ प्रातिपदिकाट्टात्वर्थे
णिच्, तस्मिंश्चेष्टनीव कार्यं भवति । इदं च 'तत्करोति तदाचष्टे, तं
नातिक्रामतीनां वक्ष्यमाणत्वात् तद्विषयम् । पटुमाचष्टे पटयति । लघु
माचष्टे लघयति । अपीपठत्, अलीनघन, । अत्र परत्वादुद्देशे 'णाचिष्टव
दि'ति ठिनोप इत्यभ्युपगम्येति 'मन्वदि नीत्वम् 'दाघो लघो' रिति
दीर्घश्च भवति । अत्र केचिन्नालोपात्यत्रागिनिप्रत्याहारवहणनामय्या
दृष्टेः प्रागेव ठिलोप इत्यभ्युपगम्येति दीर्घश्च नेच्छन्ति । अपपठत् ।
अललघयति । तदसत् । 'हलिकत्योरदन्तत्वनिपातन मन्वद्वा'इति
बोधार्थे'मिति वार्तिकविरोधान् । यदि हि वृद्धे, प्राक् ठिलोपः स्याद्
अभ्युपगम्येति किमदन्तत्वनिपातनकृतेन । प्रत्याहारवहणाय तु
प्रयोजनं स्वाभिनमाख्यत् अमस्वामन्, गोमिनमाख्यन् अनुगोमन्, । वीर-
धमाख्यत्, अविवीरन्, प्रावृषमाख्यत् अपप्रावन् । यादृशमाख्यन् अगपा-
दद् इति स्यात् । येषामिष्टाहरणेनभिधानात् णिच् नोति मन नेषामपि स-
खिणमाख्यद् इत्यादौ 'विन्मनोर्लुगि' तीष्टवद्भावेन विनो लुक् इत्यादौ
भावः प्रयोजनमेवामसज्जदिति । अत्र बहुलपहणात् सज्जयनीत्यत्र वृद्धिः

भवति, तथा कुमारीमाचष्टे कुमारयतीत्यत्राप्रतिपदिकत्वेऽपि णिजिति के-
चित् । अन्ये तु 'प्रकृत्यैकाजि'ति प्रकृतिभावादेव स्रजयतीत्यत्र वृद्धिर्न
भविष्यति । तथा यथाकथञ्चिन्प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया
द्याप्प्रातिपदिकादिति सूत्रे भाष्ये स्थापनात् कुमारयतीत्यादौ णिजपि
सिद्ध इति बहुलग्रहणं विकल्पमात्रफलमाहुः ॥

“तत्करोति तदाचष्टे” ॥ तदिति द्वितीयान्तोपलक्षणम् । तत्करो-
त्याचष्टइत्यत्र धात्वर्थमात्र णिजर्थो न कर्तापि, तथा चैवोदाहृतम् ॥

“तेनातिक्लामति” ॥ अत्रापि तेनेति तृतीयान्तोपलक्षणम् । अश्वे-
नातिक्लामति अश्वयति । हस्तिनातिक्लामति हस्तयति ॥

“धातुरूपञ्च” ॥ णिच्प्रकृतिर्धातुरूपं प्रतिपद्यते । अनेनाख्या-
नात्कृतस्तदाचष्टे क्लृप्त्वा प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकमित्येतत्सू-
च्यते । कंसवधमाचष्टे कंसं घातयतीत्युदाहरणम् ॥

“कर्तृकरणाद्वात्वर्थे” ॥ अत्र कर्तृग्रहणं करणस्य विशेषणम् । कर्तुः
करणाद्वात्वर्थे णिजिति सूत्रार्थः । करिभिरवबध्नाति अवकरयति ।
असिना हन्ति असयति । परशुना छिनत्ति परशयति । दात्रेण लुनाति
दात्रयति । अत्र कर्त्ता करणस्य विशेषणं करणशब्दवाच्यत्वेन लोकप्र-
सिद्धानां चतुरादीन्द्रियाणां परिग्रहो माभूद् इति ॥

बष्क दर्शने ॥ बष्कयति ॥ ३६९ ॥

चित्र चित्रकरणे ॥ चित्रयति । चित्रकरणमालेख्यकरणमित्या-
त्रेयः । चित्र आलेख्यकरणइत्येव दुर्गः ॥ ३७० ॥

“कदाचिद्दर्शने” ॥ चित्र इत्ययं कदाचिद्दर्शनेऽदुतदर्शने णिच्मु-
त्यादयति । चित्रयति । चित्रीयतइति चित्रप्रातिपदिकादाश्चर्य्यवृत्तेर्न-
मोवरिवश्चित्रडः क्यजि'ति क्यचि, तत्र हि चित्रङ् आश्चर्य्य इत्युच्यते,
प्रातिपदिकस्य डित्वमवयवे ऽकृतं लिङ्गं समुदायस्य विशेषकमिति न्या-
यात् प्रत्ययान्तात्तडर्थम् ॥ ३७१ ॥

अंस समाघाते ॥ अंसयति । अंसः ॥ ३७२ ॥

वट विभाजने ॥ वटयति ॥ ३५३ ॥ *

लज प्रकाशे ॥ लजयति । अत्र मैत्रेयः । वटेः पुनः पाटो
ऽर्थभेदात् । वटि लज्जि इत्येके । वगटयति । लज्जयति । अदन्तेषु
पाठबलाददन्तत्वे वृद्धिरित्यपरे । वगटायति । लज्जयति । तथा च
शाकटायनसूत्रम् । 'कथादिपाठिष्कायो लौ पुग्लुग्लुत्व' मिति ।
अस्यार्थः । कथादीनां पाठेस्व लौ पुग् लुग् इत्येनं वागमौ ष्कायोऽ-
न्त्यस्य वत्व क्रमेणेति । एवञ्च शाकटायनमतेन कथादीनां वागमे पुकि
वृद्धौ कथापयतीत्युदाहार्यम् ॥ ३५४ ॥

मिश्र सम्पर्के ॥ मिश्रयति । गुडमिश्रः । पूर्वतद्वृत्ते न्यादिना
तृतीयान्तस्य मिश्रशब्देन तत्पुरुषः ॥ ३५५ ॥

संयाम युद्धे ॥ अयमनुदात्तेत् । तथा च तृतीयादिभ्य इत्यत्र कैयटे ।
संयामयतिरनुदात्तेद् बोद्धव्यं इति । पदमञ्जर्ये च अनुदानेदय संयाम
यतिरिष्यत' इति । तथा च तत्र भाष्यमपि । अमयामयत शूर इति,
संयामशब्दात्करोतीति णिच्चापि मिट्ठाविह संयामस्य पाठः सोपमर्गा
त्सङ्गानात्पुन्ययार्थस्तेनासंयामयत इत्युपमर्गात्पुनर्मह भवति । तथा मया
मयित्वेन्यत्राधीत्येत्यादिवन्त्यत्र न भवति । निमयामयितव्यत्वं ममो
द्वित्वं भवति । अत एव मङ्गानादुत्पन्निवचनादत्यत्र धातुपमर्गमनुदाया-
त्प्रत्यये विहितउपसर्गाः पृथक् क्रियन्ते इति ज्ञायते । तेन परिश्रुत्यैव
त्यत्रादि भवति । अस्यानुदात्तेत्वमपाणिनीयमिति पाठस्य तदर्थेनया न
ज्ञापकत्वभङ्गः ॥ ३५६ ॥

स्तोम श्लाघायाम् ॥ स्तोमयति, स्तोमः । अग्निष्टोमः । 'अग्ने,
स्तुत् स्तोमे' ति षत्वम् ॥ ३५७ ॥

छिद्र कर्णे भेदने ॥ करणभेदनइति गुप्तः । मैत्रेयस्तु छिद्रयति कर्णं-
यतीति कर्णेमपि पृथग्धानुमुक्त्वा कर्णेन भाषयति कर्णवर्तानि व्याचक्ष-
तेत्याह ॥ ३५८ ॥

अन्य दृष्टुपघाते ॥ उपमंहारइत्येके । अन्ययति ॥ ३५९ ॥

दण्ड दण्डनिपातने ॥ अय द्विकर्मक इत्युक्तं नाथतौ । तत्र कर्मणि

ण्डयते । चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वा सचीवरयते । सिद्धशब्दो मङ्ग-
लार्थः ॥

इति पूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वरकम्पराजसुतसंगममहाराजम-
हामन्त्रिणा मायणसुतेन माधवसहोदरेण सायणाचार्येण विरचितायां
माधवीयायां धातुवृत्तौ चुरादयः सम्पूर्णाः ॥

सपूर्णा चेत्यं माधवीया धातुवृत्तिः ॥

शुभं भवतु ॥



॥ श्रीविश्वनाथो विजयते ॥

श्रीःपञ्चपादेभ्यो नमः ।

माधवीयनामधातुवृत्तेर्भूमिका ।

—→ २ ←—

पुरा किल माधवीयधातुनिवृत्तमन्त्रे तत्र वृत्तिनाशम-
त्यन्तमशुद्धमेकं पुष्पाणाम् । तस्य वृत्तिः प्राग्वन्तरे कस्य-
नया ऽक्षरविन्यासे उल्लङ्घनद्वारा तन्मुद्रते मन्त्रे तत्रैव
सस्कृतपाठनाशः शङ्कनाशः । तत्रैव न्यासाभ्युदयचरुः शीघ्र-
वेनिमसाहेमन्तान्तेर्गोत्राजपादभ्येन पुष्पाणि सप्तभिः
पञ्चैर्विरहितमात्रं च तन्मुद्रते । अत्रैव न्यासे तन्मुद्रते ।
एतस्य यन्त्रकृते साधनेति कुतश्चैव तन्निमित्तं स धर्म्यधातु-
वृत्तीतिवृत्तनिर्णये विस्तरेण प्रवक्ष्यामि । अत्रैव विस्त-
नाम (क्रमः १-१००)

यज्ञनारायणायैव प्रक्रियेयं प्रवृत्तिः

तस्या विनोदतः सन्तु धोदुने भाव्यनारायणः ॥

इति, (मन्त्राचार्यैः पृ १२५)

अत्रापि निष्यञ्चोधाप्रक्रियेयं प्रवृत्तिः

यज्ञनारायणायैव बुध्यता भाव्यनारायणः ॥

इति माधवीयधातुवृत्तिम्यग्लेकाभ्यां यज्ञनारायणायैव
निर्धार्यते ।

* अत्र धर्मा यज्ञे यज्ञनारायणं भावमानस्य भावना प्रवृत्तिः,
यज्ञे यज्ञनारायणाचार्यः । जानति यदि मन्त्रार्थं तन्मुद्रते मन्त्रे तत्रैव
पाठति । पृ १२६ ।

अस्याश्च माधवीयधातुवृत्तानां सौचकगद्वादिधातूनां
निरूपणेपि भूयसा नामधातूनामेव व्युत्पादनान्मल्लग्रामन्यायेन
नामधातुवृत्तिरिति व्यपदेशः । इयञ्च माधवीयधातुवृत्तिनिर्माणेन
निर्मितेति

धातुपाठे निविष्टानां धातूनां यः पुरा व्यधात् ।

विवृतिं माधवीयाख्यां भाष्यसहृदयंगमाम् ॥

इत्येतद्व्यश्लोकोक्तोऽवसीयते ।

अस्याञ्च वृत्तौ बहुच परिवृत्तियोग्यान् पाठान् निश्चिन्वन्नपि
पुस्तकान्तरे तानेवावेक्ष्य तथैवावास्थापयम् ॥ तामिमां वृत्तिमतिग्रा-
चीनां व्युत्पित्सुजनाह्लाददायिनीमवलोकयन्तु क्षाम्यन्तु च सौसा-
क्षरविन्यासादिप्रमादजान् दोषान् सफलयन्तु च विद्वदेकसंवेद्यं
मामकीनं परिश्रमं दोषैकदृशोपि गुणैकपत्रपात्रिणो विद्वास इति
भृशमभ्यर्थये ।

भारद्वाजदामोदरशास्त्री ।

इति शम् ।



॥ विश्वनाथो विजयते ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ अथ माधवीया नामधातुवृत्तिः ॥

यस्या रूपप्रभावेन न ख्यातुमपि किं च न ।
शक्यते वस्तु लोकेषु जगत्पथा सरस्वती ॥ १ ॥
धातुपाठे निविष्टानां धातूना यः पुरा व्यधात् ।
विवृति माधवीयाया भाष्यतद्ब्रह्मणाम् ॥ २ ॥
तेन सायणपुराण व्याख्या कापि विरच्यते ।
धातूना प्रत्ययान्ताना गणसूत्रानुगामपि ॥ ३ ॥
तत्र प्रतिपद शिष्टा गणसूत्राना इमे ।
गणस्तत्रापि बहवः किं च सूत्राण्यधीयते ।
आचार्येण पुरा प्रोक्तास्तानां विष्णोःमहम् ॥ ४ ॥
यतावदेव सर्वस्मादर्शये सुमनोजनान् ।
नामस्त भवता सार्यमन्यथा तु न मे रुचिः ॥ ५ ॥

‘कण्डूवादिभ्यो यक्’ । एभ्यो यक् स्वार्थः । एते च धानवः प्रातिपदिकानि च । तत्र धातुत्व यको धातुविहितत्वेन त्विमिन्गुणित्ये धार्येण कित्त्वेनावसीयते । प्रातिपदिकत्व तु कण्डूमादीना केयां चिद्वीर्यान्तराठान् । कण्डूयते इत्यादिरूपं तु ह्रस्वान्तादपि यकि मन्तृपतीत्यादिषु ‘अङ्गत्सार्वधातुक्यो’रिति दीर्घेण भविष्यति । तत्र धात्वधिकारान् धातुभ्यो यक् प्रत्ययः । नन्वेयां प्रातिपदिकत्वमेवास्तु भान्तु दीर्घपाठः प्रत्ययस्य कित्त्वं च । न चाङ्गत्सार्वधातुक्योदीर्घं इति दीर्घविधौ अङ्ग धातुराश्रीयते किं त्वङ्गमात्रमेव । कण्डूरिति च कण्डूयशब्दात्सम्प्रदादिस्थाद्वावे क्वावन्लोपे वलि लोपेन यलोपेन सिद्धं यलोपे ऽल्लोपस्य स्यादिति त्वत्त्वं ‘न पदान्ते’ति निमित्तं, वलि लोपश्च ‘लोपो व्यो’रिति विधेयस्य पश्चाद्विद्वेग्यस्य पूर्वनिर्दिष्टादपकरोपस्यैव

भवति । यद्येवं कण्डूशब्दस्य यगन्तत्वेन धातुत्वादल्लोपस्य पूर्वविधौ
 स्थानिवत्त्वादुषड् स्यात् । नैतदस्ति । सति स्थानिवत्त्वे ऽकारस्य तदन्त
 एव धातुर्नकारान्तः । एवं तर्हि यण् प्राप्नोति । अस्तु, क्तिवाश्रयः क्तोः
 शूढित्यूङ् भविष्यति, न चाल्लोपस्य स्थानिवत्त्वे षकारस्य क्तिपर-
 त्वाभावः, षकारस्यादिष्टादचः पूर्वत्वात् । न च स्थानिवत्त्वेनानादिष्टा-
 दचः पूर्वत्वं, तस्याशास्त्रीयकार्यत्वात् । अत एवादिष्टादचः पूर्वत्वादूढि
 पुनरुषड्भावः । यद्वा 'क्त्वा लुप्तञ्च स्थानिव'दिति अल्लोपस्य स्थानि-
 वत्त्वनिषेधाद्व्यङ्गभावाप्रसङ्गः, यद्येवं कण्डूवाचित्यादावुषड् स्यात्, न
 चैः सुपीति यणः प्रसङ्गः, संयोगपूर्वत्वात् । अस्त्यन्नेवङ्, क्तिपः प्रत्य-
 यलक्षणोनेङ् भविष्यति । एवमपि पुनरुषड् स्यात्, पुनरुषड्वङ्को पर्याये-
 णेति व्यञ्जना न स्यात् । किं च कण्डूरित्यादिवन्मन्तूरिति च स्यात्,
 न च भवतीष्ट मन्तूरित्यादि । अथ धातोः कर्मण इत्यन्तो वायहृण-
 मनुर्त्तते, तेन यगभाष पत्ते उत्पादाद्व्यङ्ग्यपि सिद्धं मन्तूरिति तथापि
 कण्डूरितिवद्दीर्घेपि अल्लोपयलोपयोश्च दुर्धरं मन्तूरित्यादि, तथा यग-
 भाषपत्ते मन्तूरित्यादिवत्कण्डूरिति च स्यात्, सुखादिभ्यश्च यकि तस्या-
 धातुविहितत्वेनानार्द्धधातुकत्वादतो लोपाभावादकृत्सार्वधातुकयोरिति
 दीर्घं सुखायतीत्यादि स्यात्, न चेष्टं, सुख्यतीत्यादेरिष्टत्वात्, इह पाठे
 तु न कदा चन सुखादेरकारान्तता सिध्यति, तस्माद्व्यङ्ग्यासमेवास्तु ।
 नन्वेवमपि प्रातिपदिकेभ्यः कण्डूवै मन्तूरित्यादि यद्यपि सिध्यति
 तथापि धातुभ्यो यकि कण्डूयशब्दात् क्वावल्लोपयलोपयोरजादौ सुषुवङ्
 कण्डूवाचित्यादि प्राप्नोत्येव, तथा मन्तूयादेर्मन्तूरित्यादि, सुख्यादेश्च
 सुगित्यादि हलन्तं, नैष दोषः । यगन्तेभ्यः क्तिबेव नोत्पद्यते । उक्तं
 च भाष्ये नैतेभ्यः क्तिव् दृश्यतइति, न तर्हि इदानीमुषड् भवति कण्डू-
 वाविति, भवति, यदा प्रातिपदिकात्किञ्चिन्तात् व्यजन्ताद्वा क्तिव्यल्लोप-
 यलोपयोः स्वाद्युत्पत्तिः, यद्येवं कण्डूादयः प्रातिपदिकान्येव सन्तु,
 यथान्यासं दीर्घान्ताश्च तथैव भवन्तु, ककारश्च प्रत्यये मासञ्जि, वायहृणं
 चानुवर्तिष्यते, तत्र कण्डूयति मन्तूयतीत्यादयो यकि भवन्ति, कण्डूः

कण्ठौ मन्तुरित्यादयश्च यगभाष्ये प्रातिपदिकान् स्वऋत्पत्नौ, यग-
न्तात्किञ्चभावस्येदानीमेवोक्तत्वात् एव धातुः प्रातिपदिकं च कण्ठगच्छो
भवति, तस्मात्स्वाद्युत्पत्तायुः प्रसज्येत, तथाऽन एव यगन्तात्किञ्चभाषा-
न्मन्वादेर्दोषत्वमुक्त्वादेहंनन्तत्वं न भवति किं कण्ठादीनां धातुत्व-
माश्रित्य तेभ्यः प्रत्ययविधानेन, सत्यमेतदेवं स्यात् । सुष्यतीति न
सिध्येत्, प्रातिपदिकात्प्रत्यये तस्यानाधं धातुस्त्वेनानो लोपाप्रसङ्गात् ।

अघोदाहरणानि । कण्ठूयति । कण्ठूओ अिन्करणस्याशयश्च कृतं
लिङ्गं समुदायस्य विशेषकं भवतीति समुदायस्य अित्वादात्मनेपदं
भवति । एवमनुबन्धान्तरस्यापि समुदायार्थत्वं व्यम् ॥ १ ॥

मन्तु अपराधे ॥ रोषइत्यपरे । मन्तूयति । चन्द्रस्तु जितं पठित्वा
मन्तूयते इति चाह ॥ २ ॥

धत्तु पूजामाधुर्ययोः ॥ धन्तूयति ॥ ३ ॥

असु मनस एतावुपतापे ॥ असूयति । असूयुः । 'मृदादयश्चे'त्युप-
त्ययः । अत्र वर्धमानहरदत्तगणरत्नमहोदधिकारा आश्रयानुसारेणामुशब्द-
मसिति सान्तं पठित्वा असूजिति दीर्घान्तमेकं पठन्तीत्याहुः । तन्ममे
असूयति असूयति असूयते इति भवति ॥ ४ ॥

लेट् लोट् धौत्यं पूर्वभावे स्वप्ने च ॥ लेट्यनि, लोट्यनि, लेटिवा,
लोटिता, अकारस्यातो लोपे यनोपः । अत्र देवोऽर्थनिर्देशार्थं पूर्वशब्द-
प्रतिनिर्देशार्थं मत्वा 'पूर्वतीति तु यत्स्वप्ने तत्कण्ठद्विषु दर्शनादित्याह ।
तदेतन्मोघायां शाठ्यायनध तुष्टौ अर्थनिर्देशरहिते गणपाठे पूर्वस्य
पाठाभावादयुक्तमिति पुष्पकारणं दूषितम् । अन्ये तु लेटलोटी दीप्त्य-
र्थोवाहुः । अत्र लेला दीप्तावित्येके पठन्ति, पठ्यते च वतीभूतेलेला-
यत्सः, यदा वीतार्तिहस्तायेति ॥ ५ ॥

इरञ् इर्यायाम् ॥ अत्र वर्धमानहरदत्ते। इरम् इरञ् इरञ् इर्याया-
मिति त्रीन्येठतुः । इरस्यति, इरत्यति, इर्यतिमैर्गोषसानांषापि, उक्त-
चेर्यतिरीर्ष्याधिपरिति स्थितिरिति । ॥ ६ ॥

इयस् ऐश्वर्ये ॥

माधवीया

अमुं दुर्गां न पठतीति गणरत्नमहोदधौ ॥ ९ ॥

उषस् प्रभातीभावे ॥ उषस्यति रात्रिः ॥ १० ॥

वेद धौत्यं स्वप्ने च ॥ वेद्यति ॥ ११ ॥

मेधा आशुयहणे ॥ मेध्यति ॥ १२ ॥

तन्तस् पम्पस् दुःखे ॥ तन्तस्यति । पम्पस्यति ॥ १४ ॥

सुख दुःख तत्क्रियायाम् ॥ तच्छब्देन सुखदुःखार्थौ परामृश्येते ।
न सुखदुःखरूपायां क्रियायामित्यर्थो भवति, सुख्यति, दुःख्यति । सुख-
नुभवति दुःखमनुभवतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

सपर पूजायाम् ॥ अकारान्तोयं महोदधौ, सपर्यति ॥ १७ ॥

अरर अराकर्मणि ॥ अरा प्रतोदा । अरर्यति ॥ १८ ॥

भिषज्ज विक्रित्सायाम् ॥ भिषज्यति भिषज्यते ॥ १९ ॥

भिष्णज्ज उपसेवायाम् ॥ भिष्णज्यति ॥ २० ॥

इषुध शरधारणे ॥ इषुध्यति ॥ २१ ॥

वरण गतौ ॥ वरण्यति । वरण इति भोजः । उक्तं च तयोः कदा-
हरणं काञ्चि वरणाश्चारण्यैर्वलामिति ॥ २२ ॥

चुरण चौर्ये ॥ चुरण्यति ॥ २३ ॥

तुरण स्वरायाम् ॥ तुरण्यति ॥ २४ ॥

भुरण धारणपोषणयोः ॥ पणधारणयोरित्यन्ये । भुरण्यति ॥ २५ ॥

गद्वद वाक्स्वलने ॥ गद्वद्यति ॥ २६ ॥

एला केला खेला विलासे ॥ एलायति । केलायति । खेलायति ।

अत्रैलास्याने इलेन्यपरे पठन्ति । इलायति ॥ २९ ॥

लेखा स्खलने च ॥ अकारान्तइत्यन्ये । तत्रातो लोपः, लेख्यति ॥ ३० ॥

लिट् अत्यार्थं कुत्सायां च ॥ लिट्यति ॥ ३१ ॥

लाट् जीवने ॥ लाट्यति ॥ ३२ ॥

हृणीङ् रीषणे लज्जायां च ॥ हृणीयते ॥ ३३ ॥

महीङ् पूजायाम् ॥ अत्र पूजा पूज्यमानकर्तृका, तेनायमकर्मकः,
महीयते पूजामधिगच्छतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥

रेखा श्लाघामादनयोः ॥ आमादहं प्राप्तिः प्रायणा वा, रेखा-
यति । श्लाघामनुभवति अनुभावयति चेत्यर्थः ॥ ३५ ॥

द्रवस् परितापपरिचरणयोः । द्रवस्यति ॥ ३६ ॥

तिरस् अन्तर्द्धौ ॥ तिरस्यति ॥ ३७ ॥

अगद नीरोगत्ये ॥ अमुं भोजः नेच्छतीति गणरममहेदधौ,
नेच्छायतिरेखायतिवदर्थः ॥ ३८ ॥

उरस् बलार्थः ॥ उरस्यति । बलवान्भवतीत्यर्थः ॥ ३९ ॥

तरण गतौ ॥ तरण्यति ॥ ४० ॥

पयस् प्रसुबौ ॥ पयस्यति ॥ ४१ ॥

सम्भूयस् प्रभूतभावे ॥ सम्भूयस्यति । अत्र गणरममहेदधौ सम्भूर
सम्भूर सम्भूर इति धामन इति, सम्भूर्यति, सम्भूर्यति, अत्र गणरममहे-
दधौवेव नेटलोटाविति पठित्वा मतान्तरेण दान्तत्वमुक्त्वा नेट्यति
लोटयतीत्युक्तम् । अस्याङ्गतिगणत्वाद्ब्रूधनादिभ्यो रायति धनायनीति चेतः,
यदा कण्ठ्वादिभ्य सचुत्ययते तदा कण्ठ्वादीनां तृतीयस्यैकावे द्वे भवत
इति कण्ठ्वादिभ्यपतीत्यादि भवति ॥ ४२ ॥

अथ सौत्रधर्तव्यं प्रक्रियन्ते ॥

‘अतेरीयह्’ । अयं स्वार्थे, अतिर्गुणाया, सा चेह् गुणा
जुगुप्साङ्गपयोरित्युक्त्वापि अतीयाशब्दस्य निघण्टुषु निहता जुगुप्सेवेमि
व्याख्यातारः । अत्र प्रत्ययस्य कित्त्वेनापि गुणाभावस्य सिद्धौ द्वित्कारण-
मात्मनेपदार्थमपि, अतीयते, अतीयेते अतीया चक्रे इत्यादि, द्वित्-
कारेषु अजादित्वा ‘दाटरे’ति वृद्धौ आर्तीयत आर्तीयिष्ठ आर्तीयिष्ठ-
तेति भवति, यदायमवर्णान्तादुपमर्गाव्यये भवति तद्वै ‘पसर्ग’ इति
धाता’ इति वृद्धौ आर्तीयते उपात्तीयत इत्यादि भवति । अत्रोपमर्ग-
हणाद्वाताविति सिद्धे उपमर्गावृत्तीत्येव वक्तव्ये पुनर्धातुपदस्य योगभे-
देनाधिकविधानार्थमिति ‘अत्यक्त’ इति पाठिकः प्रकृतिवद्भुवोच वा-
ध्यते, उपमर्गैवहणं प्रादुपलक्षणमित्येतत् यत्रो ‘पसर्गादध्वन’ इत्यादौ
उपमर्गत्वं न सम्भवति तत्रैवेनीह तु सम्भवतीति हरदत्तादयः । तेना-

गता अतीयका अमुं देशम् आसीयको देश इत्यादौ यत्क्रियायुक्ताः प्राद-
यस्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञा इत्याङादीनां गम्यादिक्रियापेक्षयोपसर्गत्वं न
तु अतीयक्रियापेक्षयेति तां प्रत्युपसर्गत्वाभावादानुशङ्कति गुणः 'अत्य-
क' इति शाकलप्रकृतिभावश्च भवतः । यदायमीयङ् आयादय आर्धधा-
तुके वेति वचनादार्धधातुके न भवति तदा आनर्त, अर्तिता, अर्ति-
ष्यति, अर्तिता, अर्तिष्यत्, अर्तित्वा, अर्तित्वेत्यादि भवति, अत्र
'अर्तिष्यत्' इति सेटः कित्त्विकल्पनात् पक्षे गुणो न, 'आयादय
आर्धधातुके वेत्यत्रार्धधातुकेत्यस्य विषयसम्प्रतीत्यादार्धधातुकेषु विषयभू-
तेषु आयादय उत्पद्यन्तइत्यर्थो न तु भूता निवर्तन्तइति, अन्यथा
अतीयशब्दास्तिटि प्रत्ययान्तत्वेनामि ईयप्रत्ययस्य निवृत्तावतां च-
कारेति स्यात् आनर्तेति च न स्यात् । न चार्तितासि अर्तिष्यति अत्यात्
आर्तीदित्यादौ परस्मैपदं न स्यात्, तथा तास्यादेरार्धधातुकस्येयङो
निवृत्तेर्नमित्तत्वात्तदपेक्षो गुणो 'न धातुलोप आर्धधातुक' इति निषे-
धाच्च स्यात्, अनेनाभिप्रायेण गुणाभावः, अर्तिष्यत् अर्तिष्येत्त्यादि स्यात्,
ईयङन्तादुत्पत्तेषु तिङ्नु तदाश्रयेण पश्चादुत्पत्तेषु विकरणेषु आर्धधा-
तुकेष्वीयङो निवृत्तिः क्रियते, ईयङो ङित्वात्तदन्ताच्चेत्यव्ययमानास्तिङ्
आत्मनेपदान्येव, तथा क्तिनि अतिरिति न स्यात्, अप्रत्ययादित्यकार-
ईयङो निवृत्तावृत्तेति च स्यात्, एवमादीनि दूषणानि । अत्र क्वचिद्वृत्तिका-
रशङ्कित्येव सिद्धे अतीयङ्चनं ज्ञापकं धातुविहितानां प्रत्ययानामाय-
नादयो न भवन्तीति । तेन शमेः खः, खङ्गः, कमेष्टः कण्ठ इति, अत्रेति-
कादेशो न भवतः । ननु अते शङ्कित्युच्यमाने कङ् आर्धधातुकत्वेन परत्वा-
दिङागमे कृते ककारस्य प्रत्ययादित्वं विप्रतिपन्नमिति 'आयनेयी' त्या-
दिना विधीयमानः कथमीयादेशः सिध्यति, नैष दोषः । यदायनादिबुध-
देशिवचनस्य चोदितत्वादन्तरङ्गत्वादितः पूर्वमीयादेशो भविष्यति । अत्र
हरदतः । द्विवचनविभक्तौपदे इत्यत्र तरप्कुमुनाविति वक्तव्ये इयमुन्व-
चनादधातुविहितानामपि प्रत्ययानामायनादयो न स्युः, वचनसामर्थ्याच्चे-
दुभयेषामपीति ज्ञापकं भङ्त्वा टादौ बाहुलकादिकाद्याभावमाह ॥ १ ॥

‘स्तम्भुस्तम्भुस्कुम्भुस्कुम्भुः शतृ’ । एभ्यः ऋवृवाचिनि माघं
धातुके शतृभवति, चकारादङ्गा व, तत्र पञ्चमो धातुषु पठितो व्याख्या
तश्च, प्रथमद्वितीयौ स्तम्भाभौ, द्वितीयो निष्कोषणार्थः । चतुर्थो
धारणार्थः, उदित्वं त्कायामिद्विकन्यार्थम्, अन एव इनाञ्चनिरिकवि-
षयाश्चैते भवन्ति, स्तभोति, स्तभुनः, स्तभुवन्ति, स्तभोषि, स्तभोमि,
स्तभुवः, स्तभुमः, ‘अनिदितामि’ति नलोपः, प्रथमो नै’पञ्चा-
स्यान्यतरस्यामि’त्युकारलोपः मयोगपूर्वत्वात् भवति, स्तभति
स्तभीतः, स्तभन्ति, स्तभासि, स्तभामि, हलादौ कृडिनी ‘इत्यष्टौ’-
रितीत्यम्, अजादौ तु ‘इनाभ्यस्तयो’ रित्यालोपः तस्तम्भ, तस्तम्भतुः,
तस्तम्भुः, तस्तम्भिथ, तस्तम्भ, तस्तम्भिष, तस्तम्भिम, स्तम्भिता,
स्तम्भिष्यति, स्तभोतु, स्तभुतात्, स्तभुनां, स्तभुवन्तु स्तभुहि, स्तभ-
वानि, हे ‘इतश्चे’ति लोपः मयोगपूर्वत्वात् भवति, स्तभात्,
स्तभीनात्, स्तभीतां, स्तभन्तु, स्तभान, हो हलः शतः शानङ्भाविति
शानजादेशे ‘ऽतो हे’ रिति हेर्लुक्, अस्तभोन, अस्तभुताम्, अस्तभु-
वन्, अस्तभोः, अस्तभवम्, अस्तभात्, अस्तभीनाम् । अस्तभन्,
स्तभुयात्, स्तभुयाता, स्तभुयुः, स्तभुयाः, स्तभुया, स्तभीयात्,
स्तभीयातां, स्तभ्यात्, स्तभ्यास्तां स्तभ्यासुः । यामुटः क्तिष्वाङ्नु-
नासिकलोपः । अस्तभत्, अस्तभताम्, अस्तभन् ‘वृत्तम्भि’ति पर-
स्मैपदे ज्ञेवाङि ‘अनिदितामि’ति नलोपः । अन्यदा सिचि अस्त-
भीदित्यादि । अस्तम्भिष्यत् । तित्तम्भिषति, तास्तम्भने, तास्तम्भीति,
तास्तम्भि, तास्तम्भः, तास्तम्भतीत्यादि । स्तम्भयति । अनस्तम्भत्, अत्य-
ष्टभोत्, प्रत्यष्टभोत्, प्रतित्तम्भति, प्रत्यतष्टम्भत्, इत्यादौ स्तम्भेः
‘प्राक् सितादङ्गव्यापेयी’ति इणन्तादुपमर्गान्तरन्वेन पठ्यं, तत्रापनेरिति
नानुवर्तते, प्रतित्तित्तम्भिषति, ‘स्यादित्तम्भ्यासेने’ति षत्वम् । अतष्ट-
भति, अतष्टम्भत इत्यर्थः । अतष्टभ्या सेना । आसत्तेत्यर्थः । ‘अवाच्या-
लम्भनाविदूर्ययोरिति’ति षत्वं, प्रत्यतस्तम्भेदित्यत्र ‘स्तम्भुसिक्कुमहा-
मि’ति निषेधात् ‘स्तम्भे’ रिति षत्वं न भवति, सन्वदित्वं ननुपरत्वा-

भावाच्च भवति, दीर्घत्व त्वलघुत्वादपि न भवति । स्तम्भित्वा, स्तम्भ्या, उदित्त्वादिद्विकल्पः, इटि 'न त्वा सेडि'ति कित्त्वप्रतिषेधानुषङ्गलोपः । स्तम्भ्यः । 'यस्य विभाषे'त्यनिट्त्व, प्रतिष्टम्भ्यः, निष्टम्भ्यः 'प्रतिष्टम्भ्यनिष्टम्भ्यौ चे'ति षत्व, स्तम्भेरिति सानुषङ्गनिर्देशादयमेव स्तम्भिः सौत्रोऽत्र गृह्यते न त्वत्र भौवादिकः स्तम्भिनभीति प्रतिस्तम्भादयः प्रयोगास्तस्य द्रष्टव्याः । उत्तम्भः । 'तितुन्नेती' ण्निषेधः, 'उदः स्यास्तम्भोः पूर्वस्ये'ति पूर्वसवर्णस्तकारः, एवमुत्तम्भोतीत्यादावपि, एवं स्तुभोति स्तुभाति, स्कुभोति, स्कुभातीत्यादि स्तुभोतिवत् । विष्कम्भोति, विष्कम्भाति, विष्कम्भ इत्यादौ 'वेः स्कुभातेर्नित्य'मिति षत्वं, शनानिर्देशः स्कुम्भतेर्नित्यर्थ इति विष्कम्भ इत्यादावपि भवति ॥ ५ ॥

सातिः सुखे ॥ अयं हेतुमण्यन्त इति जिनेन्द्रहरदत्तौ, तन्मते सतिरिति प्रकृत्या भवितव्य, सातिः सौत्रो धातुरिति वृत्तिवैधिन्यासयोः, सातयतीत्यादि । सातयः । 'अनुपसर्गाल्लिम्पे'त्यादिना शे शपि गुणायादशौ ॥ ६ ॥

जु वेगितायां गतौ ॥ जवति, जोतेत्यादि, स्वरात्तत्त्वादनिट्त्व, जुजुषति, अजीजवदित्यत्र णेश्वडि णौ कृतस्य स्थानिवत्त्वेनाभ्यासस्यावर्णान्तत्वादोः पुण्यजीतीत्ये 'दीर्घो लघो'रिति दीर्घः । जवनः । 'जुचङ्कम्पे'ति युच्, प्रजवी । प्रजोरिति इनिः । जूः । जुवौ, 'भ्राजभासे'ति क्तिप् ताच्छीलिकः । तत्रैव सूत्रे जू इति दीर्घपाठाश्रयणात्किप्सचियोगेन दीर्घ इत्येके । अन्ये तूत्तरसूत्रे वृशियहणस्येहाप्यभिसंबन्धाद् दीर्घ इत्याहुः । जूतिः । 'कतियूतिजूती'ति क्तिनि दीर्घान्तादात्तत्वे निपात्येते । जवः । 'अदोरवि'त्यप् । जवसवौ छन्दसीत्यज्जिधानं तत्रान्तादात्तार्थं न तु भाषायामेतद्रूपनिवृत्त्यर्थं, विजावको नाम देशः, सजायां एषुल् । वैजावकः, 'कच्छादिभ्यश्चे'त्यण् शैषिकः । 'कोपधादणित्येवाणि मिट्टे कच्छादिष्वस्य पाठो यदा भवादिरमनुष्यस्तस्यो वा भवति तदा वैजावक इति, कच्छादाधिकारेण विधीयमानो मनुष्यतस्य योर्वुजमुष्मादपि यथा स्यादिति ॥ ७ ॥

अथ नामप्रत्ययाः धातवः प्रदर्शयन्ते ॥

‘सुप् आत्मनः क्यच्’ । कर्मण इच्छायां वेति वर्तने, इहात्म-
शब्दः परव्यावृत्तिवचनः स्वशब्दपर्यायः, न चेतनद्रव्यवचनं, तस्मि-
न्हि किमप्य कर्तृषष्ट्यन्तः सन् इच्छया सम्बध्यते उत शेषषष्ट्यन्तः
सुवन्तेन, तत्राप्यप्ये इच्छायाग्नेननकर्तृत्वाव्यभिचारादानर्थेन्यमात्म-
शब्दस्य । किं च राज्ञः पुत्रमिच्छत्यमात्य इत्यादौ परेच्छायामपि चेत-
नस्यैव कर्तृत्वात्क्यच् स्यात् । यत्तु भाष्ये इहासामान्यान्प्रत्ययाभावावचनं
तत्प्रातिविवादमात्रम्, इष्यमाणं वस्तु स्वत एव निन्यमन्यदपेक्षते इति
नेतावतास्य सामर्थ्यम्, अत एव वृत्तावात्मयहणस्येदमेव प्रत्युदाहृतं,
सुवन्तसम्बन्धपक्षेपीह राजादिना चेतनेनैव पुत्रादेः सम्बन्धात् क्यच्
रसज्येतैव, अनर्थक्यं चाविगिष्टमेवान्मयहणस्य, अचेतनस्य व्यावृत्त्यं
स्याभावात् । अत्र हरदत्तः । वृत्तस्य फलमिच्छति, खट्वायाः पादमिच्छ-
तीत्यादौ यत्राचेतनार्थं किञ्चिद्विष्यते तद्व्यावृत्त्यमिति चेन्न, तत्रापि
चेतनस्यैव परं शेषितत्वात्, सर्वमेव हि भोग्यं चेतनानामेव शेषभूतं,
खट्वायाः पादमिच्छतीत्यत्रापि यस्य तत् खट्वादिकमुपभोग्यं तदर्थमेव
तद्विष्यते, खट्वादिकं तु द्वारमात्रम् अतः परव्यावृत्तिवचनमात्र एवात्म-
शब्द इति, तत्राप्यसौ यदि कर्तृषष्ट्यन्तः सविच्छया सव्यग्रतः तत्प्राति-
वारमन्तरेणेच्छाया अभावात् अनर्थकः स्यात्, तस्मात्स्वगशब्दपर्यायः
शेषषष्ट्यन्तः सुवन्तेन सम्बध्यते, तेनायमर्थः सूत्रस्य । इषेः सविधानां
तत्कमेव एषितुरेवात्मनः सम्बन्धिनः सुवन्तादिच्छायांमर्थे वा क्यञ्जिति ।
एवं चात्मनः पुत्र परस्य दासमिच्छतीत्यादौ वस्तुनः सुवन्तन्यान्मना सव्य-
ग्रपि परार्थमिष्यमाणत्वाद्विधिकरं वच्छेदेनात्मना सव्यन्थाभावात् क्यच्
रसङ्गः । ककारो ‘नःक्य’ इति सामान्यग्रहणार्थः । सकारान्तद्विविधा
वार्थः । स्वरस्तु प्रत्ययस्वरेण धातुस्वरेण वा सिध्यति ॥

अथोदाहरणानि ॥

पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रीयति । सत्रा मत्त्यूहाः पाणिनीयाः, हन-
रपि शास्त्रं निवर्तयन्तीति धान्तरङ्गानि ~~मि~~भीतिरङ्गे। लुप् बाधनइति

वा सन्धिकार्यरहितायाः द्वितीयस्याः 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो'रिति लुकि
 'क्यचि चे'त्यवर्णस्येत्वे सनाद्यन्तत्वेन धातुत्वान्नडादि । अश्वस्यति, वृष-
 स्यति, क्षीरस्यति, लवणस्यति, 'अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचौ'-
 त्यसुगागमः । अत्रात्मप्रीतावित्यपनीया 'श्ववृषयोर्मैथुनेच्छायां' 'क्षीरलव-
 णयोर्लालसायामि'त्यर्थान्तरमुक्त, तेनाद्ययोरुदाहरणयोरश्ववृषौ मैथुना-
 येच्छत इत्यर्थः । अन्ये तु परित्यक्तप्रकृत्यर्थान्मैथुनेच्छैवार्थ इत्याहुः ।
 तथा च भट्टिः । इति रामो वृषस्यन्तीमिति । निघण्टुश्च
 वृषस्यन्ती तु कामुकीति । इतरयोरपि तृष्णातिरेको ऽभ्यवजिहीर्षा-
 तिरेको लालसा, तेन क्षीरलवणेच्छायां लालसारूपायामित्यर्थला-
 भात् क्षीरलवणे अतिशयेनाभ्यवहर्तुमिच्छतीत्यर्थो भवति । अत्र क्यच्प्र-
 कृतीनां प्रत्ययलक्षणेन यत्पदत्वं प्राप्तं 'नः क्य' इति नियमेन नान्त-
 विषयमिति प्रकृत्यसुगकारयोः सवर्णदीर्घत्वं बाधित्वा 'ऽतो गुण' इति पर-
 रूपं भवति । अकारोच्चारणफलं तु पूर्वसूत्रोदाहरणे ब्राह्मणास-
 इत्यादौ । तथा 'सर्वप्रातिपदिकेभ्यो लालसायामसुगवक्तव्यः' । इत्यन-
 कारान्तादसुकि दध्यस्यतीत्यादौ च । अपरे स्वाहुः । सुगवक्तव्य इति
 दध्यस्यति मधुस्यति, 'अश्वक्षीरेत्यत्र भाष्ये द्वाविमावागमौ प्रस्तुत्य
 दध्यस्यति मध्यस्यति दध्यस्यति मधुस्यतीत्येवमर्थमभिधानात् दधिम-
 धुशब्दाविभागमिनावित्येके । अन्ये तु सर्वप्रातिपदिकेभ्य इत्येकइति सर्व-
 ग्रहणात् बहुवचननिर्देशाच्च सर्वत्र भवतः । भाष्यं तूदाहरणमात्रमि-
 त्याहुः । अत्र मते दध्यस्यति मध्यस्यतीत्येवंशब्दः स्वार्थं न पुष्यति ।
 अशनोदकधनेभ्यः क्यच्य'शनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्ध'ष्विति
 क्रमेणैतेष्वर्थेषु द्योत्येष्वान्तयोरीत्वापवाद आत्वम्, उदकस्यादादेशो
 निपात्यते, तेनाशनायति, उदन्यति, धनायति, बुभुक्षाप्रभृतीनां तदात्वे
 भोक्तुकामो ऽशनमिच्छति, पातुकाम उदकमिच्छति । सत्याप धने
 भूयो धनमिच्छतीति क्रमेणार्थः । यस्त्वौत्तरकालिकमशनं, खानार्थ-
 मुदकं, दरिद्रः सन् धनमिच्छति तत्राशनीयति, उदकीयति, धनीय-
 तीति भवति । अत्रान्ये 'ऽशनायतीत्यादीनां प्रकृत्यर्थमनपेक्ष्य केवलं

बुभुक्ष्वादीनेषां मन्थन्ते । अत्र भारविरमुमेव पतं प्रतिपेदे, तदाह 'किमुधनं धनायितु'मिति, । निघण्टुश्च उदन्त्या तु पिपामा वृडिति । गार्ग्यं मच्छति गार्गीयति । अत्र 'क्यत्थोश्चे'त्यपत्यप्रत्ययकारस्य ह्नु-रस्य नापे 'क्यत्थि चे'तीत्यम् । उपार्षभीयति, उपर्षभीयति, उपात्कारीयति, उपन्कारीयति, अत्र 'वा सुप्यापिशलेरि'ति सुवन्तावयवश्चक्र'रादेधातुपरत्वात् पूर्वपरयो-रेका वृद्धिर्वा भवति । चकारन्चकारयोः साधण्यादियम् लकारादावपि भवति, तच्चै'रण् रपर'इति प्रत्याहारग्रहणात् लपरत्वं वाग्रहणं गुणस्य प्राप्तर्यमिति वृध्यभावे स भवति, नन्वेनद्वाग्रहणं यथाप्राप्ताभ्यनुज्ञानार्थं स्यात्, 'चत्यक्'इति प्रकृतिभावः पठे कस्माच्च भवति । उच्यते । अत्राप्यनुवृत्तस्य धातुग्रहणस्योपसर्गादृनीत्यत्रेवा'धिकविधानार्थत्वादित्थं च धातुग्रहणस्य प्रकृतिभावश्चाधनार्थत्वमृनीयनावुपपादितम् । अत्रैव वा सुपीत्यत्र कृतौ वाग्रहणस्य प्रयोजनं दर्शितम् । उपगता चयभीयका अमु देशमित्यत्रोपर्षभीयको देश इति गुणप्रकृतिभावौ न भवतः, वृष्टिस्तु पूर्वमू-त्रव'द्वा सुपी'त्यत्रानुवृत्तस्योपसर्गग्रहणस्य प्राप्नुपलक्षणाथत्वाभावाच्च भव-ति । उपलक्षत्वाभावाच्च अनीयतायुक्तः । अत्रभस्य समीपमुपर्षभं, तदिच्छति उपर्षभीयतीत्यत्र संशामयतीतिरूपस्य संशामं करोतीति संशामशब्दात्तत्करोति खिद्या सिद्धावपि सुरादौ संशामयुद्धनिपाठा-त्सम उपसर्गात् पूर्वमहाकार्घ्यादन्यत्र सोपसर्गात् संघानाट्टानुसंज्ञानि-मित्ते प्रत्यये चिकीर्षिते उपसर्गाः एयक् क्रियन्तइति ज्ञापनात् सोपसर्गात् संघातात् धातुसंज्ञानिमित्तः प्रत्ययो यदि भवति संशामयनेरिति निय-माद्वा एयक्कृतोपसर्गादेव भवतीतीहाप्युपभशब्दादेव क्यवा भवितव्यं, सुपस्तूपर्षभशब्दाद्विधानात् प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तस्यैव सुवन्तात्वं न तु तदन्तावयवस्य अत्रभशब्दस्यापीत्युपर्षभीयशब्दः सुवन्तावयवो धातुनं भवतीति तत्परत्वाभावादनूपसर्गत्वाच्च 'वा सुपी'ति वृष्टेरपमङ्गः । अन एवोपसर्गस्य एयक्कारादुपार्षभीयदित्यत्र अत्रभीयस्यैवागङ्गत्वात्तस्यैवा-ह भवति, तस्मादेव तत्वायामुपेन प्रादिममासेष्युपर्षभीयन्ति भवति ।

* अनुवृत्तिश्चाधनार्थत्वादिति प्रवर. पाठ ।

तथा तस्यैव धातुत्वात् पशब्दस्य द्विर्वचने उपर्षिषभीयिषतीति ।
 नन्वयं सङ्ग्रामशब्दः उपसर्गसदृशावयवोस्ति, कथमुक्तस्यार्थस्य प्रमाणं
 स्यादिति । उच्यते । पदान्तस्येति कृतपरसवर्णं पठ्यते । अत्र हरदत्तः ।
 संग्रामशब्दानुदात्तत्वात्, न च तन्मात्रार्थत्वे ग्रामयुद्ध इति शक्यते
 पठितुं, मध्येष्टेत्यादौ आठ इव मध्ये ऽटः प्रसङ्गादिति ज्ञापकमभाङ्गीत् ।
 तदास्यानुदात्तत्वमपाणिनीयमिति नोदेति । अत एव भृशादौ कैये
 संग्रामयतिरनुदात्तद्वौ इत्युक्तम् । अयं चानुदात्तस्य ग्रामयतिरिष्यत-
 इति भाष्ये ज्ञापकत्वमेवेति । अकारमिच्छति अकारीयति, उपकारीयती-
 त्यत्र 'वा सुपी'ति वृद्धिः अतीति तपरकरणाच्च भवति । अत एव शाकलः
 प्रकृतिभावोपि । मालीयति । अत्राकृतव्यूहाः पाणिनीया इति स्थिते
 सुबुध्यन्तरङ्गत्वेन पूर्वमेकादेशे परमपीत्वं पश्चाद्ववति । उक्तं च भाष्ये ।
 असुपैकादेश इत्वेत्वाभ्यां भवति अन्तरङ्गतर इति । ननु पूर्वमपीत्वे यस्ये
 तिलोपेनेष्टसिद्धिरिति चेत् न, तस्मिन्नीत्वस्यासिद्धत्वात् । उच्चाभ्युक्ष्यत्
 औसीयत् । औङ्कारीयत् । औठीयत् । अत्रा 'स्यपदान्ता' 'दोमाडो-
 श्चे'ति पररूप 'माटश्चे'ति पुनर्वृद्धिविधानार्थेन च शब्देन बाध्यते, तथा
 च वार्तिक, 'उच्योमाड्त्वाटः प्रतिषेध' इति, उचि औमाडोश्च परयोराटः
 पररूपं नेत्यर्थः । औठीयदित्यत्राह ओकारेण सहैकादेशे उपसर्गरूपत्वं
 पृथङ् प्रतीयत इति सोपसर्गात्स्य ग्रामयतेरित्यस्याप्रवृत्तेरोकारात्पूर्वमाटि
 तस्यान्तवद्भावेन लब्ध्याङ्गव्यपदेशस्योकारस्याटश्च 'ओमाडाश्चे'ति प्राप्तेन
 पररूपेण वृद्धेर्बाधः स्यादिति वार्तिके च आङ्यहणमेवम् आ इतः इतः
 ऐतीयदित्यपि द्रष्टव्यम् । आ इत इतः, ऐतीयति, प्र ऐतीयति प्रेती-
 यतीत्यत्र प्राप्तमवर्णान्तोपसर्गविषयमेहि पररूपं बाधित्वा प्राप्ता-
 'मेत्येधती'ति वृद्धि 'मोमाडोश्चे'ति पररूपं परत्वाद्बाधते, आ अश्या अश्या,
 आगता अश्येति प्रादिसमासः । 'आदुण' इत्यनेनाङ्कारयोगुणः,
 तमिच्छति अश्यायति । अद्राश्यायति । अत्र गुणस्यान्तवद्भावेनाह
 ओमाडोश्चेति प्राप्त पररूपं परत्वाद्बाधित्वा प्राप्तः सवर्णदीर्घश्चकारेण
 पुनः पररूपविधानात् बाध्यते । दधीयति । मधूयति । 'अकृत्साव'

त्यादावपि वाक्यमेव भण्यते । प्राणितीति प्राण्, प्राण्यति । राजीयति ।
 'नः क्य'इति पदत्वा'चलोपः प्रातिपदिके'ति नलोपे 'क्यचि चे'तीत्वं,
 न च नलोपस्यासिद्धत्वं, 'नलोपः सुप्पञ्चरमञ्जानुविधिगु कृती'ति निय-
 मात् । अहर्हति । 'रोः सुपी'ति अहः रुः, पदस्य सुप्परत्वाभावाद्दह-
 चि'ति हत्वापवादे रेफः, नन्वसौ नलोपे पूर्वत्रासिद्धः स्यात्, अस्मि
 वचनस्यावकाशः, हे अहरित्यत्र 'स्वमोर्नपुंसकादि'ति सोर्लुका लुप्तत्वे
 तस्य नलोपश्च 'न हिंसबुध्या'रिति निषेध्यते । नैव दोषः । अहचि
 त्यत्राह इति स्थानेन शब्दे निर्द्वंश्ये ऽहचिति प्रथमान्तेन निर्द्वंशादह-
 चित्यावृत्त्या ऽहचेव न तु लुप्तनकार इति रित्यतः, स एवाहन्शब्द
 इहापि रेफविधावनुवर्ततइति । उक्तेः क्लिबन्तादनुकरणाद्विभक्त्यति ।
 ककुद्वाति । अर्घ्यति । परिव्रज्य*ति । विलम्ब्यति । अङ्ग्यति । एह्यति ।
 अर्घादिभ्यस्तत्करोतीति यौ लोपे येश्चक्कावुदाहरणानि, परिव्रजे'णौविष्ट
 षदित्यतिदेशादृकारस्य 'र अतो हलादे'रिति रभावश्च, अतोऽन्यत्राङ्गादेर्धा-
 तोरनुकरणात्क्लिबन्ताद्वा क्यच् द्रष्टव्यः, युध्यति भिषज्यतिप्रभृतयो गताः,
 प्रक्रियासाम्यादृष्टान्तेन प्रदर्शिताः, त्वामिच्छति, मामिच्छति, त्वद्यति,
 मद्यति, 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे'त्येकार्थवृत्तयोर्युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व-
 मावादेशौ भवतः । 'त्वमावेकवचन'इत्यत्र एकस्य वचनमेकवचनं
 न तु पारिभाषिकमिति स्थिते तत्रापि तस्यैवानुवर्तनादेकार्थानुवृत्त-
 योरित्युक्तं, तेन युष्मदस्मच्छब्दौ यदा एकार्थं समासस्तु द्विवचनं तदापि
 त्वमौ भवतः, यथा अतित्वामिच्छति अतिमामिच्छति अतित्वद्यति,
 अतिमद्यति, विग्रहवाक्ये अतित्वामितिमामिति रूपं, युष्मदस्मदोर्द्विती-
 याद्विवचने तस्य 'द्विप्रथमयो'रित्यमि युष्मदस्मदोर्देकार्थत्वा'त्वमावेक-
 वचने'इति मपर्यन्तस्य त्वमयोर्देकारस्य शेषलोपापवादे 'द्वितीयायां
 चे'त्यात्वे एकादेशे च 'युवावौ द्विवचन'इत्यत्रापि द्वयोर्वचनं द्विवचन-
 मिति स्थिते तत्र च युष्मदस्मदोर्युवावादेशौ न शङ्कौ । अतित्वा-

* परिव्रज्यतीति २ पु. पा ।

† वृद्धेरिति २ पु. पा ।

नतिमानिति तु हेप्रथमयोरित्यमादेशापवादो, तस्मादित्युत्तरस्येति परि-
भाषया 'शसो ने'ति तदादेर्नकारे पूर्ववत्त्वमात्वेकादेशेषु सकारस्य मयो
गान्तलोपे च भवति । नन्वत्र युष्मदस्मदोरेकार्यो विभक्तिः परेति 'स्व-
मावेकवचन'इत्येव स्वमयोः सिद्धेः किं पुनः प्रत्ययोनरपदवचनेन । भवे
देतदेवं विभक्तिपरत्वे सिद्धे, तदेव तु न सिद्ध्यति । विभक्तेर्नुका लुप्तत्वेन
सप्तम्यलक्षणाभावात् । नन्वन्तरङ्गत्वाल्लुक्ः पूर्वं स्वमादेशो भवि-
ष्यतः । न च लुका लुप्तत्वेनानयोर्बाधनमाशङ्क्यम्, अन्तरङ्गत्वादादेश-
योर्नित्यान्तरङ्गयोरन्तरङ्गं बलीयः, तथोक्त, परानित्यान्तरङ्गप्रतिपदविध-
यो विरोधिसचिपाते तेषां मिथः प्रसङ्गे परबलीयस्त्वमिति । एवं तर्ही-
दमेव 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे'त्यादेशविधानं ज्ञापकम् अन्तरङ्गानपि विधी-
न्बहिरङ्गो लुक् बाधते इति, नन्वेतत् परमस्त्व, स्वत्तरः, स्व प्रधान-
मस्य स्वत्वधानं, तुभ्यं हितं त्वद्वितं, तवेदं त्वदीयं, तव पुत्रस्त्वपुत्रः,
परमोहं मत्तरः, अहं प्रधानमस्य मत्वधानं, मह्यं हितं मद्वितं, ममेदं
मदीयं, मम पुत्रो मत्पुत्र इति 'त्वाहासौ' 'तुभ्यमहौ हयि' 'तवममौ ह-
सौ'ति विधीयमानानन्तरङ्गानपि त्वाहादीन् बाधित्वा स्वमादेशविधा-
नेन अर्थवद्वचनमिति कथं ज्ञापकं स्यात्, इदं तर्हि ज्ञापकम् उत्सर्गममा-
नदेशा अपवादा इति त्वाहादपवादत्वेनैव स्वमयोर्मपर्यन्तावयवत्वे
सिद्धे यत्पुनर्मपर्यन्तस्येत्यनुवृत्त्या विधानम्, अबाधे तु लुकान्तरङ्गाणा-
मपि त्वाहादीनां तदपवादत्वेनैव स्वमयोर्मपर्यन्तविषयत्वस्य सिद्धेः किं
तदर्थनानेन मपर्यन्तस्येत्यनेन । ननु शब्दकल्पबाधपवादानां बहुजा-
दीनां भिन्नविषयाणामपि दर्शनात् सर्वादेशनिवृत्त्यर्थमेतन् स्यादिति कथं
ज्ञापकं भवति । उच्यते । इह त्वाहादयो विषयनिर्देशार्थमनुवर्तन्ते, तेन
त्वाहादीनां प्रसङ्गे प्रत्ययोत्तरपदयोस्त्वमयोर्विधानादेव मपर्यन्तविषयत्वे
सिद्धे यत्पुनर्मपर्यन्तस्येत्यनुवर्तनेनानयोर्विधानं स्वया कृतं स्वत्कृतं त्वामि-
च्छति त्वद्वतीत्याद्येवमर्थमिति ज्ञापकमेवोक्तार्थस्य । एवं च युवामि-
च्छति युष्मद्वति अतियुवामिच्छति अतियुष्मद्वति, आवामिच्छति अस्म-
द्वति अत्यावामिच्छति अत्यस्मद्वति इत्यत्र युष्मदस्मदोर्द्विवचनत्वेपि

विभक्तेर्लुप्तत्वेन तत्परत्वाभावात् 'युवावौ द्विवचन' इति युवावौ न भवतः, लुक् पूर्वत्वेनानयोरन्तङ्गत्वेपि न प्रसङ्गे बहिरङ्गेषां लुक् बाधस्येदानीमेव ज्ञापितत्वात्, 'प्रत्ययोत्तरपदयो' रिति त्वमौ त्वनेकार्थत्वात् प्रसजतः । वाक्ये ऽतित्वामतियुवामिति रूपं युष्मदस्मद्वा द्वितीयैः कश्चनद्विवचनयोर्द्वैप्रथमयो' रित्यमिति प्रकृत्योर्मपर्यन्तस्य युवावयोर्द्वैकारस्य द्वितीयायां चेत्यात्वे सवर्णदीर्घं ऽमि पूर्वत्वे च, अतियुवान् अत्यावानिति रूपं तु शसि तदादेरमादेशापवादे 'शमो ने'ति नकारे प्रकृत्योः पूर्ववत् युवावयोरान्त्वे सकारस्य संयोगान्तलोपे भवति । अतियुष्मानिच्छति अतियुष्मद्व्यति अत्यस्मानिच्छति अत्यस्मद्व्यतीत्यत्रापि 'प्रत्ययोत्तरपदयो' रिति त्वमौ प्रकृत्योरनेकार्थत्वादेव न भवतः । अत्रापि वाक्ये अतियुष्मानिन्यादित्पमनियुवामित्यादिवचनम् । उच्यति, वृष्यति, उच्यति, मच्यति, मथ्यति, अर्घ्यत्यादिवत्प्रक्रियोन्नेया । तत्रोच्छिन्ने क्विबन्तः, तत्र हि 'क्वोः शूडनुनामिके'ति शकारेण भवितव्यं, वाच्यति, आच्यति, मरुत्यति, तुक्यति, लुप्यति, दिश्यति, षष्ठ्यति, पदस्यति, अत्र पुत्रादेः कर्मणः जीवत्यादौ प्राणादिवन् क्यजन्तेन्तर्भावादकर्मत्वात्तादयो भावकर्त्रा भवन्ति । उदाहृतं कर्तरि । भावे पुत्रीयते इत्यादि द्रष्टव्यम् । पुत्रोयादेः सनि यथेष्ट नामधातूनामिति पर्यायेण सर्वस्यैकाचो द्विवचनात् पुपुत्रीयति, पुतित्रीयति, पुत्रीयिषतीत्यादि भवति । इह कस्मात् भवति महान्त पुत्रमिच्छते महापुत्रीयतीति । किमन्नात्वाभावश्चाद्यते, अथ केवलात् प्रत्ययाभावः, समुदायाद्वा, आत्व न भवति प्रत्ययार्थेन सापेक्षात्वात् समासाभावादनन्तरपदत्वात्, प्रत्ययाभावो महता सापेक्षत्वेन असामर्थ्यात्, समुदायात्त्वकर्मकत्वात् महत्त्वविशिष्टस्य पुत्रस्येष्टमाख्यत्वेनाकर्मकत्वेन परस्परं प्रत्ययार्थत्वेन च संबन्धे नास्ति सामर्थ्यम् । सुब्रह्मणं च पदविधित्वेन समर्थपरिभाषणस्यानार्थमेव क्रियते, ननु धातुव्यावृत्त्यर्थं स्यात्, मस्तत्र बाधको भविष्यति । प्रातिपदिकादुत्पत्तावपि नान्ते नलोपस्तु सुबन्तादुत्पत्तौ यद् 'नः' इति पदत्वस्य नियामकं तदेवात्र विधायकमिति भविष्यति । नन्वसति सुब्र-

हणे विशेषाभावात् प्रातिपदिकादिव सुबन्तादपि प्रत्ययान्तत्वेनान्यनी-
त्यादौ कुत्व स्यात्, एव तर्हि नः क्यइतिवचन सुबन्तदुत्पन्नौ निय-
मार्थं प्रातिपदिकादुत्पत्तौ विध्यर्थं च भविष्यति । नन्वत्र कर्मयत्तोनैव
सुबन्तत्वं लप्स्यते, पञ्चकपत्तेष्वस्य द्योतिरुया विभक्त्या भाज्यम्, अतो
ऽन्तरेणापि सुश्रवणं वस्तुनः पदविधिवेन समर्थपरिम पोरम्याम्ये
इति किं तद्वहणेन । मैवं, यत्र हि पदस्यैवमाधारण किञ्चिद्वृत्तमा-
श्रीयते स एव पदविधिः, न त्वीदृशमपीति, कर्मश्रवणं तु न पदस्यैवमा-
धारणं धातोः कर्मण इत्यपि दर्शनात् । नहीदानीमिदं भवति महा-
पुत्रीयतीति, भवति, ग्रदैतद्वाक्य महानुचः महानुवन्तमिच्छनीति ॥

“काम्यञ्च” ॥ क्यचो विषये ऽयं भवति, मान्ताद्येभ्य इति
निषेधाभावात् न तान्येवास्याप्राप्त्यञ्जिष्य, स्यादिति वाच्य, पात्वा-
त्यस्य कातीयवचनस्य सूत्रप्रणयनकाले ऽभावात् । पुत्रमान्मन इच्छति
पुत्रकाम्यतीत्यादि, त्वत्काम्यनि, मत्काम्यनि युष्मत्काम्यन्यस्मत्काम्यनी-
त्यत्र ‘प्रत्ययान्तरपदयो’रिति त्वमौ, तदभावश्च । क्यचि चिन्करण
पुत्रकाम्यतीत्यादौ सति शिष्टस्वर बाधित्वा धातुस्वरो यथा
स्यादिति, ककारस्तु नेत्, प्रयोजनाभावात् । अतिराम्यनीत्यादावधनु-
विहितत्वादार्धधातुस्त्वाभावावपि गुणरमङ्गः । कन परिमार्ष्टि कनप-
रिमृष्ट, कनपरिमृष्टकाम्यनीत्यत्र मृजेवृष्टिः प्रत्ययमात्रे विधीयमाना ऽपि
धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानाच्च प्रसजनि । तत्प्रत्यये
धातुसंशब्दनेन विहितः प्रत्ययः, यजे विजुनेगृह्णन्तीति विच्युपपद वचेः
क्वपि वाक्, उपयट्काम्यतीति वाक्काम्यनीति । अत्र यजादिभिः किने-
विशेषणाद्वातोः स्वरूपेति वा मरमारणाप्रमङ्गः । अन्तर्वर्तिन्या विभक्त्या
यथायोगं पदकार्याणि दृष्टव्यानि । ययस्काम्यनि । यगस्काम्यनि ।
अन्तर्वर्तिन्या विभक्त्या पदत्वेन सोरुत्वे विमर्तनीये तस्य कुञ्जोरपदादौ
परयोर्विधीयमानं ‘सोपदादावि’ति मत्व भवति, म्य.काम्यनीत्यादौ
सोपदादावनव्यस्येति वचनात् सत्त्वाभावः । अधिकरणशक्तिप्रधानस्या-
प्यस्य वृत्तिविषये शक्तिमत्प्रधानत्वादिति कर्मत्वेन योगः पद्या

दिवाभूता रात्रिः दोषाभूतमहरित्यादावधिकरणशक्तिप्रधानत्वेऽपि शक्तिमत्प्राधान्यादभूततद्वावयोगः । वाःकाम्यतीत्यादौ रोः काम्यइति रोरैव विसर्जनीय इति काम्ये सत्त्वनियमात्सत्त्वाभावः । सर्पिष्काम्यति धनुष्काम्यतीत्यादौ सत्त्व बाधित्वा 'इणःष'इति षत्व भवति सत्त्वस्या पवाद् इति यत्र तत्प्रमगस्तत्रैव भवतीत्युच्चैःकाम्यति गीःकाम्यतीत्यादौ न भवति । पुंस्काम्यतीत्यत्र पुंसः सयोगान्तलोपे 'पुमः ख्यम-पर'इति रुत्वं निर्बर्त्य 'सपुकांना सो वक्तव्य'इति सत्त्ववचनावाप्ति विसर्जनीय इति न षत्वप्रसङ्गः ।

“उपमानादाचारे” ॥ कर्मणः सुप इति च वर्त्तते । तत्र प्रत्ययार्थ-स्याचारक्रियायाः सन्निधानात्तदपेक्षया कर्मण उपमानात् सुबन्तादाचारे व्यञ्जित्यर्थो भवति । यद्यपि काम्यजनन्तरस्तथापि पूर्वसूत्रे चकारेणेहाद्य एव व्यञ्जनुरुष्टः स एवात्र विधीयते, पुत्रमिवाचरति ह्यत्रम् । उदाहर-णान्यवशिष्टानि प्रक्रिया चेच्छाक्यजन्तवदृष्टव्यानि । अत्रोपमानेनोपमे-यमाक्षिप्यते, तत्र प्रत्यासत्त्या साधारणधर्मभूताधारक्रियापेक्षया कर्मैव, उपमानकर्मवत् प्रत्ययान्ते धानावनन्तर्भावाद्नभिर्हिगमिनि तत्र द्वितीया भवति । तथा पुत्रीयतइत्यादौ कर्मणि यगादयोपि भवन्ति । नन्वन्या पुत्रविषयाचारक्रिया ऽन्या ह्यत्रविषयेति आचारक्रियायाः वस्तुतो भेदा-देककर्मधर्मसमावेशस्यात्राभावात्कथमौपम्यम् । उच्यते । आचरितुरेकत्वा-दाचारसमावेशादाचार एकोवसास्यते, अन्यथा सर्वत्रैवोपमानोपमेयगतस्य धर्मस्य वस्तुतो भेदादौपम्यव्यवहारच्छेदः स्यात् । 'अधिकरणाच्चेति वक्तव्य मित्युक्तत्वात् प्रासादीयनि कुट्यामित्यादौ सप्तम्यन्तादपि भवति । त्वयीवाचरति त्वद्वाति, मयीवाचरति मद्वाति, युष्मदस्मद्वोर-कार्थत्वा'त्प्रत्ययोत्तरपदयो'रिति त्वमौ, युवयोरिवाचरति आवयो-रिवाचरति युष्मद्वाति, अस्मद्वाति, अत्र नास्त्येकार्थत्वमिति त्वमौ न भवतः, द्विवचनत्वेपि विभक्तेर्लुका लुप्तत्वाच्च युवावौ, लुकः पूर्वं तु न भवतोन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुक बाधतइत्युक्तत्वात् । युष्मास्विव आचरति अस्मास्विवाचरतीत्यत्रापि एकार्थत्वाभावाच्च भवतस्त्वमौ,

त्वामतिश्रान्ते अतित्वयि, अतिश्रान्तयोः, अतिश्रान्तेः अतिश्रान्तेषु अति-
त्वासु, एवमतिमयि, अतिमयोः, अतिमासु सर्वत्रात्र प्रकृत्योक्तैर्यत्वात्
मयोरजादावनादेशे विभक्तौ 'योर्वा' नि दकारस्य यकारः, हन्तादौ तु युष्म-
दस्मदोरन-देशविभक्तिपरत्वादात्वम्, एभ्योपि क्वचित् त्वमयोऽन्त्यश्चि
मशनीति भवतः । युवामतिश्रान्ते अतियुवयि, अतिश्रान्तयोः, अतियुवयोः
अतिश्रान्तेषु, अतियुवाम्, एवमन्यात्रयि, अन्यात्रयोः, अन्यात्राम्
अत्र प्रकृत्योक्तिवचनस्य युदावयोर्दकारस्य पूर्ववश्रान्तस्य एभ्यस्तु क्वचित्
प्रकृत्योरैकार्यत्वाभावात् न त्वमौ भवतः, युष्मदश्चि क्रमशः मशनीति भवतः
द्विवचनत्वेपि विभक्तेर्लुक् लुप्तत्वेन तत्परत्वाभावात् युवावौ न भवतः
तथा लुक्ः पूर्वमपि न भवतीति इदानीमेषोक्तं, युष्मानतिश्रान्ते अतियु-
ष्मयि, अतिश्रान्तयोः, अतियुष्मयोः, अतिश्रान्तेषु अतियुष्माम् एवमन्य-
स्मयि, अत्यस्मयोः, अत्यस्माम्, पूर्ववद्वृत्तास्य यत्वात्, अत्रापि प्रकृत्यो-
क्तैर्यत्वाभावेन त्वमयोरभावादनियुष्मदश्चि अत्यस्मदश्चि इति भवतः ।

“कर्तुः क्यङ् सलोपश्च” । उपमात्तत् सुपः आचारे वेति वर्तते ।
अत्रापि पूर्ववत् सद्विहितोच्चारणक्रियापेक्षया कर्तृत्वोपमानस्य विनाय-
मर्थः । उपमाणादत्र रजिगन् कर्तुः सुपन्तादाच्चारणं वा क्यङिति ।
ककारो 'नः क्यङिति सामान्यपक्षः', इकारस्तद्विपर्ययस्तद्विपर्यय-
लोपश्चेति च शब्दान्वयस्य, सेति लुप्तपठ्याकं पठ्य पदं तेन च लोपापेक्षया
स्यानपठ्यतत्वेन सन्नन्विता जायमानस्य कर्तुर्नित्यस्य तस्य विरूपणं तदन्त-
विधौ सकारान्तेभ्यो क्यङ् तस्य सकारस्य लोप इत्यर्थो भवति । अत्रापि
वेत्यस्य सन्नन्वितस्य च अवस्थितविभाषात्वाद्भोजोष्मस्येत्यस्य सलोपो
भवति अन्यत्र विरुद्धेन उक्तं च । आजसोप्सरसोर्नित्यस्य पयसस्तु विभाष-
येति । पयस इति आजोप्सरसोर्व्यतिरिक्तानां मरुताल्लानां मुपनहनमिति
आख्यातारः । श्येन इवाचरति श्येनायते, काकायते, आजायते अप्सरायते,
पयस्यते, पयायते, यशस्यते, यशायते, आजःशब्दे च निविश्ये तदुचि
वर्तते, अर्चिष्यते मर्षिष्यते इत्यादौ प्रत्ययसकारत्वात्प्रत्ययस्य, अत्र 'नः क्य'-
इति नियमेन सकारस्य पदान्तत्वाभावः, पदान्तत्वे ह्यपदान्तस्य

‘र्धन्य’ इति वचनात् षत्वं न स्यात् । अन्तस्य सकारस्य लोपवचनात् सायते स्वरसायतइत्यादौ अनन्त्यस्य लोपो न भवति । उपमानकर्तु-
 रैव उपमेयकर्तुः प्रत्ययान्ते धातावन्तर्भावात् तत्र लादयो भवन्ति ।
 कर्मकत्वात् भावे च श्येनायतइति, त्वामिवाचरति त्वद्यते मद्यते,
 प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति युष्मदस्मदोरेकार्थयोस्त्वमौ, युवामिवाचरति
 युष्मद्यते, अस्मद्यते, अत्रानेकार्थत्वाच्च त्वमौ, अन्तर्वर्तिन्या विभक्तेर्लुप्त-
 त्वात् ‘युवावौ द्विवचने’ ‘यूयवयौ जसी’ति युवावादयो न भवन्ति । लुक्
 पूर्वं तु बहिरङ्गेणापि तेन बाधस्योक्तत्वाच्च भवन्ति, त्वामतिक्रान्तो
 ऽतित्वम्, अतिक्रान्तौ अतित्वा, मतिक्रान्ता अतियुयं, मामतिक्रान्तः
 अत्यहम्, अतिक्रान्तौ अतिमाम्, अतिक्रान्ता अतिवयं, सर्वत्र विभक्तेर्दे-
 प्रथमयोरमित्यम्भावो द्विवचनादन्यत्र शेषे लोप इति दकारलोपस्तत्र
 ‘प्रथमायाश्च द्विवचन’ इत्यात्व, तत्र सौ ‘त्वाहौ सा’ विति त्वाहौ, अन्यत्र
 ‘त्वमावेकवचन’ इति त्वमौ, आभ्याम्पराभ्यामपि त्वाहयोर्न बाध-
 स्त्वाहादीनां तु पूर्वविप्रतिषेधेन तएवेत्यन्तइति उक्तत्वात् । जसि तु
 न्याय्यविप्रतिषेधेन यूयवयाभ्यां त्वमोर्बाध एव, एभ्यः क्यङि अतित्वद्यते
 ऽतिमद्यतइति भवतः, युवामतिक्रान्तोतित्वाम्, अतिक्रान्तौ, अतियुवाम्,
 अतिक्रान्ता अतियूयम्, एवं मामतिक्रान्तो ऽत्यहम्, अतिक्रान्तौ अत्यावा-
 मतिक्रान्ता अतिवयं, सौ जसि च ‘त्वाहौ सौ’ ‘यूयवयौ जसी’त्याभ्यां
 पराभ्यां युवावौ द्विवचनइत्यस्य बाधः । द्विवचने तु युवावयोः प्रथमायाश्च
 द्विवचनइति दकारस्यात्वम् । इतरयोस्तु शेषे लोपः, एभ्यस्तु क्यङि
 युष्मदस्मदोरेकार्थत्वात्त्वमयोरभावादतियुष्मद्यते अत्यस्मद्यते इति
 भवतः । अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य तत्तदादेशाभावस्तत्रतत्रोक्तौ,
 युष्मानतिक्रान्तः अतित्वम् अतिक्रान्तौ अतियुवाम्, अतिक्रान्ता अति-
 यूयम्, एवमस्मानतिक्रान्तो ऽत्यहम्, अतिक्रान्तौ अत्यस्मान्, अति-
 क्रान्ता अतिवयं, पूर्ववत् प्रथमाया द्विवचने आत्वम्, अन्यत्र शेषे लोपो
 यथायोगं ‘त्वाहौ सौ’ ‘यूयवयौ जसी’ति त्वाहादयश्च, एभ्योपि क्यङि
 अतियुष्मद्यते, अत्यस्मद्यते इति भवतः । उदाहरणान्यवशिष्टानि प्रक्रिया

वेष्टाक्यजन्तवदुच्येयानि । अर्गस्येत्वादिकं 'अचि' चे निविधीयमान
मिह न भवति, कुमारीवाचरति कुमारायते, हरिणीवाचरति हरिनायते
गौरीवाचरति गौरायते, गुर्वीवाचरति गुरुयते, अङ्गुमानिनोश्चेति
स्त्रीशब्दस्य पुंशब्दः, अत्र स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादिति वर्तते, तत्र
स्त्रीशब्देन स्वार्थशब्द उच्यते, पुंवच्छब्देन पुमर्थो, भाषितः पुमान् यस्मिन्
अर्थे प्रवृत्तिनिमित्ते स भाषितपुंस्कस्तद्व्योगाच्छब्दोऽपि, स चेह स्वार्थः,
ऊङो ऽभावः अनूङ्, पृथगर्थे प्रथमा, भाषितपुंस्कान् पर ऊङोभावो
यस्मिन् स्त्रीशब्दे स भाषितपुंस्कादनुङ्, निषाननाप्यञ्चम्या अनुक्,
एतदुक्तं भवति, पुंसि यत् प्रवृत्तिनिमित्तं तदुक्तस्वार्थवाचिनं शब्दस्य
पुंशब्द आदेशो भवति ऊङन्तस्य नेति, तेन स्वगुरस्योऽङ्गुराङ्गुरयेनाप-
श्चेति ऊङि श्वश्रूयते इत्यत्र पुंवत्त्व न भवति । तथा भाषितपुंस्कान् भावो
द्रोणीयनइत्यादौ न भवति । अत्र ऋरुचः । पुंसि द्रोणशब्दस्य परिमाणप्रवृ-
त्तिनिमित्तमाह । स्त्रिया तु द्रोणीनाम ज्ञानि । ऋषट्कारस्तु द्रोणशब्दस्तु
परिमाणवृत्तिर्भाषितपुंस्कः स एव भेदोपवारात्मादृश्यनिबन्धनप्रत्यभिज्ञा-
नवशात् वा स्त्रियां वर्तते इति पुंसि प्रवृत्तिनिवृत्तेनार्थमनन्वेन युक्तः स्वार्थ-
योगोस्तीति स्यादेव द्रोण्यादीनां भाषितपुंस्कत्व, नैतत् । एवं हि
आवर्त्याभावात् भाषितपुंस्कग्रहणमनर्थकं स्यात् । अतो यः शब्दो भाषि-
तपुंस्को यन्प्रवृत्तिनिमित्तेन युक्तस्तदुक्तं स्वार्थं तद्रूपेणाह स चेह भाषित-
पुंस्क आशीयते न तु रूपान्तरेणापि, न च द्रोण्यादिशब्द, स्वार्थ-
मर्थ्यमाणातयाहेति । एवमपि औरिशचरति दीव्यनीनि, दिवशब्दस्य
स्वर्गशब्दस्य चैकमेव प्रवृत्तिनिमित्तमस्ति च तदुक्ततया स्वार्थाभिधान-
मित्यर्थसाम्यात् पुल्लिङ्गः स्वर्गशब्दः प्राप्नोति । नैव द्रोणः, यस्य शब्दस्य
पुंवद्भावः स एव शब्दः स्त्रीकृतविज्ञानिरहितः पुमांसमाहेति प्रत्यामन्या
तद्वत्त्वात्, न च दिवशब्दः पुमांसमाह । इदमत्र मृत्रार्थतन्त्र, यः शब्दो
येन प्रवृत्तिनिमित्तेन पुंसि प्रवृत्तस्तेनैव स्त्रियां वर्तते तस्य पुंवद्भावः,
ऊङन्तस्य नेति । एवं हमस्य स्त्री वरटा, सारमस्य लक्षणा, अङ्गारकस्य
मालिका, ऊङ्गपस्य डुलीका, अणभस्य रोहित्, पुरुषस्य येषिदित्यादौ

नियतस्त्रीवचनानां वरटादीनां पुंवत्त्वेन वरटादयो न भवन्तीति वरटायत-
इत्यादि भवति, शक्यन्ते च साहचर्यात्पुंशब्दैरपि स्त्रीशब्दार्थाः प्रति-
पादयितुं, यद्येव गर्भिणीवाचरति गर्भीयतइत्यत्र कथं पुंस्त्वं, यतो
गर्भीं व्रीहिरित्यादौ पुंस्यवयवभूतगर्भसंबन्धः प्रवृत्तिनिमित्तं स्त्रियान्त्व-
वयवभूतगर्भसंबन्ध इति प्रवृत्तिनिमित्तं भिद्यते, नैष दोषो यदुभयत्रापि
गर्भसंबन्धमात्रमेव प्रवृत्तिनिमित्तम्, एव प्रसूताप्रजातादिशब्दानामप्य-
त्यपत्यवत्संबन्धमात्रं प्रवृत्तिनिमित्तं न तु पुंसि गर्भाधानं स्त्रियां तु
गर्भविमोचनमिति समानप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् प्रसूतायतइत्यादौ पुंत्व-
भवति, इदं च प्रसूतभार्या इत्यर्थमवश्यमेवेष्टव्यं, समानः पतिरस्याः
सपत्नी, नित्यं सपत्न्यादिष्विति नकारे ङीप् । अत एव निर्देशात्समा-
नस्य सभावः । सपत्नीवाचरतीत्यत्र सपत्नीयतइति भवितव्यमिति
न्यासे, यदाह नित्यं सपत्न्यादिष्वित्यत्र समुदायस्योच्चारणाद्वियोगत एषां
समुदाय ईकारान्त एव यथा स्यादिति । तेन सपत्नीभार्यइति स्त्रियाः
पुंवद्भावो न भवतीति । तस्मिन्नादिष्वित्यत्र भाष्यकैयटयोस्तु 'भस्याठे तद्धि-
त'इति पुंवत्त्व प्रस्तुत्य कुण्डिनीशब्दाद्गर्गादियञि पुंवत्त्वेन कुण्डिन् इत्य-
'नस्तद्धित' इति टिलोपे कौण्डेय इति प्राप्नोति । तथा सपत्नीशब्दाच्-
छिवाद्याणि सपतिशब्दादेशे सापत इति चोदयित्वा ठग्रहणमपनीय
तत्रानपत्यइति न्यस्यापत्यप्रत्यये पुंवद्भावाभावाद्याजि ईकारस्य 'यस्येति
चे'ति लोपे तस्य 'नस्तद्धित'इति टिलोपस्य स्थानिवत्त्वाच्चान्तस्य तद्धित-
परत्वाभावात्कौण्डिन्य इति सिध्यति । तथा शिवाद्याणोऽपत्यप्रत्ययत्वा-
त्सपतिशब्दादेरेवाभाव इति परिहृत्य एवं सति गार्ग्यायण्या अपत्ये
कुत्सने, गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण चेति एतस्यापत्यप्रत्ययत्वेन पुंवद्भावाभा-
वाद्गार्ग्यायणइति स्यात्, नन्विष्टङ्गार्ग्यमिति दोषमुद्भाव्य तत्सम्परिहाराय
भस्याठे इत्येव संस्थाप्य कौण्डिन्ये आगस्त्यकौण्डिन्ययोरिति निपातनात्
परिहृत्य सापत्ने तु नित्यं सपत्नीतिसमुदायनिपातनं परिहारमनभिधाय
शत्रुपर्यायात्सपत्नशब्दाच्छार्ङ्गवादिषु द्रष्टव्य इति शिवाद्याणि परिहृतम्,
अत एव शिवादौ समानपतिलक्षणस्य सपत्नीशब्दस्य ग्रहणं नेत्यवसी-

यते, यहणे हि तस्मादणि पुंवत्त्वेन सापत इति रूपं दुर्वारमेव स्यात् ।
 अत एव सापत इति प्राप्नोतीति भाष्ये नित्यं मपस्याद्विष्विति
 निर्वृत्तेन भवन्समानस्य सभावो डीप्नकारायोगेपि भवनीत्यवसीयते ।
 एव च न्यासोक्तपुंवत्त्वाभावो भाष्यकृतेऽनभिमत इत्यवसीयते । ममु-
 दायनिपातन तु ह्यर्थेऽपि स्यादिति न मृत्रभाष्यविरोधः । एवं
 सति समानपतिलक्षणात्मपत्रीगच्छात्स्निग्धविशिष्टपरिभाषया पत्युत्तर-
 पदलक्षणे एवे सापत्य इति भाष्यं, नया भावकर्मणोरपि पत्यन्तलक्षणे
 यकि सापत्यमिति युवनिग्विवाचरनि युवायते । यस्तु यादाम्मृत्रभाष्ये
 युवतिनरेत्युदाहरणे 'घरूपे'ति पुंवत्त्वाभावः स तत एव पत्युनिर्वृत्ताव-
 त्वभाषितपुंवत्त्वाद्यापि यौवनस्य ज्ञानित्वेन ज्ञानिवाचकत्वं ज्ञानेष्ट्वे-
 ति प्रतिषेधादतः स्यान्निवृत्तत्वे युवजानिरिति प्रत्युदाहरणम् । पट्टी च
 मृद्वी च पट्टीमृद्वौ, ते इवाचरति पट्टीमृद्वयने पृषपदस्य ऋद्धपरत्वा-
 भावाच्च पुवत्त्वं, पवेण्वलि पाचिका मद्रवृज्याः कनिति शैषिके कनि
 मद्रिका, पाचिकायने मद्रिकायने 'न पोरथाया इति पुवत्त्वनिषेधः ।
 अत्र तद्वृत्तयहणान्नद्विजेन वा 'युवोरनाका'विन्यकादेशेन वा यः कोपध-
 स्तस्यैव यहणमिति पाकायनइत्यत्र पुवत्त्व भवति । नन्ववाजादि-
 पाठाट्टापा वयोलक्षणस्य डीपो वाध्याप्युवत्त्वापुवत्त्वयोर्न विशेषः । मन्यम् ।
 अत्राविशेषेपि अस्ति पाकभार्य इत्यत्र विशेषः । चतुर्थेऽपि 'मज्जापर-
 ण्योरवे'तिपुवत्त्वनिषेधः । स्त्रीयते वृद्धिनिमित्तस्य च तद्वृत्तस्यार-
 क्तविकार इति पुंवत्त्व निषेधः । वृद्धिनिमित्तं वक्रागो लकारो वा
 यस्मिन्निति बहुव्रीह्याश्रयणान् यावन्नीवाचरनि यावन्त्यने इत्यत्र पुवत्त्व
 भवति, अत्रा'सर्वनाम्'इत्याकारस्य वृद्धेर्वन्तरेव निमित्तमिति नामौ
 वृद्धिनिमित्तवान्, तद्वृत्तस्येतिवचनात्काण्डनावाचरनि काण्डनावाचने
 इत्यत्र पुंवत्त्व भवति, तथारक्तविकारइतिवचनात्काण्डनावाचरेण रक्ता गाटी
 कापायी, तेन रक्त रागादिति अणि डीप्, खदिरस्य विकार, याद्विरी
 ईषा, 'पलाशादिभ्यां वे'ति विकारे ऽणञोरन्यतरस्मिन् डीप्, काशाया-
 यते खादिरायतइति, अत्र पुंवत्त्वं भवति । व्य'करणमर्थ'ने वैयाकरणे ।

‘तदधीते तद्वेदे’त्यणि ङीप्। सैवाचरति वैयाकरणीयते। ‘न ख्याभ्या-
मिति निषेधादणो नास्ति वृद्धिनिमित्तकत्वमिति पुंवद्भावः, निमित्तशब्दः
कुर्वद्रूपवचनः, दीर्घाः केशा अस्याः दीर्घकेशी, एव, मृदुङ्गी ‘स्वाङ्गाच्चो-
पसज्जनादसयोगोपधात्’ ‘अङ्गागात्रकण्ठेभ्यश्चेति वक्तव्यमिति’ पात्तिको
ङीप्। दीर्घकेशीयते मृदुङ्गीयते। ‘स्वाङ्गाच्चेतोमानिनी’ति स्वाङ्गव-
चनात्परो य ईकारस्तदन्तस्य मानिनोन्यस्मिन्यरे पुंवत्त्व निषिध्यते।
करणीयते, इडबिड्यते, दरद्व्यते, कठीयते, ‘जातेश्चे’तिपुंवत्त्वनिषेधः। ‘गोत्र-
ञ्चचरणैः सहे’तिगोत्रचरणयोः जातिवाचित्वम्। इहापत्यं गोत्रम्, अप-
त्याधिकारादन्यत्र लौकिक गोत्रं गृह्यतइति, चरणशब्दः शाखाध्यायिषु
हूठः। अत्र इडविट् नाम जनपदो राजा वेति जनपदसमानशब्दत्वात्
‘जनपदममानशब्दान् क्षत्रियादजि’त्यत्र ‘तेनद्राजा इत्यापादपरि-मानेः
प्रत्ययानां तद्राजसञ्ज्ञकत्वात् ‘अतश्चे’ति अकारप्रत्ययत्वेन स्त्रियां लुकि
इडविट् स्त्री, ऐडविडः पुमान् भवति, दरदोपि जनपदसमानशब्दत्वात्
दृञ्मगधेत्यणः पूर्वं लुकि दरद् स्त्री दारदः पुमान्, एते गोत्रवचनाः, कठश-
ब्दात् ‘कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्चे’ति प्रोक्ते कृन्दसि णिनेः ‘कठच-
काल्लुगि’ति लुकि ‘कृन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणी’ति कृन्दोब्राह्मण-
प्रत्ययान्तानामध्येनृवेदिनृप्रत्ययविषयत्वाद् ‘तदधीते तद्वेदे’त्यणि तस्य
‘प्रोक्ताल्लुगि’ति प्रोक्तप्रत्ययान्तात्परत्वेन लुकि शाखाध्ययननिवृत्तिः ॥
‘भृशादिभ्यो भुव्यच्चेर्लोपश्च हलः’ ॥ अत्राच्चेरित्येकवचनं भृशाद्यव-
यवापेक्षम्, अयं च पर्युदास इति तत्सदृशप्रतिपत्त्या ऽभूतनद्भावविष-
येभ्यो भुवि भवत्यर्थे क्यङिति अर्थो भवति, प्रसज्यप्रतिषेधे तु भवति-
योगे च्चिविधानाद्भवतिनैव स्वार्थस्य भवनस्योक्तत्वाच्च क्यङः प्रसङ्ग इत्यर्थे
अच्चेरिति वचनमनर्थकं स्यात्, न च सत्यस्मिन् च्यन्तादुत्पद्यमानेन
क्यङा भवतेरनुप्रयोगस्य बाधनमाशङ्क्यं, यदिदमच्यन्ते सावकाशं
भवतेरभावात् च्येरप्यभावस्तदयोगे तस्य विधानात्, न च क्यषा योगे
डाज्बचनप्रामाण्याद्भवतेरभावेऽपि क्यङो योगे च्येः कल्पनं युक्तं, यत इदं
वचनमच्यन्ते सावकाशं, भृशादिभ्य इति पञ्चमी लोपविधौ स्यान्वष्टी

सम्पद्यते, तत्र विशेषणं हला तदन्तविधौ भृगादिषु जनन्तनामन्त्यस्य
लोप इति अर्थो भवति, एव च चशब्दोन्वावये भवति, अभृशो भृशो भवति
भृशायते, शीघ्रायते, चपलायते, मन्दायते, पण्डितायते, रेहायते रेहः-
शब्दो रहसि निष्कृष्टत्वे भिन्नाभिनायस्य च निवृत्तौ वर्तमाने गणवृत्तौ
वृषायते, वृषश्चन्द्रः समुद्रश्च, वेहायते, वेहद्भौषद्यानिना, अन्धायते,
अन्धरो मूर्खो पुष्करश्चेति गणवृत्तौ, अण्डार इत्यस्य इति च, क्रैन्नायते
वर्चायते, ओजोवर्चसौ वृत्तिविषये तद्वृत्ति वर्तने रेहायते, रेहम् रोप इति
गणवृत्तौ, दुर्मनायते सुमनायते, उन्मुकायते उन्मनायते, उम्वायते वृहा-
यते, तान्तावेतौ अतिमनायते, अत्र मृदुरभिभ्यो मनःशब्दः पठ्यते,
तत्र सोपमर्गान्मयामयनेरेव धातुमज्ञानिमित्तः प्रत्यय इति नादनाम्
नस एव प्रत्यय इति स्वमनायन इत्यादि भवति, सुवर्मान्वित इत्यत्र
मनस्युपसर्गे इति मनसि परे उपसर्गस्य पराङ्गवद्भवत्तनाम्मनायन इत्यादि
'तिङ्ङितिङ' इति निघातो न भवति देवदत्तः सुमनःपत इत्यादौ सोपमर्गस्य
निघातो भवति, अत्रामी भृगादयो ऽम्माभिः श्लोकागवत्तानुतेष्वेन
पठिताः । गणवृत्तौ तु वृहच्छब्दो न दृश्यते, भद्रगच्छस्य पठ्यते, तथा
च कन्धरशब्दश्च त्ववेभ्यन्तरे स्यूननत्वाभा अमयुक्ता मयुः कन्धरा
तद्वान्कन्धरः, मत्वर्थे अर्थकादिभ्यो गि नि व्याख्यात च ॥

'लोहिनादिडाङ्भ्यः क्यप्' ॥ अत्र भुवीनि वर्तने, अस्तेरिति च ।
तत्रैतद्वाचो न विशेषणमनभवात् अय्यकानुकाणाद् द्युजवर'धा'द'निनै-
हा'ज्विधीयते, यत्र ध्वनौ वर्णविशेषा न व्यज्यन्ते सोऽय्यकल्पस्य'नुका-
णामव्यक्तानुकरण, तस्मात् 'डाचि बहुल द्वे भवत' इति डाचि विषयभूते
द्विरुक्ताद् द्युजवरा'धा'न् अनिनिदरात् ऋभ्वस्मियोगे डाङ् भवतीति सूत्रार्थः ।
यस्य द्विरुक्तस्य समुदायस्य प्रविभज्यमान'मर्तुं द्युजवरा'नाङ्क द्युज् वा
भवति तद् द्युजवरा'धम्, अवरशब्दोपकर्षे, अत एव प्रवनाम ऋभ्वस्मिभिरिव
क्यपापि योगे डाङ् भवतीत्यवसीयते, न च भवतियोगे डाचि कृते
क्यपः प्रसङ्गो भुवौ भवतिनैवाकृत्वात् । अलोहितो लोहिनायनि लोहि

तायते, 'वा क्यष' इति पक्षे नङ्, लिङ्गविशिष्टपरिभाषया लोहिनीशब्दा-
 त्क्यषि लोहिनीयति लोहिनीयतइति भवति, पठपठायति पठपठायते,
 अत्र डाचि बहुलमिति द्विरुक्ते 'नित्यमाग्रेडिते डाची'ति अव्यक्तानुकरण-
 स्यान्त्यस्य टेश्च पररूपे टेरिति टिलोपः, इदमेव पररूपवचनं ज्ञापकं
 डाचि बहुलं द्वे इत्यस्य विषयसप्तमीत्वे, अत्र लोहितानां तेषां नीलहरि-
 तमन्द्रफेनमुण्डानां भृशदौ पाठः कर्तव्यः । अत्र वार्तिकं 'लोहितादि-
 डाच्यः क्यष्वचनं भृशादिष्वितराणी'ति । अत्र वृत्तौ नहि पठितेषु
 लोहितादिषु नान्तोस्तीति 'नःक्य'इति पदव्यनामान्यग्रहणार्थेन क्यषः
 क्रकारेणास्याकृतिगत्त्वज्ञापनादन्यानि संश्रुहन्ते, तेषां भृशदौ अनुप्रवेश-
 इति स्थितं, यदाह यानि पठ्यन्ते तैभ्यः क्यजेव भवति, अपठितेभ्यस्तु
 क्यषेवेति, तेन निद्रायति, निद्रायते, कृणायति, कृणायते, वर्मायति,
 वर्मायतइत्यादि भवति, निद्राकृणाशब्दौ वृत्तिविषये तद्वृत्तिवर्तते,
 यद्वा निद्रायतेरातस्त्रोपसर्गइति कर्तरि कप्रत्ययान्तो निद्राशब्दो भवति ।
 अत्र गणवृत्तौ ॥

लोहितश्यामदुःखानि हर्षगर्वसुखानि च ।

मूर्च्छा निद्रा कृपा धूमा कृणा नित्यवर्मणी ॥

इत्याकृतिगणसिद्धानि पठ्यन्ते ।

'कष्टाय क्रमणे' । क्रमणमनार्जवः । अत एव निर्देशाच्चतुर्थ्यन्ता
 त्कष्टशब्दादनार्जवे क्यङ् भवति, कष्ट कृच्छ्र दुःखमिह तु तत्कारण-
 कर्म, कष्टाय कर्मणे क्रामति, कष्टायते, कष्ट कर्तुं कुटिलमाचरतीत्यर्थः ।
 अत्र वार्तिकं 'सत्रकृष्टकृष्टगृहनेभ्यः कृष्वचिकीर्षाया'मिति, कृष्वस्य
 पापस्य चिकीर्षा कृष्वचिकीर्षा सा चेह वृत्तिविषये, सत्रादयः कृष्ववचना-
 श्चिकीर्षाया प्रत्यय इति समुदायार्थो भवति, एवं च पापवचनेभ्यो विष-
 यान्तेभ्यः सत्रादिभ्यः चिकीर्षाया प्रत्यय इति वार्तिकार्थः सम्पद्यते ।
 सत्रायतइत्यादि ॥

"कर्मणो रोमन्यतपोभ्यां वर्तिचरोः" ॥ कर्मण इत्यवयवापेक्षमेक-
 वचनं, तेन रोमन्यतपोभ्यां कर्मभ्या यथासंख्यं वर्तिचरोर्धात्वर्थयोः क्यङ्

प्रत्ययो भवतीत्यर्थो भवति । कर्मत्व च रोमन्यनपोभ्या श्रुतवर्तिचरि-
क्रियापेक्षं, वर्तिरित्यत एव निर्देशाण्यन्तादपि क्तिन्, चरिनि चरनेः सम्प्र-
दादित्वाद्वावे क्तिप् । रोमन्य वर्तयति रोमन्यायने, तपस्वरिति तपस्यनि,
'तपसः परस्मैपदं चे'ति परस्मैपदम्, अत्र हनुचननइति वक्तव्यमित्युक्तत्वं न
कीटो रोमन्यं वर्तयतीत्यत्र क्यङ् न भवति । अत्र न्यासपदमञ्जोर्योरपान-
प्रदेशाच्चिह्नं द्रव्यं कीटो वर्तुनं करोतीत्यर्थोऽभिप्रायः, कीटस्त्वपानप्रदेशा-
च्चिह्नमश्नातीति, 'वाय्याप्पफेनाच्चेति वक्तव्यं, 'कर्मवहनमनुवर्तने तच्च
श्रुतोद्गमनक्रियापेक्षं वाय्यादिभिः सम्बध्यते, वाय्यमुद्गमनि वाय्यायने ॥

“शब्दवैरक्लहाधकण्वमेधेभ्यः करणे” ॥ काचशब्दः पापवचनः
करणं क्रिया करोत्यर्थः, न पारिभाषिक तस्मिहि कर्मण इत्यनेन सबधैः
शब्दादिभिः सबधे न स्यात्, शब्दादिभ्यः कर्मभ्यः करणे क्यङ् भवति शब्द
करोति शब्दायते, एवं वैरायते, कलहायते, अधायते, कात्रायते, मेघायते
अत्र न्यासे यद्यप्ययं तत्करोतीति णिचि प्राप्ते आरभ्यते तद्यपि न बाधन
इति शब्दयतीत्याद्यपि भवतीत्युक्तम् । अत्र वार्तिकं मुदिनदुर्दिनाभ्या च
'नीहाराच्च' । अटाट्टासीकाकोटापेटा'मे'ट'पुट'पुटायणमिति, पाटा
स्त्रीपुंसलक्षणा । अतोऽन्ये अट्टादयः क्रियावचनाः मुदिन करोति इति
मुदिनायते इत्याद्युदाहार्यम् ॥

“सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्” ॥ कर्तुं इति प्रयत्नपदं लुप्तय-
ष्टीकं, वेदनाज्ञानकर्तृत्वं च श्रुतवेदनक्रियापेक्षं, तेन वेदनक्रियायाः
कर्तुराधेयभावेन सम्बन्धिभ्यः सुखादिभ्यो वेदनायामर्थे क्यङ् भवतीत्यर्थो
भवति, सुखं वेदयते सुखायते, सुखमनुभवतीत्यर्थः । वेदयित्रा सुखादीनां
विशेषणात्सुखं वेदयते प्रसाधको वेदयन्त्येव क्यङ् न भवति, अत्र
प्रसाध्यगतं सुखं प्रसाधको ऽस्तिनिमीननादिना ज्ञानानीत्यर्थे इति सुखं
वेदयितृगतं न भवति, अत्र श्लोकागणकारः ॥

सुखदुःखगहनक्रुद्धाद्युपक्रमणीयक्रियाः ॥

कृपणः सोढ इतीमे वृत्तादयो दश गणे पठिताः ॥

इति । अत्र गणरत्नमहोदधौ आस्यशब्दोपि पठ्यते, यदाह, आस्यमेवास्यमिति, तृप्तं दुःखं, सोढं सहनम्, अभिभवो वा ॥

“नमोवरिविचित्रडः क्यच्” ॥ अत्रानुवृत्त करणग्रहणम् अभिधानशक्तिस्वाभाव्यात् क्रियाविशेषणं, यदाह वृत्तिकारः, नमसः पूजायां, वरिवसः परिचर्यायां, चित्रड आश्चर्यं, नमस्यति देवान् । वरिवस्यति गुरुन्, चित्रीयते आश्चर्यवान् भवतीत्यर्थः । अन्ये तु परस्याश्चर्यङ्को-तीत्यर्थ इति । यदाह भट्टिः । ततश्चित्रीयमाणोसाविति । अत्रावयवे कृतं समुदायस्तेति न्यायेन चित्रडो ङकारस्य समुदायार्थत्वादात्मनेपदं, नमस्यति देवान् इत्यत्र उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिरिति ‘नमः-स्वस्ती’ति चतुर्थीम्बाधित्वा कर्मणि द्वितीया भवति ।

“पुच्छभाण्डचीवराणिङ्” ॥ ङकारस्तङ्गो गिग्रहणेषु सामान्या-विधातार्थश्च, णकारो गिग्रहणेषु सामान्यग्रहणायैव, वृद्धिभाजः प्रकृते-रभावात्, इहाप्यनुवृत्त करणग्रहणं पूर्ववदभिधानस्वाभाव्यात् क्रिया-विशेषपरं, तदुक्तं वृत्तौ, पुच्छादुदसने पर्यसने वा, भाण्डात्समाचयने, चीवरादर्जने परिधाने वेति, उदसनमुत्क्षेपणं, पर्यसनं परितः क्षेपणं, समाचयनं राशीकरणम्, अर्जनमार्जवनं, परिदानमाच्छादनम्, उत्पुच्छ-यते, सम्भाण्डयते, सञ्जीवरयते, अत्रोदादीनां प्रयोग उदसनाभिव्यक्तये, पुच्छादेः कर्मणो धातावन्तर्भावादकर्मका एते, यच्चिणोः प्रतिषेधे णिश्च-न्यीत्यत्र गिग्रहणेनाप्यस्य ग्रहणात्कर्मकर्तरि पक्षे यक्विगोरभावादुत्पुच्छ-यते गौः स्वयमेव, उदपुपुच्छत गौः स्वयमेवेति शप्चङौ भवतः । यदोत्पुच्छयति गामिति गौः कर्म भवतीति कर्मकर्तृन्यलाभः, उत्पुच्छयतेः कौ णेलीपे सोहलङ्यादिलोपे संयोगान्तलोपे उत्पुदिति भवति । व्रश्चादिष्वेव संयोगान्तलोपे न भवति । ननु ‘द्वोशूडि’ति शब्दे तस्य व्रश्चादिष्वेव तस्य च जश्वेउत्पुडितिभाव्य, यतः शत्वविधौ सतुक्कच्छो गृह्यते, इह तु गुदं छादयतीति पुच्छशब्दव्युत्पत्तेस्तकारस्तुक्ः सम्बधी न भवति । ननु यत्र सतुक् ङकारो न सम्भवति तत्र केवलो गृह्यते इत्यपि स्थितं, वाङ्केः कौ वान्, वांशौ इतिवदत्रापि भवितव्यं, भवतु कामं

तस्यापि संयोगान्तलोपट्युदिति भविष्यति द्विवचनादौ स्तोत्रुरिति
दकारस्य चुत्वे 'शः ङोटी'ति शकारस्य द्वन्वे उत्पुङ्गावित्यादि मिथ्यति ॥

'मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलक्षणव्रतवस्त्रहनकनकनृत्तनृत्तभ्यो णिच्' ॥ गभ्यः
करणे णिच् भवति । मुण्ड करोति मुण्डयति माणवकं, मिश्रयन्त्यत्र,
श्लक्ष्णयति वस्त्रं, लक्षणयति व्यञ्जनं, व्रताद्वोजने तद्विवृत्तौ वा, पयो
व्रतयति, पयो भुङ्क्ते इत्यर्थः । वृषलाच्च व्रतयति, परिहरतीत्यर्थः ।
अत्र भोजनतद्विवृत्तौ व्रतशब्दार्थाविति पूर्ववत्करणे प्रत्ययः । अयमेव
भोजने व्रतशब्दः । यदस्य पयोव्रत भवत्यात्मानमेव तदुर्ध्वयति
निवृत्तौ मुनिरासीत्, द्विव्रतामुरा, एकव्रता देवा इति, पश्यन्त्या
च शस्तं वानेन श्वमासादीन्यपि व्रतयितुमिति, अयमेव व्रतशब्दो
दर्श्यादिवद्विपरीतनक्षण्या तद्विवृत्तौ वर्तते । वस्त्रात्ममाच्छादने ।
संवस्त्रयति प्रावरणम्, अत्रापि पूर्ववत्समाच्छादनं प्रकृत्यर्थे इति
करणं, प्रत्ययार्थे हि प्रकृत्यर्थेन वस्त्रेणैकार्योभूतस्य प्रावरणान्वये साम-
र्थ्याभावाच्च स्यात् । अयं मुण्डयति नापि न इत्यादौ अपेक्षाभावे
साक्षाद् मुण्डादिभ्यो णिज्जनं, तत्करोतीत्येव सिद्धे णिज्जनमाणव-
द्वया माणवकं मुण्डयतीत्यादौ मापेक्षन्त्वेपि भवति तद्येहापि स्यात्,
नैतदस्ति, तत्र हि मुण्डादयो धर्मवचना धर्ममरेतन्ते न तद्विद्म वस्त्र-
मपेक्षते, अथैवं स्यात् मुण्डादौ प्रकृतेरन्यापेनावदत्र प्रत्ययार्थस्यान्य-
पेक्षास्तीति, एव ह्यर्थो न सङ्गच्छते यतः संवस्त्रयति प्रावारमित्यत्र
प्रावारवस्त्रं छादयतीत्यर्थः स्यात् न चैवमिष्यते यतः प्रावारमाच्छादय-
तीत्येवेत्यते । अथोच्यते उभयमप्यप्यतामिति, एवं हि वस्त्रमामान्ये
प्रावारस्यान्तर्भावात्तत्र प्रयोगो व्यर्थः स्यात्, न च ब्राह्मणा आयाता
वसिष्ठो ऽप्यायात इति विशेषस्य प्रावारस्य प्राधान्यं यापनाय प्रयोगः
स्यात्, अत एकस्मिन्वाक्ये एकस्य प्राधान्यं प्रतिपादयितुं न शक्यते ।
अत्र सुधाकरः । समाच्छादनं प्रत्ययार्थमेवात्र, माऽमान्यरूपेणोन्तर्भावेऽपि
विशेषकर्मणोऽनभिहितत्वात् तद्विशेषप्रयोगो यथा भवति माणवकमि-
तीति । एवं सति वस्त्रसामान्यस्य प्रावारो विशेषको भवति, हलादीनां

त्रयाणां ग्रहणे प्रत्ययाः, हलं गृह्णाति हलयति, एवं कलयतीत्यादि ।
 अत्र वार्तिकं, हलिकल्पोरदन्तत्वनिपातनं सन्ध्वावप्रतिषेधार्थमिति,
 ततो ऽजहलत्, अचकलत्, इत्यत्राल्लोपित्वात्मन्धन्वुनीगीन्व न
 भवति, अक्रियमाणे पुनरन्तर्विपातने इकारस्य णाविष्ठवदिति टिलो
 पात्परत्वाद्वृद्धावैकारे तस्यादेशात्पूर्वं परत्वाल्लोपे अलोप्यङ्गं न स्यात्,
 नन्वेकारस्य लोपस्य पूर्वविधावित्वे ऽत्रः परस्मिन्पूर्वविधाविति स्थानिव-
 त्वेनाङ्गस्य चङ्परणिपरत्व विधानिष्यतइति किमनेनालोपित्वात्पूर्वनात्व-
 निपातनेन । नैतदस्ति । अभ्यासस्यादिष्टादवः पूर्वत्वेन तस्येत्वे स्थानि-
 वत्त्वाप्रसङ्गान् । एवमपि कृताकृतप्रसङ्गित्वेन नित्यत्वाद्वृद्धेः पूर्वमेवेकारो
 लोप्यतइति अलोपित्वमिदृशार्थोत्पत्तिनिपातनेनेति चेत् । न, यस्माद्वृद्धौ
 शब्दान्तरप्राप्त्या भवत्यनित्यो लोपः । तूस्ताद्विहनेन, तूस्त केश इति
 श्रीभद्रः । जटीभूताः केशा इति बोधिन्यासे, पापमिति वैजयन्त्या,
 तूस्तानि विहन्ति वितूस्तयति, विहननद्व्योतनाय वेः प्रयोगः ॥

“सत्यापदाशरूपं गतूलशब्दोत्पत्तेः लोपः त्वचवर्मवर्णवृत्त-
 दिभ्यो णिच्” ॥ अत्राप्यनुवृत्त करणग्रहण क्रियाविशेषोपलक्षणम्
 अत्र सत्यापेति निर्देशेन णिच्ः सन्नियोगेन सत्यस्यापुक्, टिलोपाभा-
 वश्च भवति । अत्र वार्तिकम् । अर्थवेदसत्यानामापुग्वक्तव्यइति । अत्र
 भाष्य, सत्यस्य कृजो योगइति । वृत्तौ तु सत्यमाचष्टे सत्यापयती
 त्युक्तम्, अत्र हरदत्तः । भाष्ये कृत्यर्थनिर्देशः प्रयोगदर्शनवशादि-
 हाख्यानार्थ इति, एवमर्थोपयति, वेदापयति, पाश विमुञ्चति, विपा-
 शयतीत्यपि चोपपद्यते, रूपं पश्यति रूपयति, वीणया उपनायति
 उपवीणयति, तूलैरनुकृणाति अनुतूलयति, श्लोकैरुपस्तौति उपश्लोकयति,
 सेनयाऽभियति अभिप्रेषयति, ‘उपसर्गात्सुनोती’त्यादिना पत्वम्, अभ्यषे-
 णयत्, ‘प्राक्सितादडव्यवायेपि’इति पत्वम्, अभिपिप्रेषयति । ‘स्यादि-
 ष्वभ्यासेने’ति साभ्यासस्य पत्वं, लोमान्यनुमार्ष्टि अनुलोमयति, णावि-
 ष्ठवदिति टिलोपः । त्वच गृह्णाति त्वचयति अत्रप्रत्ययान्तोपमका-
 रान्तः, तेनाल्लोपस्य स्थानिवत्त्वादत उपधाया’इति वृद्धिर्न भवति,

हलन्तस्य तु तत्करोतीनि षौ त्वाचयनीनि भवन्ति, टिलोपन्तु प्रकृत्यै
काजितिप्रकृतिवद्भावात् भवति, वर्णणा सवक्ष्यति मयमपनि वर्णं
युक्ताति वर्णयति, वृणोरेवध्वयनि अवचृणोयनि अत्राप्रध्वममेव कर-
णमितीन्दुश्रीभट्टौ चुरादयो माधर्वायाया धातुवृत्तौ व्याज्याना । अत्रापि
विशेषास्तदनुकूपाः समर्थविभक्तयश्च लोकरूपमिद्वानुसारेण वृत्तिकारण
दर्शिता इत्यस्माभिरपि तथैव प्रदर्शिताः ॥

अथान्येभ्योपि णिच् प्रदर्श्यते ॥

‘प्रातिपदिसादृशत्वे बहुन्मिष्टवञ्च’ ॥ प्रातिपदिसादृशत्वे
णिञ् भवति, इष्टनीव चास्मिन्वहुन कार्यं भवति अल्पेव धातु
सूत्रस्य प्रपञ्चः । ‘तत्करोतीतदादष्टे । ‘तेनानिक्कामनि’ । ‘कर्तुं
करणादृशत्वे’ । इति सूत्राणि । अत्र कर्तुपहण करस्य विशेषण
करणत्वेन लोके प्रसिद्धानां चतुरादीनामेव ग्रहणं मभूदिति ।
अन्यथा चतुषा पश्यति चतयनि, श्रोत्रेण शृणोति श्रोत्रपरीक्षादावेव
स्यात् न तु करिभिरवयवानि अउरयति, परशुना हिनति परगयति
इत्यादावपि । एवं च तेनानिक्कामनीयेनक्कर्णदिपस्येव प्रपञ्चे
भवति । अतन्तत्करोतीत्यादौ तदादि प्रकृतौ कर्मत्वादिमन्त्रनिर्वादनार्थं
न तु द्वितीयादयमपीति कर्मत्वादिविशिष्टत्वादिपदिसादेव तेषां
नात् पटुमाचष्टे इति णेर्विवक्षाया पटोः प्रातिपदिकरणे पिष्टव
दिति टिलोपे तस्यात् उपधाया इति वृद्धावचः परस्मिन्नि नि स्यान्नित्
त्वात्तदभावे पठयतीति भवति । सुवन्नादुच्यते ‘सुपो धातुनाति
पदिकयो’रिति सुपो लुकि ढेरश्च लोपे ऽवशिष्टस्य प्रत्ययनतयेन सुवन्त-
त्वात् पदत्वे पठयतीति ज्ञान्य स्यात्, न च टिलोपस्य स्यान्नित्यत्वेन
ठकारस्य पदान्तत्वाभावाज्ज्ञातत्वाप्रसङ्गो यतो न पदान्तेन्यदिना ज्ञान्य
स्यान्नित्यत्वं निषिध्यते न च षौ कृतया भवज्ज्ञया पटोः पदमञ्जुऽपदे
यदस्या टिलोपः स्यान्नित्यद्वयति । अथ च प्रातिपदिकावृद्धापमानो
णिः यथाकथञ्चिन्प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भव-
तीति सिद्धान्तितत्वात् इयावन्तादपि भवति, अत एव णाविष्टवदिन्यत्र

भाष्ये इष्टवदित्यतिदेशस्य - पुंवद्वावटिलोपयणादिपरविन्मत्तौर्लुगर्थमिति पुंवद्वावादिप्रयोजनकथनं न परिगणन किन्तूदाहरणमात्रमेव, तदुक्तं वृत्तौ । प्रादयोपीष्यन्तइति, तत्र पुंवद्वावो यथा, एनीमाचष्टे एतयति, हरिणीमाचष्टे हरितयति, लोहिनीमाचष्टे लोहितयति, कुमारीमाचष्टे कुमारयति इत्यादौ भस्याटे तद्वृत्तइतीष्टनि विहितः पुंवद्वावो णवि-
 ष्टवदित्यतिदेशादत्रापि भवतीत्यन्यादीनामेतादयः पुंशब्दाः भवन्ति ।
 वसिष्ठवदत्र वर्तितव्यमित्यादौ विशेषातिदेशे ब्राह्मणत्वसामान्यनि-
 बन्धनस्याप्यतिदेशादिष्टवदित्यतिदेशाच्चात्र केवलमिष्टनो ऽसाधारणरूपं
 तुरिष्टमेयःस्वित्यादिकमेव कार्यमितिदिश्यते किं तु भसञ्ज्ञानिमित्ततद्वृ-
 तत्वादिनिबन्धनमपीति पुंवद्वावातिदेशस्य प्रयोजनमुक्तम् । अनेन चेष्ट-
 वद्वावेन नेष्टनि दृष्टमेवातिदिश्यते किं तर्हि सम्भावितमात्रमपीति
 कुमारयतीत्याद्युदाहृतम्, अवश्य चैतदेवं विज्ञेयम्, अन्यथा राजय-
 तीत्यादाविष्टनोऽनुत्पादाट्टिलोपो न स्यात्, 'टि'रित्यत्र कैयटे एतयती-
 त्यादौ टिलोपेन ङीपि निवृत्ते तत्सन्धियोगशिष्टत्वाच्चाकारनिवृत्तौ सिद्धा-
 यामपि इष्टवद्वावात् पुंवत्त्वेन रूपसिद्धेर्भाष्ये उक्तत्वात्सन्धियोगशिष्ट
 परिभाषाया अनित्यत्वज्ञापनात् एनेयः श्येनेय इत्यत्र 'यस्येति' लोपेन-
 कारनिवृत्तावपि नकारो न निवर्ततइति उक्तम्, पदमञ्जर्या त्वेवमुक्तो-
 क्तम् अपर आह इडविडमाचष्टे ऐडविडयति, दरदमाचष्टे दारदयतीत्यादौ
 पुंशब्दातिदेशार्थं पुंवद्वचनमिति । ननु इडविडादीनामिष्टनि पुंवद्वावो न
 दृष्ट एव, इष्टनि तस्यासम्भवात् । नेष्टनि दृष्टस्यातिदेशः किं तर्हि
 इष्टनि सम्भावितस्य, अन्यथा अतिराजयतीत्यादौ टिलोपो न स्यात्,
 आदिशब्देन पृथुमाचष्टे प्रथयति उशिजमाचष्टे उशिजयतीत्यादि एह्यते,
 अत्रेडविडपृथू जनपदशब्दौ क्षत्रियजाती चेति 'जनपदशब्दात् क्षत्रियाद-
 जि'त्येतस्य 'ते तद्राजा' इत्यजादीनामापादपरिसमाप्तेः प्रत्ययानां तद्वा-
 जत्वादतश्चेत्यकारप्रत्ययस्य स्त्रियां लुक्कीडविड स्त्री, ऐडविडः पुमान्, दर-
 दुशिजोरपि दृग्ज्मगधेत्यणः पूर्ववल्लुकि दरत् स्त्री दारदः पुमान्, एवमुशिक्
 स्त्री औशिजः पुमान् भवति, नन्वेडविडादीनां गोत्रस्य यद्व्यात् गोत्रं

स चरणैः सहेति जातिवाचित्वाज्जातिस्त्वेति पुंवद्वावनिषेधः कम्माश्च भवति, उच्यते । औपमहुरानिकस्यायं न भव यनित्यत्वात्, अत एव हस्ति-नीनां समूहे हास्तिकमित्यत्र लिङ्गविशिष्टपरिभाषया ऽवित्तस्तीति ठकि जातित्वे ऽपि पुंवत्त्व भवति, अनित्यत्वे च ज्ञापकं प्रवाहणस्य हे इति प्रवाहणशब्दे पूर्वपदवृद्धि विरुध्योत्तरस्य स्वनःमवृद्धिकस्यापि नित्य तद्वचनं, तद्वि प्रवाहणेयीभार्य इत्यत्र पूर्वपदस्य वृद्धभावेऽपि तस्यात्तरपदे वृद्धिनिमित्तत्वेन वृद्धिनिमित्तम्येति पुंवत्त्वनिषेधार्थं, नित्ये च जातिजलजे निषेधे प्रवाहणेयीशब्दस्य गोत्रवचित्वेन जानित्वाद्ने नैव पुंवत्त्वनिषेधसिद्धेः किं तदर्थेनोत्तरपदवृद्धिविधानेन, एवं तर्हि पुंवद्वावस्येडविडाद्यर्थत्वात्सनियोगविशिष्टपरिभाषया अनित्यत्वे प्रमाणाभावात् कथमेनेयः श्यैनेय इति सिद्धतः, तत्रैवं वक्तव्यम्, भाष्यकारेणान्वया सिद्धमैडविडयतीत्यनुदाहृत्यैनयतिशये नयनीत्यादेरुदाहरणादनित्यत्वमेव साध्यतइति पुंवद्वावाभावः । विन्मनोर्हलादेरिति क्तादेरङ्गम्यलोपः, अकारस्येडेमेयसु विधीयमानो रभावो यावपि भवति, अत्र परिगण्यते

‘पृथुं मृदुं भृगं चैव कृपं च दृढमेव च ।

परिपूर्वं वृठं चैव पठेतां रविधौ स्मरेत् ॥

इति । पृथुमाचष्टे प्रथयति । अत्र केचिदाहुः । चडि पृथु इ अन् इति स्थिते टिलोपश्च प्राप्नोति वृद्धिस्त्व, तत्र पूर्वं टिनेये वृद्धिर्न प्राप्नोतीत्यनित्या, वृद्धौ तु टिलोपः शब्दान्तरप्राप्त्याऽनित्यः, उभयोरनित्ययोः परत्वात् वृद्धावादेशात्पूर्वं टिलोपे ऽङ्गस्यानन्तापित्वात्मन्त्वन्लयुनीत्वे अपि प्रथयदिति भवति, अत एव हलिकृत्योरदन्तस्वनिगाननं मन्वद्वावनिषेधार्थमित्युक्तं, यदि वृद्धेः पूर्वं टिनेयः स्यात्तर्हि हलिकृत्योरिकारलोपे नैवाग्लोपित्वसिद्धेः किमस्यनिपातनेनेति गौ चर्चः । अत्र, कथादौ ननु नाग्लोपीत्यत्राल्लोपइति वक्तव्ये अग्लोपिनामित्युदाहरणसामर्थ्यात्पृथुदेवौ वृद्धौ पूर्वं टिलोपेन भवितव्यमित्यग्लोपित्वेन सन्वदित्वाभावा-

१ अग्लोपीति प्रत्याहारपदस्यसामर्थ्यादिति तु बुद्धः पाठः ।

दपपटदित्यादि भवतीत्युक्तं तन्मतेऽत्राप्यपप्रथदिति भवितव्यम्, तथा ह्रस्वर्णान्तेष्ववर्णोपधेषु च वृद्धावप्यवर्णो लुप्यते, अग्लोपिग्रहणवदग्लोपिग्रहणमपि यत्र केवलस्यावर्णस्य लोपस्तत्र तस्य स्यानिवत्त्वेनोपधात्वविधानादेव ह्रस्वाप्रसङ्गादवर्णानवर्णसमुदाये लोपार्थं विज्ञास्यते, इवर्णोपवर्णान्तयोस्तु पूर्वं वृद्धाग्लोपित्वासंभवः । ननु स्वामिनमाख्यत् असस्वामत्, गोमन्तमाख्यत् अजुगोमत्, प्रादुराख्यत् अपप्रादत्, यादृशमाख्यत् अययादत्, तादृशमाख्यत् अततादत्, इत्यादौ यत्र वृद्धेरप्रसङ्गादवर्णस्येको लोपस्तत्रेत्वनिवृत्त्यर्थमग्लोप इति वक्तव्यम् । नैतदस्ति । यदीदृशाणिजेव नोत्पद्यते, अत्र च प्रमाणं यौ चङीत्यत्र भाष्ये नाग्लोपीत्यत्र प्रत्याहारग्रहणेन वृद्धेः पूर्वं वा टिलोपज्ञापनस्यावस्थापन, स्वामित्रादेर्गौ तत्कथं सङ्गच्छेत । ननु स्रग्विणमाख्यत् असस्रजदित्यत्र विनो लुक्पुपधाया वृद्धौ तस्य ह्रस्वनिवृत्त्यर्थमग्लोपिग्रहणं स्यात्, इष्यते च विवन्तादिष्ठवद्भावश्च, विनो लुक् प्रयोजनत्वेनोक्तत्वात्, नैतदस्ति, यतष्टेरित्यत्र भाष्यकारेण स्रजयतीत्यादीनामुदाहृतत्वादङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिर्निष्ठितस्येति वा वृद्धेरप्रसङ्गात् ह्रस्वभावित्युपधैव नास्ति, कस्मिंश्चिदङ्गकार्ये वृत्ते पुनरप्याङ्गकार्यवृत्तौ प्राग्वविधिस्तस्य कार्यस्य तच्चेदङ्गं प्रयोगार्हं परिनिष्ठितप्रयोगार्हं भवतीति परिभाषार्थः, अस्ति चात्र विन्मतोर्लुकाऽङ्गकार्यस्य वृद्धेः पूर्वं प्रवृत्तिः, तस्मात् ज्ञापकमेव प्रत्याहारग्रहणं वृद्धेः पूर्वं टिलोपप्रवृत्तिः, अत एव वादितवन्त प्रयोजितवानवीवदत् वीणां परिवादकेनेत्यत्र योऽसौ यौ णेलोपस्तस्य स्यानिवत्त्वेनाङ्गस्याग्लोपित्वादुपधाह्रस्वत्वनिषेधे प्राप्ते षेर्णिच्युपसंख्यानं कर्त्तव्यमिति वार्त्तिकं चारब्धम्, न च णेः पूर्वं वृद्धौ पश्चाल्लोपेऽङ्गस्यानग्लोपित्वात्तस्य स्यानिवत्त्वेनोकारस्योपधात्वविधातात् ह्रस्वो न प्राप्नोतीति वार्त्तिकारम्भः स्यादिति वाच्यम्, यतश्चङ्परिणिह्रासकुत्वेऽपि स्यानिवत्त्वं न्ययेधीत् । किं च ण्यल्लोपेत्यादिना वृद्धेः पूर्वं णिलोपस्योक्तत्वादनाग्लोपित्वशङ्कैव न भवति, अत एव भाष्यकारेणोपधाह्रस्वत्वे षेर्णिचीति वार्त्तिकमग्लोपित्वाद् ध्रस्वत्व न प्राप्नोतीत्यारब्धमिति व्याख्यातम्, वृत्तिकारोऽपि वृद्धेः पूर्वं टिलोपमनुमेने, यदाह वादितवन्त प्रयो-

जितवानधीवद्वीणां परिवादकेन योऽसौ यौगिलोपस्तस्य स्थानिवद्भावा-
दभ्लोपित्वाद्वा ऽङ्गस्य ह्रस्वो न प्राप्नोतीति, गतमदः । अपरे हनि-
कल्पोऽस्त्वनिपातनस्य भाष्यवार्तिकयोरित्वाभावप्रयोजनत्वेन कथना-
दगिति प्रत्याहारयहणादृष्टेः पूर्वं टिलोप इति भाष्ये व्यवस्थितत्वाच्च
वृद्धेरुत्तरकालं पूर्वं वा कामचारेण टिलोप इत्यप्यटत् अपीपटदित्यु-
भयमपीति प्रतिपत्ताः । अत्र मते ऽपप्रथदपिप्रथदित्युभयं भवति, एवं
अदयतीत्यत्रापि, अशयति, क्रशयति, द्रठयति, एषा घडि सर्वथा
ऽभ्लोपित्वात् अवभ्रशत् अवक्रशत् अदद्रठदिति भवति, परिव्रठयतीत्यत्र
सोपसर्गात्संशामयतेरेव धातुमञ्जानिमित्तप्रत्ययो नान्यम्मादिति पृथ-
क्कृतोपसर्गादृठादेरेव प्रत्यय इति तिङ्गुतिङ् इति निघातो भवति, पर्य-
व्रठयदित्यत्र परेः परो ऽङ् भवति, परिव्रठय्येत्यत्र परेण्यन्तेन 'कुगतिप्रा-
दय' इति समासे 'समासे नञ्पूर्वं त्वो ल्यत्रि'ति ल्यव् भवति, योऽन्यपि लघु-
पूर्वा'दित्ययादेशः, परिविप्रठयिषति, पर्यविप्रठदित्यत्र संखडोऽङ्गरेरेव
द्विर्वचनं भवति, 'सन्त्यत' इति सनीत्य, सन्त्यदित्वं चान्नोपिम्वाच्च
भवति । पटमाचष्टे पटयति, टेरिति विहितटिनिपो णावपि भवति,
तस्य स्थानिवत्त्वादुपधावृद्धिर्न भवति, पटमाचष्टपपटत्, अन्नोपित्वात्
सन्त्यदित्वं न भवति, न चात्रेष्टवद्भावेनाङ्गस्य भत्वाद्यस्येति लोपेनापि
पटयतीत्यादिसिद्धेः किं लोपवचनेन, सत्यमत्रैवं सिध्यति, पटुवृषद्रा-
जादिभ्यो यौ पटयति वृषयति राजयतीत्याद्यर्थमवश्यं टिलोपो वाच्यः,
सन्त्यल्लघुनीत्यत्र हरदत्तः । यत्र केवलस्यानो लोपस्तत्र स्थानिवत्त्वे
नाङ्गस्य चङ्परलिपरत्वाभावादेवेत्वाभावमिदुरेनालोपवचनमभ्युक्तोपा-
र्थमपि इत्यत्र वृषद्राजादावपीत्वाद्यभाव इत्याह, तच्च । अनादिष्टा-
दचः पूर्वस्य कस्मिंश्चित्कार्ये विधातव्ये स्थानिवद्भावो न स्वादिष्टादचः
पूर्वस्यापीत्यभ्यासेऽस्वे स्थानिवत्त्वाप्रसङ्गात्, अङ्गस्य चङ्परलिपरत्वं त्वनू-
क्यते न विधीयत इति तस्य स्थानिवत्त्वाप्रसङ्गेऽङ्गं चङ्परं न स्यादित्या-
शङ्का नोदेति, सत्यपि वा स्थानिवत्त्वे तत्सहितमेवाङ्गं भविष्यति, चङ्-
परलिपरं चेति न स्थानिवत्त्वेनाङ्गस्य चङ्परलिपरत्वमङ्गः । ननु कथन्त-

दुक्तमभ्यासो ऽनादिष्टादचः पूर्वा न भवतीति, यतः पठादेशौ चङि यष्टि-
लोपात् पूर्वमनादिष्टादचः पूर्वत्वेन दृष्टः यद्वा ऽऽदिः स एव द्विः प्रयुज्यत-
इति स्यादेवाभ्यासस्यानादिष्टादचः पूर्वत्व, सत्यमेवं किं तु यत्कार्यत्वेना-
श्रीयते ऽभ्यासावस्य न तदनादिष्टादचः पूर्वं भवति, एव हलिकृत्योरा
दन्तत्वनिपातनं सगच्छते, अन्यथा यस्य कस्यापि अचष्टिलोपे तस्य
स्थानिवद्भावेनाङ्गं चङ्परं न स्यादिति किमन्तवनिपातनेन, सत्यपि वा
स्थानिवत्त्वे तत्सहितमेव चङ्परणिपरमङ्गं भविष्यति, अभ्यासश्च तस्यैवेति
सर्वथा नालोप इत्येवेत्वाद्याभावो वाच्यः, अददुषत्, अरराजदित्या-
दावनलोपे ऽभ्यामस्येत्वाभावस्त्वनलोपइत्याश्रीयमाणस्याको लोपा-
भावस्याविद्यमानत्वात्, पटुमाख्यदित्यत्र वृद्धेः पूर्वं टिलोपेङ्गस्यालो-
पित्वादपपटदित्येके, कृताया वृद्धौ टिलोपादपीपटदित्येके । कृतायाम-
कृतायां वा वृद्धौ कामचारेण टिलोपादुभयमपीन्यरे । पतद्वयमिदं
पुंवद्भावे प्रदर्शितं, पटोरयं मतभेदो ऽन्येषामुवर्णान्तानां कयादिना-
मिवर्णान्तानां च द्रष्टव्यः । कुमारोदीनां तु पुंवद्भावेन कुमारोद्भावे-
विधानात् वृद्धावप्येव लुयतइत्यचकुमारदित्याद्येव भवति, इदं
चालोपित्वेनेत्वाभाववचनं सन्वत्सूत्रस्य चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योभ्यासो
लघुपर इत्यर्थवादिनां हरदत्तादीनामनुसारेण न तु चङ्परे णौ यल्लघु
तस्मिन्परतो ऽभ्यासस्येति वादिनां कैयटकारादीनां, तेषां यदत्रा-
भ्यासात्परं लघु न तच्चङ्परणिपरं, यच्चङ्परं न तल्लघु, अभ्यासस्य
वर्णान्तरेण व्यवधानाच्च तत्पर इति नास्त्यन्नेत्वप्रसंगः । तथाहि तत्र
भाष्ये अजजागरदित्यत्राभ्यासलघुपरत्वाभावादित्थं न भवतीति उक्तम्,
यदा व्यवहितं चात्र लघु चङ्परमिति । यद्येवमचीकृतदजीहरदि-
त्यादावपि व्यवधानं प्राप्नोति । नैतदस्ति । येन नाव्यवधानं तेन
व्यवहितेपि वचनप्रामाण्यादित्येकेन वर्णेन व्यवधानमाश्रीयते न पुनर-
नेकेनापि । एवमप्यचित्तदित्यत्र न प्राप्नोति । एवं तर्हि आचार्यप्रवृत्ति-
ज्ञापयति भवति संयोगेन व्यवधानेपीति, यदयं 'मत्सृष्टृत्वे'ति अस-
स्मरदित्यादीनामित्वाभाषार्थमस्य नास्ति । अवश्यं चैतदेवं चङ्परे

गौ यल्लघु तल्लोपस्य स्यानिवत्त्वेन चङ्परणिपरत्वस्याभावादित्थं न भवतीति वाच्यं, तदेतत्स्यानिवत्त्वं न भवत्यभ्यासस्यादिष्टादचः पूर्वत्वात्सत्यपि वा स्यानिवत्त्वे तत्सहितमेव चङ्परणिपरमङ्गं भवति, अभ्यासस्य च तस्यैवेतीत्वं दुर्वारमिदानीमेवोक्तम् । अथ कथमत्रेत्वादि भवति वादितवन्तं प्रयोजितवान् अवीवदद्वीणां परिवादकेनेति, यावता योसौ गौ णिलोपस्तस्य स्यानिवत्त्वेनाभ्यासात्परस्य लघोश्चङ्परत्वं विहन्यते, अत्र वृत्तिकारः परिहरति । एयाकृतिनिर्देशात्सिद्धमिति । अत एव णिजाते निर्मितत्वेनाश्रयणात् गोवलीवर्दन्यायेन णिवोन्यस्याको लोप इहाम्लोप इत्यम्लोपित्वादित्थं न प्राप्नोतीत्येतदपि परिहृतं, यत्तु सन्वल्लघुनीत्यत्र भाष्ये गौः परत्वादुद्धौ कृतायां लोप इति अम्लोपित्वाभावादित्थं न भवतीतिवचनं तत् प्रौढिवादमात्रं, यस्त्वयमेव गौ चङीत्यत्र नागोपीत्यगितिप्रत्याहारपदसामर्थ्यात् एयल्लोपेत्यादिवचनात् वृद्धेः पूर्वं णिलोपमाह । एवमन्यत्रापि णेर्गौ द्रष्टव्यं, वहेः क्ते यजादित्वात् संप्रसारणे परपूर्वत्वे हो ठे 'भ्रष्टयो'रिति तकारस्य धकारे तस्य घृत्वेन ठकारे ठो ठे लोपे दीर्घः, ऊठः, तमावष्टे ऊठयति, चङि अजादित्वात् द्वितीयस्यैकाचश्चङीति द्विर्वचने कर्तव्ये पूर्वत्रासिद्धत्वेन ठत्वादीनामसिद्धत्वे गौ कृतं स्यानिवदिति णिलोपस्य च स्यानिवत्त्वे ऋशब्दस्य द्विरुक्तौ उत्तरखण्डस्य पूर्ववदुत्वादावभ्यासस्य हलादिशेषे 'कुहोश्चु'रिति कुत्वेन हकारस्य भ्रकारे तस्य चाभ्यासे चर्चन्ति जश्त्वे जकारः, आटि वृद्धावौजठदिति भवति । अम्लोपित्वात्सन्वादित्वाभाव औजठदिति, क्तिनि पूर्ववत् संप्रसारणादूठिशब्दाणिचि चङि ऋति शब्दस्य द्विरुक्तौ । ननु कथमिह ठत्वादीनामसिद्धत्वं, यतः पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचनइत्युच्यते, सत्यमु'भौ माभ्यासस्येति उपसर्गादुत्तरस्यानितेर्नकारस्य णत्वविधानादनित्यत्वज्ञापनादिह तत्र प्रवर्तते, नित्ये चास्मिन् प्राणितीतिवत् प्राणिणिषतीत्यत्रापि अनितेर्नकारस्योपसर्गस्याजिमित्वात् परत्वेना'निते'रिति णत्वे कृते तत्सहितस्यैव द्विर्वचनसिद्धेः किमनेन साभ्यासस्य णत्वविधानेन, कर्तुंशब्दाद्वा णाविष्टवदतिदेशात् कृन्वसीति विधीयमाने वृश्चल्लोपे करयतीत्येके, एवं

भर्त्रादीनामपि भरयतीत्यादि द्रष्टव्यं, दोग्धादेस्तु नौ घत्वादीनां पूर्वत्रासिद्धत्वेन वृशब्दलोपे दौहीयसीत्यादिवद् दोहयतीत्यादि भवति । अन्ये त्वयं वृशब्दलोपश्चन्द्रस्युपदिष्टः कथं भाषायां स्यादिति कर्तयतीत्यादि प्रतिपन्नाः । पितृयतीत्यादावयं वृशब्दलोपो नाशङ्क्यः, उणादयोऽव्युत्पत्तानीति पित्रादिषु व्युत्पत्तिकार्यानाश्रयणादवयवप्रविभागो न भवति । अत्र च ज्ञापकम् । अप्तृन्नित्यत्र नप्वादीनां ग्रहणमव्युत्पत्तौ वृजन्तत्वादेव दीर्घसिद्धेः किं तेषां ग्रहणेन । त्वामाचष्टे त्वादयति, 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे'ति एकार्थयोर्युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्वमयोर्द्विः, अत्रान्येङ्गवृत्तइति वृद्धिमकृत्वा त्वदयति मदयतीति मन्यन्ते । अपरे पुनस्त्वमयोः परपूर्वत्वात् पूर्वं नित्यत्वाद्विलोपे वृद्धौ पुक्ति त्वापयति मापयतीति भवति, त्वादयतीतिवादिनामन्तरङ्गपरपूर्वत्वमित्यभिप्रायः । युवामाचष्टे युष्मयति, आवामाचष्टे, ऽस्मयति, 'युवावि'त्यत्र द्विवचने द्व्यर्थवृत्तताया अभिधानेपि णिज्जुत्पत्तिः प्रातिपदिकादिति विभक्तेरनुत्पादे विभक्तिपरत्वाभावाच्च युवावयोः प्रसंगे, इह संबन्तादुत्पत्तावपि विभक्तेर्लुप्तत्वेन विभक्तिपरत्वाभावाद्युवावयोरप्रसङ्ग एव, न च मन्तव्यमन्तरङ्गत्वाङ्गुः पूर्वं युवावयोर्द्वितीयाया चेति शेषे लोपापवादे आत्वे पुक्ति युवापयति आवापयतीति स्यातामिति, यतोन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुग् बाधते, उपपादितं चैतत् क्यञ्चिधौ, प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति त्वमौ युष्मदस्मदोरेकार्थत्वाच्च प्रसजतो ऽत एव युष्मानाचष्टे अस्मानाचष्टे युष्मयत्यस्मयतीत्यत्रापि न भवतस्त्वामतिक्रान्तः अतिक्रान्तौ अतिक्रान्तान् अतित्वामेवमतिमाम् अतित्वान् अतिमान्, अत्र च युष्मदस्मदोरेकार्थत्वाद्विभक्तिपरत्वाच्च त्वमावेकवचनइति त्वमयोःशेषे लोपापवादे 'द्वितीयायां' चेति पूर्ववदात्वे शसोन्यत्र विभक्तेर्द्वेः प्रथमयोरित्यमादेशः । शसि तु शसो नेति युष्मदस्मद्वां परस्य शस आदेर्नकारे सकारस्य संयोगान्तलोपः, युवावौ द्विवचनइत्यत्र द्वयोर्वचन द्विवचनं, तच्च युष्मदस्मदोर्विशेषणमिति स्थितत्वादौहि युवावयोरप्रसङ्गः, अत्रार्थे नौ युष्मदस्मदोरेकार्थत्वेन प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति

त्वमयोरन्तरङ्गत्वात्परपूर्वत्वे तत्तद्विलोपे क्त्वित्त्वयति अतिमयतीति
भवतः, अत्रापि परपूर्वत्वात्पूर्वं नित्यत्वाट्टिनोप इतिवादिनामतित्वाप-
यति, अतिमापयतीति स्यात्, युवामतिक्रान्तमतिक्रान्तावतियुवामतिक्रा-
न्तान् अतियुवान्, एवमन्यावामन्यावान्, युष्मदस्मदोर्गर्थत्वात् विभक्ति-
परत्वाच्च युवावौ द्विवचनइति युवावयोः पूर्वत्वाद् 'द्वितीयायां चे'त्याच्च
'हेः प्रथमयोरमि'त्यम्भावः, शसो नादि च भवति, युष्मानतिक्रान्तो
ऽतिक्रान्तौ अतियुष्मानतिक्रान्तानतियुष्मानेवमत्यस्मान्, पूर्ववदात्ववि-
भक्तिकार्यं, सर्वत्रार्थं यौ युष्मदस्मदोर्गर्थत्वात्त्वमयोरभावादतियुष्म-
यति अत्यस्मयतीति भाव्य, श्वानमाचष्टे शवयति, अत्र श्वचिति
स्थिते णाविष्टवदतिदेशाद् द्वौ टिनोपौ प्राप्तः, टेरित्येको 'नस्तद्वित'इति
अपरस्तत्र प्रकृत्येकाज्जिति प्रकृतिभावटेरित्यस्यैवेति तस्मिन्निवृत्तेपि
'नस्तद्वित'इति भवति तत्र कृने इष्टनोजादित्वेन तत्र परे पूर्वस्य भत्वं
दृष्टमिति णावप्यतिदेशेन तस्य संभवाद्भकारसंप्रसारणे वृद्धावावादेशः ।
नन्विष्टवदतिदेशवाक्ये णावित्युपमेये सप्तमीश्रवणादिष्टवदित्युपमाने
वतिः सप्तम्यन्तात् इति तत्र परे पूर्वस्य यकार्यं दृष्ट तदेवातिदेष्टव्यं
णावपि परे न पुनर्गोष्ठनः तद्वितत्वमपि इति, तत्र प्रातिपदिकस्येति
वचनस्य प्रत्ययकार्याणामतिदेशनिवृत्त्यर्थत्वाद्वा लेप्तद्वितत्वस्याभावा
त्कथं 'नस्तद्वित' इति टिनोपोऽत्र स्यात्, अतद्वितत्वादेव त्वपा-
योर्गुणो न कृतः । उच्यते । अमन्यपि तद्वितत्वे ब्रह्मवत्तरो ब्रह्मिष्ठ
इत्यादौ विन्मतोर्लुकि इष्टनि परे प्रकृतो नान्तनतण्डितिनोपो दृष्ट
इत्यत्रेष्टनोभावेपि संभावनया स्यादेव, यथा पट्टिनमा पटिष्ठेत्यादौ
'भस्याटे तद्वित'इति पुंनद्रात्रात्कुमारीमाचष्टे कुमारयनीत्यादौ इष्टनः
संभावनया भवति, एवं तर्हि दक्षिष्ठ इत्यादाविष्टन्योर्गुणः पूर्वस्य दृष्ट
इत्यत्राप्यतिदेशः प्राप्नोति । नैव दोषः । यदस्मिन्संप्रसारणटिनोपौ
असिद्धवदत्रेत्यसिद्धो भविष्यतः । अन्ये तु ब्रह्मिष्ठ इत्यादौ नान्त
लवणाट्टिनोपात् परत्वाट्टेरित्यनेनैव भवितव्यमिति तस्याप्रवृत्तेरेष्टनि
परे पूर्वत्वादशनादिहातिदेशो न युक्त इति तदभावान् केवलं संप्रसारण-

पूर्वत्वयोः शुनयतीति भवतीति मन्यन्ते । नन्वनयोराभीययोऽपिलोपयो-
 'रसिद्ववदत्रे'त्यन्योन्यस्यासिद्वत्वात्कथं विप्रतिषेधः, 'घुमास्ये'त्यत्र हल्-
 ग्रहणेन विप्रतिषेधइदमसिद्वत्वं नेति ज्ञापनात्, तदुल्लग्रहणं गोद
 इत्यादावजादौ क्लित्यार्धधातुके ईत्वं माभूदिति । यदि च विप्रतिषेधे
 इदमसिद्वत्वं स्यात् कृतेपीत्वे तस्यासिद्वत्वादातो लोपे सिद्वं गोद इत्या-
 दीति किं हल्यग्रहणेन, नन्वेतदीत्वेपि 'अचि श्नुधात्वि'तीयङ् स्यादिति
 तत्रिवृत्त्यर्थमीत्वमेव माभूदिति अर्थवदेव । नैतदस्ति प्रयोजनं, यदि यङो-
 प्याभीयत्वेन तस्मिन्नपि तस्यासिद्वत्वात्, मैवं, युटो यणीवियङ्गीत्य-
 स्यासिद्वत्त्वस्याभावो वाच्यः, अन्यथा धियौ पियाविति न सिध्यति ।
 यद्वधातिपिबन्ध्याः कौ कृतं 'घुमास्ये'तीत्वमियङ्सिद्वं स्यात्, नैत-
 दस्ति, ध्यायतेः संप्रसारणं चेति ध्यायतेः प्यायतेश्च कौ संप्रसारण-
 दीर्घत्वयोर्धीपीशब्दयोर्व्युत्पादनादवश्यं चैतदेवं वाक्यकास्य मते विज्ञे-
 यमन्यथा तेन वकारे प्रतिषेध इति क्वावपीत्वाभावस्योक्तत्वाद्वापाशब्दा-
 वेव स्यातां, तथा च तत्र भाष्ये यदि तर्हि वकारे प्रतिषेध उच्यते
 कथं धीरिति नोदयित्वा धीरिति चोक्त, किमुक्तं नैतदीत्वं किं तर्हि
 ध्यायोः संप्रसारणमित्युक्तं, यदपि मतमीत्वे वकारस्य निषेध इत्यस्य
 भाष्ये ऽनवस्थानात् क्वावप्येतौ शब्दौ भवत इति तदपि क्वावीत्वं,
 विभक्ताविद्यङिति व्याश्रयत्वान्नास्त्यसिद्वत्त्वसंगः । एवमपि व्यवस्थार्थं
 हल्यग्रहणं कर्तव्यमेव, अन्यथाभीयानामन्योन्यस्मिन्नान्योन्यस्यासिद्वत्वा-
 दीत्वमाल्लोपे सिद्वमाल्लोपश्चेत्त्वइति व्यवस्था न प्रकल्पेन, एवं तर्हि
 'आतो लोप इटि चे'त्यजादौ क्लित्यार्धधातुके ऽकारस्य लोपो भवति,
 ततो घुमास्यागापाजहातिसा धा२रपि आकारस्य लोपो भवति, पूर्वाक्त-
 डादौ परे, इदं चेत्वबाधनार्थम्, इदं वाजादावाल्लोपस्योक्तत्वाद्गुलादौ
 क्लित्यार्धधातुके भवति, तत 'एलिङि' 'वान्यस्यसयोगादे.' 'न ल्यपि'
 'मयतेरिदन्यतरस्यां'ततो यति, आत इत्येव, यति चात ईद्ववत्येवं लघी-
 यसा न्यासेन सिद्धावपि यद्वरीयसा यत्रमास्याय हल्यग्रहणं करोति
 तस्यैतत्प्रयोजनं विप्रतिषेधे नेदमसिद्वत्वमिति, एवमप्युक्तो विप्रतिषेधः,

इष्टवदतिदेशेनैव द्वावपि टिलोपौ प्राप्येने इत्येकयोगनक्षत्रत्वेन पौर्वा-
पर्याभावात्, तथा 'प्रत्ययलोप' इत्यत्र धातुर्दीर्घोऽप्येव विप्रति-
षेधानुपपत्तिरेकयोगनक्षत्रत्वात् परिवीरिति, न युक्ते विप्रतिषेधः ।
किमनेनातिदिश्यते, यत्प्रकृतावस्थितं तत्र च परत्वावस्थितिनित्येन
बाधित्वा टेरित्येव व्यवस्थितमिति, 'प्रकृत्यैकात्रि'त्यत्र भाष्यादौ
अस्तिष्ठ इत्यत्र 'नस्तिष्ठित'इति टिलोपो विहितः । विदुसमावष्टे-
इति यौ टिलोपे विदुयतीति दौर्गाः । अत्रात्रेयः । प्रसारणाभाव-
श्चिन्त्यइति, तत्रेष्टवद्भावेन भत्वा'द्वयोःसंसारण'मिति संप्रसारणे
वृद्धावावादेशे विदायतीति भवति, भवितव्यमित्येके । अपरे तु वृत्ते ।
कृतेपि टिलोपे प्रसारणं प्राप्नोतीति नित्यत्वात् कृते तस्मिन्वन्तरङ्गत्वा
त्परपूर्वत्वे पश्चाद्विलोप इति विदयतीति । ननु टिलोपोपि कृते
संप्रसारणे प्राप्नोतीति नित्यः, नैतदस्ति, कृते संप्रसारणे ऽन्तरङ्गत्वात्
परपूर्वत्वे शब्दान्तरप्राप्या नित्योपमनित्यो भवति । स्यादेतदेवं
यदि प्रसारणमात्रेण शब्दान्तरप्राप्तिः स्याच्च तथा किं तु पर-
पूर्वत्वेन, यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते नैतदनित्यं भवति ।
नैव दोषः । यस्य निमित्तमिति परेभाषा न सार्वत्रिकी, उक्तं चैवमाह
जादीनामित्यत्र हरदत्तादिभिः । अमुमेव पञ्चमाश्रित्य अस्माभिर्मोक्षो-
पाया धातु-सौ विदयतीति प्रदर्शितम् । उदञ्चमाचष्टे उदीचयति ।
अत्र सोपसर्गात्संशामयतेरिति ज्ञापकाद्वातुमञ्जानिमित्ते प्रत्यये उपस-
र्गाणां पृथक्करणात् क्विचन्तालुप्तनकारान्तादञ्चतेरेव यौ 'प्रकृत्यैकात्रि'ति
प्रकृतिभावाद्विलोपाभावो, यावद्विष्टवदतिदेशेन भत्वे 'अव इति तु लुप्त-
नकारस्याञ्चतेः प्राप्ताकारलोपापवाद 'उद ईदि'तीत्य भवति । चङि
खिलोपस्य 'द्विर्वचनेची'ति स्थानित्वा दञ्जाद्वितीयाप्येति' विशब्दस्य
द्विर्वचने अङ्गस्याटि वृद्धौ उदेचिचदिति भवति, स्यपि लघुपूर्वत्वाभावे-
नायादेशाभावाणिलोप, उदिच्येति भवति, प्रत्यञ्चमावष्टे प्रतीच-
यति, अत्रापि पूर्ववदञ्चतेर्भत्वा'दव इत्यकारलोपे 'चा'इति लुप्तन
कारेऽञ्चतौ पूर्वपदस्य दीर्घः । चङि विशब्दात् पूर्वमाटि यगादेशे

प्रत्यचिचत्, 'इकोसवर्णे शाकल्पस्य ह्रस्वश्चे'ति यदेकोसवर्णेचि प्रकृति-
 भावो दीर्घस्य च ह्रस्वस्तदा प्रतिग्रचिचदिति भवति । ल्यपि तु पूर्व-
 वत् प्रतीच्येति भवति । संम्यञ्चमाचष्टे समीचयति । 'समःसमी'त्य-
 ञ्चतौ सम्पादेशे 'ऽव'इत्यकारलोपे 'चा'विति दीर्घः । अत्रापि
 षड्ल्यपोः पूर्ववत् सम्यचिचत् समीच्येति भवति, तिरोञ्चतीति तिर्यङ्,
 'तिरसस्तिर्यलोप'इति तिर्यादेशः, तमाचष्टे तिराययति, इष्टवद्भावेना-
 ञ्चतेष्टिलोपे वृद्धायौ, तिरस इत्यत्रालोप इति अलोपे तिर्यादेशाभावो
 ऽ'व'इत्यञ्चतेर्विधीयमानाकारलोपविषयः, स ह्यनन्तरः, अनन्तरस्य
 विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा, अत्र पुनरिष्टवद्भावप्रवृत्त्या 'टे'ति तिरेरि-
 कारस्य वृद्धाययोः कृतयोर्वा लोपो न भवति, अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधि
 निर्दिष्टतस्येति । यद्वा 'असिद्धवदत्रे'ति प्राथमिकस्याञ्चतेष्टिलोपस्य
 चारमिकेस्मिन्सिद्धत्वाद्वायाकारितरामित्यत्र तशब्दे पूर्वप्रवृत्तश्चिणो
 लुक् पुनस्तरपि स्वप्रवृत्तावसिद्धो भवति, अत एव तिरेः स्यानिवृत्तेना-
 व्ययत्वादव्ययानां भमात्रइति प्राप्तोपि टिलोपो न भवति, एवमपीकारस्य
 यस्येति लोपेन भवितव्यमिति चेन्न । टिलोपस्यासिद्धत्वात्परया वृद्धा
 बाधाद्वा । यत्तु कस्येदित्यत्र भाष्ये कायमित्यत्रेकारवचनसामर्थ्याद् 'यस्येति
 चे'ति लोपाभाववचनं तदुपायान्तरपरतया कथं चित्रेयम् । अस्या-
 लोपित्वेनोपधाह्रस्वत्वाभावादतितिरायदिति, सहाञ्चतीति सङ्ग्रहः,
 'सहस्य सध्रि'रिति सध्यादेशः, सध्रिमाचष्टे सध्राययति, पूर्ववत् धेरिका-
 रलोपाभावः, चङि अससध्यत्, अलोपित्वादुपधाह्रस्वत्वाभावः, अथा-
 सस्येत्वं तु लघुरत्वाभावादपि न भवति, यदीष्टवद्भावेन प्राप्तस्याञ्च-
 तेष्टिलोपस्य तिर्यादेरिकारे पुनः प्रवृत्तावसिद्धत्वं तर्हि कुमारयतीत्यादा-
 विष्टवद्भावेन प्रवृत्तं पुंवत्त्वं तेनैव कुमारादेरकारलोपे ऽसिद्धं, नैव दोषः,
 इष्टवद्भावेनातिदिश्यमानानां कार्याणामुत्पत्तिदेश एव देश इत्याश्रयणा-
 त्पुंवत्त्वोत्पत्तिश्च 'भस्याठे तद्धित'इति विधीयमाना आभीया न भवति,
 अत एव भाष्यकारेण लोहिनीमाचष्टे लोहितयतीत्यादिषु इष्टवद्भावेन
 लोहितादेशेन पुनरिष्टिलोपः कृतः, एवमपि सध्ययतीत्यादावङ्गवृत्तिपरि-

भाषया वृद्धिर्न प्राप्नोतीति नाशङ्क्यं, यस्मादेषा भाष्यकारादिभिर्व्याश्रिता तत्रैव प्रवर्तते, अत एवात्र परिभाषावाक्ये निष्ठितस्येत्युक्तं, निष्ठितत्वं च प्रयोगार्हत्वं, तच्चाप्तभाषितमन्तरेणावगन्तुं न शक्यते । विषु अञ्चति गच्छतीति विश्वक्, तमञ्चतीति विष्वद्वाङ् । देवान् अञ्चतीति देवद्वाङ् 'विश्वदेवयोश्च देरद्वाञ्चतावप्रत्यये' इत्याद्यादेशः । विष्वद्वाञ्चमाचष्टे वष्वद्वाययति, एवं देवद्वाययति, पूर्ववदञ्चतेर्लोपे यस्येति लोपात्परत्वाद्दीकारस्य वृद्धावायादेशः । विष्वक्शब्दाय धर्मवचनोपि दृश्यते । यथा घोरस्य सतो विपुणचारित्यत्र, विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेरिति लोमादिलक्षणे मत्वर्थीये नकारे उत्तरपदप्राकृतसन्धेर्लोपः । अत्र भट्टभास्करः । विपुणस्य, नानाविधा या गतिस्तदुतः, 'विष्वदेवयोश्चे'ति चशब्दात्सर्वनाम्नो ऽद्यादेशे सर्वद्राययतीत्यादि । अदसोद्यादेशे पृत्तत्रयम् । 'अदसोसेदौदु दोम' इति उत्त्वमुभ्यामपि दकारभ्यां परयोः, मत्व च द्वयोरपि दकारयोरित्येकः पक्षः । उत्त्वमन्वे परयोरेवेति द्वितीयः, नेति तृतीयः, तथा चोक्तम् ।

'अदसोद्रेः पृथङ् मुत्व केचिदिच्छन्ति लत्ववत् ।

केचिदन्त्यसदेशस्य नेत्येके ऽसेहि दृश्यते ॥

इति । तत्रोत्त्वमत्वयोरमुमुप्राययति, अदमुप्राययतीति भवतः, उकारस्य तु यणादेशः पूर्वत्रासिद्धमित्यसिद्धत्वात् भवति । उत्त्वमत्वयोरभावे त्वदद्राययतीति । चङि अजादित्वेन द्वितीयस्यैकाचो द्विवचने ऽलोपित्वादुपधाद्वस्वत्वाभावादमुमुप्राययति, उत्त्वमत्वयोरभावे सन्वदितीत्वमलोपित्वादभ्यासस्य चङ्परलघुपरत्वाभावाद्वा न भवति । उत्त्वमत्वयोः पूर्वत्रासिद्धीयमद्विवचनइति असिद्धत्वाभावः, त्वामञ्चति स्वद्वाङ्, मामञ्चति मद्वाङ्, उत्तरपदत्वात्प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे'ति एकार्यवृत्तयोर्युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्वमादेशौ, पूर्ववदद्यादेशः, यौ त्वद्राययति मद्राययति, युष्मामञ्चति आवामञ्चति युष्मद्वाङ्, अस्मद्वाङ्, अत्र युष्मदस्मदोत्तरपदपरत्वयनेकार्थत्वाच्च त्वमौ, 'युष्मदौ द्विवचन' इत्यत्र द्विवचनेन द्वयार्थवृत्तिताया अभिधानेपि विभक्त्युक्ता लुप्तत्वेन तत्परत्वाभावाच्च

विषयतामुक्त्वा पूर्वोक्तन्यासप्रामाण्यात् पूर्वत्रासिद्धमित्यत्र वृत्तौ उत्तरखण्ड-
 स्याचोऽभावेऽपि स्यानिवत्त्वात्प्रायेणौजठदिति, द्विवचनोक्तेर्लोपः पिबते
 रीच्याभ्यासस्येत्यत्र चापीष्यद् इत्युदाहरणे षौ कृतस्योपधालोपस्य स्या-
 निवत्त्वेन पापशब्दस्य द्विवचनाच्च यत्सामान्यविषयत्वकथनं तदपि
 प्रत्युक्तं, कथं तर्हि औजठत् अपीष्यत् इति, यद् द्विवचनोत्तरकालमपि टिलो-
 पेन 'लोपः पिबते' रित्यनेन चोत्तरखण्डे ऽवर्णोपहारस्यावश्यभावित्वात्प्रयो-
 गगतमवर्णे न पश्याम इति षौ कृतपरिभाषानुपस्थानात्, अनचकृत्वाद् द्विव-
 चनमेव न स्यात् । उच्यते । यद्यपि प्रयोगे ऽवर्णवन्तमुत्तरखण्डं, न पश्यामः
 प्रक्रियाया तु पश्याम एवेति द्विवचनेनोत्तरकालं प्रवर्तमानेनावर्णोपहारेण
 न कश्चिद्व्यापः । एव चैतदर्थमवर्णोत्तरखण्डे परिभाषेयं नित्या अन्यत्र क्वचि-
 त्प्रवर्तत इति व्यवस्थाशून्यं सीरदेववचनं नाश्रयणीयं भवति, कथं तर्हि
 सिषेवयिषतीति, यदिह द्विवचने उत्तरखण्डमवर्णेन भवतीति षौ कृतस्य
 गुणस्य स्यानिवत्त्वं न स्यात्, मास्तु गुणस्य द्विवचने ऽभ्यासद्वस्त्वनेव रूपं
 सिध्यति । भ्रूवमाख्यत् अब्रुवदित्यत्र यो ऽवर्णपरो यण् नासौ ओः पर इती-
 त्वाभावः । अशिश्नयदित्यत्राभ्यामस्येत्वं षौ कृतस्य स्यानिवत्त्वेन श्रीशब्द-
 स्य द्विवचनात् । हेशब्दमाख्यत् अजीहयत्, गावमाख्यत् अजूगवत्, रायमा-
 ख्यदरीरयत्, नावमाख्यत् अनूनवत्, अत्रापि षौ कृतपरिभाषया सन्ध्यव-
 रस्य द्विवचने ऽभ्यासस्य द्वस्त्वने लघु भवति । अत्रोपसर्गग्रहणं प्रादुप-
 लक्षणम्, अन्यथा स्वश्वमाख्यत्स्वाशश्वयदित्यादि न सिध्यति । स्वराचष्टे
 स्वरयति, अत्रयानां भमात्रे इति टिलोपः, 'प्रकृत्यैकाजि'ति प्रकृतिभा-
 वस्तु येन नाप्राप्तिन्यायेनानन्तर्याच्च टेरित्यस्यैव, टिलोपस्य स्यानिवत्त्वा-
 भावात्स्विशब्दस्य द्विवचने असिस्वयदित्येके । अन्ये तु षौ कृतत्वेन टि-
 लोपस्य स्यानिवत्त्वात्स्वशब्दस्यैव हि द्विवचनं युक्तमित्यसस्वरदित्याहुः ।
 अत्राभ्यासस्येत्वंमुत्तरखण्डस्य पुनष्टिलोपेन लघुपरत्वाभावात् भवति ।
 न च टिलोपात्पूर्वमेवास्ति लघुपरत्वमिति स्यात्, नित्यत्वात्तस्य, न च
 खिच्चा लघुपरत्व, तस्य निमित्तत्वेन ततोऽन्यस्य लघोस्तत्राश्रयस्य स्थित
 त्वात्, बहु च बहुत्वं वाचष्टे भावयति, अत्रेष्टस्य षिट् चेतीष्टनि

विहितत्वात् बहोर्भूभावः, यिडागमस्तु णावित्युपमेये सप्तमीश्रवणादिश्रु-
दित्युपमानादपि सप्तम्यन्ताद्वृत्तिरितीष्टानि परं पूर्वस्य यत्कार्यं तदेवाति-
दिश्यते, न तु इष्टनोपीति प्रातिपदिकस्येतिवचनस्याप्रत्ययकार्यातिदेशा-
र्थत्वाद्वा न भवति, 'टे'रित्यत्र कैयटे भावयतीत्युदाहृत्य यिट्सन्नियोगशि-
ष्टत्वाद्भावस्य यिडभावे भूभावस्याप्यभावात् बहयतीत्येकीयमतेनोपन्य-
स्त, पदमञ्जर्या तु बहतीति स्वपक्षमुक्त्वा भावयतीत्येकीयमतेनोक्तम् । अत्र
शास्त्राणां कार्यस्य च प्राधान्यात्तदेवातिदेष्टुं युक्तमितीष्टवद्वचनमेवेष्टानि
परतः प्रकृतौ दृष्ट कार्यं णावपि विधत्तइति भूभावस्य सन्नियोगशिष्टत्वाभा-
वाद् भावयतीत्येव युक्तमिति वयमुत्पश्यामः । एव च यदुक्तं पुरुषकारे बह-
यतीत्युदाहृत्येष्टानि यत् दृष्ट कार्यं तदप्यतिदिश्यते, न चेष्टानि दुइ नापि
इष्टवद्भावश्च, यिड्सन्नियोगशिष्टत्वात्तदभावे तु भावयतीति चिन्त्यमाप्नो-
रिति । तदेव चिन्त्य भवति । चान्द्रकौमारशाकटायनेषु पुनरिष्टानि युक्
चेति बहोरेव युक् विधीयते तत्र मते ऽत्रापि भूयतीति भाव्यम् ।

सूत्रवार्तिकभाष्येषु नायं पक्षः प्रदर्शितः ।

विहृद्वृत्तिरिति तैरेव न वयं बहु मन्यहे ॥

अस्त्येव हि विरोधोत्र पक्षे युक् प्रकृतेर्भवेत् ॥

तेन णावपि तस्य स्यादतिदेशो युटः पुनः ।

प्रत्ययस्यैव शेषत्वाच्चातिदेशो भवेद्व्यतः ॥

टिलोपः । यणादिपरलोपः । 'स्यूलदूरपुषद्भस्वविप्रतुद्राणा
यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः, स्यूलादिभ्यः इष्टमेयःसु परं यणादि लुप्यते,
तत्र पूर्वस्य च गुणो भवतीत्येतस्मादपि भवति, यणादीत्येतावत्युच्यमाने
पुनः सर्वस्य लोपादियतीतिवत् प्रत्ययस्यैव श्रवणं स्यादिति परवचनमत्र.
पूर्वस्य गुणवचनं स्यविष्ट इत्यादावोर्गुणो यणादिपरलोपस्या 'सिद्धवद्वृत्ते'
त्यसिद्धत्वादवर्णान्तस्य भस्याभावाच्च स्यात् प्रसङ्गः, चेपिष्ठ इत्यादावु-
वर्णान्तस्य भस्यैवाभावाच्च, अत्रैकपरिभाषापस्थानादन्यस्य गुणो न
भवति, ह्रसिष्ट इत्यादौ त्विको ऽभावाच्चैव भवति, अत एवोक्तं वृत्तौ पूर्व-
बहव्य विस्मष्टार्थमिति । नन्वेतद्विपरिभाषाबाधेनानिकोप्यन्त्यस्य गुणार्थे

स्यात्, नैतत्, इको गुणवृद्धी इत्यत्र भाष्यवार्तिकयोर्दृशित्वप्रसङ्गेष्टिभ-
 हणमिति इक एव गुणस्योक्तत्वात्, स्यवयति, दवयति, लेपयति,
 होदयतीति, अत्र यवयतीत्यादौ गुणस्या'चोऽङ्गिती'ति वृद्धिरङ्गवृत्तइति
 वा प्रातिपदिकादृष्टत्वे बहुलमिति बहुलग्रहणाद्वा न भवति, अत्र
 युवतिशब्दादपि इष्टेयसुनोर्लिङ्गविशिष्टपरिभाषया यणादिपरलोपादे-
 र्भावाण्णावपि यणादिपरलोपादौ यवयतीत्येव रूपं, यद्वात्रेष्टवद्भावात्
 पुंवत्त्वेन युवशब्दआदेशे तस्य यणादिपरलोपे भविष्यति तदेव रूपम्,
 अत्र प्रक्रियारत्ने बहुना दूरयतीत्यपि कौमारश्चिन्त्यः । दवयतीत्येव भाष्ये
 उदाहृतत्वेन तेषां यत्किञ्चित् प्रयोगमात्रमूलत्वादस्यापि सम्भवाच्चेति
 सुधाकरकारोपि शीकरव्यतिकरमरिचिभिर्दूरपत्यवनते विवस्वतीति
 प्रयोगमुपादायेष्टवद्भावादवयतीति भवितव्यमिति, यणादिपरलोपे ।
 विन्मतोर्लुक् । स्रगस्यास्तीति स्रग्वी, 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' । तथा
 गात्रोस्येति मत्तुपि गोमान्, तत्र स्रजिष्ठो गविष्ठ इत्यादौ भवन्विन्मतो-
 र्लुक् स्रजयति गावयतीत्यादावपि भवति । तत्र कृते टेरिति प्रकृतेर्यष्टि-
 लोपः प्राप्तः स 'प्रकृत्यैकाजि'ति प्रकृतिभावात् भवति, तत्राजन्तेषु 'अदो
 ङ्गितीति वृद्धिः', स्रगादिष्व'त उपधाया'इति अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधि-
 रिति न भवतीति भाष्ये स्थितम् । सन्यग्लोपित्वात्सन्वदित्वदीर्घत्वयो-
 रभावादसस्रजदज्जगवदित्यादि भवति, मायाविनमाचष्टे मेधाविनमाचष्टे
 वसुमन्तमाचष्टे दृषद्वन्तमाचष्टे इत्यादौ विन्मतोर्लुकि प्रकृतेरनेकाच्त्वाट्टि-
 लोपे भावयति, मेधयति, वसयती, दृषयतीत्यादि भवति, सकारान्ता-
 नामपि पयस्विनमाचष्टे तेजस्विनमाचष्टे आयुष्मन्तमाचष्टइत्यादौ णौ
 विन्मतोर्लुगिति लोपे पयसयति, तेजसयति, आयुषयतीत्यादि भवतीति
 प्रकृत्यैकाजित्यत्र पदमञ्जर्या स्थितं, कैयटे तु तत्र भाष्यकारेणैष्टेयसुनोर्वि-
 धीयमानोऽयं प्रकृत्यैकाजिति प्रकृतिभावः क्व भवतीति विचार्य विन्मतोर्लुग-
 र्थमिति विन्मत्वन्तादिष्टेयसुनोर्विन्मतोश्च लुकि स्रगिष्ठादौ स्रगादिष्टिलो-
 पाभावार्यमित्यभिधाय विन्मतोर्लुग्यं ना प्राप्ते टिलोपे आरभ्यमाणस्तं
 बाधयते, स एव हि लोपः कृतेपि विन्मतोर्लुकि स्रगादौ प्रवर्ततइत्यु-

भयोः प्रकृतिप्रत्ययविषययोः टिलोपयोरेकत्वप्रकृतिजन्य विन्मनोर्लुकि च
सगादिप्रकृतेऽपि बाधतइति कृत्वा प्रकृतिभावस्यानर्थक्यं प्रति-
पाद्य तत्प्रतिपत्तये पयस्विच्छब्दादिषु विनश्च लुक्प्रत्ययेन सगादाविव
पयसटिलोपस्य बाधे पयिष्ठ इति न प्राप्नोतीति आक्षेपः यथा
क्षणमप्रयुक्ते इत्यभिधानात् भवति टिलोपः, रजस्विनमाचष्टे रजमयति
आयुष्मन्तमाचष्टे आयुषयतीति भवितव्यमित्युक्तं, नन्वत्र मनेत्येषाम-
प्यनेन न्यायेन लोपो न स्यादिति कथं वृत्तावेकाग्रहणं च वसय-
तीति प्रत्युदाहरणम्, उच्यते । भाष्ये प्रकृत्यैकाग्रहणं प्रत्ययान्तमन्तरेणापि
सूत्रं भिन्नविषयस्यापि टिलोपस्य शास्त्रद्वारेणैक्यमभ्युपेयाभावः शक्यो वक्तु-
मित्येव परं न त्वर्थसत्त्वमित्यवश्यं विन्मनोर्भिन्नविषयस्य प्रकृते टिलोपस्य
बाधासंभवादेकालु तद्बाधनार्थमारम्भणीयमेतत्सूत्रमित्यनेकालु टिलोपो
भवत्येव, यत् पयिष्ठ इति न प्राप्नोति यथालक्षणमप्रयुक्तनिभाष्यमु-
दाय न भवति टिलोप इति कैयटकारश्च न तद् भाष्ये पयस्विच्छब्द-
प्रस्तुत्याभिधानात्कृत्वा विन्मनुगन्तमान्तमात्रविषय न त्वन्यविषयमपि
अत एव तत्रैव कैयटे तत्रैव रजस्विनमाचष्टे रजमयति आयुष्मन्तमाचष्टे
आयुषयतीति भवितव्यमिति कृत्वा विन्मनुगन्तमान्तमेवोदाहृतं, यत्
माययतीत्यादाविविष्टवद्वारेण विनो लुकि पुनस्तेनैव टिलोपे विणोलुङ्-
न्यायेन विनो लुकोऽसिद्धवदत्रेत्यसिद्धत्वाटिलोपाप्रसङ्ग इति चेद्य तट्टि-
लोपप्रकरणे तिरयतीत्यत्र परिहृतम् । कुमुदान्यत्र सन्ति कुमुदान् देशः, एवं
नद्वान् वेनस्वान्, 'कुमुदनडवेनसेभ्यो ह्रतुवि'त्यत्र चातुर्थ्येको ह्रतुप-
रस्यानजादित्वेन भत्वाभावेऽपि डि-करणमामर्श्याटिलोपे भय इति मका-
रस्य वकारः । अत्र टिलोपस्य पूर्वस्मादपि विधाविति स्यान्नित्यत्वं पूर्वत्रासिद्धि-
न स्यान्निति न भवति । अत्र सुधाकरः । कुमुदादिभ्यो णौ विन्म-
नोर्लुगित्यत्र न केवलं मतुवेव गृह्यते किन्तु ह्रतुविति तस्य लुकि कुमुद-
यति, नडयति, वेतसयतीत्याह । अन्ये त्वेकानुबन्धग्रहणे न द्वानुबन्धकस्येति
न्यायेन विन्मतोरित्यत्र द्वानुबन्धकस्य मतुप एव ग्रहणं युक्तं न अन्यनुबन्धकस्य
ह्रतुपोपीति लुगभावाटिलोपे कुमुदयति नडयति वेतसयतीत्येवं भवति

व्यमित्याहुः । ननु इमत्तुपे लुकि कथं कुमुदयतीत्युदाहृतं, यावता वि-
 न्तोर्लुकि वसुमत्तरो वसिष्ठ इत्यादिवत् प्रकृतेष्टिलोपेन भाव्य, नेष्टवद्भावेन
 प्राप्तत्वाद्विन्मतेर्लुक् आभीयत्वैनैव पुनश्चिलोपे कर्त्तव्ये चिणो लुङ्न्यायेना
 सिद्धत्वं, यस्मादिष्टवद्भावप्राप्तानां कार्याणामुत्पत्तिदेश एव देशः, तद-
 पेक्षयैव सिद्धसिद्धी इति टिलोपप्रकरणे तिराययतीत्यत्रोपपादित, न च
 द्वुत्तुपि कृतस्य टिलोपस्य अस्मिन्चिलोपे ऽसिद्धत्वं, व्याश्रयस्यादेवं तर्हि द्वुत्तुपि
 कृतस्य टिलोपस्याचः परस्मिन्निति स्थानिवत्त्वात् पुनर्व्याश्रयोपि टिलोपो
 न भविष्यति । विन्मतेर्लुक् । 'युवाल्पयोः कनन्यतरस्यामितीष्टेयसुनोर्वि-
 धीयमानः कनादेशो णावपि भवतीति युवानमल्प वाचष्टे कनयतीति
 भवति । अन्यतरस्यायहणात् कनभावे युवयत्यल्पयतीति भवतः । यूनोत्र
 यणादिगुणौ, युवतीमल्पा वाचष्टे लिङ्गविशिष्टपरिभाषया कनादेशे कनय-
 तीति भवति, अङ्गवृत्तपरिभाषया बहुलयहणादुपधावृद्धभावाः, कन इष्टव
 द्वावस्य पुंवद्भावाभावेत्यादिना यत् प्रयोजनकथनं तदुपलवणमिति यथा-
 सभवमन्यान्यपि प्रयोजनानि प्रदर्श्यन्ते । अन्तिकमाचष्टे नेदयति, बाढमाचष्टे
 साधयति । 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधा'वितीष्ठनि विहितौ नेदसाधावपि
 भवतः, प्रशस्यमाचष्टे प्रशस्ययति, 'प्रशस्यस्य अः' 'ज्ये चे'तीष्टेयसुनोर्विधी-
 यमानौ अज्यादेशावत्र न भवतः, सोपसर्गात्सग्रामयतेरेवेति ज्ञापकात्
 शस्यशब्दादेव णिच् न तु प्रशस्यशब्दादिति णिच्परत्वाभावाद्यस्मादिष्टनि
 परे संभाविते वा यत्कार्ये संभाव्यते तस्माणावपि तद्व्यतीत्यवश्यमितिदे-
 शार्थोभ्युपगन्तव्यः, अन्यथा ऽनवस्थानप्रसङ्गात् । सुधाकरस्तु आपयति
 ज्यापयतीति अज्यावुदाजहार, एवं प्रक्रियारत्नकारोपि । तत्र मृश्यम् । शाक-
 टायनस्तु अयति ज्ययतीत्युदाजहार । स हि ज्णित्यरस्याच इति धातेर-
 पान्त्यस्यैवाकारस्याकारमाह न पुनरन्त्यस्यापीत्यत्राकारस्यैवाभावादूरे पुनः
 प्रसङ्गः । अत्र मते सजयतीत्यादौ वृद्धेरभावोङ्गवृत्तपरिभाषया बहुलयहणा-
 द्वेत्येवं नाभिधानीयो भवति, प्रस्यस्फानां च भावं व्यधादिति प्रापयतीत्या-
 दिसिद्धिः । सर्वमिदमनार्थत्वादप्रमाणमिति प्रक्रियारत्ने दूषितम् । अस्मा
 भिस्तु अज्यादेशावेवात्र नाभ्युपगतौ, वृद्धमाचष्टे ज्यापयति, 'वृद्धस्य चे'

तीष्ठेयसुनोर्विधीयमानो ज्योतिषो णावपि भवति । अकारोच्चारणनाम-
 र्थात्, 'प्रकृत्यैकाजि'ति लोपाभावे वृद्धौ पुक्, अयं च ज्योतिषः प्रियस्थिरेत्या-
 दिना वर्षादेशस्यापि विधानाद्विकल्पेन भवति, प्रिय स्थिर स्फिरोरु बहुल
 गुरु वृद्ध तृप् दीर्घ वृन्दारक इत्येतेभ्यस्तदाचष्टइति लौ प्रस्यस्फवर्षद्विगर्व-
 षिन्त्रप्द्राघिवृन्दा इनीष्टनीयसुनोः प्रियादीनां यथासंख्यं विधीयमानाः प्रा-
 दयो णावपि भवन्तीति प्रियस्य प्रापयति, स्थिरस्य स्यापयति, उरोर्गूरयति,
 बहुलस्य बंहयति, गुरोर्गूरयति, वृद्धस्य वर्षयति, तृप्स्य तृपयति, तृप् दुःख-
 मित्युक्तं, दीर्घस्य द्राघयति, वृन्दारकस्य वृन्दयति, प्रादीनामदन्तानां वृद्धौ
 पुक् । लोपस्तु 'प्रकृत्यैकाजि'ति प्रकृतिभावाच्च भवति । ननु प्रादीनां प्रकृति-
 भावे 'असिद्धवदत्रे'त्यसिद्धत्वादेकाजेव नास्तीति प्रकृतिभावाप्रमङ्गान् स्या-
 देव टिलोपः, एवन्तर्हि प्रादीनामसिद्धत्वादेवायमपि न भविष्यति । ननु मा-
 भूदेवमयं प्राक्प्रयष्टिलोपः स्यान्निवद्वावेन, प्रियाद्याश्रयस्तु प्राप्नोत्येव, नैतत् ।
 प्रियादीनामिष्टवद्वावेन प्राप्ताटिलोपात् परत्वादकृतएव तस्मिन् प्राद्या-
 देश इति स्थानिनि स एव नास्ति टिलोप आदेशे योतिदिश्येन, परयती-
 त्यादौ बहुलग्रहणात् अङ्गवृत्तइति घात उपधाया वृद्धिर्न भवति । अत्र ली-
 रस्वामी । बहुलग्रहणात् प्रादेशाभावात् प्रिययतीत्यपीति मैत्रेयस्तु स्थि-
 रस्य स्यादेशे बहुलग्रहणाद् वृद्धिपुञ्जभावात् गुणयादेशयोः स्ययतीति,
 बहुलादेव स्थिरयतीत्यपीति कौमाराः । भाष्ये तु प्रापयति स्यापयतीत्ये-
 वोदाहृतत्वात् उद्गाध्यमेतत् सर्वमित्यनादरणीयम् । व्याकरणस्य सूत्र-
 करोति व्याकरणं सूत्रयति, तत्करोतीत्युपसंख्यानं सूत्रयत्याद्यर्थमिति
 णिच्, प्रातिपदिकादृष्टात्वर्थइत्येव सिद्धे वचनमिदं माणवक मुण्डयती-
 त्यादौ माणवकादिसापेक्षान्मुण्डादेर्णिजर्थं मुण्डमिमेव व्याकरणादिमापे-
 क्षात् सूत्रादेर्णिजर्थमारभ्यते, तत्र लट्पलक्षणमुदायस्य व्याकरणशब्दा-
 र्थत्वात्सूत्रस्यैतदंशत्वेन व्यतिरेकाद्वाक्ये षष्ठी, यद्यपि सूत्रमेव व्याकरण-
 शब्दार्थस्तथापि व्याकृतिक्रियाकारणत्वविशिष्ट व्याकरणं शब्दार्थः, सूत्र-
 शब्दार्थस्तु केवलमिति राहोः शिर इत्यादिवत् काल्पनिकान्वयव्यति-
 रेकस्य संभवः । यदा त्वयं व्यतिरेको न विवक्ष्यते तदा व्याकरणं सूत्रं करो-

तीति विग्रहीतव्यम् अत्र वृत्तिवर्तिपदार्थानामेकार्थ्येन विविक्तानामभावा-
दन्यान्वयायोगात् सूत्रस्य व्याकरणेन संबन्धानुपपादाद्भूतिरेकाभावाद्भा-
रणात् षष्ठ्यभावः, अस्य च विशेषकर्मणः सामान्यकर्मणः सूत्रस्य प्रत्ययार्था-
न्तरभावादनन्तर्भावात् करोतिना संबन्धाच्च भवति द्वितीया । उक्त-
चैव भाष्ये । वाक्ये षष्ठी, उत्पत्ते प्रत्यये द्वितीया, केनैतदेवं भवति, योसौ
सूत्रव्याकरणयोरभिसंबन्ध उत्पत्ते प्रत्यये निवर्तते, अस्ति च व्याकरोते-
व्याकरणेन सामर्थ्यमिति द्वितीयेति । अत्र कैयटे वाक्ये द्रव्यरूपं सूत्र-
सूत्रशब्देनोच्यते, णिचि तूत्पत्ते सत्त्वभावनिवर्तनात्करोत्यर्थाभिधायी
सूत्रशब्दः सपद्यते । तदुक्त परार्थाभिधानं वृत्तिरिति । एतच्च प्रक्रियाग-
तविभागाश्रयेणोक्त, परमार्थतस्तु धात्वन्तरं सूत्रविशिष्टक्रियावचनमिति ।

अथान्योपि णिच प्रदर्श्यते ॥ कंसस्य वधः कंसवधः, 'हनश्च वध'
इति वधादेशः, 'कर्तृकर्मणाः कृती'ति कंसात् कर्मणः षष्ठी, कृद्योगा च
षष्ठी समस्यते इति समासः । यद्वा सर्पियो जानीते, मातुः स्मरतीत्यादौ न
माषाणामशनीयादित्यादावपि कारकस्य शेषत्वविवक्षायां षष्ठीसिद्धावपि
'ज्ञोविदर्थस्य करणे' 'अधीगर्थदयेशा कर्मणी'त्यादिना कारकस्य शेषत्ववि-
वक्षायामेव पुनः षष्ठी विधानं षष्ठी श्रूयतएव न लुप्यतइत्यर्थात् समास-
निषेधार्थममुमेवार्थं प्रतिपदविधाना च षष्ठी न समस्यतइत्याहेति तस्य
कर्तृकर्मणाः कृतीत्यत्र शेषाधिकाराभावादशेषत्वविवक्षायामेव कर्मणः
षष्ठीविधावनुपस्थानात् कृद्योगा चेति वचनं तदपवादो न भवति किं तु
'षष्ठी'ति समासवचनस्यानुवाद इति राजपुरुषादिवत् षष्ठीन्येव समासः ।
उक्तञ्च ।

साधने व्यपदिष्टे च श्रूयमाणक्रिये पुनः ।

प्रोक्ता प्रतिपदं षष्ठी समासस्य निवृत्तये ॥

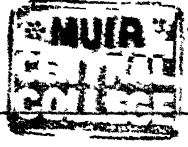
इति । न चैवं मन्तव्यं प्रतिपदविधाना चेति वचनं कर्तृकर्मणाः
कृतीति षष्ठ्याः समासनिषेधार्थं स्यादिति, यतः कृद्योगा च षष्ठी समस्यत-
इति त्वयैव समासो ऽभिहितः, कंसवधमाचष्टे कंसं घातयति, आख्यानात्
कृतस्तदाचष्टइति णिच, आख्यायतइत्याख्यान 'कृत्यल्युटो बहुल'मिति

कर्मणि ल्युट्, नद्योगाच्छब्दोप्याख्यानम्, इहाख्यानमात्रमाख्यानशब्देनोच्यते
न तु संज्ञाभूतं कंसवधञ्जलिबन्धसुभद्राहरणादि कर्मैवेति राजागमनादेरपि
णिच् भवति, अत्र कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणमिति कंसवधादेरा-
ख्यानस्य कृदन्तत्वम्, अत्र कंसवध इति स्थिते कृत्प्रत्ययस्य लुक् भवति, प्रकृ-
तिप्रत्यापत्तिरिति, कृत्प्रकृतेर्धातोः प्रत्यापत्तिर्भवति, प्रत्यापत्तिश्चाविका-
रस्वरूपेणावस्थानमिति वधादेशनिवृत्तौ हनिरेवावतिष्ठते, ननु प्रत्ययस्य
सन्धियोगेन शिष्टोऽयं वधादेशः तस्य लुका निवृत्तौ स्वयमपि संनियोगशि-
ष्टपरिभाषया निवर्तिष्यतएव किं प्रत्यापत्तिवचनेनेति चेत् । सत्यमत्रैव
सिद्धयति तत्फलं त्वये दर्शयिष्यते । तत्र कंसहनिति स्थिते प्रकृतिवच्च का-
रकं, चकारो भिन्नक्रमः कारकमित्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः, कार्यशब्दोऽध्याहा-
र्यः, षष्ठ्यर्थे वर्तते, प्रकृतिशब्देन हेतुमण्ये च प्रकृतिरुच्यते । तदयमर्थो भवति ।
वधादेः कृदन्तस्य यत्कारकं कंसादिकं तस्य कृत्प्रकृतेर्हेत्यादेर्हेतुमण्यौ
धातावनन्तर्भूतमकृतनलोपादिकं द्वितीयान्तं यद्रूपं तादृशं भवति ।
'हनस्तो चिण्णतोः' होहन्तेर्जिण्वेष्टित्यादिकं कार्यं हेतुमण्ये चः प्रकृतेरि-
वात्रापि लौ भवतीति, ततश्च कसात् द्वितीयाया हनश्च तत्त्वघन्वयोः
कंसं घातयतीति सिद्धं भवति, अनेन चातिदेशेन कारकस्य धातावनन्तर्भाव-
स्यापि प्रतिपादनादर्थोक्तद्व्यतिरिक्तादुधादेवाय णिजिति तदादेरेव धातुत्वा-
त्तत एव तिङि तदाद्येव तिङन्तं पदं भवति, तथा कंसं घातयतीत्यादौ
वधादेरेवाङ्गत्वादङागमस्तस्मादेव पूर्वा भवति, एवं कंसमजीघतदित्यत्र
हन एव चङ्परिणपरे द्विवचनं भवति । नन्वत्रान्तरेणापि कार्यगतिदेशं वृद्धि-
रिवास्यैव णीणित्वमाश्रित्य 'हो हन्ते'रिति घत्व 'हनस्त'इति तत्त्व च भवि-
ष्यति किमनेनातिदेशेनेति चेत् । धातोः स्वरूपग्रहणे तन्प्रत्यये कार्यविज्ञान-
मिति यत्र धातोः स्वरूपोपादानेन किञ्चित्कार्यं विधीयते तत्र धातुनि-
बन्धनप्रत्यये तत्कार्यमिति विज्ञानात्, अस्य च णेर्धातुनिमित्तत्वाभावा-
त्कंसपरिमृडकाम्यतीत्यत्र मृजेर्द्विरिवात्रापि तत्त्वघन्वयोरप्रसङ्गात् । न चैवं
मन्तव्यं, कंसपरिमृडकाम्यतीत्यत्र यदङ्गं कंसपरिमृडिति न तन्मृजिर्यस्य
मृजिनोसावङ्गं, मृजेर्द्विरेव मृजेरङ्गस्य विधीयते इत्यन्तरेणापि धातुस्वरूप

परिभाषा नास्त्येव वृद्धेः प्रसङ्ग इति, यतोङ्गाधिकारे तस्य द तदन्तस्यापि इति मृज्यन्तस्यापि प्राप्नोत्येव, एवं बलिबन्धमाचष्टे बलिं बन्धयतीत्यादि, नन्वक्ष-
 क्लृप्तिगति कृतो लुका लुप्तत्वात् प्रत्ययलक्षणाभावात् क्लृप्तिगताभावाच्च षष्ठी
 प्राप्नोति, प्रत्ययस्य लक्षणं च लुका लुप्तत्वाच्च भवतिव्यं, स्थितं च हन्त्या-
 द्यपेक्षया कर्मत्वमिति द्वितीया सिद्धेः किं प्रकृतिवत्कारकातिदेशेनेति
 चेत्, असत्यस्मिन्नतिदेशे कसादेः पृथक्करणमेव न स्यादिति विभक्तेरेवा-
 प्रसङ्गात्कृतः स्याद् द्वितीया, किं च कंसवधशब्दादेव णिच् न तु विनिष्क-
 ष्टकारकांशाद्बुधादिति सकारकस्यैव तिङन्तत्वं स्यात् । तथाऽङ्गागमेपि
 कारकात् पूर्वमेव स्यात् । न तु कसं घातयतीति हन्तेः, एवं चङीति
 द्विर्वचनमपि कंसादेरेव स्यात् न तु कसमजीघतादित्यादौ हन्त्यादेः, नैतानि
 सन्ति प्रयोजनानि । यथा प्रकृतिवत् कारकमित्यनेन कंसप्रकृतेर्हन्त्यादेर्णौ
 दृष्टः कारकाणामन्यर्भावोऽत्रापि णौ प्रतिपद्यते, तथा प्रकृतिवत् कार्य-
 मित्यनेनापि कृतप्रकृतेर्णौ हन्त्यादेः शुद्धे णौ दृष्टस्यानिष्कृष्टकारकप्रकृतित्व-
 स्याच्चाप्यतिदेष्टुं शक्यत्वाच्चिष्कृष्टकारको हन्त्यादिरेव स्यात् । प्रत्ययस्य
 प्रकृतिरिति यतस्तदाद्येव तिङन्तं भविष्यत्यङ्द्विर्वचने च तस्यैव
 भविष्यतः, सत्यमत्रैव न दोषो भविष्यति, राज्ञ आगमनं राज्ञागमनं,
 'कर्तृकर्मणोः कृती'ति कर्तरि षष्ठी, पूर्ववत् क्लृप्तिगता च षष्ठी समस्य-
 तइति समासः । राजागमनमाचष्टे राजानमागमयतीत्यादौ राजादेर्द्वि-
 तीया न स्यात् किं तु कर्तृलक्षणा वृतीयैव स्यात्, यतः प्रकृतिवत् कार-
 कमित्येतत् प्रकृतेः शुद्धे णौ दृष्टकार्यमेवातिदेशेन पुनरन्यदपि किंचित्,
 प्रकृतिवत् कार्यमित्युच्यमाने तु गमने कर्तृभूतस्य राज्ञः कृतप्रकृते-
 र्गमः शुद्धे णौ 'गतिबुद्धी'त्यादिना ऽस्ति कर्मत्वमित्यत्रापि णौ कर्मरू-
 पातिदेशाद्राजानमागमयतीति सिद्धं भवति । अत एव शुद्धे णौ वृष्टस्य
 कर्मरूपस्यात्रापि णावतिदेशाद्राज्ञो नलोपो भवति, न चैवं मन्तव्यं
 'सुप्तिङन्त पद'मिति द्वितीयान्तस्यैव राज्ञः पदत्वादत्र नकारान्तस्य
 प्रातिपदिकान्तत्वेपि पदान्तत्वाभावाच्चलोपो न भवतीति यल्लुप्तयान्त-
 र्वर्त्तित्या षष्ठ्या प्रत्ययलक्षणेन तदन्तत्वेन नान्तं भवत्येव पदं, न चास्मि

‘न लुमते’ति प्रत्ययलक्षणाभावः, यद्य लुमता लुप्ते प्रत्यये यदङ्गं तस्य यत् कार्यं लुप्तप्रत्ययमाश्रित्य प्राप्नोति तत्रैवेतीह नावतरति । एवं च प्रकृतिव-
त्कारकवचनं कंसादेर्द्वितीयायै च भवति । यतः ‘कर्तुं कर्मणोः कृती’ति षष्ठी
प्राप्नोति, तदेवं कंसादीनां कारकाणां णिजु-यत्तौ पृथक्कारस्य सिद्धत्वादा-
ख्यानात् कृदित्याख्यानशब्दे ऽर्थात्स्वावयववृद्धन्तपरो भवति । मृगाणां
रमणं मृगरमणं, कर्त्तरि षष्ठाः पूर्ववत् समासः । मृगमणमाचटे मृगान् रम-
यति, दृश्यर्थायां च प्रवृत्ताविति णिजत्राख्यानात्कृत इत्यादि सर्वं संबध्यते,
तदस्यायमर्थः । मृगरमणस्य या समाख्यानरूपा प्रवृत्तिः सा यदि दृश्यर्था
भवति तदा णिजभवतीति, एवं च मृगान् रमयतीत्यस्यायमर्थो भवति, स्वयं
मृगरमणमनुभवन् अन्यस्मै तद्वर्णयितुमाचष्टइति । इदं दृश्यर्थायां चेति
वचनमाख्यानात्कृतास्तदाचष्टइत्येताख्यानप्रवृत्तेर्दृश्यर्थत्वेऽपि सिद्धे णिच्चा-
रभ्यमाणमदृश्यत्वमाभूदित्येवमर्थे, तेन यदारण्ये दृष्टु मृगरमणं यामस्थो-
न्यस्माच्चावष्टे एवं मृगास्तत्र रमन्ते तदा मृगरमणमाचष्टइति वाक्यमेव
भवति । अत्र कैयटे दृश्यर्थायामित्येतच्च मृगरमणादित्रिषयमेव दृष्टव्यं,
राजागमनादौ तु दृश्यर्थप्रवृत्त्यभावेऽपि णिजभवति, अत्र रमणक्रियायां कर्त्तु-
भूतानां मृगाणां रमेरकर्मकत्वेऽपि शुद्धे णौ गतिबुद्धीत्यादिना कर्मत्वाद-
त्रापि णौ कर्मत्वं, राज्ञेर्विवासो राज्ञिविवासः, विवासोति क्रमण, कर्त्त-
रि षष्ठाः पूर्ववत्समासः, ततः आह मर्यादाभिविद्योरित्याङ्गोच्ययीभावः,
आरात्रिविवासमाचष्टे राज्ञि विवासयति, आलोपश्च, कालाध्यनोरन्यन्त-
सयोगे, मर्यादायां णिचि मर्यादावचनस्याङ्गो लोपः, इहाख्यानादिति न
संबध्यतइति पदमञ्जया, कृन्नुगादि पूर्ववत् । इह कालस्यान्यन्तमयोगः
सचिहिताख्यानक्रिययानवयवेन संबन्धः, ततश्च राज्ञि विवासयतीत्य-
स्यायमर्थः । यावद्वाचेरतिक्रमणं तावत्कथाः कथयतीति, इहाख्यानमा-
ख्येरमपेक्षतइति कथा इति, प्रदर्शितवसि क्रियायां कर्त्तुंभूताया राज्ञेर्वसेर-
कर्मत्वेन शुद्धे णौ ‘गतिबुद्धी’त्यादिना कर्मत्वादत्रापि णौ कर्मत्व, सूर्य-
स्याद्गमनं सूर्याद्गमनम्, अत्रापि पूर्ववत् कर्त्तरि षष्ठी, समासश्च, विक्रम-
सिंहपुर्याः प्रस्थितः काञ्चीपुर्यां सूर्याद्गमनं प्राप्नोतीत्यर्थः । भू प्राप्नोवा-

त्मनेपदीति चुरादौ, सूर्यमुद्गमयतीति । 'चित्रीकरणे प्रापि', रुद्रन्ताञ्चित्री-
करणे गम्यमाने प्राप्नोत्यर्थोऽणिच्, रुद्रगादि पूर्ववत् । अत्राप्यागमने
कर्तुः सूर्यस्य पूर्ववद्गमेः शुद्धे णौ 'गतिबुद्धी'त्यादिना कर्मत्वाद् दृशेरपि
णौ कर्मत्व, विक्रमसिंहपुर्याः काञ्चीपुरी विदेशस्येत्युदयात् पूर्वं तावतो
देशस्य गमनमिहाश्चर्यकरणम्, इहाप्यसभवादाख्यानादिति न संबध्यते ।
तत्र प्रकृतिवत्कारकानिदेशात्म्यस्य णौ पृथग्भावः, सोपसर्गात् सधामय-
तेरेवेति ज्ञापकादुदोषीति सूर्यमुद्गमयतीत्यादि भवति, पुष्येण ये.गः
पुष्ययोगः, अत्र यथान्तर्द्धा येनादर्शनमिच्छतीत्यात्मनः कर्मणो नियमेन
गम्यत्वाद्भेदेति कर्तुः षष्ठ्यभयप्राप्ताविति नियमाच्च भवति, एवमत्रापि
युजिक्रियाकर्मणश्चन्द्रमसो नियमेन गम्यत्वात्तद्व्योगे कर्तुः पुष्यात् षष्ठी
भवति, पुष्यश्चात्र कर्त्ता, चन्द्रमाः कर्म, स हि तं युनक्ति, पुष्ययोगं जानाति
पुष्येण योजयति । 'नक्षत्रयोगे ज्ञी'ति नक्षत्रयोगवाचिनः रुद्रन्तादस्माज्जाना-
त्यर्थे णिचि रुद्रगादि पूर्ववत् । अत्र प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचनेन घञि चक्षोः
कुघिण्येतोरिति कुत्व निवर्ततइति कैयटपदमज्जयौदिषूक्तम् । प्रकृति-
वत्कारकमित्यनेन कृतप्रकृतेः शुद्धे णौ यदयं कारकमेतद्रूपमत्रापि णावि-
त्युक्तत्वाद्भेदे कर्तुः पुष्यस्य गत्यादिष्वनन्तर्भावेन कर्मत्वाभावादत्रापि
णौ न भवति कर्मत्वमित्यात्मनः कर्तृत्याश्रयेण तृतीयः भवति । अत्र न्यासे
पुष्येण करणभूतेन चन्द्रमसो योग इति करणे तृतीयामुक्त्वा कृतप्रकृतेर्युजेः
शुद्धे णौ पुष्यस्य करणताविपर्ययाभावात्तत्र दृष्टामेवात्रापि णावतिदि-
श्यतइति तृतीयामुक्त्वा यदा पुष्येण सह योग इत्यर्थो विवक्ष्यते तदा
कारकातिदेशस्याय विषयो न भवति । पुष्यस्य करणत्वात्सहार्थेव तृती-
या वेदितव्येत्युक्तम्, अनयोः पक्षयोः पुष्येण करणभूतेन सह वा तेन
चन्द्रमस्यन्ययोगे इत्यर्थे स्यात् । अत्र कैयटे प्रकृतिवत्कारकमित्यनेन तेन
तुल्यं क्रिया चेद्वृत्तिरिति तृतीयार्थे वतिमङ्गीकृत्य णिचो या प्रकृतिः
कंसवधादिराख्यासक्रियापेक्षया प्रतिपन्नकर्मैव तया तुल्यं भवत्यप्रतिपन्न-
भाव कसादिकं घातयति राजानमागमयतीत्यादौ सर्वत्र कसादेर्द्वितीया-
सामर्थ्यं, तदनेनैव न्यायेन पुष्येण योजयतीत्यत्रापि पुष्यस्य कर्मत्वाद् द्वि-



तीया स्यादित्याशङ्क्य वत्करणात् स्वाश्रयस्य कर्तृत्वस्यानिवर्त्तनात्तृतीया-
सिद्धिमुक्तवैवमुक्तम्, अथ वा प्रकृत्या तुल्यं वर्तते इति प्रकृतिवत्प्रकृतेरिव
प्रकृतिवर्णयन्तस्य कारकमित्युभयथातिदेशाश्रयणान्कचिन्कश्चित्परिहृ-
तइति ॥

अथान्येपि प्रातिपदिकाश्रयः प्रदर्श्यते ॥ आचारेवगल्भक्लीबहोदे-
भ्यः क्त्विवा ॥ कर्तुः क्यङ् सलोपश्चेत्यत्र यङ् पठ्यतइति उपमानात्स
विहिताचारक्रियायाः कर्तुः प्रातिपदिकादाचारार्थेयं क्त्वि भवति, अत्र वा
यहणं तत्तकौटिल्यन्यायेन कौटिल्ययङः क्रियासमभिवहारे यङ् इवावगल्भा-
दिप्रातिपदिकविषयेष्वनेन क्रियासुबन्तविषयस्यापि क्यङो बाधो मावि-
ज्ञायीति । नन्विदं गल्भाद्यनुक्रमणं 'कर्तुःक्यङि'त्यत्र सुबन्ताधिकारे
क्रियते । क्यङपवादश्चायं क्त्वि । उत्सर्गसमानदेशत्व चापवादानां प्राचु-
र्येण दृष्टमिति सुबन्तादेवानेन क्त्वि भावितव्यं, न चैतदस्ति, यद्गल्भादीननु-
क्रम्य सर्वप्रातिपदिकेभ्य इत्येकइत्याह । न चेदं प्रातिपदिकग्रहणं सुबन्तो
पलक्षणार्थं स्यात् । तर्हि सर्वेभ्य इत्येकइत्येवोक्तत्वात् प्रातिपदिकग्रहणम-
नर्थकं स्यात्, यत्तु तदुक्तं गल्भादौ वायहणं तदिदानीं न वक्तव्यं भवति,
यतः सर्वेभ्यः क्त्वि विधीयते क्यङन्तरेणापि वायहणं वचनद्वयप्रामाण्या
द्विकल्पो भविष्यति । अथैवद्गल्भादयोपि नानुक्रमितव्या भवन्तीति न वक्तव्यं
भवतीति न मन्तव्यं, यदेवामनुदात्तत्वप्रतिज्ञानार्थमेवानुस्मरणम् । इदं चा-
नुदात्तत्वप्रतिज्ञानं क्त्विनियोगवेत्यत्रावगल्भ इवाचरति अवगल्भायतइ-
त्यादौ चाक्ये क्यङि चाकारस्य श्रवणं भवति । अवगल्भइवाचरति अवग-
ल्भते । अवगल्भाञ्चक्रे । अवगल्भिता । अवगल्भिष्यते । अवगल्भनाम् ।
अवागल्भत । अवगल्भेत । अवगल्भिषीष्ट । अवागल्भिष्ट । अवाग-
ल्भिष्यत । अनुदात्तत्वात्तङ्, सोपसर्गान्सयामयनेरेवेतिज्ञापकाविष्कृष्टो-
पसर्गाद्गल्भादेव प्रत्यय इति गल्भस्यैवाङ्गमो भवति । तथावागन्भ्ये
त्यत्रावशब्दस्य 'कुगतिप्रादय'इति समासे तल्लक्षणो ल्यङ् भवति ।
क्लीबते । क्लीबाञ्चक्रे । होडते । होडाञ्चक्रे इत्यादौ 'कास्प्रत्यया-

दाम्' इत्याम् । 'आम' इति, ल्लेर्लुक्, ननु तत्र प्रत्ययग्रहणमपनीय कास्यनेकाच इति कर्तव्यं चुलुप्पाद्यर्थमिति न्यस्यते, एते ऽवगल्भादय एकाच इति कश्चाम्, नैष दोषः । यद्यपि क्लिप्सन्निधौगेनैकाचो भवन्ति तथाप्युपदेशेऽनैकाचो भवन्ति । कास्यनेकाच इत्यत्र च भूतपूर्वगतिराश्रयिष्यते । इदमेव क्लिप्सिन्धान भूतपूर्वगत्याश्रयणे प्रमाणम् । अन्यथा गल्भ धाष्ट्र्ये, क्लीवृ धाष्ट्र्ये, होडृ अनादरे, इत्येतेभ्यो ऽनुदात्तेभ्य अवगल्भतइत्यादि सङ्गौ किमनेन, तत्र च धातूनामनेकार्थत्वात् आचारार्थश्च भविष्यति । अश्व इवाचरति अश्वति । प्रातिपदिकात् प्रत्ययविधानात् शप्रकृत्यकारयोरपदान्ताश्रय'मतो गुण' इति पररूपत्वं भवति । अन्यथान्तर्वर्तिन्या विभक्त्या पदत्वात्पररूपत्व न स्यात् । अश्वाञ्चकार । अश्विता । अश्विष्यति । अश्वतु, आश्वत् । अश्वेत् । अश्व्यात् । आश्वीत् । आश्विष्यत् । 'अतो लोप आधे' धातुके । क इवाचरति । कति । चक । चक्रतु इत्यादि, अतो लोपः सर्वत्र, अय एयल्लोपेत्यादिना वृद्धिं बाधते, अ इवाचरति अति, इत्यादि । औ । अतुः । उः । इत्यादि । सर्वत्रात्र द्विवचनेऽतो लोपादन्तरङ्गत्वादतो गुणे' पररूपत्वे तस्याङ्गग्रहणेन प्राप्तादतो लोपात् परत्वादभ्यासग्रहणेन ग्रहणा'दत आदे'रिति दीर्घः । 'आतो लोप इटि चे'त्याल्लोपः किति, णलि 'त्वात् औ णल' इत्यौ वृद्धिः । यथाकथञ्चित् प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्ट गृह्यतइति स्थितत्वान्मालेवाचरति मालाति । मालाञ्चकार । मालिता । मालिष्यति । मालातु । अमालात् । मालायात् । मालायास्ताम् । अमालासीत् । यमरमनमातां सगिटौ । इड्यजादावार्धे' धातुके 'आतो लोप इटि चे'त्याकारलोपः, जेवाचरति जति, जजावि-त्यादि पूर्ववत्, प्रत्ययान्तत्वेऽप्येकाच्त्वादामभावः । आ इवाचरति आती-त्यादि । कविरिवाचरति कवयति, कवयाञ्चकार, कवयितेत्यादि, आशीर्लिङ्ग्यङ्गत्सार्धे' धातुकयोर्दीर्घ' इति दीर्घं कर्तव्यात् । लुङ्यतरङ्गमपि गुण सिचि वृद्धिरपवादत्वात् बाधइति वृद्धावायादेशे चाकवायीत् । विरिवाचरति वयतीत्यादि पूर्ववल्लीटि प्रत्ययान्तत्वेऽप्येकाच्त्वादामभावे, विवाय, विव्यतुः, विव्युः । विवयिथ, विव्यथुः । विव्य । विवाय । विवय ।

विचित्र । विचित्रम् । गिति वृद्धिः, पिति गुणः, कित्परेनेकाचइति यणादेशः ॥
 इरिवाचरति अयतीत्यादि, लिट्येकाच्त्वादामभावः । इयाय । ईयतुः । ईयुः ।
 इययिष । ईयथुः । ईय । इयाय । इयय । ईयिष । ईयिम, अत्र किति सव-
 र्णदीर्घ 'अचि श्नुधात्वि'तीयङ् । यद्वा सवर्णदीर्घत्वात् परत्विनोत्तरखण्डस्य
 'एरनेकाच'इति यण्यपि नास्त्यत्र रूपभेदः, गुणवृद्धिविषये अयायो 'द्विर्वचने-
 ची'ति स्थानिवत्त्वादेकारस्येकारस्य च द्विर्वचनेऽभ्यासद्वयत्वे 'अभ्यास-
 स्यासवर्ण'इतीयङ्, यदापि गुणवृद्धोरपि स्थानिवद्वावादिङ्कारस्य द्विर्व-
 चनं तदापि सवर्णदीर्घात् परत्वं त्युनरुत्तरखण्डस्य गुणाद्रावस्त्येवाभ्यास-
 स्यावर्णपरत्वमिति इयङ्सिद्धिः । न च पुनः प्रवर्तमानाभ्यां गुणवृद्धिभ्या-
 मन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घेन भाव्यमिति मन्तव्यम् । एवं ह्यभ्यासस्यासवर्ण-
 इतीयङ्वचनमनर्थकं स्यात्, नन्वयमस्त्यवकाशः, अर्तिलिटि द्विर्वचने-
 भ्यासस्या'र्त्विपत्योश्चेतीत्ये, इयर्ति, इयृतः, इत्यादि, नैतदस्ति, नह्येक-
 मुदाहरणं योगारम्भ प्रयोजयति, इयति हि प्रयोजनेऽभ्यासस्यार्त्तावित्येव
 ब्रूयात् । एषेरियेष, ओणेरुवोणेत्यादि तु न प्रयोजनं, यतोयं
 छान्दसः, भाषायान्त्वामा भवितव्यं, छन्दसि च तत्त्वादीनां छन्द-
 स्युपसंख्यानमिति त्रियम्बकं सुवर्ग इत्यादिवदियङ्उवङ्गौ सेत्स्यतः ।
 लक्ष्मीरिवाचरति लक्ष्मीयति । लक्ष्मयाञ्चकार लक्ष्मयितेत्यादि ।
 श्रीरिवाचरति श्रियति, शिश्राय । शिश्रियतुः, शिश्रियुः 'एरनेकाच'इति
 यणादेशः सयोगपूर्वत्वाच्च भवति, 'अचि श्नुधात्वि'तीयङ्गेव भवति ।
 ईरिवाचरति, अयतीत्यादि, लिटि पुन'रिजादेश्च गुरुमतानृच्छ'इत्याम्य-
 यांचकारेति भवति । तत्र व्यपदेशिवद्भावेनेजादित्वगुरुमत्त्वे समाश्रिते ।
 विधुरिवाचरति विधवति, विधवांचकार, विधविता, विधविष्यति,
 विधवतु, अविधवत्, विधवेत् । आशिष्य'अत्सार्वधातुकयो'रिति दीर्घं,
 विधूयात्, अविधावीत् । गुणं सिचि वृद्धिरपवादत्वाद् बाधते । कुरि-
 वाचरति कवति । चुकावेत्यादि । एकाच्त्वादामभावः । उरिवाचरति
 अवतीत्यादि । पूर्ववल्लिटि गुणवृद्धिविषये अवावौ स्थानिवत्त्वादेका-
 रस्य च द्विर्वचनेऽभ्यासद्वयत्वे । अभ्यासस्यासवर्ण'इत्युवङ्गि उवाव,

उवविथ । उवावेति भवति, यदापि गुणवृद्धोरपि स्यान्निवृद्धावाङ्का-
 रस्य द्विर्वचन तदाप्यभ्यासस्यासवर्ण इत्युवङ् विधानसामर्थ्यात् सवर्णदी-
 र्घात् पूर्वमुत्तरखण्डस्य गुणादावभ्यासस्यासवर्णपरत्वादुवङ्, किति तु
 ऊवतु, । उवथुः । उव । उविव । उविमेति भवति, अत्रान्तरङ्गत्वा-
 त्सवर्णदीर्घे सत्युवङ् । अत्र वाण्यादाङ्ग बलीय इति पूर्वमुत्तरखण्ड-
 स्यावङ् पश्चात्कृते तस्मिन्नूवतुरित्यादि स्यादिति न मन्तव्यं, यत
 इयं परिभाषाऽऽङ्गवर्णयोः समानाश्रयत्वे प्रवर्तते । यथा कारक इति,
 अत्र हि प्रत्ययमेवाश्रित्य गुणवृद्धी प्राप्नुतः, उवतुरित्यत्र उकारमाश्रित्य
 सवर्णदीर्घः प्राप्नोति । उवङ् तु प्रत्ययमाश्रित्येति नास्ति समानाश्रयत्वं,
 वधूरिवाचरति वधवति । वधवांचकार, वधवितेत्यादि । भूरिवाचरति
 भवति, बुध्वाव । बुध्ववतुरित्यादि, 'अचि श्नुधातुभ्रवामि'त्युवङादेशः ।
 अथ च वृद्धिगुणयोर्विषये ताभ्यां परत्वात् बाध्यते । उरिवाचति अवतीत्या-
 दि, लिटि ईजादेश्चेत्याम्यवांचकारेति भवति, पितेवाचरति पितरति ।
 पितरांचकार । पितरिता । पितरिष्यति । पितरतु । अपितरत् । पित-
 रेत् । पित्रियात् । 'रिङ् शयग्लिङ्' इति रिङादेशः । अपितारीत् । अन्त-
 रङ्गमपि गुण सिचि वृद्धिर्वचनाद्वाधतइत्युक्तं, यद्वात्र गुणेपि न दोषः ।
 यत्कृते ऽस्मिन्नतो न्नान्तस्येति पुनर्वृद्धिर्भविष्यति । नेवाचरति नरति ।
 ननारेतीत्यादि पूर्ववत् । आ इवाचरति अरति 'पात्रे'त्यादावर्त्तिग्रहणेन

अभिव्यक्तपदार्था ये स्वतन्त्रा लोकविश्रुताः ।

शास्त्रार्थस्तेषु कर्तव्यः शब्देषु न तदुक्तिषु ॥

इति दृश्यादिमाहचर्याच्च धातुपाठस्य एवार्तिर्गृह्यते, न पुन-
 रयमपीति च्छादेशाभावः । अत एव तत्र पदमञ्जर्यामृ गतिप्रापणयो-
 रिति भौवादिकः, च गताविति क्रैयादिकः, च स गताविति जौहोत्या-
 दिक इति त्रीनेवोपादायान्ययोरग्रहणे कारणं शिदसंभवः साहचर्ये
 चोक्तं, तथा 'समो गम्यच्छी'त्यत्र वृत्तौ अतीत्यत्र पठ्यते, स गतिप्रापण-
 योरिति भूवादौ । च स गताविति जुहोत्यादौ । विशेषाभावादुभयोरपि
 ग्रहणमिति । यदि च नामधातोरिह ग्रहणमिष्येत् कथमेवमुच्येत । एवम-

न्यत्रापि तत्रतत्र प्रतिपदधातुग्रहणेऽप्यभिव्यक्तपदार्थानां धातुपाठपठिता
नामेवोपादानं क्रियते । 'बाह्यादिभ्यश्चे'त्यत्र भाष्येऽप्येयोरप्यनभिव्यक्तप-
दार्थानां तत्तत्कार्यं न भवतीति, अत्रान्वे वाहे वै'रादिभ्यश्चिनीजाभावा
त्सामान्येऽण वाहव इति भवति । नया संज्ञास्वरूप्य राजस्वगुण'अ'दिति
यतो ऽभावादलक्षणे इति श्वाशुरित्येव, मानपितृभ्यां स्वमेत्याभ्या
परस्य स्वसुर्विधायमान पत्व क्रियाशब्दात् परस्य नेति नत्र म'वृष्यमेति
भवतीति प्रतिपादितम् । एव वास्मादृशब्दाङ्गिति अञ्चनृनामिति
किति लिटि विधीयमानो गुणो न भवति । तत्र धात्वभ्यामयोः सवर्ण
दीर्घे धातुग्रहणेन ग्रहणादृकारान्तलक्षणे गुणे अतुरित्यादि भवती-
त्येके । अन्ये त्वभ्यासग्रहणेन ग्रहण'दुरदत्वहनादिसेपानआदे'रितिर्द'र्गेषु
'आतो लोप'इत्याकारलोपे सत्यतुरित्यादि प्रत्ययमात्रमेवाव'गु भव
तीति । एव शिञ्जिदुसुभ्य इत्यनभिव्यक्तपदार्थत्वेनाचारक्विबन्तस्य द्रोघेह
णाभावाच्चङ्भावात् सिच्यद्रावीदिति भवति । भूरिवाचरति भवतीत्यत्र
'गातिस्याधुपाभूयः सिचः परस्मैपदेषु' 'भुवो बुभुङ्'लिटो' 'भवने'इति
विधीयमानसिञ्जुबुगभ्यामात्वानामभावान् अभावीन् आभाविदुम ।
अभाविपुः, बुभावेत्यादि एव भवति, पिबतेर्विचि पा. तयाचारक्विबन्तस्य
'पाप्मेत्यादौ' 'गातिस्ये'त्यादौ चाग्रहणात् पिबादेशमिञ्नुकोरभावान्
पाति, अपासीदिति भवति, एवमन्यदप्युच्येयं प्रतिपदोक्तेषु । 'परिवाच-
रति । परति । पपार । पपरतुः । पपरित्यादि अयं पूगञ्जानुकरण
धात्वन्तरं न पुनः क्र्यादौ जुहोत्यादौ वा पठ्यमान इति पाठाश्रयः शना
श्लुश्च न भवति । किति लिटि अञ्चनृतामिति अकारान्तनक्षणे गुण
'शृङ्गप्रामि'ति ह्रस्वविकल्पस्त्वनभिव्यक्तपदार्थात्वाच्च भवति । अ इवा-
चरति अरति, अरांचकार, 'इजादेश्च गुस्मत् इत्याम्भन्ययः । गच्छ इवाचरति
गमलति, गमलांचकार, प्रत्ययान्तत्वाद्रामि अकारान्तकारयोः माघर्ण्या'दु-
रण्पर इति लपरो गुणः । ल इवाचरति अलति, पूर्वधनुग । लिटि विभ्र-
चनम्, लघर्णेदीर्घाभावात् सवर्णदीर्घाभावात् उत्तरलघुस्य यद्यभ्यास-
स्यारदत्वादेवाल, अतुरित्यादि । परमहेरिवाचरति परमहयति । पर-

महयांचकार, केवलाच्चाहभावाज्जिहाय । लुङि सिचीट्यवादेशे हलन्तल
 क्षणा 'वृद्धिर्नैटी'ति निषिध्यते । 'अतो हलादे'रिति वृद्धिविकल्पोपि ह्य-
 न्तक्षणेति योन्तत्वाज्जिष्ट इत्यपरमहयीदिति भवति । एकार इवाचरति
 अयति, लिटीजादिलक्षणे आम्ययाचकारेति भवति । लुङ्वायीत् । अन्यदा
 पूर्ववद्वलन्तहलक्षणाया वृद्धेर्नैटीति निषेधान्माभवानायीत् । गौरिवाचरति
 गवति । जुगाव । अगवीत् । अगावीत् । 'अतो हलादे'रिति वा वृद्धिः ।
 ओकारश्चदाचरति । अवति । अवाचकार । लुङि हलन्तलक्षणाया वृद्धेर्नै-
 टीति निषेधान्मानभवानवीदिति । परमरा इवाचरति परमरायति । परम-
 रायांचकार । रायति । रिराय । ऐकार इवाचरति आयति, अयाचकार,
 परमनौरिवाचरति, परमानावयति, परमनावाचकार, नावति, नुनाव ।
 केवलादौकारादावति, आवाचकार, गोधुगिवाचरति गोदुहति, य इवा-
 चरति ययति, अनेकाच्त्वादामभावे ययाय । लुङि यान्त्वद्वा वृद्धभा-
 वादयीत्, औरिवाचरति देवति । स्वरिवाचरति स्वरति, फलिवाचरति
 फलति, अनयोर्लुङ्यतो हलादेरिति विकल्पापवादे 'अतो लान्तस्ये'ति
 नित्यं वृद्धौ अस्वारीदफालीदिति भवति, चरफलोश्चेत्यत्र न्यासविस्ता-
 रयोः फलेणौ क्विपि फाल्, अयमप्येकदेशविभक्तन्यायेन गृह्यतइति यङ्य-
 ङ्लुकोरध्यासस्य नुकि पंफाल्यते अपफालीदित्युक्तं, तदेतदुत्तरस्यात् इति
 तत्परकरणं 'मतो हलादे'रित्यादिष्वत्र केवलनिदेशार्थमपि तु सर्वण्यग्रहणनि-
 वृत्त्यर्थमपीत्याश्रयणेनान्यथा प्रतिपदोपादानेष्वभिव्यक्तपदार्थानामेव भा-
 ष्यादौ ग्रहणस्य स्थितत्वाच्चैवं युज्यते, इदमिवाचरति, इदामति । अन्-
 नासिकस्य क्विप्फलोरित्यत्र फलादिक्विप् धातिरेव संभवतीति तत्-
 साहचर्यात्क्विबपि धातुविहित एव गृह्यतइति नात्र क्वावयं दीर्घ इति
 केचित्तत्र । अस्य क्विपः ककारस्यात्र सामान्यग्रहणमन्तरेण प्रयोजनाभा-
 वात् । चङिवाचरति चाङति, अणिवाचरति आणति, राजानति, कुम्भति,
 अस्वति, पदति, योधति, भिषजति, शम्भति, अङ्गति, पण्यति, त्वदति,
 मदति, 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे'ति त्वमौ । युवामिवाचरति आवामिवाच-
 रति, यूयमिवाचरति वयमिवाचरति, युष्मदति, अस्मदति, युष्मदस्मदो-

रनेकार्थत्वाच्च त्वमौ विभक्तिपरत्वाभावाच्च युवावौ नापि यूयवयौ । त्वा
मतिक्रान्तः अतित्वम् । एवमत्यहं, क्वावतित्वदति, अतिमदति 'प्रत्ययोत्त
रपदयो'रिति त्वमौ, युवां युष्मानतिक्रान्तः अतित्वमत्यहम्, अत्र द्विवच-
नत्वे तदाश्रित्य युवावौ न भवतः पराभ्या त्वाहाभ्या बाधादत्र क्वावपि
अतित्वदति अतिमदति, मखति, कफति, मन्यति, वटति, पटति, अकति,
कङ्कति, अयति, वेशति, षयति, यशति, प्रसिद्धा ये हलन्तास्तेषां कारितणौ
टिलोपे 'णेरनिटी'ति णेश्च लोपे तदुलन्तत्वं द्रष्टव्यम् ॥

अथैतत्क्लिबन्तादुक्तोः क्तिप् चेति कर्त्तरि कौ किञ्चिदुच्यते । 'यूस्या
ल्यौ नदी'इतीकारान्तशब्दरूप स्याख्य नदीसज्ञकमित्युक्तं, तत्र कुमार्या-
देरेतत्क्लिबन्तात्कर्त्तरि कौ कुमारी ब्राह्मण इत्यादौ स्याख्यत्वाभावाद्नदी
सज्ञा न प्राप्नोति । तत्रोच्यते, प्रथमलिङ्गग्रहणं चेति क्तिप्समासैरन्यलिङ्ग
त्वेपि प्रथमलिङ्गाश्रया नदीसज्ञा भवतीत्यर्थः । इह प्रस्तुतत्वानुप्समासौ
न प्रदर्श्यते । एवं च कुमारी ब्राह्मण इत्यादौ आचरतिवर्तमानस्य कुमा-
र्यादेर्नदीसंज्ञायां हे कुमारी ब्राह्मण इत्यादौ 'अम्बार्थनद्वोर्हस्व' इति ह्रस्वो
भवति, कुमार्यै ब्राह्मणायेत्यादौ ङिद्वचने 'चाणदद्या' इत्याडागमो ङेरा-
न्वद्वान्नीभ्य'इत्यामादेशः, कुमारीणां ब्राह्मणानामित्यादौ 'ह्रस्वनद्वाप'
इति तुङ् भवति, एव हे ब्रह्मबन्धु ब्राह्मण ब्रह्मबन्धवे ब्राह्मणायेत्यादौ
ह्रस्वादि दृष्टव्यं, नदीत्वादेव बहवः कुमार्यो ब्राह्मणा यस्मिन्बहुकुमा-
रीको देश इत्यादौ 'नदृतश्चे'ति कब् भवति, यत् पुनरिष्वशनिप्रभृतीनां
ह्रस्वान्तानां स्याख्यानां श्रीभृप्रभृतीनामियदुवङ्स्यानाना च 'ङिति
ः श्चे'ति नदीसज्ञा विकल्पेन तदेवाचारक्लिबन्तानां पुल्लिङ्गानां प्रथम-
लिङ्गग्रहणं चेति न भवति । तथा च वार्त्तिकं ह्रस्वेयदुवङ्स्यानप्रवृत्तौ
च, अत्र भाष्यं ह्रस्वौ च इयदुवङ्स्यानौ च प्रवृत्तौ च प्राक् प्रवृत्तेश्च
स्त्रीवचने एव नदीसज्ञा भवत इति वक्तव्यमिति, प्रवृत्तिः क्तिबादीना,
तेनायान्तरसंक्रान्तिः । इषवे ब्राह्मणाय, अशनये ब्राह्मणाय, धेनवे
ब्राह्मणाय, श्रिये ब्राह्मणाय, भुवे ब्राह्मणायेत्यादौ नदीसंज्ञानिमित्त-
कार्यं न भवतीति, यत्र तु स्त्रीवचनं तत्र इष्वै ब्राह्मण्यै इषवे ब्राह्मण्यै

त्वाभावादभावः, अस्ति दृढत्वं विभक्तिफलत्वं चेति युवावौ भवतः ।
तत्र युयव्यौ जसीत्यादि योगचतुष्टयविषये परत्वाद्युपादयो भवन्ति,
अत्र रूपाणि । त्वम्, अहं, युवाम्, आवां, यूय, वय, युवान्, आवात्
युवया, आवया, युवाभ्याम्, आवाभ्यां, युवाभिः, आवाभिः, तुभ्यः, मय्यः,
युवाभ्याम्, आवाभ्यां, युवत्, आवत्, युवाभ्याम्, आवाभ्याम्, युवत्, आवत्,
तव, मम, युवयोः, आवयोः, युवाकम्, आवाक, युवयि, आवयि,
युवयोः, आवयोः, युवासु, आवासु, विभक्त्यादेशादि पूर्ववत्, त्वामाचष्टे
मामाचष्टेति शौ प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति त्वमयोः प्रकृत्यैकाजिति प्रकृ-
तिभावाट्टिलोपाभवे शेषे कौ लोपे त्वाद् माद् इति भवतः, अङ्गवृत्तप-
रिभाषया वृद्धिर्नैति भवादित्नां त्वद् सद् इति भवतस्तत्र विभक्तिषु मप-
र्यन्तस्याभावाद्युपादयो न भवन्ति, तत्र रूपाणि । आदितः षञ्चसु वच-
नेषु त्वां मयि, वृद्धिर्नैति वादिना सुज्ञसोः शेषे लोपेन दकारलोपे
त्व मम् इति भवतस्त्वान्, मान्, त्वाया, माया अङ्गवृत्तिपक्षे त्वया, मया,
त्वाभ्या, माभ्या, त्वाभिः, माभिः एव डेप्रथमयोरमित्यमि शेषेलोप 'आतो
धातो रित्याकारलोपस्त्वां, मां, त्वाभ्यां, माभ्यां, भ्यमादेशे पूर्ववच्छेपे लोपे
त्वाभ्य, माभ्यामिति भवति, पूर्ववत्लोपे, अभ्यमादेशपक्षे आलोपे च त्वभ्यं,
मभ्यामिति भवति, अङ्गवृत्तिपक्षे शेषलोपे त्वभ्यम्, मभ्यम्, अङ्गवृत्तपरिभाषया
'बहुवचने भल्ये'दित्येत्वं न भवति, त्वत्, मत्, पूर्ववच्छेपेलोपाल्लोपौ
त्वाभ्यां, माभ्या, त्वत्, मत्, त्व, म, पूर्ववच्छेपेलोपाल्लोपौ, त्वायोः, मायोः
अङ्गवृत्तिपक्षे त्वयोः, मयोः, त्वाक, माक, त्वायि, मायि, त्वायोः, मायोः,
अङ्गवृत्तिपक्षे त्वयि, मयीत्यादि, त्वासु, मासु, अत्र येषां दर्शनं शौ त्वमयोः
परपूर्वत्वात् पूर्वमनेकात्त्वेन टिलोपे वृद्धौ पुकि कौ शेलोपे त्वापि मापि
इति भवत इति, तेषामपि पूर्ववत् शेषे लोपादिषु वृद्धिपक्षे यानि रूपाणि
तानि द्रष्टव्यानि । ननु युष्मदस्मदोर्मान्तत्वे कथं यूयादयः प्रदर्शिताः ।
यतस्ते मपर्यन्तस्येत्यधिकारे विधीयन्ते, मपर्यन्तस्येति च युष्मदस्मद्भा वैय-
धिकरणेन संबध्यते, व्यपदेशिवद्भावश्चाप्रातिपदिकेनेति प्रतिपिध्यते, अव-
श्य चैतदेवं विज्ञेयं समानाधिकरणेन संबन्धे मान्तयोरादेशप्रसङ्गात् ।

उच्यते । अत्र मान्तस्येति वचनेनाप्युक्तेर्ये सिद्धे परिग्रहणसामर्थ्यात् अप्रा-
 तिपदिकेनेत्यस्याप्रवृत्तेः, व्यपदेशिवद्वावसिद्धेः । अपरे पुनराहुः, सति शेषे
 पर्यन्तशब्दो वर्तते, तेन मान्तयोः युष्मद्वत्ते रूपादेशेन न भवितव्य-
 मिति तन्मते पूर्व यूयवयौ जज्ञीत्यादियोगजनितस्याप्रवृत्तेर्युवादादेशा-
 भावः, तत्र रूपाणि युष्म अस्म, 'डे प्रथमयोर्द'त्यस्म 'शेषेलोप'
 इत्यन्तलोपः, सुजसोर्द्विचने तु 'प्रथमायाश्च द्वितयन'इत्यान्व युष्म
 अस्म, चतुर्थ्यकवचने तुभ्यम्वत्तदेताभ्याम् ऐप्रथमयोरमित्यस्मि शेषे लोपे
 युष्म अस्म, पञ्चमकवचने 'युष्मत्स्वभ्यां डलोशि'ति अशादेशे 'तवममौ
 डसी'ति तवममयोरभावे शेषे लोपे युष्म अस्मेति भवति, इदं च शेषे लोप-
 प्रदर्शनं शेषे लोप इत्यस्य शेषे जिभतौ पर इत्युच्यते, यदा तु मात् परत्व
 शेषत्वमिति पक्षस्तदा शेषेलोपाभावान्नकारस्य श्रवणं भवतीति युष्म
 अस्ममित्यादि भवति ॥

इति श्रीसायणेन विरचितेयं प्रत्ययान्तनामधातुवृत्तिः समाप्ता ॥

॥ शुभं भवतु ॥

